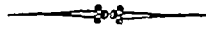


भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

ग्रन्थ-मालाका उद्देश्य—

प्राकृत, संस्कृत आदिमें निबद्ध दि० जैन सिद्धान्त,
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिका यथा सम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक—

भा० दि० जैन संघ

ग्रन्थाङ्क १-२

प्राप्तिस्थान—

व्यवस्थापक

भा० दि० जैन संघ,

चौरासी, मथुरा

मुद्रक, रामकृष्ण दास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रेस, बनारस ।

Sri Dig Jain Sangha Granthmālā No 1-II

KASĀYA-PĀHUDAM

II

(PAYADI VIHATTI)

BY

GUNABHADRĀCHĀRYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHĀCHĀRYA

AND

**THE JAYADHAVALĀ COMMENTARY OF
VĪRASENĀCHĀRYA THERE UPON**

EDITED BY

Pandit Phulechandra Siddhantashastrī,
EX-JOINT EDITOR OF DHAVALA

Pandit Keilashachandra, Siddhantashastrī,
*NYAYATIETHA, SIDDHANTARATNA,
PRADHANADHYAPAK, NYADYADA DIGAMBARA JAIN
VIDYALAYA, BEHARAS.*

PUBLISHED BY

The Secretary Publication Department,

THE ALL-INDIA DIGAMBRA JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA,

SRI DIG. JAIN SANGHA GRANTHAMĀLĀ

Foundation year—]

[—Vira Niravāna Samvat 2468

Aim of the Series —

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana,
Sahitya, and other Works in Prakṛta, Samskrta
etc Possibly with Hindi Commentary
and Translation

DIRECTOR —

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO 1 VOL II.

To be had from —

THE MANAGER,
SRI DIG. JAIN SANGHA.

CHAURASI MATHURA,

U. P. (India) .

*Printed by—*RAMA KRISHNA DAS,

AT THE HINDU UNIVERSITY PRESS BENARES

1000 Copies,

Price Rs. ~~Eleven~~ only.

मा० दि० जैन सघ के साहित्य विभाग के सदस्यों की नामावली

संरक्षक सदस्य

८१२५) साहू धान्ति प्रसादजी बाकमिवा नगर

सहायक सदस्य

१००१) काका ह्याम काक जी रईस फर्माणावा

२००१) सेठ नामचन्द जी हीराचन्द जी गांधी, वस्त्रामावा

१००१) सेठ बनदरामदास जी सराफाजी, बरकमवा

[धर्मवती रा० व० सेठ भुषीकाक जी के सुपुत्र स्व० मिहाकचन्द जी की स्मृतिमें]

१००१) रा० व० सेठ रतनकाक जी चंदमरु जी रांची

१०००) सफर दि० जैन बंधान मयपुर

१०००) सफर दि० जैन बंधान, गवा

१००१) राव साहब काका लक्ष्मणराव जी, देहली

१००१) काका महावीर प्रसाद जी (फर्म महावीर प्रसाद एण्ड सन्स) देहली

१००१) काका जुगल किशोर जी (फर्म भूषीमरु धर्मवास) देहली

१००१) काका रघुवीर सिंह जी (जैन बाघ कम्पनी) देहली

१० ०) स्व० श्रीमती मनोहरदेवी अतेधरी का० कसन्त काक फिरोजी काक जी, जैन देहली

प्रकाशककी ओरसे

आज चार वर्षोंके पश्चात् कथावाचक (कथकथा) का यह दूसरा भाग (पत्रिका विहित) प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष भी हो रहा है और संश्लेष भी। पहला भाग प्रकाशित होते ही दूसरा भाग प्रेषमें करनेको दे दिया गया था। किन्तु प्रेषमें एक नये मैनेजरके आगमनेसे दो वर्ष तक कुछ भी काम नहीं हो सका। उनके चले जानेके बाद जब वर्तमान मैनेजरने कर्नाभर सम्हाला तब कहीं दो वर्षोंमें यह ग्रन्थ छप कर तैयार हो सका।

इस बीचमें कथावाचक कार्यालयमें भी बहुत सा परिवर्तन होगा। हमारे एक वरयोगी विद्वान आचार्यजी वं महेन्द्रकुमार जी के सहयोगसे तो हम पहले ही कथित हो चुके थे। बादको विद्वान्त छात्री वं पूरुषचन्द्र जीका सहयोग भी हमें नहीं मिला सका। फिर भी वह प्रकाशककी बात है कि इस मासका पूर्ण अनुवाद और विद्योपाय उन्हींके किये हुए हैं और प्रारम्भके आगम एक दिवस धर्मोत्सव मूक भी उन्हींने देखा है। मैंने तो केवल उनके साथ इस मासका आद्योपान्त वाचन किया है। और मूक घोषण परिशिष्ट निर्माण तथा प्रकाशना कलमका कार्य किया है।

हमारे पास इस ग्रन्थकाके कर माग तैयार होकर रखे हुए हैं, किन्तु उत्तम शिक्षित कथावाचक दुष्प्राप्त होने तथा प्रेक्षकी अत्यन्त कठिन्यरके कारण हम उन्हें बन्द प्रकाशित करनेमें असमर्थ हो रहे हैं, फिर भी प्रयत्न जारी है।

इस मासका संघोषण कार्य अनुवाद बगैर पहले भागके सम्पादकीय कलममें कटाक्षसे गये ङग पर ही किया गया है, धर्मप भी पूर्ववत् है, अतः उनके सम्बन्धमें फिरसे कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु एक बातें जानना हो उन्हें पहले मासका देखना चाहिये।

इस मासके पृ १११ आदिमें डॉ मंगलिकाशुभमका वर्णन करते हुए करव सूर्यके हाथ में निष्कामीकी विधि कथलाई है, उक्तका यह करनेमें कलमका विश्वविद्यालयके गणितके प्रधान-प्रोफेसर डा० अश्वमेधमारायण सिंह ने विशेष सहायता प्रदान की है, अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

आधीमें गङ्गा तट पर स्थित स्व वा क्लीकाला जीके दिन मन्दिरके नीचेके मागमें कथावाचक कार्यालय स्थित है, और यह तब स्व बाबू का के सुपुत्र धर्मप्रेमी बाबू पणेतदात जी के शौक्य और धर्म प्रेमका परिणामक है। अतः मैं बाबू का का इत्यन्त आभारी हूँ।

एवाहाद महाविद्यालय आधीके अन्तर्गत सरलवती मन्त्रका पूरव श्रुतक भी गणेशप्रसादजी वर्तनी अपनी धर्ममाता स्व चित्तोजी बार्शी स्मृतिमें एक निधि अर्पित की है किन्तु अन्तर्गत प्रतिवर्ष विविध विषयोंके प्रयोजन संभ्रमण होता रहता है। विद्यालयके व्यवस्थापकीके शौक्यसे उक्त प्रयोजनका उपयोग कर करके सम्पादन कार्यमें किया जा सका है। अतः पूरव श्रुतक भी तथा विद्यालयके व्यवस्थापकीका मैं आभारी हूँ।

वाराणसपुरके स्व आका कम्प्युटर जीके सुपुत्र एकताहर का प्रद्युम्नकुमारजीने अपने दिन मन्दिरकी भी कथावाचककी उक्त प्रति से विज्ञान करने देसिधी उदाहारा दित्तकार है जो उत्तर भारतकी भाषा प्रति है। अतः मैं आका का का आभारी हूँ। दिन विद्वान्त मन्त्र आपके पुत्रकायच पं मन्त्रिक जी क्लीकालाचार्यके जोहादसे मन्त्रसे विद्वान्त प्रयोजकी प्रतिवर्ष तथा अन्य आवश्यक पुस्तकें प्राप्त होती रहती हैं। अतः मैं उनका भी आभारी हूँ।

हिन्दू विश्वविद्यालय प्रैत के मैनेजर वा रामचन्द्र दातके तथा उनके कार्यकारिणीके भी मैं कथावाचक विषे बिना नहीं रह सकता किन्तु उनके प्रयत्नसे ही यह ग्रन्थ जराब पूर्व करनेकी उत्तम प्रकाशित हो सका है।

अन्तर्गत कर्नाभर
आधी, काशी
आशय दुष्प्रा
वी मि व १९०४

कैलाशचन्द्र छात्री
मंत्री साहित्य विभाग

प्रस्तावना

INTRODUCTION

Kasaya Pahuda deals with the Mohaniya Karman (Attachment in general) and its sub-divisions in their latent (satva) condition with especial reference to Anuyoga-dvaras, e. i. Existence (Sat), number, place, time, difference etc. Therefore the term Mūla Prakṛti (Main natural division of-Karman action) and Uttara Prakṛti (Subdivision of Karman) denote here Mohaniya and its subdivision respectively. This volume 'Payadi-Vihatti' describes the distribution of the Mohaniya in all possible details further deviding the same into the MūlaPrakṛti-Vibhakti (distribution of the Mohaniya) and the Uttara- Prakṛti-Vibhakti (distribution of the subdivision of the Mohaniya)

The Aḥarya goes deeper in his treatment of The Uttara-Prakṛti-Vibhkti by creating two divisions namely Ekaika-Uttara-Prakṛti-Vibhakti and Prakṛti-Sthana-Uttara-Prakṛti-Vibhakti. The former describes individually every subdivision of the Mohaniya keeping all aspects in view and the later brings out clearly the distribution of the sub-divisions of the Mohaniya in fifteen main places while in existence alone. Thus the study of this volume is enough to enable one to procure the full psychological knowlege of the 'king of Karmans e. i. the Mohaniya.

The introduction of the previous volume (I) of the same will furnish with detailed information as regards the Text, Ācārya-Vṛtti, Jayadhavala-commentary there upon, the life of the author and the commentators and other things referred to here

प्रस्तावना

इस संस्करणमें सुविध कथापराबुद्ध और उत्तरी पूर्वोक्त रूप वृत्ति तथा उन दोनोंकी बीच बचपबचक सम्बन्धमें तथा उनके रचयिताओंके सम्बन्धमें प्रथम मगधी प्रस्तावनामें विस्तारसे विचार किया गया है। अतः वहाँ कबक इस मगधी विषयके भीतर उत्तरे भाई हुई कुछ उल्लेखनीय बातोंके परिचय दिया जाता है। सबसे प्रथम उल्लेखनीय बातोंके परिचय कराया जाता है।

१ मत्तमेदोके लुकासा

१ इस मगधी प्रारम्भमें ही कथापराबुद्धकी कार्यवाही गाया जाती है। प्रथम मगधी प्रस्तावना (पृ १० आदि) में यह बतलाया है कि पूर्वोक्तकारमें जो अधिष्ठा निर्धारित किये हैं वे कथापराबुद्धमें निरिद्ध अधिष्ठासे कुछ भिन्न हैं। जो इस कार्यवाही गायाके स्थापना करते हुए श्री बीरठेन स्वामीने गुण बचपचापके अमियावानुसार अधिष्ठा बतलाये हैं। और आगे (पृ १०) में आचार्य बलिष्ठापमें उक्त गाथाके स्थापना पूर्वोक्तके द्वारा करते हुए अपने माने हुए अधिष्ठाओंके विवरण दिया है। इसीसे यह लगी गया इस भागमें दो बार आई है। बलिष्ठापमें उक्त गाथासे ६ अधिष्ठाएँ लुचित किये हैं जब कि गुणबचपचापके अमियावानुसार उल्लेख दो ही अधिष्ठाएँ लुचित होते हैं। क्योंकि गुणबचपचापमें प्रकृति विमर्श विविधिमर्श और अनुभवविमर्शके मिलाकर एक अधिष्ठा किया है और प्रदेशविमर्श हीवा-हीन और विस्वन्तिष्ठाके मिलाकर दूसरा अधिष्ठा किया है। जब कि आचार्य बलिष्ठापमें इन दोनोंके अलग-अलग अधिष्ठा माना है। इसीसे श्री बीरठेन स्वामीने किया है कि अपने माने हुए अधिष्ठाओंके अनु-धार पूर्वोक्तोंके कथन करने पर भी आचार्य बलिष्ठापमें गुणबचपचापके प्रकृत नहीं हैं। क्योंकि उन्होंने दो अधिष्ठाओंका ही ६ अधिष्ठाओंमें विस्तृत कर दिया है। अतः उन्होंने उन्हीं विषयोंके कथन किया है किन्तु समावेश उक्त दो अधिष्ठाओंमें गुणबचपचापके किया था

२ ऊँ गुणबचपचाप और बलिष्ठापमें अधिष्ठाके अमियावानुसार कथापराबुद्धके अधिष्ठाओंमें भेद है, जैसे ही बलिष्ठापमें और उधारमाचार्यमें भी अन्तः अधिष्ठाओंके अन्तः भेद है। उधारमाचार्यमें मूल प्रकृतिविमर्शके उक्त अधिष्ठा रहे हैं जब कि बलिष्ठापमें उधार ही अधिष्ठा रहे हैं। इसी तरह उधारमाचार्यमें एक उक्त प्रकृतिविमर्शके २४ अधिष्ठा बतलाये हैं जब कि बलिष्ठापमें २१ ही अधिष्ठा बतलाये हैं। किन्तु इसमें भी परस्परमें प्रकृत नहीं है। क्योंकि आचार्य बलिष्ठापमें संश्लेष कथन किया है जबकि उधारमाचार्यमें विस्तारसे कथन किया है। अतः आचार्य बलिष्ठापमें अनेक अनुयोगोंके द्वारा एक ही लक्ष्य कर लिया है और उधारमाचार्यमें उन्हें अलग-अलग करा है।

२ पूर्वोक्तोंकी प्राचीनता

पृ २१ पर एक पूर्वोक्त आया है—“यदिने विदितो वा होदिः अर्थात् एक प्रकृतिक स्वभाव स्वामी जान होता है। जब बचपमें इस पर प्रथम किया है कि यह वह क्यों कहा गया। यह उक्त किया है कि आचार्य प्रामाणिक्य बतलायेके सिद्धे। फिर प्रथम किया है कि ऐसा लुछनेके प्रामाणिक्य जैसे सिद्ध होता है। यह बीरठेन स्वामीने उक्त यह उक्त किया है कि यह स्वभाव मर्यादासे स्वैतयस्वामीने प्रथम किया था। उक्त यह निर्देश करनेके पूर्वोक्तोंकी प्रामाणिक्यका जान दाता है तथा इस आचार्य बलिष्ठापमें यह भी लुचित किया है कि यह उनकी अपनी उक्त नहीं है किन्तु गौतम स्वामीने मर्यादा मर्यादाके जो प्रथम विषय और उन्हें उनका जो उक्त प्राप्त हुआ था उसे ही उन्होंने निरूपण किया है।

इससे प्रतीत होता है कि पूर्वोक्तोंका आचार्य अति प्राचीन है और मर्यादा मर्यादाकी बानीसे उक्त निष्ठा सम्बन्ध है।

३ 'मनुष्य' शब्दसे किसका ग्रहण ?

पृ० २११ पर चूर्णिसूत्रमें कहा है कि नियमसे क्षपक मनुष्य और मनुष्यिणी ही एक प्रकृतिक-स्थानका स्वामी होता है। श्री वीरसेन स्वामीने इसका अर्थ करते हुए कहा है कि 'मनुष्य' शब्दसे पुरुषवेद और नपुंसकवेदसे विशिष्ट मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये। यदि ऐसा अर्थ नहीं किया जायेगा तो नपुंसकवेद वाले मनुष्योंमें एक विभक्तिका अभाव हो जायेगा। इससे स्पष्ट है कि आगम ग्रन्थोंमें मनुष्य शब्दका उक्त अर्थ ही लिया गया है। यही वजह है जो गोम्मट्टसार जीवकाण्डमें गति मार्गणामें नपुंसकवेदी मनुष्योंकी संख्या अलगसे नहीं बताई है और न मनुष्यके भेदोंमें अलगसे उसका ग्रहण किया है। इससे भाववेदकी विवक्षा भी स्पष्ट हो जाती है।

४ कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि मरता है या नहीं ?

पृ० २१५ पर चूर्णिसूत्रका विवेचन करते हुए यह शङ्का उठाई गई है कि कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टिके भी बार्हस्पतिप्रकृतिकस्थान पाया जाता है। और वह मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। अतः 'मनुष्य और मनुष्यिणी ही बार्हस्पतिप्रकृतिक स्थानके स्वामी होते हैं' यह वचन घटित नहीं होता। इसका समाधान करते हुए वीरसेन स्वामीने लिखा है कि यतिवृषभाचार्यके दो उपदेश इस विषयमें हैं। अर्थात् उनके मतसे कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरता भी है और नहीं भी मरता। यहा पर जो चूर्णिसूत्रमें मनुष्य और मनुष्यिणीकी ही बार्हस्पतिप्रकृतिकस्थानका स्वामी बतलाया है सो दूसरे उपदेशके अनुसार बतलाया है। किन्तु उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिका मरण नहीं होता ऐसा नियम नहीं है। अतः उन्होंने चारों गतियोंमें बार्हस्पतिप्रकृतिकस्थानका सत्त्व स्वीकार किया है।

५. उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसयोजना होती है या नहीं ?

पृ० ४१७ पर यह शङ्का की गई है कि 'जो उपशम सम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है उसके अल्पतर विभक्ति स्थान पाया जाता है। अतः उपशमसम्यग्दृष्टिके अल्पतर विभक्ति-स्थानका काल भी बतलाना चाहिये'। इसका यह उत्तर दिया गया कि उपशम सम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती। इस पर पुनः यह प्रश्न किया गया कि 'इसमें क्या प्रमाण है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती'। तो उत्तर दिया गया कि 'चूँकि उच्चारणाचार्यने उपशमसम्यग्दृष्टिके एक अवस्थित पद ही बतलाया है, अल्पतर पद नहीं बतलाया। इसीसे सिद्ध है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती'। इसपर फिर शङ्का की गई कि 'उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना मानने वाले आचार्यके वचनके साथ उक्त कथनका विरोध आता है अतः इसे अप्रमाण क्यों न मान लिया जाय' ? उत्तर दिया गया कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका कथन करने वाला वचन सूत्र वचन नहीं है, किन्तु व्याख्यान वचन है, सूत्रसे व्याख्यान काटा जा सकता है परन्तु व्याख्यानसे व्याख्यान नहीं काटा जा सकता। अतः उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न माननेवाला मत अप्रमाण नहीं है। फिर भी यहाँ दोनो ही मतोंको मान्य करना चाहिये, क्योंकि ऐसा कोई साधन नहीं है जिसके आधार पर एक मतको प्रमाण और दूसरेको अप्रमाण ठहराया जा सके।

इस शङ्का समाधानके बाद वीरसेन स्वामीने लिखा है कि 'यहाँ पर यही पक्ष प्रधान रूपसे लेना चाहिये कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है क्योंकि परंपरासे यही उपदेश चला आता है।' ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्य यतिवृषभका यही मत है क्योंकि उन्होंने जो २४ प्रकृतिक विभक्ति-स्थानका उक्तकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है वह उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना माने बिना नहीं बनता। अतः इस विषयमें भी आचार्य यतिवृषभ और उच्चारणाचार्यमें मतभेद है।

विषयपरिचय

इस भागमें प्रकृतिविमर्शक बर्नन है।

प्रारम्भमें ही आचार्य बलिहूपम्ने विमर्शक शब्दका निक्षेप करके उसके अनेक अर्थोंमें बतलाया है। फिर किन्ना! कि बहाँ पर इन अनेक प्रकारकी विमर्शकियोंमेंसे द्रव्यविमर्शके कर्मविमर्श और नोकर्मविमर्श इन दो अन्तरे मेंसे ही कर्मविमर्श नामकी द्रव्यविमर्शके प्रबोधन है। अथाव प्रायुतमें उद्योग बर्नन है।

इसके बाद अथावप्रायुतकी बार्हस्पती गायत्र्या अथर्वान करते हुए आचार्य बलिहूपम्ने उसके ५ अर्थोंमेंसे प्रथम किन्ना है और उनमेंसे सबसे प्रथम प्रकृतिविमर्श नामक अर्थाधिकारक कथन करके ही प्रथमा की है।

प्रकृतिविमर्शके दो मेरु बिन्दु हैं—मूळ प्रकृतिविमर्श और उत्तरप्रकृतिविमर्श। इस प्रथममे केवल मोहनीय कर्म और उसकी उत्तर प्रकृतियोंका ही बर्नन है। अतः बहाँ मूळ प्रकृतिसे मोहनीयकर्म और उत्तरप्रकृतिसे मोहनीयकर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ ही भी गई हैं।

मूळप्रकृतिविमर्श

मूळ प्रकृतिविमर्शक बर्नन करनेके लिये आचार्य बलिहूपम्ने आठ अनुयोगाकार रखे हैं— स्वप्निल अथ अन्तर, नाना बीबीकी अपेक्षा मंगविषय अथ अन्तर, अथावग और अस्व बहुल। किन्तु उच्चारणात्मके उत्तर अनुयोगाकारोंके द्वारा मूळ प्रकृतिविमर्शक बर्नन किया है। पृथिक् पृथिव्य संश्लिष्ट है और पृथिव्यकारने केवल अस्वत् आकस्मिक अनुयोगोंका ही सामान्य बर्नन किया है, अतः अथवगकारने कर्म अनुयोगाकारोंका बर्नन उच्चारणाकारोंके अनुसार ही किया है। उत्तर अनुवायाद्यर्थोंका संश्लिष्ट परिचय नीचे दिया जाय है।

समुत्पत्तिर्तना—इसका अर्थ हावा है—कथन करना। इसमें शुभस्वप्न और मार्गाभाषोंमें मोहनीयकर्मका अस्तित्व और नास्तित्व बतलाया गया है। अथावमें शुभस्वप्न तक सभी बीबीके मोहनीयकर्मकी उच्च पाई जाती है और अथावमें शुभस्वप्नसे लेकर सभी बीब तक उल्टे रहित हैं। अतः किन मार्गाभाषोंमें भी अथाव आदि शुभस्वप्न नहीं होते उनमें मोहनीयकर्म अस्तित्व ही बतलाया है। अतः किन मार्गाभाषोंमें दोनों अथवकार्य संभव हैं उनमें अस्तित्व और नास्तित्व बतलाया है।

साधि, अनाधि, प्रुध, अप्रुध—इसमें बतलाया है कि मोहनीयकर्मके किन्तुके साधि है, किन्तुके अनाधि है, किन्तुके प्रुध है, और किन्तुके अप्रुध है।

स्वामित्व—इसमें मोहनीयकर्मके स्वामीका निर्देष्ट किया है। किन्तुके मोहनीयकर्मकी उच्च वर्तमान है वह उत्तरा स्वामी है। और जो मोहनीयकर्मकी उच्चका मूळ कर प्रुध है वह उत्तरा स्वामी नहीं है।

अस्व—इसमें बतलाया गया है कि बीबीके मोहनीयकर्मकी उच्च किन्तुके अथ तक रहती है और अथका किन्तुके अथ तक रहती है? किन्तुके मोहनीयकी उच्च अनाधिके लेकर अन्तराथ तक रहती है और किन्तुके अनाधि अथ होती है।

अन्तर—इसमें बतलाया गया है कि मोहनीयकर्मकी उच्च एक बार नष्ट होकर पुनः किन्तुके समयके बाद प्राप्त हो जाती है। किन्तु पृथिक् मोहनीयका एक बार अथ हो जानेके बाद पुनः बन्ध नहीं हावा अतः मोहनीयका अन्तराथ नहीं हावा।

भगविचयानुगम—इसमें नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके अस्तित्व और नास्तित्वको लेकर भगोंका विचार किया गया है ।

भागाभागानुगम—इसमें यह बतलाया है कि सब जीवोंके कितने भाग जीव मोहनीयकर्मकी सच्चावाले हैं और कितने भाग जीव असच्चा वाले हैं ।

परिमाण—इसमें मोहनीयकर्मकी सच्चावाले और असच्चावालोंका परिमाण बतलाया गया है ।

क्षेत्र—इसमें मोहनीयकर्मकी सच्चावाले और असच्चावाले जीवोंका क्षेत्र बतलाया गया है कि वे कितने क्षेत्रमें रहते हैं ।

स्पर्शन—इसमें उनका त्रिकाल विषयक क्षेत्र बतलाया गया है ।

काल—इसमें नानाजीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मके कालका कथन किया है । अर्थात् यह बतलाया है कि मोहनीयकर्मकी सच्चावाले और असच्चावाले जीव कब तक रहते हैं । चूंकि संसारमें दोनों ही प्रकारके जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः उनका काल सर्वदा बतलाया है । पहला कालका वर्णन एक जीव की अपेक्षासे है और यह नाना जीवोंकी अपेक्षासे है ।

अन्तर—यह अन्तर भी नानाजीवोंकी अपेक्षासे है । चूंकि मोहनीयकर्मकी सच्चा और असच्चावाले जीव सदा पाये जाते हैं अतः सामान्यसे उनमें अन्तर नहीं है ।

भाव—इसमें यह बतलाया है कि मोहनीयकर्मकी सच्चावालोंके पाच भावोंमें से कौन-कौन भाव होते हैं और असच्चावालोंके कौन भाव होता है । सच्चावालेके पारिणामिकके सिवा चार भाव होते हैं और असच्चावालेके केवल एक क्षायिक भाव ही होता है ।

अल्पबहुत्व—इसमें मोहनीयकर्मकी सच्चा और असच्चावालोंमें कम्ती बढतीपन बतलाया गया है कि कौन थोड़े हैं कौन बहुत हैं ?

यहा यह ध्यान रखना चाहिये कि उक्त सभी अनुयोगद्वारोंमें गुणस्थान और मार्गणाओंकी अपेक्षा वर्णन किया गया है । तथा वह मोहनीय कर्मकी सच्चा और असच्चा को लेकर ही किया गया है । न तो मोहनीयके सिवा दूसरे किसी कर्मका इसमें वर्णन है और न सच्चा-असच्चाके सिवा किसी दूसरी अवस्था का ही वर्णन है ।

इस वर्णनके साथ मूल प्रकृति विभक्तिका वर्णन समाप्त हो जाता है जो ५९ पेजोंमें है ।

उत्तरप्रकृतिविभक्ति

उत्तर प्रकृतिविभक्तिके दो भेद हैं—एकैक उत्तर प्रकृतिविभक्ति और प्रकृतिस्थान उत्तर प्रकृति विभक्ति । एकैक उत्तर प्रकृतिविभक्तिमें मोहनीय कर्मकी अठाईस प्रकृतियोंका पृथक् पृथक् निरूपण किया गया है । और प्रकृतिस्थान उत्तर प्रकृतिविभक्तिमें मोहनीय कर्मके अष्टाईस प्रकृतिक, सच्चाईसप्रकृतिक, छन्वीसप्रकृतिक आदि १५ प्रकृतिक स्थानोंका कथन किया गया है ।

एकैक उत्तर प्रकृतिकविभक्तिका कथन चौबीस अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षासे किया गया है । इनमें १७ अनुयोगद्वार तो मूल प्रकृतिविभक्तिवाले ही हैं । शेष हैं—सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति और सन्निकर्ष । मोहनीयकी समस्त प्रकृतियोंको सर्वविभक्ति और उससे कमको नोसर्वविभक्ति कहते हैं । गुणस्थान और मार्गणाओंमें कहा मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका सत्त्व है और कहा उनसे कम प्रकृतियोंका सत्त्व है इसका निरूपण इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें किया गया है । सबसे उत्कृष्ट प्रकृतियोंको उत्कृष्टविभक्ति और उनसे कम को अनुत्कृष्ट विभक्ति कहते हैं । मोटे तौर पर सर्व

विम्बिक और नोत्तर्विम्बिकमें तथा उत्कृष्ट विम्बिक और अनुत्कृष्ट विम्बिकमें कोई भेद प्रतीत नहीं होता तथापि वषावर्षमें दोनोंमें अन्तर है । लवविम्बिकमें तो दृषक् दृषक् सब प्रकृतिबोध कथन किया जाता है और उत्कृष्टविम्बिकमें समस्त प्रकृतिबोध सामूहिक रूपसे कथन किया जाता है । इसी तरह नोत्तर्विम्बिक और अनुत्कृष्ट विम्बिकमें भी जानना चाहिये ।

मोहनीयकी वस्तु कथन प्रकृतिबोध तत्त्व अपन्य विम्बिक है और उससे अधिकतर तत्त्व अज्ञाप्य-विम्बिक है ।

एक प्रकृतिके अस्तित्वमें अन्व प्रकृतिबोधके अस्तित्व और नास्तित्वका विचार अभिप्रेत अनुयोग द्वारामें किया जाता है । जैसे वा चीव सिध्वात्मकी सत्ताबोध है उसके सम्बन्ध सम्पत्सिध्वात्म और अन्वत्ता-गुणकी वार कषात्रीकी सत्ता होती थी है और नहीं थी होती । किन्तु रोप बारह कषात्र और मन् नोत्र-बायीकी सत्ता अज्ञाप्य होती है । जिसके सम्बन्ध प्रकृतिबोध तथा है उसके सिध्वात्म सम्पत्सिध्वात्म और अन्वत्तागुणकी ४ थी सत्ता होती थी है और नहीं थी होती किन्तु मोहनीयकी रोप प्रकृतिबोधकी सत्ता अज्ञाप्य होती है । इसी तरह रोप प्रकृतिबोधके बारेमें विचार इस अनुयोगद्वारामें किया गया है । शेष उत्कृष्ट अनुयोगद्वारामें किन्तु बावोंका कथन किया है उसका निरोध पहले किया ही है । अन्तर केवल इतना ही है कि मूलप्रकृति विम्बिकमें मूल प्रकृति मोहनीय कथन केन्द्र विचार किया गया है और उत्कृष्टप्रकृति विम्बिकमें मोहनीय कथनकी २८ उत्कृष्ट प्रकृतिबोध केन्द्र विचार किया गया है ।

यह उल्लेखनीय है कि आचार्य बतिहृदयमें अपने श्रुतिबोधोंमें उत्कृष्टप्रकृतिविम्बिकमें अनु-योगद्वारामें निरोध था किया है किन्तु उनका कथन नहीं किया । श्री बीरछेन स्वामीने उसके तब अनुयोग-द्वारामें निरूपण उच्चारणात्मिक आधारध ही किया है ।

प्रकृतित्वानविम्बिकका वर्णन करत हुए आचार्य बतिहृदयमें सबसे प्रथम मोहनीयके त्पानोंके गिनावा है । फिर प्रत्येक त्पानकी प्रकृतिबोधके बतकाया है ।

मोहनीयके उत्पत्त्यान १५ हावे हैं-२८ २७ २६, २४ २३ २२, २१ २० १९ १८, ११ ५, ४ ३ २ और १ प्रकृति । पहले उत्पत्त्यानमें मोहनीयकी सब प्रकृतियां होती हैं । दूसरेमें सम्पत्त्व प्रकृति नहीं होती । तीसरेमें सम्पत्त्व और सम्पत्सिध्वात्म प्रकृतिवा नहीं होती । चौथे अन्वत्तागुणकी ४ कषात्र नहीं होती । पाँचवेंमें चौबीसमेंसे सिध्वात्म भी बका जाता है । छठेमें तेरहमेंसे सम्पत्सिध्वात्म भी बका जाता है । सातवेंमें बाह्रमेंसे सम्पत्त्व प्रकृति भी बकी जाती है । आठवेंमें द्वादशमेंसे साठ वषावर्ष बकी जाती है । नौवेंमें ११ मेंसे नवुत्कृष्ट वर भी बका जाता है । दसवेंमें १२ मेंसे बीसवें भी बका जाता है । पन्द्रहवेंमें छ नाश्रयण भी बकी जाती है । बारहवेंमें पुष्य वर भी बका जाता है और अज्ञ ४ संवत्कन कषात्र रह जाती हैं । त्रह्रह्रवेंमें संवत्कन श्रेण पञ्च जाता है । पारह्रह्रवेंमें संवत्कन मन्त्र बका जाता है । और पन्द्रहवेंमें संवत्कन मायाके बले बानेसे केवल एक संवत्कन काम शेष रह जाता है । इन पन्द्रह त्पानोंका कथन गुणत्पान और मन्त्रात्पानोंमें उत्कृष्ट अनुबोधोंके द्वारा किया गया है । इनमेंसे आषाढ बतिहृदयमें स्वामित्व का अन्तर, मंगलिकार और अज्ञाप्यदुल्ला कथन बोधमें किया है । शेष कथन उच्चारणाचार्य की हृदिके अनुस्मर ही किया गया है ।

मुञ्जकरविम्बिक

मोहनीयके उत्कृष्ट उत्पत्त्यानोंका निरूपण करनेके लिये तीन विषय और भी किये गये हैं । वे हैं- मुञ्जकर, परनिर्वाण और वृद्धि । मुञ्जकर विम्बिकमें बतकाया गया है कि उत्कृष्ट उत्पत्त्यान सर्वथा त्पानी नहीं है, अधिक प्रकृतिबोध तत्पते कम प्रकृतिबोध तत्त्व हा लक्ष्या है और कम प्रकृतिबोध तत्पते अधिक प्रकृ-तिबोध भी तत्त्व हा लक्ष्या है तथा बोध बोध भी रह लक्ष्या है । इस मुञ्जकर विम्बिकका निरूपण भी

सतरह अनुयोगोंके द्वारा किया गया है, जिनमेंसे काल अनुयोगका सामान्यसे कथन यतिवृषभ आचार्यने स्वयं किया है और शेष अनुयोगद्वारोंका कथन उच्चारणा वृत्तिके आधारसे किया गया है ।

पदनिक्षेप

पहले मोहनीयके २८, २७ आदि विभक्तिस्थान वतलाये हैं । उनमेंसे अमुक स्थानसे अमुक स्थान की प्राप्ति होने पर वह हानिरूप है या वृद्धिरूप है, इत्यादि बातोंका विचार पद निक्षेप नामके विभागमें किया है । जैसे एक जीव अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला है । उसने सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेष्टना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त किया तो यह जघन्य हानि कही जायेगी । तथा एक जीव इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता वाला है । उसने क्षपकश्रेणी पर चढ़ कर आठ कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक सत्त्व स्थानको प्राप्त किया तो यह उत्कृष्ट हानि कही जायेगी । इसी तरह मोहनीयकी सत्ता वाले किसी जीवने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त किया तो यह जघन्य वृद्धि कहलायेगी । और चौबीस विभक्ति स्थानवाले किसी जीवने मिथ्यात्वमें जाकर अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की तो यह उत्कृष्ट वृद्धि कहलायेगी । इत्यादि बातोंका विचार इस अधिकारमें किया गया है ।

इस अधिकारके प्रारम्भमें केवल एक चूर्णिसूत्र लिखकर आचार्य यतिवृषभने प्रकृति विभक्तिको समाप्त कर दिया है । हा, उच्चारणाचार्यने समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व इस तीन अनुयोगद्वारोंसे पदनिक्षेपका वर्णन किया है । उसीको लेकर स्वामी वीरसेनने कथन किया है ।

वृद्धिविभक्ति

मोहनीयके उक्त सत्त्व स्थानोंमेंसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको प्राप्त होते समय जो हानि, वृद्धि या अवस्थान होता है वह उसके सख्यातवे भाग है या सख्यातगुणा है इत्यादि विचार वृद्धिविभक्तिमें किया है । इस अधिकारका कथन तेरह अनुयोगद्वारोंसे किया गया है । वृद्धिविभक्तिके पूर्ण होनेके साथही प्रकृति विभक्ति समाप्त होजाती है

अनुयोगोंकी प्रयोगिता

तत्त्वार्थ सूत्रके पहले अध्यायमें वस्तुतत्त्वको जाननेके उपाय वतलाते हुए कहा है कि यों तो प्रमाण और नयसे वस्तुतत्त्वका ज्ञान होता है, किन्तु उसमें सत्, सख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व भी उपयोगी हैं, इनके द्वारा वस्तुका पूरा साङ्गोपाग ज्ञान हो जाता है । जैसे, यदि हमें मोटरों खरीदना है तो उनके बारेमें हम निम्न बातें जानना चाहेंगे—आजकल बाजारमें मोटर हैं या नहीं ? कितनी हैं ? कहाँ कहाँ हैं ? हमेशा कहासे मिल सकती हैं ? कब तक मिल सकती हैं ? यदि विक्रि चुकें तो फिर कितने दिन बाद मिल सकेंगी ? किस किस रूप रगकी हैं ? किस किस्मकी ज्यादा हैं और किस किस्मकी कम ? इन बातोंसे हमें मोटरोंके विषयमें जैसे पूरी जानकारी हो जाती है वैसे ही जैनसिद्धान्तमें जीव आदि तत्त्वोंकी जानकारी भी उक्त अनुयोगद्वारोंसे कराई गई है । चू कि प्रकृत कषायप्राभृत ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय मोहनीय कर्मका सत्त्व है अतः इसमें उसका कथन विविध अनुयोगोंके द्वारा किया गया है । उनसे उसका साङ्गोपाग परिज्ञान हो जाता है और कोई भी बात छूट नहीं जाती ।

किन्तु आजके समयमें यह प्रश्न होता है कि एक मोहनीय कर्मके इतने साङ्गोपाङ्ग ज्ञानकी क्या आवश्यकता है ? मनुष्य जीवनमें उसका उपयोग क्या है ?

जैन सिद्धान्तका नाम जानने वाले भी इतना तो जानते ही हैं कि जैन धर्म आत्मधर्म है । वह प्रत्येक आत्माके अभ्युत्थानका मार्ग वतलाता है । और आत्माके अभ्युत्थानका सबसे बड़ा बाधक मोहनीय कर्म है । अतः उस कर्मकी कौन कौन प्रकृति कष कहाँपर कैसी हालतमें रहती है, आदि बातोंको जानना आवश्यक है ।

किन्तु वह सच है कि अस्माकं अमृतपानकं किमे इतना तांगापांगं ज्ञान होना ही आवश्यक नहीं है परन्तु विचित्र एवम्प्य होना आवश्यक है। और चित्तव्री एकाग्रताकं छिप करानुयोगकं प्रत्योक्षी स्वाध्याय चिन्ता उपवागी है उतनी अमृतप्रयोगी नहीं क्योंकि करवानुपांगना चिन्तन करते करते मन अमृत हा पाठा है ता उतमें चिन्ता ही सम्यक जगाने पर भी मन उचरता नहीं है और सुनियाकी वातनाभामें जानेसे एक बाधा है। इहाँसे विषय विचित्र भार उस्थान विचित्रता वर्मपानका अंग कतक्या है। अतः ज्ञानकी विदुषि मनकी एकाग्रता और लक्षितार्थमें प्रसन्न होन करनेके छिप एते प्रत्योक्षी स्वाध्यायमें मन जगाना चाहिये।

इसका मत है कि उत्तर मरुतके लहारनपुर लखौली आदि मगरीमें आज भी ऐसे स्वाध्याय प्रेमी उद्यरस्य हैं, जो एष प्रत्योक्षी स्वाध्यायमें अमृत एक होन करते हैं। उनमें लहारनपुरके बा मेमिचन्द्र जी बशील व बा एतनचन्द्र जी मुकठार मुकठार मगरके बा मित्रसेन भी लखौलीकं अाष्य नानकचन्द्रजी तथा लखनाके अाष्य हुकुमचन्द्रजीनाम उम्मेखनीय हैं। बा मित्रसेनजीने बचपनसाके प्रथम भगवती स्वाध्याय करनेक बाद कुछ छद्मयै अपपचक्रा अयाकभसे पूछी थी किना उमाधान उनके पास भव दिया गया बा। ता नानकचन्द्रजीने ता स्वाध्याय करत समय मूकसे अनुवाहना मिथन ता किया ही ताब ही साय लखौलीके श्रीमिन मन्दिरकीभी बचपनसाकी स्थिति प्रविष्टे भी मूकअ मिथन करक हमारे पास पाठान्तर्णीभी एक लखी ताकिना मेकी। किन्तु उतमें कार्य एका पाठान्तर नहीं मिठा बा हुक हा आर अर्थकी दृष्टि महत्त्व रलता हो। अचिन्तार पाठान्तर लखौलीके प्रमादके ही सूचक है, इहाँसे उन्हे यहाँ नहीं दिया गया है। फिर भी उन्हीने मूकमें ही स्थानों पर छूटे हुए पाठोर्क आर हमारा ध्यान दिखवा है उन्हे हम संप्रत्यवाह यहाँ देते हैं—

- १—पृष्ठ १८ पं २ में 'आपर-कोट' आदिष परक 'गम' पाठ और होमा आदिष।
- २—पृष्ठ ११ पं ४ में 'चित्त वा' से परके 'सम्भालुत्तरण' पाठ बाइ लेना चाहिये।
- ३—पृ ३१९, पं ३ में 'जाबजीवेदि' क स्थान में 'जावाजीवेदि' होमा आदिषे।

छन्दोका सुजासा

बचपनसाके प्रथम भगके अन्तमें अनुयोगहारोके बचनमें मूकमें एत रान हुए हैं। अाष्य नानक चन्द्रजीने इन छन्दोका अभिधाय बूटा बा। इत बूचरे भगमें ता सूक्ति अनुपांगहारोका ही बचन है, अत मूकमें छन्दोकी मरुत है। इन छन्दोके रखनेका अभिधाय यह है बार बार उर्वी अमृतका पूरा म कितकर उतके आये एत रान दिया गया है। इछते छिपनेमें आपन हो बाठा है और उतके संकेते पाठक छाया गया पाठ भी हृदयंगम कर लेता है। जैसे 'कम्मरस' से कर्मजकाव योगी किया गया है, ता बूरा 'कम्मरव अययोगि' न कितकर 'कम्मरस' किञ्च दिया गया है। ऐतरी लख समत लेना आदिष।

अक्षमिति विलारेण



शुद्धिपत्र

प०	प०	अशुद्ध	शुद्ध	प०	प०	अशुद्ध	शुद्ध
१७*	४	विहत्ती	विहत्ती १	१६	४	खवयवस्स	खवयस्स
२९	९	योगिमतियों	योनिमतियों	१३२	९	णवसय-	णवसय
३०	२२	जघन्य से अन्तर्मुहूर्त	जघन्य से खुदाभव ग्रहण, अन्त- महूर्त, अन्त- मुहूर्त	१४०	९	[एवलोभ... सिया अविह० ।]	यह पाठ नहीं चाहिये
४०	१०	उत्कृष्ट काल और	उत्कृष्ट काल	१५६	९	[इसी प्रकारलोभ कषायी नहीं भी है]	यह नहीं चाहिये
४४	१६	कर्मका उत्कृष्ट	कर्मका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट	२१८	२८	जोवोके	जीवोके
४६	२९	केवलियोकी	केवलियो और सिद्धोकी मागेषु	२९८	४	स्यान	स्यान
५९	८	भागेषु	भागेषु	२९८	४	वारसादि	वारसादि
७१	३०	लव्यपर्याप्तक	लव्यपर्याप्तक	३०६	१३	वारह	वारह आदि
७२	७	"	"	३११	१	अकपती	अकपती,
				३८९	२५	- ६७	६७२
				३९२	८	उदयट्टिद	उदयट्टिदि
				"	१	पढमादि	पढमादि
				४१०	२९	चातिके	जातिके
				४१६	६	खत्ते भगों	खेत भगो
				४२५	२१	देघ	देव
					२४	२८, २९	२८, २७



* प० १८७ और १८ में चूणिशुद्धीके हिन्दी अर्थके आगे १, २, ३, ४, ५ और ६ का अंक छपनेसे रह गया है सो ढाल लेना चाहिये ।

विषयसूची

विषय	पृ	विषय	पृ
बार्डर्सची वाचा	१	मूळप्रकृतिविमर्शिके	२२-७६
बार्डर्सची गाथास्य अर्थ	२३	मूळप्रकृतिविमर्शिके भाठ अनुयोगद्वारा	२२
भाषासंबन्धितवृत्तमळे सृष्टिवृत्तस्य आश्रय लेख		उच्चारजाप्यास्ये मूळप्रकृति विमर्शिके	१७
विमर्शिकस्य कथन	४-१३	अर्थाधिकार कसे हे और वदितवृत्तमळे भाठ	
विमर्शिक हास्यके भाठ अर्थ	४	होनांमे विरोध क्यों नहीं है ?	
नामविमर्शिक और स्थापनाविमर्शिकस्य अर्थ	५	भाठ अधिकारोंके द्वारा रोषस्य प्रवृत्त	"
द्रव्य विमर्शिकस्य कथन	५-६	समुत्पत्तिनामुगमस्य कथन	२३
क्षेत्रविमर्शिकस्य कथन	७	यादि अनादि भुव और अनुमानुगमस्य कथन	२४-२५
कालविमर्शिकस्य कथन	८	स्वामिभावानुगमस्य कथन	२६
संस्थानविमर्शिकस्य कथन	९-११	कालानुगमस्य कथन	२७-४४
मनसविमर्शिकस्य कथन	१२-१३	अन्तरानुगमस्य कथन	४४
आचार्य वदितवृत्तमळे सृष्टिवृत्तमें २ का अर्थ		नाना बीबीसी अपेक्षा मंगलविज्ञानानुगम	४४-४६
क्यों रचना इत्यस्य कृपासा	१४	महागाम्यानुगम	४७-४९
२ के अर्थमे लखित अर्थस्य कथन	१५	परिभाषानुगम	४९-५३
उक्त विमर्शिकोंमेंसे वहां कर्म विमर्शिक नामकी		क्षेत्रानुगम	५३-५९
इत्यविमर्शिके प्रयोजन है इत्यस्य कथन	१६	स्थानानुगम	६०-७१
कथने द्वारा माने गये अर्थाधिकारोंके गाथा		माना बीबीसी अपेक्षा कालानुगम	७१-७४
वृत्तमें विलक्षणमळे किंय आचार्य		" " अन्तरानुगम	७४-७७
वदितवृत्तमळे द्वारा २२ वीं गाथास्य		भूतानुगमस्य कथन	७७-७८
व्याख्यान	१७-१८	अस्यवदुत्पत्तानुगमस्य कथन	७८-७९
पद्यके मेर और उनस्य अर्थ	१७	एकैक उत्तरप्रकृति विमर्शिके	८०-१६८
वदितवृत्तमळे अग्न्यास्ये इत्य गाथासे ६ अर्था		उत्तरप्रकृतिविमर्शिकके मेर	८
धिकार सृष्टित इत्ये हे और गुणवरा		एकैक उत्तर प्रकृतिविमर्शिकस्य स्वरूप	"
चारके अग्न्यास्ये हो ही अर्थाधिकार		प्रकृतिसंस्थान उत्तर प्रकृतिविमर्शिकस्य स्वरूप	"
कलकाले हे इत्यस्य कथन	१८	एकैक उत्तर प्रकृतिविमर्शिकके अनुयोगद्वारा	"
प्रकृति विमर्शिकस्य कथन कथनेकी प्रतिष्ठा	"	उच्चारजाप्याके द्वारा कसे गये १४ अनुयोग-	
वदितवृत्तमस्य कथन गुणवराचार्यके प्रतिकूल		द्वारा और वदितवृत्तमचार्यके द्वारा कसे	
नहीं है इत्यस्य कथन	१९	गये ११ अनुयोगद्वारांमे अविचारस्य	
प्रकृति विमर्शिकके मेर	२	कथन	८०-८१
मूळप्रकृतिके साव विमर्शिक हास्य रत्ननेमें		किंत अनुयोगस्य किंत अनुयोगमें संवृ	
आयत्त तथा उत्सव परिहार		क्षिया गया है, इत्यस्य कथन	८१-८२
वहां मोहनीव कर्मकी ही विषया क्यों है ?		समुत्पत्तिनास्य कथन	८३-८७
इत्यस्य व्याख्यान	"	सर्वविमर्शिके नोदर्शविमर्शिकस्य कथन	८८
जाडो कर्ममें प्रकृति विमर्शिक वानी स्वभाव		उत्कृष्टविमर्शिक अनुकृत विमर्शिकस्य कथन	"
मेरस्य कथन	२१		

जघन्यविभक्ति अजघन्य विभक्तिका कथन	८९
सादि अनादि ध्रुव और अध्रुवानुगमका कथन	८९-९०
स्वामित्वानुगमका कथन	९१-९८
ओषसे	९१-९२
आदेशसे	९२-९८
कालानुगमका कथन	९९-१२३
ओषसे	९९-१००
आदेशसे	१०१-१२३
अन्तरानुगमका कथन	१२३-१३०
ओषसे	१२३-१२४
आदेशसे	१२४-१३०
सन्निकर्षका कथन	१३०-१४४
ओषसे	१३०-१३२
आदेशसे	१३३-१४४
नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम	१४४-१५०
भागाभागानुगमका कथन	१५१-१५७
ओषसे	१५१
आदेशसे	१५२-१५७
परिमाणानुगमका कथन	१५७-१६३
क्षेत्रानुगमका कथन	१६३-१६४
स्पर्शानुगमका कथन	१६५-१७१
ओषसे	१६५-१६६
आदेशसे	१६६-१७१
नानाजीवोंकी अपेक्षा कालानुगम	१७१-१७२
अन्तरानुगम	१७३-१७४
माधानुगमका कथन	१७५-१७६
अल्पबहुत्वानुगमका कथन	१७६-१९८
स्वस्थान अल्पबहुत्व ओषसे	१७६
आदेशसे	१७७-१७९
परस्थान अल्पबहुत्व ओषसे	१७९-१८२
आदेशसे	१८२-१९८
प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति	१९९-३०३
प्रकृतिस्थान शब्दका अर्थ	१९९
प्रकृतिस्थानके तीन भेद	"
उनमें से यहाँ सत्त्व प्रकृति स्थानोंके ही ग्रहण करनेका कथन	"

प्रकृतिस्थान विभक्तिके अनुयोग द्वारा	२००
मोहनीयके १५ सत्व स्थानोंका कथन	२०१
इन सत्व स्थानोंकी प्रकृतियोंका कथन	२०२-२०४
षौदह मार्गणाओंमें स्थान समुत्कीर्तन	२०५-
	२०८
उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे अनुयोगद्वारों का कथन	२०९
सादि अनादि ध्रुव और अध्रुवानुगमका कथन	२०९-२१०
यतिवृषभके द्वारा स्वामित्वानुगमका कथन	२१०-२२१
एक प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन है ?	२१०
यह प्रश्न गौतम स्वामीने महावीर भगवानसे किया था	२११
चूर्णिसूत्रमें आये 'मनुष्य' शब्दसे पुरुषवेदो और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करनेका कथन	२१२
पाच प्रकृतिक स्थान मनुष्योंके ही होता है मनुष्यिणीके नहीं, इसका कथन	"
इक्कीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी	२१३
बाईस प्रकृतिक	"
बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामीके विषयमें	"
शका समाधान	२१४
कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टिके विषयमें आचार्य	"
यतिवृषभके दो उपदेशोंका कथन	२१५
उच्चारणा चार्यके उपदेशानुसार कृतकृत्य वेदकके मरण न करनेका कथन	"
तेईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी	२१७
चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी	२१८
विसयोजना कौन करता है ?	"
विसयोजनाका लक्षण	२१९
विसयोजना और क्षणणामें अन्तर	"
छब्बीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी	२२१
सत्चाईस	"
अट्ठाईस	"
उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार आदेशमें स्वामित्वका कथन	२२२-२३२
कालानुगमका कथन	२३३-२८०
एक विभक्तिस्थानका जघन्यकाल	२३३

एक विमूर्तिस्थानका उत्कृष्टप्रकाश	२३९
दो प्रकृतिकस्थानका बचपनप्रकाश	२३७
" उत्कृष्टप्रकाश	२३८
तीन प्रकृतिकस्थानका बचपनप्रकाश	
" उत्कृष्टप्रकाश	२३९
चार प्रकृतिकस्थानका बचपनप्रकाश	२३९
" उत्कृष्टप्रकाश	२४
पाँच प्रकृतिकस्थानका प्रकाश	२४३
षारह प्रकृतिकस्थानका प्रकाश	२४४
बारह प्रकृति	"
तेरह प्रकृति	"
बारह प्रकृतिकस्थानके बचपनप्रकाशके विषय में विशेष कथन	२४६
रकील प्रकृतिकस्थानका प्रकाश	२४७
बार्ड	"
वेईस	"
बीबीस	"
छत्तीस	"
ध्याइस	२४४-२४५
अठ्ठाईस	२४५-२४६
उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार आदेशामें काकण कथन	२५६-२८
अक्षरानुगमका कथन	२८१
एक प्रकृतिकस्थानका अक्षर नहीं	२८१
२१ से ऊपर दो प्रकृतिक स्थानों तकका भी अक्षर नहीं	२८२
बीबीस प्रकृतिकस्थानका बचपन अक्षर	२८२
" " उत्कृष्ट अक्षर	२८३
छत्तीस प्रकृतिकस्थानका बचपन अक्षर	२८३
छत्तीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अक्षर	२८४
अष्टाईस प्रकृतिकस्थानका बचपन अक्षर	२८५
" " उत्कृष्ट अक्षर	२८५
उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार आदेशामें अक्षरकाकण कथन	२८७-२९३
नामाधीवीथी अपेक्षा मंग विषयानुगम	२९२
मन्वीबसरीके मंग जातेथी विधि	२९३
विधिविधी उपरविधि	२९४-२९९

मंग निम्नऊनेथी दूसरी विधि	१ - ३३
समस्त मंगोंका बोध	३३१
आदेशमें मंगोंका निरूपण	३३२-३३५
उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार शेष अनुयोग-	
इतौका कथन	३३६
मंगामंगानुगमका कथन	३३६-३३८
परिभाषानुगमका कथन	३३६-३३९
बेबातुगमका कथन	३३४-३३६
स्वर्धानुगमका कथन	३३६-३३४
काकणानुगमका कथन	३३४-३३४
अक्षरानुगमका कथन	३३४-३३९
मन्वीबसरीका कथन	३३९
पदविषयक अक्षरानुगमका बोधकथन	३३९
" आदेशकथन	३३५
आचार्य बलिह्वनके द्वारा बीबविषयक अक्षर बहुलका कथन	३३९-३७५
बीगठेन स्वामीके द्वारा प्रत्येकके अक्षर- बहुलका उपपाठन	३३९-३७५
उच्चारणाचार्यके अनुसार आदेशमें अक्षरानुगम का कथन	३७५-३८१
मुजगार समिगोगद्वाराका कथन	३८४-४२४
मुकभरविधिभित्तके उत्तर अनुयोगद्वारा	३८४
छत्रुधीर्तनानुगमका कथन	"
स्वामिबानुगमका कथन	३८६
एक बीबकी अपेक्षा काकण कथन	३८७
शेष अनुयोग द्वाराका कथन न करके पविह्वरमें काकण ही कथन क्यों किया हयका समाधान	"
मुकभरका स्वकम	३८८
अवलिप्त विमूर्तिस्थानके काकणके तीन मंग	३८९
अचार्यद्वाराका अर्थ	३९१
उच्चारणके अनुसार आदेशमें काकण कथन	३९१-३९६
उच्चारणके अनुसार शेष अनुयोगद्वाराका कथन	३९७
अक्षरानुगमका कथन	"
नामा बीबीकी अपेक्षा मंग विषयानुगम	४०९
परिभाषानुगमका कथन	४०४

भागाभागानुगमका कथन	४०६	कालानुगमका	”	४४२	
क्षेत्रानुगमका	”	४०८	अंतरानुगमका	”	४४९
स्पर्शनानुगमका	”	४०९	नाना जीर्वांशी अपेक्षा मगधिचयानुगम		४५६
कालानुगमका	”	४१४	भागाभागानुगमका कथन		४५९
उपशम सम्यग्दधिके अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी			परिमाणानुगमका	”	४६१
विसयोजना होनेमें मतभेदकी चर्चा	४१७		क्षेत्रानुगमका	”	४६३
अन्तरानुगमका कथन	४१९		स्पर्शनानुगमका	”	४६५
देवोंमें अल्पतरके अन्तरकालको लेकर			कालानुगमका	”	४७०
उच्चारणार्थोंमें मतभेदकी चर्चा	४२०		अन्तरानुगमका	”	४७५
अल्पबहुत्वानुगमका कथन	४२२		भावानुगमका	”	४७९
पदनिक्षेप अधिकारका कथन	४२५-४३६		अल्पबहुत्वानुगमका	”	”
पदनिक्षेप किसे कहते हैं-	”				
समुत्कीर्तनानुगमका कथन	४२६		परिशिष्ट		४८५-४६३
स्वामित्वका	”	४२९	गाथा चूर्णिसूत्र		४८५-४८८
अल्पबहुत्वानुगमका	”	४३३	अवतरणसूची		४८९
वृद्धिविभक्ति अधिकारका कथन	४३७-४८२		ऐतिहासिक नामसूची		”
समुत्कीर्तनानुगमका कथन	४३७		ग्रन्थ नामोल्लेख		”
स्वामित्वानुगमका	”	४३९	गाथा-चूर्णिसूत्रगत शब्द-सूची		”
			जयधवलगत विशेष शब्द सूची		४९१



कसायपाहुडस्स

प य डि वि ह ती

विदिष्मो अत्याहियारो

जेणिह कसायपाहुडमणेयणयमुज्जलं अणंतत्थं ।
गाहाहि विवरियं तं गुणहरभडारयं वंदे ॥



सिरि-अइषसहाइरियविरइय-पुणिसुत्तसमणिय
सिरि भगवत्तगुणहरमठारओयइइ

क सा य पा हु डं

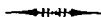
तत्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्स

पयडिविहत्ती णाम विदियो अत्थाहियारो



(४) पगदीप मोहणिय्या विहत्ति तह द्विदीप अणुभागे ।

उक्त्तसमणुक्त्त म्नीयमम्नीय च द्विदिय वा ॥२२॥

मोहनीयकर्मकी प्रकृति, स्थिति और अनुभाग विभक्ति तथा उत्कृष्ट और अनुकृष्ट प्रदेश विभक्ति, शीघ्राशीघ्र और स्थित्यन्तिक्रम कबन करना चाहिये ॥२२॥

§ १. संपहि एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चडे । तं जहा, मोहणिज्जपयडीए विहत्तिपरूवणा मोहणिज्जट्टिदीए विहत्तिपरूवणा मोहणिज्जअणुभागे विहत्तिपरूवणा च कायव्वात्ति एसो गाहाए पढमद्वस्स अत्थो । एदेहि तिहि वि अत्थेहि एक्को चेव अत्थाहियारो । 'उक्कस्समणुक्कस्सं' चेदि उत्ते पदेमविसयउक्कस्साणुक्कस्साणं गहणं कायव्वं; अण्णेसिमसंभवादो । पयडि-ट्टिदि-अणुभाग पदेमाणमुक्कस्साणुक्कस्साणं गहणं क्किण्ण कीरुदे ? ण, तेसिं गाहाए पढमत्थे (-द्वे) परूविदत्तादो । एदेण पदेमविहत्ती सुद्धदा । 'झीणमझीणं' ति उत्ते पदेमविमयं चेव झीणांझीणं घेत्तव्वं; अण्णस्स असंभवादो । एदेण झीणांझीणं सुच्चिद । 'ट्टिदियं' ति वुत्ते जहण्णुक्कस्सट्टिदिगयपदेमाणं गहणं । एदेण ट्टिदियंतिओ सुद्धदो । एदे तिण्णि वि अत्थे घेत्तूण एक्को चेव अत्थाहियारो; पदेमपरूवणादु-

§ १ अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है—मोहनीयकी प्रकृतिमें विभक्ति प्ररूपणा, मोहनीयकी स्थितिमें विभक्तिप्ररूपणा और मोहनीयके अनुभागमें विभक्तिप्ररूपणा करना चाहिये । इस प्रकार यह गाथाके पूर्वार्द्धका अर्थ है । इन तीनों अर्थोंकी अपेक्षा एक ही अर्थाधिकार है । गाथामें 'उक्कस्समणुक्कस्स' ऐसा कहा है । उससे प्रदेशविषयक उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि, यहाँ प्रदेशविभक्तिके सिवा दूसरोंका उत्कृष्टानुत्कृष्ट सम्भव नहीं है ।

शंका—यहाँ पर उत्कृष्टानुत्कृष्ट पदसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चारोंके ही उत्कृष्टानुत्कृष्टका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रकृति, स्थिति और अनुभागका गाथाके पूर्वार्धमें ही कथन कर दिया है, इसलिये उत्कृष्टानुत्कृष्ट पदसे प्रदेशविषयक उत्कृष्टानुत्कृष्टका ही ग्रहण समझना चाहिये ।

इस प्रकार गुणधर आचार्यने 'उक्कस्समणुक्कस्स' इस पदके द्वारा मोहनीयकर्मविषयक प्रदेशविभक्तिका सूचन किया है । गाथामें 'झीणमझीण' ऐसा कहनेसे प्रदेशविषयक झीणांझीणका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यहाँ प्रकृत्यादिविषयक झीणांझीणका ग्रहण सम्भव नहीं है । इस प्रकार गुणधर आचार्यने 'झीणमझीण' इस पदके द्वारा झीणांझीण अधिकारका सूचन किया है । गाथामें 'ट्टिदियं' ऐसा कहनेसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिगत प्रदेशोंका ग्रहण किया है । इस पदके द्वारा गुणधर आचार्यने स्थित्यन्तिक अधिकारको सूचित किया है । इन तीनों अर्थोंको लेकर एक ही अर्थाधिकार होता है, क्योंकि, इन तीनोंके द्वारा प्रदेश-

(१) पढमत्थस्स अ० । (२) "तत्थ य कदमाए ट्टिदीए ट्टिदपदेसग्गमुक्कहुणाए ओकहुणाए च पाओग्गमप्पाओग्ग वा ण एरिसो विसेसो सम्ममवहारिओ । तदो तस्स तहाविहसत्तिविरहाविरहलवखणत्तेण पत्तझीणांझीणववएसस्स ट्टिदीओ अस्सिदूण परूवणट्टुमेसो अहियारो ओदिण्णो ।"—जयघ० प्रे० का० प० ३१२० ।
(३) "ट्टिदीओ गच्छइ ति ट्टिदियं पदेसग्ग ट्टिदिपत्तयमिदि उत्त होदि । तदो उक्कस्सट्टिदिपत्तयादीणं सरूव-विसेसजाणावणट्ठ पदेसविहत्तीए चूलियासरूवेण एसो अहियारो ।"—जयघ० प्रे० का० प० ३३१५ ।

बारेण एयचुवसंमादो । एसो गुणहरमहारण्य विरिद्धत्यो ।

विभक्तिका कथन किया गया है, इसलिये इस अपेक्षासे वे तीनों एक हैं। ऊपर यह जो कुछ कहा गया है वह गुणहरमहारण्य द्वारा बतलाया हुआ अर्थ है।

विशेषार्थ—गुणपर महारण्यके कसायपाहुडकी १०० गाथार्य पत्रह अर्थाधिकारोंमें व्यवस्थित की है यह तो 'गाहासद असरीवे' इत्यादि दूसरी गाथासे ही जाना जाता है। तथा उम्हों 'पेज वा राम वा' 'पयडीय मोहयिञ्जा' और 'कदि पयडीओ कपदि' ये तीन गाथाए पारम्भिक पाँच अर्थाधिकारोंमें मानी हैं वह कसायपाहुडकी 'पग्जहोसविहृषी' इत्यादि तीसरी गाथासे जाना जाता है। पर इस तीसरी गाथाके अनुसार बीरसेनस्वामी जो पाँच अधिकांश विभाग कर आवे हैं उससे हम पूर्वोक्त ठस्केनमें फरक पड़ता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि बीरसेनस्वामिने तीसरी गाथाके पृथार्थकी व्याख्या करते हुए जो तीन विकल्प समझ दिये वहाँ बतला दिये और 'पगरीय मोहयिञ्जा' इसकी व्याख्या करते हुए इससे जो चौथा विकल्प ध्वनित होता है उसका निर्देश नहीं कर दिया है। गाथाके पूर्वार्थमें विभक्ति शब्द मुख्य है और क्षय पद उसके विषयभावसे आव्य हैं, अतः इस पदसे बीरसेनस्वामिने यह अभिप्राय निकाला है कि गुणपरमहारण्यके मतसे प्रकृतिविभक्ति, स्थिति विभक्ति और अनुभागविभक्ति इन तीनोंका एक अधिकार हुआ। तथा गाथाके उत्तरार्थमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट प्रदेश, शीघ्राशीप और स्थित्यन्तिक इन तीनोंके द्वारा एक प्रदेश-विभक्ति-कथन किया गया है अतः हम तीनोंका एक अधिकार हुआ। इस प्रकार इस चौथे विकल्पके अनुसार १ पञ्चदशविभक्ति, २ प्रकृति स्थिति अनुभागविभक्ति, ३ प्रदेश शीघ्राशीप-स्थित्यन्तिक, ४ बन्ध और ५ सङ्गम ये पाँच अधिकार होते हैं।

एक बार विकल्पोंके अनुसार ५ अधिकारोंका सूचक कोष्ठक नीचे दिया जाता है—

पेजदोपविभक्ति	पेजदोपविभक्ति (प्रकृति विभक्ति)	पग्जदोपविभक्ति (प्रकृति विभक्ति)	पेजदोपविभक्ति
स्थितिविभक्ति (प्रकृतिविभक्ति)	-स्थितिविभक्ति	स्थितिविभक्ति	प्रकृति, स्थिति और अनुभाग विभक्ति
अनुभागविभक्ति (प्रदेशवि शीघ्राशीप और स्थित्यन्तिक)	अनुभाग विभक्ति (प्रदेशविभक्ति शीघ्रा- शीप और स्थित्यन्तिक)	अनुभागविभक्ति	प्रदेशविभक्ति शीघ्राशीप और स्थित्यन्तिक
बन्ध	बन्ध	प्रदेशविभक्ति शीघ्रा- शीप और स्थित्यन्तिक	बन्ध
सङ्गम	सङ्गम	बन्ध	सङ्गम

§ २. संपत्ति जड्वमहाहरियउवदृष्टचुणिसुत्तमन्सिदृणविहत्तीए परूयवं कम्मले

* 'विहत्ति द्विदि अणुभागे च नि' अणियोगद्वारे विहत्ती निमित्तं विषयव्यां । णामविहत्ती दृवणविहत्ती दच्चविहत्ती खेत्तविहत्ती क्त विहत्ती गणणविहत्ती मंठाणविहत्ती भावविहत्ती चेदि ।

§ ३. 'विहत्ति द्विदि अणुभागे च ति' एत्थ जो दृविद 'इदि' सद्दो जण पक्खे हिंतो एदं सद्दकलाव पल्लद्वावेदि तेणेसो सस्वपयंस्थो (तो) । तत्थ जो विहत्तिता तस्सं णिक्खेवो कीरंदे अणयगयत्थपरूवणादुवारेण पयदत्थग्गहणदृ । कते तस्स ति त्तिसदस्स अंतथां § णामादिभावपञ्जवसाणा । एतेष्वर्थेष्वेकस्मिन्नर्थे विभक्तिनिर्देशना

§ २. अब यतिवृषभ आचार्यके द्वारा कहे गये चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर विभक्ति कथन करते हैं—

* 'विहत्ती द्विदि-अणुभागे च' इस वाक्यमें आये हुए विभक्ति शब्दका निर्देश करना चाहिये । यथा—नामविभक्ति, स्थापनाविभक्ति द्रव्यविभक्ति, क्षेत्रविभक्ति, काल विभक्ति, गणनाविभक्ति, संस्थानविभक्ति, और भावविभक्ति ।

§ ३. यद्यपि 'ज्ञान, अर्थ और शब्द ये-समान नामचाले होते हैं' इस नियमके अनुसार 'विहत्ति द्विदि अणुभागे च' यह वाक्यसमुदाय तीनोंका वाचक हो सकता है फिर भी इस वाक्यमें जो 'इति' शब्द आया है उससे जाना जाता है कि प्रकृतमें यह शब्दसमुदाय प्रत्यय और अर्थका वाचक नहीं है किन्तु अपने स्वरूपमें प्रवृत्त है । तात्पर्य यह है कि यहाँ पर 'विहत्ति द्विदि अणुभागे च' इत्याकारक ज्ञान और इत्याकारक अर्थका ग्रहण न करके 'विहत्ति द्विदि अणुभागे च' इन शब्दोंका ही ग्रहण करना चाहिये ।

उस विभक्ति शब्दके अनेक अर्थ हैं । उनमेंसे अनवगत अर्थके कथन द्वारा प्रकृत अर्थका ज्ञान करानेके लिये उसका निक्षेप करते हैं ।

शंका—उस विभक्ति शब्दके वे अनेक अर्थ कौन कौन हैं ?

समाधान—ऊपर सूत्रमें जो नामसे लेकर भाव तक विभक्तिके भेद घतलाये हैं वे सब

(१) "णाम ठवणा ददिए खेत्ते काले तहेव भावे य । एसो उ विभत्तीए णिक्खेवो छव्विहो ।"—सू० श्रु० १, अ० ५, उ० १ । "णिक्खेवो विभत्तीए चउव्विहो दुविह होद दच्चम्मि । आगमनोआगमो नोआगमओ अ सो ति विहो ॥५५३॥ जाणगसरीरमविए तच्चइरित्ते य सो भवे दुविहो । जीवाणमजीवाण य जीवविभत्ती तहिं दुविहा ॥५५४॥ सिद्धाणमसिद्धाण य अज्जीवाण तु होद दुविहा उ । रूवीणमरूवीण य विभासियव्वा जहा सुत्ते ॥५५५॥ भावम्मि विभत्ती खलु नायव्वा छव्विहम्मि भावम्मि । अहिंगारो एत्थ पुण दच्चविभत्तीए अज्झयणे ॥५५६॥"—उत्त० पाई० ३६ अ० । (२) "कदीति एत्थ जो इदि सद्दो तस्स अट्ट हितावेव प्रकारादिव्यवच्छेदे विपर्यये । प्रादुर्भावे समाप्ती च 'इति'शब्द प्रकीर्तित ।' इति वचनात् । एतेष्वर्थेषु क्वायमिति शब्द प्रवर्तते ? स्वरूपावधारणे । तत कि मिद ? कृतिरित्यस्य शब्दस्य योज्यं सोऽपि कृति । अर्थाभिधानप्रत्ययास्तुल्यनामधेया इति न्यायात्तस्य ग्रहण सिद्धम् ।"—वेचना० घ० मा० प० ५५२ । अष्टस० प० २५१ ।

न्यस्तभ्या इति यावत् ।

§ ४ संपदि अदृष्ट विहृत्तीणमरुधपरुवमदृष्टुत्तरसुच ममदि—

* णोआगमयो दम्भविहृत्ती दुषिहा, कम्मविहृत्ती येव णोकम्म विहृत्ती येव ।

§ ५ आम-द्ववणाविहृत्तीपमरुयो पुषदे - सरुवपपरयो (तो) विहृत्तिसदो योम-विहृत्ती । सक्मावासक्मावद्ववणाओ द्ववणविहृत्ती । दम्भविहृत्ती दुषिहा आगम-णोआगम विहृत्तिमेएण । विहृत्तिपाहुड्ढआमओ मणुवजुत्तो आगमविहृत्ती । णोआगमविहृत्ती सिविहा, आणुअसरीरविहृत्ती मभियविहृत्ती तम्भदिरित्तविहृत्ती वेदि । विहृत्तिपाहुड्ढजा णयस्स मभिय-वहुमाण समुज्जादसरीरं आणुअसरीरविहृत्ती । मविस्सकाले विहृत्तिपाहुड्ढ आणओ मीवो मभियविहृत्ती । एदासिं विहृत्तीणमरुयो जइसइहाइरिएण किण्ण परुविदो ? सुगमत्तादो । णाणावरणादिअदृक्कम्मेषु मोहणीय पयडिमेएण मिण्णत्तादो कम्मविहृत्ती, विमत्ति दम्भके अर्थे इ ।

उनमेंस किसी एक अर्थमें विमत्ति शब्दका निक्षेप करना चाहिये यह उक्त कथनका वाच्य है ।

§ ४ अब आठों विमत्तियोंके अर्थका कथन करनेके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

* नोआगमकी अपेक्षा द्रव्यविमत्ति दो प्रकार की है कर्मनोआगमद्रव्यविमत्ति और नोकर्मनोआगमद्रव्यविमत्ति ।

§ ५ अब नामविमत्ति और स्थापनाविमत्तिपर अर्थ कहते हैं—ओ विमत्ति शब्द अपने स्वरूपमें प्रवृत्त है और बाह्यार्थकी अपेक्षा नहीं करता उसे नामविमत्ति कहते हैं । विमत्तिकी सञ्ज्ञा और असाधारणरूपसे स्थापना करना स्थापनाविमत्ति है । आगम और नोआगमके भेदसे द्रव्यविमत्ति दो प्रकारकी है । ओ विमत्तिविषयक शास्त्रको जानना है, परगु पसमें उपबोगरहित है उसे आगमद्रव्यविमत्ति कहते हैं । नोआगमद्रव्यविमत्ति तीन प्रकारकी है—ज्ञानवत्सरीरनोआगमद्रव्यविमत्ति, भाविनोआगमद्रव्यविमत्ति और तज्य तिरिक्तनोआगमद्रव्यविमत्ति । उनमेंस विमत्तिविषयक शास्त्रको जाननेपासे जीवके मविष्कत्तवैमान और अवीतकाडीन शरीरको ज्ञानवत्सरीरनोआगमद्रव्यविमत्ति कहते हैं । सो जीव आगमी काष्ठमें विमत्तिविषयक शास्त्रको जानना उसे भाविनोआगमद्रव्यविमत्ति कहते हैं ।

शुंका—इन विमत्तियोंका अर्थ पठित्पम थापार्थमें कबों नहीं क्या ?

समाधान—इनका अर्थ सुगम है इसलिये नहीं क्या ।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंमें ओ मोहणीय कर्म है वह कृत्ति प्रवृत्तिमेइकी अपेक्षा अन्य कर्मोंसे भिन्न है अतः यहां कर्मवत्प्रतिरिक्तनोआगमद्रव्यविमत्ति पहले उक्तका प्रवृत्त किया

(१) बीजाभीषुमवकारवधिरुवेक्यो अण्णावन्दि पयटो वेतसरो नामनेतः । —अ ओ पु १ ।
 'तत्र नामतरणो वर्यत्वे मोक्ष अण्णावन्नि वचदो । —अ अ पु १ ।

अद्वकम्माणि वा कम्मविहत्ती, अवसेसदब्बाणि णोकम्मविहत्ती । 'चेव'सदो समुच्चयत्थे दद्वब्बो ।

* कम्मविहत्ती थप्पा ।

§ ६. कुदो ? बहुवण्णणिज्जादो एदीए अहियारादो वा ।

§ ७. सपहि णोकम्मविहत्तीपरुवण्णट्टमुत्तरसुत्ताणि भणइ—

* तुल्लपदेसियं दब्बं तुल्लपदेसियस्स दब्बस्स अविहत्ती ।

§ ८. तुल्यः समानः प्रदेशः प्रदेशा वा यस्य द्रव्यस्य तत्तुल्यप्रदेश द्रव्य । तदन्यस्य तुल्यप्रदेशस्य द्रव्यस्य अविभक्तिर्भवति । विभजनं विभक्तिः, न विभक्तिरविभक्तिः प्रदेशैः समानमिति यावत् ।

* वेमादपदेसियस्स विहत्ती ।

§ ९. मीयतेऽनयेति मात्रा सख्या । विसदृशी मात्रा येषां ते विमात्रा विप्रदेशाः यस्मिन् द्रव्ये तद्विमात्रप्रदेशं द्रव्यं । तस्य विमात्रप्रदेशस्य द्रव्यस्य पूर्वमर्षितद्रव्यं

है । अथवा ज्ञानावरणादि आठों कर्मोको कर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यविभक्ति कहते हैं । तथा शेष द्रव्य नोकर्मतद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यविभक्ति कहलाते हैं । यहा चूर्णिसूत्रके अन्तमे 'चेव' शब्द आया है उसे समुच्चयार्थक जानना चाहिये ।

* पहले तद्व्यतिरिक्तनोआगमके दो भेदोंमें जो कर्मविभक्ति नामका पहला भेद कह आये हैं उसका कथन स्थगित करते हैं ।

§ ६. शका—यहा कर्मविभक्तिका कथन स्थगित क्यों किया है ।

समाधान—क्योंकि आगे चलकर कर्मविभक्तिका बहुत वर्णन करना है, अथवा कपायप्राभृतमें उसीका अधिकार है अतः यहा उसका कथन स्थगित किया है ।

§ ७ अब नोकर्मविभक्तिका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

* तुल्य प्रदेशवाला एक द्रव्य तुल्य प्रदेशवाले दूसरे द्रव्यके साथ अविभक्ति है ।

§ ८ तुल्य और समान ये दोनों शब्द समानार्थवाची हैं । अतः यह अर्थ हुआ कि जिस द्रव्यके एक या अनेक प्रदेश समान होते हैं वह द्रव्य तुल्य प्रदेशवाला कहा जाता है । वह तुल्य प्रदेशवाला द्रव्य अन्य तुल्य प्रदेशवाले द्रव्यके साथ अविभक्ति अर्थात् समान है । विभाग करनेको विभक्ति कहते हैं और विभक्तिके अभावको अविभक्ति कहते हैं । यहा जिसका अर्थ प्रदेशोंकी अपेक्षा समान होता है ।

* विवक्षित द्रव्य उससे असमान प्रदेशवाले द्रव्यके साथ विभक्ति है ।

§ ९ जिसके द्वारा माप अर्थात् गणना की जाती है उसे मात्रा अर्थात् सख्या कहते हैं । तथा 'वि' का अर्थ विसदृश है । अतः यह अर्थ हुआ कि जिस द्रव्यमें विमात्र अर्थात् विसदृश सख्यावाले प्रदेश पाये जाते हैं उसे विमात्रप्रदेशवाला द्रव्य कहते हैं ।

विभक्तिरसमान भवति प्रदेशापेक्षया न सत्त्वादिना; सर्वेषां तन सादृश्योपलम्भात् ।

* तदुभयं अवच्छेदकम् ।

§ १० विहति चि वा अविहति चि वा समाणासमाणद्वयावेच्छात् समप्यय
दम्बं विहति अविहति चि वा अवच्छेदकं, दोहि चम्मेदि अक्षमेण श्रुचस्त दम्बस्त पहाण
मावेय योजुमसकित्तमायत्तादो ।

* क्षेत्रविहती तुल्यपदेसोगाह तुल्यपदेमोगाहस्त अविहती ।

§ ११ क्षेत्रविहती चि एत्य 'बुद्धे' इति एदीए किरियाए सह संबधो क्वायम्बो;
अप्यहा अत्यपिष्णयामावादो । किं क्षेत्र ? आगास,

केसं अर्द्धं आगास तम्बिबरीय च इहदि गोलेसं ॥१॥" इति वपणादो ।

§ १२ तुल्याः प्रदेशाः यस्य तत्तुल्यप्रदेशे । कः प्रदेशः ? निर्माग आकाशा
वपवः । तुल्यप्रदेशे च तत् अवगाह च तुल्यप्रदेशावगाह । तमणस्त तुल्यपदेसो-
विभक्तिं द्रव्यं इत विमात्र प्रदेशवाके द्रव्यके साव विभक्ति अर्थात् असमान है । यहाँ यह
असमानता प्रदेशोंकी अपेक्षा आमना चाहिये सत्त्वादिककी अपेक्षा नहीं क्योंकि सत्त्वा-
दिककी अपेक्षा सब द्रव्योंमें समानता पाई जाती है ।

* विभक्ति द्रव्य और अविभक्ति द्रव्य इन दोनोंकी अपेक्षा अर्पित द्रव्य
अवच्छेदक है ।

§ १० विभक्तिरूप और अविभक्तिरूप अर्थात् समान और असमान द्रव्यकी
अपेक्षा यह अर्पित द्रव्य युगपत् विभक्ति और अविभक्तिकी विपक्षा होनेके कारण अवच्छेदक
है क्योंकि दोनों धर्मोंसे एक साथ समुक्त हुए द्रव्यका प्रमान रूपसे कथन नहीं किया
जा सकता है ।

* अब क्षेत्रविभक्ति निक्षेपका कथन करते हैं । तुल्य प्रदेशवाला सबगाह दूसरे
तुल्य प्रदेशवाले अवगाहके साथ अविभक्ति है ।

§ ११ सूत्रमें 'क्षेत्रविहती' इत्य पदका 'बुद्धे' इस क्रियाके साथ सम्बन्ध कर लेना
चाहिये क्योंकि इसके बिना अर्थका निर्णय नहीं हो सकता है ।

क्षेत्र-क्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान-आकाशको क्षेत्र कहते हैं क्योंकि "क्षेत्र नियमसे जाकारा है और
आकाशसे विपरीत तो क्षेत्र है ॥ १ ॥" ऐसा आगास कथन है ।

§ १२ जिसके प्रदेश समान होते हैं वह तुल्य प्रदेशवाला कहलता है ।

क्षेत्र-प्रदेश किसे कहते हैं ?

समाधान-जिसका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता ऐसे आकाशके अवयवको प्रदेश
कहते हैं ।

गाढस्स अविहत्ती समाणं । वेमादपदेसोगाढस्स विहत्ती । तदुभएण अवत्तव्वं । एदे वे वि वियप्पा सुत्तेण ण उत्ता, कथमेत्थ उच्चंति ? ण; देसामासियभावेण सुत्तेण चैव परुविदत्तादो ।

* कालविहत्ती तुल्लसमयं तुल्लसमयस्स अविहत्ती ।

§ १३. कालविहत्तिणिक्खेवस्स अत्थं परुवेमि त्ति जाणावण्ह कालविहत्तिणि-
देसो । तुल्याः समानाः समयाः तुल्यसमयाः, तेऽन्य सन्तीति तुल्यसमयिकं द्रव्यम् ।
तमणस्स तुल्लसमइयस्स दव्वस्स अविहत्ती समाणं । कुदो ? कालावेक्खाए । वेमाद-
समइय विहत्ती, तदुभएण अवत्तव्व ।

* गणणविहत्तीए एक्को एकस्स अविहत्ती ।

§ १४ एकस्स त्ति तइयाए छट्ठिणिदेसो दट्ठव्वो । एक्को संखाविसेसो एकेण
संखाविसेसेण सह अविहत्ती सरिसो । वेमादगणणाए विहत्ती । तदुभएण अवत्तव्वं ।

जो तुल्य प्रदेशवाला अवगाढ है वह तुल्य प्रदेशवाला अवगाढ कहलाता है । वह तुल्य प्रदेशवाले अवगाढके साथ अविभक्ति अर्थात् समान है । असमान प्रदेशवाले अवगाढके साथ विभक्ति है । तथा युगपत् दोनोंकी अपेक्षा अवक्तव्य है ।

शका-विभक्ति और अवक्तव्य ये दोनों विकल्प चूर्णिसूत्रमे नहीं कहे हैं फिर यहा किसलिये कहे हैं ?

समाधान-नहीं, क्योंकि उपर्युक्त दोनों विकल्प देशामर्पकभावसे सूत्रके द्वारा कहे गये हैं । अतः उनका कथन करनेमे कोई दोष नहीं है ।

* अब कालविभक्तिका अर्थ कहते हैं-तुल्य समयवाला द्रव्य तुल्य समयवाले द्रव्य की अपेक्षा अविभक्ति है ।

§ १३ 'अब काल विभक्ति निक्षेपका अर्थ कहते हैं' इस बातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'कालविहत्ती' पद दिया है । तुल्य अर्थात् समान समयोंको तुल्यसमय कहते हैं । वे तुल्य समय जिस द्रव्यके पाये जाते हैं वह द्रव्य तुल्यसमयवाला कहा जाता है । वह तुल्य समयवाला द्रव्य अन्य तुल्य समयवाले द्रव्यकी अपेक्षा अविभक्ति अर्थात्-समान है, क्योंकि यहा कालकी अपेक्षा समानता विवक्षित है । तथा वह विवक्षित द्रव्य असमान समयवाले द्रव्यकी अपेक्षा विभक्ति है और समान तथा असमान दोनों समयोंकी एक साथ प्रधानरूपसे विवक्षा करनेकी अपेक्षा अवक्तव्य है ।

* गणनाविभक्तिकी अपेक्षा एक संख्या एक संख्याका अविभक्ति है ।

§ १४ 'एकस्स' यह षष्ठीविभक्तिरूप निर्देश तृतीया विभक्तिके अर्थमें समझना चाहिये । एक संख्याविशेष एक संख्याविशेषके साथ अविभक्ति अर्थात् समान है । तथा वह विसदृश संख्यावाली गणनाके साथ विभक्ति अर्थात् असमान है और सदृश तथा विसदृश दोनों प्रकारकी गणनाओंकी युगपत् विवक्षा होने पर अवक्तव्य है ।

• सठाणविहती दुपिहा सठाणवो च, सठाणवियप्पवो च ।

§ १५ तस-चउरस-वहावीभि संठाणाणि । तस-चउरस-वहाण मेया संठाणवियप्पा । एव दुविहा येव सठाणविहती होदि अण्णस्स असमवादो ।

• सठाणवो वहु घहस्स अविहती ।

§ १६ सठाणवो 'विहती उच्चदि' चि पयसपभो कायव्वो; अण्णहा अत्थावग मणाणुववतीदो । अण्णद्ववट्टियवहु पक्खिदूण वहुस्स अण्णदन्वट्टियस्स अविहती अमेदो । पुवभूदव्व स्रेच-काल माघेसु वहुमाप्पाणं कयममेदो ? ण, दम्म-स्रेच काला प्पससंठाणाण मेदण सठाणाणं मेदविरोहादो । किं च, पडिहाममेएण पडिहासमाणस्स मेओ, ण च एत्थ सो उ वहुदे, तग्हा अमेयो इन्धेयव्वो । दोण्ड वहुण सरिसच येव उवलम्मइ प्येयचमिदि प्पासंक्कणिद्ध; समाप्येयत्ताण भेदाभावादो । दम्मादिणा विरुद्धाण वहुण समाणच तेहि येव अणिरुद्धाणमेयचमिदि सुयल्लोयप्पसिद्धमेय । तग्हा वहुस्स वहुएण अविहचि चि इन्धेयव्वं ।

• संस्थान और संस्थानविकल्पके भेदसे संस्थानविभक्ति दो प्रकारकी है ।

§ १८ त्रिकोण, चतुष्कोण और गोल आविक्रको संस्थान कहते हैं । तथा त्रिकोण, चतुष्कोण और गोल संस्थानोंके भेदोंको संस्थानविकल्प कहते हैं । इसप्रकार संस्थान-विभक्ति दो प्रकारकी ही होती है क्योंकि, और कोई भेद संभव नहीं है ।

• संस्थानकी अपेक्षा विभक्तिका कथन करते हैं—एक गोल द्रव्य हमारे गोल द्रव्यके साथ अविभक्ति है ।

§ १९ 'सठाणवो' इस पदके साथ 'विहती उच्चदि' इतने पदका सम्बन्ध कर देना चाहिये, क्योंकि उसके बिना अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है । अन्य द्रव्यमें स्थित गोलाईका अन्य द्रव्यमें स्थित गोलाईके साथ अविभक्ति व्यर्थ अर्थात् अमेव है ।

प्रश्न—भिन्न द्रव्य, भिन्न क्षेत्र भिन्न काळ और भिन्न मात्रमें स्थित संस्थानोंका अमेव कैसे हो सकता है ?

समाधान—क्योंकि द्रव्य क्षेत्र और काळ असंस्थानरूप हैं इसलिये इनके भेदसे संस्था नोंका भेद माननेमें विरोध आता है । घूमर, प्रतिभासके भेदसे प्रतिभासमान पदार्थमें भेद माना जाता है परन्तु वह यहाँ पाया नहीं जाता है, इसलिये अमेव स्वीकार करना चाहिये ।

परि कोई ऐसी आशय कर कि गोल दो द्रव्योंमें समानता ही पाई जाती है, एकरव नहीं सो उसका ऐसी आशय करना भी ठीक नहीं है क्योंकि समानता और एकतामें कोई भेद नहीं है । द्रव्यादिककी अपेक्षासे जब गोलाईयां द्रव्यादिगत विभक्ति होती है तब उनमें समानता मानी जाती है और जब उनमें द्रव्यादिकी विभक्ति नहीं रहती तो वे एक कहलाती हैं । इसप्रकार यह बात संकल छोकप्रसिद्ध है । इसलिये एक गोलाईकी दूसरी गोलाईके साथ अविभक्ति स्वीकार करना चाहिये ।

* वट्टं तंसस्स वा चउरंसस्स वा आयदपरिमंडलस्स वा विहत्ती ।

§ १७. कुदो ? सरिसत्ताभावादो । एव तंसं- [चउरंसा-] ईणं पि वत्तव्वं ।

* वियप्पेण वट्टसंठाणाणि असंखेज्जा लोगा ।

§ १८. एदेसिमसंखेज्जा[ज्ज]लोयत्तं आगमदो चेवावगम्मदे, ण जुत्तीदो; असंखे-

विशेषार्थ—यहा सस्थानके विषयमें दो शकाए उठाई गई हैं। पहली यह है कि सस्थान द्रव्य आदिकी तरह अलग तो पाये नहीं जाते। वे तो द्रव्यादिगत ही होते हैं और द्रव्यादि परस्पर भिन्न होते हैं। अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे भिन्न रहता है, एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्रसे भिन्न होता है, अतः इनके आश्रयसे रहनेवाले सस्थान एक कैसे हो सकते हैं? वीरसेन-स्वामीने इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि स्वयं द्रव्यादि सस्थान-रूप नहीं हैं। जो द्रव्य इस समय त्रिकोण है वह कालान्तरमें गोल हो जाता है। इसी प्रकार अन्यके सम्बन्धमें भी जानना। अतः द्रव्यादिकसे सस्थानका कथंचित् भेद सिद्ध हो जाता है। और जब सस्थान द्रव्यादिकसे भिन्न हैं तब द्रव्यादिकके भेदसे सस्थानमें भेद मानना युक्त नहीं। सस्थानोंमें यदि भेद होगा तो स्वगत भेदोंकी अपेक्षासे ही होगा अन्य द्रव्यादिकी अपेक्षासे नहीं। दूसरी शका यह है कि पृथक् दो द्रव्योंमें जो समान दो गोलाइया रहेंगी उन्हें समान कहना चाहिये एक नहीं। वीरसेनस्वामीने इस शकाका जो समाधान किया उसका भाव यह है कि उन समान दो गोलाईयोंमें जो हमें पार्थक्य दिखाई देता है वह द्रव्यादिभेदके कारण दिखाई देता है। यदि हम द्रव्यादिकी विवक्षा न करें तो वे गोलाईया एक हैं। हमने प्रातः एक गोलाई देखी और मध्याह्नमें भी उसे देखा। इस-प्रकार कालभेदसे उसमें भेद हो जाता है। पर यदि कालभेदकी विवक्षा न करें तो वह एक है। एक आदमीने किसी सुन्दर प्रतिमाको देखकर शिल्पीसे उसी आकारकी दूसरी प्रतिमा बनवाई। प्रतिमाके बन जाने पर बनवानेवाला उसे देखकर कहता है 'वही है' इसमें कोई सन्देह नहीं। यद्यपि यहा पहली प्रतिमासे यह दूसरी प्रतिमा भिन्न है पर आकार भेद न होनेसे आकारकी अपेक्षा वे एक कही जाती हैं। इस प्रकार द्रव्यादिकी अपेक्षा न रहने पर सस्थानोंमें अभेद सिद्ध हो जाता है।

* विवक्षित गोलाई त्रिकोण चतुष्कोण अथवा आयत परिमंडल संस्थानके साथ विभक्ति है ।

§ १७ चूकि गोलाईकी त्रिकोण आदि सस्थानोंके साथ सदृशता नहीं पाई जाती है इसलिये गोलाई त्रिकोण आदिके समान नहीं है। इसी प्रकार त्रिकोण चतुष्कोण आदिका भी कथन करना चाहिये।

* उत्तरोत्तर भेदोंकी अपेक्षा गोल आकार असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

§ १८ गोल आकार असंख्यात लोकप्रमाण हैं, यह बात आगमसे ही जानी जाती है

(१) तस्स (दु० ४) ईण-स०, तस्स पयाईण-अ० ।

अलोगमेतसखाए बहुमापमदि सुदणाणाणमशुबलमादो ।

✽ एष तस-चउरस-आयवपरिमंडलाण ।

§ १६ अहा बहुसंठाणस्स असखेअलोगमेतवियप्पा परूविदा, तथा तस-चउरस आयवपरिमण्डलाण पि विपप्पा असखेत्ता लोगमेथा पि वचम्भं ।

✽ सरिसवट्ट सरिसवट्टस्स अविहृती ।

§ २० 'सरिसवट्टस्स' इत्ति उप्पे समाणबहुम्सेपि मणिद् होदि । एसा अट्टीविहृती तइयाए अत्थे दट्टम्भा । तेण सरिसवट्ट सरिसवट्टेण सह अविहृती अमिण्णमिदि उच होदि । सरिसवट्टमसरिसवट्टेण सह विहृती सदुमएण अवत्तम्भ ।

✽ एष सत्थम्भ ।

§ २१ अहा वट्टस्स तिण्णि भगाएक्कस्स परूविदा तथा सेसअसखेअलोगमेतवट्ट संठाणाण पुष पुष तिण्णिहा परूवणा कायम्भा । सेसतंस-चउरस आयवपरिमंडल संठाणाणमसंखेअलोगमेत्ताणमेवं वेव परूवणा कायम्भा । एद क्खो उपलम्भदे ? 'एव युत्तिसे नही क्खोकि असक्यावलोक प्रमाण संख्यामे मतिद्वान और सुतद्वामकी प्रशुति नही पाई जाती है ।

✽ इसी प्रकार त्रिकोण, चतुष्कोण और आयतपरिमण्डलके विषयमें भी ध्यानना चाहिये ।

§ १२ जिस प्रकार गोल सस्थानके असंख्यात लोकप्रमाण विकल्प कहे हैं वही प्रकार त्रिकोण, चतुष्कोण और आयतपरिमण्डल आकारोंके भी विकल्प वसक्यात लोक प्रमाण होते हैं ऐसा कथन करना चाहिये ।

✽ सदृश गोल संस्थान दूसरे सदृश गोल संस्थानके साथ अविभक्ति है ।

§ २० सूत्रमें आए हुए 'सरिसवट्टस्स' इस पदका अर्थ समान गोलाई होता है । 'सरिसवट्टस्स' पदमें जो पन्ती विभक्ति आई है वह तृतीया विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये । इसलिये यह अर्थ हुआ कि समान गोल आकार दूसरे समान गोल आकारके साथ अविभक्ति जर्बादि अमित्त है । तथा समान गोल आकार असमान गोल आकारके साथ विभक्ति है । तथा यह समान गोल आकार दूसरे समान और असमान गोल आकारोंकी एक साथ विभक्ता करनेकी अपेक्षा अवच्छम्भ है ।

✽ इसी प्रकार सर्वत्र कथन करना चाहिये ।

§ २१ जिस प्रकार एक गोल आकारके तीन भंग कहे हैं वही प्रकार शेष वसक्यात लोक प्रमाण गोल आकारोंका अलग अलग तीन भेदरूपसे कथन करना चाहिये । तथा इनसे अविरिक्त जो असंख्यात लोकप्रमाण त्रिकोण चतुष्कोण और आयत परिमण्डल आकार हैं उनका भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये ।

श्लोक—'शेष वसक्यात लोकप्रमाण त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत परिमण्डल सस्थानोंके

सव्वत्थ' इत्ति सुत्तणिदेसादो । ण तं सेसवट्टसंठाणाणि चेव अस्सिदूण परूविदं अउत्त-
सेससंठाणवियप्पे अस्सिदूण परूविदत्तादो ।

* जा सा भावविहत्ती सा दुविहा, आगमदो य णोआगमदो य ।

§ २२. पुव्व णिद्विद्वभावविहत्तीसभालणद्व 'जा सा भावविहत्ति' त्ति परूविद । आगमो
सुदणाण, णोआगमो सुदणाणवदिरित्तभावो । एव भावविहत्ती दुविहा चेव होदि ।

* आगमदो उवज्जुत्तो पाहुडजाणओ ।

§ २३. पाहुडजाणओ जीवो उवज्जुत्तो पाहुडउवज्जोअगसहिओ आगमविहत्ती होदि ।

* णोआगमदो भावविहत्ती ओदइओ ओदइयस्स अविहत्ती ।

§ २४. ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ चेदि णोआगम-
भावो पंचविहो होदि; सव्वभावणमेदेसु चेव पंचसु भावेसु पवेसादो । तत्थ ओदइओ
भी तीन भग कहना चाहिये' यह अर्थ रुहासे उपलब्ध होता है ?

समाधान—'एव सव्वत्थ' इस निर्देशसे यह अर्थ उपलब्ध होता है । क्योंकि यह सूत्र
केवल गोल आकारके शेष भेदोंकी अपेक्षा ही नहीं कहा है किन्तु सस्थानके अनुक्त समस्त
विरूपोंकी अपेक्षासे भी कहा है ।

* ऊपर जो भाव विभक्ति कही है वह दो प्रकारकी है—आगमभावविभक्ति और
नोआगमभावविभक्ति ।

§ २२ पहले विभक्तिका निक्षेप करते समय जिस भावविभक्तिको कह आये हैं उसीका
निर्देश करनेके लिये चूर्णिसूत्रमें 'जा सा भावविहत्ती' यह पद दिया है । आगमका अर्थ
श्रुतज्ञान है और श्रुतज्ञानसे व्यतिरिक्त भावको नोआगम कहते हैं । इसप्रकार भावविभक्ति
दो प्रकारकी ही होती है ।

* जो जीव विभक्तिविषयक शास्त्रको जानता है और उसमें उपयोगसहित है
उसे आगमभावविभक्ति कहते हैं ।

§ २३ जो जीव विभक्तिका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रका ज्ञाता है और उसमें
उपयुक्त है अर्थात् उसका उपयोग भी विभक्तिविषयक शास्त्रमें लगा हुआ है । वह जीव
आगमभावविभक्ति कहलाता है ।

* नोआगमभावविभक्ति, यथा—एक औदयिक भाव दूसरे औदयिक भावके
साथ अविभक्ति है ।

§ २४ औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे नो-
आगमभाव पाच प्रकारका है, क्योंकि, समस्त भावोंका इन्हीं पाच भावोंमें अन्तर्भाव हो
जाता है । उनमेसे एक औदयिकभाव दूसरे औदयिक भावके साथ अविभक्ति है, क्योंकि

(१) "भावविभक्तिस्तु जीवाजीवभावभेदात् द्विधा । तत्र जीवभावविभक्ति औदयिकोपशमिकक्षायि-
कक्षायोपशमिकपारिणामिकसान्निपातिकभेदात् षट्प्रकारा । ×अजीवभावविभक्तिस्तु भूताना वणगन्धरस-
स्पर्शसस्थानपरिणाम । अमूर्तानां गतिस्थित्यवगाहवतनादिक इति ।" सू० श्रु० १ अ० ५ उ० १ टीका ।

ओदहण सह अविहती; ओदह्यभावेण भेदाभावादो ।

* ओदहओ उवसमिण भावेण विहती ।

‡ २५ कुदो? उदयज्जिणेण भावेण सह उवसमज्जिणदभावस्स समाणचविरोहादो ।

* तदुमएण अवत्तम्भ ।

‡ २६ ओदहओ भावो ओदह्य-उवसमिय भावेहि सण्णिकासिजमाणो अपत्तम्भो होवि, विहति अविहपिसहाणमकमेण मणणोवायामावादो ।

* एयं सेसेसु पि ।

‡ २७ सहा ओदह्यस्स उनसमिण भावेण सण्णिकासिजमाणस्स वे मगा परू विदा तथा सेसेसु खइय-क्खओवसमिय-पारिणामियभावेसु वि सण्णिकासिजमाणस्स वे वे मगा परूवेयन्ना । त जहा, ओदहयो खओवसमियस्स बिहती तदुमएण अवत्तम्भो । ओदहओ खइयस्स बिहती तदुमएण अवत्तम्भ । ओदहओ पारिणामियस्स बिहती तदुमएण अवत्तम्भ ।

* एय सम्भवत्थ ।

इन दोनों भावोंमें औद्दयिकरूपसे कोई भेद नहीं पाया जाता है ।

* औद्दयिकभाव औपशमिकभावके साथ विभक्ति है ।

‡ २५ श्रुति—औद्दयिक भाव औपशमिक भावके साथ विभक्ति क्यों है ?

समाधान—क्योंकि उदयजन्य भावके साथ उपसमजन्य भावकी समानता माननेमें विरोध आता है, इसलिये औद्दयिकभाव औपशमिक भावके साथ विभक्ति है ?

* औद्दयिक और औपशमिक इन दोनोंकी एक साथ विवक्षा करनेसे औद्दयिक भाव अवत्तम्भ है ।

‡ २६ औद्दयिक और औपशमिक भावोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त हुआ औद्दयिक भाव अवत्तम्भ है, क्योंकि, विभक्ति और अविभक्ति इन दोनोंके एक साथ कबन करनेका कोई उपाय नहीं पाया जाता है ।

* इसी प्रकार श्रेय भावोंमें भी जानना चाहिये ।

‡ २७ भिन्नप्रकार औपशमिक भावके सम्बन्धसे औद्दयिक भावके दो भंग कई हैं वहीप्रकार धायिक, धायोपशमिक और पारिणामिकभावोंके सम्बन्धसे भी औद्दयिक भावके दो दो भंग करना चाहिये । वे इसप्रकार हैं—औद्दयिकभाव धायोपशमिक भावके साथ विभक्ति है तथा औद्दयिक और धायोपशमिक इन दोनोंकी युगपत् विवक्षा होनेसे अवत्तम्भ है । औद्दयिक भाव धायिक भावके साथ विभक्ति है और औद्दयिक तथा धायिक इन दोनोंकी युगपत् विवक्षाकी अपेक्षा अवत्तम्भ है । औद्दयिक पारिणामिक भावके साथ विभक्ति है और औद्दयिक तथा पारिणामिक इन दोनों भावोंकी युगपत् विवक्षाकी अपेक्षा अवत्तम्भ है ।

* इसीप्रकार सर्वत्र जानना ।

§ २८. जहा ओदह्यस्स भावस्स सग-पर-संजोगेण तिण्णि भंगा परूविदा तथा उवसमिय-खओवसमिय-खइय-पारिणामियाणं भावाणं पुध पुध तिण्णि भंगा परूवेयन्वा ।

* २ ।

§ २९. जइवसहाइरिएण एसो दोण्हमंको किमट्टमेत्थ दृविदो ? सगहियट्ठिय-अत्थस्स जाणावणट्ठं । सो अत्थो अक्खरेहि किण्ण परूविदो ? वित्तिसुत्तस्स अत्थे भण्णमाणे णिण्णामो गथो होदि त्ति भएण ण परूविदो । तं जहा, ण ताव तारिसो गंथो वित्तिसुत्तं सुत्तस्सेव विवरणाए संखित्तसदरयणाए संगहियसुत्तासेसत्थाए वित्तिसुत्तववएसादो । ण टीका; वित्तिसुत्तविवरणाए टीकाववएसादो । ण पंजिया; वित्तिसुत्तविसमपयभंजियाए पंजियववएसादो । ण पद्धई वि, सुत्तवित्तिविवरणाए पद्धईववएसादो । तदो णिण्णामत्तं गंथस्स मा होह(हि) दि त्ति अक्खरेहि ण कहिदो ।

§ ३०. को सो हिययट्ठियत्थो ? उच्चदे, दन्व-खेत्त-काल-भाव-संठाणविहत्तीसु जे

§ २८ जिसप्रकार औदयिक भावके स्व और परके सयोगसे तीन भंग कहे हैं उसीप्रकार औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक भावोंके भी अलग अलग तीन तीन भंग कहना चाहिये । अर्थात् प्रत्येकके तीन तीन भंग होते हैं ।

* २

§ २९ शंका—यतिवृषभाचार्यने यहा पर यह दोका अक किसलिये रखा है ?

समाधान—अपने हृदयमे स्थित अर्थका ज्ञान करानेके लिये उन्होंने यहा दोका अंक रखा है ।

शंका—वह अर्थ अक्षरोंके द्वारा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—वृत्तिसूत्रके अर्थका कथन करने पर ग्रन्थ विना नामवाला हो जाता इस भयसे यतिवृषभ आचार्यने अपने हृदयमे स्थित अर्थका अक्षरों द्वारा कथन नहीं किया । इसका खुलासा इस प्रकार है—वृत्तिसूत्रके अर्थको कहनेवाला ग्रन्थ वृत्तिसूत्र तो हो नहीं सकता क्योंकि जो सूत्रका ही व्याख्यान करता है, किन्तु जिसकी शब्दरचना सक्षिप्त है और जिसमें सूत्रके समस्त अर्थको संग्रहीत कर लिया गया है, उसे वृत्तिसूत्र कहते हैं । उक्त ग्रन्थ टीका भी नहीं हो सकता है, क्योंकि वृत्तिसूत्रोंके विशद व्याख्यानको टीका कहते हैं । उक्त ग्रन्थ पजिका भी नहीं हो सकता, क्योंकि वृत्तिसूत्रोंके विषम पदोंको स्पष्ट करनेवाले विवरणको पजिका कहते हैं । तथा उक्त ग्रन्थ पद्धति भी नहीं है, क्योंकि सूत्र और वृत्ति इन दोनोंका जो विवरण है उसकी पद्धति सज्ञा है । अत यह ग्रन्थ विना नामका न हो जाय, इसलिये यतिवृषभ आचार्यने अपने हृदयमें स्थित अर्थका अक्षरोंद्वारा कथन न करके दोका अक रखकर उसका सूचनमात्र कर दिया है ।

§ ३०. शंका—वह हृदयमें स्थित अर्थ क्या है ।

समाधान—द्रव्यविभक्ति, क्षेत्रविभक्ति, कालविभक्ति, भावविभक्ति और संस्थानविभक्ति

तिष्णि तिष्णि मंगा कहिदा तस्य दोण्ह दोण्ह वेव मंगार्ण गहणं कायम्ब, अबिमत्तीय
 प्य गहण । कुदो ! विहत्तिमिक्खवे कीरमाप्पे विहत्तिविरुद्धस्यस्स गहणाणुववत्तीदो ।
 अदि एव, तो अबत्तम्बमगो वि ण वेत्तम्बो, तस्य विहत्तीए अत्याभाषादो । ण; विहत्तीए
 विणा दुससोगामावेण अबत्तम्बमापाणुववत्तीदो । विहत्ती-अविहत्तीम् संजोगो क्वं
 विहत्ती होदि ! अ, क्वचि मेदो अरियं चि अबत्तम्बस्स वि विहत्तिमाणुववत्तमादो ।

इनमेंसे प्रत्येकके जो तीन तीन भंग कहे हैं उनमेंसे दो दो भंगोंका ही ग्रहण करना चाहिये
 अबिमत्तिका ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि बिमत्तिका निक्षेप करते समय बिमत्तिसे
 विरुद्ध अबिमत्तिका ग्रहण नहीं हो सकता है ।

शुद्धा—यदि पसा है तो अबत्तम्ब मगका भी ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि,
 अबत्तम्ब मगमें भी बिमत्तिका अर्थ नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, बिमत्तिके बिना बिमत्ति और अबिमत्ति इन दोनोंका संयोग
 नहीं होता और उसके न होनेसे अबत्तम्ब भंग भी नहीं बनता । इससे प्रतीत होता है कि
 अबत्तम्बमें बिमत्तिका अर्थ पाया जाता है, और इसलिये बिमत्तिमें अबत्तम्ब मगका भी
 ग्रहण करना चाहिये ।

शुद्धा—बिमत्ति और अबिमत्तिका संयोगरूप अबत्तम्ब भंग बिमत्ति कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अबत्तम्बका बिमत्तिसे क्वचित् भेद है, सर्वथा नहीं इस-
 लिये अबत्तम्बमें भी बिमत्तिरूप धर्म पाया जाता है ।

विशेषार्थ—बिमत्तिका निक्षेप नाम स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, गणना, संस्वान और
 भावकी अपेक्षा आठ प्रकारसे किया है । इनमेंसे द्रव्यबिमत्तिके नोकर्यभेदके और क्षेत्र काल,
 गणना संस्वान और भाव इन छहोंमेंसे प्रत्येकके बिमत्ति, अबिमत्ति और अबत्तम्ब ये
 तीन तीन भंग बताये हैं । सया यह भी बताया है कि प्रकृतमें बिमत्ति और अबत्तम्ब
 इन दोन ही ग्रहण किया है । यहां अबिमत्तिका ग्रहण क्यों नहीं हो सकता, इसका
 यह कारण बतलाया है कि यहां बिमत्तिका प्रकरण है अतः अबिमत्तिको यहां कोई अर्थ
 प्राप्त नहीं । पर अबत्तम्ब बिमत्तिसाक्षेप होनेसे वसन्त ग्रहण हो जाता है । यही सब है
 कि आगे सभी अनुयोगाद्यमें जहां बिमत्ति पाई जाती है, और जहां बिमत्तिक साथ अबि-
 मत्ति पाई जाती है उनका ग्रहण किया है । पर जहां केवल अबिमत्ति ही पाई जाती है
 ऐसे केवलज्ञान केवलदर्शन आदि मार्गीजास्वामीका विचार नहीं किया है । पूर्विसूत्रकारने
 इस अभिप्रायका उल्लेख अक्षरोंद्वारा न करके ' २ ' के अक्षरद्वारा किया है । इस पर ही
 सेनस्वामीकर कहना है कि यदि पूर्विसूत्रकार इस अभिप्रायको अक्षरों द्वारा प्रकट करते तो
 यह मूल ग्रन्थपर पूर्विसूत्र न होकर पूर्विसूत्रक अथवा स्पष्टीकरणमात्र होता और इस
 प्रकार ग्रन्थ बिना नामका हो जाता । यही सब है कि पूर्विसूत्रकारने वक्त अभिप्राय जंफ

§ ३१. एदासु विहत्तीसु बहुवियप्पासु एदीण् विहत्तीण् पथोजणं ति जाणावणहं उत्तरसुत्तमागद ।

* जा सा द्रव्यविहत्तीण् कम्मविहत्ती तीण् पयदं ।

§ ३२. 'जा सा' इति वयणेण द्रव्यविहत्ती मभालिदा । सा द्रुविहा, कम्मविहत्ती णो कम्मविहत्ती चेदि । तत्थ द्रव्यविहत्ती त्रि जा कम्मविहत्ती तीण् कम्मविहत्तीण् पयद ।

* तत्थ सुत्तगाहा ।

§ ३३. जइवसहाइरिओ अप्पणो भणिट्ठण्णाग्मअत्थाहियारेसु चुण्णिसुत्तं भणतो सगमकप्पियअत्थाहियारं गाहासुत्तम्मि मदंमणट्ठ 'तत्थ सुत्तगाहा उच्चदि' ति भणदि ।

द्वारा सूचित किया है । द्रव्य विभक्तिमे प्रदेश भेदसे द्रव्य भेद, क्षेत्र विभक्ति मे क्षेत्रकी न्यूनाधिकतासे द्रव्यभेद, कालविभक्तिमे समयादिककी न्यूनाधिकतासे द्रव्यभेद, गणना विभक्तिमे सख्याभेद, सस्थानविभक्तिमे आकारभेद और भावविभक्तिमें औदयिक आदि भावभेद लिये गये हैं । अविभक्तिमे इन सबकी समानता ली गई है और एक साथ विभक्ति और अविभक्ति दोनोंकी अपेक्षा अवक्तव्यताका ग्रहण किया है । ये सब द्रव्यविभक्ति आदि कर्मविभक्तिके नो कर्म हैं अत इनका यहा इमी रूपसे कथन किया है । कर्मविभक्तिका आगे विस्तारसे कथन किया ही है इसलिए यहा उसके विषयमे कुछ भी नहीं लिखा है । फिर भी प्रकृतमे कर्मविभक्तिसे ज्ञानावरणाणि आठ कर्मोंके एक भेदरूप मोहनीयकर्मका ग्रहण करना चाहिये । मोहनीय कर्मके साथ विभक्ति शब्दके जोडनेकी सार्थकता इमीमे है । यद्यपि इस विषयमे आगे और भी अनेक समाधान पाये जाते हैं पर हमारी समझसे उनमे यह समाधान मुख्य है ।

§ ३१ अब अनेक प्रकारकी इन विभक्तियोंमेसे प्रकृतमे अमुक विभक्तिसे प्रयोजन है, यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं ।

* द्रव्यविभक्तिके दो भेदोंमें जो कर्मविभक्ति कह आये हैं प्रकृत कपायप्राभृतमे उससे प्रयोजन है ।

§ ३२ चूर्णिसूत्रमे आये हुए 'जा सा' इस वचनसे द्रव्यविभक्तिका निर्देश किया है । वह द्रव्यविभक्ति कर्मविभक्ति और नोकर्मविभक्तिके भेदसे दो प्रकारकी है । उनमेसे जो कर्मविभक्ति नामकी द्रव्यविभक्ति है प्रकृत कपायप्राभृतमें उससे प्रयोजन है ।

* अब इस विषयमे सूत्रगाथा देते हैं ।

§ ३३ अपने द्वारा स्वयं कहे गये पन्द्रह अर्थाधिकारोंमे चूर्णिसूत्रोंका कथन करते हुए यतिवृषभ आचार्य अपने द्वारा माने गये अर्थाधिकारोंको गाथासूत्रमें दिखानेके लिये 'यहा सूत्रगाथा देते हैं' इस प्रकार कहते हैं ।

(४) पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति तह द्विदीए अणुभागे ।

उक्कस्समणुक्कस्स म्हीणमम्हीण च द्विदिय वा ॥२२॥

* पदच्छेदो । त जहा—‘पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति’ ति एसा पयडि विहत्ती ।

‡ ३४ एत्थ पद चउत्थिह, अरुपपद पमाणपद मच्चिमपद बवस्थापद वेदि । तरथ वेदि अक्खरहि अत्योवल्दी होदि तमरुपपद । वाक्यमर्षपदमित्यनर्षान्तरम् । अहक्खरपिप्पण्णं पमाणपद । सोल्लसयचोचीसकोडि-तयासीदिलक्ख अहहपरिसय अट्ठासीदिअक्खरेहि मच्चिमपद । अपिएण वक्कसमूहेण अहियारो समप्पदि त बवत्यापदं सुवतमिच्चत वा । एदेसु पदसु कस्स पदस्स बोच्छेदो ! बवत्यापदस अहियारस क्वस्स । ‘पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति’ ति एत्थण ‘इदि’ सरो एदस्स सरूअपयत्थ(च) यत्तं आणावेदि तेण एसा पयडिविहत्ती पढमो अरुपाहियारो ति सिद्धो ।

* तह द्विदी वेदि एसा द्विदिविहत्ती २ ।

‡ ३५ द्विदिविहत्ती णाम एसो विदियो अरुपाहियारो । सेसं सुगम ।

मोहनीय प्रकृतिविभक्ति, मोदनीय स्थितिविभक्ति, मोदनीय अनुभामविभक्ति, प्रदेशविपयक उत्कृष्टानुत्कृष्ट, शीणाश्रीण और स्थित्यन्तिक ये छह अर्थाधिकार हैं ।

* अब इस गाथाका पदच्छेद करते हैं । वह इस प्रकार है—‘पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति’ इस पदस प्रकृतिविभक्ति सूचित की है ।

‡ ३४ पद चार प्रकार है—अर्षपद, प्रमाणपद, मध्यमपद और व्यवस्थापद । इनमेंसे कितने अक्षरोंसे अर्षका ज्ञान होता है उसे अर्षपद कहते हैं । वाक्य और अर्ष पद ये एकावर्षाची हैं । अर्षात् अर्षपदसं ज्ञानय वाक्यका है । आठ अक्षरोंसे नियम हुआ एक प्रमाणपद होता है । सोल्लसौ चौतीस करोड़ तेरासी छाल सात हजार आठसी अठासी अक्षरोंका एक मध्यमपद होता है । कितने वाक्योंके समूहस एक अधिकार समाप्त होता है उसे व्यवस्थापद कहते हैं । अथवा, सुषण्ठ और मिगण्ठ पदको व्यवस्थापद कहते हैं ।

संक्षेप—यहां हम परोंमेंसे किस पदका वृषकरण किया है ?

समाधान—अधिकारका सूचक जो ‘पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति’ यह व्यवस्थापद है, उसका ही वहां वृषकरण किया है ।

‘पयडीए मोहणिज्जा विहत्ति ति’ इममें थावा हुआ इति’ अर्थ इस पदके स्वरूपका ज्ञान करावा है । अब यह प्रकृतिविभक्ति नामका पदका अर्थाधिकार है यह सिद्ध होता है ।

* गाथामें आय हुए ‘तह द्विदी वेदि’ इस पदस स्थितिविभक्तिका सूचन होता है ।

‡ ३५ वह स्थितिविभक्ति नामका दूसरा अर्थाधिकार है । इस कथन सुगम है ।

* अणुभागे त्ति अणुभागविहत्ती ३ ।

§ ३६. जेण गाहाए अणुभागेत्ति अवयवेण अणुभागो परूविदो तेण अणुभाग-विहत्ती णाम तदियो अत्थाहियारो ।

* उक्कस्समणुक्कस्सं ति पदेसविहत्ती ४ ।

§ ३७. 'उक्कस्समणुक्कस्स' ति एदेण पदेण पदेसविहत्ती णाम चउत्थो अत्थाहियारो परूविदो ।

* झीणमझीणं ति ५ ।

§ ३८. झीणमझीण ति एदेण गाहावयवेण [झीणा-] झीणं णाम पंचमो अत्था-हियारो सूइदो ।

* ट्टिदियं वा त्ति ६ ।

§ ३९. एदेण वि ट्टिदियत्तिओ णाम छट्ठो अत्थाहियारो सूइदो । एवं जइवसहा-इरियाहिप्पाएण एदीण गाहाए छ अत्थाहियारा सूइदा । गुणहरभडारयस्स अहिप्पाएण पुण दो चेव अत्थाहियारा परूविदा त्ति घेत्तव्वं ।

❁ तत्थ पयडिविहत्तिं वण्णइस्सामो ।

* गाथामें आये हुए 'अणुभागे' पदसे अनुभागविभक्तिका सूचन होता है ।

§ ३६ चूकि गाथाके 'अणुभागे' इस पद द्वारा अनुभागका कथन किया है, इसलिये अनुभागविभक्ति नामका तीसरा अर्थाधिकार समझना चाहिये ।

* 'उक्कस्समणुक्कस्स' इस पदसे प्रदेशविभक्तिका सूचन होता है ।

§ ३७ गाथामें आये हुए 'उक्कस्समणुक्कस्स' इस पदसे प्रदेशविभक्ति नामके चौथे अर्थाधिकारका कथन किया है ।

* झीणाझीण नामका पांचवां अर्थाधिकार है ।

§ ३८ गाथाके 'झीणमझीण' इस पदसे झीणाझीण नामका पांचवा अर्थाधिकार सूचित किया है ।

* स्थित्यन्तिक नामका छठा अर्थाधिकार है ।

§ ३९ गाथामें आये हुए 'ट्टिदियं वा' इस पदसे स्थित्यन्तिक नामका छठा अर्था-धिकार सूचित किया है । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके अभिप्रायानुसार इस गाथाके द्वारा छह अर्थाधिकार सूचित किये गये हैं । किन्तु गुणधर भट्टारकके अभिप्रायानुसार इस गाथाके द्वारा दो ही अर्थाधिकार कहे गये हैं ऐसा समझना चाहिये ।

विशेषार्थ—यतिवृषभ आचार्य भी कसायपाहुडके मूल अधिकार पन्द्रह ही मानते हैं । इसका विशेष खुलासा हमने प्रथम भागके पृष्ठ १९७ पर किया है ।

* उन छह अधिकारोंमेंसे पहले प्रकृतिविभक्ति नामके अर्थाधिकारका वर्णन करते हैं ।

§ ४० गाहासुचम्मि सम्पुद्धिद्वसु अहियारेसु पयडिबिहत्ति मणिस्सामो । एदेण गुणहराहरियमणिदपम्मात्मजत्वाहियारे मौत्तुण सगसंक्रप्पियजत्वाहियाराणां सुण्णिसुत्तं मणामि पि उच होदि । ण ष प्पंचं मभंतो जइयसहो गुणहराहरिपयडिकूलो; अत्थाहियाराणमब्बियमदरिसणदुबारेण गुणहराहरियसुहविणिग्गयजत्वाहियाराण वेह परूबयघावो ।

§ ४० गाथासूत्रमें कहे गये छह अर्वाधिकारोंमेंसे पहले प्रकृतिविमक्ति नामक अर्वाधिकारका कथन करते हैं । इससे यतिवृषभ आचार्यने यह सूचित किया है कि मैं गुणधर आचार्यके द्वारा कहे गये पन्द्रह अर्वाधिकारोंको छोड़कर स्वयं अपने द्वारा माने गये अर्वाधिकारोंके अनुसार शूर्पिसूत्र कहाँ हैं । यदि कहा जाय कि अपने द्वारा माने गये अर्वाधिकारोंके अनुसार शूर्पिसूत्रोंका कथन करनेसे यतिवृषभ आचार्य गुणधर आचार्यके प्रति बूझ हैं सो ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि यतिवृषभ आचार्यने अर्वाधिकारोंका अनियम दिखलाते हुए गुणधर आचार्यके मुखसे निकले हुए अर्वाधिकारोंका ही प्रतिपादन किया है ।

विशेषार्थ— पगरीय मोहणिस्या' इत्यादि गाथामें स्वयं गुणधर आचार्यने प्रकृति विमक्ति स्थितिविमक्ति अनुमागविमक्ति प्रदेशविमक्ति, क्षीणाक्षीण और स्मित्यन्तिक इन छह अर्वाधिकारोंका निर्देश किया है । इससे इतना तो मासूम पद ही जाता है कि इन्होंने इन छहोंका कथन इस प्रकार उनके अभिप्रायानुसार उमका समावेश हो या तीन अर्वाधिकारोंमें हो जाता है । यद्यपि यतिवृषभ आचार्यने उक्त छहों अर्वाधिकारोंका स्वतन्त्ररूपसे कथन किया है, जिससे अर्वाधिकारोंकी संख्याका ही भंग हो जाता है फिर भी उनका ऐसा करना गुणधर आचार्यके कथनके प्रतिबूझ नहीं है क्योंकि स्वयं गुणधर आचार्यने बिन विषयोंका संकेत किया है उन्हींका यतिवृषभ आचार्यने स्वतन्त्र अर्वाधिकारों द्वारा विस्तारसे कथन किया है । तात्पर्य यह है कि गुणधर आचार्यने 'पगरीय मोहणिस्या' इत्यादि गाथामें प्रकृतिविमक्ति स्थितिविमक्ति और अनुमागविमक्ति इन तीनोंको मिलाकर एक अर्वाधिकार सूचित किया है । तथा प्रदेशविमक्ति, क्षीणाक्षीण और स्मित्यन्तिक इन तीनोंको मिलाकर दूसरा अर्वाधिकार सूचित किया है, पर यतिवृषभ आचार्यने इन प्रकृति विमक्ति आदिका कथन प्रकृष्ट प्रकृष्ट किया है जो उनके 'उत्थ पयडिबिहत्ति मणिस्सामो' इत्यादि शूर्पिसूत्रोंसे जाना जाता है । इस प्रकार यद्यपि यतिवृषभ आचार्यने दो अर्वाधिकारोंको उक्त अर्वाधिकारोंमें बंट दिया है फिर भी उन्होंने उन्हीं विषयोंका कथन किया है जिनका समावेश उक्त दो अर्वाधिकारोंमें किया गया है । इस प्रकार यद्यपि अर्वाधिकारोंकी संख्याका भंग हो जाता है फिर भी उनका वह कथन गुणधर आचार्य द्वारा कहे गये विषयके प्रतिबूझ नहीं है ।

* 'पयडिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिविहत्ती च उत्तरपयडिविहत्ती च ।

§ ४१०. एत्थ 'च' सद्दो किमट्ठं कदो ? समुच्चयट्ठं । जंदि एवं, तो एक्केणेव सरह विदिय 'च' सद्दो अवणेयव्वो फलाभावादो; ण, दच्च-पञ्जवट्ठियणयट्ठियजीवाणमणुग्गहट्ठ मूलपयडिविहत्ती उत्तरपयडी च, उत्तरपयडिविहत्ती मूलपयडी च इदि भण्णदे^१ [पुणरुत्तदोसाभावा]दो । मूलपयडी णाम एक्का चेव पञ्जवट्ठियणयावलंबणाए मूलपयडित्ताणुववत्तीदो । तदो तत्थ णत्थि विहात्तिववएसो; मेदेण विणा तदणुववत्तीदो त्ति ? सच्चमेदं जदि अट्ठण्हं कम्माणमेयत्तं विवक्खियं, किं तु मोहणीयपयडीए एयत्तमेत्थ विवक्खियं तेण मूलपयडीए विहात्तिभावो जुज्जदे । मोहणीयं चेव विवक्खियमिदि कुदो णव्वदे^३ ? [पयडीए मोहणि]ज्जा त्ति एदम्हादो महाहियारादो । ण च पयडीण-

* प्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी है—मूलप्रकृतिविभक्ति और उत्तर प्रकृतिविभक्ति ।

§ ४१ शंका—चूर्णिसूत्रमे 'च' शब्द किस लिये दिया है ?

समाधान—समुच्चयरूप अर्थके प्रकट करनेके लिये 'च' शब्द दिया है ।

शंका—यदि ऐसा है तो एक 'च' शब्दसे ही काम चल जाता है, अत दूसरा 'च' शब्द अलग कर देना चाहिये, क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है ?

समाधान—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयमे स्थित जीवोंके उपकारके लिये चूर्णिसूत्रमे दो 'च' शब्द दिये गये हैं । जिससे यह अर्थ निकलता है कि द्रव्यार्थिक नयमे स्थित जीवोंकी अपेक्षा प्रकृतिविभक्तिके मूल प्रकृतिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिविभक्ति ये दो भेद हैं और पर्यायार्थिक नयमें स्थित जीवोंकी अपेक्षा उत्तरप्रकृतिविभक्ति और मूलप्रकृतिविभक्ति ये दो भेद हैं अतः दो 'च' शब्द देनेमें पुनरुक्त दोष नहीं है ।

शंका—मूल प्रकृति एक ही है, और पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेपर मूल-प्रकृति बन नहीं सकती है । अत उसके साथ विभक्ति शब्दका व्यवहार करना ठीक नहीं है, क्योंकि भेदके बिना विभक्ति शब्दका व्यवहार नहीं बन सकता ?

समाधान—यदि यहा मूलप्रकृति पदसे आठों कर्मोंकी एक रूपसे विवक्षा की गई होती तो यह कहना ठीक होता किन्तु यहा मूलप्रकृतिके एक भेद मोहनीयकी विवक्षा है अतः मूलप्रकृतिमें विभक्तिपना बन जाता है ।

शंका—यहा मोहनीय कर्म ही विवक्षित है यह कैसे जाना ?

समाधान—'पयडीए मोहणिज्जा' इस महाधिकारसे जाना है कि यहा मोहनीय कर्म

(१) एणेणेव 'च' सद्देण समुच्चयट्ठावगमादो विदिय 'च' सद्दो अणत्थओ त्ति णावणेदु सक्कज्जदे, अप्पिदेगणय पडुच्च पच्चणाए कीरमाणाए मूलपयडिट्ठिविहत्ती उत्तरपयडिट्ठिविहत्ती च उत्तरपयडिट्ठिविहत्ती मूलपयडिट्ठिविहत्ती चेदि एग 'च' सद्दुच्चारण मोत्तूण विदियसद्दुच्चारणाए अभावेण पुणरुत्तदोसाभावादो ।—जयध० प्र० का० प० ९१८ । (२)—दे (श्रु० ८)—दो—स०।—दो सुगमत्तादो—अ० (३)—व्वदे (श्रु० ७) ज्जा त्ति—स० ।—व्वदे मोहणीए विवज्जा त्ति—अ० ।

मेगो खेव सहाबो ति आसकरणिज; सम्मच-चरिच विणासणसहाबं मोहणिजं, भाज पच्छापणसहाबं व्याणावरणिजं, दसमविणासण-सहाब दंसणावरणिज, सुइ-दुक्खुप्पा पणसहाबं बेयणीवं, मवधारणसहाबमाठअ, सरीर-गइ जाइ-बण्णादिणिप्पायणसहाबं धामकम्मं, उच-नीचगोतेसुप्पायणसहाबं मोदं, विग्गकरअम्मि बाबदमंतराइयं; एवम इअ पि कम्माम पयडिबिहसिदंसणादो । बिहसिसदो कम्मं कम्मदअम्मि बइदे । ण, आहियरअम्मि उप्पाइयस्स बिहसिसइस्स उरय बपये विरोहामावादो ।

ही विवक्षित है ।

जाठों प्रकृतिबोध एक ही स्वभाव है ऐसी भी आसक्त नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्व और चारित्र्य विनाश करना मोहनीयका स्वभाव है, ज्ञानका आच्छादन करना ज्ञानावरणका स्वभाव है, दर्शनका विनाश करना दर्शनावरणका स्वभाव है, सुख और दुःखको उत्पन्न करना बेवनीयका स्वभाव है मनुष्य आवि पर्यायमें रोक रक्षक आमु कर्मका स्वभाव है शरीर गति, आठि और वर्जोदिकको उत्पन्न करना नामकर्मका स्वभाव है, उंच और नीच गोत्रमें उत्पन्न कराना गोत्रकर्मका स्वभाव है और बिन्न करनेमें व्यापार करना अन्तरायकर्मका स्वभाव है । इस प्रकार जाठों कर्मोंमें स्वभावभेद देखा जाता है ।

श्रुतकर्म—माववाची विमत्ति शब्द इत्यवाची कर्मके अर्थमें कैसे रहता है ?

समाधान—अधिकरण सामनेमें व्युत्पादित विमत्ति शब्द द्रव्यकर्ममें रहता है, ऐसा मान देनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

विशेषार्थ—अपर अह शब्द उठाई गई है कि विमत्ति शब्द द्रव्य कर्ममें कैसे रहता है । इस शब्दका यह आशय प्रतीत होता है कि 'विमज्जन विमत्ति' इस प्रकार निकटि करनेसे बि बपसर्ग पूर्वक भव् बहसुसे भावमें 'विमिं चित्त' इस सूत्रसे चित्त प्रत्यय करते पर विमत्ति शब्द बनता है । जिसका अर्थ विभाग करना होता है । पर प्रकृतमें द्रव्यकर्म मोहनीयके स्थानमें या उसके साथ विमत्ति शब्द आता है जो बपयुक्त नहीं है, क्योंकि मोहनीय द्रव्यकर्म शब्द इत्यवाची है अतः उसके स्थानमें या उसके साथ माववाची विमत्ति शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता । इस प्रकार कीरसेनस्वामीने इस प्रकार समाधान किया है कि प्रकृतमें जो विमत्ति शब्द आता है वह भावमें व्युत्पादित विमत्ति शब्द न होकर अधिकरणमें व्युत्पादित विमत्ति शब्द है । अतः द्रव्यकर्मके स्थानमें या विशेषणविशेष्यभावरूपसे द्रव्य कर्मके साथ विमत्ति शब्दके प्रयोग करनेमें कोई आपत्ति नहीं है । अब 'कर्मव्यधिकरणे च' इस सूत्रसे 'स्त्रिं चो चित्त' इस सूत्रमें 'अधिकरणे' इस पदकी अनुवृत्ति कर केते हैं तब अधिकरणमें भी विमत्ति शब्द बन जाता है । ऐसी दृष्टिकोणमें विमत्ति शब्दकी निकटि 'विमज्जोऽन्वामिति विमत्तिः' यह होगी । जिसका

* मूलपयडिविहत्तीए इमाणि अट्ट अणियोगद्वाराणि । तं जहा—
सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं भागाभागे
अप्पावहुगेत्ति ।

§ ४२. उच्चारणाइरिएहि मूलपयडिविहत्तीए सत्तारस अत्थाहियारा जइवसहा-
इरिएण अट्टेव अत्थाहियारा परूविदा । कथमेदेसिं दोणहं वक्खाणाणं ण विरोहो ?
ण, पज्जवट्ठिय-दव्वट्ठियणयावलवणाए विरोहाभावादो । कथमट्टहि सेसाहियारा संग-
हिया ? वुच्चदे । तं जहा, समुक्कित्तणा ताव पुध ण वत्तव्वा, संतेण विणा अट्टण्हमहि-
याराणमत्थित्तविरोहादो । सादिय-अणादिय-धुव-अधुवअत्थाहियारा वि पुध ण वत्तव्वा;
कालंतरेहि चेव तदत्थावगमादो । परिमाणं पि ण वत्तव्व; अप्पावहुगेत्ति तत्थ तस्स
अंतव्वाभावादो । भावाहियारो वि ण वत्तव्वो; अणुत्तसिद्धीदो, मोहोदयविरहियाणं जीवाणं
मूलपयडिसंताणुववत्तीदो । खेत्त-पोसणाणि च ण वत्तव्वाणि; उवदेसेण विणा तदव-
अर्थे 'जिसमें विभाग किया जाता है उसे विभक्ति कहते हैं' यह होता है ।

* मूलप्रकृतिविभक्तिके विषयमें आठ अनुयोगद्वार हैं । वे इस प्रकार हैं—एक
जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय,
काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व ।

§ ४२. शंका—उच्चारणाचार्यने मूल प्रकृतिविभक्तिके विषयमें सत्रह अर्थाधिकार कहे
हैं और यतिवृषभाचार्यने आठ ही अर्थाधिकार कहे हैं, इसलिये इन दोनों व्याख्यानोंमें
विरोध क्यों नहीं आता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पर्यायार्थिकनय और द्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन करनेपर
उक्त दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—आठ अधिकारोंके द्वारा शेष नौ अधिकारोंका समग्र कैसे हो जाता है ?

समाधान—इस शंकाका समाधान इस प्रकार है—समुत्कीर्तना नामक अधिकारको तो
पृथक् नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, सत्त्वके विना आठ अधिकारोंका अस्तित्व माननेमें
विरोध आता है । सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चार अर्थाधिकार मी पृथक् नहीं
कहने चाहिये, क्योंकि, काल और अन्तर अर्थाधिकारके द्वारा ही सादि आदि अधिकारोंके
विषयका ज्ञान हो जाता है । परिमाण अधिकार मी पृथक् नहीं कहना चाहिये, क्योंकि
परिमाण अधिकारका अल्पबहुत्व अधिकारमें अन्तर्भाव हो जाता है । भावाधिकार भी
पृथक् नहीं कहना चाहिये, क्योंकि, विना कहे ही उसका अस्तित्व जाना जाता है, क्योंकि
जो जीव मोहनीय कर्मके उदयसे रहित हैं उनके प्रायः मूल प्रकृति मोहनीयका सत्त्व नहीं पाया
जाता है । क्षेत्र और स्पर्शन अधिकार भी नहीं कहने चाहिये, क्योंकि, उपदेशके विना ही
क्षेत्र और (दर्शनका ज्ञान हो जाता है । अथवा अल्पबहुत्वके साधन करनेके लिये द्रव्यका

गमादो, अप्याबहुगसाहणद्वय-परिमाणे मण्डमाणे तदपगमादो वा । तन्मा विरोहो गत्येति सिद्धं ।

✽ एवेसु अणिओगद्वारेसु पस्सुवेसु मूलपयडिविहती समत्ता होदि ।

§ ४३ जइवसहाइरिएण एदेसिमत्थाहियारामं व विवरमं कइ; सुगमत्तादो ।

§ ४४ संपदि मव्वुद्धिज्जणापुग्गाहइसुचारणाइरियसुहविभिग्गयमूलपयडिविवरणं मणिम्सामो । तं जहा, समुक्खित्ता सादियविहती अणादियविहती पुबविहती अनुबविहती एगजीवेण सामिच क्खलो अतरं णाम्पजीवेहि भगविचओ भागामाग परिमाणं खेत्त पोसण क्खलो अंतर भावो अप्याबहुग वेदि ।

§ ४५ समुक्खित्तापुग्गमेव इविहो णिदेसो ओपेण आवेसेण य । तस्य ओपेण मोहणीयस्स अरिय विहत्तिया अविहत्तिया च । एव मज्जुस्स-मज्जुसपज्जत्त-मज्जुस्सिन्धी- [पंचिदिय] पंचिदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पचमन्न०-पंचवधि०-अयस्योगि-ओरात्तिय०-ओरात्तियमिस्स०-कम्मइय०-अवगदवेद-अकसाइ-आभिणिबोहिय०-सुद०-ओहि०-मणपज्जत्तयाणि संजद-अहाक्खाद०-वक्खसुइंसण अपक्खसुइंसण ओहिइंसण-सुक्खेस्सा भवसिद्धिय-सम्मादिट्ठि-सुइय०-सण्णि-आहारि-ज्जणाहारएत्ति वचम्ब । णेरइयादि ज्ञाप परिमाण क्खने पर क्षेत्र और स्पर्शनका ज्ञान हो जाता है, इसछिमे दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है, यह सिद्ध हो जाता है ।

✽ इन आठों अनुयोगशरोंका कथन कर चुकने पर मूलप्रकृतिविभक्ति नामका पहला अर्धाधिकार समाप्त हो जाता है ॥

§ ४३ सुगम होनेसे पतिव्यवहारार्थने इन आठों अर्धाधिकारोंका विवरण म्ही किया है ।

§ ४४ जब मन्वुद्धिजनोंका उपकार करनेके छिये उच्चारणाचार्यके मुखसे निकले हुए मूलप्रकृतिके विवरणको कहते हैं । वह इसप्रकार है—समुत्कीर्तमा, सादिविमक्ति, अनादिविमक्ति, मुबविमक्ति, अनुबविमक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, अन्न और अन्तर तथा नानानीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, अन्न, अन्तर, मात्र और अस्पन्दवृत्त ।

§ ४५ इनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आवेक्षनिर्देश । उनमेंसे ओपनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयविभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव हैं । इसीप्रकार मनुष्य सामान्य मनुष्यपक्षांत, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय सामान्य पंचेन्द्रिय पक्षांत अन्न अन्नपक्षांत पांचों मनोयोगी, पांचों बचनयोगी कामयोगी, औद्धारिक अययोगी, औद्धारिक मित्रअययोगी, कामजअययोगी अपगतवेधी, अकपायी मतिज्ञानी, सुतज्ञानी, अवधिज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी संसत्, पचासवातससत् चक्षुदर्शनी अचक्षुदर्शनी अवाधिदर्शनी, सुक्खेदपावसे, मन्व सन्वग्दष्टि, क्षायिकसन्वग्दष्टि, संज्ञी आवहारक और अमाहारक

असण्णि त्ति सेससव्वमग्गणासु मोहणीयस्स अत्थि विहत्तिया अविहत्तिया णत्थि । एवं समुक्कित्तणा समत्ता ।

§ ४६ सादिय-अणादिय-ध्रुव-अद्भुवाणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहणीयविहत्ती किं सादिया किमणादिया किं ध्रुवा किमद्भुवा । अणादिया ध्रुवा अद्भुवा च । सादियपदं णत्थि; खविदमोहणीयसमुब्भवाभावादे । एवमचक्खु-दसण-भवसिद्धिया० । णवरि भवसिद्धिया० अणादिया० (भवसिद्धियाणं) ध्रुवपदं णत्थि । णिञ्चण्णिगोदेसु मोहणीयस्स ध्रुवत्तमत्थि त्ति णासंकण्णिजं; तेसिं पि मोहवि-जीवोंके कहना चाहिये । अथोत् इन् जीवोंके मोहनीय कर्म पाया जाता है और नहीं भी पाया जाता है । नरकगतिसे लेकर असंज्ञी तक शेष समस्त मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्ति वाले जीव हैं, मोहनीय विभक्तिसे रहित जीव नहीं हैं ।

विशेषार्थ—समुत्कीर्तना शब्दका अर्थ उच्चारण है । इसमें विवक्षित धर्मकी अपेक्षा सामान्य और विशेषरूपसे जीवोंका अस्तित्व और नास्तित्व या सामान्य और विशेषरूपसे जीवोंमें विवक्षित धर्मका अस्तित्व और नास्तित्व बतलाया जाता है । ऊपर मोहनीय कर्मकी अपेक्षा कथन किया है । सामान्यसे मोहनीय कर्मसे युक्त और उससे रहित जीव हैं यह निर्देश किया है, क्योंकि उपशान्तमोह गुणस्थान तक सभी जीव मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं और क्षीणकषाय गुणस्थानसे लेकर सभी जीव उससे रहित होते हैं । तथा जिन मार्गणास्थानोंमें ये दोनों प्रकारकी अवस्थाएँ सभव हैं उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है । ऐसी मार्गणाओंके नाम ऊपर ही गिना दिये हैं । और जिन नरकगति आदि मार्गणाओंमें क्षीणकषाय आदि गुणस्थान नहीं पाये जाते उनमें मोहनीयका अस्तित्व ही कहा है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ४६. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है ? मोहनीय विभक्ति अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । मोहनीय कर्ममें ओघकी अपेक्षा सादि पद नहीं है क्योंकि जिसने मोहनीय कर्मका समूल नाश कर दिया है ऐसे क्षीणकषाय जीवके फिरसे मोहनीय कर्मकी उत्पत्ति नहीं होती है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके ध्रुवपद नहीं है । यदि कहा जाय कि जो भव्य जीव नित्यनिगोदिया हैं उनमें ध्रुवपद देखा जाता है सो ऐसी आशका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनके भी मोहनीयके नाश करनेकी शक्ति पाई जाती है । यदि उनके मोहनीयके नाश करनेकी शक्ति न मानी जाय तो वे भव्य न होकर अभव्योंके समान हो जायगे ।

(१) 'ध्रुवमद्भुवणाईय अट्टण्हं मूलपगईण' मूलपगतीण सतकम्म तिविह—अणादियध्रुवमध्रुव । कह ? ध्रुवसतकम्मत्तादेवादी णत्थि तम्हा अणादिय, ध्रुवाध्रुवा पुब्बुत्ता ॥१॥ कर्मप्र० सत्ता०, ऋणि० पत्र २७ ।

शास्यमचित्संमवादो । असमवे च न ते मन्वा, अमन्वसमावत्तादो । मदिप्रव्याणि
सुदयन्वाणि असजद मिच्छादिही० मोहविहरी किं सादिया किमणादिया किं घुवा
किमद्रुवा ? सादि-अणादि घुव-अद्रुवा । अमन्व० मोहविहरी किं सादिया किमणादिया
किं घुवा किमद्रुवा ? अणादिया, घुवा च । अपगतवेद० मोहविहरी किं सादिया
किमणादिया किं घुवा किमद्रुवा ? सादिया अद्रुवा च । मोहविहरी सादिया घुवा
च । पदमकसाय-सम्माहृष्टि-स्वर्य०-अणाहारपति वत्तन्व । णवरि, अणाहा० अद्रु
वपद पि अरिप । सेमसन्वमगगणार्ण मोहविहरी वहासमव अविहरी च सादि अद्रुवा ।

मत्पञ्चानी, घुवाञ्चानी, असवत और मिष्याहृष्टि जीवोंके मोहनीयविमक्ति क्या सादि
है, क्या अनादि है, क्या शुच है, क्या अशुच है ? उक्त मार्गजात्रोंमें मोहविमक्ति सादि
अनादि, शुच और अशुच चारों रूप है । अमन्व जीवोंके मोहविमक्ति क्या सादि है, क्या
अनादि है, क्या शुच है क्या अशुच है ? अमन्व जीवोंके मोहविमक्ति अनादि
और शुच है ।

अपगतवेदी जीवोंके मोहविमक्ति क्या सादि है क्या अनादि है, क्या शुच है क्या
अशुच है ? अपगतवेदी जीवोंके मोहविमक्ति सादि और अशुच है । तथा अपगतवेदी
जीवोंके मोह-अविमक्ति अर्थात् मोहनीय का अभाव सादि और शुच है । इसी प्रकार
अकपायी सम्बगृष्टि, क्षायिक सम्बगृष्टि और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी
विशेषता है कि अनाहारक जीवोंके मोहनीय अविमक्ति का अशुच पद भी है । श्रेय सभी
मार्गजात्रोंमें मोहविमक्ति तथा कपासमव मोह-अविमक्ति सादि और अशुच हैं ।

विशेषार्थ-गोमदृशर कर्मचन्द्रमें जो 'सादी जर्षपवने' इत्यादि गाथा आई है उसमें
वृषकी अपेक्षा सादित्व आदिक बिचार किया है, सत्त्वकी अपेक्षा नहीं । फिर भी वहाँ सादि
आदिके बिषयमें वृषकी अपेक्षा जो व्यवस्था दी है वह वहाँ सत्त्वकी अपेक्षासे जानना ।
इनमेंसे सामान्यकी अपेक्षा मोहनीय कर्ममें अनादि, शुच और अशुच ये तीन पद ही प्रकृत
होते हैं सादिपद नहीं । यही व्यवस्था अचक्षुदर्सी जीवोंके जानना चाहिये । मन्वोंके
शुच पदको छोड़कर मोहनीय कर्मके दो पद ही पाये जाते हैं । ये दोनों मार्गजात्रोंमें मोह
नीयकी सत्त्वमुक्ति उक्त निरन्तर रहती है इसलिये इनमें सादिपद संभव नहीं । मन्वोंके
शुचपद नहीं होनेका कारण स्पष्ट है । मत्पञ्चानी, घुवाञ्चानी, असवत और मिष्याहृष्टि ये
चार मार्गजात्र अनादि और सादि दोनों प्रकारकी हैं । जिन जीवोंने कभी भी मिष्याहृ
शुपस्वानको नहीं छोड़ा है और न छोड़नेकी संभावना है उनको अपेक्षा अनादि है और
श्रेय जीवोंकी अपेक्षा सादि है । तथा इन मार्गजात्रोंमें मन्व और अमन्व दोनों प्रकारके
जीव पाये जाते हैं, अतः इनमें मोहनीयके सादि आदि चारों पद संभव हैं । अमन्व

एवं सादि-अणादि-धुव-अधुवानुगमो समत्तो ।

§ ४७. सामित्तानुगमेण दुविहो णिहेमो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोहणीयविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स संतकम्मियस्सम । अविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स णट्ठमोहमंतकम्मस्स । एवमप्पणो पदानं णेदवं जाव अणाहारएत्ति । एवं मामिचं समत्तं ।

जीवोंके अनादि और ध्रुव पद ही होता है यह स्पष्ट ही है । अपगतवेदी, अकपायी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, और अनाहारक आदि मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें मोहनीय कर्मका सद्भाव और मोहनीय कर्मका अभाव दोनों पाये जाते हैं । तथा ये मार्गणाएँ सादि हैं, अतः इनमें मोहनीयके सद्भावकी अपेक्षा सादि और अध्रुव ये दो पद ही होते हैं । पर इन मार्गणाओंमें स्थित जिन जीवोंके मोहनीय कर्मका अभाव हो गया है उनके पुनः मोहनीय कर्म नहीं पाया जाता । अतः इन मार्गणाओंमें मोहनीय कर्मके अभावकी अपेक्षा सादि और ध्रुव ये दो पद होते हैं । यहा ध्रुवपद स्थायित्वकी अपेक्षासे कहा है । इतनी विशेषता है कि समुद्रागत सयोगिकेवलियोंके अनाहारकत्व सादि और सान्त है, अतः अनाहारक जीवोंके मोहनीयकी अविभक्तिका अध्रुव पद भी होता है । इनसे अतिरिक्त शेष मार्गणाओंमें नरकगति आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें मोहविभक्ति ही है और यथाख्यातमयत आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें मोहविभक्ति और मोह अविभक्ति दोनों हैं । इनमें पूर्वोक्त व्यवस्थाके अनुसार सादि आदि पद जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार सादि अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४७ स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयविभक्ति किसके है ? जिसके मोहनीय कर्मका सत्त्व पाया जाता है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयविभक्ति है । मोहनीय-अविभक्ति किसके है ? जिसके मोहनीय कर्मके सत्त्वका नाश हो गया है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीय-अविभक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जहा दोनों या एक जितने पद सभव हों उनका कथन कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—गुणस्थानोंकी अपेक्षा मोहनीय कर्म ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है और आगे उसका असत्त्व है । अतः ओघसे मोहनीय विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले दोनों प्रकारके जीव बन जाते हैं । जब आदेशकी अपेक्षा विचार करते हैं तो वहा भी जिस मार्गणामें ग्यारहवेंसे नीचेके ही गुणस्थान सभव हैं वहा मोहविभक्ति ही होती है । और जिस मार्गणामें ग्यारहवेंसे आगेके गुणस्थान भी सभव हैं वहा मोहविभक्ति और मोह-अविभक्ति दोनों होती हैं ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगमद्वारा समाप्त हुआ ।

§ ४० कालाशुगमेण दुविहो णिसेसो ओपेण आदेसेण य । तस्य ओपेण मोह
णीयविहती केवचिरं कालादो होदि ? अणादिया अपज्जबसिदा, अणादियां सपज्जबसिदा ।
अविहती केवचिरं कालादो होदि ? सादिया अपज्जबसिदा । एवमथक्खुदसभाणं ।
अवरि अविहती जहणुक्खसेण अंतोमुहुच ।

§ ४१ आदेसेण णिरयगईए षेरइएसु मोहणीयविहती केवचिरं कालादो होदि ?
जहणुपेज दसे-बस्स-सहस्साणि; उक्खसेण सेतीसं सागरोबमाणि । पढमाए विदियाए
तदियाए चठरबीए पंचमीए छठीए सप्तमीए पुढबीए षेरइएसु मोहविहती केवचिरं
कालादो होदि ? जहणुपेण दस-वास-महस्साणि एग तिण्णि-सप्त-दस-सचारस-वावीस
सागरोबमाणि सादिरेपाणि । उक्खसेण सग-सग-ट्टिदि (दी) ।

§ ४० काळानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
जनमेसे ओषकी अपेक्षा मोहनीयविमल्लिका कितना काळ है ? अनादि-अनन्त और अनादि-
साम्त काळ है । मोह अविमल्लिका कितना काळ है ? सादि-अनन्त काळ है । इसी प्रकार अथ
अहुरसनी जीवोंके मोहविमल्लि और मोहअविमल्लिक काळ कइना चाहिये । किन्तु इतनी
बिसेषता है कि इनके मोह अविमल्लिक अथम्य और उक्ख काळ अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अथम्य जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयका काळ अनादि-अनन्त है । तथा इतर
जीवोंके मोहनीयका काळ अनादि-साम्त है । अथअहुरसनी बारहवें गुणस्वान तक सभी
संसारि जीवोंके निरन्तर रहता है इसलिये अथअहुरसनी जीवोंके मोहनीयका काळ अनादि-
अनन्त और अनादि-साम्त दोनों प्रकारका बन जाता है । मोह-अविमल्लिक काळ सादि-
अनन्त इसलिये है कि इसका आदि तो है, क्योंकि जब कोई जीव पाछवें गुणस्वानको
प्राप्त होता है तभी इसका प्रारम्भ होता है । पर मोह-अविमल्लिक अन्त कभी नहीं होता,
क्योंकि जिसने मोहनीयका पूरी तरहसे अभाव कर दिया है उसके पुनः मोहनीय कर्मकी
उत्पत्ति नहीं होती । पर अथअहुरसनी बारहवें गुणस्वान तक ही होता है और पाछवें
गुणस्वानका काळ अन्तर्मुहूर्त है । अतः अथअहुरसनी जीवोंके मोह-अविमल्लिका अथम्य
और उक्ख काळ अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ४१ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकवासिमें मारकिवोमं मोहनीय विमल्लिक कितना
काळ है ? एक जीवकी अपेक्षा अथम्य काळ इस हजार वर्ष और उक्ख काळ तेडीस सागर
है । तथा पहली वूसरी तीसरी चौथी पांचवी, छठी और सातवी वृथिवीमें रहनेबले
मारकिवोमें मोहनीय विमल्लिक कितना काळ है ? अथम्य काळ साठों मरवोंमें क्रमसे इस
हजार वर्ष, साधिक एक सागर, साधिक तीन सागर साधिक मात सागर साधिक दस सागर,
साधिक सत्रह सागर और साधिक बाइस सागर है । तथा उक्ख काळ अथन अथम

§ ५०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुदाभवग्रहणं उक्खसेण अणंतकालमसंखेजा पोग्गलपरियट्ठा । पंचिदियतिरिक्ख-

नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—नरकमें मोहनीयकर्मका एक जीवकी अपेक्षा कहा कितने काल तक सत्त्व पाया जाता है इसका विचार किया गया है । सामान्यसे नरकमें एक जीवकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है, अतः सामान्यसे एक जीवकी अपेक्षा मोहनीयके सत्त्वका जघन्य काल दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर होता है । पर प्रत्येक पृथिवीकी अपेक्षा विचार करने पर जहा जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति है वहा मोहनीयकर्मका सत्त्व भी एक जीवकी अपेक्षा उतने काल तक समझना चाहिये । अर्थात् इतने काल तक वह जीव विवक्षित नरकमें रहता है उसके बाद दूसरी गतिमें चला जाता है, इसलिये वहा उस जीवकी अपेक्षा मोहनीय कर्मका सत्त्व उतने कालतक ही बढ़ा गया है । आगे जहा भी एक जीवकी अपेक्षा काल घतलाया है वहा भी यही अभिप्राय समझना चाहिये ।

§ ५०. तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जिसका प्रमाण असख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंमें जितने समय हों उतना है ।

विशेषार्थ—एक जीवके तिर्यचगतिमें रहनेका जघन्य काल खुदाभवग्रहण है और उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन है जो अनन्त कालके बराबर होता है । जब कोई एक मनुष्य जीव लब्धपर्याप्तक तिर्यचमें सबसे जघन्य आयु खुदाभवग्रहणको लेकर उत्पन्न होता है और आयुके समाप्त हो जाने पर पुनः मनुष्यगतिमें चला जाता है तब तिर्यचगतिमें रहनेका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्राप्त होता है । तथा जब कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर तिर्यचगतिमें ही निरन्तर परिभ्रमण करता रहता है तो उस जीवके तिर्यचगतिमें रहनेका काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंसे अधिक नहीं होता है, इसके बाद वह नियमसे अन्य गतिमें चला जाता है, इसलिये एक जीवके तिर्यच गतिमें निरन्तर रहने का उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्राप्त होता है । इसी विवक्षासे तिर्यचगतिमें एक जीवकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्व क्रमसे खुदाभवग्रहण और असख्यात पुद्गलपरिवर्तनरूप कहा है । तिर्यचगतिमें ऐसे भी अनन्तानन्त जीव हैं जिन्होंने अभी तक दूसरी पर्याय प्राप्त नहीं की है और न आगे करेंगे । यद्यपि उनकी अपेक्षा तिर्यचगतिमें मोहनीयका काल अनादि-अनन्त होता है । पर वह काल यहा विवक्षित नहीं है, क्योंकि काल प्ररूपणमें सादि-सान्त कालकी अपेक्षा विचार किया है ।

पंचिदियतिरिक्खपञ्च पंचिदियतिरिक्खजीमिणीसु मोहविहरी केवचिरं कालादो होदि ।
 ग्रहणेण सुहामवग्रहणं अंतोसुहुच अतोसुहुच । उक्खसेय तिग्णि पत्तिदोवमाम्भि

पंचेन्द्र तिर्यच पंचेन्द्र तिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्र तिर्यच धोनिमतियोंमें मोह
 नीय विमत्तिका कितमा काळ है ? अथय काळ क्रमशः सुहामवग्रहण, अन्तमुहुर्त और
 अन्तमुहुर्त है तथा उत्कृष्ट काळ प्रत्येकका पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पश्य है ।

विश्लेषार्थ—पंचेन्द्र तिर्यचोंमें पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकारके तिचचोंका ग्रहण हो
 जाता है अतएव इनकी अपेक्षा अथय काळ सुहामवग्रहण कहा है । पर पर्याप्त जीवोंकी
 अथय आनु अन्तमुहुर्तसे कम नहीं है, अतः पंचेन्द्रतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्र तिर्यच
 धोनिमतियोंकी अपेक्षा अथय काळ अन्तमुहुर्त कहा है । तथा उक्त तीनों प्रकारके जीवोंकी
 पर्याप्तको प्राप्त होकर प्रत्येकका तिचचगतिमें रहनेका उत्कृष्ट काळ पूर्वकोटिपृथक्त्व
 अधिक तीन पश्य है । अर्थात् पंचेन्द्र तिर्यचोंमें जीव पर्याप्तसे पूर्वकोटि अधिक तीन
 पश्य काळ तक रहता है, पंचेन्द्र तिर्यच पर्याप्तोंमें संताळीस पूर्वकोटि अधिक तीन
 पश्य काळ तक रहता है और धोनिमती पंचेन्द्र तिर्यचोंमें पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन
 पश्य काळ तक रहता है । पर्याप्तोंमें एक जीव तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और वहां सड़ी
 स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटि काळ तक परिभ्रमण
 करके अगस्तर इसीप्रकार अंसही स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ
 पूर्वकोटि काळ तक परिभ्रमण करके पश्चात् अष्टमपर्याप्त पंचेन्द्र तिर्यचमें उत्पन्न हुआ ।
 वहां अन्तमुहुर्त काळ तक रह कर पश्चात् अंसही पर्याप्त होकर वहां स्त्रीवेद पुरुषवेद और
 नपुंसकवेदके साथ क्रमशः आठ आठ पूर्वकोटि काळ तक परिभ्रमण करके पुनः सड़ी स्त्रीवेदी
 और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटि और पुरुषवेदियोंमें साठ पूर्वकोटि काळ तक रह
 कर तीन पश्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें रहकर देव हो जाता है । इस प्रकार
 पंचेन्द्रतिर्यचोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पश्य काळ प्राप्त हो जाता है । पंचेन्द्र
 पर्याप्त तिर्यचोंमें काळ करते समय ऊपर धीचमें जो अष्टमपर्याप्त मन्त्र ग्रहण कराया गया
 है उस नहीं कराना चाहिये, क्योंकि, पर्याप्तका साथ अष्टमपर्याप्तका विरोध है ।
 इसलिये सड़ी और अंसही जीवोंमें तीनों वेदोंके साथ जो दो दो बार उत्पन्न कराया है
 ऐसा न करके एक बार ही उत्पन्न कराना चाहिये और अन्तके वेदमें आठ पूर्वकोटिके
 रक्षामें साठ पूर्वकोटि काळ तक परिभ्रमणका विधान करना चाहिये । इसप्रकार करनेसे
 पर्याप्त पंचेन्द्र तिर्यचोंका काळ पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पश्य होता है । धोनिमती
 पर्याप्त तिर्यचोंमें अंसहीकी अपेक्षा आठ और सड़ीकी अपेक्षा साठ पूर्वकोटियोंका ही विधान
 करना चाहिये, क्योंकि, इनके स्त्रीवेद अतिरिक्त दूसरा वन नहीं पाया जाता है । इसप्रकार
 धोनिमती पर्याप्त तिर्यचोंमें परिभ्रमणका काळ पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पश्य प्राप्त होता

पुव्वकोटिपुधत्तेणब्भहियाणि । पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्त० मोहविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण खुदाभवग्गहणं उक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं । एव मणुस-पंचिदियं-तस-अपज्जत्ताण वत्तव्वं ।

§ ५१. मणुसगदीए मणुम-मणुमपज्जत्त-मणुसिणीसु मोहविहत्तीए पंचिदिय-तिरिक्खतिगभगो । अविहत्ती केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण अतोमुहुत्तं । उक्खस्सेण पुव्व-कोटी देसुणा ।

है । इसी अपेक्षासे उक्त तीनों प्रकारके जीवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है । यहा पृथक्त्वका अर्थ तीनसे ऊपर और नौसे नीचेकी सख्या न लेकर विपुल लेना चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तोंमें मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त और त्रस लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके भी मोहनीय कर्मका जघन्य काल खुदाभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उक्त गतिके जीव लब्ध्यपर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा कमसे कम खुदाभवग्रहण काल तक विवक्षितपर्यायमें रहकर अन्य गतिको चले जाते हैं । तथा अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर अन्य गतिको चले जाते हैं । क्योंकि, विवक्षित पर्यायमें लगातार आगमोक्त सख्यात खुदाभवोंके ग्रहण करने पर भी उनके कालका जोड अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता है । इसी अपेक्षासे यहा मोहनीयका जघन्य काल खुदाभवग्रहण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ५१. मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके मोहनीय विभक्तिका काल क्रमशः पचेन्द्रिय सामान्य तिर्यंच, पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंच और योनिमती पचेन्द्रिय तिर्यंच इन तीनोंके अनुसार कहे गये कालके समान जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य समझना चाहिये । उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंके मोहनीय अविभक्तिका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—मनुष्यगतिके जीव सही ही होते हैं, इसलिये तिर्यंचोंमें असंक्षियोंकी अपेक्षा जो पूर्वकोटिया कही हैं वे यहा नहीं कहना चाहिये, अत उन्हें अलग कर देनेपर सामान्य मनुष्योंमें सैतालीम पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, पर्याप्त मनुष्योंमें तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और मनुष्यनियोंमें सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । तथा जघन्यकाल उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका खुदाभवग्रहण व अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर और उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमेंसे किसी एकमें उपज्न होकर तथा उक्त-

॥ १२ देवगण्य देवेसु मोहविहारी षोडशमंगो । णवरि भवणवासियादि
 साव सम्बद्धसिद्धि चि सग सग नहण्णुक्कसु द्विदी भणियक्का । सं जहा, मवणादि
 साव सम्बद्धेचि मोहविहारी केवचिरं काळादो होदि ? अइण्णेषेण दसवस्ससहस्साणि
 दसवस्ससहस्साणि पळिदोपमम्म अहममागो, पळिदोवम सादिरेय, वे सच दस चोइस
 सोळस अटारस वीस बानीस तेवीस चठवीस पचवीस अम्बीस सचावीस अट्टावीस एगुण
 चीस वीस एकवीस वचीस सागरोवमायि सादिरेयाणि । उक्कम्सेण सागरोवमं सादि

काळ तक रहकर यदि अम्ब गतिको चक्र जाय तो अपम्यकाळ तक प्रमाण ही प्राप्त होता है ।
 इसी अपेक्षासे उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीय कर्मका अपम्यकाळ नुदाभवप्रण व
 अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाळ पूर्वकोटिपूवक्त्वा अधिक तीन पस्व क्का है । उक्त तीनों प्रकारके
 मनुष्योंमें मोहनीयके असत्त्वका अपम्यकाळ अन्तर्मुहूर्त क्कनेका कारण यह है कि किसी एक
 क्षीणकवायी मनुष्यके सयोगी होकर अन्तर्मुहूर्त काळ तक रह, समुदावकर और योगनिरोधके
 साथ अबोगी होकर मोह चले जानेमें कितना काळ लगता है उस सबत्र पोग मी अन्त
 र्मुहूर्त ही होता है । तथा मोहनीय कर्मके जमातका उत्कृष्टकाळ देशोन पूर्वकोटि क्कनेका
 कारण यह है कि किसी एक मनुष्यने गर्भसे लेकर आठ वर्षकी अवस्था होने पर संयमको
 प्राप्त किया और अन्तर्मुहूर्त प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें रहा । अनन्तर अध करण, अपूर्व
 करण, अनिहृत्तिकरण और सूक्ष्मसांप्रत्यमें एक एक अन्तर्मुहूर्त रहकर क्षीणमोह हो गया ।
 इस प्रकार क्षीणमोह होनेतक छह अन्तर्मुहूर्त होते हैं । तो मी हमका योग एक अन्तर्मुहूर्त होता
 है । इस प्रकार एक पूर्वकोटिमें से आठवर्ष अन्तर्मुहूर्त कम कर देनेपर मोहनीय कर्मके अस्
 र्वके साथ मनुष्य पर्यायमें रहनेका उत्कृष्टकाळ देशोन पूर्वकोटि प्राप्त हो जाया है ।

॥ १२ देवगण्यमें—देवोंमें मोहनीय विमलिक्र काळ नारकिबोंके समान है । इतनी
 विक्षेप्ता है कि भवनवासियोंसे लेकर सर्वायसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय कर्मका अपम्य
 और उत्कृष्टकाळ क्रमसे अपनी अपनी नपम्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण क्कना चाहिये । यह
 इस प्रकार है—भवनवासियोंसे लेकर सर्वायसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय विमलिक्र कितना
 काळ है ? भवनवासियोंमें दस हजार वर्ष, व्यंतरोंमें दस हजार वर्ष ज्योतिषियोंमें पस्यके
 आठवें महा प्रमाण चौधर्य—पेशान करमें साधिक पस्व सत्सुमार—सादेवमें साधिक दो
 सागर, अष्ट—अष्टोत्तरमें साधिक साव सागर, अन्तब—अपिष्टमें साधिक दस सागर, एक
 महाएकमें साधिक चौदह सागर सागर—सहस्रारमें साधिक सोलह सागर, आमत—प्राचतमें
 साधिक अठारह सागर, नारण—अप्युतमें साधिक बीस सागर, नौ विषेवकोंमें क्रमसे साधिक
 बाईस, साधिक तेईस साधिक बीबीस, साधिक पचवीस साधिक छम्बीस, साधिक
 सचाईस साधिक अट्टाईस साधिक उन्नीस और साधिक तीस सागर, नव अनुदिसोंमें
 साधिक इकतीस सागर और चार अनुचरोंमें साधिक वचीस सागर प्रमाण अपम्य काळ

रेयं पलिदोवमं सादिरेयं [पलिदोवमं सादिरेयं] वे मागरोवमाणि [सादिरेयाणि] सत्त-
दस-चोदस-सोलम-अट्टारस-सागरोपमाणि सादिरेयाणि, वीम-वावीम-तेवीम-चउवीम-
पचवीस-छ्वीस-सतावीम-अट्टावीम-एगुणतीस तीम-एक्कीस-वत्तीम-तेत्तीम-मागरोव-
माणि । णवरि, सव्वट्ठे जहण्णुक्कस्सभेदो णत्थि ।

§ ५३. इंदियाणुवादेण एइदिय-वादर-सुहुम-पजत्तापजत्त-सव्वविगलंदिय-पंचकाय-
वादर-सुहुम-पजत्तापजत्ताणं खुद्दाबंधे जो आलावो सो कायव्वो ।

है । और उत्कृष्टकाल भवनत्रिक्रमे क्रमशः साधिक एक मागर, साधिय पत्य, साधिक
पत्य, सोलह स्वर्गोमे साधिक दो मागर, साधिक सात मागर, साधिक दस मागर, साधिक
चौदह सागर, साधिक सोलह मागर, साधिक अठारह मागर, वीम मागर, वाईम सागर,
नौ प्रवेयकोमे क्रमसे तेईस, चौवीस, पन्चीस, छव्वीम, सत्ताईम, अट्टाईम, उनतीम, तीम
और इक्कीस सागर, नौ अनुदिशोमे वत्तीम सागर, और पाच अनुत्तरोमे तेतीस सागर है ।
इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका भेद नहीं पाया जाता ।

विशेषार्थ—यहा नारकियोंके कालके समान जो देवोमे मोहनीय कर्मका काल कहा है
वह सामान्यकी अपेक्षासे है, क्योंकि, दोनों गतियोंमे जघन्य आयु दस हजार वर्ष और
उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण होती है । विशेषकी अपेक्षा तो देवोंके जिस भेदमे जहा
जितनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति हो वहा मोहनीय कर्म का उतना जघन्य और उत्कृष्टकाल
समझना चाहिये जिसका कि ऊपर उल्लेख किया ही गया है ।

§ ५३. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे सामान्य एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,
वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त,
समी विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त अपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय और उनके वादर और
सूक्ष्म तथा सभी वादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त इनका खुदावन्धमे जो काल
बताया है वही इनमें मोहनीय विभक्तिका काल समझना चाहिये ।

विशेषार्थ—खुदावन्धमें सामान्य एकेन्द्रियोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण और
उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण बताया है । असख्यातपुद्गलपरिवर्तनोंके समर्थोंकी
यदि गणना की जाय तो उसका प्रमाण अनन्त होता है । वादर एकेन्द्रियोंका जघन्यकाल
खुदाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्टकाल अंगुलके असख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है । यहा
अंगुलके असख्यातवें भागसे असख्यातासख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियोंके कालका
ग्रहण किया है । वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल संख्यात
हजार वर्ष बतलाया है । वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका जघन्यकाल खुदाभवग्रहण प्रमाण और
उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंका जघन्यकाल खुदाभवग्रहणप्रमाण
और उत्कृष्टकाल असख्यात लोकप्रमाण बतलाया है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तोंका जघन्यकाल

५४ पाचिद्रिय-पचिद्रियपञ्च त-तस-तसपञ्चपाण मोहविहारी कश्चिरें कालादो होदि ? अहण्येण सुहामवग्रहण अंतोद्भुतं उदस्सेण सागरोपमसहरस पुष्पकोटिपुष अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ भी अन्तर्मुहूर्त ही वतळायी है । सूक्ष्म पंचेन्द्रिय अपयातोका अपम्य काळ सुरामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण वतळायी है । श्रोत्रिय, श्रोत्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा श्रोत्रिय पर्याप्त, श्रोत्रिय पर्याप्त और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त इन जीवोंका अपम्य काळ क्रमशः सुहामवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है । तथा श्रोत्रोका उत्कृष्ट काळ रुद्रयात हजार वष कहा है । श्रोत्रिय अपर्याप्त, श्रोत्रिय अपर्याप्त और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका अपम्य काळ सुहामवग्रहणप्रमाण तथा उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । काय मागणाधी अपेक्षा पृथिवीकायिक, अकायिक और वायुकायिक जीवोंका अपम्य काळ सुहामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काळ अरुद्रयात लोक प्रमाण कहा है । वादर पृथिवी वादर जल वादर अग्नि, वादर वायु और वादर वनस्पति प्रत्येक शरीर इनका अपम्य काळ सुहामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काळ कर्मस्थितिप्रमाण कहा है । यहाँ कर्मस्थितिसे सत्तर कोटिकाही सागरप्रमाण काळ लेना चाहिये । वादर पृथिवी पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त वादर वायुकायिक पर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंका अपम्य काळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ सप्तयात हजार वर्ष कहा है । वादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकही उत्कृष्ट स्थिति चारिस हजार वर्ष, वादर जलकायिक पर्याप्तकही उत्कृष्ट स्थिति साठ हजार वर्ष वादर अग्निकायिक पर्याप्तकही उत्कृष्ट स्थिति तीन दिन वादर वायुकायिक पर्याप्तकही उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तकही उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष प्रमाण है । वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्नि कायिक अपर्याप्त, वादर वायुकायिक अपर्याप्त और वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंका अपम्य काळ सुहामवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक सूक्ष्म जलकायिक सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंका अपम्य और उत्कृष्ट काळ सूक्ष्म पंचेन्द्रिय और इनके पर्याप्त और अपर्याप्तोंका काळ त्रिस प्रकार ऊपर कह आये हैं उस प्रकार समझना चाहिये । इसप्रकार इन उपयुक्त जीवोंका जो अपम्य और उत्कृष्ट काळ है यही यहाँ मोहनीयका अपम्य और उत्कृष्ट काळ है ।

५५ पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपयात तथा त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीय विमलिका कितना काळ है ? पंचेन्द्रिय और त्रसके अपम्यकाळ सुहामवग्रहण प्रमाण तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त और त्रसपर्याप्त जीवोंके अपम्य काळ अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काळ पंचेन्द्रिय जीवोंके पूर्वकोटि पृथक्त्व अथिह हजार सागर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके सौ पृथक्त्व

त्तेणम्भहियं, सागरोवमसदपुधत्तं, वेसागरोवमसदसहस्माणि पुच्चक्रोडिपुधत्तंणम्भहियाणि, वेसागरोवमसहस्सं । अविहत्तियाण मणुसभंगो ।

§ ५५. पंचमण०-पंचवचि०विहत्ती अविहत्ती केवचिर कालादो होदि ? जहण्णेण एगंसमओ उक्कस्सेण अंतोमुहत्तं ।

सागर, त्रमजीवके पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और त्रसपर्याप्त जीवके पूरे दो हजार सागर है। तथा मोहनीय कर्मसे रहित पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रम और त्रसपर्याप्त जीवोंका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल मोहनीय कर्मसे रहित मनुष्योंके कालके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—कोई एक जीव यदि पचेन्द्रियोंमे निरन्तर परिभ्रमण करे तो वह पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक हजार सागर कालतक ही पचेन्द्रिय रहता है, अनन्तर उसकी पंचेन्द्रिय पर्याय छूट जाती है। इसीप्रकार पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवका भी अपने अपने उक्त उत्कृष्ट कालतक उस उस पर्यायमे निरन्तर अधिक्से अधिक परिभ्रमणका प्रमाण समझना चाहिये। इनका जघन्य काल स्पष्ट ही है। इन पचेन्द्रियादिकोंमे मोहनीय कर्मका अभाव मनुष्यके ही होता है, अतः मनुष्यगतिमे जो मोहनीयके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल ऊपर कह आये हैं वही पचेन्द्रियादि चारोंकी अपेक्षासे भी समझना चाहिये।

§ ५५ पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीय विभक्ति और अविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—कोई एक मोह विभक्ति वाला काययोगी जीव काययोगका काल पूरा हो जाने पर विवक्षित मनोयोगको प्राप्त हुआ। वहा वह एक समय तक रहा अनन्तर मर कर काययोगी हो गया। अथवा कोई एक मोहविभक्तिवाला काययोगी जीव काययोगका काल पूरा हो जाने पर विवक्षित मनोयोगको प्राप्त हुआ जो कि एक समय तक रहा। अनन्तर व्याघात हो जानेसे दूसरे समयमे पुन उसके काययोग हो गया। इस प्रकार विवक्षित मनोयोगके साथ मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार वचन योगकी अपेक्षासे मोहविभक्तिके एक समय प्रमाण कालका कथन करना चाहिये। मोहअविभक्ति क्षीणमोहगुणस्थानसे होती है। और क्षीणमोह गुणस्थानमे पृथक्त्ववितर्कवीचार तथा एकत्ववितर्कअवीचार ये दोनों ध्यान सम्भव हैं। वीरसेन स्वामी कर्म अनुयोगद्वारमे ध्यानका कथन करते हुए लिखते हैं कि 'क्षीणकपायके कालमे सर्वत्र एकत्ववितर्क अवीचार ध्यान ही होता है यह बात नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर वहा परिवर्तन द्वारा योगका एक समय प्रमाण कालका कथन नहीं बन सकता है। अतः

(१ -ण लीणकसायद्वाए सव्वत्थ एयत्तविदक्कावीचारज्ञाणमेव जोगपरावत्तीए एगसमयपरुवणण्ण हाणुववत्तीदो । वलेण तदद्वादीए पुषत्तविदक्कवीचारस्स वि सभवासिद्धो । प० क० प० ५० ८३९ उ० ।

१५६ काययोगी० विहरी केवचिरं कालादो होदि ? अह० एगममओ । उह० अर्जतकालमसंखेजा पोग्गलपरिवृत्ता । अविहरी० मणओगिर्मंगो । एवमोरातिप० । गवरि विहरी उहस्सेण वावीसवस्सइस्साप्पि देवणाप्पि । ओगालिपमिस्स० विहरी अह० सुहा० विसमयाण (-युवं) उह० सेण अतोमुहुच । अविहरी केव० ? अहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । वेठच्चिय०-आहार०विहरी० मण०मगो । वेठच्चियमिस्स०विहरी केव चि० ? अहण्णुक्क० अतोमुहुच । एवमाहारमिस्स०-उवसमसम्माएट्ठि-सम्भामिच्छाइही० । कम्मइय० विहरी अह० एगसमओ, उहस्सेण विण्णि समया । अविहरी केव० ? अहण्णुक्क विण्णि समया ।

इससे जाना जाता है कि क्षीणकपायके प्रारम्भमें प्रत्यक्त्ववितर्कबीचार ध्यान भी सम्भव है तथा अद्रापरिमाणका निर्देश करते समय तीनों योगोंके कालसे एकत्व विर्तक अविचार ध्यानका काल बहुत अधिक बतलाना है और एकत्ववितर्क अनीचार ध्यानके कालसे क्षीणकपायका काल बहुत अधिक बतलाना है । इससे भी पक्षी सिद्ध होता है कि क्षीणकपाय गुणस्थानमें उक्त दोनों ध्यान सम्भव हैं । अठ ओ सूक्ष्मसांप्रदायिक सषट् बीष विषक्षित मनोबोग और बचनयोगके कालमें एक समय छेब रहने पर क्षीणकपायी होता है उसके विषक्षित मनोबोग और बचनयोगमें मोहअविमत्तिका अपम्य काळ एक समय बन आता है । तथा सभी मनोबोगों और बचनयोगोंका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनकी अपेक्षा मोहविमत्ति और मोहअविमत्तिका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

१५६ काययोगियोंके मोहनीय विमत्तिका कितना काळ है ? अपम्य काळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तर् काळ है जो असंख्यात् पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । तथा काययोगियोंके मोहनीय विमत्तिका अपम्य और उत्कृष्ट काळ मनोबोगियोंके समान है । इसी प्रकार औदारिककाययोगियोंके भी समझना चाहिये । इतनी विज्ञपता है कि औदारिककाययोगियोंके मोहनीय विमत्तिका उत्कृष्ट काळ बेसोन चाईस हजार वर्ष है । औदारिक शिषकाययोगियोंके मोहनीय विमत्तिका अपम्य काळ तीन समय कम सुहायकमहजप्रमाण और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । और मोहनीय विमत्तिका कितना काळ है ? मोहनीय अविमत्तिका अपम्य और उत्कृष्ट काळ एक समय है । वैकल्पिक काययोगी और आहार कर्मयोगी जीवोंके मोहनीय विमत्तिका अपम्य और उत्कृष्ट काळ मनोबोगियोंके समान है । वैकल्पिकमिमांसायोगियोंके मोहनीय विमत्तिका कितना काळ है ? अपम्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त काळ है । इसी प्रकार आहारकर्मिकाययोगी, बपठमसम्ब गट्टि और सम्पन्नमिच्छाट्टी जीवोंके जानना चाहिये । कर्मयोगियोंके मोहनीय विमत्तिका अपम्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ तीन समय है । और अविमत्तिका कितना काळ है ? अपम्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारसे तीन समय काळ है ।

§ ५७. वेदानुवादेण इत्थिवेदपुरिसवेदविहत्ती केवाचिं ? जह० एगसमओ अंतो-

विशेषार्थ—क्षपक सूक्ष्मसापराय गुणस्थानके कालमे एक समय शेष रहने पर जिसे काययोगकी प्राप्ति होती है उसकी अपेक्षा काययोगमे मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय कहा है । तथा काययोगका उत्कृष्ट काल अमख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण होता है इस अपेक्षासे काययोगमे मोहविभक्तिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा है । मनोयोगमे मोह अविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पहले घटित करके लिस आये हैं उसी प्रकार काययोगमे मोह अविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त घटित करके जानना । इसी प्रकार औदारिक काययोगियोंके मोहविभक्ति और मोह अविभक्तिका काल जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके मोह विभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम चाईस हजार वर्ष होता है क्योंकि औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम चाईस हजार वर्ष है इससे अधिक नहीं । यहा कुछ कमसे मतलब पर्यायके प्रारम्भमे होनेवाले कार्मणकाययोग और औदारिक मिश्र काययोगके कालते है । इन दोनोंके सम्मिलित काल अन्तर्मुहूर्तको चाईस हजार वर्षमेंसे कम कर देने पर शेष समस्त कालमे औदारिककाययोग होता है । औदारिकमिश्र-काययोगमें मोहविभक्तिका जो जघन्य काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है इसका कारण यह है कि सबसे जघन्य क्षुद्रभवको ग्रहण करनेवाले लक्ष्यपर्याप्तकके औदारिक मिश्र का जघन्य काल होता है तथा उत्कृष्ट काल संख्यात हजार क्षुद्रभवोंमे परिभ्रमण करके जो पर्याप्तकमे उत्पन्न होकर औदारिक काययोगी हो जाता है उसके होता है । तो भी इस कालका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है । औदारिक मिश्रकाययोगमें मोह अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय सयोगिकेवलीके कपाट समुद्घातकी अपेक्षा कहा है । वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय मरण और व्याघातकी अपेक्षा प्राप्त होता है तथा इनका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इन योगोंमे मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त मनोयोगके समान बन जाता है । वैक्रियिकमिश्र, आहारक मिश्र, उपशमसम्पत्त्व और सम्पत्तिमध्या-दृष्टिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है अत यहा मोहविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । कार्मण काययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है अत यहा मोहविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा । तथा प्रतर और लोकपूरण समुद्घातके समय कार्मणकाययोग ही होता है जिसका काल तीन समय है । अत इस अपेक्षासे कार्मणकाययोगमे मोह अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा ।

§ ५८. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीषके मोहनीयविभक्तिका

सुहुचं, उक्त्वं सगङ्गिदी । गङ्गुस० विहृषी केव० । अह० एगसमओ उक्त्वं अणतकारं० ।
अभगदवेद० विहृषी केव० । अह० एगसमओ, उक्त्वं अतोसुहुच । अविहृषी० ओषमंगो ।

§ ५ = कसायापुवादेण कोहादिचतुर्विहृषी केव० । अहण्णुक्त्वं अतोसुहुच ।

कितना काळ है ? स्त्रीवेदीके जपम्य काळ एक समय और पुरुषवेदीके जपम्य काळ अन्तर्गृह्यते है । तथा दोनोंके उत्कृष्ट फल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । नपुंसकवेदियोंके मोहनीय विमल्लिख कितना काळ है ? जपम्य काळ एक समय और उत्कृष्ट जपम्य काळ है जो असंख्यात पुत्रल परिवर्तन प्रमाण है । अपगतवेदियोंके मोहनीय विमल्लिख कितना काळ है ? जपम्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्गृह्यते है । अपगतवेदियोंके मोहनीय अविमल्लिखे काळका कवन ओषके समान है ।

विशेषार्थ—ओ पहले जी बेरी या नपुंसकवेदी या वह उपशम भेणीसे उतरते समय सवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर पुरुष वेदके साथ देव हुआ, उसके उक्त दोनों वेदोंकी अपेक्षा मोहनीय विमल्लिख काळ एक समय पाया जाता है । ओ पहले सवेदी या वह उपशमभेणी पर चढ़कर एक समयके सिधे अपगतवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर पुरुषवेदी हो गया उसके मोहनीय विमल्लिख काळ एक समय पाया जाता है । पुरुषवेदकी अपेक्षा मोहनीय विमल्लिख जपम्य काळ अन्तर्गृह्यते कम नहीं हो सकता । वह इस प्रकार है—ओ पहले पुरुषवेदी या वह उपशमभेणीसे उतरते समय पुरुषवेदी होकर सबसे जपम्य अन्तर्गृह्यते फल एक विमान करके जब पुनः उपशम भेणी पर आरोहण करके अबेदभावको प्राप्त होता है तब उसके पुन्यवेदके साथ मोहनीय विमल्लिख जपम्य काळ अन्तर्गृह्यते पाया जाता है । उत्कृष्टरूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदके साथ मोहनीय कर्मकाळ अपनी अपनी स्थितिप्रमाण बतलाया है । यहां अपनी अपनी स्थितिसे स्त्री वेदी और पुरुषवेदीकी केवल एक पर्याय प्रमाण स्थिति का ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु कितनी पर्यायोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अविमल्लिख धारा चलती है तत्प्रमाण स्थिति लेना चाहिये । स्त्रीवेदका उत्कृष्ट फल पशुपम शतवृषस्त्व है और पुरुषवेदका उत्कृष्ट फल सागरोपम शतवृषस्त्व है । अतः इन दोनों वेदोंके साथ मोहनीय विमल्लिख उत्कृष्ट फल भी इतना ही समझना चाहिये । एकत्रिय जीवोंकी प्रधानतासे नपुंसकवेदका उत्कृष्ट फल असंख्यात पुत्रलपरिवर्तन प्रमाण कहा है, अतः नपुंसकवेदके साथ मोहनीय कर्मकाळ भी तत्प्रमाण सिद्ध होता है । अपगतवेदियोंके मोहनीय विमल्लिख अन्तर्गृह्यते अधिक फलवत्क नहीं पायी जाती है यह स्पष्ट ही है ।

§ २ = कसायामार्गणाकं अनुवादसे कोषादि चारों कपायवाकोंके मोहनीय विमल्लिख कितना काळ है ? जपम्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारसे अन्तर्गृह्यते काळ है । कपाय रहित जीवोंके अपगत वेदियोंके समान कवन करमा चाहिये ।

अकसाई० अगदवेदभगो । पाणाणुवादेण मद्विअण्णाणि-सुदअण्णाणीसु विहत्तीए तिण्णि भंगा । जो सो सादि० जह० अतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्रपोग्गलपरियट्ठा । विहंग० विहत्ती केव० ? जह० एगसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं मागरोवमाणि देसूणाणि । आभिणिवोहिय०-सुद०-ओहि० विहत्ती जह० अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण छावट्टिमागरोवमाणि सादिरयाणि । अविहत्ती० जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । मणपज्जव० विहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । अविहत्ती० जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

विशेषार्थ—क्रोधादि चारों कपार्योंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है इसमें दो मत पाये जाते हैं । एक मतके अनुसार क्रोधादि कपाय एक समय रहकर भी मरणादिकके निमित्तसे बदली जा सकती हैं । और दूसरे मतके अनुसार क्रोधादिका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं होता है । यहा दूसरी मान्यताका ही ग्रहण किया है । तदनुसार क्रोधादि चारोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिके कालकी अपेक्षा तीन विकल्प होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । उनमेंसे जो सादि-सान्त विकल्प है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन होता है । विभगज्ञानियोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल देशोन तेतीस सागर है । आभिनिवोविक्रज्ञानी श्रुतजानी और अविज्ञानी जीवोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक छियासठ सागर है । तथा मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मन पर्ययज्ञानियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है । तथा मोहनीय अविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान अभव्य जीवोंके अनादि-अनन्त भव्य जीवोंके अनादि-सान्त और जिन्हें एक बार सम्यग्दर्शन हो कर पुनः मिथ्यात्वकी प्राप्ति हुई है उनके सादि-सान्त काल तक पाया जाता है । उनमेंसे यहा सादि-सान्त मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका काल बताया है । जो सम्यक्त्वी जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है उसके उक्त दोनों अज्ञानोंके साथ मोहनीय विभक्ति अन्तर्मुहूर्त काल तक पाई जाती है । तथा जो सम्यक्त्वी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके मोहनीय विभक्ति उक्त दोनों अज्ञानोंके साथ कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक पाई जाती है । जो उपशम सम्यग्दृष्टि देव या नारकी जीव उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन-

१५६ संज्ञामाणुवादेण संज्ञद० विहची० अविहची० ज्ञह० अतोमृदुच उक्त्स्तेष्य पुष्वकोटी देखणा । सामाहयक्षेदो० विहची केव० । सह० एगसमओ उक्त्स्तेष्य पुष्वकोटी देखणा । परिहारवि० विहची केव० । जह अतोमृदुच, उक्त्स्तेष्य पुष्वकोटी देखणा । एव संज्ञदासंज्ञद० । सुभ्रुमसांपराहय० विहची केव० । सह० एगसमओ, उक्त्स्तेष्य अतोमृदुच ।

सम्यदृष्टि होकर द्वितीय समथमें मरकर जब तिर्यंज या मनुष्य हो जाता है, तब उसके विभंगज्ञानके साथ सासादन गुणस्थानमें मोहनीय विभक्ति एक समय तक ऐकी जाती है । विभंगज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें नहीं होता है इसलिये अपर्याप्त अवस्थाके कालको कम कर देने पर सातवें नरकमें विभंगज्ञानके साथ मोहनीय विभक्ति देशोन तेवीस सागर अछ तक प्राप्त होती है । मतिज्ञानादि धीनों ज्ञानोंके साथ मोहनीय विभक्ति अन्तमुहूर्त काळ तक रहती है यह तो स्पष्ट है पर उत्कृष्ट रूपसे साधिक छिवासठ सागरोपम काळ तक कैसे पाई जाती है इसका स्पष्टीकरण करते हैं—किसी एक देव या नारकी जीवने उपशम सम्यक्त्वसे बहुत सम्यक्त्व प्राप्त किया और वह उसके साथ वहां अन्त मुहूर्त रहा । अनन्तर अन्तमुहूर्त कम एक पूर्वकोटित्री आयु वाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः कमस बीस सागर आयुवाले देवोंमें पूर्व कोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें, बाईस सागर आयुवाले देवोंमें और पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः यहां साधिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिका प्रारम्भ करके चौबीस सागर आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होकर और वहांसे आकर पूर्वकोटि प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अवश्य वे युके क्षेप रहने पर क्षपकक्षणीका आरोहण करके क्षीणकपायी हो गया । उसके मतिज्ञान, सुतज्ञान और अविभंगज्ञानके साथ साधिक सुपासठ सागर अछ तक मोहनीय विभक्ति पाई जाती है । यहां साधिकसे चार पूर्वकोटि काळका ग्रहण किया है । इन धीनों ज्ञानोंके साथ मोहनीय विभक्तिका अभाव अन्तमुहूर्त काळ तक होता है यह स्पष्ट ही है । कोई एक मनःपर्ययज्ञानी मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्तिके अनन्तर अन्तमुहूर्त काळमें क्षीणकपायी हो जाय तो उसके मनःपर्ययज्ञानके साथ अन्तमुहूर्तकाळ तक मोहनीय विभक्ति पाई जाती है । पूर्वकोटित्री आयुवाले जिस मनुष्यने आठ वर्षकी बचमें ही समयके साथ मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया है तबके देशोन पूर्वकोटि अछ तक मनःपर्ययज्ञानके साथ मोहनीय विभक्ति पाई जाती है ।

१५६ संयममार्गजाके अनुवादसे सधतोंके मोहनीय विभक्ति और मोहनीय अविभक्तिका अपम्य काळ अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काळ देशोनपूर्वकोटि है । सामाधिक और छेदोपस्थापना सधमधे प्राप्त सधतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना अछ है ? अपम्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ देशोन पूर्वकोटि है । परिहारविदुषि सधतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काळ है ? अपम्य काळ अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काळ देशोन पूर्वकोटि है । इसीप्रकार

अविहत्तीए मणुसभगो । असजद० मदिअण्णाणिभंगो ।

§ ६०. दंसणाणुवादेण चक्खुदंसण० विहत्तीए तसपज्जचभंगो । अविहत्तीए
आभिणि० भगो । ओहिदंसण० ओहिणाणिभगो ।

सयतासयतोंका भी कथन करना चाहिये । सूक्ष्म सापरायिक सयतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । यथाख्यात-शुद्धिसयतोंके मोहनीय विभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । यथाख्यात सयतोंके मोहनीय अविभक्तिके कालका कथन मनुष्योंके समान जानना चाहिये । असयतोंके मत्यज्ञानियोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सयम परिहारविशुद्धिसयम और सयमासयमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल और देशोनपूर्वकोटि है इससे कम नहीं, इसलिये इनमे मोहनीयका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोनपूर्वकोटि कहा है । इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिके कालमे देशोनका अर्थ अडतीस वर्ष और देशसंयमके कालमे देशोनका अर्थ अन्तर्मुहूर्त प्रयत्न करना चाहिये । सामायिक, छेदोपस्थापना और सूक्ष्मसापरायका जघन्य काल एक समय मरणकी अपेक्षा कहा है । उसमे पहलेके दो संयमोंका एक समय काल उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवके दसवेंसे नौवेंमे आकर और एक समय ठहरकर मरनेवालेके होगा । और सूक्ष्म सापरायका एक समय काल उपशमश्रेणी पर आरोहण करनेवालेके दसवेंमे एक समय ठहरकर मरनेवालेके तथा उपशमश्रेणीसे उतरनेवालेके ग्यारहवेंसे दसवेंमे आकर और एक समय ठहरकर मरनेवालेके होगा । सामायिक और छेदोपस्थापनाका उत्कृष्ट काल देशोनपूर्वकोटि स्पष्ट ही है । सूक्ष्म साम्पराय सयमका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त दसवे गुणस्थानके कालकी अपेक्षासे कहा है । यथाख्यातसयमका एक समय काल ग्यारहवें गुणस्थानमे एक समय रहकर मरनेवाले जीवके होता है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उपशान्तमोह गुणस्थानके कालकी अपेक्षा कहा है । इसप्रकार जहा जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल हो वहा मोहनीयकर्मका उतना काल समझना चाहिये । जिन संयतोंने मोहनीयकर्मका नाश कर दिया है, उनके मोहका अभाव जघन्यरूपसे अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, क्योंकि आयु कर्मके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर जो क्षपकश्रेणीपर चढते हैं वे मोहके बिना संसारमे अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रहते हैं । तथा पूर्वकोटिकी आयुवाले जिन सयतोंने आठ वर्षकी अवस्थामे केवल ज्ञान प्राप्त किया है उनके देशोन पूर्वकोटि कालतक मोहनीयका अभाव पाया जाता है ।

§ ६०. दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंके मोहनीयविभक्तिका काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान होता है । तथा अविभक्तिका काल आभिनिवोधिक ज्ञानीके समान है । अवधिदर्शनीके मोहनीय विभक्ति और मोहनीय अविभक्तिका काल अवधिज्ञानीके समान होता है ।

३६१ सेसाधुवादेण किण्व-मील-काठ० विहची० जहण्येण अतोमुहुत्तं, उक्तसेण तेहीस सचारस सच सागरोवमाणि सादिरेयाणि । तेठ-पम्माण विहची केवाधिर फाला हो होदि ? जहण्येण अतोमुहुत्त, उक्तसेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । मुक्त० विहची० जह० अंतोमुहुत्त, उक्त० तेहीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । अबिहची० मणुसमेगो ।

विशेषार्थ—असपर्याप्तकी अपेक्षा मोहनीय विमलिका जपम्य काठ अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काठ दो प्रकार सागर कह आये हैं । उत्तीप्रकार मणुसनी जीवोंका जपम्य और उत्कृष्ट काठ जानना चाहिये । यह काठ मणुसनीके प्रधानतासे कहा है । उपयोगकी प्रधानतासे नहीं क्योंकि उपयोगकी अपेक्षा मणुसनीके जपम्य और उत्कृष्ट दोनों काठ अन्तमुहुत्त प्रमाण ही होते हैं । बारहवें गुणरत्नका जो जपम्य और उत्कृष्ट काठ है वह मणुसनीके मोहनीयके अभावका जपम्य और उत्कृष्ट काठ समझना चाहिये । अथवा शानीके मोहनीयके और उसके अभावका काठ ऊपर ही कह आये हैं उत्तीप्रकार अथवा शानीके जानना चाहिये ।

३६१ उद्यमार्गणाक अनुवादसे कृष्ण, मील और कापोत सेद्यावाले जीवोंके मोहनीय विमलिका कितना काठ है ? जपम्य काठ अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काठ कृष्णसेद्यावाले जीवोंके साधिक तेहीस सागर, मीलसेद्यावाले जीवोंके साधिक सत्रह सागर और कापोत-सेद्यावाले जीवोंके साधिक सात सागर है । तेज और पद्मसेद्यावाले जीवोंके मोहनीय विमलिका कितना काठ है ? जपम्य काठ अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काठ तेजसेद्यावाले जीवोंके साधिक दो सागर और पद्मसेद्यावाले जीवोंके साधिक अठारह सागर है । मृच्छ-सेद्यावाले जीवोंके मोहनीय विमलिका कितना काठ है ? जपम्य काठ अन्तमुहुत्त और उत्कृष्ट काठ साधिक तेहीस सागर है । मृच्छसेद्यावाले जीवोंके मोहनीय विमलिका काठ मणुस्योंके समान है ।

विशेषार्थ—एक सेद्याका जपम्य काठ अन्तमुहुत्त है तथा उत्कृष्ट काठ सातवें नरककी अपेक्षा कृष्ण सेद्याका साधिक तेहीस सागर, पाँचवें नरककी अपेक्षा मीलका साधिक सत्रह सागर, तीसरे नरककी अपेक्षा कापोतका साधिक सात सागर, सौधर्म-वेदान्तकी अपेक्षा पीतका साधिक दो सागर सठार-सहस्रार्ग स्वर्गकी अपेक्षा पद्मका साधिक अठारह सागर और मृच्छ सेद्याका सर्वाधिक साधिक साधिक तेहीस सागर है । यहाँ साधिकसे विवक्षित पत्रोंके पूर्ववर्ती पत्रावका अभिमत अन्तमुहुत्त और उत्तरवर्ती पत्रावका प्रथम अन्त मुहुत्त दिया है क्योंकि उस समय भी यही उद्या रहती है । इस प्रकार मिन इत्यादि जपम्य और उत्कृष्ट कितना काठ हो उसके अनुसार मोहनीयकेका जपम्य और उत्कृष्ट काठ समझना चाहिये । मोहका अभाव केवल मृच्छ सेद्यामें मणुस्योंके ही होता है अतः उसका कथन मणुस्योंके मोहके जमापके कथनसे समान करना चाहिये ।

§ ६२ भवियाणुवादेण भवसिद्धि० विहत्ति० अणादिओ सपज्जवसिदो । अविहत्तीए मणुसभंगो । अभवसिद्धि० विहत्ती अणादिअपज्जवसिदा । सम्मत्ताणुवादेण सम्मादि० विहत्ती० आभिणि० भंगो । अविहत्ती० ओघभगो । खइय० विहत्ती० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । अविहत्ती० ओघभगो । वेदगसम्मादि० विहत्ती० जह० अतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्टिसागरोवमाणि । सासण० विहत्ती० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवल्लियाओ । मिच्छादिट्ठी० म्दिअण्णाणिभंगो ।

§ ६२. भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्य जीवोंके मोहनीय विभक्ति अनादि-सान्त है । और इनके मोहनीय अविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है । तथा अभव्य जीवोंके मोहनीय विभक्ति अनादि अनन्त है । सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवादसे सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीय विभक्तिका काल आभिनिवोधिकज्ञानियोंके समान है । तथा उनके मोहनीय अविभक्तिका काल ओघके समान है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय अविभक्तिका काल ओघके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है ? सासादन सम्यग्दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है । मिथ्या-दृष्टियोंके मोहनीय विभक्तिका काल मत्यज्ञानियोंके समान है ।

विशेषार्थ—मतिज्ञानियोंके मोहनीयका काल ऊपर दिखला ही आये हैं । सम्यग्दृष्टि सामान्यके मोहनीयके अभावका काल ओघप्ररूपणाके समान जानना चाहिये । कोई जीव क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही क्षीणमोह हो जाता है । और कोई क्षायिकसम्यग्दृष्टि आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कालके बाद क्षीणमोह होता है । अतः इस विवक्षासे क्षायिक सम्यग्दृष्टिके मोहनीय कर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है । सामान्य प्ररूपणामे मोहनीयके अभावका जो काल कहा है वही क्षायिक सम्यग्दृष्टिके मोहनीयके अभावका काल समझना चाहिये । वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । जो पहले कई वार सम्यग्दृष्टिसे मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टिसे सम्यग्दृष्टि हो चुका है ऐसा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके और वहा जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर पुन मिथ्यात्वको जब प्राप्त हो जाता है तब उसके वेदकसम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल देखा जाता है । तथा उसका उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है । कोई एक उपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर मनुष्यपर्याय सवन्धी शेष भुज्यमान आयुसे रहित वीस सागरोपम आयुवाले देवोंमे उत्पन्न हुआ । वहासे पुनः मनुष्य होकर मनुष्यायुसे न्यून वाईस सागरकी आयुवाले देवोंमे उत्पन्न हुआ । वहासे पुनः मनुष्य होकर भुज्यमान मनुष्यायुसे तथा देवपर्यायके अनन्तर प्राप्त होनेवाली मनुष्यायुमेंसे क्षायिक

६३ सन्धियाणुबादेण सन्धि० विहरी० जह० सुहामवग्गाहण, उक्क० सागरो-
 वमसदपुचचं । अविहरी० जहणुक्कस्सेण अतोयुहुच । असन्धि० एरुदियमगो । आहार०
 विहरी० जह० सुहामवग्गाहणं तिसमयुपं, उक्कस्सेण अगुरुत्स अससेजदिमागो ।
 अविहरी० मणुसमगो । यणाहारि० विहरी० कम्मइय० मंगो । अविहरी० ओघमगो ।

सन्ध्यादर्शनके प्राप्त होने तकके कालसे मूल चौबीस सागरकी आसुवाले वैश्वामिने उत्पन्न होकर
 वहाँसे प्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ । मनुष्य पर्यायमें जब वेदकका काल अन्तमुहूर्त होप
 रहा तब दर्शनमोहनीयकी क्षणिका प्रारम्भ करके कृतकृत्यवेदक सम्पन्न होकर हुआ । इस
 प्रकार कृतकृत्यवेदके परम समय तक वेदक सम्पन्नदर्शनके उद्यासठ सागर पूरे हो जाते
 हैं । अतः इस विषयासे वेदकसम्पन्नदर्शनके मोहनीय कर्मका अक्षय्य और उत्कृष्ट काल कहा
 है । सासादनका अक्षय्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आयुषी प्रमाण है । इस
 विषयासे सासादन सम्पन्नदर्शनके मोहनीयका अक्षय्य और उत्कृष्ट काल कहा है । मत्पन्नान
 और मिथ्यादर्शनका समान काल देकर मिथ्यादर्शनोंके मोहनीय कर्मका अक्षय्य और उत्कृष्ट
 काल मत्पन्नानियोंके अक्षय्य और उत्कृष्ट कालके समान कहा है । छेप कथन सुगम है ।

६३ संज्ञीमार्गणाके अनुवासे संज्ञी जीवोंके मोहनीय विमत्तिका अक्षय्य काल सुहाम-
 वमप्रमाण और उत्कृष्ट काल सौ प्रपत्त सागर है । संज्ञी जीवोंके मोहनीय अवि-
 मत्तिका अक्षय्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । असंज्ञी जीवोंके मोहनीय विमत्तिका
 काल एकेन्द्रिय जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—कोई एक असंज्ञी जीव संज्ञी क्षणिकामें उत्पन्न होकर पुनः असंज्ञी हो जाये
 तो उसके संज्ञी होनेका अक्षय्य काल सुहामवमप्रमाण पाया जाता है । तथा कोई एक
 असंज्ञी जीव महियोंमें उत्पन्न होकर और वहाँ सौ प्रपत्त सागर काल तक परिभ्रमण करके
 असंज्ञी हो जाये तो उसके संज्ञी होनेका उत्कृष्ट काल सौ प्रपत्त सागर पाया जाता है ।
 इस विषयासे संज्ञी जीवके मोहनीय कर्मका अक्षय्य और उत्कृष्ट काल कहा है । भोजमोहका
 जो अक्षय्य और उत्कृष्ट काल है वही संज्ञी जीवोंके मोहनीयके अभावका अक्षय्य और उत्कृष्ट
 काल जानना चाहिये । अस्तित्वोंमें एकत्रियोंका काल सुषय है इसलिये अस्तित्वोंमें
 मोहनीय कर्मका काल एकेन्द्रियोंमें मोहनीय कर्मके कालके समान पताया है ।

आहार मार्गणाके अनुवासे आहारक जीवोंके मोहनीय विमत्तिका अक्षय्य काल तीन
 समय कम सुहामवमप्रमाण है । और उत्कृष्ट काल अगुस्के अमक्यातवें भागप्रमाण है ।
 आहारी जीवके मोहनीय अविमत्तिका अक्षय्य और उत्कृष्ट काल मनुष्योंके समान है ।
 अनाहारियोंके मोहनीय विमत्तिका काल कार्यकालयोगियोंके समान है । तथा मोहनीय
 अविमत्तिका काल ओषके समान है । इतनी विशेषता है कि मोहनीय अविमत्तिका
 अक्षय्य काल धीम समय है ।

णवरि, जह० तिण्णि समया ।

एव कालो समत्तो ।

§ ६४. अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य । ओघेण विहत्तीणं णत्थि अतर । एवं जाव अणाहारएत्ति अप्पणो पदाणं चित्तिउण वत्तव्वं ।

एवमंतरं समत्तं ।

§ ६५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण विहत्ती अविहत्ती० णियमा अत्थि । एव मणुस्स-मणुसपज्जत्त-मणुसिणी-पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-तिण्णिमण०-तिण्णिवाचि०-कायजोगि-ओरा-

विशेषार्थ—एक पर्यायमें आहारकका सबसे जघन्य काल तीन समय कम खुदाभव-ग्रहणप्रमाण है । तथा उत्कृष्ट काल अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण है जो कि असंख्या-तासख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रमाण होता है । इस विवक्षासे आहारक जीवके मोहनीय कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा है । मनुष्योंमें मोहनीय कर्मके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल ऊपर कह आये हैं वही आहारकोंके मोहनीयके अभावका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । विशेष बात यह है कि यहा चौदहवें गुणस्थानका काल घटाकर कथन करना चाहिये, क्योंकि चौदहवें गुणस्थानमें जीव अनाहारक होता है । ऊपर कर्मणकाययोगमें मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट काल तीन समय कह आये हैं वही अनाहारकोंके मोहनीय कर्मका जघन्य काल जानना चाहिये । अनाहारकके मोहनीयके अभावका जो जघन्य काल तीन समय बतलाया है वह प्रतर और लोकपूरण समुद्धातकी अपेक्षासे कहा है । तथा अनाहारकके मोहनीय अविभक्तिका उत्कृष्ट काल सादि-अनन्त होगा क्योंकि सिद्ध होनेपर भी जीव अनाहारक ही रहता है ।

इसप्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ६४. अंतराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इसीप्रकार गति मार्गणासे लेकर अनाहारक मार्गणातक अपने अपने पदोंका चिन्तवन करके व्याख्यान करना चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीयका क्षय होकर पुनः उसकी प्राप्ति नहीं होती अतः ओघ और आदेशसे मोहविभक्तिका अन्तर काल नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार अन्तर समाप्त हुआ ।

§ ६५. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा विचार करने पर मोहनीय विभक्ति और मोहनीय-अविभक्ति नियमसे है । इसीप्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिणी पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन मनोयोगी

लिय०-समद०-सुकृते०-मवसिद्धिय०-संस्मादि०-[सुहृत्संस्माद्दि] आहारि०-अथा
हारपि वचन्व ।

§ ६६ मणुसअपञ्च० सिया विहृत्तियो सिया विहृत्तिया । एष घेठध्वियमिस्स०
आहार० आहारमिस्स०-सुहुम०-उवसम०-सासण०-संस्मामिच्छादिदि पि वचन्व । वे
मण०-वेवधि० सिया सव्वे जीवा विहृत्तिया, सिया विहृत्तिया च अविहृत्तियो च,
सिया विहृत्तिया च अविहृत्तिया च, एष तिणि मगा । एवमोरालियमिस्सं०-[कम्म-
इय०]-आमिणि०-सुद०-ओहि०-मणपञ्चव० चक्खु अचक्खु० ओहिर्वसम० सण्ण
और वे ही तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी सयत्, सुक्ख सेत्यावाले, मग्ग,
सम्मद्विदि, क्षायिकसम्यमृत्ति आहारत् और अनाहारकके कहना चाहिये । अर्थात् उक्त
मार्गणा वाले जीव नियमसे मोहनीय कर्मसे मुक्त भी होते हैं और मोहनीय कर्मसे रहित
भी होते हैं ।

विशेषार्थ-ग्यारहवें गुणस्थान तक सभी जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त होते हैं और शीघ्र
क्यायसे लेकर सभी जीव मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं । उपर्युक्त मार्गणाओंमें ग्यारहवेंसे
नीचेके और ऊपरके गुणस्थान समझ हैं अतः इनमें सामान्य प्रकृपणाके अनुसार मोहनीय
कर्मसे मुक्त और मोहनीय कर्मसे रहित जीव बन जाते हैं ।

§ ६६ अस्समपवोत्तक मसुप्पेमि क्वाचित् एक जीव मोहनीय विमत्तिवाळा है और
क्वाचित् अनेक जीव मोहनीयविमत्तिवाळे हैं । इसीप्रकार वैकियिकमिक्काययोगी, आहारक-
काययोगी, आहारकमिक्काययोगी, सुक्खसांपरायिकसंयत्, उपशमसम्मग्गद्विदि, सासाहन-
सम्मग्गद्विदि, और सम्यगिमध्याद्विदि जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ-ऊपर जितनी मार्गणाए कही हैं वे सब साध्य हैं । अर्थात् उक्त मार्गणा-
वाले जीव कभी होते और कभी नहीं होते । जब इन मार्गणाओंमें जीव होते हैं तो कभी
एक जीव होता है और कभी अनेक जीव होते हैं । इसी अपेक्षासे उक्त मार्गणाओंमें
मोहनीय कर्मसे मुक्त एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो मग कह हैं ।

असत्त्व और समय इन दो मनोयोगी और इन्हीं दो वचन योगी जीवोंमें क्वाचित्
सभी जीव मोहनीय विमत्तिवाळे हैं । क्वाचित् बहुत जीव मोहनीय विमत्तिवाळे और एक
जीव मोहनीय विमत्तिवाळ्य है । क्वाचित् बहुत जीव मोहनीय विमत्तिवाळे और बहुत
जीव मोहनीय विमत्तिवाळे हैं । इस प्रकार तीन मग होते हैं । इसीप्रकार औदारिक-
मिक्काययोगी अर्मेजकाययोगी मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी, अविज्ञानी सत पर्यवज्ञानी, चसु-
हर्त्तनी, लज्जसुवर्त्तनी, अविहृत्तनी और सभी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ-औदारिकमिक्काययोग और अर्मेजकाययोगको छोड़कर ऊपर जितनी
(१)-दि (पु ९) वा-स विद्धि बालय वा-स वा । (२)-एव (पु ४)
वा-स ।-सत्त्व वैश्वानरमिस्स वा-स वा ।

त्ति वत्तव्वं । अवगदवेद० मिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तियो च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च एव तिण्णि भंगा । एवमकसायि-जहाक्खाद० । सेससव्वमग्गणासु विहत्तिया णियमा अत्थि ।

पाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

मार्गणाएँ गिना आये हैं वे बारहवें गुणस्थान तक होती हैं । तथा बारहवा गुणस्थान सान्तर है । कभी इस गुणस्थानमे एक भी जीव नहीं होता तथा कभी अनेक जीव होते हैं और कभी एक जीव होता है । जब इस गुणस्थानवाला एक मी जीव नहीं होता तब उक्त मार्गणाओंमे कदाचित् सभी जीव मोहनीयविभक्तिवाले हैं यह पहला भंग बन जाता है । जब बारहवें गुणस्थानमे एक जीव होता है तब उक्त मार्गणाओंमें कदाचित् अनेक जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीय अविभक्तिवाला है यह दूसरा भंग बन जाता है । तथा जब बारहवें गुणस्थानमें अनेक जीव होते हैं तब उक्त मार्गणाओंमें कदाचित् अनेक जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं और अनेक जीव मोहनीय अविभक्तिवाले हैं यह तीसरा भंग बन जाता है । पर औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगमें मोहनीय अविभक्तिका कथन करते समय सयोगिकेवली गुणस्थानकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । यद्यपि सयोगिकेवली गुणस्थानमे सर्वदा बहुत जीव रहते हैं । पर औदारिक-मिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग सयोगिकेवलियोंके समुद्धात अवस्थामे ही होता है । और सयोगिकेवली जीव सर्वदा समुद्धात नहीं करते । तथा सयोगिकेवली जीव जब समुद्धात करते हैं तो कदाचित् एक जीव समुद्धात करता है और कदाचित् अनेक जीव समुद्धात करते हैं । अतः इस अपेक्षासे औदारिकमिश्रकाययोगी और कर्मणकाययोगी जीवोंके मी उक्त प्रकारसे तीन भंग हो जाते हैं ।

अपगतवेदी जीवोंमे कदाचित् सभी जीव मोहनीय अविभक्तिवाले हैं । कदाचित् अनेक जीव मोहनीय अविभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीय विभक्तिवाला है । कदाचित् अनेक जीव मोहनीय अविभक्तिवाले और अनेक जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं, इस प्रकार तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार कषायरहित जीवोंके और यथाख्यातसयत्तोंके भी कथन करना चाहिये । शेष सभी मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव नियमसे होते हैं ।

विशेषार्थ—अपगतवेदी जीव नौवें गुणस्थानके सवेद भागसे आगे होते हैं । उनमे क्षपकश्रेणीके दसवें गुणस्थान तकके जीव और उपशमश्रेणीके जीव मोहनीय विभक्तिवाले हैं । अतः जब मोहनीय कर्मसे युक्त अवेदी जीव नहीं पाया जाता है तब मुख्यतः सयोग केवलियोंकी अपेक्षा सभी अवगतवेदी जीव मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं, यह पहला भंग बन जाता है । जब नौवेंके अवेद भागसे लेकर दसवें गुणस्थान तक कोई एक ही जीव मोहनीय कर्मसे युक्त पाया जाता है तब 'कदाचित् अनेक अपगतवेदी जीव

§ ६७ मागामागानुगमेण दुबिहो णिहेमो ओषेण आदेसेष यं । [तत्थ] ओषण विहसि० सम्बजीवाण कवडिओ मागो । अणत्ता मागा । अबिहसि० सम्बनीवाणं कवडिओ मागो ? अणत्तिममागो । एव कायसोमि-ओरालिय०-ओरालिय मिस्स०-कम्मइय० अचक्खुद० मवसिद्धि०-आहार अणाहारएत्ति षत्तव्व ।

§ ६८ मणुसगदीए मणुस्सेसु बिहसि० सम्बजीवा० कवडिओ मागो ? अस खेत्ता मागा । अबिहसिया सम्बजीवाण केव० मागो ? असखेज्जिमागो । एव पच्चिं दिय-पच्चिदियपज्जत्त-त्तस-त्तसपज्जत्त-पच्चमण०-पच्चवधि०-आमिणि०-सुद०-ओहि०-

मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं और एक जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त होता है यह दूसरा भग बन जाता है । तथा जब नीचके अवेद मागसे लेकर ग्यारहवें गुणस्वानतक बहुतसे जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त पाये जाते हैं सब बहुतसे अपगतवेदी जीव मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं और बहुतसे जीव मोहनीय कर्मसे सहित भी होते हैं यह तीसरा भग बन जाता है । इसी प्रकार कयावरहित जीवोंके और पपाइयात सप्ततोंके एक हीन भग होते हैं । पर यहां 'एक जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त होता है या बहुतसे जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त होते हैं' ये विकल्प उपशान्तमोह गुणस्वानकी अपेक्षा ही कइना चाहिये । इस प्रकार ऊपर विन मार्गणा विद्येपोंमें मोहनीय कर्मसे मुक्त होने और न होनेका कथन कर जाते हैं उन मार्गणास्वानोंको छोड़कर छेप कितने भी मार्गणाओंके अवाप्तर मेव हैं उनमें जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त ही होते हैं ।

इसप्रकार माना जीवोंकी अपेक्षा भगविषय नामका अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ६७ मागामागानुगमकी अपेक्षा निर्वेद्य सो प्रकारका है ओपनिर्वेद्य और आवेश निर्वेद्य । उनमेंसे ओपनिर्वेद्यकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने माग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने माग हैं ? अनन्तवें मात्र प्रमाण हैं । इसीप्रकार कामयोगी औदारिककामयोगी, औदारिकमिश्रप्रय योगी कामप्रययोगी अचक्षुदसैनी मध्य आहारक और अनाहारक जीवोंके भी कथन करना चाहिये ।

विद्येपार्थ-ऊपर कितनी भी मार्गणायें गिनाई हैं उनका प्रमाण अनन्त होते हुए भी उनमेंसे बहुभाग प्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे मुक्त हैं और अनन्तवें मागप्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं अतएव एक मार्गणाओंकी प्ररूपणा ओषके समान कही गई है ।

§ ६८ मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव समस्त मनुष्योंके कितने माग-प्रमाण हैं ? अस्वक्यात बहुभागप्रमाण हैं । मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सब मनुष्योंके कितने मागप्रमाण हैं ? अस्वक्यातवें मागप्रमाण हैं । इसीप्रकार पचेत्त्रिव पचेत्त्रिपत्त

चक्रबुदंसण-ओहिदंसण-सुकले-सणिण ति वत्तव्वं । मणुपज्जत्त-मणुसिणीसु विहत्ति० सन्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जा भागा । अविहत्ति० केवडिओ भागो ? संखेज्जदिभागो । एवं मणपज्जत्त-संजदाणं वत्तव्वं । जहाक्खादेसु विहत्तिया सन्व जीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्जदिभागो । अविहत्तिया संखेज्जा भागा ।

§ ६६. अवगदवेद० विहत्ति० सन्वजी० केव० ? अणतिमभागो । अविहत्ति०

प्रस, त्रसपर्याप्त, पाचो मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि-
ज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवविदर्शनी, शुक्लेऽयक और संज्ञी जीवोंके भी कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—मनुष्यगतिमे मनुष्य जीव असख्यात हैं । उनमेसे बहुभाग मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और असख्यातैक भागप्रमाण क्षीणमोही जीव मोहनीय कर्मसे रहित है । मनुष्योंके अतिरिक्त ऊपर और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे भी इसीप्रकार व्यवस्था जानना चाहिये । क्योंकि, उनमेसे प्रत्येक मार्गणाका प्रमाण असख्यात होते हुए भी असख्यात बहुभागप्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और असख्यात एक भागप्रमाण क्षीणमोही जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं ।

मनुष्यपर्याप्त और योनिमती मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव मनुष्य पर्याप्त और योनिमती मनुष्योंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । मोहनीय अवि-
भक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसीप्रकार मनःपर्यय-
ज्ञानी और सयतोंका भी कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—पर्याप्तमनुष्य, योनिमतीमनुष्य, मनःपर्ययज्ञानी और संयत इन चारों राशियोंका प्रमाण संख्यात होते हुए भी इनमे मोहनीय कर्मसे युक्त जीव बहुत होते हैं और मोहनीय कर्मसे रहित जीव अल्प होते हैं । इसीलिये इन चारों स्थानोंमे मोहनीय विभक्तिवाले जीव संख्यात बहुभागप्रमाण और मोहनीय अविभक्तिवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण कहे हैं ।

यथाख्यात संयतोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सब यथाख्यातसयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने भाग-
प्रमाण हैं ? संख्यात बहुभागप्रमाण हैं ।

विशेषार्थ—यथाख्यात सयम ग्यारहवें गुणस्थानसे चौदहवें गुणस्थान तक होता है । उसमे मोहनीय कर्मसे युक्त जीव ग्यारहवें गुणस्थानवाले ही होते हैं, शेष मोहनीयसे रहित है जो कि ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंसे संख्यातगुणे हैं । इसीलिये ऊपर यह कहा है कि संख्यातवें भागप्रमाण मोहनीय विभक्तिवाले और संख्यात बहुभागप्रमाण मोहनीय अवि-
भक्तिवाले यथाख्यातमयत जीव होते हैं ।

§ ६६ अपगतवेदियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्व अपगतवेदी जीवोंके कितने भागप्रमाण है ? अनन्त एक भागप्रमाण है । मोहनीय अविभक्तिवाले जीव कितने भागप्रमाण

सम्बन्धी० क्व० ? अणता भागा । एव अकसाय सम्मादिष्टि-स्रष्ट्य० वत्तव्य । सेसाण मग्गणाण णचि भागाभागो एगपदत्तादो ।

एष भागाभागो ममतो ।

६७० परिमाणानुगमेण दुबिहो जिदेसो ओपेण आदमेण य । तत्त ओपेण मोह पयदीण विहत्तिया अबिहत्तिया च क्वत्तिया ? अणता । एषमणाहारीण वत्तव्य ।

६७१ आदेसण निरयगईए पेरइण्णु मोह० विहत्ति० क्वत्ति० ? असंखज्जा । एव हे ? अनन्त बहुभागप्रमाण हे । इसीप्रकार अकपायिक सम्बन्धदिष्टि और शायिक सम्बन्धदिष्टिबोके कथन करना चाहिये । ये ऊपर कितनी भी मागणार्थे कह आये हैं उनसे अतिरिक्त छेप मार्गणाथोमें भागाभाग नहीं होता है, क्योंकि उनमें एक स्थान पाया जाता है ।

विशेषार्थ—अपगतपद्विबोमें नौबे गुणस्थानक अक्षरभागसे लेकर सभी गुणस्थानबर्ती और गुणस्थानाधीन जीबोंका प्रहण कर लिया है । अतः उनमें मोहनीय विभक्तिवास अनन्तबे भागप्रमाण और मोहनीय अविभक्तिवास अनन्त बहुभागप्रमाण जीव कह हैं । परी क्वत्तया अकपायिक सम्बन्धदिष्टि और शायिक सम्बन्धदिष्टिबोके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये । विद्यत काल यह है कि कपायरहित जीव ग्वाहबे गुणस्थानस और सम्बन्धदिष्टि तथा शायिकसम्बन्धदिष्टि जीव नौबे गुणस्थानत होत हैं । अतः उनका मागभाग कदत समय तम उस गुणस्थानसे लेकर भागभाग करना चाहिये । प्रारम्भसे लेकर यहाँ जिन मार्गणाथानोंका भागभाग कहा गया है उन्हें छोड़कर छेप सभी मागणार्थानोंमें एक स्थान ही पाया जाता है अतः वहाँ भागाभाग नहीं बन सकता है ।

इसप्रकार मागभाग अनुयोगद्वार समान हुआ ।

६७० परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देस दा प्रकार हे ओपनिज्ज आर भावनिर्देश । उनमें ओपकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवास जीव और माहनीय अविभक्तिवासे जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार अनाहारक जीबोंत भी कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—ग्राहबे गुणस्थानक पदस कितने भी समान जीव हैं वे सब माहनीय कर्मस युक्त हैं । और ग्राहबे गुणस्थानस लेकर सभी जीव मोहनीय कर्मस रहित हैं । इन दोनों शक्तिबोध प्रमाण अनन्त है अतः ऊपर मोहनीय विभक्तिवासे जीव और मोहनीय अविभक्तिवासे जीव अनन्त कह गये हैं । अनाहारकोंमें विभक्तिवास प्राप्त हुए जीव मोहनीय कर्मस युक्त होते हैं और प्रतर तथा मोहपूर्ण सद्बुद्धागत सयोन वेवसी अयाग-वेवसी तथा सिद्ध जीव मोहनीय रहित दान हैं । ये दोनों ही अनाहारक शक्तियाँ अनन्त हैं इसलिए ऊपर मोहनीय कर्मस युक्त और मोहनीय कर्मस रहित अनाहारक जीबोंका कथन ओपपत्त्यकाके समान कहा है ।

६७१ आदेसस नरकगतिमें शारदिष्टिबोमें मोहनीय विभक्तिवासे जीव कितने हैं ? असा

सत्तसु पुढवीसु । सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुरस अपज्जत्त-देव० भवणादि जाव अत्रग-
इदंताणं सव्वविगल्लिदिय-पंचिदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पुढवि०-आउ०-[तेउ०]
वाउ०-वादरपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-वादरआउ०-पज्जत्तअपज्जत्त-वादरतेउ०-पज्जत्त-
अपज्जत्त-वादरवाउका०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुम पुढवी०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुमआउ०-
पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुमतेउ०-पज्जत्तअपज्जत्त-सुहुमवाउ०-पज्जत्तअपज्जत्त-वादरवणप्फदि-
पत्तेय०-पज्जत्तअपज्जत्त-वादरणिगोदपदिट्ठिद०-पज्जत्तअपज्जत्त-वेउव्विय०-वेउव्विय-
मिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विभंग०-सज्जासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदग०-उवमम०-सासण०-
सम्मामिच्छादिट्ठीणं वत्तव्व ।

§ ७२. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु विहत्तिं केवडिं ? अणता । एवं मच्चएइंदिय०-
वणप्फदि०-वादर० पज्जत्त अपज्जत्त-सुहुम० पज्जत्त अपज्जत्त-णिगोद० वादर० पज्जत्त
ख्यात हैं । इसीप्रकार सार्तो पृथिवियोंमें कथन करना चाहिये । तथा सभी पचेन्द्रिय
तिर्यंच, मनुष्य लब्धपर्याप्त, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव,
सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, त्रस लब्धपर्याप्त, पृथिवीकायिक, अप्कायिक,
तैजस्कायिक, वायुकायिक, वाटर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त,
वादर अप्कायिक, वादर अप्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर तैजस्कायिक, वादर तैजस्का-
यिक पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त,
सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म
अप्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म तैजस्कायिक, सूक्ष्म तैजस्कायिक पर्याप्त और अपर्याप्त
सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक
शरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर तथा इनके
पर्याप्त और अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभग-
हानी, सयतासयत, तेजोलेइयावाले, पद्मलेइयावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि,
सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकी असख्यात होते हैं और प्रत्येक नरकके नारकी भी
असख्यात ही होते हैं । तथा वे सब मोहनीय कर्मसे युक्त ही होते हैं । इसीलिये ऊपर
मोहनीय कर्मसे युक्त सामान्य और विशेष नारकियोंका प्रमाण असख्यात कहा है ।
अनन्तर जो मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें भी प्रत्येकका प्रमाण असख्यात है और वे सब
मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं, अतः उनका कथन नारकियोंके समान कहा है ।

§ ७२. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।
इसीप्रकार सभी एकेन्द्रिय जीव, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक तथा उनके
पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सामान्यनिगोद

अपञ्चत-सुहृम०पञ्चत अपञ्चत-अर्धसयवेद-वचरि क्ताय-मदि-सुद अण्पाणि-असं
 चद० विण्णिलेस्सा-अभवसिद्धिय-मिच्छादृष्टि-असण्णित्ति वत्तम् ।

‡ ७३ मणुसर्गर्षे मणुस्सेसु विदत्ति० केवढि० ? असखेज्जा । अविदत्ति०संखेज्जा ।
 एव पंचिदिय पंचिदियपञ्चत-तस-सप्तपञ्चत-पचमण०-पचवचि०-आमिणि०-सुद
 बोदि०-ववसुदसण ओद्विदसण-सुक्खे० सण्णित्ति वत्तम् । मणुसपञ्च० मणुसिणीसु
 विदत्ति० अविदत्ति० केवढि० ? सखेज्जा । एवं मणपञ्चव०-संभदा० वत्तम् ।

‡ ७४ सम्बद्धवेसु विदत्ति० केवढि० ? सखेज्जा । एवमाहार०-आहारमिस्स०
 सामाज्य-खेदोपहावण परिहारविमुद्धि-सुहृमसांपराइयसज्जदाण वत्तम् ।

वावरनिगोद तथा इनके पयात्त और अपर्मात्त सूक्ष्म निगोद तथा इनके पर्यात्त और
 अपर्मात्त, नपुसकषेदी, क्रोध, मान माया और लोभ कपात्तवाले, मत्तज्ञानी, भ्रुताज्ञानी,
 असंयत, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले अभव्य, मिष्यादृष्टि और असंझी जीवोंके
 कहना चाहिये ।

विशेषार्थ-विर्यचोका प्रमाण अमत्त होते हुए भी वे सबके सब मोहनीय कर्मसे युक्त
 होते हैं । इसीप्रकार ऊपर और कितने मार्गणात्त्वान गिनाये हैं वे सब अनन्तराग्नि प्रमाण
 हैं और मोहनीय कर्मसे युक्त हैं । अतः उनका कथन विर्यचोके समान कहा है ।

‡ ७३ मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मोहनीय विमत्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।
 तथा मोहनीय अविमत्तिवाले जीव संख्यात हैं । इसीप्रकार पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्यात्त, व्रत,
 व्रतपर्यात्त, पांचों मनोबोगी पांचों ध्यानयोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, सुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,
 चक्षुर्ज्ञानी, अवधिर्ज्ञानी, सुक्खलेश्यावाले और संझी जीवोंको कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ-सामान्य मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात है उनमें असंख्यात जीव मोहनीय
 कर्मसे युक्त हैं और संख्यात क्षीणमोहनीय जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं । ऊपर जो और
 मार्गणार्थ गिनाये हैं उनमेंसे प्रत्येकमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये ।

पर्यात्त मनुष्य और मनुष्यविषयोंमें मोहनीय विमत्तिवाले और मोहनीय अविमत्तिवाले
 जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार मनःपर्यवज्ञानी और संकतोके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ-पर्यात्त मनुष्य मनुष्यिणी मनःपर्यवज्ञानी और सपत जीवोंका प्रमाण संख्यात
 है । इसमें संख्यात बहुभाग प्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं और संख्यात एक मात्र-
 प्रमाण जीव मोहनीय कर्मसे रहित हैं ।

‡ ७४ सर्वायसिद्धिके देवोंमें मोहनीय विमत्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।
 इसीप्रकार आहारकफायबोगी आहारकमिम्कफायबोगी, सामायिकसंयत, खेदोपस्थापनासंयत,
 परिहारविमुद्धिसंयत, और सूक्ष्मसांपराय संवतोके कथन करना चाहिये ।

१७५. कायजो० विहत्ति० केत्तिया ? अणता । अविहत्ति० मंगेज्जा । ग्व-
मोरालिय०-ओरालियमिस्म०- इम्मइय०-अनवरु०-भवसिद्धि०-आहारएत्ति वचन्व ।

१७६. अपगतवेद० विहत्ति० केत्ति० ? मंगेज्जा । अविहत्तिया केत्तिया ?
अणता । ग्वमकमा० वचन्वं । मग्गादिट्ठी० विहत्ति० केत्ति० ? अमंगेज्जा । अविहत्ति०

विशेषार्थ-जिस प्रकार मर्धाभि विद्धि के देव मर्यादा होते तब भी वे सब मोहनीय कर्मसे
युक्त होते हैं । इसीप्रकार उपर जो नय शेष मार्गणास्थानोंमें भी जानना चाहिये ।

१७५. काययोगियोंमें मोहनीय विभक्तियाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । तथा
मोहनीय अविभक्तियाले जीव मर्यादा हैं । इसीप्रकार औत्तरिककाययोगी, औत्तरिकमिश्र-
काययोगी, कर्मणकाययोगी, अचक्षुर्जनी, भव्य और आहारकोंमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ-काययोगियोंमें प्रमाण अनन्त हैं । तथा उनमें मोहनीयकर्मसे युक्त और
मोहनीय कर्मसे रहित दोनों प्रकारके जीव पाये जाते हैं । जो प्राणियों और तदर्थें गुण-
स्थानवर्ती जीव हैं वे मोहनीय कर्मसे रहित हैं, अतः उनका प्रमाण मर्यादा है और शेष
ग्यारह गुणस्थानवर्ती जीव मोहनीय कर्मसे युक्त हैं, अतः उनका प्रमाण अनन्त है । औत्तरि-
ककाययोगियोंका कथन भी इसीप्रकार समझना चाहिये । कर्मणकाययोगियोंमें पहले,
दूसरे और चौथे गुणस्थानमें विषदहनिको प्राप्त मोहनीय कर्मसे युक्त जीव लेना चाहिये ।
प्रत्येक समयमें अनन्त जीव विषदहनिको प्राप्त होते हैं, इस नियमके अनुसार उनका
प्रमाण अनन्त होता है । कर्मणकाययोगियोंमें प्रतर और लोत्तपृग्ण समुद्रान्तो प्राप्त
सयोगेत्तली मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं । वे मर्यादा ही हैं । औत्तरिकमिश्रकाययो-
गियोंमें नवीन शरीर धारण करनेके प्रथम समयसे लेकर अनन्तकाल तक पर्यन्त नचित
हुए पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थानके तिर्यच और मनुष्योंका प्रदण करना चाहिये ।
वे अनन्त हैं और मोहनीय कर्मसे युक्त होते हैं । तथा कपाटमसुद्रातको प्राप्त औत्तरिक
मिश्रकाययोगी मोहनीय कर्मसे रहित जानना चाहिये । उनका प्रमाण मर्यादा ही है ।
अचक्षुदर्शनियोंमें प्राग्भसे लेकर ग्यारह गुणस्थान तकके जीव मोहनीय कर्मसे युक्त और
वारहवें गुणस्थानके जीव मोहनीय कर्मसे रहित जानना चाहिये । भव्य और आहारकोंमें
भी ग्यारह गुणस्थानके जीव मोहनीय कर्मसे युक्त और शेष मोहनीय कर्मसे रहित जानना
चाहिये । इतना विशेष है कि मोहनीय कर्मसे रहित आहारकोंमें वारहवें और तेरहवें
गुणस्थानके ही जीव होते हैं चौदहवेंके नहीं ।

१७६. अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीय विभक्तियाले जीव कितने हैं ? मर्यादा है ।
मोहनीय अविभक्तियाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार कपायरहित जीवोंके कथन
करना चाहिये । सम्यग्दृष्टियोंमें मोहनीय विभक्तियाले जीव कितने हैं ? असम्यादा हैं ।
मोहनीय अविभक्तियाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके भी इसीप्रकार

केचिया ? अणता । एवं खड्यसमाह्वीण वत्तम्ब ।

एष परिमाण समघ ।

§ ७० खेचानुगमेण दुविहो णिरेसो, ओपेय्य आदेसेण य । तस्य ओपेण मोह विहसि० फेपडि खेचे ? सम्बलोगे । मोहअविहसि क्व० खेचे ? लोगस्स अत्तंखेज्ज दिमाणे, असंखेज्जसु वा मागेसु, सम्बलोगे वा । एव क्खययोगि-मवसिद्धिय अणाहारिणि ।

कथन करणा चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मसे युक्त अपगतवेदी जीव नैवि गुणस्थानके अवेदमागसे ग्याहर्षे गुणस्थान तक और मोहनीय कर्मसे युक्त कयापरहित जीव उपशान्तमोह गुणस्थानमें ही पाये जाते हैं । अतएव इन दोनोंका प्रमाण सख्यात कहा है । तथा शेष सभी ऊपरके गुणस्थानवर्ती और सिद्ध जीव अपगतवेदी और अकपायी होते हुए मोहनीय कर्मसे रहित होते हैं अतः इन दोनोंका प्रमाण अनन्त कहा है । ससारस्य सम्पत्तियों और ध्यायिक-सम्पत्तियोंका प्रमाण असख्यात है किन्तु इसमें सिद्धोंका प्रमाण मित्रकर अनन्त कहा है । इन दोनोंमें मोहनीय कर्मसे युक्त जीवोंका ग्रहण करते समय चौथे गुणस्थानसे लेकर ग्याहर्षे गुणस्थान तकके जीव ही लेना चाहिये । अतः सम्पत्ति और ध्यायिकसम्पत्तियोंमें मोहनीय कर्मसे युक्त जीव असख्यात होते हैं । तथा मोहनीय कर्मसे रहित जीव अनन्त होते हैं ।

इसप्रकार परिमाणानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ७१ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है—प्रोचनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मोहनीय विमत्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । मोहनीय अविमत्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके अंतख्यातबंध भाग क्षेत्रमें लोकके अन्तर्गत बहुभाग प्रमाण क्षेत्रमें और सर्व लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार क्खयोगी मन्थ और अन्नाहारी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—वर्तमान निवासस्थानको क्षेत्र कहते हैं । वह जीवोंकी उत्थान, समुदाय और उपपत्तरूप अथवाओंके भेदसे तीन प्रकारका होता है । उत्थानके उत्थानस्थान और विहारस्थान इस प्रकार दो भेद हैं । समुदाय ही वेदना, कयाय, वैश्रियिक, मारणाश्रिक, तैजस आहारक और केवलिके भेदसे सात प्रकारका है । यहाँ जीवोंकी उत्तरभेदरूप इन इस अथवाओंमें प्रत्येक पक्षी अपेक्षा क्षेत्रका विचार न करके सामान्य-रीतिसे विचार किया गया है । अतः जिस स्थानमें जिस पक्षी अपेक्षा अणुष्ट क्षेत्रकी समावृत्त है उसका ही सामान्य प्ररूपणमें ग्रहण कर लिया गया है । मोहनीय विमत्तिवाले जीवोंके क्षेत्रका कथन करते समय सिध्दाष्टि जीवोंकी प्रधानता है, क्योंकि, सिध्दाष्टि जीवोंका वर्तमान निवास स्थान सर्वलोक है । सासादन सम्पत्ति गुणस्थानसे लेकर उपशान्त मोह तकके

§ ७८. आदेशेण गिरयर्गईए गोरइएसु मोहविहत्ति० केव० खेत्ते ? लोगस्स असंखे-
ज्जदिभागे । एवं सव्वणोरइय-सव्वर्पंचीदियतिरिक्ख-मणुस अपज्जत्त-सव्वदेव-सव्वविग-
लिंदिय-पांचीदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-वादरपुठवि०पज्जत्त-वादरआउ०पज्जत्त-वादर-
तेउ०पज्जत्त-वादरवणप्फदि०पत्तेय०पज्जत्त-वादरणिगोदपदिष्टिदपज्ज०-वेउच्चिय०-वेउ-
च्चियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-तामाइय-छेदो०-पग्घिा०-
सुहुम०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छेत्ति वत्तव्वं ।

मोहनीय विभक्ति वाले जीवोंकी प्रधानता नहीं है, क्योंकि उनका वर्तमान निवास स्थान लोकका असख्यातवा भाग है । मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके क्षेत्रका प्ररूपण करते समय ऊपर तीन प्रकारका क्षेत्र कहा है । उनमे लोकका असख्यातवा भागप्रमाण क्षेत्र क्षीणमोह, समुद्धातरहित केवली या दढ और कपाट समुद्धातको प्राप्त केवली, अयोगकेवली और सिद्ध जीवोंके क्षेत्रकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि, इनका वर्तमान निवास लोकके असख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें है । लोकका असख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्र प्रतरसमुद्धातकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि, प्रतरसमुद्धातको प्राप्त केवलीने, जगश्रेणीप्रमाण जगप्रतरोंमेसे ६३३१० $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{2}$ $\frac{3}{4}$ $\frac{5}{8}$ योजन प्रमाण जगप्रतरोंको घटा देने पर जो लोकका बहुभाग प्रमाण क्षेत्र रहता है उसे वर्तमान कालमें स्पर्श किया है । तथा सर्वलोक क्षेत्र लोकपूरण समुद्धातको प्राप्त केवलीके वर्तमान निवासकी अपेक्षासे कहा है । तथा जिन स्थानोंकी प्रधानतासे ओघक्षेत्रका कथन किया है वे स्थान काययोगी, भव्य और अनाहारी जीवोंके भी पाये जाते हैं, अतः इनका क्षेत्र ओघक्षेत्रके समान कहा है ।

§ ७८. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमे मोहनीय विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार सभी प्रथमादि सातों नरकोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्थच, लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, त्रस लब्धपर्याप्त, वादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर अप्कायिक-पर्याप्त, वादर तैजस्कायिकपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वादरनिगोद-प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काय-योगी, आहारकमिश्रकायोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभगज्ञानी, सामायिकसयत, छेदोप-स्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायसयत, सयतासयत, तेजोलेश्यावाले, पद्म-लेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंके लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—ऊपर कहे गये मार्गणास्थानोंमें सभव पदोंके दिखलानेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है—

१७६ तिरिक्खुगईए तिरिक्खेसु मोहविहत्ति० केवटि खेचे ? सम्बलोए । एव

मार्गजास्यान	स्व स्व	वि स्व	वेद०	रुपा	बैकि.	तै०	आ	मा	एव
समी नारकी पचेन्द्रिय ति प० पर्याप्त वि प० बोनिमती ति, समी इव उपराम स, सामाइन, श्रीवेदी	"	"	"	"	"	×	×	"	"
पुरुपपेदी वेदकसम्प गृह्णति, पीत लेइया वाले पद्ये	"	"	"	"	"	"	"	"	"
वैकिकिककाययोग विभगज्ञा०	"	"	"	"	"	×	×	"	×
विक्रमत्रय मा और पर्याप्त	"	"	"	"	×	×	×	"	"
विक्रमत्र स० पचे ति० स मनु० छ० पचे छ०, वा पू० प वा० छ० प० प्र बन प सम्प्र० म ब प० प्रम छ	"	×	"	"	×	×	×	"	"
सामासिक क्षेत्री०	"	"	"	"	"	"	"	"	×
सयतामषठ परिहा०	"	"	"	"	"	×	×	"	×
सम्बन्धिमध्याहृष्टि	"	"	"	"	"	×	×	×	×
आहारककाययोग	"	"	×	×	×	×	"	"	×
आहारकमिथ	"	×	×	×	×	×	×	×	×
सूक्ष्मसांपराय	"	×	×	×	×	×	×	"	×

इसप्रकार कुछ मार्गजाओंमें जोड़के अनुसार जो पर बताया है उन सब परोक्षी ज्येष्ठा वर्तमान क्षत्र सामान्य छोड़के असम्भालके भागपमाण ही होता है अधिक नहीं ।

१७६ त्रियंभगतिये त्रियंभोमे मोहनीय विभक्तिबाल जीय धितने क्षत्रमें रहत है ? सर्व

सव्वण्डदिय-पुढवि०-वादरपुढवि०-वादरपुढवि०अपज्जन-आउ०-वादरआउ०-वादर-
 आउ०अपज्ज०-तेउ०-वादर तेउ०-वादरतेउ०अपज्ज०-त्राउ०-वादरत्राउ०-वादरत्राउ०-
 अपज्ज०-सुहुमपुढवि०सुहुमपुढवि०पज्ज०-सुहुमपुढवि०अपज्ज०सुहुमआउ०-सुहुमआउ०-
 पज्ज०-सुहुमआउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुम तेउ०पज्ज०-सुहुमतेउ०अपज्ज०-सुहुम-
 वाउ०-सुहुमवाउ०पज्ज०-सुहुमत्राउ०अपज्ज०-त्रणफ्फदि०-वादरत्रणफ्फदि०-वादरत्रण-
 फ्फदि०पज्जतापज्जत-सुहुमवणफ्फदि०-सुहुमत्रणफ्फदि०पज्जतापज्जत-णिगोद०वादर
 णिगोद०-वादरणिगोदपज्जतापज्जतसुहुमणिगोद-सुहुमणिगोदपज्जतापज्जत-णउस०-
 चत्तारिकसाय०-मदिसुदअण्णाणि-असंजट०-तिलेम्सा०-अभममिद्वि०-मिन्हादि०-
 असण्णि चि वत्तव्व ।

लोकमे रहते हैं। इमीप्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवी-
 कायिक अपर्याप्त, अप्कायिक, वादर अप्कायिक, वादर अप्कायिक अपर्याप्त, तैजस्कायिक, वादर
 तैजस्कायिक, वादर तैजस्कायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक
 अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त,
 सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म तेजसायिक,
 सूक्ष्म तेजसायिक पर्याप्त, सूक्ष्म तेजसायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक
 पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर
 वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म
 वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, वादरनिगोद, वादरनिगोद पर्याप्त, वादरनिगोद अपर्याप्त,
 सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, नपुसकवेत्ती, क्रोध, मान, माया
 और लोभ ये चार कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्ण, नील और कापोन
 ये तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असज्ञी जीवोंके सर्वलोक क्षेत्र होता है।

विशेषार्थ-इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमे कहा कितने पद हैं इसका ज्ञान करानेके लिये
 पहले नीचे कोष्ठक दिया जाता है-

मार्गणा	स्व स्व	वि स्व	वे	क	वैकि	तै	आहा	मा	उ
क्रोध, मान, माया व लोभ	”	”	”	”	”	”	”	”	”
सामान्य तिर्यंच, नपुसक, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि व असज्ञी	”	”	”	”	”	×	×	”	”

एकेन्द्रिय, तेजकायिक व वायुकायिक	"	×	"	"	"	×	×	"	"
बाहर एकेन्द्रिय बाहर तेजकायिक, बाहर वायुकायिक बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बाहर तेजकायिक पर्याप्त	"	×	"	"	"	×	×	"	"
एकेन्द्रिय सूक्ष्म, सूक्ष्म वायु, सूक्ष्म तेज व इनके पर्याप्त और अपर्याप्त पृथिवी अथ बनस्पति और निगोद तथा इनके सूक्ष्म और पर्याप्त अपर्याप्त	"	×	"	"	×	×	×	"	"
बाहर एकेन्द्रिय, बाहर तेज, बाहर वायु ये तीनों अपर्याप्त बाहर पृथिवी बाहर अथ, बाहर बनस्पति, बाहर निगोद और इनके पर्याप्त अपर्याप्त	"	×	"	"	×	×	×	"	"

कोष्ठक मन्मर एक के चारों कपाववाले बिहारवत्सत्त्वान बैक्रियिक तेजस और वाहारक समुदायको छोड़कर शेष पांच पक्षोंसे सर्व छोकरमें रहते हैं, क्योंकि इन पांच पक्षोंमें रहनेवालोंका प्रमाण अनस्त है और वे सब छोकरमें पाये जाते हैं। मन्मर दोष सामान्य विर्यष आदि जीव बिहारवत्सत्त्वान और बैक्रियिकसमुदायको छोड़कर शेष पांच पक्षोंसे सर्व छोकरमें रहते हैं। इसका कारण पहलेके समान जानना चाहिये। मन्मर तीनके जीव बैक्रियिक समुदायको छोड़कर शेष पांच पक्षोंसे सर्व छोकरमें रहते हैं। इनमेंसे तेजकायिक और वायुकायिक जीवोंका प्रमाण अनकपाल छोकर है इसलिये एकेन्द्रियोंके समान इनके भी सर्व छोकरमें पाये जानमें कोई आपत्ति नहीं है। मन्मर चारके बाहर एकेन्द्रिय आदि और मन्मर छहकर बाहर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि जीव केवल मारणात्मिक समुदाय और उपपाद परकी अपेक्षा सब शक्तमें पाय जाते हैं। क्योंकि ये जीवराशियाँ बाहर होनेसे सब जगह रह तो नहीं सकती हैं किन्तु भी य जब सूक्ष्म जीवोंमें जाकर लक्ष्म होनेकर पहले मारणात्मिक समुदाय करत है तब इनका वर्तमान क्षेत्र सब छोकर पाया जाता है। तथा छोकरके किसी भी मागसे सूक्ष्म जीव जाकर जब इन बाहरोंमें लक्ष्म

§ ८०. मणुसगईए मणुसेसु मणुसपज्ज०-मणुगिणि० मोह०विहत्ति०के०खेत्ते०? लोग० असंखे० भागे । अविहत्ती० ओघभंगो । एव पांचिंदिय-पांचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज०-अवगदवेद०-अकसा०-संजद-जहाक्खाद०-सुक्क०-सम्मादि०-सहयसम्मादिट्ठि होते हैं तव भी इनका सर्व लोक क्षेत्र पाया जाता है । इस प्रकार इनका मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पद की अपेक्षा सर्व लोकमें वर्तमान निवास घन जाता है । नग्नर पाचके एकेन्द्रिय सूक्ष्म आदि जीव अपने पाचों पदोंसे सर्वलोकमें रहते हैं । इस कोष्ठरुके अनुसार सभी जीवोंका जिन पदोंकी अपेक्षा सर्व लोक क्षेत्र नहीं पाया जाता है, वह प्रकृतमें उपयोगी नहीं है इसलिये नहीं लिखा है । विशेष जिज्ञासुओंको उसे चेत्रानुयोग द्वारसे जान लेना चाहिये ।

§ ८० मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मोहनीयविभक्तिवाले मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंका कथन ओवके समान है । इसीप्रकार पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, अपगतवेदी, अकषायी, सयत, यथाख्यातसयत, शुक्ल लेइयावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें स्थित जीवोंमें किनके कितने पद होते हैं, इसका ज्ञान करानेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है—

	स्व	वि स्व.	वे	क	वै	तै	आ	के	मा.	उ
मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, शुक्ललेइया, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक स	”	”	”	”	”	”	”	”	”	”
सयत	”	”	”	”	”	”	”	”	”	×
मनुष्यनी	”	”	”	”	”	×	×	”	”	”
अकषायी, अपगतवेदी, यथाख्यात सयत	”	”	×	×	×	×	×	”	”	×

मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले ये सभी जीव केवल समुद्घातके प्रतर और लोक पूरणरूप अवस्थाओंको छोड़कर शेष सभव सभी पदोंके द्वारा लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । तथा उक्त सभी जीव प्रतरसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असख्यात बहुभागोंमें और लोकपूरण समुद्घातकी अपेक्षा सर्वलोकमें रहते हैं ।

मोहनीय विभक्तिवाले बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके

सि वचस्व । पादरवात् ० पञ्च ० विहसि ० केव ० ? सोम ० संखेन्वदिमागे । बहु
 माणकाले मारबंतिय-उववादपदेहि वि अस्थि सम्बलोगो, लोगस्त संखेन्वदिमागे खेव
 मारबंतियं मेहमाब सप्यन्वमाबजीबाण खेव पहाणमायुबलंमादो । पचमण ०-पचवसि ०
 मोह ० विहसि ० अविहसि ० केव ० खेचे ? लोगस्त असखे ० मागे । एवमापिणि ०
 सुद ०-ओहि ०-मनप ०-चक्खु ०-ओहि ०-सन्धिपि वचस्व । ओराळिय ० विहसि ० केव ०
 खेचे ० ? सम्बलोगे । अविहसि ० मनमोगिमंगो । एवमोराळियमिस्त ० अचक्खु ० आहार
 एपि वचस्व । कम्मइय ० विहसि ० केव ० खेचे ? सम्बलो ० । अविहसि ० केव ० खेचे ?
 असखेन्वेसु वा मागेयु सम्बलोगे वा । एवं खेचं समत्त ।

संख्यातर्षे माग क्षेत्रमें रहते हैं । इनका मारणान्तिक समुदाय और उपपाद पर्वोकी अपेक्षा
 भी वर्तमानकालमें सर्व लोकक्षेत्र नहीं है, क्योंकि इसमें लोकके संख्यातर्षे माग प्रमाण क्षेत्रमें
 ही मारणान्तिक समुदाय और उपपादवाले जीवोंकी ही प्रधानता देखी जाती है ।

विशेषार्थ—बाहर वायुकायिक पर्वोत जीव वर्तमान कालमें स्वस्वानस्वस्वान, वेदना,
 कपाय, मारणान्तिक और उपपादकी अपेक्षा लोकके संख्यातर्षे मागप्रमाण क्षेत्रमें ही रहते
 हैं, क्योंकि पांच राजु छम्मे और एक राजु मतररूप क्षेत्रमें ही इनका आवास पाया जाता
 है, जो कि लोकके संख्यातर्षे माग प्रमाण ही होता है । यद्यपि वायुकायिक जीव एक क्षेत्रके
 बाहर भी मारणान्तिक समुदाय करते हैं और उक्त क्षेत्रसे बाहरके अन्य जीव भी इनमें
 वस्यत्र होते हैं पर इनका प्रमाण स्वल्प है । अतः इतने मात्रसे इनका क्षेत्र लोकके संख्यात
 पट्टमाग या सर्वलोक नहीं बन सकता है । तथा वैकिकिय समुदायकी अपेक्षा पादर
 वायुकायिक पर्वोत जीव लोकके असंख्यातर्षे मागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं ।

पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगियोंमें मोहनीय विमत्तिवाले और मोहनीय
 अविमत्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातर्षे माग प्रमाण क्षेत्रमें रहते
 हैं । इसीप्रकार मतिज्ञानी, भुतज्ञानी, अचधिज्ञानी, मनःपर्वयज्ञानी, जम्बुवर्षीनी, अचधि
 वर्षीनी और सखीजीवोंके कृष्णा चाहिये । औदारिककाययोगियोंमें मोहनीय विमत्तिवाले जीव
 कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । अविमत्तिवालोंमें मनोयोगियोंके समान भग
 है । इसीप्रकार औदारिक मिम्कययोगी, अचम्बुदर्शनी और आहारक जीवोंके कृष्णा
 चाहिये । कर्मणकाययोगियोंमें मोहनीय विमत्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व
 लोकमें रहते हैं । मोहनीय अविमत्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यात
 पट्टमाग और सर्वलोक क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ—पहले ऊपर कहे गये मार्गवाक्यानोंमें समग्र पर्वोके विखणनेके लिये कोष्टक
 दिया जाता है—

§ ८१. फोसणाणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० विहत्तिएहि केव० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । अविहत्तिएहि केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असं० भागो, असंखेज्जा भागा सव्वलोगो वा । एवं कायजोगि-भवसिद्धिय-अणाहारि त्ति वत्तव्वं ।

मार्गणा	स्व	वि	वे	क	वै	तै	आ	मा	के	उप.
पाचों मनोयोगी पाचों बचनयोगी और मनःपर्ययज्ञानी	"	"	"	"	"	"	"	"	×	×
मति श्रुत, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, चक्षुद०, अचक्षुद० सञ्जी	"	"	"	"	"	"	"	"	×	"
औदारिक काययोगी,	"	"	"	"	"	"	×	"	"	×
औदारिकमिश्रका०	"	×	"	"	×	×	×	"	"	"
आहारकका०	"	"	"	"	"	"	"	"	"	"
कार्मणकाययोगी	"	×	"	"	×	×	×	×	"	"

इन मनोयोगी आदि मार्गणाओंमें क्षेत्रका कथन ऊपर किया ही है अतः जहा स्वस्थान आदि जिस पदकी अपेक्षा विभक्तिवाले या सभव अविभक्तिवाले जीवोंके जितना क्षेत्र सभव हो उसे घटित कर लेना चाहिये । कथनमे और कोई विशेषता न होनेसे यहा नहीं लिखा है । यहा कार्मणकाययोगमें पाच पद बतलाये हैं । पर तत्त्वतः यहां केवल समुद्रात और उपपाद ये दो पद ही सभव हैं । शेष तीन पद अपेक्षा विशेषसे कहे गये हैं ।

इस प्रकार क्षेत्रप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ८१. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? सर्वलोक स्पर्श किया है । मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवा भाग, असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक स्पर्श किया है । इसीप्रकार काययोगी, भव्य और अनाहारकोंके स्पर्शनका कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—स्पर्शनमें त्रिकालविषयक क्षेत्रका ग्रहण किया है । पर भविष्यकालीन क्षेत्र और अतीतकालीन क्षेत्रमे कोई अन्तर नहीं है दोनों समान हैं, अतएव इन दोनोंमेंसे एक अतीतकालीन क्षेत्रके कह देनेसे दूसरेका ग्रहण अपने आप हो जाता है, अतः उसे

१२२ आदेसेय विरयगईए पेरइयेसु विहाति० कत्र० खेचं फोसिद ? सोग० अस० मागो, छ चोइस मागा वा देयबा। पठमाए पुठवीए खेचमंगो। विदिपादि जाव सच मिथि विहाति० केच० खेच फोसिद ? सोग० अस० मागो एक व तिण्णि चचारि पच प्राव पूबक् नही कहा हे। किन्तु अतीतमें ही गर्मित कर लिया हे। इसीप्रकार जहां एक ही स्थानमें दो स्पर्शन क्षेत्र कहे गये हैं उनमेंसे पहला प्रायः वर्तमानकालकी अपेक्षा और दूसरा अतीतकालकी अपेक्षा कहा गया हे। यद्यपि ओपकी अपेक्षा मोहनीय कर्मसे युक्त जीवोंके केवळिसमुद्रातको छोड़कर शेष सभी पर पाये जाते हैं, पर यहां मिथ्यात्व गुणस्थानकी प्रधानतासे स्पर्शन कहा गया हे क्योंकि, मोहनीय कर्मसे युक्त मिथ्यादृष्टि जीव सर्वलोकमें पाये जात हैं, इसलिये इन जीवोंने अपनेमें संभव पदोंसे वर्तमान और अतीत दोनों कालोंकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया हे। मोहनीय कर्मसे रहित जीवोंके स्वस्थानस्वस्थान, बिहारवत्स्वस्थान और केवळि समुद्रात व तीन पद पाये जाते हैं। इनमेंसे स्वस्थानस्वस्थान, बिहारवत्स्वस्थानको प्राप्त हुए तथा बण्ड और कपाट समुद्रात गत मोहनीय कर्मसे रहित जीवोंने वर्तमान और अतीत दोनों कालोंकी अपेक्षा लोकके असम्भ्यातवें मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया हे। प्रवर समुद्रात गत एक जीवोंने दोनों कालोंकी अपेक्षा लोकके असम्भ्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया हे। तथा लोकपूर्ण समुद्रातगत एक जीवोंने दोनों कालोंकी अपेक्षा सर्वलोकका स्पर्श किया हे। सामान्य काययोगी और मध्य जीवोंके स्पर्शनके कथनमें एक कथनसे कोई विशेषता नहीं हे। अमाहारकोंके कथनमें बोधी विशेषता हे। जो इसप्रकार हे—मोहनीय कर्मसे युक्त अमाहारक जीव विमद्गतिमें ही पाये जाते हैं, अतएव इनके स्वस्थान वेदना, कपाय और वपपाद ये चार पद होते हैं। इन चारों ही पदोंसे एक जीवोंने दोनों कालोंकी अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया हे। मोहनीय कर्मसे रहित अमाहारक जीव प्रवर और लोकपूर्ण समुद्रात गत सयोगी और अयोगी जिन होते हैं। इनमेंसे अयोगी जिन दोनों कालोंकी अपेक्षा लोकके असम्भ्यातवें मागप्रमाण क्षेत्रको स्पर्श करते हैं। प्रवर और लोकपूर्णकी अपेक्षा स्पर्शन ऊपर ही कहा जा चुका हे।

१२२ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीय विमच्छिबाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया हे ? लोकके असम्भ्यातवें माग और वैशोमद्द बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया हे। पहली प्रविषीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान कहना चाहिये। दूसरी प्रविषीसे छेकर सातवी प्रविषी तक मोहनीय कर्मसे युक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया हे ? लोकका अर्धस्भ्यातवें माग प्रमाण क्षेत्र और दूसरी प्रविषीकी अपेक्षा वैशोन एक बटे चौदह राजु, तीसरी प्रविषीकी अपेक्षा वैशोन दो बटे चौदह राजु, चौथी प्रविषीकी अपेक्षा वैशोन तीन बटे चौदह राजु, पांचवी प्रविषीकी अपेक्षा वैशोन चार बटे चौदह राजु, छठी प्रविषीकी अपेक्षा वैशोन पांच बटे चौदह राजु और सातवी प्रविषीकी अपेक्षा वैशोन

छ चौदस भागा वा देसणा ।

छह वटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंका वर्तमानकालीन स्पर्शन कहते समय पहले नरकके नारकियोंका प्रमाण प्रधान है, क्योंकि, यहा छह नरकोंके नारकियोंसे असंख्यातगुणे नारकी पाये जाते हैं । यद्यपि सातवें नरकके नारकियोंकी अवगाहना पहले नरकके नारकियोंकी अवगाहनासे बहुत बडी है फिर भी उसकी यहा विवक्षा नहीं की गई है, क्योंकि, क्षेत्र लाते समय सातवें नरकके नारकियोंकी संख्याको उनकी अवगाहनासे गुणित करने पर जो क्षेत्र उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा पहले नरकके नारकियोंकी संख्याको उनकी अवगाहनासे गुणित करने पर अधिक क्षेत्र होता है । नारकियोंके स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनका कथन करने पर इन स्थानोंको प्राप्त नारकियोंकी जितनी राशिया हों उन्हें प्रमाण घनागुलके संख्यातवें भाग-मात्र अवगाहनासे गुणित कर देने पर विवक्षित पदकी अपेक्षा अपने अपने क्षेत्रका प्रमाण आ जाता है, जिसे लोकसे भाजित करने पर लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शन होता है । इतना विशेष है कि वेदना और कषायसमुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लाते समय मूल अवगाहनाको नौगुणी और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लाते समय मूल अवगाहनाको सख्या-तगुणी कर लेना चाहिये । तथा इन स्थानोंको प्राप्त जीवोंकी सख्या भी मूल राशिके सख्यातवें भाग प्रमाण होती है । अर्थात् जहा जितनी राशि हो उसके सख्यातवें भाग प्रमाण जीव विहार, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घात करते हैं अधिक नहीं । मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लाते समय भी पहले नरकके नारकियोंकी सख्याकी अपेक्षा ही उसे लाना चाहिये, क्योंकि, यहा मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीव शेष छहों नरकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा अधिक हैं । पर उनके विग्रहकी अपेक्षा क्षेत्रकी लम्बाई राजुके असख्यातवें भाग मात्र ही पाई जाती है । मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवोंकी राशि ऋजुगति और विग्रहगतिकी अपेक्षा दो प्रकारकी होती है । उनमेंसे यहा विग्रहकी अपेक्षा मारणान्तिक समुद्घात करनेवाली राशि ही विवक्षित है, क्योंकि, इसके क्षेत्रकी लम्बाई ऋजुगतिकी अपेक्षा मारणान्तिक समुद्घात करनेवाले जीवके क्षेत्रकी लम्बाईकी अपेक्षा बहुत अधिक पाई जाती है । एक समयमें जितने जीव विग्रहगतिसे अन्य पर्यायमें जाते हैं उनके असंख्यातवें बहुभागप्रमाण जीव मारणान्तिक समुद्घात करते हैं । इसलिये इस राशिको आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमण-कालसे गुणित कर देने पर मारणान्तिक समुद्घात करने वाली जीवराशिका प्रमाण आ जाता है । पुन. इसे राजुके असख्यातवें भागप्रमाण लम्बे और अपनी अवगाहनासे नौगुणे प्रतररूप क्षेत्रसे गुणित कर देने पर मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शनका प्रमाण आ

१८३ तिरिक्त्तगर्भे तिरिक्त्तसु खेचमंगो । एव नवगेवेज्जादि चाव सम्बद्ध०
 सम्ब एद्रदि०-पुडुवि०-बादरपुडुवि०-बादरपु०अप०-आउ०-बादरआउ०-पादरआउ
 अपन्ज०-तेउ०-बाद०तेउ०-बादरतेउ०अप० पाउ०-बादरपाउ०-पादरपाउ० अप०
 सुहुमपुदवि०-सुहु०पुदविपन्ज०-सु० पु०अपन्ज०-सुहुमाउ०-सुहुम आउपन्ज०-सु०
 आउ अपन्ज०-सु० तेउ०-सु० तेउ० पन्ज०-सुहु० तेउ० अपन्ज०-सुहुमपाउ०-सु०
 जाता है । जो छोकसे भाजित करने पर छोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है । एव
 पादकी अपेक्षा स्पर्शन छाले समय दूसरी पृथिवीकी अपेक्षासे छाना चाहिये । एक समयमें
 एवपादको प्राप्त होनेवाले जीवोंके प्रमाणको एक राजु सम्ब और तिरिक्त्तकी अबगाद्मासे
 मौगुणे प्रवर रूप क्षेत्रसे गुणित कर देने पर एवपादकी अपेक्षा स्पर्शन आ जाता है,
 जो छोकसे भाजित करने पर उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है । एव जो रूप
 भिन्न-भिन्न नरकोंकी प्रधानतासे स्पर्शन बद्धा गया है इसमें दोष नारकिवोंके स्पर्शनके
 मिच्छा देने पर भी वह छोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होता है । इसी प्रकार जतीत
 काष्ठकी अपेक्षा स्वस्थानस्वस्थान, बिहारबस्वस्थान, वेदना, कषाय और बैक्त्रियिक पदोंको
 प्राप्त सामान्य नारकिवोंका स्पर्शन क्षेत्र छोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर मारणा
 म्बिकसमुदाय और एवपादको प्राप्त हुए सामान्य नारकिवोंका स्पर्शन वेत्तोन नृद बने
 और राजु प्रमाण है, क्योंकि, मारणात्मिक समुदाय और एवपादकी अपेक्षा जतीतकाष्ठमें
 वेत्तोन तीन हजार योजन कम आनुपूर्विक योग्य मध्यछोकसे छेकर सातवें नरक तक
 सभी क्षेत्रका स्पर्शन किया है । विज्ञेयरूपसे विचार करने पर पहले नरकके स्पर्शन और
 क्षेत्रमें कोई अन्तर नहीं है । अर्थात् पहले नरकका स्पर्शन क्षेत्रके समान छोकका
 असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिये । द्वितीयादि नरकोंमें मारणात्मिक समुदाय और
 एवपादकी अपेक्षा जतीतकाष्ठकी स्पर्शनका कथन करते समय मध्यछोकसे उस उम नरक
 भूमि तक चितने राजु हों, वेत्तोन उतना स्पर्शन बद्धना चाहिये । दोष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन
 जोपके समान है ।

१८३ त्रिपञ्चगतिमें तिरिक्त्तमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान
 जानना चाहिये । नौ वेवेयकसे छेकर सर्वाथसिद्धि तकके पदोंका स्पर्शन भी इसीप्रकार अथात्
 क्षेत्रके समान जानना चाहिये । तथा सर्व एकन्द्रिय, पृथिवीकायिक, वायु पृथिवीकायिक
 वायु पृथिवीकायिक अपर्वात अर्थायिक वायु अर्थायिक वायु अर्थायिक अपर्वात
 अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक, वायु अग्निकायिक अपर्वात वायुकायिक वायु वायु
 कायिक, वायु वायुकायिक अपर्वात सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पञ्चान
 सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्वात सूक्ष्म अर्थायिक सूक्ष्म अर्थायिक पञ्चान, सूक्ष्म अर्था
 यिक अपर्वात, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पञ्चान सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्वात

वाउ०पज्ज०-सु० वाउ० अपज्ज०-वण०-वादरवण०-वाद० वणप्फदि पज्ज०-वाद०
 वण० अपज्ज०-सुहु० वण०-सुहु० वण० पज्जत्तापज्ज-णिगोद०-वादरणिगो०-वादर-
 णिगोद पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगो०-सु० णि० पज्ज० अपज्ज०-ओरालिय०-ओरा-
 लियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-णवुंसय०-चत्तारि-
 कसाय-मदिअण्णाण सुदअण्णाण-मणपज्जव०-सामाइय-छेदोवट्टावण-परिहारविसुद्धि-
 सुहुमसांपराइय-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा०-अभवसिद्धि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि०
 आहारि त्ति वत्तव्वं ।

सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक,
 वादर वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,
 सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,
 निगोद, वादर निगोद, वादर निगोद पर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म
 निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रि-
 यिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसक-
 वेदी, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मन-
 पर्ययज्ञानी, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्म सापरायसंयत,
 असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असञ्ची
 और आहारक जीवोंके स्पर्शनका कथन क्षेत्रके समान करना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें स्पर्शन सामान्यसे अपने अपने क्षेत्रके समान
 जानना चाहिये । तिर्यचोमे क्षेत्र सर्वलोक है स्पर्शन भी इतना ही है । नौ प्रैवेयकोंसे
 लेकर सर्वार्थ सिद्धितकके देवोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है स्पर्शन भी इतना
 ही है । सर्व एकेन्द्रियोंका क्षेत्र सर्वलोक है, स्पर्शन भी इतना ही है । ऊपर कहे गये
 पृथिवीकायिक जीवोंसे लेकर सूक्ष्म निगोद लब्धपर्याप्त जीवों तकका क्षेत्र सर्वलोक है,
 स्पर्शन भी इतना है । औदारिक काययोगी और औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंका क्षेत्र
 सर्वलोक है स्पर्शन भी इतना ही है । वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंका क्षेत्र लोकके असख्या-
 तवें भागप्रमाण है, स्पर्शन भी इतना ही है । आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी
 जीवोंका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण है, स्पर्शन भी इतना ही है । कर्मणकाय-
 योगी, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका क्षेत्र सर्वलोक है, स्पर्शन भी इतना
 ही है । मन-पर्ययज्ञानीसे लेकर सूक्ष्मसापरायसंयत जीवों तकका क्षेत्र लोकके असख्या-
 तवें भागप्रमाण है, स्पर्शन भी इतना ही है । असयत, से लेकर आहारी पर्यन्त जीवोंका
 क्षेत्र सर्वलोक है स्पर्शन भी इतना ही है । इन उपर्युक्त सभी मार्गणास्थानोंमें विशेष पदोंकी
 अपेक्षा स्पर्शनमें क्षेत्रसे जहा जो विशेषता हो वह स्पर्शन अनुयोगद्वारसे जान लेना चाहिये ।

५ = ४. सम्बन्धिदियतिरिक्त्वा० विहृति० क्व० खेत्त पोसिद् ? लोगस्त असंखे
 ज्जदिमागो, सम्बन्धो गो वा । एवं मणुसअपज्जत्त-सम्बन्धिगर्हिदिय-पन्धिदियअपज्जत्त
 तसअपज्जत्त-बादरपुड्ढवि० पज्ज०-बादरआठ० पज्जत्त-बादरतेउ० पज्ज०-बादरवगप्फद्दि
 पत्तेय० पज्ज०-बादरणिगोदपडिडिदपज्जत्ताण वत्तम् । बादरवाठ० पज्जत्त० विहृति०
 लोगस्त सखज्जदि मागो, सम्बन्धो गो वा । मणुस मणुसपज्जत्त-मणुसिणीयं विहृति०
 पन्धिदियतिरिक्त्वा मंगो । अविहृति० ओषमंगो ।

६ = ४ सर्वे पंचेन्द्रिय तिर्बन्धो मे मोहनीय विभक्तिवासे जीवोने क्तिन्ना क्षेत्र स्पर्श
 किया है ? छोकका असंख्यातवां मागप्रमाण क्षेत्र और सर्वछोक स्पर्श किया है । इसी
 प्रकार मनुष्य छम्प्यपर्याप्त सब विकलेन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय छम्प्यपर्याप्त, तस छम्प्यपर्याप्त बादर
 पृथिवीकायिक पर्याप्त बादर जम्भ्वयिक पर्याप्त बादर अग्निकायिक पर्याप्त बादर वनस्पति-
 कायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर मिगोव प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोके स्पर्श-
 नका कर्त्तन करता चाहिये ।

विशेषार्थ-पंचेन्द्रियतिर्बन्ध पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्बन्ध, चोनिमती पंचेन्द्रिय तिर्बन्ध और
 छम्प्यपर्याप्त पंचेन्द्रियतिर्बन्धोने वर्तमानमें अपने अपने समस्त पदोंके द्वारा छोकके असंख्या
 तवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इन्हीं चारों प्रकारके तिर्बन्धोने अतीत कालमें मारणांतिक
 समुद्रात् और उपपाद् पदकी अपेक्षा सर्वछोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, इन
 दोनों पदोंकी अपेक्षा इनका त्रसमासीके बाहर भी सर्वत्र सञ्चल देखा जाता है । तथा
 अतीत कालमें श्रेय पदोंके द्वारा एक चारों प्रकारके तिर्बन्धोने छोकका असंख्यातवां माग-
 प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है जिसका सम्बन्धो गो वा में आये हुए 'वा' पदसे समुच्चय कर
 लेना चाहिये । छम्प्यपर्याप्त मनुष्योंसे लेकर बादर मिगोव प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर तकके
 जीवोके स्पर्शनमें इन उपर्युक्त तिर्बन्धोके स्पर्शनसे कोई विक्षेपता नहीं है, इसलिये तिर्बन्धोके
 स्पर्शनके समान रूपर कहे गये श्रेय मार्गजातवानोंमें भी स्पर्शन समझना चाहिये ।

बादर बायुकायिक पर्याप्तको मे मोहनीय विभक्तिवासे जीवोने वर्तमानमें छोकका संख्या-
 तवां भाग प्रमाण क्षेत्र और सर्वछोक स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ-बादर बायुकायिक पर्याप्त जीवोका वर्तमान क्षेत्र का विचार क्षेत्रग्रहणामें
 किया है अतः बर्हासे जानना । तथा अतीत कालमें एक जीवोने मारणांतिकसमुद्रात् और
 उपपाद् पदकी अपेक्षा सर्वछोक स्पर्श किया है, क्योंकि, अतीतकालकी अपेक्षा इनका सर्व
 छोकमें गमन और छोकके किसी भी भागसे जाकर अन्य जीवोका इन्में उत्पन्न होना संभव
 है । तथा अतीत कालमें श्रेय पदोंके द्वारा इन जीवोने छोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका ही
 स्पर्श किया है जिसका 'सम्बन्धो गो वा' में आये हुए 'वा' पदसे समुच्चय कर लेना चाहिये ।

सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यविधोमें मोहनीय विभक्तिवासे जीवोका स्पर्शन

§ ८५. देवगईए देवेषु विहात्ति० केव० खेत्तं पोसिद । लोगस्स असंखेज्जदिभागो, अट्ट णव चोदसभागा वा देसणा । एवं सोहम्मीसाण देवाणं वत्तत्वं । भवणवासिय-
वाणवेंतर-जोइसियाणं केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो अद्दुट्ट अद्दु
पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके स्पर्शनके समान है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त तीनों प्रकारके
मनुष्योंका स्पर्शन ओघके समान है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यचोंका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण और सर्वलोक
कह आये हैं वही मोहनीय कर्मसे युक्त उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंका समझना चाहिये ।
तथा मोहनीय कर्मसे रहित उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका स्पर्शन लोकके असख्यातवें भाग
प्रमाण, लोकके असख्यात बहुभाग प्रमाण और सर्वलोक जानना चाहिये ।

§ ८५. देवगतित्तं देवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ?
लोकका असख्यातवा भाग, देशोन आठ बटे चौदह राजु और देशोन नौ बटे चौदह राजु क्षेत्र
स्पर्श किया है । सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंका स्पर्शन इसी प्रकार कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंने वर्तमान कालमें स्वस्थानस्वस्थान, विहारवस्वस्थान, वेदना, कषाय,
वैक्रियिक, मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका
स्पर्श किया है । स्वस्थानस्वस्थानपदकी अपेक्षा अतीतकालमें भी लोकके असख्यातवें भाग
प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अतीतकालमें विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और
वैक्रियिक पदोंकी अपेक्षा देशोन आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि,
नीचे तीसरी पृथिवी तक और ऊपर अच्युत कल्प तक देवोंका विहार देखा जाता है ।
यहा देशोनसे तीसरी पृथिवीके अन्तिम एक हजार योजन मोटे क्षेत्रका और देवोंके द्वारा
अगम्य प्रदेशका ग्रहण किया है । मारणान्तिक समुद्रातकी अपेक्षा देशोन नौ बटे चौदह
राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । क्योंकि, मारणान्तिक समुद्रातमें देवोंका मध्य लोकसे
नीचे दो राजु और ऊपर सात राजु इस प्रकार नौ राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श देखा जाता
है । उपपाद पदकी अपेक्षा देशोन छह बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।
यद्यपि मध्य लोकसे नीचे अन्वहुलभाग तक और ऊपर अच्युत कल्पसे आगे सातवीं राजुमें
भी देवोंका उपपाद देखा जाता है, फिर भी वह सब मिलाकर देशोन छह बटे चौदह
राजुसे अधिक क्षेत्र नहीं होता है, क्योंकि, सर्वत्र देवोंका उत्पाद आनुपूर्वीगत प्रदेशोंके
अनुसार ही होता है । सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंका स्पर्शन उपपादको छोड़कर धाकी
सब सामान्य देवोंके स्पर्शनके समान ही है ।

मोहनीय विभक्तिवाले भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? लोकका असख्यातवा भाग, कुछ कम साढे तीन बटे चौदह राजु, कुछ कम
आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।

गव चोइसमागा वा देखणा । सणकुमारादि खाव सहस्सारा पि विहचि० केव० खेच पोसिद । सोयस्स असखेज्जदिमामो, अइ चोइसमागा वा देखणा । आणद-याणद आरण-अणुद० विहचि० केव० खेच पोसिद । लोगस्स असखेज्जदिमामो, छ चोइस मागा वा देखणा ।

विशेषार्थ—उक्त चीनीं प्रकारके देशोंने वर्तमान काळमें संभव समी पर्वोकी अपेक्षा छोक्का असंख्यातवा भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीत काळमें स्वस्थानस्वस्थान और उपपाद पर्वकी अपेक्षा छोक्का असंख्यातवा भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । बिहारब स्वस्थान, वेदना, कयाप और बैकिमिक पर्वोकी अपेक्षा अपने आप देशोन सादे तीन बटे चौदह राजु और पर प्रयोगसे देशोन आठ बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । मयनमिक देश स्वर्ब बिहार करते हुए ऊपर सौभर्म-येरानकस्य तक और नीचे तीसरे नरक तक जाते हैं । तथा यदि कोई ऊपरका देश छेजाये तो ऊपर अच्युत कल्पतक जासकते हैं । इसप्रकार स्वप्रयोगसे देशोन सादे तीन बटे चौदह राजु और परप्रयोगसे देशोन आठ बटे चौदह राजु क्षेत्र हो जाता है । समुद्रावकी अपेक्षा देशोन नी बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । यहाँ नी राजुसे ऊपर साव राजु और नीचे दो राजु क्षेत्र छेना चाहिये ।

सानकुमार स्वर्गसे छेकर सहस्रार स्वर्ग तकके मोहनीय विमच्छिवाळे देशोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है । छोक्का असंख्यातवा भाग और देशोन आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—सानकुमारसे छेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देशोंने वर्तमान काळमें छोक्का असंख्यातवा भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । अतीतकाळमें स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा छोक्का असंख्यातवा भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । बिहारबस्वस्थान, वेदना, कयाप, बैकिमिक और मारनामिक पर्वोकी अपेक्षा देशोन आठ बटे चौदह भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, इनका नीचे तीसरे नरक तक और ऊपर अच्युत कस्य तक जाना जाना देना जाता है । उपपाद पर्वकी अपेक्षा सानकुमार-माहेन्द्र कस्यवासी देशोंने देशोन तीन बटे चौदह राजु अइ अछोचर कस्यवासी देशोंने देशोन सादे तीन बटे चौदह राजु, अन्तब अपिष्ठ-कस्यवासी देशोंने देशोन चार बटे चौदह राजु, शुक्र-महाशुक्र कस्यवासी देशोंने देशोन सादे चार बटे चौदह राजु और शवार-सहस्रार कस्यवासी देशोंने देशोन पांच बटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।

आनक-माणक और आरण-अच्युत कस्यवासी मोहनीय विमच्छिवाळे देशोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है । छोक्का असंख्यातवा भाग और देशोन छ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है ।

§ ८६. पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-विहत्ति० केव० खेत्तं पोसिदं ? लोगस असंखेज्जदिभागो अट्ट चौदस भागा वा देखणा, सव्वलोगो वा । अविहत्ति० केव० ? ओघभंगो । एवं पंचमण०-पंचवचि०-चक्खुदंसण०-सण्णित्ति वत्तव्वं । णवरि, अविहत्ति० खेत्तभंगो ।

विशेषार्थ—उक्त कल्पवासी देवोंने वर्तमान कालमें सभय सभी पदोंकी अपेक्षा लोकका असख्यातवा भाग प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । तथा अतीत कालमें स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षा लोकका असख्यातवा भागप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है । विहारवत्त्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदोंकी अपेक्षा देशोन छह वटे चौदह राजुप्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि इन आनतादि देवोंका चित्रा पृथिवीके उपरके तलसे नीचे गमन नहीं पाया जाता है । उपपादकी अपेक्षा आनत-प्राणत कल्पवासी देवोंने कुछ कम साढे पांच वटे चौदह राजु और आरण-अच्युतकल्पवासी देवोंने कुछ कम छह वटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि, मध्यलोकसे आनत-प्राणत कल्प साढे पाच राजु और आरण-अच्युत कल्प छह राजु है ।

§ ८६ पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमे मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? लोकका असख्यातवां भाग, त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वलोक क्षेत्र स्पर्श किया है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है ? ओघके समान स्पर्श है । इसी प्रकार पाचों मनो-योगी, पाचों वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और सञ्जी जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन पाचों मनोयोगी आदि जीवोंके मोहनीय अविभक्तिकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्तकोंमे मोह विभक्तिवाले-जीवोंने वर्तमानमें संभव सभी पदोंकी अपेक्षा लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अतीत कालमें स्वस्थानस्वस्थान, तैजस समुद्घात और आहारकसमुद्घातकी अपेक्षा लोकका असख्यातवा भाग स्पर्श किया है । विहारवत्त्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात और वैक्रियिकसमुद्घातकी अपेक्षा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि, सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिकसमुद्घात करते हुए उक्त जीव सर्वलोकमें पाये जाते हैं । तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमेंसे पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले जीव पहले समयमे समस्त लोकमें पाये जाते हैं । मोह अविभक्तिवाले उक्त जीवोंका वर्तमानकालीन और अतीत-कालीन स्पर्श ओघके समान है । अतः ओघप्ररूपणामे जो खुलासा किया है वह यहा समझ लेना चाहिये । विशेष वात यह है कि ओघप्ररूपणामे मोह अविभक्तिवाले जीवोंमें सिद्धोंका

५८७ इत्थि० पुरिस० विहासि० केव० खेच पोसिदं ? सोगस्त असंखेज्जदिमागो, अद्द सोदसमागा वा वेसणा, सम्बलोगो वा । एव विहगणाणीं पचम्ब । अबगद० विहासि० खेचमंगो । अबिहासि० ओपमंगो । एवमकसाइ०-सज्जद०-अहाकसाद० पचम्ब ।

भी ग्रहण किया है । पर यहाँ इनका ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि, वे समस्त कर्मोंसे रहित होते हैं, अतः उनमें पंचेन्द्रिय आदि व्यवहार नहीं होता । मोहनीय विभक्तिवाले चक्षुदर्शनी और संझी जीबोंका सभी पदोंकी अपेक्षा वर्तमानकाष्ठीन और अतीतकाष्ठीन स्पर्श पंचेन्द्रियवाहिके समान है । किन्तु पांशों मनोयोगी और पांशों बचनयोगी जीबोंके उपपाद पद नहीं होता, अतः इनका रोप पदोंकी अपेक्षा दोनों प्रकारक स्पर्श पंचेन्द्रियादिके समान ही है । पर पांशों मनोयोगी, पांशों बचनयोगी, संझी और चक्षुदर्शनी जीबोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीबोंक स्पर्श क्षेत्रके समान शोकका असम्भाव्यता भाग है, क्योंकि, केवलिसमुद्रावमें मनोयोग और बचनयोग नहीं होता । तथा केवली संझी और असंझी दोनों प्रकारके स्वपदेकसे रहित हैं । तथा चक्षुदर्शन बाह्यमें गुणात्मान तक ही होता है । अतः इनके शोकका असम्भाव्यता बहुभाग और समस्त शोक स्पर्श नहीं बन सकता ।

५८७ स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीबोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? शोकके असम्भाव्यतामें भाग, प्रसन्नाष्ठीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्वशोक क्षेत्रक स्पर्श किया है । इसी प्रकार विमंगं ज्ञानियोंके ज्ञान सेना चाहिये । अपगतवेदियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीबोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है, तथा मोहनीय विभक्तिवाले अपगतवेदी जीबोंका स्पर्श जोपके समान है । इसी प्रकार अकपायी, संयत और कपात्पात संयत जीबोंमें मोहनीयविभक्ति और मोहनीय विभक्तिवाले जीबोंका स्पर्शन कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीय विभक्तिवाले स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीबोंने वर्तमानकाष्ठीमें समस्त सभी पदोंकी अपेक्षा और अतीतकाष्ठीमें स्वस्थानस्वस्थान, तैजससमुद्राव और आहुरकसमुद्रावकी अपेक्षा शोकके असंभव्यतामें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीबोंके तैजस और आहुरकसमुद्राव नहीं होता है । तथा विहारकस्वस्थान, वेदनासमुद्राव, कपावसमुद्राव और वैक्रियिकसमुद्रावकी अपेक्षा प्रसन्नाष्ठीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रक स्पर्श किया है और मारणात्मिक समुद्राव तथा उपपादकी अपेक्षा सर्वशोक क्षेत्रक स्पर्श किया है । विमंग ज्ञानियोंके स्वस्थान-स्वस्थान, विहारकस्वस्थान, वेदन्य, कपाव, वैक्रियिक और मारणात्मिक समुद्राव ये कुछ पद होते हैं । स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीबोंके इन छह पदोंकी अपेक्षा जिस प्रकार वर्तमान और अतीत काष्ठीन स्पर्श कहा है वसी प्रकार विमंग ज्ञानियोंके ज्ञानमा चाहिये ।

§ ८८. आमिणिवोदिय०-मुद०-ओदि० विहति० के० गेचं० पोमिदं ? लोगस्य अमंखेज्जदिभागो अद्दु चोदस भागा वा देसुणा । अविहति० गेचमंगो । एउमोद्विदंमणीणं वत्तव्वं । संजदासंजद० विहति० के० गेचं० पोमिदं ? लोगस्य अमंखेज्जदिभागो, छ चोदस भागा वा देसुणा । तेउलेम्मा० मोहम्मभंगो । पम्मलेम्मा० सहम्ममारभगो । अपगतवेदियोमि मोहनीय विभक्तिवाले जीव ग्यारहवें गुणग्यान तक होते हैं जिनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श संभव पदोंकी अपेक्षा लोफके अमंख्यातवें भाग प्रमाण ही है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका दोनों प्रकारका स्पर्श ओघवें समान है, अतः ओघप्ररूपणाके समय जो गुलाभा पर आये है उसी प्रकार यहा भी कर लेना चाहिये । वससे इसमें कोई विशेषता नहीं । अकपायी आदि जीवोंका मोहनीयविभक्ति और मोहनीय अविभक्तिकी अपेक्षा वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श अपगपेणियोंके समान है । पदोंकी अपेक्षा जो विशेषता हो उसे यथायोग्य जान लेना चाहिये ।

§ ८८. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके अमंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उसी प्रकार अवधिदर्शनी जीवोंके स्पर्शन षट्ठना चाहिये ।

विशेषार्थ—इनके केवल समुद्घातको छोड़कर शेष नौ पद होते हैं । उनमेंसे मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंके मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण है । शेष सभी पदोंकी अपेक्षा वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्शन तथा मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण ही है । मोहनीय विभक्ति और मोहनीय अविभक्तिकी अपेक्षा इसमें कोई विशेषता नहीं है । पर मोहनीय अविभक्तिवाले उक्त जीवोंके एक स्वस्थानस्वस्थान पद ही होता है, शेष नहीं ।

संयतासंयतमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—अतीतकालमें मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा संयतासयतोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । क्योंकि, संयतासयत तिर्यंच और मनुष्य जीव अच्युत कल्प तक मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाये जाते हैं । शेष सभी प्रकारका स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण है ।

पीतलेइयामें सौधर्मके समान पद्मलेइयामें सहस्रारके समान और शुद्धलेइयामें संयतासयतोंके समान स्पर्शन है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके शुद्धलेइयामें ओघके

सुकलेस्ता० विहति० मज्जदासन्नदमंगो । अविहति० ओषमंगो । सम्मादिदि-सुर्य०
विहति० आमिणिबोहियमंगो । अविहति० ओषमंगो । वेदय० विहति० आमिणि-
बोहियमंगो । एवमुवसम०-सम्मामि० वत्तम् । सासण० विहति० केव० खेत्त
कोसिद ? लोगस्स असखेत्तदिमागो, अट्ट बारह चोइसमागा वा देखणा ।

एवं पोसण समत्त

§ ८६ कालानुगमेण दुविहो विरेसो, ओषेण आदेसण य । तस्य ओषेण मोह
विहतिपा अविहतिपा च कयचिं कालादो होंति ? सम्भदा । एव मणुस्स-मणुस्स
पन्नजत्त-मणुसिणी-पचिदिय-पचि० पन्नजत्त-तस-तसपन्न०-तिण्णि मण०-तिण्णि बधि०
कापजोगि-ओरासिय०-संनद-सुकले०-मज्जसिद्धि०-सम्मादिदि-सुर्य०-आहारि
अणाहारय चि वत्तम् । मणुस्सअपन्न० विहति० केव० कालादो होंति ? अह०
सुद्धामवमग्गइणं । उक्कस्सेण पठिदोवमस्स असखेत्तदि मागो । दोमण०-ओषचि०

समान स्पर्शन है । मोहनीय विमत्तिवाले सम्मगट्टि और क्षायिकसम्मगट्टि जीबोंके मति-
ज्ञानियोंके समान स्पर्शन है । तथा मोहनीय अविमत्तिवाले सम्मगट्टि और क्षायिक-
सम्मगट्टि जीबोंके ओषके समान स्पर्शन है । मोहनीय विमत्तिवाले वेदकसम्मगट्टि
जीबोंके मतिज्ञानियोंके समान स्पर्शन है । तथा इसी प्रकार वपशमसम्मगट्टि और सम्म
गुमिप्पाट्टि जीबोंके स्पर्शन जानना चाहिये । मोहनीय विमत्तिवाले सासाण सम्मग-
ट्टिबने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छेकके अर्धस्पातवें भाग क्षेत्रका और वसनालीके
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

इस प्रकार स्पर्शनानुसंगेण समाप्त हुआ ।

§ ८६ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मोहनीय विमत्तिवाले और मोहनीय अविमत्तिवाले जीबोंका कितना
काछ है ? सर्वकाछ है । इसीप्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त मनुष्यिणी पचेन्द्रिय,
पचेन्द्रियपर्याप्त व्रत व्रतपर्याप्त सामान्य, सत्त्व और अतुमय वे तीन मनोयोगी और वे ही
तीन बचनयोगी काययोगी, औदारिकअययोगी संयत सुकसेइयावाले मज्ज सम्मगट्टि
क्षायिकसम्मगट्टि आहारक और अन्नहारक जीबोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ-यहां मोहनीयविमत्तिवाले और मोहनीय अविमत्तिवाले जीबोंका नाना
जीबोंकी अपेक्षा काछ बतलाया है । सामान्यसे तो उक्त दोनों प्रकारके जीव सर्वदा ही ही ।
पर ऊपर बितनी मार्गवार्थ बतलाए हैं उनमें मी दोनों प्रकारके नामा जीव सर्वदा पाये
जाते हैं, इसीछिन्ने इसकी प्रकृपणाको ओषके समान कहा है ।

सम्मपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीय विमत्तिवाले जीबोंका कितना काछ है ? अपुण्यकाछ
सुद्धामवमहप्रमाव और कृच्छकाछ पत्थोपमके जसकवातवें भागप्रमाण है । इसका यह

विहत्ति० सन्वद्धा । अविहत्ति० जहणणेण एगसमओ, उक्कस्सेण अतोमुहुत्तं । ओरालिय-मिस्स० विहत्ति० सन्वद्धा । अविहत्ति० जहणणेण एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । एवं कम्मइय० । णवरि, अविहत्ति० जह० तिण्णिण समया । वेउन्वियमि० विहत्ति० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । आहार० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एव सुहुममांपराइय० । आहारमि० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

तात्पर्य है कि लब्धपर्याप्तकमनुष्य कमसे कम खुदाभवग्रहण प्रमाण कालतक और अधिकसे अधिक पत्न्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण काल तक निरन्तर अवश्य पाये जाते हैं इसके बाद उनका अन्तर हो जाता है । अत इसी अपेक्षासे लब्धपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उक्त काल कहा है ।

असत्य और उभय मनोयोगी तथा असत्य और उभय वचनयोगी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इसी प्रकार कर्मणकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कर्मणकाययोगियोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल तीन समय है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पत्न्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । आहारक काययोगी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार सूक्ष्मसापराधिक सयत जीवोंके जानना चाहिये । आहारक-मिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा असत्य और उभय ये दोनों मनोयोग और ये ही दोनों वचनयोग सर्वदा पाये जाते हैं । अत इनकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं यह कहा है । तथा बारहवें गुणस्थानकी अपेक्षा उक्त योगोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले भी जीव पाये जाते हैं । अत जिन जीवोंके उक्त दोनों मनोयोगों और वचनयोगोंके कालमें एक समय शेष रहने पर बारहवा गुणस्थान प्राप्त हुआ है उनके उक्त योगोंकी अपेक्षा जघन्यकाल एक समय बन जाता है । तथा उक्त योगोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उसकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । यहा यह शका होती है कि बारहवें गुणस्थानमें योगपरावर्तन नहीं होता, अतः यहा उक्त दोनों मनोयोग और वचन योगोंका जघन्यकाल एक समय नहीं कहना चाहिये । उसका यह समाधान है कि यहा एक योगसे योगान्तर नहीं होता, यह ठीक है

१६० अवगद० विद्वि० अह० एगसमओ, उक्त० अंतोमु० । अविद्वि० सम्प्रदा । एवमकसाय०—अज्ञात्वाद्० वत्तम् । आभिनि०—मुद० ओहि०—मणपञ्चब० पस्तु०—अचस्तु० ओहिदंसण०—सणि० विद्वि० सम्प्रदा । अविद्वि० अहण्युक्त० अंतोमु० । उक्तसम०—सम्पामि० वठवियमिस्समगो । सासण० विद्वि० अह० एगसमओ

कि भी मनोयोग और बचनयोगकी अपेक्षा अपने अन्तर भेदमें परावृत्त होनेमें कोई बाधा नहीं है । इसका यह तात्पर्य है कि मनोयोगसे बचनयोग या काययोग नहीं होता । इसी प्रकार अन्य योगोंकी अपेक्षा भी जान लेना चाहिये । पर मनोयोग या बचनयोगका एक अन्तर भेद होकर उसके स्थानमें दूसरा अन्तर भेद वा मर्यादा है । माना जीवोंकी अपेक्षा औदारिकमिश्र काययोग और कामजकाययोग सर्वदा पाये जाते हैं तथा इसमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव भी सर्वदा पाये जाते हैं, इसलिये इसकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका कुछ सर्वदा कहा है । पर मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके औदारिकमिश्र काययोग और कामजकाययोग सर्वदा नहीं होते । जब कबही केवलिसमुद्रपात करते हैं तब उनके कपाल समुद्रपातके समय औदारिकमिश्रकाययोग और मोहपूरणसमुद्रपातके समय कामजकाययोग होता है । जब यदि माना जीव एक साथ कबलिसमुद्रपात करते हैं तो इन दोनों योगोंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अपेक्षित क्रमसे एक समय और तीन समय पाया जाता है और यदि लगातार माना जीव कबलिसमुद्रपात करते हैं तो इन दोनों योगोंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अत्युत्पन्न मर्यादा समय पाया जाता है, क्योंकि अधिकसे अधिक मर्यादा समय तक ही माना जीव लगातार केवलिसमुद्रपात करते हैं । वैदिक मिश्रकाययोगी आदिवा काल भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये ।

१६० अपगतवेदियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उदयकाल एक समय और अत्युत्पन्न मर्यादा है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले अपगतवेदी जीव मर्यादा होते हैं । इसी प्रकार अचरणी और यथाक्यामसंयत जीवोंके कहना चाहिये ।

विद्येदार्य—अरुणमिथी अपेक्षा अपगतवेदियोंका उदयकाल एक समय और अत्युत्पन्न मर्यादा है । तथा बादरवे गुणस्थानस लेकर आगेके सभी मोहनीय अविभक्तिवाले जीव अपगतवेदी होते हैं इन अपेक्षामें इनका सर्वकाल कहा है ।

मनिप्रानी, अज्ञानी अविज्ञानी मनात्सर्वज्ञानी अच्युतानी, अच्युतानी अविज्ञानी और सभी जीवोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव मर्यादा होने हैं । तथा उक्त मार्गनाओंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका उदय और अत्युत्पन्न मर्यादा है । अरुणम अत्युत्पन्न और मर्यादाविधायि मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उदय और अत्युत्पन्न मर्यादा है । लगातारमर्यादाविधायि मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उदय और अत्युत्पन्न मर्यादा है ।

उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । गिरय० तिरिक्खगइ-आदिसेसाणं मग्गणाणं मोह-
विहत्तियाणं कालो सव्वद्दा ।

एवं कालो समत्तो ।

§ ६१. अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण विहत्ति०
अविहत्ति० णत्थि अंतरं, गिरंतर । एव मणुसतिय-पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्त-त्स-
त्सपज्ज०-तिण्णिमण०-तिण्णवत्ति०-कायजोगि०-ओरालिय०-सजद-सुक्क०-भव-
सिद्धिय०-सम्मादि०-खइय०-आहारि-अणाहारए त्ति वत्तव्व ।

§ ६२. आदेसेण गिरयगदीए णेरइएसु विहत्ति० णत्थि अंतर । एवं सव्वणेरइय०

उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा नरकगति और तिर्यंचगति आदि
शेष मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा होते हैं ।

विशेषार्थ—मतिज्ञान आदि मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्ति-
वाले दोनों प्रकारके जीव होते हैं । उनमेंसे मोहनीय विभक्तिवाले जीव तो सर्वदा पाये
जाते हैं पर मोहनीय अविभक्तिवाले जीव अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक पाये जाते
हैं, क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा भी बारहवें गुणस्थानका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्त-
र्मुहूर्त ही है । उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा जघन्य
और उत्कृष्टकाल वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके कालके समान है । नानाजीवोंकी अपेक्षा
सासादन सम्यग्दृष्टियोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें
भाग प्रमाण है । अतः सासादनकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका उक्त काल कहा है ।
ऊपर जिन मार्गणाओंका कथन कर आये उनसे अतिरिक्त नरकगति आदि प्रायः सभी
मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले ही जीव होते हैं । तथा वे मार्गणाएँ सर्वदा होती हैं
अतः उनमें रहनेवाले मोहनीयविभक्तिवाले जीवका काल भी सर्वदा कहा है ।

इस प्रकार कालानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

§ ६१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर-
काल नहीं है, क्योंकि वे सर्वदा पाये जाते हैं । इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यिणी
ये तीन प्रकारके मनुष्य, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनु-
भय ये तीन मनोयोगी और ये ही तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, संयत्त,
शुक्कलेइयावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, आहारक और अनाहारक जीवोंके
कथन करना चाहिये । अर्थात् इन मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले और मोहनीय अवि-
भक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये अन्तरकाल नहीं है ।

§ ६२. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका अन्तर-

सम्बन्धितिरि०—सम्बन्धेन०—सम्बन्ध-पद्मदिय०—सम्बन्धिगर्लितिय—पश्चिदियअपन्ञच—सस-
अपन्ञ०—पञ्चकय०—वेठविय०—सिष्णिबेद०—चचारिकसाय०—सिष्णि अण्णाणि—सामाहय०
छेदोव०—परिहार०—सन्नदासंज्ञद—असन्नद—पञ्चलेस्ता०—अमघसिद्धि०—वेदगसम्माइदि
मिष्णाइदि असिष्णिचि वचम्ब । मणुसअपन्ञ० अंतरं जह० एगसमओ, उक्क० पत्तिदो
वमस्स असखेज्जदिमागो । एव सासण०—सम्मामिच्छाइदीणं वचम्ब । दोमण०
दोवचि० विहचि० णत्थि अंतर, पिरतर । अविहचि० जह० एगसमओ, उक्क०
छम्मासा । एवमामिणि०—सुद०—अकसुद०—अचकसुद०—सम्भीर्ण वचम्ब ।

§ ६३ ओरालिपमिस्स० विहचि० णत्थि अतरं, पिरतरं । अविहचि० जह०
अस मही है । इसी प्रकार सभी मारकी, सभी विर्यच, सभी देव, सभी ऐकेन्द्रिय सभी विक्रि-
न्द्रिय, पचेन्द्रिय छम्पपर्याप्त, त्रस छम्पपर्याप्त, पांचों स्वावरकाय, बैक्किक्काययोगी, तीनों
वेदवाले, भेषादि चारों कयायवाले, चीन अज्ञानी, सामायिकसकत, छेदोपस्थापनासंघत, परि
हारविद्युदिसंघत, संघवासयत, असयत, कृष्णादि पांच छेरयावाले, अभय्य, वेदकसम्प्राइदि,
मिष्णाइदि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । वास्तव्य यह है कि इन मार्गिणाओंमें जीव
निरन्तर पाये जाते हैं और वे मोहमुक्त ही हैं, अतः इनमें मोहनीयविमक्तिवाले जीवोंका
अन्तरकाळ नहीं है ।

छम्पपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीयविमक्तिवाले जीवोंका अल्प अन्तरकाळ एक समय
और उत्कृष्ट अन्तरकाळ परस्पोपमके असंख्यातवें भाग है । इसी प्रकार सासाहनसम्प्राइदि
और सन्धमिष्णाइदि जीवोंका कहना चाहिये । अर्थात् इन तीनों मार्गिणाओंका नानाजीवों-
की अपेक्षा अल्प अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ परस्पोपमके असंख्यातवें
भागप्रमाण है, अतः इन मार्गिणाओंकी अपेक्षा मोहनीयविमक्तिवाले जीवोंका भी उक्त अन्त-
रकाळ कहा है ।

असन्न और समय इन दो मनोयोगी और इन्हीं दो बचनबोगियोंमें मोहनीयविमक्ति-
वाले जीवोंका अन्तरकाळ नहीं है, क्योंकि वे निरन्तर पाये जाते हैं । तथा मोहनीय अवि-
मक्तिवाले जीवोंका अल्प अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ कह महीना है ।
इसी प्रकार मतिज्ञानी, ब्रुतज्ञानी, चतुरस्रसनी अचतुरस्रसनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

शिरोपार्य—उपर जितनी मार्गिणार्प गिनाई हैं वे बारहवें गुणस्थान तक पाई जाती हैं ।
और बारहवां गुणस्थान सन्तर है । उरुका अल्प अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर
कह महीना है, अतः इन मार्गिणाओंमें भी मोहनीय अविमक्तिवाले जीवोंका अल्प अन्तर
एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कह महीना कहा है । तथा हम मार्गिणाओंमें मोहनीय विम-
क्तिवाले जीवोंका अन्तरकाळ नहीं है यह स्पष्ट है ।

§ ६४ औदारिकमिक्काययोगी जीवोंमें मोहनीय विमक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाळ मही

एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । एवं कम्मइय० ओहिणाण-मणपज्जव०-ओहिदंसण० वचाव्वं । वेउन्वियमिस्स० विहत्ति० जह० एगसमओ उक्क० बारस मुहुत्ताणि । आहार०-आहारमिस्स० विहत्ति० जह० एगसमओ उक्क० वासपुधत्तं । अवगद० विहत्ति० जह० एगसमओ उक्क० छम्मासा । अविहत्ति० णत्थि अतरं ।

है, वे निरन्तर पाये जाते हैं । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार कर्मणकाययोगी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यय-ज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उपर्युक्तमार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोगका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी अपेक्षा, अवधिज्ञान और अवधिदर्शनका असयतादि चार गुणस्थानोंकी अपेक्षा तथा मनःपर्ययज्ञानका प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । अतः उक्त मार्गणाओंमें मोहनीय विभक्तिवाले जीव सर्वदा हैं । तथा औदारिकमिश्र और कर्मणकाययोगमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है उसका कारण यह है कि मोहनीय विभक्तिसे रहित तेरहवें गुणस्थानवाले जीवोंके कपाट-समुद्घातके समय औदारिकमिश्रकाययोग और प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घातके समय कर्मण-काययोग होता है । और इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है, अतः इन दोनों योगोंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका भी उक्त अन्तर प्राप्त होता है । तथा अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और मनःपर्ययज्ञानके साथ चारों क्षपकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इन चारों क्षपकोंमें क्षीणकषाय गुणस्थान भी सम्मिलित है, अतः अवधिज्ञान आदि उक्त तीन मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका भी उक्त अन्तर प्राप्त होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह सुहूर्त है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी मोहनीय-विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसका यह तात्पर्य है कि इन मार्गणाओंका जो जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल है वही यहा इन इन मार्गणाओंकी अपेक्षा मोहनीय विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल होता है ।

अपगतवेदियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । तथा मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—चार क्षपक गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बताया है अतः इस अपेक्षासे अपगतवेदियोंमें मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंका उक्त अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । अपगतवेदियोंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर-

§ ६४ अकसाय० विहृति० अह० एगसममो, उक्त० वासपुत्रं । अविहृति०
परिष अतर । एव अहास्त्राद० बधन्व । सुद्रुमसाप० विहृति० अह एगसममो,
उक्त० छम्मासा । उपसम० विह० अह० एगसममो, उक्तस्तेष चउवीस अहोरणाणि ।
एवमतरं समच

§ ६५ मावाणुगमेण दुबिहो गिरेसो, ओषेण आदेसेण य । तरुष ओषेण विहृति०

काळ मही कइनेका कारण यह है कि सयोगकेबडी और सिद्ध जीव सर्वदा पाये जाते हैं
ओ कि अपगतवेदी होते हुए मोहनीयविमक्तिसे रहित हैं ।

§ ६६ अकपायियोमिं मोहनीय विमक्तिवाले जीवोंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट
अन्तर वर्षपूवकत्व है । तथा मोहनीय विमक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाळ नहीं है । इसी
प्रकार ब्रह्मसातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें मोहनीय विमक्तिवाले
जीवोंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । उपसमसम्यग्दृष्टि
मोहनीयविमक्तिवाले जीवोंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिन रात है ।

विशेषार्थ—अकपायीजीवोंके ग्वारहवें गुणस्वानमें ही मोहनीयकी सचा पाई जाती
है और उत्कृष्ट जपम्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूवकत्व है अतः अकपायी
जीवोंमें मोहनीय विमक्तिवाले जीवोंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर
वर्षपूवकत्व कहा है । तथा अकपायियोंमें मोहनीय विमक्तिवाले जीवोंके अन्तरकाळके
नहीं कइनेका कारण यह है कि सयोगकेबडी और सिद्ध जीव सर्वदा पाये जाते हैं ।
मोहनीय विमक्तिवाले और मोहनीय विमक्तिवाले ब्रह्मसातसंयतोंका अन्तर काळ भी
इसी प्रकार कइना चाहिये । विशेष बात यह है कि मोहनीय विमक्तिवाले ब्रह्मसात
संयतोंके अन्तर काळका अभाव सयोग केबडियोंकी अपेक्षासे कइना चाहिये । सूक्ष्म सांपरा
यिक संयतोंका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना स्पष्ट ही है ।
उपसमसम्यग्दृष्टियोंका माना जीवोंकी अपेक्षा जपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट
अन्तरकाळ चौबीस दिन रात है । अतः मोहनीय विमक्तिकी अपेक्षा उपसम सम्यग्दृ
ष्टियोंका अन्तरकाळ भी इतना ही कहा है । यद्यपि जीवद्वयके अन्तरगुणयोगशरमें अमयत
उपसमसम्यग्दृष्टियों और सुरारंभमें सामान्य उपसम सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाळ
सात दिन रात बताया है और यहाँ उपसम सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाळ चौबीस
दिनरात है, इसलिये जीवद्वय और सुरारंभके उक्त कथनसे इस कथनमें विरोध जाया
हुआ प्रतीत होता है पर इसे विरोध न मानकर मान्यताभेद मानना चाहिये, इसलिये कोई
शोक नहीं है ।

इसप्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

६५ § मावाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेसनिर्देश ।

को भावो ? ओदइओ उवसामओ खइओ रओवसमिओ वा । अविहत्ति० को भावो ? खइओ भावो । एवं जाव अणाहारए ति ।

§ ६६. अप्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिइसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा अविहत्तिया, विहत्तिया अणंतगुणा । एवं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि०-अणाहारए ति वत्तव्वं । मणुसगईए मणुस्सेसु सव्वत्थोवा अविह०विहत्ति० असंखेज्जगुणा । एवं पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्त तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि० आभिणि०-सुद०-ओहिणाण-चक्खुदंसण-ओहिदं०

उनमेसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयविभक्तिवाले जीवोंके कौनसा भाव है ? औदायिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है । मोहनीय अविभक्तिवाले जीवोंके कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके तीन तीन भेद हैं—औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक । तथा मिध्यात्व मिध्यात्व कर्मके उदयसे होता है । अतः इनमेंसे जहा जो भेद संभव हो उसकी अपेक्षा वहा वह भाव समझ लेना चाहिये । अन्यत्र सासादनसम्यग्दृष्टिके पारिणामिक और सम्यग्मिध्यादृष्टिके क्षायोपशमिक भाव बताया है पर यहा उस चिक्काभेदकी अपेक्षा नहीं की है ऐसा प्रतीत होता है । अतः सासादनमें अनन्तानुबन्धी आदिके उदयकी अपेक्षा और सम्यग्मिध्यादृष्टिके मिश्र आदि प्रकृतिके उदयकी अपेक्षा औदायिक भाव जानना चाहिये । इसी प्रकार जिस मार्गणास्थानमें उपर्युक्त भावोंमेंसे जो भाव संभव हो उसका कथन कर लेना चाहिये ।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६६. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । मोहनीय विभक्तिवाले जीव इनसे अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, आहारक और अनाहारक जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यद्यपि मोहनीयकी अविभक्तिवाले अनाहारक जीवोंमें अयोगकेवली और सिद्धोंका भी ग्रहण हो जाता है तो भी मोहनीय विभक्तिवाले अनाहारक जीव इनसे अनन्तगुणे हैं । शेष कथन सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मोहनीय अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । मोहनीय विभक्तिवाले जीव इनसे असख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पचेन्द्रिय पचेन्द्रिय पर्याप्त, प्रस, प्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षु-दर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेइयावाले और सही जीवोंके कथन करना चाहिये ।

सुक्ते० सप्यि चि बचम्बं । मणुसपन्द्वरा-मणुसिणीसु सम्बरयोवा अविहति० विहति०
सद्वन्नगुणा । एवं मणुपन्द्वर०-संबदार्णं बचम्बं । अयगदवे० सम्बरयोवा विहति०
अविहति० अर्पंतगुणा । एवमफस्ताप-सम्मादिदि-सुइयसम्मादिदीण षेदम्ब । जहा
कसाद० सुम्बतयोवा विहति०, अविहति० संखेन्नगुणा । सेसासु मग्गणासु पत्थि
अण्पाबहुर्ग एगपदचादो ।

एवं मूलपत्रविहिती समाप्ता ।

विशेषार्थ—ये जितनी मार्गजाये ऊपर कही है उनमें प्रत्येकप्र प्रमाण अंसक्यात
है पर इनमें मोहनीय अविमत्तिवाले जीव सख्यात ही होते हैं अतः इन मार्गजाओंमें
मोहनीय अविमत्तिवालोंसे मोहनीय विमत्तिवाले जीव असख्यातगुणे कहे हैं ।

मनुष्य पर्वात और पोनिमठी मनुष्योंमें मोहनीय अविमत्तिवाले जीव सबसे थोड़े
हैं । मोहनीय विमत्तिवाले जीव इनसे सख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनःपर्यवहानी और
सयत जीवोंके कइना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंमें मोहनीय विमत्तिवाले जीव सबसे
थोड़े हैं । मोहनीय अविमत्तिवाले जीव इनसे अनस्तगुणे हैं । इसी प्रकार जकपावी,
सम्पगदष्टि और क्षायिक सम्पगदष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—अपगतवेदी आदि जीवोंमें मोहनीय अविमत्तिवाले जीवोंसे बाह्य
गुणस्वानसे छेकर सिद्धों तक सबका ग्रहण किया है । इसलिये जक मार्गजाओंमें मोहनीय-
विमत्तिवाले जीवोंसे मोहनीय अविमत्तिवाले जीव अनस्तगुणे प्राप्त होते हैं ।

अण्पाबहुतसफलोंमें मोहनीयविमत्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । मोहनीय अविमत्ति-
वाले जीव इनसे सख्यातगुणे हैं । इन अणुयुक्त मार्गजाओंको छोड़कर शेष मार्गजाओंमें
अणुबहुत्व नहीं है, क्योंकि वहाँ पर दोनेमिसे एक पर ही पाया जाता है ।

इस प्रकार मूलपत्रविहिती समाप्त हुई ।



* तदो उत्तरपयडिविहत्ती दुविहा, एगेगउत्तरपयडिविहत्ती चैव पयडिद्व्याण उत्तरपयडिविहत्ती चैव ।

§ ६७. अट्टावीस मोहपयडीणं जत्थ पुध पुध परूवणा कीरदि सा एगेगउत्तरपयडिविहत्ती णाम । जत्थ अट्टावीस-सत्तावीस-छुव्वीसादिपयडिमत्तट्टाणाणं परूवणा कीरदि सा पयडिद्व्याण-उत्तरपयडिविहत्ती णाम । एवमुत्तरपयडिविहत्ती दुविहा चैव होदि अण्णिस्से असंभवादो ।

* तत्थ एगेग-उत्तरपयडिविहत्तीए इमाणि अणियोगद्वाराणि । तं जहा एगजीवेण सामित्तं कालो अंतर, णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो परिमाणानुगमो खेत्तानुगमो पोसणानुगमो कालानुगमो अंतरानुगमो सण्णियासो, अप्पावहुए त्ति ।

§ ६८. एवमेत्थ एकारस अणियोगद्वाराणि भवति । संपहि समुक्कित्तणा सन्वविहत्ती पोसन्वविहत्ती उक्कस्सविहत्ती अणुक्कस्सविहत्ती जहण्णविहत्ती अजहण्णविहत्ती सादिय-विहत्ती अणादियविहत्ती ध्रुवविहत्ती अद्भुवविहत्ती, एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं सण्णियासो, णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागानुगमो परिमाण खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भावो अप्पावहुगं चेदि एवं चउवीस अणियोगद्वाराणि एगेगउत्तरपयडिविहत्तीए

* उत्तरप्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी है, एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति और प्रकृति-स्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति ।

§ ६७ जिसमें मोहनीय कर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंका अलग अलग कथन किया जाता है उसे एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं । तथा जिसमें मोहनीय कर्मके अट्टाईसप्रकृतिक, सत्ताईस प्रकृतिक और छुव्वीस प्रकृतिक आदि सत्त्वस्थानोका कथन किया जाता है उसे प्रकृतिस्थान उत्तरप्रकृतिविभक्ति कहते हैं । इसप्रकार उत्तरप्रकृतिविभक्ति दो प्रकारकी ही होती है, क्योंकि इनके अतिरिक्त और किसी तीसरी विभक्तिका पाया जाना संभव नहीं है ।

* उन दोनों मेदोंमेंसे एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्तिके ये ग्यारह अनुयोगद्वार हैं । वे इसप्रकार हैं—एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, और अन्तर, तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, सन्निकर्ष और अल्पबहुत्व ।

§ ६८. इसप्रकार एकैकप्रकृतिविभक्तिके ये ग्यारह अनुयोगद्वार होते हैं ।

शंका—उच्चारणाचार्यने एकैकप्रकृतिविभक्तिके समुत्कीर्तना, सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति तथा एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, और सन्निकर्ष तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभागानुगम, परिमाण, क्षेत्र,

उत्तराणां हरिण्यदि परुषिदाणि । अहवसहाइरियम पुत्र एकारस्य चैव परुषिदाणि, दोषं
 वस्तुभाषणमेवेति कथं न विरोधो ? नस्तिय विरोधो, दम्बद्विष-पञ्चद्विषयण्य अवलंबिय
 पपुहामं विरोहामापादो । अहवसहाइरियो जेष्य सगहण्यो तेष तस्य अहिप्याएव
 एकारस्य अणिओगदाराणि होति ।

§ ६६ कमणियोगदार कमि संगहिय ? बुधदे, समुक्कितणा ताव पुष न वत्तव्या
 सामिचादिअणियोगदारेदि चैव एगेगपयहीणमरिवत्तसिद्धीदो अवगवत्तपत्तवणाए
 फलमापादो । सम्बन्धिहरी नोसम्बन्धिहरी उक्तस्सविहरी अणुक्तस्सविहरी अहण्यविहरी
 अवहण्यविहरीओ च न वत्तव्याओ, सामित्त-सञ्चिययासादिअणियोगदारेसु मणमा-
 पेसु अवगवयपपडिससस्स सिस्सस्स उक्तस्सानुक्तस्स-अहण्यवहण्यपपडिससुंविपिसयप-
 डिओहूपपीदो । सादि अजादि धुव-अद्भुवअहियारा वि अ वत्तव्या फलतरेसु परुषिज्ज-

सर्वज्ञ, काष्ठ, अस्त्र, मातापुत्र और अस्वपुत्र इतप्रकार के चौबीस अनुयोगद्वार कहे
 हैं, पर पतिवृत्त आचार्यने ग्वाह ही अनुयोगद्वार कहे हैं, अतः इन दोनों म्याक्वानोंक
 परस्परमें विरोध क्यों नहीं है ?

समाधान—पद्यपि पतिवृत्त आचार्यने ग्वाह और उत्तरआचार्यने चौबीस अनुयोग-
 द्वार कहे हैं तो भी इनमें परस्परमें विरोध नहीं है, क्योंकि, पतिवृत्त आचार्यका कथन
 इन्द्रार्थिकनयकी अपेक्षा प्रवृत्त हुआ है और उत्तरआचार्यका कथन पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा
 प्रवृत्त हुआ है, अतः कुछ दोषों कथनेमें कोई विरोध नहीं है । बूँकि पतिवृत्त आचार्यने
 संवत्तनपत्र आशय किया है इसलिये उनके अभिप्रायानुसार ग्वाह अनुयोगद्वार होते हैं ।

§ २६ अब किस अनुयोगद्वारका किस अनुयोगद्वारमें सद्यः किया है इसका कथन करते
 हैं—अद्यपि समुक्कीर्तित अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंका अस्तित्व वत्तव्या जाता है तो भी उसे अज्ञा
 नहीं रहना चाहिये, क्योंकि स्वामित्व आदि अनुयोगोंके कथनके द्वारा ही मत्येक प्रकृति
 अस्तित्व सिद्ध हो जाता है । अतः जाने हुए अर्थका कथन करनेमें कोई फल नहीं है ।
 तत्र सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, अत्रत्यविभक्ति, और
 अत्रत्यविभक्ति भी अज्ञाते कथन नहीं करना चाहिये क्योंकि, स्वामित्व, सन्निकर्ष
 आदि अनुयोगद्वारके कथनसे जिस सिद्धने प्रकृतियोंकी संख्याका ज्ञान कर दिया है उसे
 उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट तथा अत्रत्य और अत्रत्य प्रकृतियोंकी संख्याका ज्ञान हो ही जाता है ।
 तथा सादि, अजादि, पुत्र और अनुप अधिधरोंक भी प्रवृत्त कथन नहीं करना चाहिये
 क्योंकि काष्ठ अनुयोगद्वार और अस्त्र अनुयोगद्वारके कथन करने पर इनका ज्ञान हो जाय

(१)—अवि-अ अ अ ।

माणेसु तदवगमुप्पत्तीदो । भागाभागो ण वत्तव्वो; अवगयअप्पाबहुंग [स्स] संख-
विसयपडिबोहुप्पत्तीदो । भावो वि ण वत्तव्वो; उवदेसेण विणा वि मोहोदएण मोहपय-
डिविहत्तीए संभवो होदि त्ति अवगमुप्पत्तीदो । एवं संगहियसेसतेरसअत्थाहियारत्तादो
एकारसअणिओगद्दारपरूवणा चउवीसअणियोगद्दारपरूवणाए सह ण विरुज्झदे ।

* एदेसु अणियोगद्दारेसु परूविदेसु तदो एगेग-उत्तरपयडिविहत्ती
समत्ता ।

§ १००. संपहि एत्थ उं [च्चारणाहरियवक्खा]णं जडजणाणुग्गहटं परूविदमिह
वण्णइस्सामो; संपहि मेहाविजणाभावादो । तं जहा, तत्थ इमाणि चउवीस अणुओ-
गद्दाराणि णादव्वाणि भवंति-समुक्कित्ताणा सव्वविहत्ती णोसव्वविहत्ती उक्कस्सविहत्ती
अणुक्कस्सविहत्ती जहण्णविहत्ती अजहण्णविहत्ती सादियविहत्ती अणादियविहत्ती ध्रुव-
विहत्ती अद्भवविहत्ती एगजीवेणै [सामित्तं कालो अंतरं सण्णियासो] णाणाजीवेहि भंग-
विचओ भागाभागानुगमो परिमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुंगं चेदि ।

है । तथा भागाभाग अनुयोगद्वारका भी पृथक् कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि जिसे
अल्पबहुत्वका ज्ञान हो गया है उसे भागाभागका ज्ञान ही जाता है । उसी प्रकार भाव
अनुयोगद्वारका भी पृथक् कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि, मोहके उदयसे मोहप्रकृति-
विभक्ति होती है यह बात उपदेशके बिना भी जानी जाती है । इस प्रकार शेष तेरह
अनुयोगद्वार ग्यारह अनुयोगद्वारोंमें ही संग्रहित हो जाते हैं, अतः ग्यारह अनुयोगद्वारोंका
कथन चौबीस अनुयोगद्वारोंके कथनके साथ विरोधको नहीं प्राप्त होता ।

* इन ग्यारह अनुयोगद्वारोंके कथन करने पर एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति नामक
अनुयोगद्वार समाप्त हो जाता है ।

§ १०० अब मन्दबुद्धिजनों पर अनुग्रह करनेके लिये उच्चारणाचार्यके द्वारा किये गये
व्याख्यानको यहा कहते हैं, क्योंकि, इस कालमें बुद्धिमान मनुष्य नहीं पाये जाते हैं । वह
इस प्रकार है—उस एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्तिके कथनमें ये चौबीस अनुयोगद्वार जानने चाहिये ।
समुत्कीर्तना, सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति,
अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति तथा एक
जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, और नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय,
भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावा

(१) ग (बु० ७) हुप्प-स० । -गसखविसयपडिबोहुप्प-अ०, आ० । (२) उ (बु० ११)
ण-स० । उत्तरपयडिविहत्तीण-अ०, आ० । (३)-ण (बु० १४) णाणाजी-स० । -णसमूक्कित्ताणा
सव्वविहत्ती णाणाजी-अ०, आ० ।

§ १०१ समुच्चिपया दुषिहा ओषण आदेसेण य । तत्त्व ओषेण सम्मत्त-मिच्छत्त सम्मामिच्छत्त-अथतापुषधिकोहमाणमायालोह-अपक्षक्यानावरणकोहमाणमायालोह-पक्षक्यानावरणकोहमाणमायालोह संखलपकोहमाणमायालोह-इत्थि-पुरिस-ण्डुसपवेद इत्स-रह-अरह-सोग-मय-दुगुंछा वेदि एदासिमहावीसण्ह मोहपयडीवमत्थि विहत्थिया प अविहत्थिया च । एव मजुसत्थिय-पंथिदिय-पंथिदियपञ्जत्त-तस-तसपञ्जत्त पचमय० पंचवथि०-कायओगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मद्वय०-आमिणिबोहिय०-सुद० ओहि०-अथपञ्चद०-संखद० चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसर्प- [सुक्खेस्सिय मवसिद्विय सम्मादिट्ठि-सुप्पि] -आहारि०-अवाहारि थि वत्थम् ।

§ १०२ आदेसेण गिरयगदीय बेरइण्णु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अथता-पुषधिकोहत्त अत्थि विहत्थि० अविहत्थि०, सेसार्थ पयडीय अत्थि विहत्थि० । एवं दुग्गम और अस्पवहुत्वाजुगम ।

§ १०१ ओषसमुत्कीर्तना और आदेशसमुत्कीर्तना इस प्रकार समुत्कीर्तना अनुयोगहार को प्रकारक है । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्बन्धिमिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी श्लेष, मान, माया, श्लेष, अप्रत्याख्यानावरण श्लेष, मान, माया, श्लेष प्रत्याख्यानावरण श्लेष, मान, माया, श्लेष, संखलन श्लेष, मान, माया श्लेष; स्त्रीवेद, पुत्रववेद, नपुत्रकवेद, हास्य, रति अरति श्लोक मय और जुगुप्सा मोहकी इन अज्ञाईस प्रकृतियोंकी विमर्शिताले और अविमर्शिताले जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यजिक अर्थात् सामान्य पर्याप्त और मनुष्यजीवों के तीन प्रकारके मनुष्य तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, प्रसक्त्यायिक, प्रसक्त्यायिक पर्याप्त पांचों मनोबोगी, पांचों वचनबोगी, सामान्य कायबोगी, औदारिककायबोगी और-रिक्तमिथ्याययोगी कामैवकायबोगी मतिशानी, कृतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, संकट चक्षुदर्शनी अंधदर्शनी अवधिदर्शनी, शुद्धसेश्यावासे मय्य, सम्बन्धदृष्टि, सही, आहारक और अवाहारक जीवोंके कथना जायिजे ।

विशेषार्थ-मार्ग्यात्वात्मोकी विवक्षा न करके सामान्यसे जीवोंके मोहतीवधी सभी प्रकृतियोंका पाया जाना और नहीं पाया जाना समभव है अतः इस प्रकृतियोंको ओषप्रकृतिया कहा है । तथा ओषप्रकृतियोंके अनन्तर मनुष्यजिकसे लेकर अवाहारक जीवों तक जो मार्ग्यात्वात्म बतलये हैं उनके भी मोहकी समस्त प्रकृतियोंका सङ्ग्रह और जभाव समभव है । अतः जनधी प्रकृतियोंको ओषके समान कहा है ।

§ १ २ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति, सम्बन्धिमिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्की विमर्शिताले और अविमर्शिताले जीव हैं । तथा इन छान प्रकृतियोंके अतिरिक्त श्लेष इन्कीस प्रकृतियोंके विमर्शिताले ही जीव हैं । इसी प्रकार

पढमपुढवि०-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देव-सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सव्वद्वदेव०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-परिहार०-संजदासंजदं-[असंजद-पंचले-स्सिया]त्ति । विदियप्पहुडि जाव सत्तमेत्ति एवं चेव । णवरि मिच्छत्तस्स अविहत्तिया णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणि-भवण०-वाणवेंतर-जोदिसिया त्ति वत्तव्वं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, सेसाणं अत्थि विहत्ति० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-पज्जत्त-अपज्ज० पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वायसिद्धितकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत, अमयत और कृष्णादि पांच लेख्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ऊपर सामान्य नारकी आदि जितने मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें कमसे कम इक्कीस और अधिकसे अधिक अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव होते हैं ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक छह पृथिवियोंके नारकियोंके इसी प्रकार कथन करना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव नहीं होते हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन छह प्रकृतियोंका अभाव हो सकता है पर एक जीवके छह प्रकृतियोंका अभाव नहीं होता । जिसने सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके उक्त दो प्रकृतियोंका अभाव होता है । तथा जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अभाव होता है । क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्तिकालमें ही उक्त छह प्रकृतियोंका एकसाथ अभाव पाया जाता है । पर इन मार्गणाओंमें क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं, और न क्षायिकसम्यग्दृष्टि ही इनमें उत्पन्न होता है अतः इनमें उक्त छह प्रकृतियोंका अभाव नाना जीवोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें अधिकसे अधिक अट्ठाईस और कमसे कम चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं । तथा इन दो प्रकृतियोंको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही जीव हैं । इसी प्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य, सभी एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त, अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त, अपर्याप्त, पचेन्द्रियलब्धपर्याप्तक प्राचों

पश्चिदियत्रपञ्च०-यत्रकाय०-बाह्वर-सुप्तुम-पञ्च०-अपञ्च०-उत्स० [अपञ्च-भदि-सुद्वयणा
 षि-विभंग०-मिच्छाद्वि असष्मि] चि वचध्व । आहार०-आहारमिस्स० पञ्चमपुटविभंगो ।
 इत्यिवेदयसु मिच्छत-सम्मत्त-सम्मामिच्छत-वारसकसाय-गणुंसयवेद० अत्यि विहृति०
 अविहृति । चचारिसंजलण-छण्णोकसाय-पुरिसिस्त्रियवेदाण अत्यि विहृति० । पुरिस
 वेदयसु मिच्छत सम्मत्त-सम्मामिच्छत-वारसकसाय-अद्वणोकसाय० अत्यि विहृति०
 अविहृति०, पुरिस० चदुसजलण० अत्यि विहृति० । गणुंसं० [मिच्छत-सम्मत्त-सम्मा
 मिच्छत-वारसकसाय]-इत्यि० अत्यि विहृति० अविहृति०, चचारिसंजलण-श्रीवेद-छण्णो-
 कसाय० अत्यि विहृति० । अत्रगदवेद० चदुसीसर्प्य अत्यि विहृति० अविहृति० । अर्णता

आहारकाय और उसके बाह्वर और सुप्त तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, अस छम्पपर्याप्त,
 मन्महानी, सुवप्राणी, विभंगप्राणी, मिष्पादृष्टि और असही जीवोंके रहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त मार्गजात्वानोंमें सावि मिष्पादृष्टि होते हुए जिन जीवोंने सम्बन्ध
 प्रकृति और सम्पन्मिष्पात्त्वकी च्छेदना कर ली है उनके इन दो प्रकृतियोंका अभाव होता
 है तथा जिन जीवोंने इन दो प्रकृतियोंकी च्छेदना नहीं की है उनके इनका सत्त्व होता
 है । इस प्रकार उपर्युक्त मार्गजात्वोंमें सुम्बीस और अर्द्धाँस प्रकृतियोंका सत्त्व पाया
 जाता है ।

आहाररुकाययोगी और आहारकमिकाययोगी जीवोंके प्रकृतियोंका सत्त्व पहली
 प्रविषीके समान रहना चाहिये । तर्थात् जिस प्रकार पहले गरुमें हसनमोहनीयकी तीन
 और अनन्तानुवर्धीकी चार इन सात प्रकृतियोंका सत्त्व है और नहीं भी है, तथा श्रेय
 श्चीस प्रकृतियोंका सत्त्व ही है वसी प्रकार उक्त दोनों काययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

श्रीवेदी जीवोंमें मिष्पात्त्व सम्बन्धप्रकृति, सम्पन्मिष्पात्त्व, संज्वलन चारके बिना
 श्रेय चारह कषाय और नपुंसक वेद इन सोढ्य प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्ति-
 वाले जीव हैं । तथा चार संज्वलन छह नोकषाय, पुरुषवेद और श्रीवेद इन चारह
 प्रकृतियोंके विभक्तिवाले ही हैं । पुरुषवेदियोंमें मिष्पात्त्व सम्बन्धप्रकृति, सम्पन्मिष्पात्त्व,
 संज्वलन चारके बिना श्रेय चारह कषाय और पुरुषवेदके बिना जाठ नो कषाय इन तीस
 प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं । तथा पुरुषवेद और चार संज्वलन
 इन पांच प्रकृतियोंके विभक्तिवाले ही जीव हैं । नपुंसकवेदियोंमें मिष्पात्त्व सम्बन्धप्रकृति
 सम्पन्मिष्पात्त्व चार संज्वलनके बिना चारह कषाय और श्रीवेद इन सोढ्य प्रकृतियोंके
 विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं । तथा चार संज्वलन पुरुष और नपुंसक वे
 दो वेद और हात्वादि छह नो कषाय इन चारह प्रकृतियोंके नियमसे विभक्तिवाले जीव
 हैं । अपगतवेदियोंमें श्रीवीस प्रकृतियोंके विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव हैं । पर

(१) वच (दृ १९) चि-व । (२) नपुंस (दृ १४) इतिव-व ।

णुवंधिचउक्कस्स विहत्तिया णियमा अत्थि [णत्थि] । एवमकसायि० जहाक्खाद० ।

§ १०३. कसायाणुवादेण कोधकसाईणं पुरिमभंगो । णवरि पुरिस० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं माणकसाईणं । णवरि कोह० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं मायाकसाईणं [णवरि माण०] अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं लोभकसायी० । णवरि माय० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । एवं सामाहय-छेदो० वत्तव्वं ।

अनन्तानुवन्धी चतुष्पकी विभक्तिवाले जीव नियमसे नहीं है । अपगतवेदियोंके समान अकपायी और यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणी पर चढे हुए जीवके स्त्रीवेदकी उदयव्युत्थित्तिके पहले चार सज्वलन, हास्यादि छह नोकपाय, पुरुषवेद और स्त्रीवेद इन वारह प्रकृतियोंको छोड़कर शेष सोलह प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है, अतः स्त्रीवेदीके उक्त वारह प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है तथा शेषका सत्त्व है और नहीं है । इसी प्रकार नपुंसकवेदीके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदके स्थानमें नपुंसकवेदका सत्त्व कहना चाहिये । पुरुषवेदीके पुरुषवेदका उदय रहते हुए चार सज्वलन और पुरुषवेदका क्षय नहीं होता । शेषका हो जाता है । अतः पुरुष वेदीके उक्त पाच प्रकृतियोंको छोड़कर शेष तेईस प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है पर उक्त पाच प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है । द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके साथ उपशम श्रेणी पर आरूढ होकर जो जीव अपगतवेदी हो जाता है उसके चार अनन्तानुवन्धीको छोड़ कर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है, अतः अपगतवेदी जीवके अनन्तानुवन्धी चारको छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है । पर चार अनन्तानुवन्धीका सत्त्व नियमसे नहीं है । अकपायी और यथाख्यातसयतोंके अपगतवेदियोंके समान जानना चाहिये ।

§ १०३ कपायानुवादकी अपेक्षा क्रोध कपायवाले जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि ये पुरुषवेदकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार मानकपायवाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानकपायवाले जीव क्रोध कपायकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार मायाकपायवाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि माया कपायवाले जीव मानकपायकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार लोभकपायवाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लोभकपायवाले जीव मायाकपायकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । इसी प्रकार सामाधिक और छेदोपस्थापनासयत जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणी पर चढे हुए जीवके अवेदभागमें क्रमसे क्रोध, मान और मायाका और सूक्ष्म सापराय गुणस्थानमें लोभका क्षय होता है अतः क्रोधवेदकके पुरुषवेदका, मानवेदकके

§ १०४ सुक्ष्म० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-सम्मामि०-एकारसकसाय०-अणणोक्-
साय० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । लोम० अत्थि विहत्ति०, अणताशुभपिचउक्-
विहत्तिया गियमा अत्थि । अमभसिद्धि० छम्भीसपयडीणं अत्थि विहत्ति० । खइय०
एक्कीस० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति० । वेदगं [मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त] अणताशुभं
पिचउक्क० अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०, सम्मत्त०-आरसकसाय-अणणोक्साय० अत्थि
विहत्ति० । उभसमसम्माइड्डीसु अणताशुभपिचउक्कस्त अत्थि विहत्ति० अविहत्ति०,
सेसत्तवीसण्ह पयडीणं अत्थि विहत्ति० । एव सम्मामि० । सासण० सम्भारिं पय
डीय विहत्ती गियमा अत्थि ।

एव समुक्तिप्रणाली समता ।

श्लेषका, मायावेदकके मानका और लोभवेदकके मायाका सत्त्व है भी नहीं भी है । श्लेष
कथन पुढपवेदीके समान जानना चाहिये । सामायिक और श्लेषोपस्थापना संयम मौर्षे गुण-
स्थान तक होते हैं, अत इनके लोभकपायवाले जीवोंके समान लोभकपायको छोड़कर श्लेष
प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी है, पर लोभकपायका सत्त्व नियमसे है ।

§ १०४ सूक्ष्म सांपरायिक संघट्टोंमें मिथ्यात्व सम्बन्धप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, अमन्ता-
क्यामावरण श्लेष आदि म्यारह कपाय और नौ गोकपाय इन तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले
और अविभक्तिवाले हैं । लोभकी नियमसे विभक्तिवाले हैं और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी
नियमसे अविभक्ति वाले हैं ।

विशेषार्थ-सूक्ष्मसांपराय सयम वसने गुणस्थानमें होता है । इसलिये वहाँ अनन्ता-
नुबन्धी चारका सत्त्व तो है ही नहीं । श्लेष चौबीस प्रकृतियोंमेंसे तेईस प्रकृतियोंका श्लेषक
वेद्योंवालेके अभाव होता है और अणमभवेदीवालेके लतका सत्त्व पाया जाता है । पर
इसके सूक्ष्म लोभका सत्त्व नियमसे है ।

अमन्त्य जीवोंमें सभी जीव मोहगीवकी छम्भीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले हैं । द्वायिक-
सम्यग्मृत्तियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें
मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन छह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले
और अविभक्तिवाले हैं । तथा सम्बन्धप्रकृति, चारह कपाय और नौ गोकपाय इन चाईस
प्रकृतियोंकी नियमसे विभक्तिवाले हैं । उपसमसम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चारकी
विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं । तथा श्लेष चौबीस प्रकृतियोंकी नियमसे विभक्तिवाले
हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये । सासादमसम्यग्दृष्टियोंमें
नियमसे सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव हैं ।

§ १०५. सव्वविहत्ति-णोसव्वविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वाओ पयडीओ सव्वविहत्ती । तदूणं णोसव्वविहत्ती । एवं णेदम्भं जाव अणाहारएत्ति ।

§ १०६. उक्कस्सविहत्ति-अणुक्कस्सविहत्तियाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वुक्कस्साओ पयडीओ उक्कस्सविहत्ती । तदूणमणुक्कस्सविहत्ती । उक्कस्सविहत्ती ण वत्तव्वा; सव्वविहत्तीए विसेसाभावादो । अत्थि विसेसो

विशेषार्थ—अभव्य जीवोंके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छव्वीस प्रकृतियोंका सत्त्व है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुवन्धी इन सात प्रकृतियोंको छोड़कर शेष इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्व है और नहीं भी है । पर उक्त सात प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे नहीं है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें जिसने चार अनन्तानुवन्धीकी विसयोजना कर दी है तथा जिसने क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त करते समय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर दिया है, उसके उक्त छह प्रकृतियोंको छोड़कर शेष बाईस प्रकृतियोंका सत्त्व होता है । पर जिसने अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना न करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके सभी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है । द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चार अनन्तानुवन्धीकी विसयोजनासे प्राप्त होता है और प्रथमोपशमसम्यक्त्व दर्शनमोहनीयके उपशमसे प्राप्त होता है । अतः उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अनन्तानुवन्धी चारका सत्त्व है भी और नहीं भी है । पर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है । जिसने अनन्तानुवन्धीकी विसयोजना की है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव मिश्रगुणस्थानमें भी जाता है, अतः इसके भी चार अनन्तानुवन्धीका सत्त्व है भी और नहीं भी है । पर शेष चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है । सासादनगुणस्थान अनन्तानुवन्धी चारमेंसे किसी एकके उदयसे होता है, अतः यहा सभी प्रकृतियोंका सत्त्व है ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ १०५. सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी प्रकृतियोंको सर्वविभक्ति और इससे कमको नोसर्वविभक्ति कहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १०६ उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सर्वोत्कृष्ट प्रकृतियोंको उत्कृष्टविभक्ति और इनसे कमको अनुत्कृष्टविभक्ति कहते हैं ।

शंका—उत्कृष्टविभक्तिका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि सर्वविभक्तिसे इसमें कोई भेद नहीं है ?

पादेर्द्धं सम्बन्धयन्तीपरूवना सम्बन्धविहती, पयन्तीण सम्बन्धसिं समूहस्त पयन्तीर्द्धितो कषपि पुषभूदस्त परूवना उक्तसिंहिहती, तदो न पुणरुचदोसो । एव येदम्ब आब अणाहारपति ।

§ १०७ अहण्णविहति-असहण्णविहतिपाणुगमेण दुविहो भिरेसो ओषेण आदे सेष य । तत्य ओषेण सम्बन्धहण्णपयन्तीमो अहण्णविहती, तदुवरि अजहण्णविहती । एवं येदम्ब आब अणाहारपति ।

§ १०८ सादि अणादि धुव अणुपाणुगमेण दुविहो भिरेसो ओषेण आदेसेण य । तत्य ओषेण मिच्छत्त-वारसकसाय-णवणोक्तसाय विहति० किं सादिया किमणादिया किं धुवा किमणुवा ? अणादिया धुवा अणुवा । सम्मत्त-सम्मानिच्छत्त० किं सादिया४ ? सादि-अणुवा । अणादि धुव णत्सि ।

समाधान-इन दोनोंमें परस्पर भेद है, क्योंकि अलग अलग सर्वप्रकृतियोंकी प्ररूपणाको सर्वविमक्ति कहते हैं और प्रकृतियोंसे कर्धन्वित् मिश्रभूत समस्त प्रकृतियोंके समूहकी प्ररूपणाको उत्कृष्टविमक्ति कहते हैं, अतः सर्वविमक्ति और उत्कृष्टविमक्तिका पूर्ववत् पूर्ववत् कथन करने पर पुनरुक्त दोष नहीं आता है ।

गतिमार्ग्यासे लेकर अनाहारकमार्ग्या तक उत्कृष्टविमक्ति और अनुत्कृष्टविमक्तिका कथन इसी प्रकार करना चाहिये ।

§ १०७ अमन्थविमक्ति और अजपन्थविमक्ति अणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा सबसे अमन्थ प्रकृतियों अमन्थविमक्ति है और इसके ऊपर अजपन्थविमक्ति है । इसी प्रकार अनाहारक मार्ग्या तक जानना चाहिये ।

§ १०८ सादि अणादि, धुव और अणुपाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा मिथ्यात्व, अपत्याकानावरण आदि बाह्य कषाव और नौ मोक्षपाय ये विमक्तियाँ क्या छादि हैं, क्या अनावि हैं, क्या मृग हैं क्या अणुव हैं ? अणादि धुव और अणुव हैं । मन्थ स्फुटिकृति होने तक निरन्तर रहती हैं, इसलिये अनावि हैं । तथा अमन्थोंकी अपेक्षा धुव और मन्थोंकी अपेक्षा अणुव हैं । इन प्रकृतियोंमें साधिभेद नहीं होता है, क्योंकि सत्य स्फुटिकृतिके बाद इनका पुनः सत्य नहीं होता ।

सम्बन्धत्वप्रकृति और सम्बन्धिमिथ्यात्व विमक्तियाँ क्या छादि हैं क्या अनावि हैं, क्या मृग हैं, क्या अणुव हैं ? सादि और अणुव हैं । इनमें अनावि और मृगपर नहीं है । प्रकृत्योपशामसम्बन्ध होनेके अनन्तर ही इन दो विमक्तियोंका सत्य होता है, अतः ये छादि और अणुव हैं ।

§ १०६. अणंताणुबंधिचउक० किं सादिया४ ? सादि-अणादि-धुव-अद्दुव० । एवमचक्खुदंसण०-भवसिद्धि० । णवरि भव० धुवं णत्थि । अभवियसमाणेसु भविएसु वि ण धुवमत्थि विणासणसत्तिसव्भावादो । अभवसिद्धि० सव्वपयडि० किं सादि०४ ? अणादि० धुव० । सेसासु मग्गणासु सव्वपयडी० सादि० अद्दुव०; तथावट्ठिदजीवा-भावादो । णवरि मदि०-सुद०-असजदमिच्छाइटीसु छव्वीसपयडीण विहात्ति० सादि० अणादि० धुवा० अद्दुवा वा, सम्म०-सम्मामिच्छत्त० सादि०अद्दुवा । एवं सादि-अणादि-धुव-अद्दुवाणुगमो समत्तो ।

§ १०६ अनन्तानुवन्धी चतुष्क क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है, क्या अध्रुव है ? अनन्तानुवन्धी चतुष्क सादि है, अनादि है, ध्रुव है और अध्रुव है। विसयो-जनाके पहले अनादि है। विसयोजनाके अनन्तर पुन सत्त्व होनेसे सादि है। अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव है।

इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्यजीवोंके जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके ध्रुवपद नहीं है। तथा अभव्योंके समान जो भव्य हैं उनके भी ध्रुवपद नहीं है, क्योंकि उनके विभक्तियोंके विनाश करनेकी शक्ति पाई जाती है।

विशेषार्थ-अचक्षुदर्शन वारहवें गुणस्थान तक निरन्तर रहता है और वह भव्य और अभव्य दोनोंके पाया जाता है। अत इनके ओघप्ररूपणाके समान विवक्षित प्रकृतियोंके यथासभव पद बन जाते हैं। भव्य जीवोंके भी ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है, पर इनके ध्रुवपद नहीं होता है, क्योंकि यह पद अभव्योंकी अपेक्षा कहा है।

अभव्य जीवोंमें सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोडकर शेष सभी प्रकृतिया क्या सादि हैं, क्या अनादि है, क्या ध्रुव हैं, क्या अध्रुव हैं ? अनादि और ध्रुव हैं। अभव्योंके इन छव्वीस प्रकृतियोंका सत्त्व अनादि कालसे है अतः वे अनादि हैं और अनन्त काल तक रहेगा इसलिये वे ध्रुव हैं।

इन उपर्युक्त मार्गणाओंको छोडकर शेष मार्गणाओंमें सभी प्रकृतियां सादि और अध्रुव हैं, क्योंकि उनमें जीव सदा अवस्थित नहीं रहता। इतनी विशेषता है कि मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत और मिथ्यादृष्टि इन चार मार्गणाओंमें छव्वीस प्रकृतिया सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव हैं। तथा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व सादि और अध्रुव हैं।

विशेषार्थ-भव्य जीवोंके सम्यग्दर्शन होनेके पहले तक मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ये तीन मार्गणाए तथा संयम होनेके पहले तक असयत मार्गणा निरन्तर पाई जाती हैं। तथा ये चारों मार्गणाएँ अभव्यके भी होती हैं। अतः इन मार्गणाओंमें उक्त छव्वीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव ये चारों पद बन जाते

§ ११० सामिचासुगमेष दुबिहो गिहसो ओषेण आदेसेण य । तस्य ओषेण मिच्छत० विहरी कस्त ? अण्णदरस्त सम्मादिहिसस मिच्छादिहिसस वा । अविहरी कस्त ? सम्मादिहिसस खविदमिच्छतस्त । सम्मप-सम्मामि० विहरी कस्त ? अण्ण० मिच्छादिहिसस सम्मादिहिसस वा । अविहरी कस्त ? अण्णदरस्त मिच्छादि० सम्मा दिहिसस वा उम्पेस्सिद-खविदसम्मचसम्मामिच्छतस्त । अमतासुबंधिचरकस्त विहरी कस्त ? अण्ण० मिच्छादि० सम्मादिहिसस वा अविंसजोपिदअमतासुबंधिचरकस्त । अविहरी कस्त ? अण्ण० सम्मादिहिसस विंसजोपिद-अमतासुबंधिचरकस्त । बारस कसाय-अबपोकसायविहरी कस्त ? सम्मादिहिसस मिच्छादिहिसस वा । अविहरी कस्त ? अण्ण० सम्मादिहिसस विंसतकम्मियस्त । एव मणुसतिय-अधिदिय-पंथि०

हैं । सम्बन्धप्रकृति और सम्बन्धमिध्यात्वकी अपेक्षा सादि और अणुय १४ स्पष्ट है । तथा छेप मार्गणार्थ सादि हैं, अतः उनकी अपेक्षा सादि और अणुय १४ ही होते हैं ।

इस प्रकार सादि, अनादि, भुव और अणुवानुगम समाप्त हुए ।

§ ११० स्वामिस्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओपनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा मिध्यात्वविभक्ति किसके है ? किसी भी सम्बन्धदृष्टि या मिध्यादृष्टि बीबके मिध्यात्वविभक्ति है । अर्थात् मिध्यादृष्टि बीबके और जिस सम्बन्धदृष्टि बीबने मिध्यात्वका क्षय नहीं किया है उसके मिध्यात्व विभक्ति होती है । मिध्यात्व अविभक्ति किसके है ? जिसने मिध्यात्व विभक्तिका क्षय कर दिया है ऐसे सम्बन्धदृष्टि बीबके मिध्यात्व अविभक्ति है । सम्बन्ध और सम्बन्धमिध्यात्वविभक्ति किसके है ? किसी भी मिध्यादृष्टि या सम्बन्धदृष्टि बीबके है । सम्बन्धअविभक्ति और सम्बन्धमिध्यात्वअविभक्ति किसके है ? जिसने सम्बन्धविभक्ति और सम्बन्धमिध्यात्वविभक्तिकी खोजना कर ही है ऐसे किसी भी मिध्यादृष्टि बीबके या जिसने सम्बन्धविभक्ति और सम्बन्धमिध्यात्वविभक्तिका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी सम्बन्धदृष्टि बीबके सम्बन्धअविभक्ति और सम्बन्धमिध्यात्वअविभक्ति है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कविभक्ति किसके है ? किसी भी मिध्यादृष्टि बीबके या जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है उस किसी भी सम्बन्धदृष्टि बीबके अनन्तानुबन्धीचतुष्कविभक्ति है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कअविभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर ही है ऐसे किसी भी सम्बन्धदृष्टि बीबके अनन्तानुबन्धीचतुष्क अविभक्ति है । (अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन करके जो सम्बन्धदृष्टि बीब तीसरे गुण स्वानमें आ जाता है उसके भी अनन्तानुबन्धी की अविभक्ति रहती है । किन्तु यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की है) बारह कपाय और नौ नोकपाय विभक्ति किसके है ? सम्बन्धदृष्टि या मिध्यादृष्टि बीबके है । बारह कपाय और नौ नोकपायअविभक्ति किसके है ? जिसने बारह कपाय और नौ नोकपायोंका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी सम्बन्धदृष्टि बीबके है ।

पञ्चत-तस-तसपञ्चत-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-चक्खु०-अचक्खु०
सुकलेस्सिय-भवसिद्धिय-सण्णि-आहारि ति ।

§ १११. आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ता-अणं-
ताणुवंधिचउक्काणं ओघभंगो । वारसकसाय-णवणोकसायविहत्ती कस्स ? अण्णद० ।
एवं पढमाए पुढवीए तिरिक्खगइ-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०ति०पञ्ज०-देवा-सोहम्मी-
साणप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जेत्ति वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-असंजद-पंचलेस्सिया ति
वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमि ति एवं चेव । णवरि मिच्छत्त-अविहत्ती णत्थि ।
एव पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया ति वत्तव्वं ।

इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचो मनोयोगी,
पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्लेश्यावाले,
भव्य, सजी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये । अर्थात् उपर्युक्त मनुष्यत्रिक आदि मार्गणा-
ओंमें प्रारभके वारह गुणस्थान संभव हैं, अत इनमें ओघके समान प्ररूपणा बन जाती है ।

§ १११ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्-
मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्कका कथन ओघके समान है । तथा वारह कषाय और नौ
नोकषायविभक्ति किसके है ? किसी भी नारकीके है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी,
सामान्यतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म और ऐशान
स्वर्गसे लेकर उपरिमग्रेवेयक तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, असंयत
और कृष्ण आवि पाच लेख्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन मार्गणास्थानवाले जीवोंके क्षायिक सम्यग्दर्शन हो सकता है, अतः इनके
तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुवन्धीका सत्त्व है भी और नहीं भी है । पर इनमेंसे
किसीके भी क्षपकश्रेणी सभव नहीं है, अत उक्त सात प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष इक्कीस
प्रकृतियोंका इनके सत्त्व ही है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये ।
इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्व अविभक्ति नहीं है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच-
योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी-
चतुष्क इन छह प्रकृतियोंको छोडकर शेष सभी प्रकृतियोंका सत्त्व है । पर उक्त छह प्रकृ-
तियोंमेंसे जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है
उसके उक्त दो प्रकृतियोंका असत्त्व होता है और शेषके सत्त्व होता है । तथा जिस सम्यग्-
दृष्टिने अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसयोजना की है उसके अनन्तानुवन्धी चतुष्कका असत्त्व
होता है और शेषके सत्त्व होता है ।

§ ११२ पंचिदियतिरिक्त्वअपञ्च० सम्मत्त० सम्मामि० विहरी अविहरी च कस्त ? अण्णदरस्त । संसार्यं पयडीण विहरी कस्त ? अण्णदरस्त । एवं मणुस्त अपञ्चत्त सम्बप्रादिय-सम्बविगळिदिय पंचिदियअपञ्चत्तसअपञ्च०-पंचकाय०-बादर सुहुम-पञ्चचापञ्च-मदि-सुदअण्णाणि-विमग० मिच्छाइट्ठि-असण्णि चि वत्तम्ब । अणु-दिसादि बाब सम्बहुसिद्धि चि मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तविहरी कस्त ? अण्ण० । अविहरी कस्त ? अण्णदरस्त खविदईसणमोहणीयस्त । एवमर्पेताणुर्बचिचउकस्त । षवरि अविहरी कस्त, अण्णदरस्त विसंयोजिदाणंताणुर्बचिचउकस्त । संसाण पयडीण विहरी कस्त ? अण्णदरस्त । एवमाहार०-आहारमिस्त० परिहार० संबदासंजदा चि ।

§ ११२ पंचेन्द्रिय तिर्बच छम्ब्यपर्याप्तकेमि सम्यक्त्व और सम्मग्मिध्यात्वकी विमत्ति तथा अविमत्ति किसके है ? किसी भी जीवके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी विमत्ति और अविमत्ति होती है । तथा श्रेय प्रकृतियोंकी विमत्ति किसके है ? किसी भी जीवके श्रेय प्रकृतियोंकी विमत्ति है । इसी प्रकार छम्ब्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी पंचेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय छम्ब्यपर्याप्तक, असछम्ब्यपर्याप्तक, पाँचों आवरकाय, तथा इनके बाहर और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, मत्स्यजानी, भ्रुवाजानी, बिर्भगजानी, मिध्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—कठ मार्गजाबाळे जीवोंके जम्बीस प्रकृतियोंका सत्त्व निबमसे है । तथा जिसने सम्यक्त्वप्रकृति और सम्मग्मिध्यात्वकी उद्वेष्टना की है उसके कठ हो प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है, श्रेयके है ।

अनुदिससे लेकर सर्वाभिसिद्धि तकके देवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्त्व और सम्मग्मिध्यात्वकी विमत्ति किसके है ? किसी भी देवके मिध्यात्व आदिकी विमत्ति है । इन प्रकृतियोंकी अविमत्ति किसके है ? जिसने दर्शनमोहनीयक ध्वज कर दिया है ऐसे किसी भी देवके इनकी अविमत्ति है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विषयमें ज्ञानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविमत्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसर्पोचना कर ही है ऐसे किसी भी देवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविमत्ति है । इन सात प्रकृतियोंके अतिरिक्त श्रेय इक्षीस प्रकृतियोंकी विमत्ति किसके है ? किसी भी देवके श्रेय इक्षीस प्रकृतियोंकी विमत्ति है । इसी प्रकार आहारकफायबोगी, आहारक-सिम्ब्रययोगी, परिहारविद्वदिसंयव और सचवासपव जीवोंके ज्ञानना चाहिये ।

विशेषार्थ—अपर्युक्त मार्गजाओंमें सम्मग्दृष्टि जीव ही होते हैं । अतः जिनके चार अनन्तानुबन्धीकी विसर्पोचना और तीन दर्शनमोहनीयक ध्वज हो गया है उनके इन प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है, श्रेयके है । पर इन मार्गजाओंमें इनके अतिरिक्त श्रेय इक्षीस

§ ११३. ओरालियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त अणंताणुबंधिचउक्क० ओघभंगो । वारसकसाय-णवणोकसायविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । अविहत्ती कस्स ? अण्णद० सजोगिकेवलिस्स । एवं कम्मइय० अणाहारि त्ति वचच्चं । णवरि, वारसकसाय-णवणोक० अविहत्तीए [पदर] लोगपूरणगदो सजोगी अजोगी च सामिणो ।

§ ११४. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणताणुबंधिचउक्क० ओघभंगो । अट्ठक०-णवुसयविहत्ती कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । अविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स खवयस्स । चत्तारिसंजलण०-दोवेद०-छण्णोक० विहत्ती प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है ।

§ ११३ औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा कथन ओघके समान है । तथा वारह कषाय और नौ नोकषायविभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि औदारिक मिश्रकाययोगीके वारह कषाय और नौ नोकषाय की विभक्ति है । वारह कषाय और नौ नोकषायकी अविभक्ति किसके है ? किसी भी सयोगकेवली औदारिकमिश्रकाययोगी जीवके वारह कषाय और नौ नोकषायकी अविभक्ति है । इसी प्रकार कर्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कर्मणकाययोगियोंमें वारह कषाय और नौ नोकषाय की अविभक्तिके स्वामी प्रतर और लोकपूरण समुद्रातको प्राप्त सयोगकेवली जीव हैं । तथा अनाहारकोंमें वारह कषाय और नौ नोकषायकी अविभक्तिके स्वामी प्रतर और लोकपूरण समुद्रातको प्राप्त सयोगकेवली और अयोगकेवली है ।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोग और कर्मणकाययोग पहले, दूसरे चौथे और तेरहवें गुणस्थानमें होता है । तथा अनाहारक अवस्था पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमें और चौदहवें गुणस्थानमें होती है । तथा मोहनीयका सत्त्व वारहवें गुणस्थानसे नहीं है, क्योंकि दसवेंके अन्तमें उसका समूल नाश हो जाता है, अत उक्त मार्गणाओंमें सभव तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानकी अपेक्षा इक्कीस मोहप्रकृतियोंका असत्त्व कहा है । तथा शेषके इनका सत्त्व कहा है । शेष सात प्रकृतियोंकी अपेक्षा सत्त्वासत्त्व जिस प्रकार ओघमें कहा है वही प्रकार वहा भी जान लेना चाहिये ।

§ ११४. स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कथन ओघके समान है । तथा आठ कषाय और नपुंसक वेदकी विभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके आठ कषाय और नपुंसक वेदकी विभक्ति है । आठ कषाय और नपुंसकवेदकी अविभक्ति किसके है ? किसी भी क्षपक स्त्रीवेदी जीवके आठ कषाय और नपुंसकवेदकी अविभक्ति है । तथा चार सञ्चलन, दो वेद और छह

कस्त ? अण्ण० सम्मादि० मिच्छादि० वा । पुरिसवेदपसु इत्थिवेदमगो । णवरि
इत्थिवेद-छण्णोक्क० अविहत्ती कस्त ? खुवयस्स । गर्धुस० इत्थिवेदमगो । णवरि
बहुसयवेदस्स अविहत्थिया पत्थि । इत्थिवेद० पुरिसवेदमगो । अबगद० मिच्छत्त
सम्मत्त०-सम्मामि० अट्ठक०-दोवेदविहत्ती कस्त० ? अण्ण० उवसामयस्स । अविहत्ती
कस्त ? अण्ण० खुवयस्स । णवरि दसणातीयमविहत्ती उवसामगस्स वि । चचारि
संखल्ल पुरिस छण्णोक्कमाय० विहत्ती कस्त ? अण्ण उवसामयस्स वा खुवयस्स
वा । अविहत्ती कस्त ? अण्णद० खुवयस्स ।

नोकपायकी विभक्ति किसके है ? किसी भी सम्पत्ति वा मिष्पाट्टि स्त्रीवेशी जीवके है ।
पुरुषवेदियोंमें स्त्रीवेदियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदियोंमें
स्त्रीवेश और छह नोकपायकी विभक्ति किसके है ? छपक पुरुषवेशी जीवके है । मनु-
सकवेदियोंमें स्त्रीवेदियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके मनुसक
वेशकी विभक्ति नहीं है । तथा स्त्रीवेशका कवन पुरुषवेदके समान है । अपगतवेदियोंमें
मिष्पात्त, सम्पत्प्रकृति, सम्पत्मिष्पात्त अपत्याख्यानाशरण क्रोध आदि आठ कषाय और
दो वेदोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी उपशामक जीवके इन प्रकृतियोंकी विभक्ति
है । तथा छत्त प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी एक छपक जीवके छत्त प्रकृ-
तियोंकी विभक्ति है । इतनी विशेषता है कि तीन वर्त्तनमोहनीयकी विभक्ति उपशामक
भी है । तथा चार सख्खन पुरुषवेश और छह नोकपायोंकी विभक्ति किसके है ? किसी
भी उपशामक वा छपक अपगतवेशी जीवके इन प्रकृतियोंकी विभक्ति है । तथा इनकी
विभक्ति किसके है ? किसी एक छपक जीवके इनकी विभक्ति है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदियोंके चार सख्खन, छह नोकपाय, पुरुषवेश और स्त्रीवेश इन
चारह प्रकृतियोंका नियमसे सत्त्व है । तथा शेष सोच्छ्र प्रकृतियोंका किन्हीके सत्त्व है
और किन्हीके नहीं । पुरुषवेदियोंके चार सख्खन और पुरुषवेशका सत्त्व नियमसे है ।
शेषका सत्त्व किन्हीके है और किन्हीके नहीं । मनुसकवेदियोंके स्त्रीवेदियोंके समान
जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेशके सत्त्वके स्थानमें मनुसक-
वेशका सत्त्व रहना चाहिये । इन तीनों वेदवाले जीवोंके छिन प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे
है उन्हें छोड़कर शेष प्रकृतियोंका सत्त्व किसके है और किसका नहीं, इसका स्पष्टीकरण
ऊपर किया ही है, तथा अपगतवेदियोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व नियमसे नहीं है,
वस्तुतः ऊपर इनका बहल नहीं किया है । तथा इनके अतिरिक्त शेष चौबीस प्रकृतियोंका
सत्त्व है भी और नहीं भी है । उपशामक अपगतवेशीके तीन वर्त्तनमोहनीयको छोड़कर
शेष इत्थिस प्रकृतियोंका सत्त्व नियमसे है । तथा तीन वर्त्तनमोहनीयका सत्त्व है भी और
नहीं भी है । जो श्राविक सन्धक्त्तके साथ उपशामकेपी पर चढ़ा है वसके नहीं है ।

§ ११५ क्रोधक० पुरिसभंगो । णवरि पुरिस० अविहत्ती अत्थि । एवं माणक-
साय०, णवरि क्रोध० अविहत्ती अत्थि । एवं मायाकसाय०, णवरि माण० अविहत्ती
अत्थि । एवं लोभकसाय०, णवरि माय० अविहत्ती अत्थि । अकसाय० चउवीसपयडीणं
विहत्ती कस्म ? अण्ण० उवसामयस्स । अविहत्ती कस्स ? अण्ण० खवयवस्स । एवं
जहाक्खाद० वत्तव्वं ।

तथा जो उपशम सम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणी पर चढा है उसके है । तथा जो जीव
क्षपकश्रेणी पर चढ़कर अपगतवेदी हुए हैं उनके मध्यकी आठ कषाय नपुसकवेद और
स्त्रीवेदका सत्त्व नियमसे नहीं है । शेष ग्यारह प्रकृतियोंका सत्त्व है भी और नहीं भी
है । जिस अपगतवेदीने इनका क्षय कर दिया है उसके इनका सत्त्व नहीं है और जिसने
क्षय नहीं किया है उसके इनका सत्त्व है । इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदके साथ
क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए क्षपक जीवके छह नोकषायोंका क्षय सवेदभागमे ही हो जाता है ।

§ ११५ क्रोधकषायवाले जीवके पुरुषवेदी जीवके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता
है कि इसके पुरुषवेदकी अविभक्ति भी है । इसी प्रकार मानकषायवाले जीवके जानना
चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसके क्रोधकषायकी अविभक्ति भी है । इसी प्रकार
मायाकषायवाले जीवके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसके मानकषायकी
अविभक्ति भी है । इसी प्रकार लोभकषायवाले जीवके जानना चाहिये । इतनी विशेषता
है कि इसके मायाकषायकी अविभक्ति भी है । कषायरहित जीवोंमे चौबीस प्रकृतियोंकी
विभक्ति किसके हैं ? किसी भी उपशामक जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विना शेष
चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्ति है । चौबीस प्रकृतियोंकी अविभक्ति किसके हैं ? किसी भी
एक क्षपक जीवके चौबीस प्रकृतियोंकी अविभक्ति है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवके
कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—पुरुषवेदी जीवकी अपेक्षा क्रोधादिकषायवाले जीवोंके जो विशेषता होती है
वह ऊपर बतलाई ही है । कषाय रहित अवस्था उपशमश्रेणीके ग्यारहवें गुणस्थानमें और
क्षपकश्रेणीके बारहवें गुणस्थानसे होती है । ग्यारहवें गुणस्थानमें चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व
पाया जाता है । इसलिये कषायरहित उपशामकके चौबीस प्रकृतियोंका सत्त्व कहा है ।
इतनी विशेषता है कि यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी पर चढ़ता है तो उसके दर्शन-
मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं होता है । तथा बारहवें गुणस्थानमें मोहनीयकी
एक भी प्रकृतिका सत्त्व नहीं है, अतः कषायरहित क्षपक जीवके सभी प्रकृतियोंका असत्त्व
कहा है । यथाख्यातसंयम भी ग्यारहवें गुणस्थानसे होता है, अतः इसका कथन भी कषाय
रहित जीवोंके समान ही है ।

§ ११६ आमिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छत्-सम्मत्-सम्मामिच्छत्-अणतापुबंधि
चउक्क० विहत्ती कस्स ? अण्ण० अक्खीणदंसणमोहणीयस्स । अविहत्ती कस्स ? अण्ण०
खीणदंसणमोहस्स । सेसाण पयडीयं ओघमगो । णवरि विहत्ती अण्ण० । एवं मण
पत्त०-संजव-सामाइय-खेदो०-ओहिदसत्त-सम्मादिट्ठि पि वत्तप्प । णवरि सामाइय०-
[खेदो०] लोम० अविहत्ती णत्थि । सुद्धमसांपराइयसंजवेसु मिच्छत्-सम्मत्-सम्मामि०
पट्टारसक्क०-शब्बणोक्क० विहत्ती कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स । अविहत्ती कस्स० ?
अण्ण० खवयस्स । णवरि दंसणतियस्स अविहत्ती अत्थि उवसामगस्स पि । सोम०
विहत्ती कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स वा खवयस्स वा । अमवसिद्धि० छम्भीसण्ह
पयडीयं विहत्ती कस्स ? अण्ण० ।

§ ११७ खइयसम्माइहीसु वारसक्क०-अवणोक्क० विहत्ती कस्स ? अण्ण अक्ख

§ ११६ मतिज्ञानी सुवज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिच्छात्व, सम्मत्प्रकृति,
सम्बन्धिप्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति किसके है ? जिसने दर्शनमोह
नीपका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी मतिज्ञानी आवि जीवके है । अविभक्ति किसके
है ? जिसने धनका क्षय कर दिया है ऐसे किसी भी मतिज्ञानी आवि जीवके है । तथा
इनके श्रेय प्रकृतियोंका कर्म ओपके समान है । इतनी विशेषता है कि श्रेय इन्हींस प्रकृ-
तियोंकी विभक्ति किसी भी मतिज्ञानी आवि जीवके है । इसी प्रकार मनापर्यवज्ञानी, संपत,
सम्माधिकसत्त्व, छेदोपस्थापनासत्त्व, अवधिदर्शनी और सम्मत्प्रकृति जीवोंके कर्म करना
चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामाजिक और छेदोपरस्थापना संपत जीवके छोमकपायकी
अविभक्ति नहीं है ।

सुद्धमसांपरायिकसंबन्धोंमें मिच्छात्व, सम्मत्प्रकृति सम्बन्धिप्रकृति, सम्बन्धन छोमके
बिना ग्याह कपाय और नौ मोक्षपायकी विभक्ति किसके है ? किसी भी उपसामकके है ।
अविभक्ति किसके है ? किसी भी अपकके है । इतनी विशेषता है कि तीन दर्शनमोह
नीयकी अविभक्ति उपसामकके भी है । छोमकी विभक्ति किसके है ? किसी एक उप
सामक या अपक सुद्धमसांपरायिकसत्त्व जीवके छोमकी विभक्ति है ।

विशेषार्थ-अपक सुद्धमसांपरायिकसत्त्व जीवके एक सुद्धम छोमका ही सत्त्व है श्रेय
सत्त्व असत्त्व है । तथा उपसामक सुद्धमसांपरायिकसत्त्व जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कके
बिना चौबीस प्रकृतियों और धार्मिकसम्बन्धि उपसामक सुद्धमसांपरायिक जीवके
अनन्तानुबन्धी चार और तीन दर्शनमोहनीयके बिना इन्हींस प्रकृतियोंका सत्त्व होता है ।

अमम्य जीवोंमें छम्भीस प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी अमम्यके है ।

§ ११७ धार्मिकसम्बन्धिप्रकृतियोंमें वारह कपाय और नौ मोक्षपायकी विभक्ति किसके है ?
जिसने इन इन्हींस प्रकृतियोंका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी धार्मिकसम्बन्धिप्रकृतिके वारह

वयस्स । अविहत्ती कस्स ? अण्ण० खवयस्स । वेदगमम्मादिट्ठीसु मिच्छत्त-सम्माभि० विहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स । अविहत्ती कस्स ? दंसणमोहखवयस्स । अणंताणुबंधि-चउक्क० विहत्ती कस्स ? अण्ण० अविंसंजो जिदअणंताणुबंधिचउक्कस्स । अविहत्ती कस्स ? अण्ण० विंसंजोइदअणंताणु०चउक्कस्स । सेमाणं पयडीणं विहत्ती कस्स ? अण्ण० । उवसमसम्मादिट्ठीसु अणंताणु०चउक्क० विहत्ती कस्स ? अण्ण० अविंसंजोयिदस्स । अविहत्ती कस्स ? विंसंजोयिदअणंताणुवधिचउक्कस्स । सेसाणं पयडीणं विहत्ती कस्स ? अण्ण० । सासणसम्मादिट्ठीसु सव्वपयडीण विहत्ती कस्स ? अण्ण० । सम्माभि० अणंताणु०चउक्क०विहत्ती अविहत्ती च कस्स ? अण्ण० । सेसाण पयडीण विहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स ।

एवं सामित्तं समत्तं ।

कषाय और नौ नोकषायकी विभक्ति है । अविभक्ति किसके है ? जिसने इनका क्षय कर दिया है उसके इनकी अविभक्ति है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति किसके है ? किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टिके है । अविभक्ति किसके है ? जिसने दर्शनमोहनीयकी मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका क्षय कर दिया है उसके अविभक्ति है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है ऐसे किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति है । अविभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके अविभक्ति है । शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है उस उपशमसम्यग्दृष्टिके विभक्ति है । अविभक्ति किसके है ? जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है उस उपशमसम्यग्दृष्टिके अविभक्ति है । शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी उपशम सम्यग्दृष्टिके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके सभी प्रकृतियोंकी विभक्ति है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके है । शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति किसके है ? किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके शेष प्रकृतियोंकी विभक्ति है ।

विशेषार्थ—सभी अभव्योंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़ कर शेष छुब्बीस प्रकृतियोंका ही सत्त्व होता है । क्षायिकसम्यग्दृष्टिके तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धीका सत्त्व नहीं होता । शेष इक्कीस प्रकृतियोंका सत्त्व होता भी है और नहीं भी होता । वेदकसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धी चतुष्क, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वको

§ ११ = कालानुगमेण दुबिहो निदेसो ओषेण आदेसेण य । तस्य ओषेण मिच्छत-वारसकसाय-वषणोफसायविहरी केवचिरं कालादो होदि ? अणादिमा अपज्ज वसिदा, अणादिमा सपज्जवसिदा । सम्मत्त०-सम्मामि०-विहरी कवचिरं कालादो होदि ? जह० अतोमुहुत्तं उक्क० वे ज्जावट्टिसागरोवमाणि तीदि पत्तिदोवमस्स असखेज्जदि मागेहि सादिरेयाणि । अणताणु० षउक्कविहरी केवचिरं का० ? अणादि० अपज्जवसिदा अणादि० सपज्जवसिदा, सादि० सपज्जवसिदा वा । आ सा सादिसपज्जवसिदा तिस्से इमो प्पिरेसो-जह० अतोमुहुत्तं, उक्क० अहूपोमालपरियट्ठं देसणं । एवमपवस्तु०-मवसिद्धि० । ववचिरं मवसि० अपज्जवसिदं गतिय ।

छोप कर छेप बाईस प्रकृतियोंका सरब नियमसे होता है । छेप छह प्रकृतियोंका सरब होता भी है और नही भी होता है । उपग्रामसम्बन्धित जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना छेप चौबीस प्रकृतियोंका सरब नियमसे होता है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सरब होता भी है और नही भी होता । सम्बन्धित्वात्तु जीवोंके भी अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना चौबीस प्रकृतियोंका सरब नियमसे होता है । अनन्तानुबन्धी चारका सरब होता भी है और नही भी होता है । सासादनसम्बन्धित्वात्तु जीवोंके अष्टाईस प्रकृतियोंका ही सरब होता है ।

इस प्रकार कामित्वानुवोगद्वारा समाप्त हुआ ।

§ ११ = कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आवेशनिर्देश । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायकी विमलिकाके जीवोंका कितना काळ है ? अनादि-अनन्त और अनादि-साप्त काळ है । सम्बन्धप्रकृति और सम्बन्धित्वात्तुकी विमलिकाके जीवोंका कितना काळ है ? अनादि-अनन्त, अनादि-साप्त और सादि-साप्त काळ है । इनमेंसे जो सादि-साप्त अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमलि है जाग बसका निर्देश करते हैं—अनन्तानुबन्धीचतुष्कविमलिका अपम्य काळ अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट काळ कुछ कम अर्धपुत्ररूपपरिवर्तन प्रमाण है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और मध्य जीवोंके जामना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मध्य जीवोंके अनन्तकाळ नही है ।

विशेषार्थ—बारह कपाय नौ नोकपाय और मिथ्यात्वका अनादि-अनन्त काळ अमध्योंके होता है और अम्योंके अनादि-साप्त काळ होता है । सम्बन्धप्रकृति और सम्बन्धित्वात्तु वे दोनों प्रकृतियां नियमसे सादि-साप्त हैं, इसमें भी इन दोनोंका अपम्यकाळ अन्तर्मुहूर्त्त है, क्योंकि जिसके पहले इन दोनों प्रकृतियोंका सरब नही है ऐसा जो अपग्राम सम्बन्धित्वात्तु अति छुपु अन्तर्मुहूर्त्तकाळ तक अपग्रामसम्बन्धित्वात्तु साब रहत, अनन्तर वेदकसम्बन्ध

गृह्णित होकर जिसने क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके इन दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व-काल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है । तथा उत्कृष्ट काल पल्योपमके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर हैं । जो इस प्रकार हैं—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त करके मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हो गया और इसके बाद वह पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । वहां उसे उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलनामे सबसे अधिक काल पल्योपमका असख्यातवां भाग लगता है । पर अपने अपने उद्वेलना कालमें जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब उस जीवने उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिका प्रारम्भ किया और जब उद्वेलनाका उपान्त्य समय प्राप्त हुआ तभी मिथ्यात्वका अभाव होकर उपशमसम्यक्त्व प्राप्त हो गया और इस प्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी धारा न टूट कर इनका नवीन सत्त्व प्राप्त हो गया । अनन्तर छथ्यासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । और वहां उक्त दोनों प्रकृतियोंके उद्वेलना काल पल्योपमके असख्यातवें भागके अन्तिम समयमे पुनः उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी धारा न टूटते हुए नवीन सत्ता प्राप्त कर ली । अनन्तर छथ्यासठ सागर कालतक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमे मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वह जीव पल्योपमके असंख्यातवें भाग कालके द्वारा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करके क्रमसे उनका अभाव कर देता है । इस प्रकार उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर प्राप्त हो जाता है । अनन्तानुबन्धी चारका अनादि-अनन्त काल अभव्योंके होता है । तथा जिस भव्यने सम्यक्त्व प्राप्त करके सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके अनादि-सान्त काल होता है । तथा विसंयोजनाके बाद जिसके पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त हो जाती है उसके अनन्तानुबन्धीका सादि-सान्त काल होता है । इस सादि-सान्त कालका जघन्य प्रमाण अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट प्रमाण कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले किसी जीवके उसकी पुनः सत्ता होने पर जो अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसकी पुनः विसंयोजना कर देता है उसके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है । और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला जो जीव मिथ्यात्वमें जाकर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक मिथ्यात्वके साथ ही रहता है उसके अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्राप्त होता है । अचञ्चुदर्शनका अभाव बारहवें गुणस्थानमें होता है उसके पहले वह सदा रहता है और उसका सद्भाव भव्य और अभव्य दोनोंके है, अतः इसके सभी प्रकृतियोंका काल ओषके समान बन जाता है । भव्य मार्गणा भी चौदहवें गुणस्थानकी प्राप्ति होने तक निरन्तर पाई जाती है, इसलिए वह अनादि तो है पर अनन्त नहीं, अतः इसके अनन्त विकल्पको छोड़कर काल सबन्धी शेष सब प्ररूपणा ओषके समान बन जाती है ।

§ ११६ आदेशेन निरयगदीय पेरपियेसु मिच्छन्त-वारसकसाय-अवगोकासाय० विहरी के० । अह० इस बाससहस्ताणि, उक्त० चेवीसं सागरोवमाणि । एवं सम्मत्त सम्मामिच्छन्त-अर्णतापुवचिचउक्ताण । णवरि अह० एगसमओ । पढमादि जाव सचमा पि एव वेव वचम्य । ववरि वावीसम्हं पपढीणमप्यप्यजो अह०पुक्कस्सट्ठिदी वचम्मा । छण्ण पपढीण अह० एगसमओ, उक्त० सग-सग-उक्कस्सट्ठिदी होदि । अवरि सचमाए पुढवीए अणताणु०पउक्कस्स अह० अतोसुहुचं । कुवो, अंतोसुहुचेण विणा संज्जुचिदियसमए वेव मरणामावादो ।

§ ११६ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व बाह्य क्वाव और नौ लोकवाव विभक्तिका कितना कास है ? अथम्य कास इस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कास तेतीस सागर है । इसी प्रकार सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्का भी कास समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनका अथम्य कास एक समय है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार कर्म करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अनन्ता अनुबन्धी चतुष्क, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर छेप बाईस प्रकृतियोंका अथम्य और उत्कृष्ट कास करते समय प्रश्नादि नरकोंमें जहाँ बितनी अथम्य और उत्कृष्ट स्थिति हो वहाँ उतना अथम्य और उत्कृष्ट कास करना चाहिये । किन्तु कुछ प्रकृतिबोध अथम्य कास एक समय है तथा उत्कृष्ट कास प्रश्नादि नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्का अथम्य कास अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, अनन्तानुबन्धीका पुनः संबोधन होनेपर अन्तर्मुहूर्त कास हुए बिना दूसरे समयमें ही मरण नहीं होता है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नरककी अथम्य स्थिति एक हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है और सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चार इनको छोड़कर छेप बाईस प्रकृतियोंका किसी भी नारकी के अभाव नहीं होता है, अतः इन बाईस प्रकृतियोंका अथम्य कास इस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कास तेतीस सागर का है । तथा विशेषकी अपेक्षा जिस नरक की बितनी अथम्य और उत्कृष्ट स्थिति है उतना कास । छेप उपर्युक्त छह प्रकृतियोंका उत्कृष्ट कास तो पूर्वोक्त ही है । परन्तु अथम्य कासमें कुछ विशेषता है जो निम्न प्रकार है—सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उद्देखना करनेवाले किसी जीवके उद्देखनाके कासमें एक समय छेप रहते हुए प्रश्नादि नरकोंमें उत्पन्न होने पर एक दोनों प्रकृतियोंका सामान्य और विशेष दोनों प्रकारसे अथम्य कास एक समय बन जाता है तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंबोधना करनेवाले कोई एक सम्यग्प्रति नारकी मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ एक समय तक अनन्तानुबन्धीके साथ रहकर दूसरे समयमें मरकर यदि अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है तो उसके नरकगतिकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीका अथम्य

§ १२०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु चावीसण्ह पयडीणं विहत्ती केव० का० होदि ? जह० खुदाभवग्गहणं । अणंताणु० चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० दोण्हं पि अणंतकालो, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० एगसमओ उक्क० तिण्णि पलि-दोवमाणि सादिरेयाणि । पंचिदियतिरिक्ख-पंचि० ति० पज्ज-पंचि० ति० जोणिणीसु चावी सण्हं पयडीणं विहत्ती केव० का० होदि ? जह० खुदाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणताणु० चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० सव्वासिं पयडीणं तिण्णि पलि-दोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्व (वभ) हियाणि । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं ।

काल एक समय बन जाता है । परन्तु सातवें नरकमें ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त काल हुए बिना मरता नहीं अतः वहा अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ १२० तिर्यचगतिका कथन करते समय तिर्यचोंमें बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल कितना है ? जघन्य काल खुदाभवग्रहण प्रमाण है । और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय है । तथा पूर्वोक्त बाईस और अनन्तानुबन्धी चतुष्क इन दोनोंका उत्कृष्ट अनन्त काल है । जो अनन्तकाल असख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तीन पल्योपम है । पंचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें बाईस प्रकृतियोंका काल कितना है ? जघन्य काल खुदाभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । तथा सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय है और सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ।

जिस प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच आदिके मोहकी अट्टाईस प्रकृतियोंका काल बतलाया है उसी प्रकार मनुष्यत्रिक अर्थात् सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, और मनुष्यनीके भी उक्त अट्टाईस प्रकृतियोंका काल समझना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यचोंके पाच भेद हैं । उनमेंसे लब्धपर्याप्त तिर्यचोंको छोड़कर शेष चार प्रकारके तिर्यचोंकी अपेक्षा यहा पर अट्टाईस प्रकृतियोंका सत्त्वकाल कहा है । सामान्यसे तिर्यच गतिमें रहनेका जघन्यकाल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्टकाल आवलीके असख्यातवें भागके जितने समय हों उतने पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, इसलिये जिन प्रकृतियोंका तिर्यचगतिमें कभी भी अभाव नहीं होता ऐसी बाईस प्रकृतियोंका तिर्यचगति सामान्यकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमसे खुदाभवग्रहणप्रमाण और असख्यात पुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण कहा है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चारका उत्कृष्ट सत्त्वकाल भी असख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण हो जाता है, क्योंकि इतने काल तक जीव तिर्यचगतिमें मिथ्यात्वके साथ रह सकता है और मिथ्यात्वमें अनन्तानुबन्धीका अभाव नहीं होता । परन्तु अनन्तानुबन्धीके जघन्य सत्त्वकाल और सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके जघन्य और उत्कृष्ट

१२१ पश्चिदियतिरि०अपज्ञ० छम्बीस पयडीयं निहती केमधिरं कालादो होदि । अह० सुरामबमइयं । सम्मत्त०-सम्मामि० अह० एगसमओ । उक्त० सम्भासिं सस्वकाळमें विसेपता है । यह इस प्रकार है—उक्त छहों प्रकृतियोंका अपन्य सस्वकाळ एक समय जिस प्रकार नरकगतिमें घटित कर आये हैं उसी प्रकार वहाँ तिर्यङ्गगतिमें भी घटित कर लेना चाहिये । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्बन्धिप्यात्वका उत्कृष्ट सस्वकाळ साधिक तीन पस्व है । क्योंकि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ताबाध्य जो मिथ्यादृष्टि तिर्यङ्ग दान या दानकी अनुमोदनाके माहात्म्यसे उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होकर और वहाँ पर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी बड़ेसना होनेके पहले ही सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है उसके साधिक तीन पस्व काळ तक उक्त दोनों प्रकृतियोंका सस्व पाया जाता है । वहाँ साधिकसे पूर्वकोटि पृबत्व सेना चाहिये । विशेषकी अपेक्षा पंचेन्द्रियतिर्यङ्गका अपन्य काळ सुरामबमइयप्रमाण और उत्कृष्ट काळ पचामये पूर्वकोटि अधिक तीन पस्व है । तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यङ्ग और योनिमती तिर्यङ्गका अपन्यकाळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ क्रमसे सेताक्षीस और पन्ध्र पूर्वकोटि अधिक तीन पस्व है, अतः जिन प्रकृतियोंका तिर्यङ्गगतिमें कमी भी अभाव नहीं होता उन बाईस प्रकृतियोंका अपन्य और उत्कृष्ट काळ पूर्वोक्त वहाँ जितना अपन्य और उत्कृष्ट काळ समव है उतना कहा है । तथा सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चारका उत्कृष्ट काळ वहाँ जितना उत्कृष्ट काळ है उतना ही है, क्योंकि पूर्वोक्त काळ तक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यङ्ग भावि पर्यायोंके साथ मिथ्यात्व गुणत्वानमें रह सकता है और मिथ्यात्व गुणत्वानमें अनन्तानुबन्धीका अभाव नहीं है अतः अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काळ पूर्वोक्त तीन प्रकारके तिर्यङ्गोंसे जिसका जितना उत्कृष्ट काळ है उतना बन जाता है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काळ पूर्वोक्त ही है, क्योंकि कहीं इन दोनों प्रकृतियोंकी बड़ेसना होनेके पूर्व ही सम्यक्त्व उत्पन्न करके उनकी सस्वरियति बढ़ा कर और कहीं बेहकसम्बन्धके साथ रह कर जिस तिर्यङ्ग जितना उत्कृष्ट काळ कहा है उतने क्रम तक इन दोनों प्रकृतियोंकी भाग न टूटते हुए सत्ता पाई जा सकती है । तथा पूर्वोक्त तीन प्रकारके तिर्यङ्गोंके इन छहों प्रकृतियोंका अपन्य सस्व काळ एक समय है जिसका उल्लेख नरक गतिमें इनका अपन्य क्रम करते समय कर आये हैं, अतः समीप्रकार वहाँ समझ लेना चाहिये । सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके अट्टाईस प्रकृतियोंका अपन्य और उत्कृष्ट काळ पंचेन्द्रिय तिर्यङ्ग आदिके समान है इसका यह जमिप्राय है कि पूर्वकोटिपृबत्वकी गणनाको छोड़कर शेष काळनिर्देश दोनोंका समान है । परन्तु पूर्वकोटिपृबत्वसे सामान्य मनुष्योंके सेताक्षीस, पर्याप्त मनुष्योंके तेईस और मनुष्यमिथोंके सात पूर्वकोटि लेना चाहिये ।

१२१ पंचेन्द्रिय तिर्यङ्ग सव्यपर्याप्तोंके छम्बीस प्रकृतियोंकी विमलिका सस्वकाळ जितना है । अपन्य सुरामबमइयप्रमाण है । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्बन्धिप्यात्वका

पयडीणमंतोमुहुत्तं । एवं मणुसअपज्ज० वत्तव्वं ।

§ १२२. देवाणं णारगभंगो । भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति चाधीसं पयडीणं जहणुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा । छण्णं पयडीणं जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी वत्तव्वा । अणुद्धिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-चारसकसाय-गवणोक० जह० जहणुट्ठिदी वत्तव्वा । सम्मत्त-अणंताणु० चउक्क० जह० एगसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी ।

जघन्य काल एक समय है । तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्त मनुष्योंके भी कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—लब्धपर्याप्तक जीव कदलीघातसे खुदाभवग्रहण तक जीवित रह कर मर जाते हैं, अतः उनकी जघन्य आयु खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्त है और इसीलिये सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वके जघन्य सत्त्वकालको छोड़कर शेष सभी प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे खुदाभवग्रहण और अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा उद्वेलनाके कालमें एक समय शेष रहने पर अविबक्षित गतिका जीव विवक्षित पर्यायमें जब उत्पन्न होता है तब उसके सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय बन जाता है ।

§ १२२. देवगतिमे सामान्य देवोंके अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका सत्त्वकाल सामान्य नारकियोंके समान कहना चाहिये । विशेषकी अपेक्षा भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तक प्रत्येक स्थानमें बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिका काल उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । तथा सम्यक्त्वप्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । तथा नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक प्रत्येक स्थानमें मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्यकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये । और सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल सर्वत्र अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—नौ अनुदिशोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धीके जघन्य कालको छोड़कर शेष कथनमे कोई विशेषता नहीं है । नरकगतिका कथन करते समय जिसप्रकार उसका खुलासा कर आये हैं उसी प्रकार यहा की विशेष स्थितिको ध्यानमे रखकर उसका खुलासा कर लेना चाहिये । परन्तु अनुदिशसे आगेके देवोंके एक सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ही होता है, इसलिये इनके सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धीके जघन्य कालमें विशेषता आ जाती है । जिसके सम्यक्प्रकृतिकी क्षणामे एक समय शेष है ऐसा

१२३ इदियापुत्रादेव एतदियसु सम्मत्त-सम्मानिच्छत्तविहरी० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असंखे० मागो । सेसाणं पयडीण जह० सुहामवग्गहणं, उक्क० जणत्त क्खलोअसंखेजा पोग्गलपरियङ्गा । एव वादरेइदियाणं । अपरि छम्बीसंपयडीणसुक्कस्स विहरीकस्सो अंगुलस्स असंखेजदिमागो, असंखेजाओ जोसप्पिप्पितस्सप्पिणीओ । वाद रेइदियपजे० सम्मत्त-सम्मानि० विहरी० जह० एगसमओ, उक्क० संखेजाणि वाससइ स्साधि । सेसाणं छम्बीसंपयडीणमेव वेव, पवरि जइण्विहत्तिकालो अंतोमुहुत्त । वादरेइदियअपजत्तपसु सम्मत्त-सम्मानि० जह० एगसमओ, सेसछम्बीसंपयडीणं जह० सुरा० । सप्पपयडीणं विहत्तिकालो उक्क० अतोमुहुत्त । सुहुमेइदियसु सम्मत्त-सम्मानि० विहरी० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० मागो । सेसपयडीणं विहत्ति० जह० सुरा , उक्क० असंखेजा लोगा । सुहुमेइदियपजे० सम्मत्त-सम्मानि० विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । सेसपयडीणं विहत्ति० जइण्णुक्कस्सेव अंतो-
 क्तवत्तवेइकसम्यग्गमि मनुष्य जव नी अनुदिश वादिमै उत्पन्न होता है तब उसके सम्यक् प्रकृति का अण्व का एक एक समय भी बन जाता है । तब कोई वेदकसम्यग्गमि अनुदिश वादिमै उत्पन्न हुआ और वही उसने अनन्तासुबन्धीकी अन्तर्मुहूर्त काळके भीतर विसर्जना कर ही तो उसके अनन्तासुबन्धीका अण्व का एक अन्तर्मुहूर्त बन जाता है ।

१२३ इन्द्रिय मार्गणाके अनुबावसे एकेन्द्रियोमै सम्बन्धप्रकृति और सम्यग्मिप्यात्वकी विमर्शिका अण्व का एक समय और उत्कृष्ट अण्व परस्पोपमके असंख्यातवै भाग है । तब जेव छम्बीस प्रकृतियोंका अण्व काळ सुरामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अण्व काळ है विसका प्रमाण असंख्यात पुनरुत्पत्तिवर्तन है । इसी प्रकार बाहर एकेन्द्रियोके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके छम्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अण्व अंगुलके असंख्यातवै भाग है । विसका प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी है । बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिप्यात्वका अण्व का एक समय और उत्कृष्ट अण्व संख्यात हजार वर्ष है । बाहर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके जेव छम्बीस प्रकृतियोंका काळ भी सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिप्यात्वके काळके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अण्व का एक समय न होकर अन्तर्मुहूर्त है । बाहर एकेन्द्रिय अण्व-
 र्वाप्तकोमै सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिप्यात्वका अण्व का एक समय और जेव छम्बीस प्रकृतियोंका अण्व काळ सुरामवग्रहण प्रमाण है । तब सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अण्व अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोमै सम्बन्धप्रकृति और सम्यग्मिप्यात्वका अण्व का एक समय और उत्कृष्ट अण्व परस्पोपमके असंख्यातवै भाग है । तब जेव प्रकृतियोंका अण्व काळ सुरामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अण्व असंख्यात लोका है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोमै सम्बन्धप्रकृति और सम्यग्मिप्यात्वका अण्व का एक समय और उत्कृष्ट अण्व अन्तर्मुहूर्त

मुहुत्तं । सुहुमेइंदियअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि०विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सेसाणं पयडीणं जह० खुद्दा०, उक्क० अंतोमु० ।

§ १२४. विगलिंदिएसु सम्मत्तसम्मामिच्छत्तविहत्ति० जह० एगसमओ, सेसाणं पयडीणं विहत्ति० जह० खुद्दा० । सव्वेसिं पयडीणं विहत्ति० उक्क० संखेजाणि वस्स-सहस्साणि । एव विगलिंदियपज्जत्ताणं । णवरि, छव्वीसं पयडीणं विहत्ति० जह० है । तथा शेष छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यहा एकेन्द्रियोंमें और उनके भेद प्रभेदोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्व ये दो प्रकृतिया एकेन्द्रियोंके पाई भी जाती हैं और नहीं भी पाई जाती हैं । जिनके इनका उद्वेलना काल पूरा नहीं हुआ है उनके पाई जाती हैं और जिनके उद्वेलना काल पूरा हो गया है उनके नहीं पाई जाती हैं । अतः इनके जघन्य और उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंकी जिस पर्यायमें लगातार जघन्य और उत्कृष्टरूपसे जितने काल तक एक जीवके रहनेका नियम है उतना है, जो ऊपर बतलाया ही है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल जो एक समय कहा है उसका कारण यह है कि जिसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रह गया है ऐसा कोई जीव जब मरकर विवक्षित एकेन्द्रियमें उत्पन्न होता है तब उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है । तथा जिन एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भागसे अधिक है उनके इन दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भाग होता है । क्योंकि इतने कालके भीतर इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना हो जाती है । और जिन एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भागके भीतर है उनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट काल भी उतना ही होता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेके पहले ही वह पर्याय बदल जाती है ।

§ १२४ विकलेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय और शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है । तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके उक्त प्रकृतियोंका काल जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण न होकर अन्तर्मुहूर्त है । विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान विकलेन्द्रिय अपर्याप्त-

अतोमुद्बुधं । एवं विगर्हितदियअपज्जत्तानं, णपरि छम्बीसपयडीणं विहसि० बह० सुदा०,
अहाबीसपयडीणं विहसि० उक्क० अतोमुद्बुध ।

§ १२५ पाश्चिदिय-पश्चि०पञ्चमसु छम्बीसपयडीणं विहसि० बह० सुरामव
माहम्मंतोमुद्बुध, उक्क० सागरोबमसहस्साणि पुम्बकोट्टिपुधचेणम्महियाणि सागरो-
बमसदपुध । सम्मत्त-सम्मामि०विहसि० बह० एगसमओ, उक्क० वे छावट्टिसा

कोके बल्ल मरुतिबोका काळ जानना चाहिये । इतमी विशेषता है कि इसके छम्बीस प्रकृ-
तियोंका अल्प्य काळ अन्तर्मुहूर्त न होकर सुरामवमहणप्रमाण है । और अट्टईस प्रकृति
बोका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—रीन्द्रियकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष त्रीन्द्रियकी जनपास दिनरात और चतु-
रिन्द्रियकी छह महीना है । जब यदि कोई अन्य इन्द्रियबाल्य बीब विकसत्रयमें उत्पन्न होकर
निरन्तर इसी विकसत्रय पर्यायमें उत्पन्न होता रहे और मरता रहे तो संस्मात्त हजार वर्ष
तक वह विकसत्रय पर्यायमें रह सकता है । इसी अपेक्षासे ऊपर सामान्य और पर्याप्त
विकसत्रयोंके सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काळ संस्मात्त हजार वर्ष कहा है । तथा अल्प्य काळ
करते समय सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका एक समय और छम्बीस प्रकृतियोंका
सामान्य विकसत्रयोंके सुरामवमहण प्रमाण और पर्याप्त विकसत्रयोंके अन्तर्मुहूर्त करनेका
कारण यह है कि बल्ल दोनों प्रकृतियोंकी उत्पत्तनामें एक समय श्रेय रहने पर अन्य इन्द्रि-
यबाल्य बीब यदि विवक्षित विकसत्रयमें उत्पन्न हुआ तो उसके दोनों प्रकृतियोंका अल्प्य
काळ एक समय बन जाता है । तथा सामान्य विकसत्रयका अल्प्य काळ सुरामवमहण
प्रमाण है और पर्याप्त विकसत्रयका अल्प्य काळ अन्तर्मुहूर्त है अतः इन दोनोंके श्रेय छम्बीस
प्रकृतियोंका अल्प्य काळ क्रमसे सुरामवमहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त पटित हो जाता है ।
छम्पपर्याप्तक विकसत्रयका अल्प्य काळ सुरामवमहणप्रमाण और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त
है अतः इनके छम्बीस प्रकृतियोंका अल्प्य काळ सुरामवमहणप्रमाण और सभी प्रकृतियोंका
उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कहा है । एही सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वके अल्प्य
काळकी बात सो ऊपर जिसप्रकार सामान्य और पर्याप्त विकसत्रयके इनके अल्प्य काळ एक
समयका सुझासा किया है वसी प्रकार इनके भी बल्ल दोनों प्रकृतियोंके अल्प्य काळका
सुझासा कर लेना चाहिये ।

§ १२६ पचेन्द्रिय और पचेन्द्रियपर्याप्तक बीबोंमें छम्बीस प्रकृतियोंका अल्प्य काळ क्रमसे
सुरामवमहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है । तथा दोनोंके छम्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काळ क्रमसे
पूर्वकोट्टिपुधत्व अधिक हजार सागर और चौ सागर प्रकृत्य है । तथा दोनोंके सम्यक्-
प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका अल्प्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ पस्वोपमके तीन
अर्धकालमें मागोसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर है ।

गरोवमाणि तीहि पलिदोवमस्स असंखे० भागेहि सादिरेयाणि । पुच्चं परूविदछव्वी-
सपयडीसु अणंताणुबंधिचउक्कस्स विहत्तीए जहण्णकालो एगसमओ त्ति किण्ण परू-
विदो ? ण, चउवीससंतकम्मिअ-उवसमसम्मादिट्ठिस्स एयसमयं सासणगुणेण परि-
णदस्स विदियसमए चेव कालं कादूण एइंदिएसु उप्पादासंभवादो । कुदो एदं णव्वदे ?
परमगुरूवएसादो । तदो अंतोमुहुत्तसंजुत्तस्सेव तत्थुप्पादो त्ति घेत्तव्वं । अथवा सव्वत्थ
उप्पज्जमाणसासणस्स एगसमओ वत्तव्वो । पंचिंदियअपज्जत्तएसु सम्मत्त-सम्मामि०
विहत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । छव्वीसंपयडीणं विहत्ति० जह० खुदा०,
उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

शंका—ऊपर जो छव्वीस प्रकृतिया कहीं हैं उनमेंसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य
काल एक समय क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव है
वह एक समय तक सासादन गुणस्थानके साथ रहकर और दूसरे समयमें ही मर कर
एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न होता है, इसलिये पचेन्द्रिय और पचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके अनन्ता-
नुबन्धी चतुष्कका जघन्य काल एक समय नहीं कहा ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव एक
समय सासादन गुणस्थानमें रह कर और दूसरे समयमें मर कर एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न
होता है ?

समाधान—परम गुरुके उपदेशसे जाना जाता है ।

अतः चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जब अनन्तानुबन्धी चतुष्कके
साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रह लेता है तभी वह मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो सकता है
ऐसा यहा ग्रहण करना चाहिये । अथवा जिन आचार्योंके मतसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव
एकेन्द्रियादि सभी पर्यायोंमें उत्पन्न होता है उनके मतसे पचेन्द्रिय और पचेन्द्रियपर्याप्त-
जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक समय जघन्य काल कहना चाहिये ।

विशेषकी अपेक्षा पचेन्द्रिय तिर्यचका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और पचेन्द्रिय-
पर्याप्त तिर्यच तथा योनिमतीतिर्यचका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

लब्धपर्याप्तक पचेन्द्रियोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्निध्यात्वका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुदा-
भवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य पचेन्द्रियका पचेन्द्रिय पर्यायमें रहनेका जघन्य काल खुदाभवग्रहण-
प्रमाण और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक हजार सागर है । पचेन्द्रियपर्याप्त-
जीवका पचेन्द्रियपर्याप्त पर्यायमें निरन्तर रहनेका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल

६१२६ चत्वारिकायसु सम्मत्त-सम्माभि० विहसि० बह० एगसमभो, उक्त०
 पात्तिदो० असंखे० मागो । सेसछम्बीसपयडीण विहसि० बह० सुरा०, उक्त० असखेला
 सोगा । चत्वारिबादरकायसु सम्मत्त-सम्माभि० उक्त० विहसीए चत्वारिकायमगो ।
 सेसछम्बीसपयडीयं विहसि० बह० सुरामबगहयं, उक्त० कम्मट्टिदी । चत्वारि
 बादरकायपत्तयसु सम्मत्त-सम्माभि० विहसि० बह० एगसमभो, सेसछम्बीसपयडीयं
 विहसि० बह० अतोमुहुत्त । सम्भासिमुक्कस्सकालो संखेलाणि वस्ससहस्साणि । चत्ता

सौ सागर प्रकृत है । तथा छम्पपर्याप्तक पचेन्द्रियक छम्पपर्याप्त पर्यायमें निरन्तर रहनेका
 अपन्य काळ सुरामबमहजप्रमाण और उक्तक काळ अन्तर्मुहूर्त है, इसलिये इन जीवोंके
 सम्बन्धप्रकृति और सम्पत्तिध्यात्वको छोड़कर शेष छम्बीस प्रकृतियोंका अपन्य और उक्तक
 काळ हम इन जीवोंकी वत्त वत्त पर्यायमें निरन्तर रहनेकी अपन्य और उक्तक कितिप्रमाण
 क्या है । यहाँ यह संका बठाई गई है कि सामान्य और पर्याप्त पचेन्द्रिय जीवोंके अनन्ता
 मुबन्धीका अपन्य काळ एक समय भी समब है फिर वसे यहाँ क्यों नहीं क्या । इस
 संकल्प समाधान बीरसेम स्वामीने दो प्रकारसे किया है । पहले तो यह बतलाया है कि
 जिस जीवने अनन्तामुबन्धीकी बिसंयोजना कर दी है ऐसा अपन्य सम्बन्धित जीव सा
 सावम गुणस्वानमें एक समय रहकर और दूसरे समयमें मरकर पचेन्द्रियोंमें नहीं कल्प
 होता है, इसलिये अनन्तामुबन्धीका अपन्य काळ एक समय नहीं बनता है । तथा दूसरे
 उत्तर द्वारा आचार्यान्तरके अभिप्रायसे अनन्तामुबन्धीका अपन्य काळ एक समय स्वीकार
 कर दिया है जो रूपर दिखाया ही है । तथा उक्त तीनो प्रकारके जीवोंके सम्बन्धप्रकृति
 और सम्पत्तिध्यात्वका अपन्य काळ एक समय तदेकनाकी अपेक्षा होता है । और पचे-
 न्द्रिय तथा पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके उक्त दो प्रकृतियोंका उक्तक काळ जो तीन पर्योपमके
 तीन असंख्यावसे मागोसे अधिक एक ही वत्तीस सागर बत्ताबा है इसका सुझाता पृष्ठ
 १०० पर कर आये हैं । और छम्पपर्याप्तक वत्त पर्यायमें रहनेका उक्तक काळ अन्त-
 र्मुहूर्त होनेसे उनके उक्त दो प्रकृतियोंका उक्तक काळ अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

६१२६ पृथिवीकाय आदि चार कर्मोंमें सम्बन्धप्रकृति और सम्पत्तिध्यात्वका अपन्य
 काळ एक समय और उक्तक काळ पर्योपमके असंख्यावसे भाग है तथा शेष छम्बीस प्रकृति
 योंका अपन्य काळ सुरामबमहजप्रमाण और उक्तक काळ असंख्याव सेकप्रमाण है । बादर
 पृथिवीकाय आदि चार बादरकार्योंमें सम्बन्धप्रकृति और सम्पत्तिध्यात्वका काळ पृथिवी
 काय आदि चार कर्मोंके समान है । तथा शेष छम्बीस प्रकृतियोंका अपन्य काळ सुरामब
 मजप्रमाण और उक्तक काळ कर्मकितिप्रमाण है । बादरपृथिवीकायिकपर्याप्त आदि चार
 बादरकायपर्याप्त जीवोंके सम्बन्धप्रकृति और सम्पत्तिध्यात्वका अपन्य काळ एक समय तथा
 शेष छम्बीस प्रकृतियोंका अपन्य काळ अन्तर्मुहूर्त है । और सभी प्रकृतियोंका उक्तक काळ

रिवादरकायअपञ्जत्तएसु सम्मत्त-सम्माभि० विहत्ति० जह० एगसमओ, सेसाणं पयडीणं विहत्ति० जह० खुदा०, सव्वासिसुक्क० अंतोमुहुत्तं । चत्तारिसुहुमकायिएसु सम्मत्त-सम्मा-मि०विह० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सेसलुच्चीसंपयडीण विह० जह० खुदा०, उक्क० असंखेजा लोगा । सव्वसुहुमपञ्जत्तापञ्जत्ताणमेवं चेव वत्तव्वं । णवरि पञ्जत्तएसु छुच्चीसंपयडीणंजह०अंतोमुहुत्तं । अट्टावीसपयडीणं उक्क०अंतोमुहुत्तं । वणप्फदि-

संख्यात हजार वर्ष है । बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त आदि चार बादरकाय अपर्याप्तजीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय और शेष प्रकृतियोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण है । तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म-पृथिवीकाय आदि चार सूक्ष्मकाय जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भाग है । तथा शेष छुच्चीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यातलोकप्रमाण है । सभी सूक्ष्म-पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल सूक्ष्मकायिक जीवोंके समान ही कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उक्त चारप्रकारके सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंके छुच्चीस प्रकृतियोंका जघन्य काल और अट्टाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—ऊपर पृथिवीकायिक आदि चार तथा उनके भेद-प्रभेदोंमें अट्टाईस प्रकृति-योंका जघन्य और उत्कृष्ट काल बताया है । सर्वत्र सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय है यह तो स्पष्ट है । तथा जहा विवक्षितकायका उत्कृष्ट काल पल्यो-पमके असंख्यातवेंभागसे अधिक है वहा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असंख्यातवां भाग होता है और जहा विवक्षित कायका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम है वहा उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल कम होता है । तथा शेष छुच्चीस प्रकृतियोंका काल कहते समय जिस कायका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल हो उतना उन प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये जो ऊपर बताया ही है । ऊपर बादर पृथिवीकाय आदिके छुच्चीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल जो कर्म स्थिति-प्रमाण बताया है सो इससे मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरका ग्रहण करना चाहिये । परिकर्ममें कर्मस्थितिसे भवस्थिति ली गई है इसलिये यहा कितने ही आचार्य कर्मस्थितिसे बादर एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट भवस्थिति असख्यातासख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालका ग्रहण करते हैं पर उनका ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि सामान्य बादर जीवका जो भवस्थितिकाल कहा है वही बादर पृथिवीकायिक आदिका नहीं हो सकता । तथा सूत्रग्रन्थोंमें सामान्य बादर जीवकी भवस्थिति असख्यातासख्यात उत्स-र्पिणी और असर्पिणीप्रमाण कही है और बादर पृथिवीकायिक आदिकी भवस्थिति कर्म-स्थितिप्रमाण कही है । इसप्रकार इन दोनोंकी भवस्थिति जब भिन्न भिन्न दो प्रकारसे कही

काश्यसु सम्मत्त-सम्मामि०विहसि० अह० एगसमओ, उह० पल्लिदो० असंखे० मागो ।
 सेसछम्बीसंपयडीण विहसि० अह० सुदा०, उह० अर्पतकालमसखेजा पोग्गलपरि
 यहा । बादरवणप्फदिकाइयायं बादरएइदियमंगो । तेसिं पञ्जापापञ्जाण बादरेइदिय
 पञ्जापापञ्जमंगो । सुहुमवणप्फदीयं सुहुमेइदियमंगो । बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय
 सरीराण बादरपुइदियमंगो । तेसिं पञ्जापापञ्जाण बादरपुइदियपञ्जापञ्जमंगो ।
 पिमोदडीवेसु सम्मत्त-सम्मामि०विहसि० अह० एगसमओ, उह० पल्लिदो० असंखे०
 मागो । सेसपयडीण विह० अह० सुदामवग्गहणं । उह० अइदाइलपोग्गलपरियहा ।
 बादरभिगोदडीवेसु सम्मत्त-सम्मामि०विहसि० अह० एगस०, उह० पल्लिदो०

है तो एकमें दूसरी स्थितिके अपचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं रहता । अतः यहाँ कर्म
 स्थितिसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिपर ही ग्रहण करना चाहिये ।

वनस्पतिकारिक जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्मिमिध्यात्वका अल्प्य काष्ठ एक समय
 और उत्कृष्ट काष्ठ पशुपमका असंख्यातवां भाग है । तथा श्लेष छम्बीस प्रकृतियोंका अल्प्य काष्ठ
 सुदामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अमन्त काष्ठ है जो असंख्यात पुरुष परिवर्तनप्रमाण है ।
 बादर वनस्पतिकारिकोंके समी प्रकृतियोंका काष्ठ बादर एकेन्द्रियोंके समान ज्ञानना चाहिये ।
 तथा बादरवनस्पतिकारिकपर्याप्त और बादरवनस्पतिकारिक अपर्याप्त जीवोंके समी प्रकृ-
 तियोंका काष्ठ बादर एकेन्द्रियपर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान ज्ञानना
 चाहिये । सूक्ष्म वनस्पतिकारिक जीवोंके समी प्रकृतियोंका काष्ठ सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान
 होता है । बादर वनस्पतिकारिक प्रत्येकशरीर जीवोंके समी प्रकृतियोंका काष्ठ बादरपृथिवी-
 कारिक जीवोंके समान होता है । तब बादर वनस्पतिकारिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और बादर
 वनस्पतिकारिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंके समी प्रकृतियोंका काष्ठ बादर पृथिवीकारिक
 पर्याप्त और बादर पृथिवीकारिक अपर्याप्त जीवोंके समान होता है ।

विशेषार्थ—एक जीव वनस्पतिकारिकमें कमसे कम सुदामवग्रहण काष्ठतक और अधिकसे
 अधिक असंख्यातपुरुष परिवर्तन काष्ठतक रहता है । इसस्थित्ये छम्बीस प्रकृतियोंका अल्प्य
 काष्ठ सुदामवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काष्ठ असंख्यात पुरुषपरिवर्तनप्रमाण कहा है । परन्तु
 सम्यक्प्रकृति और सम्मिमिध्यात्वकी उत्प्रेरणाकी अपेक्षा जनका अल्प्य काष्ठ एक समय और
 उत्कृष्ट काष्ठ पशुपमके असंख्यातवां भाग ही प्राप्त होता है, क्योंकि मिध्यात्वके साथ इससे
 अधिक काष्ठतक इन प्रकृतियोंका संचय नहीं रहता है । ऊपर कहे गये श्लेष बादर वनस्पति
 कारिक आदिके समी प्रकृतियोंका काष्ठ बादर एकेन्द्रिय आदिके समान ज्ञान लेना चाहिये ।

निगोदजीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्मिमिध्यात्वका अल्प्य काष्ठ एक समय और
 उत्कृष्ट काष्ठ पशुपमका असंख्यातवां भाग है । श्लेष प्रकृतियोंका अल्प्य काष्ठ सुदामवग्रह-
 णप्रमाण और उत्कृष्ट काष्ठ अर्थात् पुरुष परिवर्तनप्रमाण है । बादर निगोद जीवोंमें सम्यक्-

असंखे० भागो । सेसपयडीणं विहत्ति० जह० खुदा०, उक्क० कम्मट्टिदी । नादरणिगोद-
जीवपज्जत्ताणं वादरएइंदियपज्जत्तभंगो । वादरणिगोदजीवअपज्जत्ताणं वादरएइंदिय
अपज्जत्तभंगो । सुहुमणिगोदाणं सुहुमपुढविभंगो ।

§ १२७. तसकायियेसु सम्मत्त-सम्मामेच्छत्त० विहात्ति० जह० एगसमओ, उक्क०
वेत्तावट्टिसागरोवमाणि तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादिरेयाणि । सेसलब्बी-
संपयडीणं विहत्ति० जह० खुदाभवग्गहणं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपु-
धत्तेणव्भहियाणि । एवं तसकायियपज्जत्ताणं पि वत्तव्व । णवग्गि छव्वीसपयडीणं
विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० वेसागरोवमसहस्साणि । तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचि-
दियअपज्जत्तभंगो ।

प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमका
असख्यातवा भाग है । तथा शेष छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और
उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । वादर निगोद पर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल वादर
एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है । वादर निगोद अपर्याप्त जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल
वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके समान है । तथा सूक्ष्म निगोद जीवोंके सभी प्रकृतियोंका
काल सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीवोंके समान है ।

विशेषार्थ—निगोद जीवोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल ढाई
पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है, अतः इनके छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी उतना ही
है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल
पत्योपमका असख्यातवा भाग उद्वेलना की अपेक्षा कहा है जिसका स्पष्टीकरण ऊपर कर
आये हैं । वादर निगोद जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल यहा पर अलगसे बताया है
पर वादर पृथिवीकायिकके कालसे उसमें कोई विशेषता नहीं है, अतः वादर पृथिवीका-
यिकके कालका जिसप्रकार पहले खुलासा कर आये हैं उसीप्रकार यहा समझ लेना चाहिये ।
इसीप्रकार वादर निगोद पर्याप्त आदिके सभी प्रकृतियोंका काल वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त
आदिके समान जान लेना चाहिये ।

§ १२७ त्रसकायिक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके तीन असख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर
है । तथा शेष छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल
पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर है । इसीप्रकार त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंके भी
कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके छव्वीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहुत्तं
और उत्कृष्ट काल दो हजार सागर है । त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके सभी प्रकृतियोंका
काल पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ।

४१२८ बीगाजुवादेण पचमण०-पंचवचि०-वेठभिय०-वेठभियमिस्स० अट्टावी
 सपयडीण विहचि० अह० एगसमओ, उक्क० अतोसुहुचं । णवरि वेठभियमिस्स० छब्बी
 सपयडीण जह० अतोसुहुचं । कायबीगीसु सम्मत्त-सम्मामि० विहचि० अह० एगसमओ,
 उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । सेसछब्बीसंपयडीण विहचि० अह० एगसमओ,
 उक्क० अत्तकालो असंखेजा पोग्गलपरियहा । कयमेत्थ एगसमयमेत्तसहस्यकालो-
 बलमो ये ? न; विहचिगचरिमसमए कायबीगेण परिणदम्मि तदुवलदीदो । ओराळिय०
 मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसकसाय-अवओकसायविहचि० अह० एगसमओ,
 उक्क० बावीसवत्ससहस्ताणि वेत्तवाणि । ओराळियमिस्स० अट्टावीसपयडीणं विहचि०
 अह० सुहामवग्गहण सिसमपुणं, उक्क० अतोसुहुचं । पवरि सम्मत्त-सम्मामि०

विशेषार्थ—त्रसक्यिक जीवोंका जप्य काळ जुरामवप्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काळ
 पूर्वकोटिष्टयत्त्व अधिक हो हजार सागर है, अतः इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जप्य
 और उत्कृष्ट काळ भी उतना ही है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका
 जप्य काळ एक समय बदेखनाकी अपेक्षा है और उत्कृष्ट काळ पत्तोपमके तीन असंख्यातके
 भागोंसे अधिक एकसौ बरीस सागर बदेखनाके कालके भीतर पुनः पुनः सम्यक्त्वकी
 प्राप्तिकी अपेक्षा है जिसका सुभासा पहले कर आये हैं । पर्याप्त त्रसक्यिक जप्य काळ
 अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ हो हजार सागर है, इसलिये इनके छब्बीस प्रकृतियोंका जप्य
 और उत्कृष्ट काळ भी उतना ही कहा है । शेष कथन सुगम है ।

४१२८ योगमार्गणाके अनुवासे पांचों मनोयोगी पांचों बचनयोगी, वैक्रियिकताय
 योगी और वैक्रियिकमिमकाययोगी जीवोंके अट्टाईस प्रकृतियोंका जप्य काळ एक समय और
 उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि वैक्रियिकमिमकाययोगी जीवोंके छब्बीस
 प्रकृतियोंका जप्य काळ अन्तर्मुहूर्त है । सामान्य काययोगी जीवोंके सम्यक्प्रकृति और
 सम्यग्मिध्यात्वका जप्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ पत्तोपमका असंख्यातकां माग
 है । तथा शेष छब्बीस प्रकृतियोंका जप्य काळ एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काळ
 है जो असंख्यात पुत्रपरिवर्तनप्रमाण है ।

उत्कृष्ट—यहां सामान्य काययोगी जीवोंके छब्बीस प्रकृतियोंका जप्य काळ एक समय
 कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—एक छब्बीस प्रकृतियोंके सब होनेके अन्तिम समयमें काययोगसे परिणत
 होने पर छब्बीस प्रकृतियोंका जप्य काळ एक समय प्राप्त हो जाता है ।

औदारिककाययोगी जीवोंके मिध्यात्व सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व, सोच्छ कपाय
 और मौ नोकपायका जप्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ कुछ कम बार्स हजार वर्ष
 है । औदारिकमिमकाययोगी जीवोंके अट्टाईस प्रकृतियोंका जप्य काळ तीन समय कम

विहात्ति० जह० एगसमओ । आहार० अट्टावीसपयडीणं विह० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोसु० । आहारमि० अट्टावीसपय० विहत्ती० जहणुक्क० अंतोसु० । कम्मइय० अट्टावीसप० विहत्ती० जह० एगस०, उक्क० तिणिण समया ।

खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय है । आहारककाययोगी जीवोंके अट्टाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्टाईस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा कर्मण काययोगी जीवोंके अट्टाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पाचों मनोयोग, पाचों वचनयोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग और आहारककाययोग इन सबका जघन्य काल एक समय और औदारिककाययोगको छोड़कर शेष सभीका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल कुछ कम वाईस हजार वर्ष है । उक्त योगोंका जघन्य काल एक समय योगपरावृत्ति, गुणपरावृत्ति, मरण और व्याघातकी अपेक्षा बताया है । पर ग्रहा योगपरावृत्ति और गुणपरावृत्तिकी अपेक्षा एक समय सम्बन्धी प्ररूपणासे प्रयोजन नहीं है, क्योंकि इनकी अपेक्षा योगोंकी एक समय सम्बन्धी प्ररूपणा आश्रयभेद पर अवलम्बित है, वास्तवमे वहा प्रत्येक योग अन्तर्मुहूर्त काल तक ही रहता है । अच रही मरण और व्याघातकी बात सो पाचों मनोयोग और पाचों वचनयोगका जघन्य काल एक समय मरण और व्याघात दोनों प्रकारसे बन जाता है पर औदारिककाययोग और वैक्रियिककाययोगका जघन्य काल एक समय केवल मरणकी अपेक्षा और आहारककाययोगका जघन्य काल मरण और अद्धाक्षयकी अपेक्षा प्राप्त होता है । औदारिकमिश्रका कपाट समुद्घातकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, पर उसकी यहा विवक्षा नहीं है, क्योंकि केवली जिनके मोहकी अट्टाईस प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः यहा औदारिकमिश्रका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा कर्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है । इसप्रकार योगोंके इन कालोंकी अपेक्षा मोहकी सभी प्रकृतियोंका काल यहा कहा है । इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोगवाले जीवके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है । सामान्य काययोगमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जो एक समय सम्बन्धी प्ररूपणा की है वह उन प्रकृतियोंके क्षय होनेके अंतिम समयमें काययोगके प्राप्त होनेकी अपेक्षासे की है । यद्यपि उस जीवके काययोग अन्तर्मु-

§ १२१ वेदाष्टुवादेण इत्यिवेदपसु अणंताष्टुर्षधिवत्तक० विह० जह० एगसमओ, उक्क० पस्विदोषमसदपुषत्त । सम्मत्त-सम्मामि० विहृत्ति० अह० एगसमओ, उक्क० पषवम्प पस्विदो० सादिरेयाणि । सेसबाबीसपयडीण विहृत्ति० अह० एगसमओ, उक्क० पस्विदोषमसदपुषत्त । पुरिसवेदपसु सम्मत्त-सम्मामि० विह० जह० एगसमओ, उक्क० वेष्ठावडिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । सेसद्धम्बीसपयडीणं विहृत्ति० जह० अंतो सुडुत्त उक्क० सागरोवमसदपुषत्त । नषरि अर्भताष्टु जह० एगसमओ । अर्षुसपवेदेसु सम्मत्त०-सम्मामि० विहृत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० तेष्ठीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । सेसाज पयडीणं विहृत्ति० जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालो असस्वेज्जा पोग्गलपरिषङ्गा । अवगदवेदपसु अतपीसपयडीण विहृत्ति० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोसुडुत्त । एषमकसाय-सुद्धुमसांपराय -अद्वाक्खाद० वत्तम्पं ।

हूर्त काळ तक रहता है पर जहाँ जहाँ इन छम्बीस प्रकृतियोंका ध्य होता है वहाँ वहाँ ध्य होनेके अन्तिम समयमें मनोयोग या बचनयोगसे काययोगके प्राप्त होने पर काययोगके सञ्जाबमें इन प्रकृतियोंका सत्त्व एक समय तक ही दिखाई देता है इसलिये सामान्य काययोगमें एक समय सम्बन्धी प्रकृपजा बन जाती है ।

§ १२२ वेदमार्ग्याके अनुवाहसे श्रीवेदियोंमें अनन्तानुबन्धी अष्टुष्कका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ सौ पस्वदृक्त्व है । सम्पकूपकृति और सम्पगुमिध्यात्वका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ साधिक पचपन पस्य है । तथा श्रेव बाईस प्रकृतियोंका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ सौ पस्वदृक्त्व है । पुषपवेदियोंमें सम्पकूपकृति और सम्पगुमिध्यात्वका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ साधिक एक सौ बत्तीस सागर है । तथा श्रेव छम्बीस प्रकृतियोंका अषम्य काळ अन्तर्गुहूर्त और अष्टुष्क काळ सौ सागर दृक्त्व है । इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धीका अषम्य काळ एक समय है । नपुष्कवेदियोंमें सम्पकूपकृति और सम्पगुमिध्यात्वका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ साधिक तेष्ठीस सागर है । तथा श्रेव छम्बीस प्रकृतियोंका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क अनन्त काळ है जो असक्वात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । तथा अपगतवेदियोंमें चौबीस प्रकृतियोंका काळ स्थिता है ? अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ अन्तर्गुहूर्त है । इसीप्रकार अकपाबी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत्त और अषास्वात संयत्त जीवोंके चौबीस प्रकृतियोंका अषम्य काळ एक समय और अष्टुष्क काळ अन्तर्गुहूर्त करना चाहिये ।

विशेषार्थ—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाध कोई एक स्त्रीवेदी जीव अद्वाईस प्रकृतियोंकी सत्ताबाध हुआ और दूसरे समयमें मर कर अम्य वेदबाध हो गया उसके अनन्तानुबन्धीका अषम्य काळ एक समय पाया जाता है । स्त्री वेदके साथ एक जीव निरन्तर सौ पस्वदृ

थक्त्वकाल तक रहता है, अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट काल सौ पत्यपृथक्त्व कहा है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा कैसे घटित होता है इसका उल्लेख पहले कर आये हैं । कोई एक सम्यक्प्रकृतिकी और कोई एक सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाला मिध्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव पचपन पत्यकी आयु लेकर स्त्रीवेदी हुआ और वहा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होनेके अन्तिम समयमे वे वेदक सम्यग्दृष्टि हो गये और अन्त समयतक सम्यग्दृष्टि बने रहे । अनन्तर वहासे सम्यग्दर्शनके साथ मर कर पुरुषवेदी हुए इस प्रकार उन स्त्रीवेदी जीवोंके उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल साधिकपचपन पत्य प्राप्त होता है । जो स्त्रीवेदी जीव उपशम-श्रेणी पर चढ़ कर अवेदी हुआ और लौट कर पुनः एक समय तक स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मर कर पुरुषवेदी हो गया उसके शेष बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । स्त्रीवेदीके इन्हीं बाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल जो सौ पत्यपृथक्त्व कहा है वह स्त्रीवेदीके साथ निरन्तर रहनेके कालकी अपेक्षासे कहा है । पुरुषवेदियोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा प्राप्त होता है । जो पुरुषवेदी जीव छयासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा पुनः मिध्यात्वमें आकर द्वितीय वार क्रमसे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर उसके साथ छयासठ सागर काल तक रहा उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर प्राप्त होता है । जिसप्रकार स्त्रीवेदी जीवोंके अनन्तानुबन्धीका जघन्य काल एक समय घटित कर आये हैं उसीप्रकार पुरुषवेदी जीवोंके जानना चाहिये । पुरुषवेदके साथ निरन्तर रहनेका काल सौ सागर पृथक्त्व है अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्क और शेष बाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल सौ सागर पृथक्त्व कहा है । जो पुरुषवेदी उपशम-श्रेणीसे उतर कर तत्काल पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़ कर अपगतवेदी हो जाता है उसके पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इस अपेक्षासे पुरुषवेदीके शेष बाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । स्त्रीवेदी जीवोंके समान नपुंसकवेदी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये । जो सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाला सातवें नरकमें उत्पन्न होनेसे पूर्व नपुंसकवेदी रहा और वहा उत्पन्न होने पर आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्तोंको छोड़कर सम्यग्दृष्टि रहा उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है । तथा नपुंसकवेदके साथ निरन्तर रहनेका काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन है अतः शेष छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल असख्यात पुद्गलपरिवर्तन कहा है । अवगतवेद आदि शेष मार्गणाओंमे चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय मरणकी अपेक्षा और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त उस उस मार्गणास्थानके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा कहा है ।

§ १३० कसायाणुवादेण चचारिकसाय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु० विह० मणमगो । सेसाणं पयडीणं विहत्ति० अहणुत्त० अतोमुत्तुत्तं ।

§ १३१ णाणाणुवादेण मदि-सुद-अण्णाणि० मिच्छत्त-सौलसकसाय-णवणोकसाय विहत्ति० तिण्णि मगा । तस्य ज्ञो सो सादिओ सपञ्चसिदो तस्स अह० अतोमुत्तुत्त, उक्क० अट्टपोगसुपरियहुं देण्ण । सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति अह० अतोमुत्तुत्त, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । एव मिच्छादिद्विस्स वत्तम्भ । विमंगणापीसु सम्मत्त०-सम्मामि मदि अण्णाणिमगो । णवरि अह० पयसमओ । सेसाणं पयडीणं विह० अह एव

§ १३० कपायमार्गजाके अनुवादसे चारों कपायवाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्पत्कृत्यवृत्ति, सम्पत्तिमिथ्यात्व और जनन्तानुबन्धीका काल मनोयोगिबोंके समान है । तथा ज्ञेय इन्दीस प्रकृतियोंका ज्ञपम्भ और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—कपायोंके परिवर्तनकी अपेक्षा मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंका अपम्य काल एक समय बन जाता है, क्योंकि जिस समय इन सात प्रकृतियोंका जन्म होता है उसके पहले समयमें एक कपायका काल पूरा होकर यदि अन्तिम समयमें दूसरी कपाय जा जाती है तो उस कपायके सञ्चयमें वे प्रकृतियाँ एक ही समय दिखाई देती हैं । या मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छह प्रकृतियोंकी पुनः उत्पत्ति समक है, अतः जिस समय वे छह प्रकृतियाँ पुनः उत्पन्नकी प्राप्त होती हैं वह यदि किसी कपायके उत्पन्न अन्तिम समय हो तो उस कपायमें वे छहों प्रकृतियाँ एक समय दिखाई देती हैं । इस प्रकार इन सात प्रकृतियोंका चारों कपायोंमें ज्ञपम्भ काल एक समय बन जाता है । पर इस प्रकार ज्ञेय इन्दीस प्रकृतियोंका ज्ञप अणुकमेणीमें होता है और अणुकमेणी पर जीव जिस कपायके उत्पन्नके साथ बढ़ता है अन्त उक्त वसी कपायका उत्पन्न बना रहता है । इसलिये चारों कपायोंमें ज्ञेय इन्दीस प्रकृतियोंका काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रत्येक कपायके कालकी अपेक्षा जानगा चाहिये क्योंकि सामान्य रूपसे किसी भी कपायका अपम्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं है ।

§ १३१ ज्ञानमार्गजाके अनुवादसे मत्तया और सुताहानी जीवोंके मिथ्यात्व सोखह कपाय और नौ नोकपायके तीन भग होते हैं । इनमेंसे जो सादिसाग्व भग है उसकी अपेक्षा ज्ञपम्भ काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुत्र पर परिवर्तन प्रमाण है । तथा सम्पत्कृत्यवृत्ति और सम्पत्तिमिथ्यात्वका ज्ञपम्भ काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पन्नोपमका असकपायका भाग है । इसीप्रकार मिथ्यावृत्तिके सभी प्रकृतियोंका काल कटना चाहिये । विभग ज्ञानियोंमें सम्पत्कृत्यवृत्ति और सम्पत्तिमिथ्यात्वका काल मत्तयाज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है इनके एक दोनो प्रकृतियोंका ज्ञपम्भ काल एक समय है । तथा ज्ञेय इन्दीस प्रकृतियोंका ज्ञपम्भ काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम

समओ, उक्क० तेत्तीसंसागरोवमाणि देसूणाणि ।

§ १३२ आभिणि०-सुद०-ओहि०-अणंताणु०चउक्क०विहत्ति० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्टिसागरो० देसूणाणि । सेसाण पयडीणं एव चेव । णवरि उक्क० छावट्टि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवमोहिदंसण-सम्मादिट्टि ति वत्तव्वं । मणपञ्ज०-तेत्तीस सागर है ।

विशेषार्थ—अभव्य मलयज्ञानी और श्रुताज्ञानीके सम्यग्रप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छव्वीस प्रकृतियोंका काल अनादि-अनन्त है। जिस भव्यने एक वार सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है उसके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंका काल अनादि सान्त है। तथा इस जीवके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाने पर इन छव्वीस प्रकृतियोंका काल सादि-सान्त हो जाता है। उनमेंसे यहा सादि-सान्तकी अपेक्षा काल कहा जा रहा है। जो सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वमे रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हो जाता है उसके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंका तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा जो अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन काल शेष रहने पर उसके प्रारम्भमे सम्यक्त्वको प्राप्त करता है, और छह आवली शेष रहने पर सासादनमे और वहासे मिथ्यात्वमे जाकर परिभ्रमण करता है। पुनः अन्तिम भवमे अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्व प्राप्त कर मोक्ष जाता है, उसके उक्त छव्वीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है। किन्तु सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट काल पल्योपमका असख्यातवा भाग ही होता है इससे अधिक नहीं, क्योंकि पल्योपमके असख्यातवें भाग कालके द्वारा उद्वेलना होकर इनका अभाव हो जाता है, पुन सम्यक्त्वके विना इनका सत्त्व नहीं होता। सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमे विभगज्ञानके प्राप्त होने पर विभगज्ञानियोंके उक्त दोनों प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय होता है। तथा जो सम्यग्दृष्टि सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर एक समय विभंगज्ञानके साथ रहता है और द्वितीय समयमे मरकर अन्य गतिको चला जाता है, उसके सभी प्रकृतियोंका विभगज्ञानकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। विभगज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागर है, इसलिये छव्वीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेत्तीस सागर कहा। और उत्कृष्ट उद्वेलना कालकी अपेक्षा शेष दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल मत्त्यज्ञानियोंके समान पल्योपमका असख्यातवा भाग कहा।

§ १३२. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चारका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर है। तथा शेष प्रकृतियोंका काल भी इसीप्रकार है। इतनी विशेषता है कि शेष प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ

सन्नद० अष्टावीसपयडीर्ण विहसि० सह० अंतोसुहृत्, उक्त० पुम्बकोटी देसणा । एष परिहार०-सन्नदासंजद० वत्सम् । सामाहयन्धेदी० चतुर्वीसह पयटीय विहसि० सागर है । इसीप्रकार अबभिदर्शनी और सम्मगृष्टिके सभी प्रकृतियोंका काल करना चाहिये ।

विशेषार्थ—मतिज्ञानी आदि जीवोंके सभी प्रकृतियोंका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त है यह तो स्पष्ट है, क्योंकि कोई भी सम्मगृष्टि अन्तर्मुहूर्त काळके भीतर अणुअणु पर चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है, या मिथ्यात्वमें जा सकता है । पर उक्त काळमें कुछ विशेषता है । अनन्तामुबन्धीका उक्त काळ कुछ कम उपासठ सागर होता है, क्योंकि मतिज्ञानी आदि जीवोंके अनन्तामुबन्धीका अधिक से अधिक काळ तक सर्व वेदक सम्बन्धके साथ ही प्राप्त होता है और वेदक सम्बन्धका उक्त काळ कृतकृत्य वेदकके काळको मिछाने पर ही पूरा उपासठ सागर होता है । अब यदि इसमेंसे मिथ्यात्व और सम्बन्धिमिथ्यात्वके अणु काळको कम कर दिया जाय और वेदकसम्बन्धके प्रारंभमें हुए अणुसम्बन्धके काळको मिछा दिया जाय तो यह काळ उपासठ सागरसे कम होता है । अतः अनन्तामुबन्धीका उक्त काळ कुछ कम उपासठ सागर रहा है । और इस काळमें मिथ्यात्व, सम्बन्धिमिथ्यात्व और सम्बन्धप्रकृतिके अणु होने तकके काळको कमसः मिछा देने पर मिथ्यात्व आदि प्रत्येकका काळ कमसः साबिक उपासठ सागर हो जाता है । तथा शेष इन्हींस प्रकृतियोंका उक्त काळ अन्तर्मुहूर्त कम चार पूर्वकोटि अधिक उपासठ सागर प्राप्त होता है, क्योंकि संसार जन्मत्वमें सामान्य सम्बन्धका काळ चार पूर्वकोटि अधिक उपासठ सागर है । इसमेंसे चारित्रमोहनीयकी अणुकाके बादके अन्तर्मुहूर्त काळको कम कर देने पर उक्त काळ प्राप्त हो जाता है ।

मन-पर्ययज्ञानी और सबत जीवोंके अन्तर्मुहूर्त प्रकृतियोंका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त और उक्त काळ कुछ कम पूर्वकोटि है । इसीप्रकार परिहारविभ्रुदिसयत और सपता सपत जीवोंके करना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन सब मार्गजावाके जीवोंका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त है यह तो स्पष्ट है । तथा उक्त सभी मार्गजावाओंका उक्त काळ सामान्यरूपसे यद्यपि देशोनपूर्वकोटि है पर देशोनसे कहाँ कितना काळ लेना चाहिये इसमें विशेषता है । मनःपर्ययज्ञानी और सबतके देशोनसे आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये । परिहारविभ्रुदि संवत्के देशोनसे अठवीस वर्ष लेना चाहिये । कुछ आचार्योंके मतसे चाईस वा सोसह वर्ष लेना चाहिये । क्योंकि उनके मतसे चाईस वा सोसह वर्षमें परिहारविभ्रुदि सबम प्राप्त हो जाता है । तथा सबतासपतके देशोनसे तीन अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये । इसप्रकार जिस मार्गजावा जितना उक्त काळ है उतना वहाँ अठ्ठाईस प्रकृतियोंका उक्त काळ है ।

जह० एगसमओ, उक्क० पुन्वकोडी देसूणा । अणंताणु० चउक्क० विहत्ति० जह० अंतो-
मुहुत्तं, उक्क० पुन्वकोडी देसूणा । असजदेसु मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोक० विह०
मदिअण्णाणिभंगो । सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० केव० ? जह० एगसमओ, अंतो-
मुहुत्तं । उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । चवखुदंसणी० तसपज्जचभंगो ।

सामायिक और छेदोपस्थापना सयतके चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है । तथा अनन्तानुवन्धी चतुष्कका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—जो जीव उपशमश्रेणीसे उतरकर दसवें गुणस्थानसे नौवें गुणस्थानमे आकर और वहा सामायिक समय या छेदोपस्थापना समयके साथ एक समय तक रहकर दूसरे समयमे मर जाता है उस सामायिक या छेदोपस्थापना सयत जीवके चौबीस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । अनन्तानुवन्धीका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त सामायिक समय और छेदोपस्थापना संयतके जघन्य कालकी अपेक्षा है । तथा इसीप्रकार समी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल भी सामायिक और छेदोपस्थापना संयतके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा देशोन पूर्वकोटि जानना चाहिये । यहा देशोनसे आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त लेना चाहिये ।

असंयतोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायका काल मत्स्यज्ञानियोंके उक्त प्रकृतियोंके कहे गये कालके समान है । तथा असयतोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका काल कितना है ? जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ अधिक तेतीस सागर है । तथा चक्षुदर्शनी जीवोंके सब प्रकृतियोंका काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान होता है ।

विशेषार्थ—असंयतोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायके कालके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन भङ्ग होते हैं । उनमेसे प्रकृतमे सादि-सान्त काल विवक्षित है । जो सयत जीव अन्तर्मुहूर्त कालतक असयत रह कर पुनः सयत हो जाता है उस असंयतके उक्त प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा जो अर्द्धपुद्गल परिवर्तनके आदि समयमें संयमको प्राप्त हुआ है अनन्तर उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आषली शेष रहने पर सासादन सम्यग्दृष्टि हो गया है और इसके बाद मिथ्यादृष्टि हो गया है । वह जब अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालमे अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर सयत होता है तब असयतके कालका प्रमाण कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन प्राप्त हो जाता है । असयतके उक्त छब्बीस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काल भी यही है, क्योंकि इतने काल तक उक्त प्रकृतियोंका बराबर सत्त्व पाया जाता है । जो सयत जीव कृतकृत्यवेदकके कालमें एक समय शेष रहने पर मर कर अन्य गतिमें जाकर असयत हो जाता है । उस असंयत सम्यग्दृष्टिके सम्यक्प्रकृतिका जघन्य काल एक समय होता है । सम्यग्मिथ्या-

१३३ ठेस्साणुवादेय किण्ह षील-काउलेस्सासु मिच्छत्त-सोलसकसाय-अबभो कसाय० विहत्ति० अह० अतोमुहुत्त, उक्क० तेतीस सत्तारस सत्त सागरोबमाणि सादि रेयाणि । सम्मत्त०-सम्मामि विहत्ति० अह० एगसमओ, उक्क० मिच्छत्तमगो । वेत्त पम्म-ठेस्सासु मिच्छत्त-सोलसकसाय-गणणोकसाय० विहत्ति० अह० अतोमुहुत्त, उक्क० वे अट्टारस सागरो० सादिरेयाणि । एव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तार्णं वचच्च । शबरि विह० अह० एगसमओ । सुक्केस्साए मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसकसाय-गणणोक० विह० केव० । अह० अतोमु० एगसमओ, उक्क० तेतीससागरोबमाणि सादिरेयाणि ।

१३४ अमवसिद्धिय० छम्भीसण्ह पयडीपं विह०केव० । अणादिया अपअवसिदा ।

स्वकी सचाबाअ जो सयत् जीव अन्तर्मुहूर्त काळ तक असंयत् रह कर पुनः सयत् हो जाता है, उस असयत्के सम्यग्मिच्छात्वका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त होता है । कोई एक बेवक सम्बन्धवि सयत् जीव मर कर तेतीस सागरकी आनुबाअ देव हुआ और बहासे मर कर मनुष्य पर्यायमें आठ साळ तक असयत् रहा उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वका उत्कृष्ट काळ साधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है ।

१३३ छेइया मार्गणाके अनुबाइसे कृष्ण, नीळ और क्षपोत्तरयामें मिच्छात्व, सोअइ कपाय और नौ नोकपायोका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ इण्ण छेइयामें साधिक तेतीस सागर, नीळ छेइयामें साधिक सत्त सागर और क्षपोत्तर छेइयामें साधिक साठ सागर है । तथा उत्कृष्ट तीन छेइयाओमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वका अग्रम्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काळ मिच्छात्वप्रकृतिके उत्कृष्ट काळके समान है । पीठ और पद्य छेइयामें मिच्छात्व सोअइ कपाय और नौ नोकपायोका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ पीठछेइयामें साधिक दो सागर और पद्यछेइयामें साधिक अठारह सागर है । उत्कृष्ट दोनो छेइयाओमें इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वका काळ करना चाहिये । इतनी विद्येयता है कि इनका अग्रम्य काळ एक समय है । शुद्धछेइयामें मिच्छात्व सम्यक्प्रकृति सम्यग्मिच्छात्व सोअइ कपाय और नौ नोकपायोका काळ कितना है ? मिच्छात्व सोअइ कपाय और नौ नोकपायोका अग्रम्य काळ अन्तर्मुहूर्त और दोपका अग्रम्य काळ एक समय है । तथा सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट काळ साधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—उक्त छहों छेइयाओमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वके अग्रम्य काळको छोड़कर दोप समस्त प्रकृतियोंका अग्रम्य और उत्कृष्ट काळ अपनी अपनी छेइयाके अग्रम्य और उत्कृष्ट काळके समान जानना चाहिये । छहों छेइयाओमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वका अग्रम्य काळ जो एक समय रहा है वह उक्त दो प्रकृतियोंकी ब्रह्मनामें एक समय दोप रहने पर उस उस छेइयाके प्राप्त होनेसे वन जाता है ।

१३४ अमव्योक्तं अम्भीस प्रकृतिबोका काळ कितना है ? अनदि-अन्त है । सायिक

खइयसम्मादिट्टीसु एक्कीमपय० विह० जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० तेत्तीसंसागरो० सादिरे-
याणि । वेदयसम्मादिट्टीसु मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० विहत्ति० केव० ?
जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्टि-सागरोवमाणि देसूणाणि । सम्मत्त-वारसकमाय-
णवणोकमायविहत्ति० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्टिसागरोवमाणि । उव-
समसम्मादिट्टीसु अट्टावीसंपयडीणं विहत्ति० केव० ? जहण्णुक्क० अतोमुहुत्तं । एवं
सम्मामिच्छत्ते वत्तव्वं । सासणे अट्टावीसपय० विह० जह० एगसमओ, उक्क० छ
आवलियाओ । सण्णि० पुरिसवेदभगो । णवरि, मिच्छत्तादीणं जह० खुद्दाभवग्गहण ।
असण्णि० एइंदियभंगो । आहारि० मिच्छत्त-वारसकसाय-णवणोक० विह० केव०

सम्यग्दृष्टियोंमें इकीस प्रकृतियोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल माधिक तेतीस
सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका
काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन छयासठ सागर है ।
सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका काल कितना है ? जघन्य काल अन्त-
र्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंका
काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तर्मुहूर्त हैं । सम्यग्मिध्यात्व गुण-
स्थानमें सभी प्रकृतियोंका काल उपशमसम्यग्दृष्टियोंके समान कहना चाहिये । सासादनमें
अट्टाईस प्रकृतियोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है ।

विशेषार्थ—जिस सम्यक्त्वका जितना जघन्य और उत्कृष्ट काल है उस सम्यक्त्वमें
सभव सभी प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उतना जानना चाहिये । केवल वेदक-
सम्यक्त्वकी अपेक्षा प्रकृतियोंके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । यद्यपि वेदकसम्यक्त्वका
उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर बताया है पर इसमें कृतकृत्य वेदकका काल भी सम्मिलित
है, अतः वेदकसम्यक्त्वके कालसे कृतकृत्य वेदकके कालको कम कर देने पर वेदकसम्य-
क्त्वका जो शेष काल रहता है वह सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट काल है । इसमेंसे सम्यग्मि-
ध्यात्वके क्षपणकालको कम कर देने पर जो काल शेष रहता है वह मिध्यात्वका उत्कृष्ट
काल है । इसमेंसे मिध्यात्वके क्षपणकालको कम कर देने पर जो काल शेष रहता है वह
अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट काल है । सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायका वेदक
सम्यक्त्वकी अपेक्षा जो पूरा छयासठ सागर काल बतलाया है वह सुगम है, क्योंकि कृत-
कृत्य वेदकसम्यग्दृष्टिके भी इन प्रकृतियोंका सत्त्व पाया जाता है और कृतकृत्यवेदकके
कालसहित वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है ।

संज्ञी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल पुरुषवेदीके कहे गये सभी प्रकृतियोंके कालके समान
है । इतनी विशेषता है कि सज्ञी जीवोंके मिध्यात्व आदिक बाईस प्रकृतियोंका जघन्य
काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है । असज्ञी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका काल एकेन्द्रियोंके कहे

अह० सुदा० तिसमपूण, उक्त० अगुलस्त असखे० मागो । सम्मत्त-सम्मामि० ओष-
भंगो । णवरि, अह० एगसमओ । अणंताणु० चठकविह० मिच्छत्तमगो । णवरि,
अह० एगसमओ । अणाहारि० कम्मइय० भगो ।

एव कालो समचो ।

§ १३५ अतराणुगमेण दुविहो णिरेसो ओषण आदेसेण य । तत्त ओषेण मिच्छत्त-
वारसकसाय-अवणोक्कसायार्ण णटिय अतरं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण विह० अह०
एगसमओ, उक्त० अट्टपोगलपरियं देहम । अणंताणुपंचिचत्तक० विहपि० अह०
गये समी मत्तियोके काळके समान हे । आहारक जीवोंके मिथ्यात्व, बारह कपाय और
नौ नोकपायका काळ कितना हे ? जकन काळ तीन समय कम सुदामवमहपप्रमाण हे
और उत्कृष्ट काळ अगुलके असंख्यातवें भाग हे । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका
काळ ओषके समान हे । इतनी विशेषता हे कि अथम्य काळ एक समय हे । अनन्ता-
नुबन्धी चतुष्कका काळ मिथ्यात्वके समान हे । इतनी विशेषता हे कि अथम्य काळ एक
समय हे । अन्तहारक जीवोंके समी मत्तियोंका काळ कर्मणकाययोगीके कहे गये समी
प्रकृतियोंके काळके समान हे ।

विशेषार्थ—सही जीवोंका अथम्य काळ सुदामवमहपप्रमाण हे, अतः इनके मिथ्यात्व,
अप्रत्याफपानावरण ओष आदि बारह कपाय और नौ नोकपायोंका अथम्य काळ पुरुष
वेदियोंके समान अन्तर्मुहूर्त न होकर सुदामवमहपप्रमाण कहा हे । इनका शेष कवन पुरुष-
वेदियोंके समान हे । इससे इसमें कोई विशेषता नहीं । असत्तियोंमें एकेत्रिय मी आ
जाते हैं । और उत्कृष्ट काळ एकेत्रियोंका सबसे अधिक हे अतः असत्तियोंके समी
प्रकृतियोंका काळ एकेत्रियोंके समान कहा हे । आहारक जीवोंका अथम्य काळ तीन समय
कम सुदामवमहपप्रमाण और उत्कृष्ट काळ अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण हे, इसी अपेक्षासे
इनके मिथ्यात्वादि बार्हस प्रकृतियोंका अथम्य और उत्कृष्ट काळ इतना ही कहा है । तथा
इनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अथम्य काळ एक समय उत्प्रेक्ष्यन्धी अपेक्षा हे ।
तथा अनन्तानुबन्धीका अथम्य काळ एक समय भिन्न प्रकार छपर पटित कर जाये हैं
वसी प्रकार आहारकके भी पटित कर लेना चाहिये । शेष कवन सुगम है ।

इसप्रकार क्कालुयोग्यार समाप्त हुआ ।

§ १३५ अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्वेश और आदेशनिर्वेश ।

उनमेंसे ओषनिर्वेशकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका अन्तरकाळ
नहीं है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका अथम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट
अन्तरकाळ दोहोन अर्थपुत्रक्ष परिवर्तन है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अथम्य अन्तरकाळ
अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाळ कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर है । इसीप्रकार अथ

अंतोमुहुत्तं, उक्त्वं वेद्यावद्विसागरोवमाणि देसूणाणि । एवमचक्खुं-भवसिद्धिं वत्तत्वं ।

§ १३६. आदेशेण णिरयगदीए णेरइएसु वावीसंपयडीणं णत्थि अंतर, छण्हं पयडीणं जहं एगसमओ अतोमुहुत्तं, उक्त्वं तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि । पढमादि जाव सत्तमि त्ति सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुवधिचउक्काणं जहं एगसमओ अतोमुहुत्तं

क्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्यसे मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है, क्योंकि इन प्रकृतियोंका अभाव हो जाने पर पुनः इनकी उत्पत्ति नहीं होती है । जो उपशमसम्यक्त्वके सन्मुख है उसके उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके उपान्त्य समयमें यदि सम्यग्मिथ्यात्व या सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना हो जाय अनन्तर एक समय मिथ्यात्वके साथ रहकर द्वितीय समयमें उपशम सम्यक्त्व प्राप्त हो तो उसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समय अन्तरकाल प्राप्त होता है । उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल जो देशोन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन बताया है सो यहा देशोन पदसे पत्योपमका असंख्यातवा भाग काल लेना चाहिये, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वके अनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर इतने कालके द्वारा इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना होकर अभाव होता है । जो उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है उसके अनन्तानुबन्धीका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । जिस जीवने उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर ली है पुनः उपशमसम्यक्त्वके अनन्तर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है, और अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागर वेदकसम्यक्त्वका काल व्यतीत होनेपर मिश्रगुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर पुनः वेदकसम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है तथा इस दूसरी वार प्राप्त हुए वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागरके व्यतीत होनेपर मिथ्यात्वमें जाकर अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त कर लिया है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर होता है । इसप्रकार ऊपर ओघकी अपेक्षा जो अन्तरकाल कहा है अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके उक्त प्रकृतियोंका अन्तरकाल उतना ही जानना चाहिये ।

§ १३६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें षाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है । तथा शेष छह प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा छहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें सम्यक्प्रकृति और सम्पग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक

उक्त० सगट्टिदी दृष्टणा । मिच्छत्त०-वारसकसाय-णवणोक्क० पत्थि अतरं ।

§ १३७ तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु सम्मच-सम्मामिच्छत्तापमोपमगो । अणंताणुबंधिअठक्क० विहसि० अंतरं खह० अतोसुहुत्त, उक्क० तिण्णि पळिदो० देसणाणि । सेसाअपपडीअण पत्थि अंतरं । पंथिदियतिरिक्ख-पंथि० सिरि० पळ्ळ०-पथि० तिरि० ज्योपिणी० मिच्छत्त-वारसकसाय-णवणोक्कसाय० विहसि० केव० ? अत्थि अंतरं । सम्मच-सम्मामिच्छत्तापमोपमगो । अणंताणुबंधिअठक्क० विहसि० अंतरं केव० ? खह० एगसमजो, उक्क० तिण्णि पळिदो० पुअक्कोडिपुअत्तेअसमअ ओर अनन्ताणुअण्णी अत्तुअक्कअ अअअ अन्तरअक्कअ अन्तमुहुत्तं हे । तथा अहों अह-वियोका अक्कअ अन्तरअक्कअ अक्कअ अअ अपने अपने अरकणी स्थितिप्रमाण हे । तथा सारो अरकणो अहिस अहियोअ अन्तरअक्कअ नही हे ।

विशेषार्थ—सम्बद्धप्रकृति, सम्बन्धिमिध्यात्व और अनन्ताणुअण्णीअत्तुअक्कअ अअअ अन्तरअक्कअ अिस प्रकार सामान्यसे अटित करके अिस अाये हे उसी प्रकार यहां अर्थात् अान लेना चाहिये । अिसके सम्बद्धप्रकृति या सम्बन्धिमिध्यात्वकी अरेअनामें एक समअ अेप हे ऐसा अीअ अिअअिअ किसी एक अरकणमें अपने अरकणी अक्कअ आअु अेकर अत्तअ हुआ और यहां असने दूसरे समअमें सम्बद्धप्रकृति या सम्बन्धिमिध्यात्वअ अआअ कर दिअ अनन्तर अीअअ अर अह अीअ मिध्यात्वके साथ रहा किन्तु अीअअके अन्तमें अन्तमुहुत्तं अक्कअके अेप रहने पर असने अपअअसम्बद्धत्वको प्राप्त करके अक्क अोनों अहवियोकी अत्ता प्राप्त कर अी अअके अस अस अरकणी अपेअा अक्क अोनों अहवियोका अक्क अमाण अक्कअ अन्तरअक्कअ पाअा आता हे । अनन्ताणुअण्णीअ अक्कअ अन्तरअक्कअ भी इसीअकार अटित करना चाहिये । पर इतनी अिअेपता हे कि अारअमें पअोअ अअअाके अोनेपर सम्बद्धत्व अत्तअ कराके अनन्ताणुअण्णीकी अिसअोअना कर लेना चाहिये, अव आकर अनन्ताणुअण्णीका अन्तरअक्कअ अारंअ अोता हे और अीअअ अर अेअअसम्बद्धत्वके साथ रहकर अरअके अअिअअ समअमें मिध्यात्वमें अे अाना चाहिये । सारवें अरकणमें अरअसे अन्तमुहुत्तं पहले मिध्यात्वमें अे अाना चाहिये । सारवें अरकणमें अो अक्कअ अन्तरअक्कअ हे अही सामान्यसे अारकिकोके अक्क अह अहवियोका अक्कअ अन्तरअक्कअ अानना चाहिये । अेअ अहिस अहवियोअ अन्तरअक्कअ नही पाअा आता, अह सुअअ हे ।

§ १३७ अिअैअअतिमें अिअैअोमें सम्बद्धप्रकृति और सम्बन्धिमिध्यात्वका अन्तरअक्कअ अोअके समअ हे । तथा अनन्ताणुअण्णी अत्तुअक्कअ अअअ अन्तरअक्कअ अन्तमुहुत्तं और अक्कअ अन्तरअक्कअ अक्कअ अअ तीन पअअ हे । तथा अेअ अहिस अहवियोअ अन्तरअक्कअ नही हे । पंथेअिअअतिअैअ पंथेअिअअतिअैअ पअोअ और पंथेअिअअतिअैअ अोनिअती अीअोके मिध्यात्व अारअ अपाअ और अो अोकअाअका अन्तरअक्कअ अितना हे ? इन अहिस अहवियोका अन्तरअक्कअ अही हे । सम्बद्धप्रकृति और सम्बन्धिमिध्यात्वका अन्तरअक्कअ अितना हे ? अअअ अन्तर

म्हियाणि । अणंताणुबंधिचउक० तिरिक्खोघभंगो । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु
 वत्तवं । पंचिंदियतिरि०अपज्ज० सव्वपयडीण णत्थि अंतरं । एवं मणुसअपज्ज०
 अणुदिसादि जाव सव्वट्टेत्ति सव्वएइंदिय-सव्वविगलिय-पंचिंदियअपज्ज०-तस०-
 अपज्ज०-सव्वपंचकाय-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्म
 इय०-अन्नगदवेद-अकसाय०- मदि सुदअण्णाण-विभंग०- आभिणि०- सुद०-ओहि०-मण-
 पज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहि-
 काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्योपम है ।
 अनन्तानुवन्धी चतुष्कका अन्तरकाल तिर्यंचमामान्यके समान है । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त
 और मनुष्यनियोंके अन्तर काल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—ऊपर बताये गये सभी मार्गणास्थानोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व
 का जघन्य अन्तरकाल एक समय जिसप्रकार ओघ प्ररूपणामे घटित करके लिख आये हैं
 उसी प्रकार यहां भी उस उस मार्गणामें जान लेना चाहिये । सामान्यतिर्यंचोंके उक्त दोनों
 प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल जो ओघके समान कहा है उसका इतना ही मतलब है कि
 ओषकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंके अन्तरकालमे जिसप्रकार पत्योपमके असख्यातवेभागसे
 न्यून अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनका ग्रहण किया है उसीप्रकार यहां भी ग्रहण करना चाहिये । पर
 इतनी विशेषता है कि यहां अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर सम्यक्त्व
 न ग्रहण कराकर उपान्त्य भवमें तिर्यंचपर्यायमें उत्पन्न कराकर उस पर्यायके अन्तमे सम्यक्त्व
 ग्रहण करावे । और इसप्रकार प्रारंभमें उद्वेलनासवन्धी पत्योपमके असख्यातवेभाग कालको
 और अन्तमे दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कालको अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनमेंसे घटा देने पर
 जो काल शेष रहता है वह उक्त दोनों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है । पचेन्द्रियादि
 तीन प्रकारके तिर्यंच और मनुष्यपर्याप्त तथा मनुष्यनियोंका जो पचानवे पूर्वकोटि अधिक
 तीन पत्योपम आदि उत्कृष्ट काल कहा है उसमें अन्तर्मुहूर्त कालके घटा देने पर शेष काल
 उस उस मार्गणामें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल जान लेना चाहिये ।
 अनन्तानुवन्धीका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल सुगम है इसलिये यहां नहीं लिखा है ।

पचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सभी प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसीप्रकार
 लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी
 विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, सभी प्रकारके पाचों स्थावरकाय,
 औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाय-
 योगी, कर्मणकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मति-
 ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत,

दसण-अमन्त्र० सम्मादि०-सुइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि०
असण्णि०-अणाहारएत्ति वत्तम् ।

§ १३८ देवेषु सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणुबधिचउत्त० विहृत्ति० अतर केव० ।
इह एगसमओ अतोमुहुत्त, उत्त० एकत्तीस सागरोवमाणि देवणाणि । सेसाण पयडीण
णत्ति अतरं । भवणवासि० चाव उवरिमगवसेत्ति एव येव वत्तम् । पपरि, अप्प
प्यणो द्विदीओ पादम्बाओ । पंदिदिय-पंधि पञ्ज०-उम-उसपञ्ज० सम्मत्त-सम्मामि०
विहृत्ति० अतर इह० एगसमओ, उत्त० सगद्विदी दसणा । अणताणुबधिचउत्त०

परिहारविद्युदिसंसत्त, सूक्ष्म सांपराजिकसत्त यथाक्यातसंसत्त सयतासत्त, अपधिदर्शनी
अमन्त्र सम्मगृहृष्टि ध्याविकसम्मगृहृष्टि, वेदकसम्मगृहृष्टि, उपसमसम्मगृहृष्टि, सासादन
सम्मगृहृष्टि, सम्मगृमिध्याष्टि मिध्याष्टि, अछदी और अनाहारक जीबोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस मार्गनामें मिध्यात्व और सम्यक्त्व दोनों अवस्थायें हो सकती हैं उसी
मार्गनामें ही सम्यक्प्रकृति आदि कुछ प्रकृतियोंका अन्तरकाळ पाया जाता है जेव
मार्ग
नामें नहीं । ये ऊपर जो मार्गनायें गिनाई हैं ये एसी मार्गनायें हैं कि इनमें मिध्यात्व
और सम्यक्त्व दोनों अवस्थायें नहीं हो सकती हैं अतः इनके ठक कुछ प्रकृतियोंका अन्त
रकाळ प्रवित नहीं होता है । छप बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाळ कहीं भी नहीं है ।

§ १३८ देवोंमें सम्यक्प्रकृति सम्यग्मिध्यात्व और अनन्ताणुबन्धी चतुष्कका अन्तर
काळ कितना है ? देवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका अपन्य अन्तरकाळ एक समय
और अनन्ताणुबन्धीचतुष्कका अपन्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त तथा ठक सभी प्रकृतियोंका
एक अन्तरकाळ कुछ कम इकतीस सागर है । जेव बाईस प्रकृतियोंका अन्तरकाळ नहीं
है । मवनवासिपोंसे छेकर उपरिसमैवेयक तकके प्रत्येक स्थानके देवोंमें इसीप्रकार कवन
करमा चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अपनी अपनी स्थिति जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें सर्वत्र सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका अपन्य अन्तर एक
समय और अनन्ताणुबन्धीचतुष्कका अपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त जिस प्रकार ऊपर प्रवित
करके छिन्न आये हैं उसीप्रकार यहाँ भी प्रवित कर लेना चाहिये । तथा एकद्व अन्तर
मारकियोंके समान घटा लेमा चाहिये । विशेषता इतनी है कि यहाँ अपनी अपनी एकद्व
स्थितिकी अपेक्षा एकद्व अन्तरकाळ कवन करमा चाहिये । यहाँ जो कुछ छहों प्रकृतियोंका
एकद्व अन्तरकाळ कुछ कम इकतीस सागर है वह मवमैवेयकों की अपेक्षा कथा है ।
क्योंकि जानोके देव नियमसे सम्मगृहृष्टि ही होते हैं ।

पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त त्रस और त्रसपर्याप्त जीबोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मि
ध्यात्वका अपन्य अन्तरकाळ एक समय है और एकद्व अन्तरकाळ कुछ कम अपनी एकद्व

विहत्ति० ओघमंगो । सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं ।

§ १३६. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवत्ति०-कायओगि-ओरालि०-वेउब्बिय० चत्तारिकसाय० सम्मत्त-म्मामि० विहत्ति० अंतर केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सेसाणं पयडीणं णत्थि अंतरं ।

§ १४०. वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु सम्मत्त-म्मामि०-अणंताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० जह० एगममओ अंतो, उक्क० सगट्टिदी देवणा पणवण्णपलिदो० देसुणाणि । सेसाणं पय० णत्थि अतर । पुरिसवेदेसु सम्मत्त सम्मामि० विहत्ति० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सागरोवमसदपुघत्तं । अणताणुबंधिचउक्क० विहत्ति० ओघ-स्थितिप्रमाण है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—सामान्य पचेन्द्रिय आदिकी पहले जो उत्कृष्ट कायस्थिति बतला आये हैं उसमेसे कुछ कम कर देने पर सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल हो जाता है । कुछ कमका प्रमाण जैसा ऊपर घटित करके लिख आये हैं उसीप्रकार यहाँ पर घटित करके जान लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ १३६. योगमार्गणाके अनुवादसे पाचों मनोयोगी पाचों वचनयोगी, काययोगी औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें तथा चारों कषायवाले जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—जिसको सम्यक्प्रकृति या सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना किये एक समय या अन्तर्मुहूर्त हुआ है ऐसे किसी उपर्युक्त योगवाले मिध्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिके साथ पुन जब सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका सत्त्व हो जाता है तब उक्त योगवाले या किसी कषायवाले जीवके उक्त दोनों प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । तथा शेष प्रकृतियोंका यहा अन्तरकाल संभव नहीं है ।

§ १४०. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण और अनन्तानुबन्धीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचपन पल्य है । तथा शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है । पुरुषवेदियोंमे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ पृथक्त्व सागर है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल ओघके समान है । शेष प्रकृतियोंका

मंगो । सेसाणं पयडीणं गत्थि अतर । णवुमयवेदेसु सम्मच-सम्मामि० औपमंगो ।
अप्पसाणुपधिचठक० सत्तमपुडविमंगो । सेसाण पय० पत्थि अंतर । एवमसंजद०
वचम्व । चक्खु० तसपज्जवमंगो ।

§ १४१ लस्ताणुवादेण छ-लेस्सासु सम्मच-सम्मामि० अणताणुपधिचठक०
विह्वलि० अतर जइ० पगसमभो अंतोमुहुच, तक्क० तेचीस सचारस सच पक्कीस सागरो
अन्तरकाळ मही है । नपुसकवेदी जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वका अन्तरकाळ
ओपके समान है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सावधी पृथिवीके समान है । छेप
प्रकृतियोंका अन्तरकाळ नहीं है । असंयत्के नपुसकवेदियोंके समान अन्तरकाळ कहना
चाहिये । तथा चतुर्वर्णी जीवोंके प्रसपयात्तकोंके समान अन्तरकाळ कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार ओपमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका अपम्य अन्तर
काळ छिन्न आये हैं वही प्रकार हीनों वेदवासोंके पटित कर लेना चाहिये । जीवहीकी
वत्कृष्णायस्विति सौ पस्य पृथक्त्व है । तथा इतम काळ तक वह मिध्यात्व गुणस्थानमें
भी रह सकता है अतः इसमेंसे छेड़नाकाळके कम कर देने पर सम्यक्त्व और सम्यग्-
मिध्यात्वका वत्कृष्ण अन्तर प्राप्त होता है । पर इतनी विशेषता है कि श्रीवेदका काळ
मारम्म होते समय मिध्यात्वमें छेजाना चाहिये और श्रीवेदका काळ समाप्त होनेके अन्तमें
वपसमसम्यक्त्वकी प्राप्ति करना चाहिये । कोई एक जीव पचपन पस्यकी आयुवाली वैषी
हुआ और वहां पर्याप्त होकर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके बसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी
विसंबोजना कर ही पुनः मकके अन्तमें मिध्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ । उसके अन्त
नुबन्धीका कुछ कम पचपन पस्य वत्कृष्ण अन्तरकाळ होता है । पुरुषवेदी जीवकी कायरिधिति
सौ सागर पृथक्त्व है अतः वहां उस अपेक्षासे सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका वत्कृष्ण
अन्तर कहना चाहिये । तथा पुरुषवेदीके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अपम्य और वत्कृष्ण
अन्तरकाळ जिसप्रकार ओपमें पटित करके छिन्न आये हैं वहीप्रकार वहां जामना । तथा
सावधी पृथिवीमें मारकीके जिस प्रकार अनन्तानुबन्धीका वत्कृष्ण अन्तरकाळ छिन्न आय हैं
वहीप्रकार नपुसकवेदीके जामना और इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका वत्कृष्ण
अन्तरकाळ ओपके समान पटित कर लेना, क्योंकि कुछ कम अर्धपुत्रुठ परिवर्तनकाळ
तक एक जीव नपुसक रह सकता है ।

§ १४१ सेइयामार्गजाके अणुवादेसे वहाँ लेशबाओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्या-
त्वका अपम्य अन्तरकाळ एक समय तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अपम्य अन्तरकाळ अन्त-
र्मुहूर्त है । तथा वत्कृष्ण सभी प्रकृतियोंका वत्कृष्ण अन्तरकाळ कृष्णलेश्यामें कुछ कम तेचीस
सागर, नीललेश्यामें कुछ कम सत्रह सागर, कपोतलेश्यामें कुछ कम सात सागर, सु-
लेश्यामें कुछ कम इक्कीस सागर पीतलेश्यामें साधिक दो सागर और पद्मलेश्यामें साधिक

वमाणि देस्रणाणि, वे अट्टारस सागरो० सादिरेयाणि । सेसपयडीणं णत्थि अंतरं । सण्णि० पुरिसवेदभंगो । आहारि० सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० अंतरं जह० एग समओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो । अणताणुवंधिचउक्क० विहत्ति० ओघभंगो ।

एवमंतरं समत्तं ।

§ १४२. सण्णियासो दुविहो ओघो आदेसो चेदि । तत्थ ओघेण मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणताणुवंधिचउक्काणं सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ । वारसकसाय-णवणोक० णियमा विहत्तिओ । सम्मत्तस्स जो विहत्तिओ अठारह सागर है । शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अन्तर एक समय तथा अनन्तानुबन्धीके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तका कथन जिस प्रकार पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये । तथा लहों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन अशुभ लेश्याओंमें नरकगतिकी अपेक्षा और तीन शुभ लेश्याओंमें देवगतिकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि इतने दीर्घकाल तक एक लेश्या बहा ही रहती है ।

संज्ञी मार्गणामें सम्यक्प्रकृति आदि छह प्रकृतियोंका अन्तरकाल पुरुषवेदके समान है । आहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असख्यातवें भाग है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तरकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—संज्ञीजीवोंमें सम्यक्प्रकृति आदि छह प्रकृतियोंका अधिकसे अधिक अन्तरकाल पुरुषवेदियोंके ही पाया जाता है, अतः संज्ञीमार्गणामें पुरुषवेदके समान अन्तरकाल कहा । आहारक जीवका सर्वदा आहारक रहते हुए निरन्तर उत्पन्न होनेका काल अंगुलके असख्यातवें भाग प्रमाण है, तथा इतने काल तक आहारकजीव निरन्तर मिथ्यात्वमें भी रह सकता है इसलिये इसके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा सामान्यसे अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जो उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वह आहारकजीवके बन जाता है इसलिये इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट अन्तरकाल ओघके समान कहा । उक्त लहों प्रकृतियोंके जघन्य अन्तरकालका कथन सुगम है ।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ १४२. सन्निकर्ष अनुयोगद्वार ओघ और आदेशके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जो जीव मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । परन्तु उसके वारह कपाय और नौ नोकपायकी विभक्ति नियमसे है । जो जीव सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला

सो मिच्छत्त-सम्मामि० अण्ठाणुभविषठक्खण सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ ।
सेसाणं पयडीण गियमा विहत्तिओ । एवं सम्मामि० । अवरि, सम्मत्तस्स दो मगा ।

§ १४३ अण्ठाणुभविषठक्खणो विहत्तिओ, सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताय सिया०
विहत्ति०, सिया अविहत्ति० । संसाण गियमा विहत्तिओ । एवमण्ठाणुभविषमाण माया
लोहाय । अण्ठाणुभविषठक्खणो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०
अण्ठाणुभविषठक्खणो सिया विहत्ति०, सिया अविहत्ति० । सेसाण पय० गियमा विहत्ति० ।
एव सत्तकसाय । कोहसत्तल्लणाय विहत्तिओ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-भारत्त
कसाय-अण्ठाणुभविषठक्खणो सिया विहत्तिओ, सिया अविहत्तिओ । तिण्ह सत्तल्लणाय गियमा
विहत्तिओ । माणसत्तल्लणाय ओ विहत्तिओ सो माया-लोमसत्तल्लणाय गियमा
विहत्तिओ । संसाण सिया विहत्ति०, सिया अविहत्ति० । मायासत्तल्लण० ओ विहत्ति०
लोमसत्त० गियमा विहत्तिओ । सेसाण पयडीण सिया विहत्ति० सिया अवि
हे वह मिच्छत्त, सम्मत्तमिच्छत्त और अनन्तालुबन्धी चतुष्क्री विमत्तिवाद्य कदाचित्
हे और कदाचित् नहीं है । परन्तु इसके क्षेत्र प्रकृतियोंकी विमत्ति नियमसे है । सम्म-
त्तकृतिके समान सम्मत्तमिच्छत्तका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सम्मत्त
मिच्छत्तकी विमत्तिवाद्यके सम्मत्तकृतिके दो भग होते हैं अर्थात् वह कदाचित् सम्मत्त-
प्रकृतिकी विमत्तिवाद्य है और कदाचित् नहीं है ।

§ १४३ जो जीव अनन्तालुबन्धी श्लेषकी विमत्तिवाद्य है वह सम्मत्तकृति और
सम्मत्तमिच्छत्तकी विमत्तिवाद्य कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । तथा इसके क्षेत्र प्रकृ-
तियोंकी विमत्ति नियमसे है । इसीप्रकार अनन्तालुबन्धी मान, माया और लोमकी अपेक्षा
भी कथन करना चाहिये । जो जीव अपेक्षाकृतमावरण श्लेषकी विमत्तिवाद्य है वह मिच्छत्त,
सम्मत्तकृति, सम्मत्तमिच्छत्त और अनन्तालुबन्धी चतुष्क्री विमत्तिवाद्य कदाचित् है
और कदाचित् नहीं है । परन्तु इसके क्षेत्र प्रकृतियोंकी विमत्ति नियमसे है । इसीप्रकार
श्लेष सात कर्मायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये ।

जो जीव श्लेषसंज्ञकनकी विमत्तिवाद्य है वह मिच्छत्त, सम्मत्तकृति, सम्मत्त-
मिच्छत्त अनन्तालुबन्धी श्लेष आदि बारह कर्माय और नौ मोक्षकार्योंकी विमत्तिवाद्य
कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । परन्तु वह संज्ञकनमान आदि श्लेष तीन प्रकृतियोंकी
विमत्तिवाद्य नियमसे है । जो जीव मानसंज्ञकनकी विमत्तिवाद्य है वह माया और
लोमसंज्ञकनकी विमत्तिवाद्य नियमसे है । परन्तु श्लेष प्रकृतियोंकी विमत्तिवाद्य कदा-
चित् है और कदाचित् नहीं है । जो जीव मायासंज्ञकनकी विमत्तिवाद्य है वह लोम
संज्ञकनकी विमत्तिवाद्य नियमसे है । परन्तु वह श्लेष प्रकृतियोंकी विमत्तिवाद्य कदा-
चित् है और कदाचित् नहीं है । जो जीव लोमसंज्ञकनकी विमत्तिवाद्य है वह अपनेसे

हत्तियो । लोभसंज० जो विहत्तियो सो सव्वे० हेट्टिमाणं पय० सिया विहत्ति०, सिया अविहत्ति० । इत्थिवेदस्स जो विहत्ति० सो छण्णोकसाय-पुरिम०-चदुमजलणाणं णियमा विहत्तियो । सेमाणं पयडीणं मिया विहत्तियो सिया अविहत्तियो । णवुमय-वेदस्स जो विहत्तियो सो छण्णोक०-पुरिस-चदुसंजलणाण णियमा विहत्तियो, सेमाणं पदाणं सिया विहत्तियो, सिया अविहत्तियो । पुरिसवेदस्स जो विहत्तियो सो चदु-सजलणाणं णियमा विहत्तियो । सेसाणं पय० सिया विहत्ति० सिया अविहत्ति० । हस्सस्स जो विहत्तियो सो पंचणोकसायाणं पुरिस०-चदुसंजलणाणं णियमा विहत्तियो । सेसाणं पयडीणं सिया विहत्तियो, सिया अविहत्तियो । एवं पंचणोकसायाणं । एव मणुसतियस्स । णवरि, मणुसिणीसु णवंसयवेदस्स जो विहत्तियो सो इत्थिवेदस्स णियमा विहत्तियो । पुरिसवेदस्स छण्णोकसायभंगो । पच्चिदिय-पच्चि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-लोभकमायी-चक्खु०-अचक्खु० सुक्कले०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारीणमोघभंगो ।

पहलेकी सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । जो जीव स्त्रीवेदकी विभक्तिवाला है वह बृह नोकपाय, पुरुषवेद और चारसंज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है । परन्तु शेष सोलह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । जो जीव नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है वह बृह नोकपाय, पुरुषवेद और चार संज्वलनकपायकी विभक्तिवाला नियमसे है । तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है, कदाचित् नहीं है । जो जीव पुरुषवेदकी विभक्तिवाला है वह चार संज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है । परन्तु वह शेष तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । जो जीव हास्य नोकपायकी विभक्तिवाला है वह पाच नोकपाय, पुरुषवेद और चार संज्वलनकी विभक्तिवाला नियमसे है । परन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला वह कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । इसीप्रकार पाच नोकपायोंकी अपेक्षा कहना चाहिये । यह जो ऊपर ओषधरूपणा की है इसीप्रकार समान्य और पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यनीके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें जो नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है वह स्त्रीवेदकी विभक्तिवाला नियमसे है । पुरुषवेदका बृह नोकपायके समान कथन करना चाहिये । तथा पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकपायी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्लेश्यावाले, भव्य, सही और आहारक जीवोंके सन्निकर्षका कथन ओषधके समान है ।

विशेषार्थ—मिव्यात्वगुणस्थानमें जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं की उसके अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है । तथा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करनेपर सत्ताईस और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेपर छवीस प्रकृतियां सत्तामें रहती हैं । उपशस-

१४४ आदेशेण विरयगईए येरईएसु मिच्छत्तस्स जो विहत्थिओ तस्स सम्भप यत्थीअमोचमंगो । एव सम्मत्तस्स । सम्मामिच्छत्तस्स जो विहत्थिओ सो मिच्छत्त-पारस कसाय-अणोफसाय० णियमा विहत्थिओ । सम्मत्त-अयंताणुपविचउडाण सिया विहत्थिओ, सिया अविहत्थिओ । अणताणुपविचउत्तस्स ओचमंगो । अपचक्खाण कोचस्स ओ विहत्थिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अयंताणु० चउडाण सिया

मेपीसे छदरे हुए त्रितीयोपक्रमसम्यग्दृष्टि जीवके चौबसे सातवें तक अनन्ताणुबन्धी चतुष्कके बिना चौबीस प्रकृतिषां सत्तामें हैं । तथा जिस वेदकसम्यग्दृष्टिने अनन्ताणुबन्धी चतुष्ककी विसंपोचना कर ही है उसके भी चौबीस प्रकृतिबौद्धी सत्ता है । तथा धार्मिक सम्मत्त्वके सन्मुख हुए वेदगसम्यग्दृष्टि जीवके अनन्ताणुबन्धीकी विसयोनता करनेपर चौबीसकी, मिध्यात्वकी क्षपणा करनेपर तेईसकी, सम्यग्मिध्यात्वकी क्षपणा करनेपर बाईसकी और सम्यक्त्वकी क्षपणा करनेपर इक्कीसकी सत्ता होती है । अनन्तर क्षपकमेपीपर चढ़े हुए पुरुषवेदी जीवके क्रमसे अप्रमाक्यान और प्रत्याक्यान आचरण आठ नपुंसकवेद स्त्रीवेद, हास्यादि छह नोकषाय, पुण्यवेद, सबजनकोष, संज्वलनमान संज्वलनमाया और संज्वलनछेमकी क्षपणा करनेपर १३, १२, ११, १०, ९, ८ और १ प्रकृतिबौद्धी सत्ता होती है । इसनी विलेखता है कि जो स्त्रीवेदके साथ क्षपकमेपी चढ़ता है वह पुरुष वेद और छह नोकषायोंका एक साथ क्षप करता है, अतः उसके पाँच प्रकृतिक स्थान नहीं होता । इस प्रकार इन निबमोंको ध्यानमें रख कर ओष और आदेशसे कहे गये सभी कर्मका विचार करना चाहिये । इससे वह जानने में देरी न छोड़ेगी कि किन प्रकृतिबौद्धे रहते हुए किन प्रकृतिबौद्धी सत्ता है ही और किन प्रकृतिबौद्धी सत्ता है भी और नहीं भी है । तथाहरणार्थ छेम संज्वलनकी विमत्तिबाछेके श्रेष सत्ताईस प्रकृतिषां होंगी और नहीं भी होंगी, क्योंकि छेमसंज्वलनका सत्त्वक्षय सबके अन्तमें होता है । पर मानसंज्वलनकी विमत्तिबाछेके छेमसंज्वलन अवश्य होगा, क्योंकि मानसंज्वलनका सत्त्वक्षय छेम संज्वलनके पहले हो जाता है । इसीप्रकार सर्वत्र जानना ।

१४४ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा मरकगतिमें मारकियोंमें जो जीव मिध्यात्वकी विमत्ति बाछा है उसके सब प्रकृतिषोध्य कथन ओषके समान है । इसी प्रकार सम्यक्प्रकृतिकी अपेक्षा ओषके समान कथन करना चाहिये । जो जीव सम्मत्तिध्यात्वकी विमत्तिबाछा है वह मिध्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायबौद्धी विमत्ति बाछा नियमसे है । किन्तु सम्यक् प्रकृति और अनन्ताणुबन्धीकी विमत्तिबाछा है भी और नहीं भी है । अनन्ताणुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा ओषके समान कथन है । जो नारकी अप्रमाक्यानाचरण ओषकी विमत्ति बाछा है वह मिध्यात्व सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्ताणुबन्धीचतुष्ककी विमत्ति बाछा है भी और नहीं भी है । किन्तु वह श्रेष बीस प्रकृतिबौद्धी विमत्ति बाछा नियमसे

विहत्तिओ, सिया अविहत्ति० । सेसाणं पय० णियमा विहत्तिओ । एवमेकारस-
कसाय-णवणोकसायाणं । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खगई-पंचिदियतिरिक्ख पंचि० तिरि०-
पज्ज०-देव०-सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जदेव०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिरस०-कम्म
इय०-असंजद०-तिण्ण लेस्सा-अणाहारि त्ति वत्तव्वं । विद्यादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छ-
त्तस्स जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणुवधिचउक्काणं सिया विहत्तिओ,
सिया अविहत्तिओ । सेसाणं पयडीणं णियमा विहत्तिओ । एव वारसकसाय-णवणोक-

है । अपत्याख्यानावरण क्रोधके समान शेष ग्यारह कपाय और नो कपायोंकी अपेक्षा
कथन करना चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवी, तिर्यचगति, पंचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय
तिर्यच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देव, औदारिक-
मिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, असयत, कृष्ण आदि तीन लेदया-
वाले और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें मिथ्यात्व विभक्तिवालेके अनन्तानुबन्धी चतुष्क सम्यक्त्व
और सम्यग्मिथ्यात्व ये छह प्रकृतिया होती भी हैं और नहीं भी होती हैं । विसंयोजकके
अनन्तानुबन्धी चतुष्क नहीं होती तथा जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना
कर दी है उसके उक्त दो प्रकृतिया नहीं होती । किन्तु इसके शेष सभी प्रकृतियोंकी सत्ता
है । जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है उसके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-
नुबन्धी चतुष्क ये छह प्रकृतिया होती हैं और नहीं भी होती हैं । जो कृतकृत्यवेदक-
सम्यग्दृष्टि नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त छहका सत्त्व नहीं होता । तथा जिस वेदक
सम्यग्दृष्टिने चार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके उक्त चारका सत्त्व नहीं होता
शेषके लुहोंका सत्त्व होता है । किन्तु इसके शेषका सत्त्व नियमसे होता है । सम्यग्मि-
थ्यात्वकी विभक्ति वाले जीवके अनन्तानुबन्धी चार और सम्यक्त्व ये पाच प्रकृतिया हैं
भी और नहीं भी हैं । जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है उसके अनन्ता-
नुबन्धी चार नहीं हैं । तथा जिसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर दी है उसके सम्यक्त्व
नहीं है शेषके ये पाचों प्रकृतिया हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा ओष कथनसे कोई
विशेषता नहीं है । तथा अपत्याख्यानावरण क्रोध आदिकी विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व,
सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चार ये सात प्रकृतिया होती भी हैं और नहीं
भी होती हैं । क्षायिक सम्यग्दृष्टिके नहीं होती, शेषके यथा सभव विकल्प जानना । ऊपर
जो प्रथम नरकके नारकी आदि अन्य मार्गणाए गिनाई हैं वहा भी इसी प्रकार समझना ।

दूसरे से लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक स्थानके नारकी जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी
विभक्ति वाला है वह सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति
वाला है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसी

साय० । गवरि मिच्छत्तस्स गियमा विहत्तिओ । जो सम्मत्तस्स विहत्तिओ सो अणंताणुवविक्कम्मस सिया विहत्ति सिया अविहत्ति० । सेसाण पयडीण गियमा विह० । सम्मामि जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-अणताणु० चट्ठ० सिया विह० सिया अविह० । सेसाण पयडीण गियमा विहत्तिओ । अणताणुवविक्कोष जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह० । सेसाण पयडीण गियमा विहत्तिआ । एवं तिण्हं कत्तायाणं । एवं पंथिं० तिरिं लोणिमी मवण -बाणबेंतर -जोदिसिं० बत्तव्व । पंथिं० तिरिं० अपज्ज० मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अविह० । सेसाण पय० गियमा अविहत्तिओ (विहत्तिओ) । एवं सोत्तसक०-गवणोक्क । गवरि मिच्छत्तस्स गियमा विहत्तिओ । जो सम्मत्तस्स विहत्तिओ सो सम्मत्त-पय गियमा विहत्तिओ । जो सम्मामि विहत्तिओ सो सम्मत्त० सिया विह० सिया अविह० । सेसाणं पय० गियमा विह० । एव मज्जुसअपज्जत्त-सम्प प्रकार वारह कपाय और नौ नोकपायोकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । इतनी विज्ञेपता है कि यह भी मिच्छत्तकी विमत्तिबाधा निश्चयसे है । जो सम्यक्प्रकृति की विमत्तिबाधा है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु यह शेष प्रकृतियों की विमत्तिबाधा नियमसे है । जो सम्यग्मिच्छात्व की विमत्तिबाधा है वह सम्यक्प्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है; किन्तु शेष प्रकृतियों की विमत्तिबाधा निश्चयसे है । जो अनन्तानुबन्धी श्लेष की विमत्तिबाधा है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्व की विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु यह शेष प्रकृतियों की विमत्तिबाधा नियमसे है । अनन्तानुबन्धी श्लेषके समान अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कपायोकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये । इसीप्रकार पंचेन्द्रियतिर्बन्ध बोनि-मती मचनवादी व्यन्तर और व्योतिषी वेदोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गजाओंमें सम्बन्ध और सम्मिच्छात्वकी उल्लेखना और अनन्तानुबन्धी चार भी विषयोजना संभव है । अतः ऊपर प्रकृतियोंके सम्बन्ध और असम्बन्ध सम्यग्भी समी विद्वत्स्य इसी अपेक्षासे कहे हैं जो उपर्युक्त प्रकारसे धटित कर लेना चाहिये ।

पञ्चेन्द्रियतिर्बन्ध सम्बन्धपर्याप्तक भीनोंमें जो मिच्छात्व की विमत्तिबाधा है वह सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्व की विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियों की विमत्तिबाधा नियमसे है । इसीप्रकार सोत्तकपाय और नौ नोकपायकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । इतनी विज्ञेपता है कि इसके मिच्छात्व की विमत्ति नियमसे है । जो सम्यक्प्रकृति की विमत्ति बाधा है वह निश्चयसे समी प्रकृतियों की विमत्तिबाधा है । जो सम्यग्मिच्छात्व की विमत्तिबाधा है वह सम्यक्प्रकृति की विमत्तिबाधा है भी और

एहंदिय-सन्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपञ०-सन्वपंचकाय-तसअपञ०-मदि-मुदअण्णा-
णि-विभंग-मिच्छादि०-असण्णीण वत्तव्वं ।

§ १४५. अणुहिमादि जाव सव्वट्टसिद्धिविमाणे त्ति जो मिच्छत्तस्म विहत्तिओ
अणंताणु०चउक्क० सिया विह०, मिया अविह० । सेमाण पय० णियमा विह० । एवं
सम्मामिच्छत्तस्स । सम्मत्तस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०
मिया विह० सिया अविहत्तिओ । सेसाणं णियमा विह० । अणताणु०कोध० जो
विहत्तिओ सो सव्वपय० णियमा विह० । एव तिण्णं कमायाण । अपक्खवत्ताणकोध०
जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु०चउक्क० सिया विह० सिया
अविह० । सेसाणं पय० णियमा विहत्तिओ । एवमेव्वात्तसकमाय-णवणोकसायाणं ।

§ १४६. वेउन्विय० जो मिच्छत्तस्स विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०
नहीं भी है, किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इमीप्रकार लब्धपर्या-
प्तक मनुष्य, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, सभी प्रकारके
पाचों स्थावरकाय, त्रस लब्धपर्याप्तक, मत्यक्षानी, श्रुताक्षानी, विभगक्षानी, मिथ्यादृष्टि
और असज्ञी जीवों के कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना
संभव है । अतः ऊपर जितने विकल्प कहे हैं वे इस अपेक्षासे घटित कर लेना चाहिये ।

§ १४५ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थमिद्धि विमान तक प्रत्येक स्थानमें जो जीव मिथ्यात्वकी
विभक्तिवाला है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है ।
किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षासे
कथन करना चाहिये । जो सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्या-
त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष
प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह
नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । अनन्तानुबन्धी क्रोधके समान अनन्तानुबन्धी
मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी
विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी
विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे
है । इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—नौ अनुदिशसे लेकर ऊपर सभी जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं । अतः
यथा २८, २४, २२ और २१ ये चार विभक्तिस्थान संभव हैं । इसी अपेक्षासे ऊपरके
सभी विकल्प घटित कर लेना चाहिये ।

§ १४६ वैक्रियिककाययोगियोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह सम्यक्प्रकृति,

चतुष्क० सिया विहृषि० सिया अविहृ० सेसाणं मियमा विहृषिओ । सम्मामि०
 ओ विहृ० सो सम्मत्त-अणताणु० चतुष्क० सिया विहृ० सिया अविहृ०; सेसाणं फण्ण०
 मियमा विहृ० । सम्मत्तस्स ओ विहृषिओ सो अणताणु० चतुष्क० सिया विहृ०
 सिया अविहृ०; सेसाणं पय० मियमा विहृषिओ । अणताणु० कोष० ओ विहृ
 षिओ सो सम्मत्त-सम्मामि० सिया विहृ० सिया अविहृ०; सेसाणं पय० मियमा
 विहृषिओ । एवं तिप्पि कसाय० । अपयकस्साम्-कोष० ओ विहृषिओ सो
 मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु० चतुष्काम् सिया विहृ० सिया अविहृ०; सेसाणं
 पय० मियमा विहृ । एवमेकारसकसाय-णवणो कसायाण । आहार-आहारमिस्स०
 मिच्छत्तस्स ओ विहृषिओ, मो अणताणु० चतुष्क० सिया विहृ० सिया अविहृ०;

सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु
 शेष प्रकृतियोंकी विमत्तिबाधा निबमसे है । जो सम्यग्मिध्यात्वकी विमत्तिबाधा है वह
 सम्मत्तप्रकृति और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है ।
 किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विमत्तिबाधा नियमसे है । जो सम्यक्प्रकृतिकी विमत्तिबाधा है
 वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियों
 की विमत्तिबाधा निबमसे है । जो अनन्तानुबन्धी श्लेषकी विमत्तिबाधा है वह सम्मत्त-
 प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है, किन्तु शेष प्रकृति-
 योंकी विमत्तिबाधा नियमसे है । अनन्तानुबन्धी श्लेषके समान अनन्तानुबन्धी मान
 आवि तीन कयायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । जो अपरत्याम्मानावरण श्लेषकी
 विमत्तिबाधा है वह मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी
 चतुष्ककी विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विमत्तिबाधा
 नियमसे है । अपरत्याम्मानावरण श्लेषकी अपेक्षा मिस प्रकार समिकर्षके विकल्प कहे हैं,
 वसीप्रकार ग्वाण कयाव और नौ मोकयायोंकी अपेक्षा समिकर्षके विकल्पोंका कथन करना
 चाहिये ।

विशेषार्थ—वैकल्पिकप्रययोगमें मिध्यावृत्ति और सम्मत्तवृत्ति दोनों प्रकारके जीव
 होते हैं । किन्तु कृतकृत्यवेदकसम्मत्तवृत्ति नहीं होते, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदकसम्मत्तवृत्ति
 मनुष्य मरकर देव या नारिकोंमें उत्पन्न होते हैं उनके अपर्थात् अवस्थामें ही सम्यक्त्व
 प्रकृतिका ज्ञय होकर ज्ञायिक सम्मत्तर्जन हो जाता है । अतः वैकल्पिकप्रययोगवाले जीव
 २० २७ २६ २४ और २१ प्रकृतिक स्थान वाले होते हैं अतः इसी अपेक्षासे ऊपरके
 सभी विकल्प बटित कर लेना चाहिये ।

आहारकसाययोगी और आहारक मित्रप्रययोगी जीवोंमें जो मिध्यात्वकी विमत्ति-
 बाधा है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमत्तिबाधा है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष

सेसाणं णियमा विह० । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । अणंताणु०क्रोध० जो विहत्तिओ सो सच्चपय० णियमा विह० । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्च०क्रोध० जो विह० सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं पय० णियमा विह० । एवमेकारसकसाय-णवणोकसायाणं ।

§ १४७ वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसकसायाणमोध-भंगो । क्रोधसंजलणस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसकसाय-णवुंस० सिया विहत्ति० सिया अविहत्ति०; तिण्णि संजलण-अट्टणोकसाय० णियमा विह० । एवं तिण्हं संजलण०-अट्टणोकसायाणं । णवुंसयवेदस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-वारसकसाय० सिया विह० सिया अविह०; चत्तारिसजलण-अट्टणोकसाय० णियमा विहत्तिओ । एवं णवुंस०, णवरि इत्थिवेद० णवुंसभंगो ।

प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसीप्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । जो अनन्तानुबन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । अनन्तानुबन्धी क्रोधके समान अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये । जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति वाला है भी और नहीं भी है । किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—आहारक काययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये दोनों योग प्रमत्तसंयतके होते हैं । पर ऐसा जीव क्षायिकसम्यग्दर्शनका प्रस्थापक नहीं होता, अतः इसके २८, २४ और २१ ये तीन विभक्तिस्थान होते हैं । इसी अपेक्षासे ऊपरके सभी विकल्प घटित कर लेना चाहिये ।

§ १४७. वेदमार्गणाके अनुवादसे खीवेदियोंमें मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और बारह कषायोंकी अपेक्षा कथन ओघके समान है । जो क्रोध संज्वलनकी विभक्तिवाला है वह मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि बारहकषाय और नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु वह शेष तीन सज्वलन कषाय और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसीप्रकार तीन सज्वलन और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । जो नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है वह मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और बारह कषायोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु वह चारों सज्वलन और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । नपुंसकवेदी जीवोंके स्त्रीवेदी जीवोंके समान कथन करना चाहिये । इतनी

पुरिसवेदपसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसकमाय०-अबणोक्कसाय० ओषमंगो ।
चदुसज्जलण० ओषं । गबरि, पुरिसवेद०-चदुसज्जलण गियमा अरिय ।

§ ११८ अगदवेदपसु मिच्छत्तस्म चो विहत्थिओ सो सेवीसणं पयडीणं गियमा
विहत्थिओ । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तान । अपच० कोच० ओ विहत्थिओ सो मिच्छत्त-
सम्मत्त-सम्मामि० सिया विह० सिया अबिह०, एद्धारसकसाय-गबणोक्कसायावं गियमा
विह० । एव सत्त-कसायाणं । कोचसज्जलणस्स ओ विहत्थिओ सो तिण्हं सज्जलणाणं
गियमा विहत्थिओ सेसाण पयडीणं सिया विह० सिया अबिह० । माणस
जलण० ओ विहत्थिओ सो दोण्ह सज्जलणायं गियमा विहत्थिओ; सेसाणं पय० सिया
विह० सिया अबिह । मायासज्जल० ओ विहत्थि० सो लोमसज्जलण० गियमा विह०,
सेसाणं पयडीणं सिया विह० सिया अबिह । लोमसज्जल० ओ विहत्थिओ सो
सेवीसणं पय० सिया विह० सिया अबिह० । गरिय (इत्थि) वेदस्स ओ विहत्थिओ

विशेषता है कि स्त्रीवेदी जीवके नपुंसकवेदकी अपेक्षा सभिकर्षक बैसा कथन किया है
वही प्रकार नपुंसकवेदी जीवके स्त्रीवेदकी अपेक्षा सभिकर्षक कथन करना चाहिये ।
पुरुषवेदी जीवमें मिथ्यात्व सत्यकर्मकृति सम्पन्निध्यात्व, अनन्तानुबन्धी शोध भावि
बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा कथन शोधके समान है । चार संवत्तन
कपायोंकी भी कथन शोधके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि हममें पुरुषवेद
और चार संवत्तन कपायोंकी विभक्ति नियमसे है ।

§ ११८ अपगतवेदी जीवमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिबाधा है वह अनन्तानुबन्धी
पतुष्कको छोड़कर शेष तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधा नियमसे है । इसीप्रकार सत्यकर्मकृति
और सम्बन्धिमिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । जो अप्रत्याक्षानावरण शोधकी विभक्ति-
बाधा है वह मिथ्यात्व सत्यकर्मकृति और सत्यकर्मिध्यात्वकी विभक्तिबाधा है भी और
नहीं भी है । किन्तु अप्रत्याक्षानावरण मान भावि ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंकी
विभक्तिबाधा नियमसे है । अप्रत्याक्षानावरण शोधके समान अप्रत्याक्षानावरण मान
भावि साठ कपायोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये । जो शोध संवत्तनकी विभक्ति-
बाधा है वह मान भावि तीस संवत्तनोंकी विभक्तिबाधा नियमसे है । किन्तु वह शेष
प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधा है भी और नहीं भी है । जो मान संवत्तनकी विभक्तिबाधा है
वह माया भावि दो संवत्तनोंकी विभक्तिबाधा नियमसे है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी
विभक्तिबाधा है भी और नहीं भी है । जो माया संवत्तनकी विभक्तिबाधा है वह शोध
संवत्तनकी विभक्तिबाधा नियमसे है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधा है भी और
नहीं भी है । जो लोम संवत्तनकी विभक्तिबाधा है वह तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधा
है भी और नहीं भी है । जो स्त्रीवेदकी विभक्तिबाधा है वह मिथ्यात्व सत्यकर्मकृति

सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० [अट्टकसा०-णवुंस०] सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं णियमा विहत्तिओ । एवं णवुंस० । पुरिसवेदस्स जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्टक०-अट्टणोक० सिया विह० अविह०; चत्तारिसंजलण० णियमा विह० । हस्स० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्टकसाय-दोवेद० सिया विह० सिया अविह०; चत्तारिसंजल०-पुरिस०-पचणोकसाय० णियमा विहत्तिओ । एवं रदीए । एवमरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं ।

§ १४६. कसायाणुवादेण कोधकसाईसु पुरिसभंगो । णवरि, पुरिसवेदस्स सिया विहत्तिओ सिया अविहत्तिओ । एव माणक०, णवरि कोधक० सिया विह० सिया अविह० । एवं माय०, णवरि माण० सिया विह० सिया अविह० [एवं लोभ० । णवग्गि माय० सिया विह० सिया अविह० ।] अकसाईसु मिच्छत्तस्स जो विहत्तिओ सो सच्चपयडीणं णियमा विहत्तिओ । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । अपच्च०कोध० जो विहत्तिओ सम्यग्मिध्यात्व, आठ कषाय और नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसीप्रकार नपुंसकवेदकी अपेक्षा कथन करना चाहिये । जो पुरुषवेदकी विभक्तिवाला है वह मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु चार संज्वलनोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । जो हास्यकी विभक्तिवाला है वह मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय, और स्त्री तथा नपुंसकवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है किन्तु चार संज्वलन, पुरुषवेद और रति आदि पाच नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसीप्रकार रतिकी अपेक्षा तथा अरति, शोक, भय और जुगुप्सा की अपेक्षा कथन करना चाहिये ।

§ १४६ कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी जीवोंके पुरुषवेदी जीवोंके समान कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि क्रोधकषायी जीव पुरुषवेदकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । इसीप्रकार मानकषायी जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानकषायी जीव क्रोधकषायकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंके समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मायाकषायी जीव मानकषायकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीव मायाकषायकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । अकषायी जीवों में जो मिध्यात्वकी विभक्तिवाला है वह नियमसे अनन्तानुबन्धीके सिवा सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । इसी प्रकार सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा जानना चाहिये । जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है

सो मिच्छत्त-सम्मत्त सम्मामि० सिया विह० सिया अबिह , एकारसक० णवणोक०
णियमा विहत्तिओ । एवमेकारसक णवणोकसायाण । एवं महाक्ख्हादसकदाण ।

§ १५० आमिणि -सुद०-ओहि०-मज्जपल्लवभाषेसु मिच्छत्तस्स ओ विहत्तिओ सो
अणताणु -चउक० सिया विह० सिया अबिह ; सेसानं भियमा विहत्तिओ । सम्मत्तस्स
ओ विहत्तिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि अणताणु चउक० सिया विह सिया अबिह० ;
बारसकसाय-णवणोकसाय० भियमा विहत्तिओ । सम्मामिच्छत्त० ओ विहत्तिओ सो
मिच्छत्त-अणताणु चउक० सिया विह सिया अबिह० ; सम्मत्त बारसक णवणाक
णियमा विहत्तिओ । अणताणु० ओ० ओ विहत्तिओ सो सम्बपयडीण पियमा विहत्तिओ ।
एव तिष्णं कसायाण । बारसक -णवणोकसाय० ओभमंगो । एवं संबह०-सामाहय
प्पेदो ओहिदस-सम्मादिहीण वत्तम् ।

§ १५१ परिहार०-संबहेसु मिच्छत्तस्स ओ विहत्तिओ सो अणताणु० सिया विह०
बह मिप्पत्त्व, सम्पक्कमत्ति और सम्बग्मिप्पत्त्वकी विमत्तिबाळा है भी और नहीं भी
है । किन्तु बह अणताणुवन्धी मान आदि ग्यारह कपाव और नौ नोकपायोकी विमत्ति-
बाळा नियमसे है । इसीप्रकार अणताणुवन्धी मान आदि ग्यारह कपाव और नौ
नोकपायोकी अपेक्षा जानना चाहिये । अकपायी जीवों के समान बहकपावसतोंके भी
जानना चाहिये ।

§ १५० मतिहानी, सुतहानी अबधिहानी, और मज्जपल्लवहानी जीवोंमें जो मिप्पत्त्वकी
विमत्तिबाळा है वह अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी विमत्तिबाळा है भी और नहीं भी है ।
किन्तु छेप मत्तिवोंकी विमत्तिबाळा नियमसे है । ओ सम्पक्कमत्तिकी विमत्तिबाळा है
वह मिप्पत्त्व, सम्पग्मिप्पत्त्व और अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी विमत्तिबाळा है भी और
नहीं भी है । किन्तु बारह कपाव और नौ नोकपायोकी विमत्तिबाळा नियमसे है । ओ
सम्पग्मिप्पत्त्वकी विमत्तिबाळा है वह मिप्पत्त्व और अनन्तालुवन्धी चतुष्ककी विमत्ति-
बाळा है भी और नहीं भी है । किन्तु बह सम्पक्कमत्ति बारह कपाव और नौ नोकपा-
योकी विमत्तिबाळा नियमसे है । ओ अनन्तालुवन्धी कोषकी विमत्तिबाळा है वह नियमसे
सभी मत्तिवोंकी विमत्तिबाळा है । इसीप्रकार अनन्तालुवन्धी मान आदि तीन कपायोकी
अपेक्षा जानना चाहिये । बारह कपाव और नौ नोकपायोकी अपेक्षा कवन कोषके समान
है । इसी प्रकार संघट सामाविकसंघट जेहोपस्थापनासयत्त, अबधिहानी और सम्पग्मिप्पत्ति
जीवोंके करना चाहिये ।

§ १५१ परिहारविशुद्धि सयत्त जीवोंमें जो मिप्पत्त्वकी विमत्तिबाळा है वह अनन्तालुवन्धी
चतुष्ककी विमत्तिबाळा है भी और नहीं भी है । किन्तु छेप मत्तिवोंकी विमत्तिबाळा
नियमसे है । ओ सम्पक्कमत्तिकी विमत्तिबाळा है वह मिप्पत्त्व, सम्पग्मिप्पत्त्व और

सिया अविह०; सेमाणं णियमा विहत्तिओ । सम्मत्त० जो विहत्तिओ मो मिच्छत्त-
 सम्मामि०-अणंताणु० चउफ्फ० मिया विह० मिया अविह०; सेमाणं णियमा विह० ।
 सम्मामि० जो विहत्तिओ सो मिच्छत्त०-अणंताणु० चउफ्फ० सिया विह० सिया
 अविह०; सेमाणं णियमा विह० । अणताणु० क्रोध० जो विहत्तिओ मो सञ्चपय
 डीणं णियमा विहात्तिओ । एव तिण्हं कमायाणं । अपच्च० क्रोध० जो विहत्तिओ मो
 मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु० चउफ्फ० मिया विह० सिया अविह०; एक्कारम
 कसाय णवणोरुसाय० णियमा विह० । एवमेवारसकमाय-णवणोरुसायाणं । एवं
 संजदासंजदाण । सुहुमसांपराय० मिच्छत्तस्म जो विहत्तिओ मो सञ्चपयडीणं णियमा
 विहत्ति० । एवं सम्मामिच्छत्ताण । अपच्च० क्रोध० जो विह० सो मिच्छत्त-सम्मत्त-
 सम्मामि० सिया विह० सिया अविह०; सेमाण णियमा विह० । एवं दसक०-
 णवणोरुसायाणं । लोभसज्ज० जो विहात्तिओ सो सेमाण मिया विह० सिया अविह० ।
 अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी
 विभक्तिवाला नियमसे है । जो सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व और
 अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है, किन्तु शेष प्रकृतियोंकी
 विभक्तिवाला नियमसे है । जो अनन्तानुवन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब
 प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । इसीप्रकार अनन्तानुवन्धी मान आदि तीन कषायोंकी अपेक्षा
 जानना चाहिये । जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व सम्यक्प्र-
 कृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी
 है । किन्तु शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसी
 प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । इसीप्रकार संयता-
 सयतोंके कथन करना चाहिये । सूक्ष्मसापरायिकसयत जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्ति-
 वाला है वह अनन्तानुवन्धी चतुष्कके सिवाय शेष सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे
 है । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जानना चाहिये । जो अप्रत्याख्यानावरण
 क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति-
 वाला है भी और नहीं भी है । किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है ।
 इसीप्रकार लोभसज्वलनको छोड़कर अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दस कषाय और नौ
 कषायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । जो लोभसज्वलनकी विभक्तिवाला है वह शेष प्रकृ-
 तियोंकी विभक्तिवाला है भी और नहीं भी है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसापरायिक जीवोंके २४, २१ और १ ये तीन विभक्तिस्थान होते हैं ।
 यहाभी अनन्तानुवन्धी चारको छोड़कर शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा विचार किया
 गया है । ऊपरके सभी विकल्प इसी अपेक्षासे घटित कर लेना चाहिये ।

किण्व-बील० बैठभियकायबोगिर्मंगो । अमबसिद्धि० मिच्छत्त० जो विहसिओ सो पणुवीसपयडीणं गियमा विहसिओ । एवं पणुवीसपयडीण ।

‡ १५२ सुइयसम्मादिट्ठीसु अपब० कोष जो विहसिओ सो बीसण्ह पयडीणं गियमा विह० । एव सत्तक० । सेसाणमोभर्मंगो । वेदगसम्मादिट्ठीसु मिच्छत्तस्स ओ विहसिओ सो अणंताणु० चउक० सिया विह० सिया अविह ; सेसाणं गियमा विहसिओ । सम्मत्त० ओ विहसिओ सो मिच्छत्त-सम्मामि०-अणताणु चउक० सिया विह० सिया अविह०; सेसाणं गियमा विह० । एवं बारसक०-णवणोकसाय० । सम्मामि० ओ विहसिओ सो मिच्छत्त अणंताणु० चउक० सिया विह० सिया अविह० । सेसाण गियमा विह० । अणंताणु कोष० जो विहसिओ सो सम्बपयडीणं गियमा विह० । एव तिण्ह कसायाण । उवसमसम्माइट्ठीसु मिच्छत्तस्स ओ विहसिओ सो अणताणु० चउक सिया विह सिया अविह०; सेसाण गियमा विहसिओ । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त बारसकसाय-णवणोकसाय । अणंताणु० कोष० ओ विहसिओ

कुष्ण और मीच्छेरबाबाओक वैश्वियिककाययोगी जीवोंके समान समझना चाहिये । जन्मभ्य जीवोंमें जो मिष्प्यात्वकी विभक्तिबाह्य है वह सम्बन्धमूर्तकृति और सम्मग्निमिष्प्यात्वको छोड़कर शेष पचीस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । इसी प्रकार पचीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

‡ १५२ ध्यायिकसम्मग्दृष्टि जीवोंमें जो अमत्वाख्यानावरण श्लेषकी विभक्तिबाह्य है वह बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । इसीप्रकार अमत्वाख्यानावरण नाम आदि सात कर्मायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा कथम श्लेषके समान है । वेदक सम्मग्दृष्टियोंमें जो मिष्प्यात्वकी विभक्तिबाह्य है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिबाह्य है मी और नहीं मी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । जो सम्बन्धमूर्तकृति की विभक्तिबाह्य है वह मिष्प्यात्व, सम्मग्निमिष्प्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिबाह्य है मी और नहीं मी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । इसी प्रकार बारह कर्वाण और नौ मोक्षपाथोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । जो सम्मग्निमिष्प्यात्वकी विभक्तिबाह्य है वह मिष्प्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिबाह्य है मी और नहीं मी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । जो अनन्तानुबन्धी श्लेषकी विभक्तिबाह्य है वह सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । इसीप्रकार अम न्यानुबन्धी नाम आदि तीन कर्वायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । उपशम सम्मग्दृष्टि जीवोंमें जो मिष्प्यात्वकी विभक्तिबाह्य है वह अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिबाह्य है मी और नहीं मी है । किन्तु वह शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिबाह्य नियमसे है । इसीप्रकार सम्बन्धमूर्तकृति सम्मग्निमिष्प्यात्व, बारह कर्वाण और नौ मोक्षपाथोंकी अपेक्षा जानना

सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ । एवं तिण्हं कसायाणं । सासणमम्माइट्ठीसु जो मिच्छत्तस्स विहत्तिओ सो सव्वपयडीणं णियमा विहत्तिओ । एवं सव्वासि पयडीणं । सम्मामिच्छादिट्ठीसु मिच्छत्त० जो विहत्तिओ सो अणंताणु० चउक्क० सिया विह० सिया अविह०; सेमाणं णियमा विह० । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-वारसक०-णवणोकसाय० । अणंताणु० कोध० जो विह० सो मिच्छत्त-सम्मत्त सम्मामि०-पणारसक०-णवणोक० णियमा विहत्तिओ । एव तिण्हं कसायाणं ।

एवं सणियासो समतो ।

§ १५३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण द्रुविहो णिदेसो, ओघेण ओदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्ठावीसंपयडीण विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि । एव मणुम-तियस्स पंचिदिय-पंचि० पज्ज०-तम-तमपज्जत्त-तिण्णिमण०-तिण्णि वचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-सजदा (सजद)-सुक्कले०-भवसिद्धि०-सम्मादिट्ठि०-आहारए चि वत्तव्वं । चाहिये । जो अनन्तानुवन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । इसीप्रकार अनन्तानुवन्धी मान आदि तीन कपायोंकी अपेक्षा भी जानना चाहिये । सामादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह नियमसे सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला है । इसीप्रकार सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जो मिथ्यात्वकी विभक्तिवाला है वह अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विभक्तिवालाभी है और नहीं भी है । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसी प्रकार सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये । जो अनन्तानुवन्धी क्रोधकी विभक्तिवाला है वह मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंकी विभक्तिवाला नियमसे है । इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी मान आदि तीन कपायोंकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

इसप्रकार सन्निकर्ष अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ १५३. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । इसीप्रकार सामान्य और पर्याप्त मनुष्य तथा मनुष्यिणी इन तीन प्रकारके मनुष्य, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन मनोयोगी, सामान्य, सत्य और अनुभय ये तीन वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, सयत, शुक्लेश्यावाले भव्य, सम्यग्दृष्टि और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहा ऐसी मार्गणाओंका ही ग्रहण किया है जिनमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्तिवाले नाना जीव समव हैं ।

§ १५४ आदेशेण गिरयगदीय घोरइयसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणताणु०
 पठकाणं अत्थि गियमा विहत्तिया च अविहत्तिया च; सेसाण पयडीणं अत्थि
 विहत्तिया च । एव पढमाय पुढवीय तिरिक्ख०-पंचि०तिरिक्ख-पंचि०तिरि०पत्तत्त
 देवा-सोहमीसाय चाय सम्बद्धसिद्धिं चि वेठच्चिय० परिहार० समदासंनद-असंनद
 पचलेस्सेत्ति वत्तम् । विदियादिं चाय सत्तमि चि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त अमंताणु०
 पठकाण विहत्तिया अविहत्तिया च गियमा अत्थि; सेसाण पय० विहत्तिया गियमा
 अत्थि । एव पंचिदियतिरिक्खजोगिणी मभय०-याण०-जोदिसि० वत्तम् । पंचिदिय
 तिरिक्खअपत्तत्तपसु सम्मत्त-सम्मामि० विहत्तिया अविहत्तिया च गियमा अत्थि;
 सेसाण विहत्तिया गियमा अत्थि । एव सम्मत्तदिय-सम्भविगळिदिय-पंचिदियअपत्त०
 तसअपत्त०-सम्भपचक्राय-मदि-सुत्तअण्णाणि विहंग०-मिच्छादिदि असण्णि चि वत्तम् ।

§ १५४ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिसं नारकियेसिं मिच्छात्त, सम्मत्तप्रकृति, सम्मत्त-
 मिच्छात्त और अनन्तालुगन्धी चतुष्ककी विमत्तिवाले और अविमत्तिवाले बीच नियमसे हैं ।
 रोप इकीस प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले ही बीच हैं । इसीप्रकार पहली पृष्ठीमें और सामान्य
 तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त सामान्य देव सौमर्म-येज्ञान स्वर्गसे लेकर
 सर्वांसिद्धि तकके देव वैक्रियिकप्रययोगी, परिहारविह्वलिसयत, संयतासयत, असयत,
 और कृष्ण आदि पांच क्षेत्रवाले जीवोंके कथन करना चाहिये । दूसरी पृष्ठीसे लेकर
 सातवीं पृष्ठी तक प्रत्येक पृष्ठीमें सम्मत्तप्रकृति, सम्मत्तमिच्छात्त और अनन्तालुगन्धी
 चतुष्ककी विमत्तिवाले और अविमत्तिवाले बीच नियमसे हैं । तथा छेप प्रकृतियोंकी
 विमत्तिवाले ही हैं । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनितवी, मभमवासी, ध्यम्तर और
 ज्योतिषी देवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंसे लेकर पंचक्षेत्रवाले जीवों तक सभी बीच इकीस
 प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले तो नियमसे हैं । पर मिच्छात्त, सम्मत्त सम्मत्तमिच्छात्त और
 अनन्तालुगन्धी चतुष्ककी विमत्तिवाले और अविमत्तिवाले भी नाना बीच होते हैं । तथा
 दूसरी पृष्ठीसे लेकर जितनी मार्गलाय गिनाई हैं उनमें सभी बीच बाईस प्रकृतियोंकी
 विमत्तिवाले तो नियमसे हैं । पर सम्मत्त, सम्मत्तमिच्छात्त और अनन्तालुगन्धी चतुष्ककी
 विमत्तिवाले और अविमत्तिवाले भी नाना बीच होते हैं यह एक कथनका तात्पर्य है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच छद्मपर्वोत्तर जीवोंमें सम्मत्तप्रकृति और सम्मत्तमिच्छात्तकी विमत्ति-
 वाले और अविमत्तिवाले बीच नियमसे हैं । किन्तु छेप प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले ही हैं ।
 इसीप्रकार सभी पंचेन्द्रिय, सभी त्रिकसंन्द्रिय, पंचेन्द्रिय छद्मपर्वोत्तर, त्रस सत्त्वपर्वोत्तर
 सब प्रकारके पांचों आबरकाय, मत्पशानी, श्रुताशानी, विमंगशानी, मिच्छादृष्टि और
 असंसी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

§ १५५. मणुस्स-अपज्ज० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि तो छव्वीसं पयडीणं णियमा विहत्तिया, अविहत्तिया णत्थि । सम्मत्तस्स अट्ठ भंगा ८ । तं जहा, सिया विहत्तियो १, सिया अविहत्तियो २, सिया विहत्तिया ३, सिया अविहत्तिया ४, सिया विहत्तियो च सिया अविहत्तियो च ५, सिया विहत्तियो च सिया अविहत्तिया च ६, सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च ७, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च ८ । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं । वेमण०-वेवाचि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणं-ताणु०चउक्काणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि । वारसक०-णवणोकमाय० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा । एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-

विशेषार्थ—ये ऊपर जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमे २६ प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तो सभी जीव हैं पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले भी नाना जीव होते हैं ।

§ १५५. लब्धयपर्याप्तक मनुष्य कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते । यदि होते हैं तो नियमसे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वसे अतिरिक्त शेष छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले होते हैं । उक्त छव्वीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले नहीं होते हैं । तथा सम्यक्प्रकृतिकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं । वे इसप्रकार हैं—कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव होता है १ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाला एक जीव होता है २ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ३ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ४ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव और अविभक्तिवाला एक जीव होता है ५ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाला एक जीव और अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ६ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले अनेक जीव और अविभक्तिवाला एक जीव होता है ७ । कदाचित् सम्यक्प्रकृतिकी विभक्ति और अविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं ८ । इसीप्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा भी आठ भंग कहना चाहिये ।

असत्य और उभय इन दो मनोयोगी और इन्हीं दो वचनयोगी जीवोंमें मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा वारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले कदाचित् सभी जीव हैं १ । कदाचित् अनेक जीव वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक जीव वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ३ । इसप्रकार तीन भंग होते हैं । इसीप्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षु-

हत्तिया चेदि ८ । वारसकसाय-णवणोकसायाणं सिया विहत्तियो सिया विहत्तिया ।
एवमाहार०-आहारमिस्स०जोगीणं ।

§ १५७. वेदानुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं
विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि । अट्टकसाय-णवुंसयवेदाणं सिया सव्वे
जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया
च एवं तिण्णि भंगा । चत्तारिसंजलण-अट्टणोकसायाण णियमा अत्थि विहत्तिया,
अविहत्तिया णत्थि । एवं णवुंस०, णवरि इत्थिवेदे णवुंस०भंगो । पुरिसवेदे मिच्छत्त-
सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि ।
अट्टक०-अट्टणोकसाय० सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तियो
च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च एवं तिण्णि भंगा । चत्तारिसंजलण-पुरिस-
वेदाणं विहत्तिया णियमा अत्थि । अवगदवेदेसु चउवीसण्हं पयडीण सिया सव्वे जीवा

और एक जीव अविभक्तिवाला है ७ । कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक
जीव अविभक्तिवाले हैं ८ । तथा वारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कदाचित्
एक जीव विभक्तिवाला है और कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले हैं । इसीप्रकार आहा-
रक काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

§ १५७. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मि-
थ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं ।
अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और नपुसकवेदकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव
विभक्तिवाले हैं । कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है ।
कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं । इस प्रकार तीन
भंग होते हैं । चार सज्वलन और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा सभी स्त्रीवेदी जीव नियमसे
विभक्तिवाले हैं, अविभक्तिवाले नहीं हैं । नपुसकवेदी जीवोंके इसीप्रकार कथन करना
चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदके स्थानमें नपुसकवेद कहना चाहिये । पुरुषवेदी
जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्मग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति-
वाले और अविभक्ति जीव नियमसे हैं । अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि आठ कषाय और
आठ नोकषायोंकी अपेक्षा कदाचित् सभी पुरुषवेदी जीव विभक्तिवाले हैं १ । कदाचित्
अनेक जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक पुरुष-
वेदी जीव विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले हैं ३ । इसप्रकार तीन भंग होते हैं । चार
सज्वलन और पुरुषवेदकी अपेक्षा सभी पुरुषवेदी नियमसे विभक्तिवाले हैं । अपगतवेदियोंमें
कदाचित् सभी अपगतवेदी जीव चौबीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले हैं १ । कदाचित्
अनेक जीव अविभक्तिवाले और एक जीव विभक्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक जीव

अविहृत्तिया, सिया अविहृत्तिया च विहृत्तियो च, सिया अविहृत्तिया च विहृत्तिया च एवं तिष्ठि मंगा ।

§ १५८. कसायाजुवादेण कोपस्त पुरिसमगो । णवरि, पुरिस० बेमणमगो । एवं माणक० । णवरि कोप० बेमणमगो । एव मायक० । णवरि माण० बेमणमगो । एवं सोम० । णवरि माया० बेमणमगो । एव सामाइयच्छेदो० । अकसाय अणगदबेद मंगो । एव ब्रह्मकलाद० चत्तम्भं । सुहुमसांपराय एकारसक०-णवणोकसाय-मिच्छत्त सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण अहुमया । तं अहा, सिया अविहृत्तियो, सिया विहृत्तियो, सिया अविहृत्तिया, सिया विहृत्तिया, सिया अविहृत्तियो च विहृत्तियो च, सिया अविहृत्तियो च विहृत्तिया च, सिया अविहृत्तिया च विहृत्तियो च, सिया अविहृत्तिया च विहृत्तियो च, सिया अविहृत्तिया च विहृत्तिया चेदि । सोमसन्नसण० सिया विहृत्तियो, सिया विहृत्तिया ।

अविमत्तिवाळे और अनेक जीव विमत्तिवाळे हैं १ । इसप्रकार तीन भग होते हैं ।

§ १५८ कपायमार्मजाके अनुवाहसे कोपकवाची जीवोंके भग पुरुषवेदी जीवोंके समान होते हैं । इतनी विज्ञेयता है कि कोपकवाचीके पुरुषवेदकी अपेक्षा असत्त्व और उभय मनो योगीके समान तीन भग होते हैं । इसीप्रकार मानकवाची जीवोंके कवन करना चाहिये । इतनी विज्ञेयता है कि मानकवाचीके कोपकी अपेक्षा असत्त्व और उभय मनोयोगीके समान तीन भग होते हैं । इसीप्रकार मायाकवाची जीवोंके कवन करना चाहिये । इतनी विज्ञेयता है कि मायाकवाची जीवोंके मानकवाचीके अपेक्षा असत्त्व और उभय मनोयोगीके समान तीन भग होते हैं । इसीप्रकार स्मेमकवाची जीवोंके कवन करना चाहिये । इतनी विज्ञेयता है कि स्मेमकवाची जीवोंके मायाकवाचीके अपेक्षा असत्त्व और उभय मनोयोगीके समान तीन भग होते हैं । इसीप्रकार सामायिक संयत और छेदोपस्थापना सब्ब जीवोंके कवन करना चाहिये । अकपायिक जीवोंके अपणववेदियोंके समान कवन करना चाहिये । तथा इसीप्रकार वयास्यात् संयत जीवोंके कवन करना चाहिये ।

सुहुमसांपरायिक संयत जीवोंके अग्रत्याक्यानावरण कोप भादि ग्यारह कपाय, नौ मोकपाय, मिष्ठात्त्व, सम्स्कृप्तति और सन्वरिमष्ठात्त्वकी अपेक्षा आठ भग होते हैं । वे इसप्रकार हैं—क्याचित् एक जीव अविमत्तिवाळा है १ । क्याचित् एक जीव विमत्तिवाळा है २ । क्याचित् अनेक जीव अविमत्तिवाळे हैं ३ । क्याचित् अनेक जीव विमत्तिवाळे हैं ४ । क्याचित् एक जीव अविमत्तिवाळा और एक जीव विमत्तिवाळा है ५ । क्याचित् एक जीव अविमत्तिवाळा और अनेक जीव विमत्तिवाळे हैं ६ । क्याचित् अनेक जीव अविमत्तिवाळे और एक जीव विमत्तिवाळा है ७ । क्याचित् अनेक जीव अविमत्तिवाळे और अनेक जीव विमत्तिवाळे हैं ८ । सोमसन्नसणकी अपेक्षा क्याचित् एक जीव विमत्तिवाळा है और क्याचित् अनेक जीव विमत्तिवाळे हैं ।

४१५६ अभवसिद्धिय० सच्चपयडीओ गियमा अत्थि । खइयसम्माइटीसु
 एकवीमपयडीणं विहत्तिया अविहत्तिया च गियमा अत्थि । वेदगसम्मादिटीसु मिच्छत्त-
 सम्मामि० सिया सच्चे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तियो च, सिया
 विहत्तिया च अविहत्तिया च एव तिण्णि भंगा । अणताणु० चउक्कस्स विहत्तिया अवि-
 हत्तिया च गियमा अत्थि । सम्मत्त-बारसक०-णवणोकसाय० विहत्तिया गियमा
 अत्थि । उवसमसम्माइटीसु अणंताणुबंधिचउक्कस्स विह० अविह० अट्ट भंगा । सेसाणं
 पयडीणं सिया विहत्तियो, सिया विहत्तिया । एवं सम्मामि० । सासणेसु सच्चपय-
 डीणं सिया विहत्तियो सिया विहत्तिया । अणाहारएसु ओघभंगो । णवरि, सम्मत्त-
 सम्मामि० विह० भयणिज्जा ।

एवं गाणाजीवेहि भग-विचओ समत्तो ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसापराय गुणस्थानमे कदाचित् एक जीव क्षपक ही होता है । कदाचित्
 एक जीव उपशमक ही होता है । कदाचित् अनेक जीव क्षपक ही होते हैं । कदाचित्
 अनेक जीव उपशमक ही होते हैं । कदाचित् एक जीव क्षपक और एक जीव उपशमक
 होता है । कदाचित् एक जीव क्षपक और अनेक जीव उपशमक होते हैं । कदाचित्
 अनेक जीव क्षपक और एक जीव उपशमक होता है तथा कदाचित् अनेक जीव क्षपक
 और अनेक जीव उपशमक होते हैं । इसी अपेक्षासे ऊपर २३ प्रकृतियोंकी अपेक्षा आठ
 भग कहे हैं । पर वहा दोनों श्रेणीवालोंके लोभसज्वलनका सत्त्व ही पाया जाता है । अत
 इसकी अपेक्षा उपर्युक्त दो ही भग होते हैं ।

४१५६. अभव्योंके समी प्रकृतियां नियमसे हैं । क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृ-
 तियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें कदाचित्
 समी जीव जीव मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले हैं १ । कदाचित् अनेक
 विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला है २ । कदाचित् अनेक जीव विभक्तिवाले और
 अनेक जीव अविभक्तिवाले हैं ३ । इसप्रकार तीन भग होते हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी
 विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । किन्तु सभी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव
 सम्यक्प्रकृति, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे विभक्तिवाले हैं । उपशमसम्य-
 ग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीवोंकी अपेक्षा आठ
 भग होते हैं । शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा कदाचित् एक और कदाचित् अनेक जीव
 विभक्तिवाले हैं । इसीप्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । सासादन सम्यग्-
 दृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कदाचित् एक जीव और कदाचित् अनेक जीव
 होते हैं । अनाहारक जीवोंमें ओषके समान समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि
 सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव भजनीय हैं ।

§ १६०. भागामागानुगमण दुबिहो विवेसो, ओषेण आवेसेण य । तस्य ओषेण छम्बीस पयडीणं विहृत्तिया सम्बन्धीबाणं केवडिओ मागो ? अणंता मागा । अबिहृत्तिया सम्बन्धीबाणं केवडिओ मागो ? अणंतिममागो । एव सम्मत्त-सम्मामि० वत्तम्ब । णवरि, विवरीय कायम्ब । एव काययोगि-ओराठियामिस्स०-कम्मइय०-अणक्खु० मव सिद्धि०-आहारि०-अण्णाहारि ति वत्तम्ब ।

विशेषार्थ—जन्मों और क्षायिकसम्बन्धदृष्टियोंके कर्ममें कोई विशेषता नहीं है । वेदकसम्बन्धदृष्टियोंमें कदाचित् वर्तनमोहनीयकी कृपाका प्रत्यापक एक भी जीव नहीं पाया जाता, और कदाचित् एक जीव तथा कदाचित् अनेक जीव पाये जाते हैं । इसी दृष्टिसे ऊपर सिध्दात्त और सम्पत्तिप्रत्यात्तकी विभक्तिबाधे और अबिभक्तिबाधे जीवोंके तीन भंग कहे हैं । जन्मसम्बन्धक सात्तर मार्गणा है । इसमें कदाचित् एक जीव और कदाचित् अनेक जीव प्रथमोपसम वा द्वितीयोपसम सम्बन्धको प्राप्त होते हैं । अतः इनके परस्पर संयोगसे आठ भंग हो जाते हैं । सिद्धगुणस्वान भी सात्तर मार्गणा है । इसमें अनन्ता दुबन्धीकी विभक्तिबाधे और अबिभक्तिबाधे कदाचित् एक और अनेक जीव प्रवेश करते हैं । अतः वहाँ भी परस्परके संयोगसे आठ भंग हो जाते हैं । शेष कथन सुगम है ।

इसप्रकार नामा जीवोंकी अपेक्षा भगवित्तय अनुबोधप्रकार समाप्त हुआ ।

§ १६०. भागामागानुगमणकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आवेश निर्देश । इनमेंसे ओषनिर्देशकी अपेक्षा छम्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधे जीव सब जीवोंके कितने भगवत्प्रमाण है ? अनन्त बहुभागप्रमाण है । अबिभक्तिबाधे सब जीवोंके कितने भागप्रमाण है ? अमन्तवें भगवत्प्रमाण है । इसीप्रकार सम्बन्धकृति और सम्पत्तिप्रत्यात्तकी अपेक्षा कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहाँ प्रमाणको बखूब देना चाहिये । जर्मात् इन दोनों प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधे जीव सब जीवोंके अनन्तवें भाग हैं और अबिभक्तिबाधे जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग हैं । इसीप्रकार काययोगी औरारिकसिद्धकाययोगी, कर्मण-काययोगी, अण्णुवर्धनी मन्व, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—श्रीणकवाणं शुक्कवाणंवाधे वादि जीव ही छम्बीस प्रकृतियोंकी अबिभक्तिबाधे हैं । शेष सब संसारकी जीव छम्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधे होते हैं जो अमन्त बहुभाग हैं । इसी विषयसे ऊपर छम्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिबाधे और अबिभक्तिबाधे जीवोंका यागायान कहा है । पर सम्पत्त और सम्पत्तिप्रत्यात्तकी विभक्तिबाधे जीव जोड़े हैं क्योंकि जिन्होंने एक बार सम्पत्त प्राप्त कर लिया है ऐसे जीवोंके ही इन दो प्रकृतियोंका संरक्ष पाया जाता है किन्तु प्रमाण इनकी अबिभक्तिबाधे जीवोंसे स्वल्प है । अतः वहाँ अबिभक्तिबाधेका प्रमाण अनन्तबहुभाग और विभक्तिबाधेका प्रमाण वनन्त एकभाग कहा है । ऊपर कितनी मार्गणार्थ गिनाई है वहाँ भी इसीप्रकार समझना ।

§ १६१. आदेसेण गिरयगईए णेरईएसु मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० विहत्तिया सव्वेजीवा० केव० ? असखेज्जा भागा । अविहत्ति० सव्वजीव० केव० भागो ? असखेज्जदिभागो । सम्मत्त-सम्मामि० विहत्ति० सव्वजीवा० केवडिओ भागो ? असखेज्जदिभागो । अविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असखेज्जा भागा । सेसाणं पयडीणं णत्थि भागाभागो । एवं पढमाए पुढवीए । पंचिदियतिक्खि-पंचितिरि० पज्ज०-देवा-सोहम्मीसाणप्पहुडि जाव सहस्सारेत्ति-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-तेउ०-पम्म० वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव वत्तव्वं । णवरि, मिच्छत्त-भागाभागो णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणि-भवण०-वाण०-जोदिसि०वत्तव्व ।

§ १६२. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०

§ १६१. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नरकियोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकी जीव सब नरकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले नारकी जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असख्यातवें भाग प्रमाण हैं । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असख्यातवें भाग प्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले नारकी जीव सब नारकियोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । उक्त सात प्रकृतियोंके सिवाय शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा नारकियोंमें भागाभाग नहीं है । इसीप्रकार पहली पृथिवी, पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिभ्रकाययोगी पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वहा मिथ्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है । इसीप्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—नरकमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव असख्यात होते हुए भी बहुभाग हैं और इनकी अविभक्तिवाले जीव एक भाग हैं । पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले एक भाग और अविभक्तिवाले बहुभाग हैं । इसी बातको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त भागाभाग कहा है । तथा पहली पृथिवीसे लेकर पद्मलेश्यावाले जीवोंके इसीप्रकार भागाभाग संभव है । अतः इनके भागाभागको सामान्य नारकियोंके भागाभागके समान कहा । किन्तु दूसरी पृथिवीसे लेकर और जितनी मार्गणाएँ ऊपर गिनाई हैं उनमें मिथ्यात्वका अभाव नहीं होता । अतः इसके भागाभागको छोड़कर शेष कथन सामान्य नारकियोंके समान जाननेका निर्देश किया है ।

§ १६२. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-

बिह० अविह० ओषमंगो । सेसणं णत्वि मागामागो । एवमसंबद०-तिष्ठियत्सेसायं
 वचस्य । पश्चिदियतिरिक्खअपत्त० सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताव षेरइयमगो । सेसायं
 णत्वि मागामागो । एवं मज्जुसअपत्त -सम्भविगत्तिदिय-पश्चिदियअपत्त०-तसअपत्त०
 पचारिकायवादर०सुद्धम०-पत्तपापत्तत्त०-विहंग० वचस्य ।

§ १६३ मज्जुसगईए मज्जुस्सेसु मिच्छत्त-सोलसक० णवणोकसाय० बिहत्तिया
 सम्भजीवा० केवत्तिओ मागो ! असंखेत्ता मागा । अविहत्ति० सम्भजीवा० केव० मागो ?
 असंखेत्तदिमागो । सम्मत्त-सम्माभि० बिह० सम्भजी० केव ? असंखेत्तदिमागो ।
 अविह० सम्भजी केव० ! असंखेत्ता मागा । एव पश्चिदिय-पश्चिदि०पत्त -तस-तसपत्त०
 पत्तमाय०-पत्तवत्ति -आमिणि० सुद० ओहि० पक्खु ओहिदस० सुक्क० सण्णत्ति

मुक्की बहुष्की विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले तिर्यकोंका भागभाग ओपके समान है।
 तिर्यकोंमें श्रेय इकीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागभाग नहीं है। इसीप्रकार असद्यत और कृष्ण
 आदि तीन श्रेयवाले जीवोंके कहना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यक छम्प्यपर्वातकोंमें सम्भ-
 प्रकृति और सम्भग्मिष्वात्की अपेक्षा भागभाग नारकियोंके समान है। तथा श्रेय प्रकृ-
 तियोंकी अपेक्षा भागभाग नहीं है। इसीप्रकार छम्प्यपर्वातक मनुष्य, सभी विकसेन्द्रिय,
 पंचेन्द्रिय छम्प्यपर्वातक, त्रस छम्प्यपर्वातक पृथिवी कृत्रिक आदि चार व्यापक काव तथा
 इनके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक बादर और सूक्ष्मके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा विभ
 ग्यानी जीवोंके कहना चाहिये।

विद्योपार्थ—सामान्य तिर्यकोंका प्रमाण अनन्त है, अतः वहाँ मिष्वात्वादि सात प्रकृति-
 बोंकी अपेक्षा ओपके समान भागभाग कम जाता है। श्रेय इकीस प्रकृतियों इनके सर्वदा
 पाई जाती हैं। ऊपर ओ असद्यत आदि चार मार्गोंमें गिलाई हैं वहाँ भी इसीप्रकार समझना।
 तथा पंचेन्द्रियतिर्यक छम्प्यपर्वात आदि कितनी मार्गोंपर ऊपर बतलाई हैं उनमें सम्भप्रकृति
 और सम्भग्मिष्वात्का सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं तथा इनका प्रमाण असद्यवात
 है अत इनका भागभाग सामान्य नारकियोंके समान कहा है।

§ १६३ मज्जुसगतिये मज्जुस्येसि मिष्वात्, सोल्लह क्वाव और नी नोकपाबोंकी विभक्ति
 वाले मनुष्य सभी मज्जुस्येसि कितने भागप्रमाण हैं ? असद्यवात बहुभागप्रमाण है। तथा अवि-
 भक्तिवाले मनुष्य सभी मज्जुस्येसि कितने भागप्रमाण हैं ? असद्यवातके भागप्रमाण हैं।
 सम्भप्रकृति और सम्भग्मिष्वात्की विभक्तिवाले मनुष्य सभी मज्जुस्येसि कितने भागप्रमाण
 हैं ? असद्यवातके भागप्रमाण हैं। तथा अविभक्तिवाले मनुष्य सभी मज्जुस्येसि कितने
 भागप्रमाण हैं ? असद्यवात बहुभागप्रमाण हैं। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त त्रस,
 त्रसपर्याप्त पांचों मनोबोगी, पांचों वचनबोगी मतिज्ञानी वृत्तज्ञानी, अवधिज्ञानी बहु
 वर्तनी अवधिदर्शनी, छुक्खसेरवावाले और सभी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विद्येयवा

वत्तव्वं । णवरि, आभिणि०-सुद०-ओहिणाणि-ओहिदंसणीसु सम्म०-सम्मामि० मिच्छ-
त्तमंगो । सुकल्लेस्सि० दंसणतिय-अणंताणु० विह० संखेज्जा भागा । अवि० सखेज्ज-
दिभागो । मणुसपज्ज०-मणुसिणीणमेवं चेव । णवरि संखेज्जं कायव्वं । एवं मणपज्जव०-
संजद०-सामाहयच्छेदो० वत्तव्वं । णवरि, सामाहयच्छेदो० लोभ० भागाभागो णत्थि
एगपदत्तादो । आणद-पाणद० जाव सव्वदुसिद्धि ति मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अण-
ताणु० चउक्क० विह० सव्वजी० केव० ? संखेज्जा भागा । अविह० सव्वजी० केव० ?
संखेज्जदिभागो । सेसाणं णत्थि भागाभागो । एवमाहार०-आहारमिस्स०-परिहार०
वत्तव्वं ।

§ १६४. इदियाणुवादेण एइंदिय० सम्मत्त-सम्मामि० ओघमंगो । सेसाणं णत्थि
भागाभागो । एवं बादरसुहुम-एइंदिय०-पज्ज०-अपज्ज०-वणप्फदि०-णिगोद०-बादर-

है कि मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग मिध्यात्वके समान है । तथा शुक्ललेइयावाले जीवोंमें तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सभी शुक्ललेइयावाले जीवोंके संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । और अविभक्तिवाले जीव सभी शुक्ललेइयावाले जीवोंके संख्यातवें भागप्रमाण हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें इसीप्रकार भागाभाग है । इतनी विशेषता है कि पूर्वमें जहा जहां असख्यात कहा है वहा वहां यहा सख्यात कर लेना चाहिये । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामायिकसयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके लोभकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है क्योंकि वहा लोभ नियमसे है । आनत और प्राणत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक प्रत्येक स्थानमें मिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव उक्त स्थानोंके सभी जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? सख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव उक्त स्थानोंके सभी जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । यहा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है । इसीप्रकार अहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी और परिहारविशुद्धिसयत जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १६४. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग ओघके समान है । यहा शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है । इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोदियाजीव, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त,

सुदुम०-पन्न०-अपन्न०-मदि-सुद०-मिच्छादिदि-असम्पि वि पचम्ब ।

§ १६५ वेदाद्युवादेम इत्थिवेदे पश्चिदियमगो । णपरि, चत्तारिसंजल्लय-अट्टोक्क० मागामागो अरिय । एव अठस० पचम्ब । णपरि इत्थिवे० अरिय मागामागो । सम्बरथ अणंतमागालाओ फायम्बो । पुरिसवेदे पश्चिदि मगो । अवरि, चत्तारिसंजल्लय पुरिस० मागामागो णरिय । अणदवेद० चउवीस० विह० सम्पत्ती० केम० । अण तिममागो । अविह० सम्पत्ती० केम० । अणता मागा । एवमकसाय० सम्मादिदि सुइय० पचम्ब ।

§ १६६ कसायाद्युवादेण कोच० ओपमंगो । अवरि, चत्तारिसंजल्लय० मागामागो

बाहर निगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव, बाहर निगोद पर्याप्त जीव, बाहर निगोद अपर्याप्त जीव, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जीव, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीव, मत्तझानी, हुताझानी, मिष्प्य-दृष्टि और असङ्गी जीवोंके कइया चाहिये ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त मार्गजावाले जीव अनन्त हैं और वहाँ सम्पत्त्व और सम्प-मिष्प्यात्त्व इन दोनोंका सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्मिश्र हैं तथा छेपका सत्त्व ही है । अतः इन दो प्रकृतियोंकी अपेक्षा उक्त मार्गजावमें मागामाग ओपके समान कइया है ।

§ १६५ वेदमार्गणाके अट्टवाइसे स्त्रीवेदी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान मागमभाग होता है । इतनी विद्येपता है कि स्त्रीवेदी जीवोंके चार सम्बन्धन और आठ नोकपायकी अपेक्षा मागमभाग नहीं होता । इसीप्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके मागमभाग कइना चाहिये । इतनी विद्येपता है कि नपुंसकवेदी जीवोंके स्त्रीवेदीकी अपेक्षा भी मागामाग होता है । परन्तु नपुंसकवेदी जीवोंके मागमभाग कइते समय सर्वत्र असङ्गतावभागके स्थानमें अनन्तभाग कइना चाहिये । पुरुषवेदी जीवोंमें पंचेन्द्रियोंके समान मागमभाग होता है । इतनी विद्येपता है कि इनके चार सम्बन्धन और पुरुषवेदीकी अपेक्षा मागामाग नहीं होता । अपगतवेदी जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीव समस्त अपगतवेदी जीवोंके कितने मागमभाग हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । तथा अविमत्तिवाले अपगतवेदी जीव समस्त अपगतवेदी जीवोंके कितने मागमभाग हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । इसीप्रकार अकपायी सम्पदृष्टि और क्षात्रिक सम्पदृष्टि जीवोंके मागमभाग कइना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गजावमें स्त्रीवेदीवाले और पुरुषवेदीवालोंके प्रमाण अर्धकवात है । इनके अतिरिक्त छेप सब मार्गजावोंके प्रमाण अनन्त है । अतः जहाँ कितनी प्रकृतियोंका सत्त्व और असत्त्व पाया जाय उस कमको स्थानमें रखकर उपर्युक्त व्यवस्था-नुसार इन मार्गजावमें मागमभाग जानना ।

§ १६६ कपायमार्गणाके अट्टवाइसे कोपकपायी जीवोंके मागमभाग ओपके समान है । इतनी विद्येपता है कि कोपकपायी जीवोंके चार सम्बन्धनकी अपेक्षा मागमभाग नहीं होता ।

णत्थि । एवं माण०, णवरि तिण्णिसंजलण० भागाभागो णत्थि । एवं माय०, णवरि दोण्हं संजलण० भागाभागो णत्थि । एवं लोभ०, णवरि लोभ० भागाभागो णत्थि । सुहुमसांपराय० तेवीसपयडि० विह० सच्चजी० केव० ? संखेज्जदिभागो । अविह० सच्चजी० केव० ? संखेज्जा भागा । लोभसंजलण० भागाभागो णत्थि० । जहाक्खाद० चउवीस० विह० केव० ? संखेज्जदिभागो । अविह० सच्चजी० केव ? संखेज्जा भागा । संजदासंजद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० विह० सच्चजी० केव० ? असंखेज्जा भागा । अविह० केव० ? असंखे० भागो । सेसाणं णत्थि भागामागो ।

इसीप्रकार मानकषायी जीवोंके भागाभाग होता है । इतनी विशेषता है कि इनके मान आदि तीन संज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता । इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंके भागाभाग होता है । इतनी विशेषता है कि इनके माया और लोभ संज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता । इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंके भागाभाग होता है । इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता ।

विशेषार्थ—क्रोधादि प्रत्येक कषायवाले जीव अनन्त हैं अतः इनका भागाभाग ओघके समान बन जाता है । शेष विशेषता ऊपर बतलाई ही है ।

सूक्ष्मसापरायिक सयत जीवोंमें तेईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्व सूक्ष्मसापरायिक संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? सख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अविभक्तिवाले समस्त सूक्ष्मसापरायिक संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? सख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सूक्ष्मसापरायिक संयत जीवोंके लोभसंज्वलनकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है । यथाख्यात सयत जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव समस्त यथाख्यात सयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यातवें भागप्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव समस्त यथाख्यात संयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । संयतासंयत जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कफी विभक्तिवाले जीव सब संयतासंयत जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं , असख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव सब संयतासयतोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असख्यातवें भागप्रमाण हैं । संयतासंयत जीवोंमें शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है ।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसापरायिक और यथाख्यातसयत जीवोंमें उपशमश्रेणीवालोंसे क्षपकश्रेणीवाले सख्यातरुणे होते हैं, अतः इनका भागाभाग उक्त रूपसे कहा है । यद्यपि संयतासयतोंका प्रमाण असख्यात है तो भी उनमें मिथ्यात्व आदिकी सत्तासे रहित जीव अल्प हैं । अतः यहा भी इनकी अविभक्तिवालोंसे इनकी विभक्तिवाले असख्यात बहुभाग कहे हैं । यहां शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं होता ।

§ १६७ अमम्बसिद्धि० छन्वीसंपपटि० मागामागो णरिष । वेदगसम्माइ० मिच्छल-सम्मामि अणताणु० चउक० विह० सम्बन्धी० केव० ? असंखेज्जा मागा । अविह० सम्बन्धी० केव० ? असखेज्जदिमागो । सेसाण णरिष मागामागो । उवसम० अणताणु० चउक० विह० सम्बन्धी० केव० ? असंखेज्जा मागा । अविह० सम्बन्धी० के० ? असखेज्जदिमागो । सेसाम् णरिष मागामागो । एवं सम्मामि० वसम्ब । सासण० अट्ठावीसपपट्टीण णरिष मागामागो ।

एव मागामागो समचो ।

§ १६८ परिमाणाष्टागमेव दुबिहो भिदेसो ओषेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण छन्वीसंपप० विह० अविह० केत्तिया ? अणता । सम्मच०-सम्मामि० विह० केत्ति० ?

§ १६७ अमम्ब जीवोंके छन्वीस प्रकृतियोंकी ही सत्त्व है इसलिये मागामाग नहीं है । वेदकसम्बगृह्ण जीवोंमें मिच्छात्व, सम्बगुमिच्छात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सब वेदकसम्बगृह्ण जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असम्ब्यात बहुभाग प्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले वेदकसम्बगृह्ण जीव सब वेदकसम्बगृह्ण जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असम्ब्यातवे भागप्रमाण हैं । वेदकसम्बगृह्ण जीवोंके दोष प्रकृतियोंकी अपेक्षा मागामाग नहीं है । उपक्रमसम्बगृह्ण जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सब उपक्रमसम्बगृह्ण जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असम्ब्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा अविभक्तिवाले उपक्रमसम्बगृह्ण जीव सब उपक्रमसम्बगृह्ण जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असम्ब्यातवे भागप्रमाण हैं । उपक्रमसम्बगृह्ण जीवोंके दोष प्रकृतियोंकी अपेक्षा मागामाग नहीं है । उपक्रमसम्बगृह्ण जीवोंके समान सम्बगुमिच्छात्वि जीवोंके मागामाग कहना चाहिये । सब सासादन सम्बगृह्ण जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी ही सत्ता है इसलिये मागप्रमाण नहीं है ।

विशेषार्थ—अमम्बमें सभीके छन्वीस प्रकृतिवा ही पाई जाती हैं अतः वहाँ मागा माग नहीं है । वेदकसम्बगृह्णियोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्क मिच्छात्व और सम्बगुमिच्छात्वात् सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं । उपक्रमसम्बगृह्ण और सम्बगुमिच्छात्त्वियोंके अमन्तानुबन्धी चतुष्क सत्त्व और असत्त्व दोनों सम्भव हैं, अतः इनके इनकी अपेक्षा मागामाग कहा है । सब सासादनसम्बगृह्णियोंके सभी प्रकृतियोंका सत्त्व होता है, अतः मागामाग नहीं होता ।

इसप्रकार मागामाग अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ १६८ परिमाणानुसमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आवेकनिर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा छन्वीस प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति वाले जीव कितने हैं ? अमम्ब हैं ? सम्बकप्रकृति और सम्बगुमिच्छात्वात्की विभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

असंखेज्जा । अविहत्तिया अणंता । एवमणाहारएसु वत्तवं ।

§ १६६. आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० विह० अविह० केत्तिया ? असंखेज्जा । बारसक०-णवणोक० विह० केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-देवा सोहम्मीसाण जाव अवराइद०-वेउव्विय०-तेउ० पम्म० वत्तवं । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि मिच्छत्तस्स अविह० णत्थि । एवं पंचिदि०तिरि०जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिय० वत्तवं ।

§ १७०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-अणंताणु०-चउक्क० विह० केत्ति० ? अणंता । अविह०केत्ति० ? असंखेज्जा । सम्मत्त-सम्मामि० विह० केत्ति० ? असंखेज्जा । असंख्यात हैं । अविभक्ति वाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओषसे छव्वीस प्रकृतिवाले जीव अनन्त हैं, क्योंकि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंको छोडकर शेष सभी ससारी जीवोंके छव्वीस प्रकृतियां पाई जाती हैं । तथा अविभक्तिवाले भी अनन्त हैं, क्योंकि इनमे सिद्धोंका भी ग्रहण हो जाता है । पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिवाले जीव असख्यात ही होते हैं, क्योंकि इन दो प्रकृतियोंके कालमे संचित हुए जीवोंका प्रमाण असख्यातसे अधिक नहीं होता । शेष सभी जीव इन दो प्रकृतियोंसे रहित हैं अतः उनका प्रमाण अनन्त बन जाता है । छव्वीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवालोंमें अनाहारकोंकी मुख्यता है । अतः अनाहारकोंका कथन ओषके समान करनेका निर्देश किया है ।

§ १६६. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । बारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसीप्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, सामान्य देव, सौधर्म ऐशान स्वर्गसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, वैक्रियिककाययोगी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि द्वितीयादि पृथिवीवाले नारकी जीव मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले नहीं हैं । इसीप्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

§ १७०. तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । अविभक्तिवाले तिर्यच जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । बारह कषाय और नौ, नोकषायकी विभक्तिवाले

अविह० कृति० ? अणता । बारसक०-णवयोक्तसाय० विह० केचि० ? अणता । एवमसंज्ञद-तिष्णितेस्सएति वचस्यं । जवरि, किम्ह-वीस्ये० मिच्छत्त० अविह० के० ? संखेज्जा । पचि०तिरि०अपज्ज० सम्मत्त सम्मामि विह० अविह० केचि० ? असखेजा । मिच्छत्त-सोत्तसक०-णवयोक्त० विह० असंखेजा । एव मणुसमपत्त० सम्मविगार्हिटिय-पचिदियअपत्त०-आचारिकाय-मादरसुद्धम०-तेसिपत्त०-अपत्त०-मादर वणप्फदि० पचेयसरीर०-मादरणिगोदपदिद्विद०-तेसिपत्त०-अपत्त०-तसअपत्त० विहग० वचस्यं ।

११७१. मणुसगईए मणुस्सेसु छम्भीसपयवीरं विह० केचि० ? असखेजा । अविह० केचि० ? असखेजा (संखेजा) । सम्मत्त-सम्मामि० विह० अविह० केचि० ? असंखेजा । मणुसपत्त०-मणुसिपीसु अट्टावीस० विह० अविह० केचिया ? संखेजा । एवं मणपत्तव० संज्ञद०-समाइय-छेदो० वचस्यं । जवरि सामाइयछेदो० लोह० अविह० णरिपि । सम्बट्ट० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणतापु०-अत्त० विह० अविह० कृति० ? संखेजा । बारसक०-णवयोक्तसाय० विह० केचि० ? असंखेजा (संखेजा) । एवमा

तिर्यच जीव कितने हैं ? अनन्त है । इसीप्रकार असंघत और कृष्ण आदि तीन अणुम छेद्यावाळे जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कृष्णछेद्यावाळे और नील-छेद्यावाळे जीवोंमें मिष्प्यात्वकी अविभक्तिवाळे जीव कितने हैं ? सक्यात हैं । पचेन्द्रिय तिर्यच अणुमपर्याप्तक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिष्प्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाळे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मिष्प्यात्व, सोद्ध रूपाय और मौ नोकपायोकी विभक्तिवाळे जीव असंख्यात हैं । इसीप्रकार सम्यक्पर्याप्तक मनुष्य, सभी विकसेन्द्रिय पचेन्द्रिय अणुमपर्याप्त, पृथिवीअधिक आदि चार स्वावरअथ तत्र इत चारोंके बादर और सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वमस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर निगोव प्रविष्टित तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त त्रसअणुमपर्याप्त और विभग्यानी जीवोंके कहना चाहिये ।

११७१ मनुष्यगतित्तं मनुष्योंमें छम्भीस प्रकृतिवोंकी विभक्तिवाळे मनुष्य कितने हैं ? असक्यात हैं । अविभक्तिवाळे कितने हैं ? सक्यात हैं । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिष्प्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाळे कितने हैं ? असक्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यमिर्बोंमें अट्टाईस प्रकृतिवोंकी विभक्ति और अविभक्तिवाळे जीव कितने हैं ? सक्यात हैं । इसीप्रकार मम-पर्यग्यानी संघत, सामायिकसघत और छेदोपस्वापनासघत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामायिकसघत और छेदोपस्वापनासघत जीवोंमें डोमकी अविभक्तिवाळे जीव नहीं हैं । सबाधमिद्धिमें मिष्प्यात्व सम्यक्प्रकृति सम्म-मिष्प्यात्व और अनन्तानुबन्धी अणुमकी विभक्तिवाळे और अविभक्तिवाळे जीव कितने हैं ?

हार०-आहारमिस्स०-परिहार० वत्तव्वं ।

§१७२ इंदियाणुवादेण एइंदियवादरसुहुम-तेसिंपज्ज०-अपज्ज० छव्वीमपयडि० विह-
त्तिया केत्तिया ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० ओघभंगो । एवं वणप्फदि-णि-
गोद०-तेसिं-वादर-सुहुम-तेसिं-पज्ज०-अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाणि-मिच्छादि०-असण्णि ति
वत्तव्व । पंचिदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-
चउक्क० विह० अविह० णारयभंगो, वारसक०-णवणोकसाय० मणुसभंगो । एवं
पंचमण०-पंचवचि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-चक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क०-सण्णि ति ।

§१७३ कायजोगीसु मिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० विह० के० ? अणंता । अविह०
केत्तिया ? असंखेज्जा । सम्मत्त-सम्मामि० विह० अविह० ओघभंगो । वारसक०-
णवणोकसाय० विह० केत्ति० ? अणता । अविह० संखेज्जा । एवमोरालिय०-अचक्खु०
भवसिद्धि०-आहारएत्ति वत्तव्वं । ओरालियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक-
सख्यात हैं । तथा बारहकषाय और नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सख्यात
हैं । इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी और परिहारविशुद्धिसंयत
जीवोंके कहना चाहिये ।

§१७२. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय तथा इनके वादर और सूक्ष्म तथा इन
दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंमे छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ?
अनन्त हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा परिमाण ओघके समान है ।
इसीप्रकार वनस्पतिकायिक और निगोदिया जीव तथा इनके वादर और सूक्ष्म तथा इन दोनोंके
पर्याप्त और अपर्याप्त भेद, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना
चाहिये । पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति,
सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंका
परिमाण नारकियोंके समान है । तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्ति और
अविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण सामान्य मनुष्योंके समान है । इसीप्रकार पाचों मनो-
योगी, पाचों वचनयोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी,
शुक्लदर्श्यावाले और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

§१७३. काययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव
कितने हैं ? अनन्त हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । सम्यक्प्रकृति और
सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाले काययोगी जीवोंका परिमाण ओघके समान
है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले काययोगी जीव कितने हैं ? अनन्त
हैं । तथा अविभक्तिवाले काययोगी जीव सख्यात हैं । इसीप्रकार औदारिककाययोगी,
अचक्षुदर्शनी, भन्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगी

साय० विह० केचि० ? अणता । अविह० केचि० ? सखेजा । सम्मत्त-सम्मामि० विह०
 अविह० ओषमगो । एवं कम्मइय० । णवरि, अणंताणुवविचउक्क० अविह० केचि०
 असंखेजा । वेठवियमिस्स० मिच्छत्त० विह० केचि असंखेजा । अविह० के० ?
 संखेजा । सम्मत्त-सम्मामि० अणताणु० चउक्क० विह० अविह० केचि० ? असंखेजा ।
 पारसक्क०-णवणोकसाय० विह० कचि० ? असंखेजा ।

११७४ वेदाणुवादेव इतिवेदेषु मिच्छत्त-अट्ठक्क०-णवुंस० विह० के ? असंखेजा ।
 अविह० संखेजा । सम्मत्त-सम्मामि० अणताणु० चउक्क० विह० अविह० के० ?
 असंखेजा । चचारिसंखलण अट्ठणोक० विह० के ? असंखेजा । पुरिसवेद० पंधि
 दिवसंगो । णवरि, चचारिसत्त०-पुरिस विह० के० ? असंखेजा । णवुंसयवेदेसु
 मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० अणंताणु० चउक्क० तिरिक्खोपमगो । अट्ठक्क०-इत्थिवेद०
 विह० के० ? अणंता । अविह० के० ? संखेजा । चचारिसंखलण-अट्ठणोकसाय०

जीवोंमें सिध्यात्व, सोच्छ कपाय और नौ नोकपायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ?
 अनन्त हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सक्यात हैं । सम्यक्प्रकृति और
 सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवाले जीवोंका परिमाण ओषके समान है ।

इसी प्रकार कर्मण्यस्त्रबोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अनन्ता
 नुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाले कर्मण्यकाययोगी जीव कितने हैं ? असक्यात हैं । लेकिन
 कर्मिभ्रमणयोगी जीवोंमें सिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।
 तथा अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? सक्यात हैं । सम्यक्प्रकृति, सम्मग्मिध्यात्व और
 अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असक्यात
 हैं । बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असक्यात हैं ।

११७४ वेदमार्गणाके अनुवासे जीवेषोमें सिध्यात्व, आठ कपाय और नपुंसकवैरकी
 विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असक्यात हैं । तथा अविभक्तिवाले जीव सक्यात हैं । सम्य-
 क्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिवाले
 जीव कितने हैं ? असक्यात हैं । चार संखलण और आठ नोकपायोंकी विभक्तिवाले
 जीव कितने हैं ? असक्यात हैं । पुरुषवैरी जीवोंका परिमाण पंचेन्द्रियोंके समान है । इतनी
 विशेषता है कि पुरुषवैरी जीवोंमें चार संखलण और पुरुषवैरकी विभक्तिवाले कितने जीव
 हैं ? असंख्यात हैं । नपुंसकवैरी जीवोंमें सिध्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिध्यात्व और
 अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिकी अपेक्षा परिमाण त्रिषंय ओषके समान
 है । आठ कपाय और स्त्रीवैरकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । तथा अविभक्तिवाले
 कितने जीव हैं । सक्यात हैं । चार संखलण और आठ नोकपायोंकी विभक्तिवाले जीव
 अनन्त हैं । अणतावैरी जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ?

विह० अणंता । अवगदवेद० चउवीसपयडीणं विह० के० ? संखेज्जा । अविह० के० ? अणंता । एवमकसाय० वत्तव्व । कोधकसाय० कायजोगिभंगो । णवरि, चत्तारि-संजलण० विह० के० ? अणंता । एव माण० । णवरि तिण्णिसंजलण० विह० अणंता । एवं माय०, णवरि दोण्हं संजलणाणं विह० अणंता । एवं लोभ०, णवरि लोभविह० के० ? अणंता । सुहुमसांपराय० दंसणतिय-एक्कारसक०-णवणोकसाय० विह० अविह० केत्ति० ? संखेज्जा । लोभसंजलण० विह० के० ? संखेज्जा । जहा-क्खाद० चउवीसपयडीणं विह० अविह० संखेज्जा । संजदासजदेसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विह० के० ? असंखेज्जा । अविह० के० ? संखेज्जा । अणंताणु०चउक्क० विह० अवि० के० ? असंखेज्जा । बारसक०-णवणोक० विह० के० ? असंखेज्जा । अभव्व० छव्वीसपय० विह० के० ? अणंता । सम्मादिट्ठि०-खइय० सव्वपय० विह० के० ? असंखेज्जा । अविह० के० ? अणता । वेदयसम्मत्त० मिच्छत्त-सम्मामि० विह०

सख्यात हैं । तथा अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । अपगतवेदी जीवोंके समान अकषायी जीवोंका परिमाण कहना चाहिये ।

क्रोध कषायी जीवोंका परिमाण काययोगी जीवोंके समान है । इनकी विशेषता है कि क्रोधकषायी जीवोंमें चार संज्वलनकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार मानकषायी जीवोंका परिमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानादि तीन संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं । इसीप्रकार मायाकषायी जीवोंका परिमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मायाकषायी जीवोंमें मायादि दो संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव अनन्त हैं । इसीप्रकार लोभकषायी जीवोंमें परिमाण कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीवोंमें लोभसज्वलनवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।

सूद्धमसांपरायिक सयत जीवोंमें तीन दर्शनमोहनीय, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले तथा अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? सख्यात हैं । लोभ सज्वलनकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? सख्यात हैं । यथाख्यातसयत जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव सख्यात हैं । सयतासयत जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असख्यात हैं । अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? सख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्ति और अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असख्यात हैं । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असख्यात हैं ।

अभव्योंमें छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । सम्यग्-दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें उनके समव सभी प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले कितने जीव हैं ? असख्यात हैं । अविभक्तिवाले कितने जीव हैं ? अनन्त हैं । वेदकसम्यग्दृष्टि

के० ? असखेन्ना । अवि० के० ? संखन्ना । अणताणु० चउक० विह० अविह०
 के० ? असखेन्ना । सम्मत्त-वारसक-णवणोक्कसाय विह० के० ? असखेन्ना । त्थ
 समसम्माइ० अणताणु० चउक० विह० के० ? असखेन्ना । अविह० के० ? असखेन्ना ।
 सेसपय० विह० असखेन्ना । एव सम्मामि० । सासण० अट्ठावीसंपयकीणं विह०
 के० ? असखेन्ना ।

एव परिमाण समत्त ।

१२७५ सैचानुगममेव दुबिहो भिरेसो, ओपेण आदेसेण य । तस्य ओपेण छप्पीसंपय
 कीणं विह० केवदिलेचे ? सम्बलोगे । अविह० केव० खेचे ? सोगस्स असखेन्नावि
 मागे असखेन्नेसु वा मागेसु सम्बलोगे वा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताय विह० के०
 खेचे ? सोगस्स असखे० मागे । अविह० सम्बलोगे । एव तिरिक्ख०-सम्बएईदिय०

जीवोंमें मिथ्यात्व और सम्मगुमिथ्यात्वकी विमल्लिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं ।
 अविमल्लिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमल्लि और
 अविमल्लिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । सम्मगुप्रकृति, वारह कषाय और सौ मोक-
 षादोंकी विमल्लिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । उपरामसम्मगुदृष्टि जीवोंमें अन-
 न्तानुबन्धी चतुष्ककी विमल्लिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । तथा अनन्तानुबन्धी
 चतुष्ककी अविमल्लिवाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । तस्य क्षेत्र प्रकृतियोंकी विमल्लि-
 वाले कितने जीव हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सम्मगुमिथ्यादृष्टि जीवोंके क्वत्ता
 चाहिये । सासादनसम्मगुदृष्टि जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विमल्लिवाले कितने जीव हैं ?
 असंख्यात हैं ।

विशेषार्थ—आदेशकी अपेक्षा जो सब मार्गजात्रोंमें परिमाण क्वत्ता है सो किस मार्गजात्राले
 जीवोंका कियमा प्रमाण है, किस मार्गजात्रमें किन कारणोंसे कितनी प्रकृतियोंकी विमल्लिवाले
 और अविमल्लिवाले जीव होते हैं, इन सब बातोंका विचार करके विवक्षित मार्गजात्रोंमें
 विमल्लिवाले तथा विमल्लि और अविमल्लिवाले जीवोंका प्रमाण निकरछ लेना चाहिये ।
 विद्वेष पक्षक्य न होने से अक्षय अक्षय विद्वेषार्थ नहीं लिखा ।

इसप्रकार परिमाणानुबोधप्रार समाप्त हुआ ।

१२७५-सैचानुगमकी अपेक्षा निर्वैस दो प्रकारका है—ओपनिर्वैस और आदेसनिर्वैस । इनमेंसे
 ओपकी अपेक्षा छप्पीस प्रकृतियोंकी विमल्लिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब छोकरमें रहते
 हैं । छप्पीस प्रकृतिवोंकी अविमल्लिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? छोकरके असंख्यातवें
 भाग वा छोकरके असंख्यात बहुभाग वा सर्वछोकरप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । सम्मगुप्रकृति और
 सम्मगुमिथ्यात्वकी विमल्लिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? छोकरके असंख्यातवें भाग
 क्षेत्रमें रहते हैं ? अविमल्लिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व छोकरप्रमाण क्षेत्रमें

चत्तारिकाय०-वादर-तेसिमपज्ज०-सुहुम०-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेय०-तेसि-
मपज्ज०-वादरणिगोदपदिट्ठिद०-तेसिमपज्ज०-वणप्फदि०-वादर-सुहुम०-तेसि पज्ज०
अपज्ज०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि
सुदअण्णाणि-असजद०-अचक्खसु०-तिणिल्ले०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०
असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं । णवरि, काययोगि-कम्मइय०-भवसिद्धिय-
अणाहारिमग्गणाओ मोत्तूण अण्णत्थ केवलिपदं णत्थि । सेसाणं मग्गणाणं अट्ठावीस-
पयडीणं विहत्तिया के० खेत्ते ? लोगस्स असंखे०भागे । णवरि, वादरवाउपज्जत्ता
लोगस्स संखेज्जदिभागे । सव्वत्थ समुक्कित्ताणवसेण सव्वपयडीणं विहत्तियाविहत्तिय-
पदविसेसो च जाणिय वत्तव्वो ।

एवं खेत्तं समत्तं ।

रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवी कायिक आदि चार स्थावरकाय, तथा ये चारों वादर और उनके अपर्याप्त, पृथिवी कायिक आदि चार सूक्ष्म और इनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके अपर्याप्त, वादर निगोद-प्रतिष्ठित तथा इनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर और सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेइयावाले, भव्य, अभव्य, मिध्यादृष्टि, असह्यी, आहारी और अनाहारी जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन उपर्युक्त मार्गणास्थानों-मेसे काययोगी, कर्मणकाययोगी, भव्य और अनाहारक मार्गणाओंको छोड़कर अन्य मार्गणाओंमे केवलिसमुद्धातपद सम्बन्धी विशेषता नहीं है । शेष मार्गणाओंमे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमे रहते हैं । इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । सर्वत्र समुत्कीर्तनाके अनुसार सर्व प्रकृतियोंकी विभक्ति और अविभक्ति पदोंमें जहा जो विशेषता हो उसको जानकर कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—छब्बीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है यह तो स्पष्ट है, क्योंकि कुछ गुणस्थानप्रतिपन्न जीवोंको छोड़कर शेष सबके छब्बीस प्रकृतियां पाई जाती हैं । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात होते हुए भी स्वल्प हैं अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा अधिक नहीं । तथा छब्बीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंमें सयोगी और सिद्ध जीव रहते हैं, अतः इनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग, लोकके असंख्यात बहुभाग और सब लोक प्रमाण बन जाता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवालोंमें

१७६ प्रोसबाहुगमेय बुविहो णिबेसो ओषेय आदेसेय य । तस्य ओषे० छम्बीस पय० बिह० केवडिय खेच फोसिद ? , सम्बलोगो । अविहतिपुदि केवडि० खेच फोसिद ? सोमस्स असंखेन्नादिमामो असंखेन्ना भागा सम्बलोगो वा । सम्मत्त० सम्मामि० बिह० केव० ? लोगस्स असंखेन्नादिमामो अह चोइसभागा वा देसुया सम्बलोगो वा । अविहति० केव० ? सम्बलोगो । एवं तिरिकखोपं सम्बपुदिपय चचारिकपय-बादर-तेसिमपय-सुहुम०-पञ्चत्तापञ्चत्त-बादरवअप्फदिपयेय०-तेसिमप-ञ्चत्त-बादरपिगोदपदिदिद०-तेसिमपञ्च०-वणप्फदि०-बादर-सुहुम-सेसि पञ्चत्तापञ्चत्त-कययोगि-ओराठिय-ओराठियमिस्स०-कम्मइय -अबुत्त०-चचारिकसाय मदि-सुद अण्णाधि असंजद०-अचक्खु -विण्णित्तेसा-मवसिदि०-अमवसिदि -मिच्छादिदि०

एकेन्द्रिय सुख है और हमका वर्तमान क्षेत्र सब छोड़ दे अतः एक दो प्रकृतियोंकी अपि मच्छिमाछोका वर्तमान क्षेत्र भी सब छोड़ बन जाता है । यह सामान्य कथन हुआ । इसी प्रकार भार्गवाओंकी अपेक्षा कथन करते समय एक सभी प्रकृतियोंके साथ और असम्बन्ध विचार करते हुए जहाँ जो विशेषता समझ हो उसके अनुसार कथन करना चाहिये । जिसका सङ्गमें ऊपर निर्देश किया ही है ।

इसप्रकार क्षेत्रसुयोगदार समाप्त हुआ ।

१७७ स्वर्णानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषनिर्देशकी अपेक्षा छम्बीस प्रकृतियोंकी विमच्छिमाछे बीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोकका स्पर्श किया है । अविमच्छिमाछे बीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरे असंख्यावर्षे भाग छोकरे असंख्यात बहुभाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वकी विमच्छिमाछे बीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरे असंख्यावर्षे भाग क्षेत्रका, अस नाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वकी अविमच्छिमाछे बीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सामान्य निर्देश सभी एकेन्द्रिय, प्रविषीकाय आदि चार प्रकार काय, बादर प्रविषीकायिक बादर अलकायिक, बादर अमिकायिक बादर वानुकायिक और इन चार बादरोंके अपर्णात्त सूक्ष्म प्रविषीकायिक आदि चार प्रकार काय तथा इनके पर्याप्त और अपर्णात्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर तथा इनके अपर्णात्त, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर तथा इसके अपर्णात्त वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्णात्त काचयोगी, औदारिककाययोगी औदारिकमिच्छायोगी, कर्मव्यवसाययोगी, नपुंसकवेदी श्लोवादि चारों कथापत्राळे, मत्तजादी, सुताशानी, असपय, अचहुररुद्धी, हृष्य आदि तीन श्रेण्यावाळे, मध्य, अमध्य,

असण्णि०-आहारि०-अणाहारि ति वत्तव्व । णवरि, अभवसिद्धि० सम्मत्त-सम्मामि० (वज्जाणं) अविह० णत्थि । कायजोगि०-कम्मइय०-भवसिद्धिय-अणाहारिमग्गणाओ मोत्तूण अण्णत्थ केवलिपदं णत्थि । तिरिक्खोघम्मि अणंताणुबधिचउक्कअविहत्ति-याणं छ चोद्दसभागा । एवमोरालिय०-णउंसयवेदाणं वत्तव्वं । एदेसु मिच्छ० अविह० लोगस्स असंखे० भागो । सम्मत्त-सम्मामि० विह० अट्ट चोद्दसभागा णत्थि । चत्तारि कसाय-असंजद-अचक्खु० मिच्छ०-अणंताणु० अविह० अट्ट चोद्दसभागा । तिण्णि-लेस्सा० लोगस्स असंखे० भागा । वुत्तसेस मग्गणासु सम्मत्त-सम्मामि० वज्जाण-मविहत्तिया णत्थि, अण्णत्थ वि विसेसो अत्थि सो जाणिय वत्तव्वो ।

§१७७. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु अट्टावीसपयडीणं विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स अंसखज्जदिभागो, छ चोद्दसभागा वा देख्णा ।

मिध्यादृष्टि, असंखी, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्ति नहीं है । तथा काययोगी, कर्मणकाययोगी, भव्य और अनाहारक मार्गणाओंको छोड़कर उपर्युक्त शेष मार्गणाओंमें केवलिसमुद्धात पद नहीं है । सामान्य तिर्यचोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये । इन उक्त मार्गणाओंमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण नहीं है । क्रोधादि चारों कपायवाले, असयत और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा कृष्ण आदि तीन लेख्यावाले जीवोंमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । ऊपर जिन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अभावकी अपेक्षा स्पर्श कहा है उन मार्गणाओंको छोड़कर ऊपर कही गई शेष मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्व को छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव नहीं है । इनके अतिरिक्त औदारिक-मिश्रकाययोगी आदि मार्गणाओंमें भी विशेषता है सो जान कर उसका कथन करना चाहिये ।

§१७७ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे छह

मिच्छा० अर्धतापु० ४ अविह० केव० । लोगस्स असले० मागो । पढमपुढबीण खेचर्मगो । एव णवगेवज्ज० चाव सव्वद्व०-वेठभियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स० अबगदवेद अकसाय-मणफज्जव -सन्नद-सामाह्येदो० परिहार०-सुहुम -सहाक्खादत्ति वचम्भ । अवरि, अबगदवेद-अकसाय-सन्नद-सहाक्खादेसु अविहत्तिपाण केवल्लिमगो कयम्भो । अन्नत्थ वि पक्खिसेसो ज्ञाणियम्भो । विदिपादि चाव सत्तमि ति सम्भपयत्तीण विहत्तिपहि सम्मत्त-सम्मामि० अविहत्तिपहि य केवडिय खेच फोसिद ? लोमस्स असले खदिमागो एक वे तिप्पि चत्तारि पंच छ चोरसमागा वा देख्खा । अणतापु० अविह० छोय असले० मामो ।

११७० पंचिदियतिरिक्खतिएसु सम्भपयत्तीण विह० सम्मत्त सम्मामि० अविह० केवडिय खेच फोसिद ? लोगस्स अमंसे० मागो सम्भलोगो वा । अर्धतापु ४ अविह० केव० ? लोग० असले० मागो छ चोदसमागा । पंचिदियतिरिक्ख पंचि०तिरि०

कम इह मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा मिथ्यात्व और अन्वयानुबन्धी चतुष्क की अविमत्तिवाले सामान्य नारकिपौने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान होता है । इसी प्रकार नौ प्रवेपकसे छेकर सर्वाभिसिद्धि तकके देवोंके तथा वैकिपिकमिक्कापयोगी, आहारककचयोगी आहारकमिक्काययोगी, अपगतवेदी, अकपायिक मनःपर्वयज्ञानी सयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापना सयत, परिहारविद्वुद्धिसंयत सूक्ष्मसांपर्यायिकसयत और पचाक्खातसयत जीवोंके करना चाहिये । इतनी विद्येपता है कि अपगतवेदी अकपायी, संयत और पचाक्खातसयत जीवोंमें एक सात प्रकृतियोंकी अविमत्तिवाले जीवोंका स्पर्श केवल्लिमसुखातपवके समान करना चाहिये । तथा ऊपर कह गये मार्गस्थावानोंमेंसे मनः पर्वयज्ञानी आदि अथ मार्गणास्थानोंमें भी पक्खिसेय जान लेना चाहिये ।

दूसरी पृथिवीसे छेकर सातवीं पृथिवी तक सब प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीवोंने और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविमत्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक भाग, दो भाग तीन भाग, चार भाग पांच भाग तथा कुछ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनन्तानुबन्धी अविमत्तिवाले एक द्वितीयादि पृथिवीके नारकिपौने छोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

११७० पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्यात और पंचेन्द्रिय मोनिमती तिवचोंमें सर्व प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीवोंने और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अविमत्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्व छोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविमत्तिवाले एक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया

असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति वत्तव्व । णवरि, अभवसिद्धि० सम्मत्त-सम्मामि० (वज्जाणं) अविह० णत्थि । कायजोगि०-कम्मइय०-भवसिद्धिय-अणाहारिमग्गणाओ मोत्तूण अण्णत्थ केवल्लिपदं णत्थि । तिरिक्खोघम्मि अणंताणुवधिचउक्कअविहत्ति-याणं छ चोइसभागा । एवमोरालिय०-णवुसयवेदाणं वत्तव्वं । एदेसु मिच्छ० अविह० लोगस्स असखे० भागो । सम्मत्त-सम्मामि० विह० अट्ट चोइसभागा णत्थि । चत्तारि कसाय-असंजद-अचक्खु० मिच्छ०-अणंताणु० अविह० अट्ट चोइसभागा । तिण्णि-लेस्सा० लोगस्स असखे० भागा । वुत्तसेस मग्गणासु सम्मत्त-सम्मामि० वज्जाण-मविहत्तिया णत्थि, अण्णत्थ वि विसेसो अत्थि सो जाणिय वत्तव्वो ।

§१७७. आदेशेण णिग्गयर्गईए णेरइएसु अट्टावीसपयडीण विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स अंसेखज्जदिभागो, छ चोइसभागा वा देसूणा ।

मिध्याष्टि, असही, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वको छोडकर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्ति नहीं है । तथा काययोगी, कार्मणकाययोगी, भव्य और अनाहारक मार्गणाओंको छोडकर उपर्युक्त शेष मार्गणाओंमें केवल्लिसमुद्धात पद नहीं है । सामान्य तिर्यचोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये । इन उक्त मार्गणाओंमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण नहीं है । क्रोधादि चारों कपायवाले, असयत और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले जीवोंमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । उपर जिन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अभावकी अपेक्षा स्पर्श कहा है उन मार्गणाओंको छोडकर ऊपर कही गई शेष मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्व को छोडकर शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं । इनके अतिरिक्त औदारिक-मिश्रकाययोगी आदि मार्गणाओंमें भी विशेषता है सो जान कर उसका कथन करना चाहिये ।

§१७७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और सम्यक्प्रकृति तथा सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ

दिसि० सम्ब-पय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० केवदिय खेच फोसिद ? लोग० असंखेज्जदिमागो, अद्दुह अट नव चोइसमागा वा देखणा । अणताणु० चउह्ण० अविह० केव० खेच फोसिद ? लोगस्स असखे० मागो, अद्दुह अट चोइसमागा वा देखणा । सणक्कुमारादि जाव सहसारेति सम्बपय० विह० दसणतिय अणताणु० ४ अविह० के० खेच फोसिद ? लोगस्स असखे मागो, अट चोइसमागा वा देखणा । आपद-याणद-आरण्णुद० सम्बपयदि० विह० सचपयदि० अविह० के० खेच फोसिद ? लोगस्स असखे० मागो, छ चोइसमागा वा देखणा ।

१२० पश्चिदिंय-पश्चि० पज्ज०-तस-तसपज्ज सम्बपय० विह० सम्म-सम्मामि अविह० के० खेच फोसिद ? लोगस्स असखे० मागो, अट चोइसमागा वा देखणा सम्मलोगो वा । सेस० अविह० क्वन्तिमंगो,णवरि अणताणुवदि० अविह० अट चोइसमागा वा देखणा । एव पंचमण०-पंचपश्चि०-इत्थि-पुरिसवेदेसु वचम्भं । णवरि,

जाहिये । मधनवासी भग्गत्तर और म्पोसिपी देवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंने और सम्बन्धकृति तथा सम्बन्धिमिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोटेके असक्यातवें माग क्षत्रका तथा त्रसनालीक चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्पदी अविभक्तिवाले मधनवासी जाति देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोटेके असक्यातवें माग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग और आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । समकुमार लर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और दर्शनमोहनीयकी धीन तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्पदी अविभक्तिवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोटेके असक्यातवें माग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनत, प्रावत, वारव और अच्युत लर्गमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और साध प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोटेके असक्यातवें माग क्षत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षत्रका स्पर्श किया है ।

१२० पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपयाप्त जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और सम्बन्धकृति तथा सम्बन्धिमिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोटेके असक्यातवें माग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सबलोक प्रमाण क्षत्रका स्पर्श किया है । तथा संघ प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले कुछ चार प्रकारके जीवोंका स्पर्श केवलममुद्रात्पत्रके समान है । इतनी विद्येयता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्पदी अविभक्तिवाले कुछ चार प्रकारके जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार पांचों

केवलभंगो णात्थे । चक्खुदंसणी-सण्णीणमेवं चैव वत्तव्वं । वेउन्वियकायजोगि० सव्वपय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ट तेरह चोदसभागा वा देसूणा । मिच्छत्त-अणंताणु०४ अविह० लोगस्स असंखे० भागो, अट्ट चोदसभागा वा देसूणा ।

§ १८१. अमिणि०-सुद०-ओहि० सत्तपय० विह० सत्तपय० अविह० केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो अट्ट चोदसभागा वा देसूणा । सेस० अविह० खेत्तभंगो । एवमोहिदसण०-सम्मदि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सम्मामिच्छाइटीणं वत्तव्वं । णवरि, अविहत्तिय० गदि-[पद]विसेसो जाणिय वत्तव्वो । विहंग० सव्वपय० विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट चोदसभागा वा सुव्वलोगो वा ।

§ १८२. संजदासंजद० सव्वपय० विह० अणंताणु० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? मनोयोगी, पार्चो वचनयोगी, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें केवलिसमुद्धातपदके समान स्पर्श नहीं है । चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले वैक्रियिककाययोगी जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १८१. मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले उक्त मतिज्ञानी आदि जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यक्मिध्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें अविभक्तिवाले जीवोंके पदविशेष जानकर कहना चाहिये । विभंगज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोगके असख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १८२. सयतासयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अनन्तानुबन्धी

सोम० असंखे० मागो, अथोदसमाया वा देहणा । इंसणत्तिय० अविह० खेचमंगो । एवं सुखसेस्ति । पवरी अविह० केवळिपदमत्ति । ठेठ० सोहम्ममंगो । पम्म० सन्नककुमारमंगो । मासण० सम्बपय० विह के खेच फोसिदं ? सोमस्त असंखे० मागो, अथ बारह थोदसमाया वा देहणा ।

एवं फोसर्णं समत्त ।

§१८३ कालागुगमेण दुविहो गिरेसो ओपेण आवेसेण य । तत्थ ओपेण अट्टावीसं पयवीधं विहसिया केवळिं कालादो होति ? सम्बद्धा । एवं ज्ञाय अणाहारप्पि वचम्भ । पवरी, मज्जुसज्जपज० छम्पीस पय० सम्मत्त-सम्माभि० विह० केवळिं कालादो होति ? अह० सुद्धामवग्गहर्णं एगसमजो, उच्च० पद्धिदो० असंखे० मागो । वेत्तम्भियमिस्त छम्पीसं पय० सम्मत्त-सम्माभि० विह० केव० ? अह० अंतोसुद्धं

चतुष्पत्ती अविमत्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? जोकरके असङ्घातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तीन दर्शनमोहमीपकी अविमत्तिवाले सपतासपद जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार सुखसेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सब प्रकृति बौकी अविमत्तिवाले सुखसेश्यावाले जीवोंके केवलिसमुदात्तपर है । पीठ शेष्यावाले जीवोंका स्पर्श सौषमं स्वर्गके समान है । पद्मसेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सानकुमार स्वर्गके समान है । सासाहन सम्बगूढष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? जोकरके असङ्घातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

इसप्रकार स्पर्शमालुयोगद्वार समप्त हुआ ।

§१८३ कालागुगमेण अपेक्षाये निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश। क्रमसे ओपकी अपेक्षा अट्टावीस प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीवोंका कितना काळ है ? सर्व काळ है । अर्थात् जिनके अट्टावीस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसे जीव सर्वदा पाये जाते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गजा तक पथापोम्य कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि छम्प्यपवैसाक मनुष्योंमें छम्पीस प्रकृतियोंकी और सम्बकूपप्रकृति तथा सम्पगिमिप्यात्वकी विमत्तिवाले जीवोंका कितना काळ है ? छम्पीस प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीवोंका जन्म काळ सुद्धामवग्रहप्रमाण है और सम्बकूपप्रकृति तथा सम्पगुमिप्यात्वकी विमत्तिवाले जीवोंका जन्मकाळ एक समय है । तथा दोनोंका कण्ठ काळ पत्तोपमके असङ्घातवें भाग प्रमाण है । वैदिकविक्रमिप्रकायदोगी जीवोंमें छम्पीस प्रकृतियोंकी तथा सम्बकूपप्रकृति और सम्पगुमिप्यात्वकी विमत्तिवाले जीवोंका कितना काळ है ? जन्म काळ क्रमसे अन्तर्दुर्लभ और एक समय है । तथा दोनोंका

केवलभंगो णात्थि । चक्खुदंसणी-सण्णीणमेवं चेव वत्तव्वं । वेउन्वियकायजोगि० सन्वपय० विह० सम्म०-सम्मामि० अविह० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ट तेरह चोदसभागा वा देखणा । मिच्छत्त-अणंताणु०४ अविह० लोगस्स असंखे० भागो, अट्ट चोदसभागा वा देखणा ।

§ १८१. अमिणि०-सुद०-ओहि० सत्तपय० विह० सत्तपय० अविह० केवडियं खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखे० भागो अट्ट चोदसभागा वा देखणा । सेस० अविह० खेत्तभंगो । एवमोहिदसण०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सम्मामिच्छाइटीणं वत्तव्वं । णवरि, अविहत्तिय० गदि-[पद]विसेसो जाणिय वत्तव्वो । विहंग० सन्वपय० विह० सम्मत्त-सम्मामि० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट चोदसभागा वा सुव्वलोगो वा ।

§ १८२. संजदासंजद० सन्वपय० विह० अणंताणु० अविह० के० खेत्तं फोसिदं ? मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें केवलिसमुद्धातपदके समान स्पर्श नहीं है । चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले वैक्रियिककाययोगी जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १८१. मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सात प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले उक्त मतिज्ञानी आदि जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यक्मिध्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें अविभक्तिवाले जीवोंके पदविशेष जानकर कहना चाहिये । विभंगज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोगके असख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १८२. सयतासयत जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले और अनन्तानुबन्धी

११८४ अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो ओषेण आदेसेण य । तस्य ओषेण अहावीसण्ह
 पयवीण विहचियाममतर केव० ? णतिय अंतर । एव जाव अणाहारएत्ति वचम्व ।
 णवरि मणुस अपज्ज० अहावीसंपयवीणमतर के० ? अह० एगसमओ, उक्क० पल्लिओ०
 असखे मागो । एव सासज्ज०-सम्मामि वत्तम्व । वेठध्वियमिस्स० छम्बीसंपय०
 विहत्ति० अंतरं के० ? अह० एगसमओ, उक्क० चारस सुहुत्ता । सम्मत्त सम्मामि०
 विह० अतरं केव० । अह० एगसमओ, उक्क० चठवीस सुहुत्ता । आहार० आहारमिस्स०
 अहावीसंपय० विहत्ति० अंतरं के० ? अह० एगसमओ, उक्क० वासपुवत्त । एवम-

अट्टाईस प्रकृतियोंकी विमर्शितसे रक्षित होते हैं । इसलिये यहाँ ऐसे अपगतवेदी, अकृपायी
 और पचाकृपावत्सव जीव विवक्षित हैं जो चौबीस प्रकृतियोंकी विमर्शिताले हों ।
 म्बारहवें गुण स्थान तककेही जीव ऐस हो सकते हैं । पर उपक्रम मेणी और क्षपक मेणीपर जीव
 सर्वदा नहीं चढ़ते । अतः इस विवक्षासे ये तीन स्थान भी सान्तर है । इस प्रकार इन सान्तर
 मार्गणाओंमें और अपगतवेदी आवि स्थानोंमें सम्मत्त सब प्रकृतियोंका पचासम्भवा काळ
 जानना चाहिये जो ऊपर कहा ही है । इन मार्गणाओंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा जो अपम्य और
 उत्कृष्ट अथवा सुहाय्यमें वतजया है वही यहाँ पर लिया गया है । उससे इसमें कोई
 विशेषता नहीं है, इसलिये यहाँ उसका सुझसा नहीं किया है ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा अथवा समाप्त हुआ ।

११८४-अंतराणुयोगाहारकी अपेक्षा निर्देश जो प्रकारक है--ओपनिर्देश और आवेस
 निर्देश । जनमेंसे ओपनिर्देशकी अपेक्षा अट्टाईस प्रकृतियोंकी विमर्शिताले जीवोंका कितना
 अन्तरकाळ है ? अन्तरकाळ नहीं है, क्योंकि २८ प्रकृतियोंकी विमर्शिताले जीव सर्वदा
 पाये जाते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक पचायोग्य कवन करना चाहिये ।
 इतनी विशेषता है कि अल्पपर्याप्तक मनुष्योंमें अट्टाईस प्रकृतियों की विमर्शिताले जीवोंका
 अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ परमोपम
 के असकृपावत्ते माग प्रमाण है । इसी प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिच्छादृष्टि
 जीवोंके करना चाहिये । वैकल्पिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें छम्बीस प्रकृतियोंकी विमर्शिताले
 जीवोंका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ
 चारह सुदूर्त है । सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिच्छात्वकी विमर्शिताले जीवोंका
 अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ
 चौबीस सुदूर्त है । आहारकक्षपयोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अट्टाईस
 प्रकृतियोंकी विमर्शिताले जीवोंका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तर काळ एक समय
 और उत्कृष्ट अन्तरकाळ सर्वद्वयत्व है । इसी प्रकार अकृपायी और पचाकृपावत्सव जीवोंके

एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । आहार० अट्टावीसं पय० विह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसाय-सुहुमसांपराय-जहाक्खादाणं, णवरि चउवीसपय० वत्तव्वं । आहारमिस्स० अट्टावीसपय० विहत्ति० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अतोमुहुत्तं । उवसमसम्मा० अट्टावीसपय० विह० के० ? जह० अतोमुहुत्तं । उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवं सम्मामि० । सासण० अट्टावीसपय० विह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । कम्मइय०-अणाहार० सम्मत्त-सम्मामि० विह० जह० एगसमओ, उक्क० आवलियाए असंखेअदि-भागो ।

एवं णाणाजीवेहि कालो समत्तो ।

उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । आहारककाययोगी जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसापरायिकसयत और यथाख्यातसयत जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका काल जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अट्टाईस प्रकृतियोंके स्थानमें चौबीस प्रकृतिया कहना चाहिये । आहारकमिश्र काययोगी जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त है । उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है । जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है । कर्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—ओषसे अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं यह तो स्पष्ट है । इसके अतिरिक्त सान्तर मार्गणाओंको छोडकर तथा अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसयत जीवोंको छोडकर शेष सब मार्गणाओंमें भी अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव सर्वदा हैं यह भी स्पष्ट है । पर सान्तर मार्गणाओं और उक्त स्थानोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका सर्वदा पाया जाना सभव नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यक्त्व आदि आठ मार्गणाए स्वयं सान्तर हैं, इन मार्गणाओंवाले जीव सर्वदा नहीं होते, तथा अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसयत जीव यद्यपि पाये तो सर्वदा जाते हैं पर इनका सर्वदा पाया जाना सयोगियों की अपेक्षासे जानना चाहिये और सयोगी

१=६५ भाषानुगमेण दुविहो णिदेसो, ओपेण भादेसेण य । त्तय ओपेण सम्भ-

निशेषार्थ—अट्टार्षस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये ओषधी अपेक्षा इनका अन्तर नहीं है । गतिमार्गणा से छेकर अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार जानना । पर जो आठ साम्बरमार्गणाए और अरुपायी यथाक्यातसंबत, अवगतवेष्टी, कर्म काययोगी तथा अनाहारक जीव हैं इनमें अन्तरकाळ पाया जाता है । साम्बर मार्गणाओंमें सम्यक्प्रकृति मनुष्य, सासादन, मित्र, आहारककाययोगी, आहारकमिभकाययोगी और पशमसम्बरदृष्टिबोका जो जपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ है वही यही अट्टार्षस प्रकृतियोंकी विमक्तिवाले जीवोंका जपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ जानना । वैकिकिफि मिभकाययोगियोंमें सप्तीस प्रकृतियोंकी विमक्तिवाले जीवोंका जपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ वही है जो वैकिकिफि मिभकाययोगियोंका जपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ है । केवल सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्मकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाळ चौबीस गुरुर्त है, इतनी विशेषता है । उपसमभेष्टीकी अपेक्षा उपसाम्बरमोह और यथाक्यातसपतोंका जपम्य अन्तरकाळ समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूरयक्त होता है इसी अपेक्षासे अरुपायी और यथाक्यातसपतोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विमक्तिवाले जीवोंका अन्तर आहारककाय योगियोंके समान रहा है । तथा अरुपाययोगियोंमें मिध्यात्म, सम्बरमिध्यात्म, सम्यक्प्रकृति आठ कपाय और दो वेष्टीकी विमक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाळ उपसमभेष्टीकी अपेक्षा जानना । उपसमभेष्टीका अन्तर ऊपर बतलाया ही है । तथा श्लेष प्रकृतियोंका अन्तर उपकमेष्टीकी अपेक्षासे जानना । उपकमेष्टीका जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना होता है । इसीप्रकार सूक्ष्मसांपर्यायिक जीवोंके कथन करना । इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपर्यायमें उपकमेष्टीवालोंके एक सूक्ष्म छोम रहता है अत इसका अन्तर उपकमेष्टीकी अपेक्षासे और श्लेष प्रकृतियोंका अन्तर उपसमभेष्टीकी अपेक्षासे रहना । कर्मजकाययोगी और अनाहारकोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्मकी विमक्तिवाले जीवोंका जो जपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अष्टगुरुर्त रहा है उसका मतलब यह है कि एक दो प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक प्रकृतिगुरुर्त काल तक मरकर विप्रगतिसे नहीं जाते हैं । वहां प्राभूत प्रकृति अमिप्रायासुसार उपसमसम्बरदृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाळ सात दिन रात न बतलाकर मासिक चौबीस दिन रात बतल बा है सो प्रकृतिमें प्राभूत प्रकृतिसे मूळ कयापपाहुत उसकी पूर्णि और अनाहारकप्रति इन सबका महान होता है । क्योंकि इसका अन्तर सुखसा अनाहारकप्रतिमें ही मिलता है ।

इसप्रकार अन्तरानुयोगादर समाप्त हुआ ।

११=९ भाषानुगमकी अपेक्षा निर्वेद्य दो प्रकारका है—ओष निर्वेद्य और आदेश निर्वेद्य

कसाय०-जहाक्खाद० वत्तव्वं । णवरि चउवीसपयाडिआलावो कायव्वो । अवगदवेद० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अट्टकसाय-दोवेद० विह० अंतर केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । सेसपय० विह० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा ।

§ १८५. सुहुमसांपराइय० दंसणतिय-एक्कारसक०-णवणोकसाय० विहँ० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । लोभसजलण० विहात्ति० अंतरं जह० एगसमओ उक्क० छम्मासा । उवसमसम्माइट्ठी० अट्ठावीसपय० विह० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० चउवीसमहोरत्ताणि । सत्तरादिंदियाणि त्ति किण्ण परूविज्जदे ? ण, पाहुडङ्गथाभिप्पाएण उवसमसम्माइट्ठीणं सत्तरादिंदियंतरणियमाभावादो । कम्मइय०-अणाहार० सम्मत-सम्मामि० विह० अंतरं जह० एगसमओ, उक्क० अंतो-मुहुत्तं । सव्वत्थ अविहत्तियाणं कालंतरपरूवणा जाणिय कायव्वा, सुगमत्तादो ।

एवमतरं समत्तं

कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्थानमें चौबीस प्रकृतियोंका कथन करना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय और दो वेदकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एकसमय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । तथा शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले अपगतवेदी जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है ।

§ १८५. सूक्ष्मसापरायिक सयत जीवोंमें तीन दर्शनमोहनीय, ग्यारह कषाय और नौ नोकषायकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है ।

शंका—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले उपशमसम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल सात दिन रात क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कसायपाहुड ग्रन्थके अभिप्रायानुसार उपशमसम्यग्दृष्टियोंका अन्तरकाल सात दिन रात होनेका नियम नहीं है ।

कर्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । समी मार्गणाओंमें अविभक्तिवाले जीवोंके काल और अन्तरका कथन जानकर करना चाहिये, क्योंकि उसका कथन सुगम है ।

कम्मइय०-व्ययुस । प्यवरि अणुसपवेदे अट्ठणोक्कसाय-चदुसज्जणाणं अबिहत्थिया गत्थि । आहारि-अभाहारीण मवसिद्धियाण च ओषममो ।

११८८ आदेसेब गिरयगईए जेरईपसु सम्बत्तोवा सम्मत्त-सम्मामिच्छचारं विहत्थिया अबिहत्थिया असखेज्जगुमा । मिच्छत्त-अमताणु० चटक्कञ्च सम्बत्तोवा अबिहत्थिया, विहत्थिया असखेज्जगुणा । एव पढमपुड्ढि-पंषिदियतिरिक्कत्त-पंषिदियतिरिक्कत्तपत्तत्त-देव सोहम्मादि आब सहस्सारेत्ति वत्तप्प । विदियादि आब सत्तमि ति सम्बत्तोवा अमताणुबिचत्तत्त० अबिहत्थिया, विहत्थिया-[अ]सखेज्जगुमा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण

नोकवाय और चार सम्बन्धनोंकी अभिमन्त्रिवाले जीव नहीं हैं । आहारक, अनाहारक और मध्य जीवोंके अल्पबहुत्वका भग जोषके समान है ।

विशेषार्थ—बारहवें गुणस्वानसे लेकर चौदहवें गुणस्वान तकके जीव तथा सिद्ध जीव ऐसे हैं जिनके मोहनीय कर्मकी सत्ता नहीं पाई जाती । किन्तु छेब गवारहवें गुणस्वान तकके जीवोंके मोहनीय कर्मकी सत्ता है । इसलिये प्रकृतमें मोहनीयकी छप्पीस प्रकृतियोंकी अभिमन्त्रिवालोंसे कहींकी विमन्त्रिवाले जीव अनन्तरगुणे वतछाने हैं । सम्पत्त्व और सम्बन्धिमिच्छात्वके सम्बन्धमें विशेष वक्तव्य होनेसे उनकी अपेक्षा अल्पबहुत्व अलगसे कहा है । उसमें मी सम्बन्ध और सम्बन्धिमिच्छात्वकी सत्ता सब जीवोंके नहीं पाई जाती किन्तु जो षपत्तम सम्बन्धगुण है, या जिन्होंने वेदक सम्पत्त्वको प्राप्त कर लिया है, या जिन्होंने इन दो प्रकृतियोंकी रूपया व्यवसाय बरेछना नहीं की है कहींके इन दो प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है रोष सब संसारी जीवोंके और मृच्छ जीवोंके इनकी सत्ता नहीं पाई जाती, इसलिये इन दो प्रकृतियोंकी विमन्त्रिवालोंसे अभिमन्त्रिवाले जीव अनन्तरगुणे हैं । इन सब प्रकृतियोंकी विमन्त्रिवाले कौन जीव हैं और अभिमन्त्रिवाले कौन जीव हैं इसका निर्वेद मूळमें किया ही है ।

११८८ आदेसनिर्देशकी अपेक्षा मरक गतिमें मरकियोंमें सम्पत्त्वप्रकृति और सम्बन्धिमिच्छात्वकी विमन्त्रिवाले जीव सबसे बोलें हैं । इन दो प्रकृतियोंकी अभिमन्त्रिवाले जीव असम्पाठ गुणे हैं । मिच्छात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अभिमन्त्रिवाले जीव सबसे बोलें हैं । इनकी विमन्त्रिवाले जीव असम्पाठगुणे हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवी पथेन्द्रिय तिर्यच पथेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, सामान्यदेव और सौवर्म अर्गसे लेकर सहस्सार सर्ग तकके देवोंके कहा जाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक मरकमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अभिमन्त्रिवाले जीव सबसे बोलें हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमन्त्रिवाले जीव अर्धम्पाठगुणे हैं । जिन मार्गवालोंमें जीवोंका प्रमाण असम्पाठ है उन सभी मार्गवालोंमें सम्पत्त्वप्रकृति और सम्बन्धिमिच्छात्वकी विमन्त्रि और अभिमन्त्रिवालोंका कर्म मरकियोंके समान करना चाहिये । आशय यह है कि असम्पाठ सम्पाठवाली मार्गवालोंमें सम्पत्त्व-

पयडीणं जे विहत्तिया तेसिं को भावो ? ओदइओ भावो । कुदो ? संतेसु वि अवसे-सभावेसु तेसु विवक्खाभावादो ।

एवं भावो समत्तो

१८७§ अप्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सत्था-णप्पावहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा, सव्वत्थोवा छव्वीसंपयडीण अविहत्तिया, विहत्तिया अणतगुणा । के ते ? उवसतकसायप्पहुडि जाव मिच्छादिट्ठि ति । सम्मत्त-सम्मामि-च्छत्ताण सव्वत्थोवा विहत्तिया । के ते ? अट्ठावीस-सत्तावीस-चउवीससंतकम्मिया तेवीस-वावीससंतकम्मिया च । अविहत्तिया अणंतगुणा । के ते ? छव्वीस-एक्कवीस संतकम्मियप्पहुडि जाव सिद्धा ति । एवं कायजोगि-ओरालिय०-ओरालिमिस्स०-

उनमे से ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंके कौन भाव है ? औदयिक भाव है, यद्यपि उनके अन्य भाव भी रहते हैं किन्तु यहा उनकी विवक्षा नहीं है ।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§१८७ अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा स्वस्थान अल्पवहुत्वको बतलाते हैं । वह इसप्रकार है-छव्वीस प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं ।

शंका-छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ?

समाधान-उपशान्तकपायसे लेकर मिथ्याऽपिट तकके जीव छव्वीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले होते हैं ।

सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ।

शंका-सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ?

समाधान-जिनके अट्ठाईस, सत्ताईस, चौवीस, तेईस और बाईस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है वे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव हैं ।

सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंसे इन दो प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं ?

शंका-जिनके सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्ति नहीं पाई जाती है वे जीव कौनसे हैं ?

समाधान-छव्वीस प्रकृतिवाले जीव और इक्कीस प्रकृतिवाले जीवोंसे लेकर सिद्ध जीवों तकके सब जीव उक्त दो प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले हैं ।

इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और नपुमरुवेदी जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि नपुसकवेदमें आठ

कम्माइय०-अवुस । पवरि अमुंसपवेदे अट्टणोकसाय-अइसअलपाणं अबिहत्तिया
अत्थि । आहारि-अणाहरीण भवसिद्धियाण च ओषमगो ।

११८८ आदेशेण पिरयगईय पेरईएसु सम्बत्थोवा सम्मच-सम्माभिच्छाणं विहत्तिया
अविहत्तिया असंखेजगुणा । मिच्छच-अणठाणु०-अठकाण सम्बत्थोवा अविहत्तिया,
विहत्तिया असंखेजगुणा । एवं पइमपुट्ठवि-अपिद्धियतिरिक्ख-अपिद्धियतिरिक्खपज्जच-इव
सोइम्मादि आब सहस्तारेत्थि चत्थव्य । विदियादि आब सत्थमि चि सम्बत्थोवा अणता
पुबधिअठक० अविहत्तिया, विहत्तिया-[अ] संखेजगुणा । सम्मच-सम्माभिच्छाण

नोकपाव और चार सम्बन्धनोंकी अभिमतिवाले जीव नहीं हैं । आहारक, अनाहारक और
मध्य जीवोंके अल्पबहुत्वका भग ओषके समान है ।

विशेषार्थ—आरहमें गुणस्वानसे लेकर चौदहवें गुणस्वान तकके जीव तथा सिद्ध जीव
देसे हैं जिनके मोहनीय कर्मकी सत्ता नहीं पाई जाती । किन्तु श्रेय ग्यारहवें गुणस्वान तकके
जीवोंके मोहनीय कर्मकी सत्ता है । इसछिये प्रकृतमें मोहनीयकी सम्प्रीस प्रकृतियोंकी अभि-
मतिवालोंसे कहींकी विमतिवाले जीव अनन्तरगुणे बतलाने हैं । सम्बन्ध और
सम्पृग्मिष्यात्वके सम्बन्धमें विशेष वक्तव्य होनेसे उनकी अपेक्षा अल्पबहुत्व लक्ष्णसे
कहा है । उसमें भी सम्पत्त्व और सम्पृग्मिष्यात्वकी सत्ता सब जीवोंके नहीं पाई जाती
किन्तु जो वपसम सम्पृग्गृह्णि हैं, या जिन्होंने बेटक सम्पत्त्वको प्राप्त कर लिया है, या
जिन्होंने इन दो प्रकृतियोंकी सृज्या अथवा लक्ष्णना नहीं की है कहींके इन दो प्रकृतियोंकी
सत्ता पाई जाती है श्रेय सब संसारी जीवोंके और कुछ जीवोंके इनकी सत्ता नहीं पाई जाती,
इसछिये इन दो प्रकृतियोंकी विमतिवालोंसे अभिमतिवाले जीव अनन्तरगुणे हैं । इन सब
प्रकृतियोंकी विमतिवाले कौन जीव हैं और अभिमतिवाले कौन जीव हैं इसका निर्देश
मूलमें किया ही है ।

११८८ आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमें सम्पृग्मकृति और सम्पृग्मिष्या
त्वकी विमतिवाले जीव सबसे बड़े हैं । इन दो प्रकृतियोंकी अभिमतिवाले जीव असम्पाठ
गुणे हैं । मिष्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अभिमतिवाले जीव सबसे छोटे हैं । इनकी
विमतिवाले जीव असम्पाठगुणे हैं । इसी प्रकार पृथ्वी पृथिवी पथेन्द्रिय तिर्यच पथेन्द्रिय
तिर्यच पर्वाण, सामान्यदेव और सौवर्मे स्वर्गसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके कहना
चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक मरकमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क-
की अभिमतिवाले जीव सबसे छोटे हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमतिवाले जीव अर्ध
क्याठगुण है । जिन मार्गप्राणोंमें जीवोंका प्रमाण असम्पाठ है उन सभी मार्गप्राणोंमें
सम्पृग्मकृति और सम्पृग्मिष्यात्वकी विमति और अभिमतिवालोंका कसन मरकियोंके
समान करना चाहिये । आशा यह है कि असम्पाठ सत्पावासी मार्गप्राणोंमें सम्पृग्-

असंखेजरासीसु सव्वत्थ णिरयभंगो । एव पंचिदियातिरिक्खजोणिणी०-भरण०-वाण०
जोदिसिय च्चि ।

११८६. तिरिक्खेसु मव्वत्थोपा मिच्छत्त अणताणुवधिअउक्काण अविहत्तिया, विहत्तिया
अणंतगुणा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तण विवरीय वत्तव्व । एवमेइदिय-वादर-
सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदिकाइय-णिगोद-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त मदि-सुदअण्णाण
असण्णिण च्चि वत्तव्वं । णवरि मिच्छत्त-अणताणु० अप्पावद्दुअ णत्थि; अविहत्तिया-
णमभावादो । पंचिदियातिरिक्खअपज्जत्त-मणुमअपज्जत्त०-तमअपज्जत्त०-पंचिदिय-
अपज्जत्त०-सव्वविगार्लिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-पुढवि-आउ-तेउ-वाउ० तेमि-वादर-सुहुम-
पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयमरीर-पज्जत्तापज्जत्त-वादरणिगोदपदिट्ठिद-पज्जत्ता-
प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । तथा सम्यक्प्रकृति
और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अमर्यातगुणे हैं । इसी प्रकार पचेन्द्रिय
तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके जानना चाहिये ।

११८६ तिर्यंचोमे मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव सबसे
थोड़े हैं । मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । यहा
सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तियोंका कथन इस उपर्युक्त
कथनसे विपरीत करना चाहिये । अर्थात् तिर्यंचोमे सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी
विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्ति-
वाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय वादर, एकेन्द्रिय सूक्ष्म तथा
वादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म
वनस्पतिकायिक तथा वादर और सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, निगोद
जीव, वादरनिगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव तथा वादर और सूक्ष्म निगोद जीवोंके
पर्याप्त और अपर्याप्त, मत्स्यहानी, श्रुताज्ञानी और असयत जीवोंके कथन करना चाहिये ।
इतनी विशेषता है कि इन एकेन्द्रियादि जीवोंमे मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी
अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है क्योंकि इनमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतु-
ष्ककी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक, ब्रह्म लब्ध्यपर्याप्तक, पचेन्द्रिय
लब्ध्यपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय पर्याप्तक, विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक, पृथिवी
कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इन चारोंके वादर और सूक्ष्म तथा
वादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके
पर्याप्त अपर्याप्त, वादरनिगोदप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंमें
सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनकी अवि-

पञ्चतपसु सम्बन्धोवा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तणं विहासिया, अविहासिमा असंखेअगुणा ।
 § १६० मणुसपन्नञ्च-मणुसिष्ठीसु सम्बन्धोवा अद्वादीसंपयवीणं अविह०, विह०
 संखेअगुणा । आणदादि ज्ञाव सम्बन्धेचि सम्बन्धोवा सत्तपयवीणं अविह०, विह०
 संखेअगुणा । वेउभिय०-वेउभियमिस्स०-तेउ०-पम्म० देवमनो । एव आणिदूण पेदम्भं
 ज्ञाव अणाहारएचि ।

§ १६१ परत्थाणप्पावहुगाणुगमेव दुविहो णिसेसो ओषेण आदेसेण य । तत्त ओषेण
 सम्बन्धोवा सम्मत्तस्स विहासिया, सम्मामिच्छत्तस्स विहासिया विसेसाहिया । केचियमेत्तो
 विसेसो ? बाबीसविहासिएणूणसत्ताबीसविहासियमेत्तो । लोहसंजलणस्स अविहासिया
 अणंतगुणा । को गुणगारो ? अमवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमसंखेअविभागो ।
 को पडि० ? सम्मामि० विहासि० पडिमागो । मापासद० अविहासिया विसेसा
 हिया । केचियमेत्तो विसेसो ? लोहसंजलणमेत्तो । माणसंजल० अविह० विसेसा० ।

मच्छिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १६० मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्गमि अद्वाइस प्रकृतिबोकी अविमच्छिवाले जीव
 सबसे बोले हैं । तथा इनकी विमच्छिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । जानत स्वर्गसे लेकर
 सर्वाभिसिद्धि तक मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंकी अविमच्छिवाले जीव सबसे बोले हैं ।
 तथा इनकी विमच्छिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । वैकल्पिककावयोगी, वैदिकविक्रमिअकाययोगी
 पीतलेखपावाले और पक्षलेखवाले जीवोंमें सामान्य देवोंके समान अल्पबहुत्व करना
 चाहिये । इसी प्रकार जानकर अनाहारक मार्गणा तक करना चाहिये ।

§ १६१ परस्थान अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्दोष दो प्रकारका है—ओषनिर्दोष
 और आदेशनिर्दोष । हममेंसे ओषनिर्दोषकी अपेक्षा सम्बद्धप्रकृतिबोकी विमच्छिवाले जीव सबसे
 बोले हैं । इनसे सम्बन्धितत्वकी विमच्छिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण
 क्या है ? सत्ताइस प्रकृतिबोकी विमच्छिवाले जीवोंके प्रमाणमेंसे बाईस प्रकृतियोंकी विम-
 छिवाले जीवोंका प्रमाण कम कर देनेपर जो प्रमाण छेप रहे वतना है । सम्बन्धित-
 त्वकी विमच्छिवाले जीवोंसे जोम सम्बन्धनकी अविमच्छिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । गुण
 फरका प्रमाण क्या है ? अमर्षोंसे अनन्तगुणा या सिद्धोंके असख्यातबे भागप्रमाण है ।
 प्रतिभागका प्रमाण क्या है ? सम्बन्धितत्वकी विमच्छिवाले जीवोंका कितना प्रमाण है
 वतना प्रतिभागका प्रमाण है । जोम सम्बन्धनकी अविमच्छिवाले जीवोंसे माबासम्बन्धनकी
 अविमच्छिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण क्या है ? ओष सम्बन्धनकी
 क्षणता करने वाले जीवोंका कितना प्रमाण है वतना विशेषका प्रमाण है । मापासम्ब-
 धनकी अविमच्छिवाले जीवोंसे मानसम्बन्धनकी अविमच्छिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
 विशेषका प्रमाण कितना है ? मापासम्बन्धनकी क्षणता करनेवाले जीवोंका कितना प्रमाण

असंखेज्जरासीसु सव्वत्थ णिरयभंगो । एव पंचिदियतिरिक्खज्जोणिणी०-भवण०-वाण० जोदिसिय त्ति ।

§१८६. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त अणताणुबंधि चउक्काणं अविहत्तिया, विहत्तिया अणंतगुणा । सम्मत्त-सम्भामिच्छत्ताण विवरीयं वत्तव्व । एवमेइंदिय-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदिकाइय-णिगोद-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-मदि-सुदअण्णाण असण्णि त्ति वत्तव्व । णवरि मिच्छत्त-अणंताणु० अप्पावहुअ णत्थि; अविहत्तिया-णमभावादो । पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्त-मणुमअपज्ज०-तसअपज्ज०-पंचिदिय-अपज्ज०-सव्वविगालिंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-पुढवि-आउ-तेउ-वाउ० तेसिं-वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-वादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-पज्जत्तापज्जत्त-वादरणिगोदपदिट्ठिद-पज्जत्ता-

प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणो हैं । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंके जानना चाहिये ।

§१८६ तिर्यचोंमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । यहा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्ति और अविभक्तिवालोंका कथन इस उपर्युक्त कथनसे विपरीत करना चाहिये । अर्थात् तिर्यचोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । तथा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय वादर, एकेन्द्रिय सूक्ष्म तथा वादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, वादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा वादर और सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, निगोद जीव, वादरनिगोद जीव, सूक्ष्म निगोद जीव तथा वादर और सूक्ष्म निगोद जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और असयत जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन एकेन्द्रियादि जीवोंमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है क्योंकि इनमें मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव नहीं हैं ।

पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तक, मनुष्य लब्धपर्याप्तक, ब्रह्म लब्धपर्याप्तक, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय पर्याप्तक, विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक, पृथिवी कायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा इन चारोंके वादर और सूक्ष्म तथा वादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त, वादरनिगोदप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर और इनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनकी अवि-

मागे हिंदे अ मागलख सो गुणगारो । मिच्छवस्स विहत्थिया विसेसाहिया । के० मत्तेण ?
 अठवीसविहत्थियमेत्तेण । अट्ठक० विह० विसेसा० । के० मत्तो ? तेवीस-वावीस
 इगवीसविहत्थियमेत्तो । णवुंस० विह० विसेसा । के० मत्तो ? तेरसविहत्थियमेत्तो ।
 इरियवेद० विह० विसे० । के० मत्तो ? बारसविहत्थियमेत्तो । छण्णोक्खयाय विह०
 विसे० । के० मत्तो ? एद्धरसविहत्थियमेत्तो । पुरिस० विह० विसे० । के० मत्तो ?
 पंचविहत्थियमेत्तो । कोपसंअल० विह० विसेसा० । के० मत्तो ? चत्तारिविहत्थिय
 मेत्तो । माजसअ० विह० विसे । क० मत्तो ? तिण्णिविहत्थियमेत्तो । सअ० विह०
 विसे० । के० मत्तो ? दोहं विहत्थियमेत्तो । लोमसंअल० विह० विसे० । के० मत्तो ?
 एगविहत्थियमेत्तो । सम्मामि० अविह० विसेसा । के० मत्तो ? सम्मामिच्छवविहत्थिय-

आगे उतन्व गुणकारका प्रमाण है । अनन्तामुबन्धी अट्ठकवी विमत्तिवाळे जीबोंसे मिष्पा
 त्वाकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? चौबीस प्रकृति
 पोकी विमत्तिवाळे जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । मिष्पात्वाकी विमत्तिवाळे जीबोंसे
 आठ कपायोकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ?
 तेईस, चाईस और इक्कीस विमत्तिस्वामबाळे जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । आठ
 कपायोकी विमत्तिवाळे जीबोंसे नपुसकवेदकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक है ।
 विशेषका प्रमाण कितना है ? तेरह प्रकृतिबोकी विमत्तिवाळे जीबोंका जितना प्रमाण है
 उतना है । नपुसकवेदकी विमत्तिवाळे जीबोंसे बीवेदकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक
 है । विशेषका प्रमाण कितना है ? बारह प्रकृतिबोकी विमत्तिवाळे जीबोंका जितना प्रमाण
 है उतना है । बीवेदकी विमत्तिवाळे जीबोंसे छह नोकपायोकी विमत्तिवाळे जीव विशेष
 अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? ग्यारह प्रकृतियोंकी विमत्तिवाळे जीबोंका
 जितना प्रमाण है उतना है । छह नोकपायोकी विमत्तिवाळे जीबोंसे पुढपवेदकी विमत्तिवाळे
 जीव विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? पांच प्रकृतियोंकी विमत्तिवाळे
 जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । पुढपवेदकी विमत्तिवाळे जीबोंसे कोपसअलकी
 विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? बार प्रकृतियोंकी
 विमत्तिवाळे जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । कोपसअलकी विमत्तिवाळे जीबोंसे
 माजसअलकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? तीन
 प्रकृतियोंकी विमत्तिवाळे जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । माजसअलकी विमत्ति-
 वाळे जीबोंसे मावासंअलकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण
 कितना है ? दो प्रकृतियोंकी विमत्तिवाळे जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । मावा-
 सअलकी विमत्तिवाळे जीबोंसे लोमसंअलकी विमत्तिवाळे जीव विशेष अधिक है ।
 विशेषका प्रमाण कितना है ? एकविमत्तिस्वामबाळे जीबोंका जितना प्रमाण है उतना

के०मेत्तो वि० ? मायासंजलणखवगमेत्तो । क्रोधसंज० अवि० विसेसा० । के०
 मेत्तो ? माणसंजलणखवगमेत्तो । पुरिस० अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? क्रोध-
 संजल० खवगमेत्तो । छण्णोक० अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? पुरिस० षवक-
 वंधकखवगमेत्तो । इत्थिवेद० अविह० विसे० । के० मेत्तो ? छण्णोकसायखवगमेत्तो ।
 णवुंम० अविह० विसे० । के० मेत्तो ? इत्थि०खवगमेत्तो । अट्टकसायाणं अविह०
 विसेसा० । के० मेतो ? तेरसविहत्तियमेत्तो । मिच्छत्तस्स अविह० विसेसा । के०
 मेत्तो ? तेवीस-वावीस-इगवीसविहत्तियमेत्तो । अणंताणु०चउक्क० अविह० विसेसा० ।
 के० मेत्तो ? चउवीसविहत्तियमेत्तो । तेसिं चैव विहत्तिया अणंतगुणा । को गुणगारो ?
 अणंताणुबंधि० अविहत्तियविरहिदसन्वजीवरासिम्हि अणंताणुबंधि० अविहत्तिएहि

है उतना विशेषका प्रमाण है । मानसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीवोंसे क्रोधसंज्वलनकी
 अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? मानसंज्वलनकी
 क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण है । क्रोधसंज्वलनकी
 अविभक्तिवाले जीवोंसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण
 कितना है ? क्रोधसंज्वलनकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण
 है । पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे छह नोकपायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक
 हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? पुरुषवेदके नवकवन्धकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका
 जितना प्रमाण है उतना विशेषका प्रमाण है । छह नोकपायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे
 स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ? विशेषका प्रमाण कितना है ? छह
 नोकपायोंकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है । स्त्रीवेदकी अविभक्ति-
 वाले जीवोंसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण
 कितना है ? स्त्रीवेदकी क्षपणा करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है । नपुंसक-
 वेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
 विशेषका प्रमाण कितना है ? तेरह प्रकृतियोंकी अविभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है
 उतना है । आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष
 अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले
 जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है । मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे अनन्तानुबन्धी
 चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? चौबीस
 प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी
 अविभक्तिवाले जीवोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । गुण-
 कारका प्रमाण कितना है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवालोंसे रहित सर्व जीव
 राशिमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाली जीवराशिका भाग देनेपर जो लब्ध

माने हिंदे अ मामलद्व सो गुणगारो । मिच्छत्स विहृत्तिया विसेसाहिया । के० मेत्तेण ?
 षठ्ठीसविहृत्तियमेत्तेण । अष्टक० विह० विसेसा० । के०मेत्तो ? तेवीस-बाबीस
 श्गर्षीसविहृत्तियमेत्तो । ऋषुस० विह० विसेसा । के० मेत्तो ? तेरसविहृत्तियमेत्तो ।
 हरिषवेद० विह० विसे० । के० मेत्तो ? बारसविहृत्तियमेत्तो । झण्योऊसाय विह०
 विसे० । के० मेत्तो ? एकारसविहृत्तियमेत्तो । पुरिस० विह० विसे० । के० मेत्तो ?
 पंचविहृत्तियमेत्तो । कोचसंखल० विह० विसेसा० । के० मेत्तो ? चत्तारिबिहृत्तिय
 मेत्तो । माणसख० विह० विसे । के० मेत्तो ? तिष्णिबिहृत्तियमेत्तो । सज० विह०
 विसे० । के० मेत्तो ? दोण्ड विहृत्तियमेत्तो । छोमसंखल० विह० विसे० । के० मेत्तो ?
 एगबिहृत्तियमेत्तो । सम्मामि० अविह० विसेसा० । के० मेत्तो ? सम्मामिच्छत्सविहृत्तिय-

आवे छतना गुणकारक प्रमाण है । अनन्तातुषष्ठी चतुष्क्री विभक्तिवाले जीबोंसे सिध्या-
 त्वकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ? चौबीस प्रकृति
 पोंकी विभक्तिवाले जीबोंका जितना प्रमाण है छतना है । सिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीबोंसे
 आठ क्वापोंकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ?
 तेईस, बार्स और श्क्रीस विभक्तिप्रमाणवाले जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । आठ
 क्वापोंकी विभक्तिवाले जीबोंसे न्युसकवेदकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं ।
 विशेषक प्रमाण कितना है ? तेरह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीबोंका जितना प्रमाण है
 छतना है । न्युसकवेदकी विभक्तिवाले जीबोंसे कीवेदकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक
 हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ? बारह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीबोंका जितना प्रमाण
 है छतना है । कीवेदकी विभक्तिवाले जीबोंसे ब्रह्म नोकपावोंकी विभक्तिवाले जीब विशेष
 अधिक हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ? स्यारह प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीबोंका
 जितना प्रमाण है उतना है । ब्रह्म नोकपावोंकी विभक्तिवाले जीबोंसे पुण्यवेदकी विभक्तिवाले
 जीब विशेष अधिक हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ? पांच प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले
 जीबोंका जितना प्रमाण है उतना है । पुण्यवेदकी विभक्तिवाले जीबोंसे क्रोचसंखलनकी
 विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ? चार प्रकृतियोंकी
 विभक्तिवाले जीबोंका जितना प्रमाण है छतना है । क्रोचसंखलनकी विभक्तिवाले जीबोंस
 मानसखलनकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं । विशेषक प्रमाण कितना है ? तीन
 प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीबोंका जितना प्रमाण है छतना है । मानसखलनकी विभक्ति-
 वाले जीबोंसे माण्यसंखलनकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं । विशेषक प्रमाण
 कितना है ? दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीबोंका जितना प्रमाण है छतना है । माण्य
 संखलनकी विभक्तिवाले जीबोंसे छेमसंखलनकी विभक्तिवाले जीब विशेष अधिक हैं ।
 विशेषक प्रमाण कितना है ? एकविभक्तिप्रमाणवाले जीबोंका जितना प्रमाण है छतना

विरहिदलोभसंजल० अविहत्तियमेत्तो । सम्मत्तस्स अविहत्तिया विसेसाहिया । के० मेत्तो ? वावीसविहत्तिएहि ऊणसत्तावीसविहत्तियमेत्तो ।

§ १६२. आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरईएसु सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स अविहत्तिया । के ते ? इगिवीस-वावीससंतकम्मिया । अणंताणु० चउक्क० अविहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? चउवीस-संतकम्मियग्गहणादो । सम्मत्तस्स विहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुण० । आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? वावीस-चउवीसविहत्तियसहिद-अट्टावीससंतकम्मिय-ग्गहणादो । सम्मामि० विह० विसे० । के० मेत्तो ? वावीसविहत्तिएहिं परिहीण-

हैं । लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? लोभसज्वलनकी अविभक्तिवालोंके प्रमाणमेंसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवालोंके प्रमाणको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना है । सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंके प्रमाणमें से बाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण कम कर देनेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना है ।

§ १६२. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव सबसे थोड़े हैं ।

शंका—नारकियोंमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ।

समाधान—इक्कीस और बाईस प्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकी जीव मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले हैं ।

मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकियोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकी असख्यातगुणे हैं । गुणकारका प्रमाण क्या है ? गुणकारका प्रमाण आवलीका असख्यातवा भाग है । इतने गुणित होनेका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले नारकियोंका ग्रहण किया गया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकी जीव असख्यातगुणे हैं । गुणकारका प्रमाण क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग है । इतने गुणित होनेका कारण यह है कि यहां बाईस और चौबीसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके साथ अट्टाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकी जीवोंका ग्रहण किया है । सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणोंमेंसे बाईसप्रकृतिक विभक्तिवाले नारकियोंका प्रमाण घटा देने

सचावीससतकम्मियमेत्तो । सम्मामिच्छत्त-अविहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुभगारो ?
 सम्मामि० विहत्तिण्हिं किंयुणणेरइयवित्त्वमसुयीए ओवड्ढिदाए अं मागल्लइ तथिय
 मेत्तसेवीओ गुणगारो । कुदो ? छम्वीसविहत्तियाअ पाहण्णेण गहणादो । सम्मत्त
 अविह० विसे० । के० मेत्तो ? चावीसविहत्तियुणसचावीससतकम्मियमेत्तो । अयंताओ
 चत्तक० विह० विसेसा० । के० मेत्तो ? एक्खवीसविहत्तिण्हिं युणअहावीसविहत्तिय
 मेत्तो । मिच्छत्त० विह० विसेसा० । केत्ति० ? चत्तवीसविहत्तियमेत्तो । धारसक०-णव
 जोक्कसायविह० विसेसा० । के० मेत्तेण ? चावीस-इगधीसविहत्तियमेत्तेण । एवं पढमपुढवी
 पाणिदियतिरिक्ख-पणि०तिरिक्खपण्णअच-देव-सोहम्मीसाअ आव सहस्सार-वेत्तम्विय०
 वेत्तम्वियमिस्स०-सेत्त०-पम्म० पत्तम्म ।

पर जो प्रमाण होय रहे ततना बिशेषका प्रमाण है । सम्मग्निध्यात्वकी विमल्लिवाळे
 नारकियोसे सम्मग्निध्यात्वकी अविमल्लिवाळे नारकी जीव असक्यातगुणे हैं । गुणकारका
 प्रमाण क्या है ? सम्मग्निध्यात्वकी विमल्लिवाळे नारकियोके प्रमाणसे नारकियोकी कुछ
 कम विच्छन्मसुयीके मादित कर देनेपर जो माग छम्म आवे ततमी अगमूणिया प्रकृतमें
 गुणकारका प्रमाण है । इसका कारण यह है कि सम्मग्निध्यात्वकी अविमल्लिवाळे नारकियो-
 में छम्वीसप्रकृतिक विमल्लिस्थानवाळे नारकियोका प्रमाणरूपसे मह्य किबा है । सम्मग्नि
 ध्यात्वकी अविमल्लिवाळे नारकियोसे सम्मकूपकृतिकी अविमल्लिवाळे नारकी जीव बिशेष
 अधिक हैं । बिशेषका प्रमाण कितना है ? सचाईस प्रकृतिक विमल्लिस्थानवाळे नारकियोके
 प्रमाणमेंसे चाईसप्रकृतिक विमल्लिस्थानवाळे नारकियोके प्रमाणमेंसे घटा देनेपर जो छेप
 रहे ततना बिशेषका प्रमाण है । सम्मकूपकृतिकी अविमल्लिवाळे नारकियोसे अनन्तानुबन्धी
 चतुष्ककी विमल्लिवाळे नारकी जीव बिशेष अधिक हैं । बिशेषका प्रमाण कितना है ?
 अहाईस प्रकृतिक विमल्लिस्थानवाळे नारकियोके प्रमाणमेंसे इक्कीसप्रकृतिक विमल्लिवा-
 लवाळे नारकियोका प्रमाण घटा देनेपर जो छेप रहे ततना बिशेषका प्रमाण है ।
 अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमल्लिवाळे नारकियोसे मिध्यात्वकी विमल्लिवाळे नारकी जीव
 बिशेष अधिक हैं । बिशेषका प्रमाण कितना है ? चावीसप्रकृतिक विमल्लिस्थानवाळे
 नारकियोका कितना प्रमाण है ततना है । मिध्यात्वकी विमल्लिवाळे नारकियोसे बारह
 कयाय और नौ नोक्कपावोकी विमल्लिवाळे नारकी जीव बिशेष अधिक हैं । बिशेषका
 प्रमाण कितना है ? चाईस और इक्कीसप्रकृतिक विमल्लिस्थानवाळे नारकियोका कितना
 प्रमाण है ततना है । इसी प्रकार पहरी प्रुबिबीके नारकी, पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय
 तिर्यच पर्याप्त सामान्यदेव सौधर्म और एशान स्वर्गस छकर सहकार स्वर्ग तकके इव,
 वैदिकिक्रमप्रयोगी वैदिकिकमिस्रप्रयोगी पीतलेइवावाळे और पद्यलेइवावाळे बीबोके
 कहना चाहिये ।

विरहिदलोभसंजल० अविहत्तियमेत्तो । सम्मत्तस्स अविहत्तिया विसेसाहिया । के० मेत्तो ? वावीसविहत्तिएहि ऊणसत्तावीसविहत्तियमेत्तो ।

§ १६२. आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगईए गेरईएसु सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स अविहत्तिया । के ते ? इग्वीस-वावीससंतकम्मिया । अणंताणु० चउक० अविहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? चउवीस-संतकम्मियग्गहणादो । सम्मत्तस्स विहत्तिया असंखेज्जगुणा । को गुण० । आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? वावीस-चउवीसविहत्तियसहिद-अट्ठावीससंतकम्मिय-ग्गहणादो । सम्मामि० विह० विसे० । के० मेत्तो ? वावीसविहत्तिएहिं परिहीण-

है । लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? लोभसज्वलनकी अविभक्तिवालोंके प्रमाणमेंसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवालोंके प्रमाणको घटा देनेपर जो शेष रहे उतना है । सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंके प्रमाणमें से बाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण कम कर देनेपर जो प्रमाण शेष रहे उतना है ।

§ १६२. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव सबसे थोड़े हैं ।

शुंका—नारकियोंमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव कौनसे हैं ।

समाधान—इक्कीस और बाईस प्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकी जीव मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले हैं ।

मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकियोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकी असख्यातगुणे हैं । गुणकारका प्रमाण क्या है ? गुणकारका प्रमाण आवलीका असख्यातवा भाग है । इतने गुणित होनेका कारण यह है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले नारकियोंका ग्रहण किया गया है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकी जीव असख्यातगुणे हैं । गुणकारका प्रमाण क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग है । इतने गुणित होनेका कारण यह है कि यहा बाईस और चौबीसप्रकृतिक विभक्ति-स्थानवाले नारकियोंके साथ अट्ठाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकी जीवोंका ग्रहण किया है । सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकियोंसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । विशेषका प्रमाण कितना है ? सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणोंमेंसे बाईसप्रकृतिक विभक्तिवाले नारकियोंका प्रमाण घटा देने

सचावीससतकम्मियमेत्तो । सम्मामिच्छत्त-अविहत्तिया असंखेत्तगुणा । को गुणमारो ?
 सम्मामि० विहत्तिएहिं किंचूणणेरह्यविहत्तमसूचीए ओषट्ठियाए वं मागत्तुं तत्तिय
 मेत्तसेहीओ गुणमारो । कुदो ? छम्बीसविहत्तियाण पाहण्णेण गह्वादो । सम्मत्त
 अविहत्त वित्से० । के० मेत्तो ? चावीसविहत्तियुजसचावीससतकम्मियमेत्तो । अण्णताणु०
 चत्तक० विह० वित्सेत्ता० । के० मेत्तो ? एत्तवीसविहत्तिएहिं युणअट्ठावीसविहत्तिय
 मेत्तो । मिच्छत्त० विह० वित्सेत्ता० । केत्ति० ? चत्तवीसविहत्तियमेत्तो । धरसत्त०-यत्त
 जोकसायविह० वित्सेत्ता० । के० मेत्तम् ? चावीस-इग्गीसविहत्तियमेत्तेत्तम् । एवं पढमपुट्ठवी-
 पार्धित्तियत्तिरिक्ख-यत्ति०त्तिरिक्खपत्तज्ज-देव-सोहम्मीसाण जाव सहस्सार-वेत्तव्विय०
 वेत्तव्वियमित्त्स०-वेत्त०-यत्तम्० यत्तम् ।

पर जो प्रमाण छेप रहे ततना विज्ञेयका प्रमाण है । सम्पत्तिमिच्छात्वकी विमत्तिवाले
 नारकियोंसे सम्पत्तिमिच्छात्वकी अविमत्तिवाले नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं । गुणकारका
 प्रमाण क्या है ? सम्पत्तिमिच्छात्वकी विमत्तिवाले नारकियोंके प्रमाणसे नारकियोंकी कुल
 कर्म विच्छिन्नसूचीके माजित कर देनेपर जो माग सम्पत्त भावे उत्तमी जगत्सृष्टिवा प्रकृतने
 गुणकारका प्रमाण है । इसका कारण यह है कि सम्पत्तिमिच्छात्वकी अविमत्तिवाले नारकियों-
 में छम्बीसप्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले नारकियोंका प्रथमरूपसे प्राण किया है । सम्पत्ति
 म्च्छात्वकी अविमत्तिवाले नारकियोंसे सम्पत्तप्रकृतिकी अविमत्तिवाले नारकी जीव विशेष
 अधिक हैं । विशेष्यका प्रमाण कितना है ? सत्ताईस प्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले नारकियोंके
 प्रमाणसे सत्ताईसप्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणको घटा देनेपर जो छेप
 रहे ततना विज्ञेयका प्रमाण है । सम्पत्तप्रकृतिकी अविमत्तिवाले नारकियोंसे अनन्तानुबन्धी
 चतुष्ककी विमत्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । विशेष्यका प्रमाण कितना है ?
 अट्ठाईस प्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले नारकियोंके प्रमाणसे इक्कीसप्रकृतिक विमत्तिस्थान-
 वाले नारकियोंका प्रमाण घटा देनेपर जो छेप रहे ततना विज्ञेयका प्रमाण है ।
 अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमत्तिवाले नारकियोंसे मिच्छात्वकी विमत्तिवाले नारकी जीव
 विशेष अधिक हैं । विशेष्यका प्रमाण कितना है ? चावीसप्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले
 नारकियोंका जितना प्रमाण है ततना है । मिच्छात्वकी विमत्तिवाले नारकियोंसे चारह
 क्काव और नौ नोकचार्योंकी विमत्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । विशेष्यका
 प्रमाण कितना है ? सत्ताईस और इक्कीसप्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले नारकियोंका जितना
 प्रमाण है ततना है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी पञ्चिन्द्रिय तिर्यक् पञ्चिन्द्रिय
 तिर्यक् पर्याप्त सामान्यदेव सौधर्म और एतान स्वर्गसे छेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव
 वैक्रिबिक्रमयोगी, वैक्रिबिक्रमिब्रह्मपयोगी, पीतलेशवावाळ और पद्मलेशवावाळे जीवोंके
 कहना चाहिये ।

§ १६३. विदियादि जाव सत्तमीए सव्वत्थोवा अणंताणु० चउक्क० अविह० । सम्मच० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसेमा० । तस्सेव अविह० असंखे० गुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विहत्ति० विसेसा० । वावीसं-पयडीणं विह० विसेसा० । एवं पंचिदियतिरिक्खजोणिणी-भवण-वाण०-जोदिसि० वत्तव्वं ।

§ १६४. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त० अविह० । अणंताणु० चउक्क० अविह० असंखेज्ज-गुणा । सम्मत्तविह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंत-गुणा । सम्मत्तविह० विसे० । अणंताणुवंधीचउक्कविह० विसेसा० । मिच्छत्तविह० विसेसा० । बारसक०-णवणोकसाय० वि० विसे० । एवमसंजद०-क्किण-णील-काउ-ल्लेस्सा० । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा सम्मत्त० विहत्तिया । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । मिच्छत्त-सोल-

§ १६३ दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकी जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकी जीव असख्यात-गुणे हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच योनीमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

§ १६४. तिर्यंचोमं मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिध्यात्वकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार असंयत, कृष्णलेइयावाले, नील-लेइयावाले और कपोतलेइयावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोमं सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष

सक०-शबण्योकसाय० विह० विसे० । एव मधुसम्पन्न०-सम्बविगलिदिय-पश्चि-
दियसम्पन्न०-तसम्पन्न०-चत्वारिकाय-भाद्र-सुद्रुम-पञ्चतापञ्चच-भाद्रवजपुत्रदिपते
यसरिर० पञ्चतापञ्चच भाद्रजिमोदपदिद्विद तमि पञ्चतापञ्चच विमंगणाभीषं
वचष्व ।

§ १६५ मधुसर्गण मधुसेसु सव्यत्योना लोमसंवल० अविहचिया । के ते ! स्त्रीण
कसायप्यद्वि चाव अयोगिकेवलि वि । मापासंवल० अविह० बिसे० । माणसवल० अविह०
बिसे० । कोषसंवल० अविह बिसे० । पुरिसव्यविह बिसे । कृष्णोक्तसाय-अविह० बिसे ।
इरिय अविह विसे० । बधुस० अविह० बिसे० । अङ्क० अविह० बिसे० । मिच्छच०
अविह० सखे० गुणा । अर्जंतापु० चतक० अविह० सखे० गुणा । सम्मच० विह० असखे०-
गुणा । सम्मामि० विह० बिसेता० । तस्सेव अविह० असखे०-गुणा । सम्मच० अविह बिसे ।

अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्व सोझ कपाय और नौ नोकपावोंकी विमक्तिवाले जीव
विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार छम्पपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकल्पेन्द्रिय पचेन्द्रिय छम्प-
पर्याप्तक, त्रस छम्पपर्याप्तक, पृथिवीकायिक आदि चार स्वाधरक्षय तथा उनके बादर
और सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक
शरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर निगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त
और अपर्याप्त तथा विमंग्यानी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १६६. मनुष्यगतिमें मनुष्यमें लोमसम्बन्धनकी अविमक्तिवाले जीव सबसे बड़े हैं ।
लुंका-लोमसम्बन्धनकी अविमक्तिवाले मनुष्य कौनसे हैं ?

समाधान-क्षीणकपाय गुणस्वामसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्वान तकके जीव
लोमसम्बन्धनकी अविमक्तिवाले हैं ।

लोमसम्बन्धनकी अविमक्तिवाले मनुष्योंसे मायासम्बन्धनकी अविमक्तिवाले मनुष्य
विशेष अधिक हैं । इनमें मानसम्बन्धनकी अविमक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे
क्रोधासम्बन्धनकी अविमक्तिवाले मनुष्य विशय अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविमक्ति-
वाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे छद्म नोकपावोंकी अविमक्तिवाले मनुष्य विशेष
अधिक हैं । इनसे लीवेदकी अविमक्तिवाले मनुष्य विशय अधिक हैं । इनसे नपुंसक-
वेदकी अविमक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे जाठ कपावोंकी अविमक्तिवाले
मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविमक्तिवाले मनुष्य सक्यातगुण हैं ।
इनसे अनन्त्यानुबन्धी वस्तुकी अविमक्तिवाले मनुष्य सक्यातगुण हैं । इनसे सम्पद्
प्रकृतिकी विमक्तिवाले मनुष्य असक्यातगुण हैं । इनसे सम्पत्तिप्राप्तकी विमक्तिवाले
मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे सम्पत्तिप्राप्तकी अविमक्तिवाले मनुष्य असक्यातगुण
हैं । इनसे सम्पत्प्रकृतिकी अविमक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्त्यानुबन्धी

§ १६३. विद्यादि जाव सत्तमीए सव्वत्थोवा अणंताणु० चउक्क० अविह० । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० असंखे० गुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विहत्ति० विसेसा० । वावीसं-पयडीणं विह० विसेसा० । एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-भवण-वाण०-जोदिसि० वत्तवं ।

§ १६४. तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त० अविह० । अणंताणु० चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्तविह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । सम्मत्तविह० विसे० । अणंताणुबंधीचउक्कविह० विसेसा० । मिच्छत्तविह० विसेसा० । बारसक०-णवणोकसाय० वि० विसे० । एवमसंजद०-क्किण-णील-काउ-लेस्सा० । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा सम्मत्त० विहत्तिया । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । मिच्छत्त-सोल-

§ १६३ दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले नारकी जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले नारकी जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले नारकी जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले नारकी जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच योनीमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

§ १६४. तिर्यंचोमें मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिध्यात्वकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले तिर्यंच जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले और कपोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमें सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष

मिच्छत्० विह० विसे० । अहक० विह० विसे० । णवुंस० विह० विसे० । इत्थि० विह० विसे० । सचणोक० विह० विसे० । कोषसञ्चल० विह० विसे० । माणसञ्चल० विह० विसे० । मायासञ्चल० विह० विसे० । छोमसञ्चल० विह० विसे० ।

५१६६ आम्बद पाम्बदप्पुडि जाव उवरिमगवज्ज चि सम्बत्तोवा मिच्छत्० अविह० । सम्मामिच्छत्० अविह० विसेसा । सम्मत्त० अविह० विसेसा० । अर्षतापु० चतक अविह० संखेज्जगुणा । तस्सेव विह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० विसे० । सम्मामि० विह० विसेसा० । मिच्छत्० विह० विसेसा० । बारसक० णवणोक० विह० विसे० । अणुरिसादि जाव सम्बदे चि सम्बत्तोवा सम्मत्त० अविह० । मिच्छत्त० सम्मामि० अविह० विसे । अणतापु चतक० अविह० संखेज्जगुणा । तस्सेव विह० संखेज्जगुणा । मिच्छत्त० सम्मामि० विह० विसेसा । सम्मत्त० विह० विसेसादिया । बारसक० णवणोक विह० विसे० ।

जीव विसेप अधिक हैं । इनसे आठ कपायोंकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुसकवेदकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सात नोकपायोंकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे श्रेय संख्यजनकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसख्यजनकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मायासख्यजनकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छोमसख्यजनकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

४१२६ आनत और प्रावत सगसे छेकर उपरिम पैयिक तक मिप्यात्वकी अविमक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्ममिप्यात्वकी अविमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्मकूपकृतिकी अविमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविमक्तिवाले जीव सख्यावरुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमक्तिवाले जीव सख्यावरुणे हैं । इनसे सम्मकूपकृतिकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्ममिप्यात्वकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिप्यात्वकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कपाव और नौ नोकपायोंकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

अणुविहसे छेकर सर्वावैसिद्धि तक सम्मकूपकृतिकी अविमक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिप्यात्व और सम्ममिप्यात्वकी अविमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविमक्तिवाले जीव सख्यावरुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विमक्तिवाले जीव सख्यावरुणे हैं । इनसे मिप्यात्व और सम्ममिप्यात्वकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्मकूपकृतिकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कपाव और नौ नोकपायोंकी विमक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

अणंताणुचउक्क० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्टक० विह० विसे० ।
णवुंस० विह० विसे० । इत्थि० विहात्ते० विसे० । छण्णोकसायविह० विसे० । पुरिस० विह०
विसे० । कोधसंजल० विह० विसे० । माणसंजल० विह० विसे० । मायासजल० विह०
विसे० । लोहसंजल० विह० विसे० । मणुसपज्जत्ताणमेवं चैव । णवरि, जम्हि असंखेज्ज-
गुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं । मणुसिणीसु सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० ।
मायासंज० अविह० विसे० । माणसंजल० अविह० विसेसाहिया । कोधसंजल० अविह०
विसे० । सत्तणोक० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस० अविह० विसे० ।
अट्टकसाय० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० संखेज्जगुणा । अणंताणु० चउक्क०
अविह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० संखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसेसा० । तस्सेव
अविह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विह० विसे० ।

चतुष्ककी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले मनुष्य
विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे
नपुसकवेदकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले मनुष्य
विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं ।
इनसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसज्वलनकी विभक्तिवाले
मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे
मायासज्वलनकी विभक्तिवाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसज्वलनकी विभक्ति-
वाले मनुष्य विशेष अधिक हैं । मनुष्य पर्याप्त जीवोंके इसी प्रकार कथन करना चाहिये ।
इतनी विशेषता है कि जहा असंख्यातगुणा है वहा संख्यातगुणा कहना चाहिये । मनुष्यनियों
में लोभसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासज्वलनकी अविभक्ति-
वाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
इनसे क्रोधसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सात नोकषायोंकी
अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष
अधिक हैं । इनसे नपुसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ
कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव
संख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।
इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी
विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव संख्यात-
गुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्ता-
नुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले

चतुः० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्टक० विह० विसेसा० । णवुस०
 विह० विसेसा० । इत्थि० विह० विसे० । छण्णोक्क० विह० विसे० । पुरिस० विह०
 विसे० । कोषसञ्चल विह० विसे० । माणसञ्चलस्य० विह० विसं० । मायासञ्चल० विह०
 विसेसा० । सोमसञ्चल० विह० विसे० । एषं पंचमण०-पंचवप्पि०-पंचसु०-सग्गि० पि
 वत्तम् ।

॥ १६६ ॥ काययोमीसु सम्बत्थोना लोमसञ्चल० अविह० । मायासञ्चल० अविह० विसे० ।
 मायसञ्चल० अविह० विसे० । कोषसञ्चल अविह० विसे० । पुरिस० अविह० विसे० ।
 छण्णोक्क० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुस० अविह० विसे० । अट्टक०
 अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० असंखेज्जगुणा । अणताणु० चतुः० अविह० अर्से-
 खेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव
 अविह० अणतगुणा । सम्मत्त० अविह० विसे० । अमताणु० चतुः० विह० विसं० ।

अधिक हैं । इनसे अमन्तानुबन्धी चतुष्पकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे
 मिच्छात्वकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे आठ कपायोकी विमट्टिवाले जीव
 विरोध अधिक हैं । इनसे मरुंसकपेदकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे स्त्रीवे
 दकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे छह नाकपायोकी विमट्टिवाले जीव विरोध
 अधिक हैं । इनसे पुठपवेदकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे कोषसञ्चलनकी
 विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे मानसञ्चलनकी विमट्टिवाले जीव विरोध
 अधिक हैं । इनसे मायासञ्चलनकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे सोम
 सञ्चलनकी विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी, पाँचों
 वचनयोगी, अणुवर्त्मनी और संखी जीवोंके कहना चाहिये ।

॥ १६६ ॥ काययोगी जीवोंमें सोमसञ्चलनकी अविमट्टिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे
 मायासञ्चलनकी अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे मानसञ्चलनकी अविमट्टि-
 वाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे कोषसञ्चलनकी अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक
 हैं । इनसे पुठपवेदकी अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे छह नाकपायोकी
 अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविमट्टिवाले जीव विरोध
 अधिक हैं । इनसे मरुंसकपेदकी अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे आठ
 कपायोकी अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे मिच्छात्वकी अविमट्टिवाले जीव
 असंख्यावगुणे हैं । इनसे अमन्तानुबन्धी चतुष्पकी अविमट्टिवाले जीव असंख्यावगुणे हैं ।
 इनसे सम्पकूपकृतिकी विमट्टिवाले जीव असंख्यावगुणे हैं । इनसे सम्पमिरवात्पकी
 विमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे सम्पगिमध्यात्वकी अविमट्टिवाले जीव अन-
 न्यगुणे हैं । इनसे सम्पकूपकृतिकी अविमट्टिवाले जीव विरोध अधिक हैं । इनसे अन-

§ १६७ इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सव्वत्थोवा सम्मत्तं विहं । सम्मामिं विहं-
विसें । तस्सेव अविहं अणंतगुणा । सम्मत्तं अविहं विसें । मिच्छत्त-सोलसक-णवणो-
कं विहं विसें । एवं वादर-सुहुम-एइंदिय-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि-णिगोद-
वादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-मदि-सुदअण्णाण-मिच्छाइट्ठि-असण्णि चि वत्तव्वं ।

§ १६८. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्तं सव्वत्थोवा लोभसजलं अविहं ।
मायासंजलं अविहं विसें । माणसंजं अविहं विसें । क्रोधसंजलं अविहं
विसें । पुरिसं अविहं विसें । छण्णोकसायं अविहं विसें । इत्थिं अविहं
विसें । णवुस अविहं विसें । अट्ठकं अविहं विसें । मिच्छत्तं अविं असंखेज्जगुणा ।
अणंताणुं चउक्कं अविहं असंखेज्जगुणा । सम्मत्तं विहं असंखेज्जगुणा । सम्मामिं
विहं विसें । तस्सेव अविहं असंखेज्जगुणा । सम्मत्तं अविहं विसें । अणंताणुं

§ १६७. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव सबसे
थोड़े हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मि-
थ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव
विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव
विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार वादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा इनके पर्याप्त
और अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, वादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक,
वादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, वादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक
पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, वादर निगोद, सूक्ष्म निगोद, वादर निगोद पर्याप्त,
वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी,
मिथ्यादृष्टि और असह्य जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १६८. पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अवि-
भक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे माया संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष
अधिक हैं । इनसे मान संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोध-
संज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव
विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्री-
वेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव
विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे
मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवि-
भक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं ।
इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी
अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष

सम्मामि० अविहृत्तिया । अर्णतापु० चठक० अवि० संखेज्वगुणा । तस्सेव विह० संखेज्व
गुणा । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विह० विसेमा० । धारसक०-अपणोकसाय० विह०
विसे० ।

३२०१ वेदाणुवादेण इत्थि सम्भृतयोना णपुस० अविह० । अठक० अविह० संखे
ज्वगुणा । कुदो ? धारसविहृत्तिएहिंते तेरसविहृत्तियाणमद्दापडिमागण संखेज्वगुणत्त-
सिद्धीए पडिबचामाबादो । ण च ओपमणुस्सगईयादिसु वि एमो पसगो आसक
पिओ; तस्य सिद्धसजोगीणं पसुहभावेणाद्दापडिमागत्स पदाणचामाबादो । एतो

मुपग्धी चतुष्ककी अविमत्तिवाले जीव मरुत्तातगुणे हैं । इमसे अनन्तालुवग्धी चतुष्ककी
विमत्तिवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनस मिच्छ्यात्व सम्भ्रूयकृति और सम्भ्रगिमिच्छ्यात्वकी
विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी विमत्ति-
वाले जीव विशेष अधिक हैं ।

विशेषार्थ—बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अविमत्तिवाले औदारिकमिभ्रकाय
बोगी जीव वे हैं जो कपाट और प्रतर समुद्रास अवस्थाको प्राप्त हैं । इसलिये ये सबसे
थोड़े बतझबे हैं । तथा मिच्छ्यात्वकी अविमत्तिवाले औदारिक मिभ्रकायोगियोंमें, जो द्वायिक
सम्भ्रगृष्टि देव और नारकी मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं वे, और जो द्वायिकसम्भ्रगृष्टि
या कृतकृत्यवेदकसम्भ्रगृष्टि मनुष्य मर कर मनुष्यों और तिर्यकोंमें उत्पन्न होते हैं वे श्रिये
गये हैं, इसलिये ये पूर्वोक्त जीवोंसे संख्यातगुणे बतझबे हैं । इसी प्रकार आगाका अल्पबहुत्व
मी घटित कर छेना चाहिये । किन्तु कर्मजकाययोगियोंमें जो मिच्छ्यात्वकी अविमत्ति-
वालोंसे अनन्तालुवग्धी चतुष्ककी अविमत्तिवाले जीव असख्यातगुणे बतझबे हैं सो
इसका कारण यह है कि यहाँ चारों गतिथोके कामणकाययोग अवस्थामें स्थित अनन्तालु
वग्धीके विसयोजक जीव श्रिये गये हैं । अतः इनके अमरक्यातगुणे होनेमें कोई आपत्ति
नहीं है ।

३२०० वेद मार्मणाके अनुवादसे श्रीवेदी जीवोंमें तर्पुमकवेदकी अविमत्तिवाले जीव
सबसे थोड़े हैं । इनस आठ कपायोंकी अविमत्तिवाले जीव मरुत्तातगुणे हैं । क्योंकि बारह
प्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले जीवोंसे तेरहप्रकृतिक विमत्तिस्थानवाले जीव अरुसम्भ्रग्धी
प्रतिमाससे संख्यातगुणे सिद्ध होते हैं । अतः मनुमकवेदकी अविमत्तिवाले जीवोंस आठ
कपायोंकी अविमत्तिवाले जीव मरुत्तातगुणे हैं एसा माननेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है । पर
इससे सामान्य प्ररूपजा और मनुष्य गति आदि मार्गजाओंमें भी यह प्रमग प्राप्त होता
है एसी आशङ्का नहीं करनी चाहिये क्योंकि यहाँ मामान्त्र प्ररूपजा और मनुष्य गति
आदिमार्गजाओंमें सिद्ध और मयोगी जीवोंका मुख्य रूपसे प्रहण किया गया है इसलिये
यहाँ अज्ञ सम्भ्रग्धी प्रतिमागकी प्रधानता नहीं है । यह अथ यनाममत्र अम्य मार्गजाओंमें

मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्टक० विह० विसे० । णवुस० विह० विसे० । इत्थि० विह० विसे० । छण्णोक० विह० विसे० । पुरिस० विह० विसे० । क्रोधसंजल० विह० विसे० । माणसंजल० विह० विसे० । मायासंजल० विह० विसेसा० । लोभसंजल० विह० विसे० । एवमोराखिय०-अचक्खु०-भवसिद्धि०-आहारएत्ति वत्तव्वं ।

§ २००. ओरालियमिस्स० मव्वत्थोवा वारसक०-णवणोक० अविह० । मिच्छत्त० अविह० संखेज्जगुणा । अणताणुचउक्क० अविह० संखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । सम्मत्त० अवि० विसे० । अणंताणु० चउक्क० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । वारमक०-णवणोक० विह० विसे० । एवं कम्मइय० । णवरि, मिच्छत्त अविहत्तियाणमुवरि अणंताणु० चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । आहार०-आहारमिस्स० सव्वत्थोवा मिच्छत्त-सम्मत्त-न्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कपायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे ब्रह्म नोकपायकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मायासज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसीप्रकार औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ २००. औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार कर्मणकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कर्मणकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीवोंसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनन्ता-

सम्मामि० अविहधिया । अणवाणु० चउक० अवि० संखेञ्जगुणा । तस्सव विह० संखेञ्ज-
गुणा । मिच्छत-सम्मघ-सम्मामि० विह० विससा० । धारमक०-यवजोक्साय० विह०
विसे० ।

३२ १ वेदाणुवादेण इति० सम्भयोवा णुधुम० अविह० । अट्टक० अविह० सखे
ञ्जगुणा । कुदो ? धारसविहधिएहिंतो तेरसविहधियाणमद्दापडिमाणेण सखेञ्जगुणत्त
सिद्धीए पडिबधामावादो । ण च ओधमणुस्सगईयादिसु वि एमो पसंगो आसक
विजो; एत्थ सिद्धसजोगीण पसुहमावेणाद्दापडिभागस्स पहाणधामावादो । एसो

जुधपी चतुष्कधी अविभक्तिवाले जीव सक्यातगुणे हैं । इससे अनन्तागुधन्वी चतुष्कधी
विभक्तिवाले जीव सक्यातगुणे हैं । इनस मिध्यात्व सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी
विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनमे बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी विभक्ति-
वाले जीव विशेष अधिक हैं ।

विशेषार्थ—बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अविभक्तिवाले औदारिकमिध्याय
बोगी जीव वे हैं जो कपाट और प्रतर समुदाह अवस्थाको प्राप्त हैं । इसस्थिमे ये सबसे
पोड़े बतसावे हैं । तथा मिध्यात्वकी अविभक्तिवाले औदारिक मिध्यायोगियोंमें, जो ज्ञानिक
सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं वे और जो द्वाबिकसम्यग्दृष्टि
या कृतदृश्यवेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर मनुष्यों और तिरबोंमें उत्पन्न होते हैं वे जिये
गये हैं, इसस्थिमे ये पूर्वोक्त जीवोंसे संख्यातगुणे बतसावे हैं । इसी प्रकार आगेका अस्पबहुत्व
भी पटित कर लेना चाहिये । किन्तु कर्मण्यकारयोगियोंमें जो मिध्यात्वकी अविभक्ति-
वालोंसे अनन्तालुधन्वी चतुष्कधी अविभक्तिवाले जीव असम्मानगुणे बतसावे हैं सो
इसका कारण यह है कि यहां चारों गतिबोंके कामण्यकारयोग अवस्थामें स्थित अनन्तालु
धन्वीके विसयोदक जीव जिये गये हैं । अतः इनके असम्मानगुणे होनेमें कोई आपत्ति
नहीं है ।

३२०० वेद मार्गणाके अनुवादेसे जीवपी जीवोंमें नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव
सबसे बोड़े हैं । इनस आठ कपायोंकी अविभक्तिवाले जीव सक्यातगुणे हैं । क्योंकि बारह
प्रकृतिक विभक्तिज्ञानवाले जीवोंसे तेरहप्रकृतिक विभक्तिज्ञानवाले जीव काष्ठसम्बन्धी
प्रतिभागसे सक्यातगुणे सिद्ध होते हैं । अतः नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे आठ
कपायोंकी अविभक्तिवाले जीव सक्यातगुणे हैं ऐसा माननेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है । पर
इससे सामान्य प्ररूपणा और मनुष्य गति आदि मार्गणाओंमें भी यह प्रसंग प्राप्त होता
है देसी जासका नहीं करनी चाहिये क्योंकि वहां सामान्य प्ररूपणा और मनुष्य गति
आदिमार्गणाओंमें सिद्ध और सयोगी जीवोंका मुख्य रूपसे ग्रहण किया गया है, इसलिये
वहां काष्ठ सम्बन्धी प्रतिभागकी प्रदानता नहीं है । यह अर्थ यथासमय अन्य मार्गणाओंमें

अविह० संखेजगुणा । सेसस्स ओषभंगो जाव पुरिस० विहत्तिओ ति । तदुवरि चत्तारि संज० विह० विसे० । एवं माण०, णवरि तिण्णिक० विह० विसे० । एवं माया०, णवरि दोण्णिक० विह० विसे० । एवं लोभ०, णवरि लोभ० विह० विसेसाहिया । अकसायीसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विहत्तिया । [अट्ठक०], णवणोक० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० अविह० विसे० । एवं जहाक्खाद० । णवरि जम्हि अणंतगुणा तम्हि संखेजगुणा वत्तव्वं ।

§२०३ आमिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० । मायासंजलण० अविह० विसे० । एव जाव अट्ठक० अविह० । सम्मत्त० अविह० असंखेजगुणा । सम्मामि० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० विसे० । अणंताणुबंधिचउक्क० अविह० असंखेजगुणा । तस्सेव विह० असंखेजगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामिच्छत्त०

‘पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं’ इस स्थानके प्राप्त होने तक ओषके समान है । इसके आगे चार संज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार मान कषायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहना । किन्तु यहां इतनी विशेषता और है कि चार संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे तीन संज्वलनोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसीप्रकार मायाकषायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे दो संज्वलनोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार लोभ कषायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना । किन्तु यहां इतनी विशेषता और है कि दो संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे लोभसंज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

अकषायी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे आठ कषाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे उन्हींकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि ऊपर पूर्वमें जहा अनन्तगुणा कहा है वहा यथाख्यातसयतोंके सख्यातगुणा कहना चाहिये ।

§२०३ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे आठ कषायोंकी अविभक्तिस्थान तक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे उन्हीं की विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष

विह० विसे । सम्मत्त० विह० विसे० । अट्टक० विह० विसे० । एवं जात्र लोम० विह० विसे० । एवमोद्दिदत्त० । मणपन्त्रव०-संज्ञदात्र पि एव वेव । जवरि, अग्नि अर्से स्लेन्धगुण तन्नि संस्लेन्धगुण क्यप्य । एव सामाहयछेदो० बच्य । गवरि, अट्टक० अवि० संस्लेन्धगुणा । लोमसजल० अविह० पत्ति । परिहार० सम्बत्थोवा सम्मत्त० अविह० । सम्मामि० अनिह विसे० । मिच्छत्त अविह० विसे० । अणंताणु० चतक० अविह० संस्लेन्धगुणा । तस्सेव विह० संस्लेन्धगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामि० विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । बारसक०-प्यबोको० विह० विसे० । एव संज्ञदासंज्ञदात्र । गवरि, अग्नि संस्लेन्धगुणा तन्नि असंस्लेन्धगुणा । सुद्रुमसांपराह्य० सम्बत्थोवा वसपत्तिपत्त विह० । बीसपप० विह० विसे० । तेति वेव अविह० संस्लेन्धगुणा । इंसपत्तिप० अविह० विसे । लोमसजल० विह० विसे० ।

अधिक हैं । इनसे सम्बन्धिमिच्छात्वकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्पन्नकृतिकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कपायोंकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे 'इनसे लोमसजलकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं' इस स्थान तक इसी प्रकार कहना चाहिये । इसी प्रकार जलपदार्थोंकी जीवोंके अस्वभावत्व कहना चाहिये । मनापयैयहानी और सप्त जीवोंके भी इसीप्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मत्तिवाली आदि जीवोंके जहां असम्भवात्तगुणा कहा है वहां इनके सम्भवात्तगुणा कहना चाहिये । इसी प्रकार सामायिकसप्त और श्रेयोपस्थापन्यसप्त जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें आठ कपायकी अविमत्तिवाले जीव सम्भवात्तगुणे हैं । तथा इन दोनों सप्त जीवोंमें लोमसजलकी अविमत्ति नहीं है । परिहारविद्युदिसप्त जीवोंमें सम्पन्नकृतिकी अविमत्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे सम्बन्धिमिच्छात्वकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिच्छात्वकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्त्यागुणकी चतुष्ककी अविमत्तिवाले जीव सम्भवात्तगुणे हैं । इनसे वृक्षीकी विमत्तिवाले जीव संभवात्तगुणे हैं । इनसे मिच्छात्वकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्बन्धिमिच्छात्वकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्पन्नकृतिकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार संयत्तासंयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां परिहारविद्युदिसप्तके सम्भवात्तगुणा है वहां इनके असम्भवात्तगुणा है । सूक्ष्मसांपरायिक सप्तमें तीन दर्शनमोहनीयकी विमत्तिवाले जीव सबसं थोड़े हैं । इनसे बीच प्रकृतियोंकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे ऊर्ध्वी बीच प्रकृतियोंकी अविमत्तिवाले जीव सम्भवात्तगुणे हैं । इनसे तीन दर्शनमोहनीयकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोमसजलकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

अथो जहासंभवमण्णत्थ वि वत्तव्वो । तदो मिच्छत्त० अविह० संखेज्जगुणा । अण्णता-
 पु०चउक्क० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० विह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० विह०
 विसे० । तस्सेव अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मत्त० अविह० विसेसा० । अण्णतापु०-
 चउक्क० विह० विसे० । मिच्छत्त० विह० विसे० । अट्टक० विह० विसे० । णवुंस०
 विह० विसे० । चत्तारिसंजल० अट्टणो०क० विह० विसे० । पुरिसवेदे मन्वत्थोवा
 छण्णोक० अविह० । इत्थिवेद० अविह० संखेज्जगुणा । णवुस० अविह०, विसे० ।
 अट्टक० अविह० [संखेज्ज] गुणा । एत्थ कारण पुव्व व वत्तव्वं । सेसपच्चिदियमगो
 जाव छण्णोकसाय० विह० विसेसाहियात्ति । तदुवरि चत्तारि संजल० पुरिस० विह०
 विसे० । णवुसए सन्वत्थोवा इत्थि० अविह० । अट्टक० अविह० संखेज्जगुणा । सेस
 पच्चिदियमंगो । णवरि, सम्मामि० अविह०अण्तगुणा । उवरि वि इत्थिवेदविहत्ति-

भी कहना चाहिये । आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले
 जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे
 हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी
 विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असं-
 ख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे
 अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्ति-
 वाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक
 हैं । इनसे नपुसकवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे चार संज्वलन और
 आठ नौकषायकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । पुरुषवेदी जीवोंमें छह नोकषाय-
 योंकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव संख्यात-
 गुणे हैं । इनसे नपुसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी
 अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । यहा पर कारण पहलेके समान कहना चाहिये ।
 अर्थात् बारह प्रकृतिक विभक्तिस्थानके कालसे तेरह प्रकृतिक विभक्तिस्थानका काल
 संख्यातगुणा है, अत नपुसकवेदकी अविभक्तिवाले जीवोंसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले
 जीव संख्यातगुणे हैं ऐसा माननेमे कोई वाधा नहीं है । इसके आगे छह नोकषायोंकी
 विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं इस स्थानतकका अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियोंके समान है ।
 तथा इसके ऊपर चार संज्वलन और पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
 नपुसकवेदी जीवोंमें स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे आठ कषायोंकी
 अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । शेष अल्पबहुत्व पंचेन्द्रियोंके समान है । इतनी
 विशेषता है कि यहा सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीवोंसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्ति-
 वाले जीव अनन्तगुणे हैं । तथा आगे भी स्त्रीवेदकी विभक्तिवाले जीवोंसे आठ नोकषाय

पूर्वितो अहणोक्तं चतुस्रजलणविहृतिषा विसेसाहिया वि षचम्ब । अदगदवेदे सन्-
 त्पोषा मिच्छत-सम्मत्-सम्मामि विहृ० । अहृक्त-इत्थि-णवुस० [विहृ० विसेसा० ।
 छण्णोक्ता० विहृ० विसे०] । पुरिस० विहृ० विसे० । कोपसजल० विहृ० विसे० । माण
 सजल० विहृ० विसे० । मायासजल० विहृ० विसे० । लोमसजल० विहृ० विसे० । तस्तेष
 मविहृ० अणतगुणा । मायासजल० अविहृ० विसे० । मायसजल० अविहृ० विसे० ।
 कोपसज अविहृ० विसे० । पुरिस० अविहृ० विसे० । छण्णोक्ताय० अविहृ० विसे० ।
 अहृक्त० इत्थि-णवुस अविहृ० विसे० । मिच्छत सम्मत्-सम्मामि० अविहृ० विसे० ।

१२०२ कसायानं [(जु) बादेण कोइकमाईसु सन्वत्तोवा पुरिस] अविहृ० ।
 छण्णोक्तं अविहृ विसे० । इत्थिवेदअविहृ० विसे० । णवुस० अवि० विसे० । अहृक्त०
 और चार सन्वत्तनकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ऐसा कहना चाहिये ।

अपगतवेदी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विमत्तिवाले
 जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे आठ कपाय, शीघ्र और नपुंसकवेदकी विमत्तिवाले जीव
 विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकपायोंकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे
 पुरुषवेदकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे कोपसन्वत्तनकी विमत्तिवाले
 जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसन्वत्तनकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
 इनसे मायासन्वत्तनकी विमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोमसन्वत्तनकी
 विमत्तिवाले विशेष अधिक हैं । इनसे लोमसन्वत्तनकी अविमत्तिवाले जीव अन्तगुणे
 हैं । इनसे मायासन्वत्तनकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसन्वत्तनकी
 अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोमसन्वत्तनकी अविमत्तिवाले जीव विशेष
 अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोक-
 पायोंकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कपाय शीघ्र और नपुंसक-
 वेदकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और मय्य
 मिथ्यात्वकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

१२०२ कपाय मार्ग्याके अनुवादसे कोपकपायवाले जीवोंमें पुरुषवेदकी अविमत्तिवाले
 जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे छह नोकपायोंकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे
 लोमवेदकी अविमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविमत्तिवाले जीव
 विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कपायोंकी अविमत्तिवाले जीव सकपायगुणे हैं । शेष कथन

(१) त (पृ १५) पु-त ।-य अविहृ सन्वत्तोवा सत्त्वोक्त विसे पु-अ जा ।

(२) कसायान (पृ १५) अविहृ-त । कसायानस्यत्व विसेसाहिया ति जीवसं

अविहृ-अ जा ।

अविह० संसेजगुणा । सेसस्स ओघभंगो जाय पुरिस० विहत्तियो ति । तदुपरि चत्तारि संज० विह० विसे० । एवं माण०, णवरि तिण्णिक० विह० विसे० । एवं माया०, णवरि दोण्णिक० विह० विसे० । एवं लोभ०, णवरि लोभ० विह० विसेनाहिया । अकसायीसु सव्वत्थोवा मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० विहत्तिया । [अट्ठक०], णवणोक्क० विह० विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० अविह० विसे० । एव जहाक्खाद० । णवरि जम्हि अणतगुणा तम्हि संसेजगुणा चत्तच्च ।

§२०३ आमिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा लोभभंजल० अविह० । मायामंजलण० अविह० विसे० । एव जाव अट्ठक० अविह० । मम्मत्त० अविह० अमसेजगुणा । सम्मामि० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० विसे० । अणंताणुबंधिचउव० अविह० असंखेजगुणा । तस्सेव विह० असंसेजगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामिच्छत्त०

‘पुरुषवेदकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है’ इस स्थानके प्राप्त होने तक ओषके समान है । इसके आगे चार सज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक है । इसी प्रकार मान कपायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व कहना । किन्तु यहा इतनी विशेषता और है कि चार संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे तीन सज्वलनोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसीप्रकार मायाकपायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे दो सज्वलनोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार लोभ कपायवाले जीवोंका अल्पबहुत्व जानना । किन्तु यहा इतनी विशेषता और है कि दो संज्वलनोंकी विभक्तिवालोंसे लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

अकपायी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे आठ कपाय और नौ नोकपायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे उन्हींकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार यथाख्यातसयत जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि ऊपर पूर्वमें जहा अनन्तगुणा कहा है वहा यथाख्यातसयतोंके सख्यातगुणा कहना चाहिये ।

§२०३ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें लोभसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे आठ कपायोंकी अविभक्तिस्थान तक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । आठ कपायोंकी अविभक्तिवाले जीवोंसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे उन्हीं की विभक्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष

विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । अहक० विह० विसे० । एवं आव लोम० विह० विसे० । एवमोहिंस० । मणपञ्चव०-संबदाण पि एवं वेव । जवरि, अमिह अस्तं खेञ्जगुण तमिह संखेञ्जगुण अयव्य । एव सामाहयछेदो० वचव्य । जवरि, अहक० मवि० संखेञ्जगुणा । लोमसबल० अविह० अत्वि । परिहार० सम्बत्तोवा सम्मत्त० अविह० । सम्मामि० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० विसे० । अमत्ताजु० अहक० अविह० संखेञ्जगुणा । तस्सेव विह० संखेञ्जगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० । सम्मामि० विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । बारसक०-अवणो० विह० विसे० । एवं संबदासंबदाणं । जवरि, अमिह संखेञ्जगुणा तमिह असंखेञ्जगुणा । सुद्धमसांप्राह्य० सम्बत्तोवा वसजतिपस्स विह० । बीसपय० विह० विसे० । तेसिं वेव अविह० संखेञ्जगुणा । वंसजतिप० अविह विसे । लोमसबल० विह० विसे० ।

अधिक हैं । इनसे सम्पत्तिमिच्छात्वकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्पत्कृतिकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कृपायोंकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । आगे 'इनसे लोमसम्बलकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं' इस स्वाम तक इसी प्रकार करना चाहिये । इसी प्रकार जवपदार्थनी जीवोंके अस्वभावत्व करना चाहिये । मनःपदार्थानी और सयत जीवोंके भी इसीप्रकार करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मत्तिज्ञानी आदि जीवोंके जहां असम्भावगुणा कहा है वहां इनके सम्भावगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार सामाधिकमयत और जेवोपस्वापनासंबध जीवोंके करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें आठ कृपायकी अविमर्शितासे जीव सम्भावगुणे हैं । तक इन दोनों सबत जीवोंमें लोमसम्बलकी अविमर्शिता नहीं है । परिहारविच्छदिसकत जीवोंमें सम्पत्कृतिकी अविमर्शितासे जीव सबसे बोड़े हैं । इनसे सम्पत्तिमिच्छात्वकी अविमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिच्छात्वकी अविमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अमत्ताजुवर्षी अहककी अविमर्शितासे जीव सम्भावगुणे हैं । इनसे अहककी विमर्शितासे जीव सम्भावगुणे हैं । इनसे मिच्छात्वकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्पत्तिमिच्छात्वकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्पत्कृतिकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह कृपाय और नौ नोकपायोंकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार संपदासपव जीवोंके करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां परिहारविच्छदिसयतोंके सम्भावगुणा है वहां इनके असम्भावगुणा है । सूद्धमसांप्राह्यिक संबदोंमें तीन दर्शनमोहनीयकी विमर्शितासे जीव सबसे बोड़े हैं । इनसे बीस प्रकृतिबोधकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अहक बीस प्रकृतियोंकी अविमर्शितासे जीव सम्भावगुण हैं । इनसे तीन दर्शनमोहनीयकी अविमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे लोमसम्बलकी विमर्शितासे जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २०४. सुक्क० सव्वत्थोना लोभमंजल० अविह० । मायासज० अग्रिह० विसे० ।
माणसंज० अवि० विसे० । क्रोधमंज० अविह० विसैसा० । पुरिम० अविह० विसे० ।
छण्णोक्क० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंम० अविह० विसेमा० ।
अट्टक० अविह० विसे० । मिञ्छत्त० अविह० अगंखेज्जगुणा । सम्मामि० अविह०
विसे० । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणताणु० चउक्क० अविह० सखेज्जगुणा ।
तस्सेव विह० संखेज्जगुणा । एव विवरीदकमेण सेसाण विसेसाहियत्तं वत्तव्व । अभव-
सिद्धि०-सासणं० णत्थि अप्पावहुगं ।

§ २०५ सम्मादिट्टिसु सव्वत्थोना अणताणु० चउक्क० विह० । मिञ्छत्तं विह०
विसे० । सम्मामि० विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । अट्टक० विह० विसे० ।
एवं जाव लोभ० विहत्तिओ त्ति विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मायामंजल०

§ २०४ शुक्ललेइयावाले जीवोंमें लोभसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष-अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोकपायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुंसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कपायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार आगे विपरीतक्रमसे शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंको उत्तरोत्तर विशेषाधिक कहना चाहिये ।

अभव्य जीव और साक्षादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि वे सब जीव क्रमसे छवीस और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही होते हैं ।

§ २०५. सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कपायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे इसी प्रकार लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीवों तक विशेष अधिक कहना चाहिये । लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे उसीकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मायासज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे

अविह० विसे० । मांससज्जल० अविह० विसे० । क्रोचसख० अविह० विसे० । पुरिस०
 अविह० विसे० । छग्णोक्त० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । यवुसप०
 अविह० विसे० । अट्टक० अनिह० विसे० । सम्मत् अविह० विसे० । सम्मामि० अविह०
 विसे० । मिच्छत् अविह० विसे० । अण्ताणु० चटक अविह० विसे० । एवं खइय
 सम्माइटीसु । णवरि, अट्टकसायादि कायम्ब । वेदगसम्मा सम्बत्योवा सम्मामि०
 अनिह० । मिच्छत् अविह० विसे० । अण्ताणु० चटक अविह० असंखेज्जगुणा ।
 तस्सेव विह० असंखेज्जगुणा । मिच्छत् विह० विस० । सम्मामि० विह० विसे० ।
 सम्मत्-वारसक०-णवणोक्त० विह० विसे० । उवसमसम्मा० सम्बत्योवा अण्ताणु०
 चटक० अविह० । तस्सेव विह० असंखेज्जगुणा । चटवीसपय० विह० विसे० ।
 एव सम्मामि० ।

३००६ अणाहार सम्बत्योवा सम्मत्० विह० । सम्मामि० विह० विसे० ।
 वारसक० णवणोक्त अविह अण्ताणुणा । मिच्छत्० अविह० विसे० । अण्ताणु०

शोभसम्बलनकी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इनसे पुरुषवेदकी अविमत्तिवाले
 जीव विरोध अधिक है । इनसे छह भोक्तृपाशोंकी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है ।
 इनसे बीवेदकी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इनसे ननुंसकवेदकी अविमत्ति-
 वाले जीव विरोध अधिक है । इनसे आठ कर्वायोंकी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक
 है । इनसे सम्पकूमकृषिकी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इनसे सम्बन्धिमिध्या-
 त्वकी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इनसे मिध्यात्वकी अविमत्तिवाले जीव विरोध
 अधिक है । इनसे अनन्त्यानुपगम्भी चतुष्ककी अविमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इसी
 प्रकार शायिकसम्बन्धदि जीवोंके करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके आठ
 कर्वायोंकी विमत्तिवालोंके साथ लेकर करना चाहिये । वेदकसम्बन्धदि जीवोंमें सम्बन्धि-
 म्प्यात्वकी अविमत्तिवाले जीव सबसे धोके हैं । इनसे मिध्यात्वकी अविमत्तिवाले जीव
 विरोध अधिक है । इनसे अनन्त्यानुपगम्भी चतुष्ककी अविमत्तिवाले जीव असम्प्यातगुणे
 हैं । इनसे वसीकी विमत्तिवाले जीव असम्प्यातगुणे हैं । इनसे मिध्यात्वकी विमत्तिवाले
 जीव विरोध अधिक है । इनसे सम्बन्धिमिध्यात्वकी विमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इनसे
 सम्पकूमकृषि, वारह कर्वाय और नौ भोक्तृपाशोंकी विमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है ।
 उपरमसम्बन्धदि जीवोंमें अनन्त्यानुपगम्भी चतुष्ककी अविमत्तिवाले जीव सबसे धोके हैं ।
 इनसे वसीकी विमत्तिवाले जीव असम्प्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस प्रकृतिशोंकी विमत्तिवाले
 जीव विरोध अधिक है । इसी प्रकार सम्बन्धिमिध्यात्वादि जीवोंके जानना चाहिये ।

३२०९ अनाहारक जीवोंमें सम्पकूमकृषिकी विमत्तिवाले जीव सबसे धोके हैं । इनसे
 सम्बन्धिमिध्यात्वकी विमत्तिवाले जीव विरोध अधिक है । इनसे वारह कर्वाय और नौ

§ २०४. सुक्क० सव्वत्थोवा लोभसंजल० अविह० । मायासज० अविह० विसे० ।
माणसंज० अवि० विसे० । कोधसंज० अविह० विसेसा० । पुरिस० अविह० विसे० ।
छण्णोक्क० अविह० विसे० । इत्थि० अविह० विसे० । णवुंस० अविह० विसेसा० ।
अट्ठक० अविह० विसे० । मिच्छत्त० अविह० असंखेज्जगुणा । सम्मामि० अविह०
विसे० । सम्मत्त० अविह० विसे० । अणताणु० चउक्क० अविह० संखेज्जगुणा ।
तस्सेव विह० संखेज्जगुणा । एवं विवरीदकमेण सेसाणं विसेसाहियत्तं वत्तव्वं । अमव-
सिद्धि०-सासर्ण० णत्थि अप्पावहुगं ।

§ २०५ सम्मादिट्ठिसु सव्वत्थोवा अणताणु० चउक्क० विह० । मिच्छत्त० विह०
विसे० । सम्मामि० विह० विसे० । सम्मत्त० विह० विसे० । अट्ठक० विह० विसे० ।
एवं जाव लोभ० विहत्तिओं ति विसे० । तस्सेव अविह० अणंतगुणा । मायासंजल०

§ २०४. शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें लोभसंज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मायासज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे क्रोधसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष-अधिक हैं । इनसे पुरुषवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे छह नोक-षायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे स्त्रीवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे नपुसकवेदकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार आगे विपरीतक्रमसे शेष प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले जीवोंको उत्तरोत्तर विशेषाधिक कहना चाहिये ।

अमव्य जीव और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पबहुत्व नहीं है क्योंकि वे सब जीव क्रमसे छबीस और अट्ठाईस प्रकृतियोंकी विभक्तिवाले ही होते हैं ।

§ २०५. सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे आठ कषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । आगे इसी प्रकार लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीवों तक विशेष अधिक कहना चाहिये । लोभसज्वलनकी विभक्तिवाले जीवोंसे उसीकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मायासज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे मानसज्वलनकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे

अपयद्विहाणविहृत्तीए इमाणि अणियोगद्वाराणि । तं जहा, प्वाजीयेण
सामिस्त कालो अतरं, णाणाजीवेहि भगविषमो परिमाण खेत्त फोसण
कालो अतर अप्पापहुअ मुजगारो पदणिक्खेवो वद्धिह सि ।

१२०७ मिच्छादिआओ पयडीओ ति वेत्तम्माओ; कम्मपयदि मोघुण अण्णपयडीहि
अहियारामाबाओ । विवृत्ति एत्थ पयडीओ ति दाव । अट्टावीस-सत्तावीस-छम्बीसादि
पयडीण ठामाभि पयद्विहाण्याभि । ताणि च बभट्टाणाणि उदयट्टाभाभि संवट्टाणाणि ति
तिविहाणि होति । तत्थ केसिमेत्थ ग्गहम् ? ण बभट्टाणाणं; तेसिं महाबभे बंचगेत्ति
सम्भिदे उवरि वणिज्जमाणचाओ । ओदयट्टाणाण्य गहम्; वेदगेत्ति अणियोगद्वारे पुरदो
बणिज्जमाणचाओ । परिसेसाओ सवपयद्विहाणाणं अट्टावीस सत्तावीस छम्बीस चतुवीस
तेवीस बावीस एकवीस तेरस चारस एकारस पंच चचारि तिष्णि दोष्णि एक ति
एदेसिं गहम् ।

प्रकृतिस्थानधिमक्तिमें ये अनुयोगद्वार आये हैं । जो इस प्रकार हैं—एक बीबकी
अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना बीबीकी अपेक्षा भगविषय, परिमाण
प्रेम, स्पर्शन, काल, अन्तर, अप्पपहुत्त्व, मुजगार, पदनिक्षेप और बुद्धि ।

१२०७ इस कसामपाहुत्तमें प्रकृति शब्दसे मिच्छात्व आदिक कर्मप्रकृतियोंका ग्रहण करना
चाहिये क्योंकि प्रकृतमें मिच्छात्व आदिक कर्मप्रकृतियोंको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंका
अधिकार नहीं है । जिसमें प्रकृतियां रहती हैं वसे वर्णित प्रकृतियोंके समुदायको स्थान
कहते हैं । अट्टाईस, सत्ताईस और छम्बीस आदि प्रकृतियोंके स्थानोंको प्रकृतिस्थान
कहते हैं ।

श्रेष्ठा—ये प्रकृतिस्थान जन्मस्थान उदयस्थान और सरस्वतस्थानके मेरसे तीन प्रकारके
होते हैं । सो उनमेंसे यहाँ किसका ग्रहण किया है ?

समाधान—प्रकृतमें जन्मस्थानोंका तो ग्रहण किया नहीं जा सकता है क्योंकि आगे
'जन्मक' नामवाले महाजन्म अधिकारमें उनका वर्णन किया जानेवाला है । उदयस्थानोंका भी
ग्रहण नहीं हो सकता है, क्योंकि आगे वेदक अनुयोगद्वारमें उनका वर्णन किया जानेवाला
है । अतः पारिक्षेप न्यायसे अट्टाईस सत्ताईस, छम्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, एकवीस
तेरह चारह, ग्यारह, पांच चार, तीन दो और एक प्रकृतिरूप सरस्वप्रकृतिस्थानोंका
ग्रहणमें ग्रहण किया है ।

विशेषार्थ—प्रकृतमें मोहनीय कर्मके जन्मस्थानों और उदयस्थानोंका कथन न करके
उक्त स्थानित्व आदि अनुयोगद्वारोंके द्वारा सरस्वस्थानोंका कथन किया जा रहा है यह उक्त
कथनका तात्पर्य है ।

चउक० अविह० विसे० । तस्सेव विह० अणंतगुणा । मिच्छत्त० विह० विसे० ।
 वारसक०-णवणोक० विह० विसे० । सम्मामि० अविह० विसे० । सम्मत्त० अविह०
 विसे० ।

एवमप्पावहुगं समत्तं ।

॥ एवमेगेग-उत्तरपयडिविहत्ती समत्ता ॥

नोकषायोंकी अविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे उसीकी विभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे मिथ्यात्वकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे वारह कपाय और नौ नोकषायोंकी विभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यग्मिथ्यात्वकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सम्यक्प्रकृतिकी अविभक्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

इस प्रकार अल्पवहुत्व समाप्त हुआ ।

इस प्रकार एकैक उत्तरप्रकृतिविभक्ति समाप्त हुई ।



अपयद्विद्वान्पयद्विद्वान् इत्यादि अणियोगद्वाराणि । तं जहा, एगजीवेण सामिस्त कालो अतरं, गाणाजीवेहि भगवित्तो परिमाण खेत फोसण कालो अतर अप्पायहुअ सुजगारो पदणिपत्तेवो धरिइ ति ।

१२०७ मिथ्यात्वादिप्राप्तिपयदीपति पंचम्यायोः कर्मपमार्ति मोघुण अणपयदीहि अहियारामावादे । चिद्वृत्ति एस्य पयदीपति द्वाण । अद्वासीस-सत्तासीस-छम्बीसादि पयदीग द्वाणाणि पयद्विद्वान्पयदि । ताणि च अद्वाजाणि उदयद्वाजाणि संतद्वाजाणि ति तिदिद्वान्पि होंति । तस्य केसिमेत्य ग्गहणं ? ण अद्वाजाणां; तेषिं महाअद्य बंधगेति सपिदे उचरि अणिज्जमाणत्वादे । ओदयद्वाजाण्य ग्गहणं; वेदगति अणियोगद्वारे पुरवो अणिज्जमाणत्वादे । परिसेसादे सतपयद्विद्वान्पयदि अद्वासीस सत्तासीस छम्बीस अद्वासीस वेदीस चापीस एक्कीस तेरस बारस एकारस पंच अचारि तिग्गि दोग्गि एकं ति एदेसिं गह्य ।

प्रकृतिस्थानविभक्तिमें ये अनुयोगद्वार आये हैं । जो इस प्रकार हैं—एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविषय, परिमाण अत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, अप्पायहुत्वं, सुजगार, पदनिचेष और बुद्धि ।

१२०७ इस कसायपाहुत्वंमें प्रकृति शब्दसे मिथ्यात्व आदिक कर्मप्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि प्रकृतमें मिथ्यात्व आदिक कर्मप्रकृतियोंको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंका अधिकार नहीं है । जिसमें प्रकृतियाँ रहती हैं वैसे अर्थात् प्रकृतियोंके समुदायको स्थान कहते हैं । अद्वासीस सत्तासीस और छम्बीस आदि प्रकृतियोंके ज्ञानोंको प्रकृतिस्थान कहते हैं ।

शुद्धा-ये प्रकृतिस्थान अन्वयस्थान उदयस्थान और सत्त्वस्थानके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं । सो उनमेंसे यहाँ किसका ग्रहण किया है ?

समाधान-प्रकृतमें अन्वयस्थानोंका तो ग्रहण किया नहीं जा सकता है क्योंकि जाने 'अन्वय' नामवासे महाअद्य अधिकारमें उनका वर्णन किया जानेवाला है । उदयस्थानोंका भी ग्रहण नहीं हो सकता है क्योंकि जाने वेदक अनुयोगद्वारमें उनका वर्णन किया जानेवाला है । अतः पारिच्छेप ग्यायसे अद्वासीस सत्तासीस छम्बीस, चौबीस, तेईस, बारस, एक्कीस तेरह बारह, ग्यारह पांच चार, तीन दो और एक प्रकृतिरूप सत्त्वप्रकृतिस्थानोंका प्रकृतमें ग्रहण किया है ।

विशेषार्थ-प्रकृतमें मोक्षमीय कर्मके अन्वयस्थानों और उदयस्थानोंका कथन न करके उक्त स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंके द्वारा सत्त्वस्थानोंका कथन किया जा रहा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§२०८. पयडिबिहत्तीणं विहत्ती भेदो पयडिबिहत्ती, तीए पयडिबिहत्तीए इमाणि अणियोगद्वाराणि होंति त्ति संवधो कायव्वो । परोक्खणमणिओगद्वाराणं कथमिमाणि, त्ति पञ्चखण्हिसो ? ण, बुद्धीए पञ्चखणीकयाण तदविरोहादो । तेरम अणियोगद्वाराणि त्ति परिमाणमकाऊण सामण्णेण इमाणि त्ति किमट्ठं ण्हिसो कदो ? एदाणि तेरस चैव अणियोगद्वाराणि ण होंति अण्णाणि वि समुक्कित्तणा सादिय अणादिय धुव अनुव भाव भागाभागेत्ति सत्त अणियोगद्वाराणि एदेसु तेरससु अणियोगद्वारेसु पविट्ठाणि त्ति जाणावण्हं परिमाणं ण कदं । एदेसिं सत्तण्हमणिओगद्वाराणं जहा तेरससु अणियोगद्वारेसु अंतवभावो होदि तहा वत्तव्व ।

§२०८ प्रकृतिस्थानोंकी विभक्ति अर्थात् भेदकी प्रकृतिस्थानविभक्ति कहते हैं । उम प्रकृतिस्थानविभक्तिके ये अनुयोगद्वार होते हैं प्रकृतमे इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—जब अनुयोगद्वार परोक्ष हैं, तो उनका 'इमाणि' इस पदके द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे निर्देश कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बुद्धिसे प्रत्यक्ष करके उनका 'इमाणि' इस पदके द्वारा प्रत्यक्ष रूपसे निर्देश करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—'प्रकृतिस्थानविभक्तिके विषयमें तेरह अनुयोगद्वार हैं' इस प्रकार उनका परिमाण न करके सामान्यसे 'इमाणि' इस पदके द्वारा उनका निर्देश किसलिये किया ?

समाधान—ये अनुयोगद्वार केवल तेरह ही नहीं हैं किन्तु इनमे इनके अतिरिक्त समुत्कीर्तना, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, भाव और भागाभाग ये सात अनुयोगद्वार और भी सम्मिलित हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये उक्त अनुयोगद्वारोंका परिमाण नहीं कहा है ।

इन सात अनुयोगद्वारोंका तेरह अनुयोगद्वारोंमें जिस प्रकार अन्तर्भाव होता है उसका कथन कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रकारने प्रकृतिस्थानविभक्तिका कथन 'एकजीवकी अपेक्षा स्वामित्व' आदि अनुयोगोंके द्वारा करनेकी सूचना की है जिनकी सख्या तेरह होती है । पर ये अनुयोगद्वार तेरह हैं इस प्रकारका उल्लेख नहीं किया है । इसका कारण वतलाते हुए वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि चूर्णिसूत्रकारको यहा समुत्कीर्तना, सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, भाव और भागाभाग ये सात अनुयोगद्वार और इष्ट हैं जिनका उक्त अनुयोगद्वारोंमें संग्रह कर लेने पर सबका प्रमाण वीस हो जाता है । यही सबव है कि चूर्णिसूत्रकारने 'तेरह' सख्याका निर्देश नहीं किया । उक्त तेरह अनुयोगद्वारोंमें समुत्कीर्तना सम्मिलित नहीं है पर चूर्णिसूत्रकारने चूर्णिद्वारा इसका कथन किया है । भागाभाग भी सम्मिलित नहीं हैं पर नानाजीवोंकी अपेक्षा भग विचयके अनन्तर भागाभाग अनुयोगद्वार आता है और वहा

⊗ पञ्चविंशत्यधिकोऽध्यायसमुच्चिन्तना ।

३२०६ 'पुष्प' पदम च 'गमणिज्ञा' अवर्गंतव्या 'द्वानसमुच्चिन्तना' ठाणवण्णाणा; ताए अणवणयाए सेसाभिभोगहाराण पदणसंमवादी । तेण द्वानसमुच्चिन्तना सम्वापि योगहाराणमादीए वचम्वेति भविद् होदि ।

⊗ अत्थि अट्ठापीसाए सत्तापीसाए चत्थीसाए चउवीसाए तेवीसाए पावीसाए एक्कीसाए तेरसण्ह पारसण्ह एकारसण्ह पचण्ह चउण्ह तिण्ह दोण्ह एक्किस्से च १७ । एदे ओषेण ।

पूर्विसूत्रकारने 'सेसाभि भविभोगहाराणि णेरव्याभि यद् पूर्विसूत्र क्हा हे । मात्थम होवा हे इस परसे बीरसेनस्वामीने यद् निव्वय क्किया हे कि पूर्विसूत्रकारको इन तेरहक अतिरिक्त साठ अनुयोगद्वार और इष्ट हे । अब समुत्कीर्तना आदि साठ अनुयोगद्वारोंका 'एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व' आदि तेरह अनुयोगद्वारोंमें किस प्रकार अन्तर्भाव होता है इसका निर्देश करते हैं । समुत्कीर्तनाका स्वामित्व अनुयोगद्वारमें अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि समुत्कीर्तनामें स्वानोंका और स्वामित्वमें स्वानोंके स्वामीका कथन रहता है, अतः अलगसे स्वान न कहने पर भी किस स्वानका कौन स्वामी है इसका कथन करनेसे स्वानोंका कथन हो ही जाता है । सादि अनादि, शुभ और अशुभका क्लृप्त और अन्तर अनुयोगद्वारोंमें अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि क्लृप्त और अन्तरका ज्ञान हो जाने पर सादि आदिका ज्ञान हो ही जाता है । मोहनीयके वदवादिके सञ्चयमें ही य अट्ठाईसप्रकृतिक आदि स्थान होते हैं यह बात भावानुयोगद्वारका अलगसे कथन न करने पर भी ज्ञानी जानी है । तथा भागाभागका अल्पबहुत्वानुयोगद्वारमें अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि किस स्वानवासे जीव अल्प है और किस स्वानवासे जीव बहुत है, इसका ज्ञान हो जाने पर भागाभागका ज्ञान हो ही जाता है । इस प्रकार समुत्कीर्तना आदि साठ अनुयोगद्वारोंका स्वामित्व आदिकमें अन्तर्भाव जानना चाहिये ।

⊗ प्रकृतिस्थानविमर्शमें सर्वप्रथम स्थानसमुत्कीर्तनाको जान लेना चाहिये ।

३२०६ इस पूर्विसूत्रमें 'पूर्व' पद प्रथम' इस अर्थमें आया है । 'गमणिव्या का अर्थ 'ज्ञानता चाहिये' होता है । 'द्वानसमुच्चिन्तना' का अर्थ 'अट्ठाईस आदि स्थानोंका वर्णन है । जब तक अट्ठाईस आदि स्थानोंका ज्ञान नहीं हो जायगा तब तक स्वामित्व आदि दोष वहीस अनुयोगद्वारोंका कथन करना समभव नहीं है, इसलिये स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारको समी अनुयोगद्वारोंके आदिमें कहना चाहिय यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

⊗ मोहनीयके अट्ठाईस, संचाईस, द्धर्मीस, शौचीस, तर्हस, वार्हस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक ये पन्द्रह सचस्वान होत हैं । ये सचस्वान ओपसे होते हैं ।

१२१०. एदे पणारम द्वाणवियप्पा ओघेण होंति । एदेसिं द्वाणाणं पदेमपरूवणद्व
जइवसहाइरियो उत्तरसुत्तं भणदि ।

❀ एकस्से विहत्तियो को होदि ? लोहसंजलणो ।

१२११ जस्स लोहसजलणमेक्कं चेव संतकम्म सो लोहसजलणो एकस्से विहत्तियो ।

❀ दोण्हं विहत्तियो को होदि ? लोहो माया च ।

१२१२. लोह-मायामंजलणाणि दो चेव जस्स संतकम्ममत्थि सो दोण्हं विहत्तियो ।

❀ तिण्हं विहत्ती लोहसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलणाओ ।

१२१३. लोभ-माया-माणसजलणाओ तिण्णि चेव जदा होंति तदा तिण्हं पयडि-
द्वाणं होदि ।

❀ चउण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ ।

१२१४. चत्तारि संजलणाओ सुद्धाओ जत्थ सतकम्मं होंति तत्थ चटुण्हं विहत्ती
गाम द्वाण होदि ।

१२१०. ये पन्द्रहों सत्त्वस्थानविकल्प ओघकी अपेक्षा होते हैं । अब इन सत्त्वस्थानोंकी
प्रकृतियोंका कथन करने के लिये यतिवृषभ आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

* एक प्रकृतिकी विभक्तिवाला कौन है ? लोभसंज्वलनवाला जीव एक प्रकृतिकी
विभक्तिवाला होता है ।

१२११ जिस जीवके एक लोभसंज्वलनकी ही सत्ता होती है वह लोभसंज्वलनका धारक
जीव एक प्रकृतिकी विभक्तिवाला होता है ।

* दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला कौन है ? संज्वलन लोभ और मायाकी सत्ता-
वाला जीव दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।

१२१२ जिस जीवके लोभसंज्वलन और मायासंज्वलन केवल ये दो कर्म सत्तामें
होते हैं वह दो प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।

* जिसके लोभसंज्वलन, मायासंज्वलन और मानसंज्वलन ये तीन कर्म पाये
जाते हैं वह तीन प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला होता है ।

१२१३. जिस समय जीवके केवल लोभ, माया और मानसंज्वलन ये तीन कर्म पाये
जाते हैं उस समय उसके तीनप्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है ।

* जिसके चारों संज्वलनकषाएँ पाई जाती हैं वह चार प्रकृतियोंकी विभक्तिवाला
होता है ।

१२१४. जहा पर केवल लोभसंज्वलन आदि चार कर्मोंकी सत्ता होती है वहा चार
प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होता है ।

⊗ पञ्चणहं विहृती अचारि सजलणाओ पुरिसवेवो थ ।

१२१५ पुरिसवेवो अचारि सजलणाओ थ सुद्धाओ अत्य सतकम्म होति तस्य पञ्चपयडिह्याणं होदि ।

⊗ एकारसणह विहृती, एवाणि शेष पञ्च छण्णोकसाया थ ।

१२१६ अदुसंजलण-पुरिसवेद-छण्णोकसाय कबला अत्य सतकम्मसरूपेण विहृति तस्य एकारसणह द्वाण ।

⊗ बारसणह विहृती एवाणि शेष इत्थिवेवो थ ।

१२१७. एदाणि एकारसकम्माणि इत्थिवेदसद्वियाणि अत्य सतकम्म तस्य बारसणह द्वाण होदि ।

⊗ तेरसणह विहृती एवाणि शेष णडुसपवेवो थ ।

१२१८ बारसपयडीओ पुण्युचाओ अत्य णडुसपवेदण सह संत होति तस्य तेरसणह द्वाण ।

⊗ एक्खीसाए विहृती एदे शेष अट्ट कसाया थ ।

१२१९ पुण्युवतरसकम्माणि अट्टकसाया थ अत्य सत तस्य एक्खीसाए द्वाण ।

⊗ चारो सज्जसन और पुरुषवेद यह पांचप्रकृतिक विमक्तिस्थान है ।

१२२० जहां पर केवल पुरुषवेद और चारो सज्जसन ये पांच कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां पर पांचप्रकृतिक विमक्तिस्थान होता है ।

⊗ पुरुषवेद और चार सज्जसन ये पूर्वोक्त पांच और छह नोकपाय यह ग्यारह प्रकृतिक विमक्तिस्थान है ।

१२२१ जहां पर चारो सज्जसन, पुरुषवेद और द्वासादि छह नोकपाय ये कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां ग्यारहप्रकृतिक विमक्तिस्थान होता है ।

⊗ पूर्वोक्त ग्यारह और बीवेद यह बारहप्रकृतिक विमक्तिस्थान है ।

१२२२ जहां पर बीवेदके साथ पूर्वोक्त ग्यारह कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां बारह प्रकृतिक विमक्तिस्थान होता है ।

⊗ पूर्वोक्त बारह और नपुंसकवेद यह तेरहप्रकृतिक विमक्तिस्थान है ।

१२२३ जहां पर नपुंसकवेदके साथ पूर्वोक्त बारह कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां पर तेरहप्रकृतिक विमक्तिस्थान होता है ।

⊗ ये पूर्वोक्त छह और अठ कपाय यह इक्कीस प्रकृतिक विमक्तिस्थान है ।

१२२४ जहां पर पूर्वोक्त छह कर्म और अष्टमाङ्गमत्तरण अट्टक तथा प्रसात्त्वानात्तरण अट्टक ये आठ कर्म सत्तामें पाये जाते हैं वहां पर इक्कीसप्रकृतिक विमक्तिस्थान होता है ।

❁सम्मत्तेण वावीसाए विहत्ती ।

§ २२०. पुव्वुत्तएक्कीसकम्माणि सम्मत्तेण वावीसाए द्वाणं होदि ।

❁सम्मामिच्छत्तेण तेवीसाए विहत्ती ।

§ २२१. पुव्वुत्तवावीसकम्मेसु सम्मामिच्छत्तेण सहिदेसु तेवीसाए द्वाणं होदि ।

*मिच्छत्तेण चदुवीसाए विहत्ती ।

§ २२२. पुव्वुत्ततेवीसकम्माणि मिच्छत्तेण सह चउवीसाए द्वाणं होदि ।

❁अट्टावीसादो सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु अवणिदेसु छव्वीसाए विहत्ती ।

§ २२३. मोहट्टावीससंतकम्मिण मम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु उव्वेल्लिदेसु छव्वीसाए द्वाणं होदि ।

❁तत्थ सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए विहत्ती ।

§ २२४. तत्थ छव्वीसपयाडिट्ठाणम्मि सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए द्वाणं होदि ।

❁सव्वाओ पयडीओ अट्टावीसाए विहत्ती ।

*सम्यक्त्वप्रकृतिके साथ बाईस प्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§ २२०. पूर्वोक्त इक्कीस कर्मोंमें सम्यक्त्वप्रकृतिके मिला देनेसे बाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*सम्यग्मिथ्यात्वके साथ तेईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§ २२१. पूर्वोक्त बाईस कर्मोंमें सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके मिला देने पर तेईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*मिथ्यात्वके साथ चौबीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§ २२२. पूर्वोक्त तेईस कर्मोंमें मिथ्यात्वके मिला देनेपर चौबीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*मोहनीयके अट्टाईस भेदोंमेंसे सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके निकाल देने पर छवीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§ २२३. जिसके मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है वह जब सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है तब उसके छवीसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*उसमें सम्यग्मिथ्यात्वके मिला देनेपर सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

§ २२४ उसमें अर्थात् छवीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानमें सम्यग्मिथ्यात्वके मिला देने पर सत्ताईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

*मोहनीयकी संपूर्ण प्रकृतियां अट्टाईसप्रकृतिक विभक्तिस्थान होता है ।

१२२५ मोहदाहीसपयहीमो अत्य सत तत्य अदाहीसाए हाण होदि ।

सपहि एसा ।

१२२६ एवेसिमोषपप्पारसपयाडिहाणाय सादिही-

२८ २७ २६ २५ २३ २२ २१ १३ १२ ११ = ४ ३ ० १

एष गदियाविसु णेवन्था ।

१२२७ गदियाविसु चौरसमगगणदासेसु हाणसमुक्तिपणा आणिरुण येदन्था; सुगमताहो ।

१२२८ सपहि पुष्पिसुत्ताइरियेय सुचिइ मवपुड्डेअणाणुग्गाहत्तमुत्तारमाइरियवयण विणिग्गयविबरथ भणिस्सामो । उ अहा-मधुसत्तिय पच्चिदिय-पचि० पत्त०-त्तस-त्तसपत्त० पत्तमप०-पत्तवचि०-कापजोगि मोरात्तिय०-त्तवत्तु०-अत्तवत्तु०-सुत्त० मवसि० सण्णि-आहारीपमोपमगो । पत्तरि मधुसिन्धीसु पत्तपयडिहाणं गत्तिय ।

१२२९ अहां पर मोहनीयकी अडाईस प्रकृतिवोकी सत्ता पाई जाती है बह पर अडाईस प्रकृतिक विमलित्वान होता है ।

अथ यह—

१२२६ ओषकी अपेक्षा कहे गये इन पत्रह प्रकृति स्थानोंकी सहाई है—

२८ २७ २६ २५ २३ २२ २१ १३ १२ ११ ५ ४ ३ २ १

इसी प्रकार गति आदि मार्गणाओंमें उक्त स्थानोंको जान लेना चाहिये ।

१२२७ गति आदि चौरह मार्गणात्त्वानोंमें स्थानसमुत्कीर्तनाको जान कर क्या लेना चाहिये क्योंकि यह सुगम है ।

१२२८ अब आगे मन्वुद्धि जनोके मनुप्रहके किये, पूर्विसूत्रकारोंके द्वारा सूचित किये गये और उचचारणाचार्यके मुक्तसे निकले हुए व्याख्यानको कहते हैं । यह इस प्रकार है—
सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य पचिन्त्रिय, पचेन्त्रिय पर्याप्त ब्रह्म ब्रह्म पर्याप्त पांचों मनोवोगी पांचों बचनबोली काकयोगी, औदारिक काकयोगी, चन्द्ररसनी, अचन्द्ररसनी इन्कलेदपावाके मध्य संकी और आहारक इनके बन्धों प्रकृतिसत्त्वज्ञान ओषके समान होते हैं । इतनी विद्येपता है कि मनुष्यनिबोधि-पांचप्रकृतिप्रकृतत्वज्ञान नहीं पाया जाता ।

विशेषार्थ—पहले जो सामान्यसे पत्रह सत्त्वत्वाओंका कथन कर आये हैं वे सामान्य मनुष्य आदि सभी मार्गणाओं में सम्मिलित हैं क्योंकि इन मार्गणाओंमें प्रारम्भके बाद शुकज्ञान नियमसे पाये जाते हैं । किन्तु मनुष्यनी बह मोक्षपाव और पुरुषवैदका एक साथ रूप करती है अतः उसके पांच प्रकृतिरूप समान नहीं पाया जाता ।

१२२६. आदेसेण णिरयगईए शेरइएसु अत्थि अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीस-वावीस-एक्कीसाए ट्ठाण । एवं पढमाए पुढवीए, तिरिक्खसगइ० पांचिदियातिरिक्ख-पंचिदिय-तिरिक्खपज्ज०-देव-सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्वियमिस्स०-ओरालिय-मिस्स-कम्मइय-अणाहारि त्ति वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तामि त्ति एवं चेव वत्तव्वं । णवरि वावीस-एक्कीसपयडिट्ठाणाणि णत्थि । एव पंचिदियतिरिक्खजोणिणि-भवण०-वाण०-जोदिसिय० वत्तव्वं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० अत्थि अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीसपयडिट्ठाणाणि । एव मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगालिंदिय-पंचिदिय-अपज्ज०-सव्वपंचकाय-तस०अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाणि-विहंग-मिच्छादिट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ० अत्थि अट्टावीस-चउवीस-वावीस-एक्कीसपयडिट्ठाणाणि । वेउव्वियकायजोगीसु अत्थि अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीस-एक्कीस-पयडिट्ठाणाणि । एवं किण्ह०-णील०वत्तव्वं । आहारक०-आहारमिस्सकायजोगीसु अत्थि अट्टावीस-चउवीस-एक्कीसपयडिट्ठाणाणि ।

१२२६. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप छह स्थान पाये जाते हैं । इसीप्रकार पहले नरकमें समझना चाहिये । इसी प्रकार तिर्यंचगतिमें सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच और पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त तथा सामान्य देव, सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम भ्रैवेयक तरुके देव, पैक्रियकमिश्र-काययोगी औदारिकमिश्रकाययोगी कार्भणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तक इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके पूर्वोक्त स्थानोंमेंसे बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थान 'हीं' पाये जाते हैं । इसी-प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंचगोनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये । विशेषार्थ—दूसरे नरकसे लेकर उक्त सभी मार्गणाओंमें सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते हैं, अतः इन मार्गणाओंमें २२ और २१ प्रकृतिरूप स्थान किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हैं । शेष कथन सुगम है ।

पचेन्द्रियतिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंके अट्टाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिरूप सत्त्वस्थान होते हैं । इसीप्रकार मनुष्य लब्धपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, लब्धपर्याप्तक पचेन्द्रिय, बादर सूक्ष्म आदि सभी पाचों स्थावरकाय, त्रसलब्धपर्याप्त, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असङ्गी जीवोंके कहना चाहिये ।

अनुविशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके अट्टाईस, चौबीस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । वैक्रियिककाययोगियोंके अट्टाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । इसीप्रकार कृष्णलेश्यावाले और नीललेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारक मिश्रकाययोगी जीवोंके अट्टाईस,

१२३० वेदायुवादेण इत्येवेदे अत्थि अद्वावीस-मत्तावीस-छम्बीस चठवीस-तेवीस
 बावीस-एक्कीस-तेरस-चारसपयडिट्टाणाणि । एव अणुसयवेदम्मि वत्तम्भ । पुरिसवेदे अथि
 अद्वावीस-मत्तावीस-छम्बीस चठवीस-तेवीस-मावीस-एक्कीस-तेरस-चारस-एक्कारस-पच
 पयडिट्टाणाणि । अवगद्वेद० अत्थि चठवीस एक्कीस-एक्कारस-पच अचारि-तिष्णि
 दोष्णि एक्कपयडिट्टाणाणि ।

१२३१ कसायासुवादेण कोपक० अत्थि अद्वावीस-सत्तावीस-छम्बीस-चठवीस-तेवीस
 बावीस-एक्कीस-तेरस-चारस एक्कारस-पंच अचारिपयडिट्टाणाणि । एव माणक० । षवरि
 तिष्णिपयडिट्टाण पि अत्थि । एव माया० । णवरि दोपयडिट्टाणं पि अत्थि । एव
 लोम० । णवरि एगपयडिट्टाण पि अत्थि । अकमाईसु अत्थि चठवीस-एक्कीस
 पयडिट्टाणाणि । एव सुहुमसांपराय०-सहाकखाद० वत्तम्भ । षवरि सुहुमसांपराय०
 एयपयडिट्टाण पि अत्थि ।

चौबीस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं ।

विद्योपार्थ-कृतकत्ववेदक सम्यग्दृष्टि देव और नारकियोंमें उत्पन्न तो होता है पर वह
 अपर्याप्त अवस्थामें ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है अथ वैकियिककायबोगी जीवके
 २२ प्रकृतिक स्थान मही कहा । नीस और कृष्ण छेदयामें २१ प्रकृतिक स्थान मनुष्योंकी
 जवेद्यासे जानना चाहिये क्योंकि सौधर्मादिस्वर्गमें तीन अणुम छेदयाए मही होती। नारकियोंमें
 २१ प्रकृतिक स्थान पहले मरकमें ही पाया जाता है । पर वहाँ कपोत छेदवा ही होती है ।

१२३० वेदमार्गणाक अनुवाटस बीरामे अद्वाईस, मत्ताईस छम्बीस चौबीस तेईस
 पाईस इक्कीस तेरह और चारह प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । इसीप्रकार मनुष्यकवेदमें कहना
 चाहिये । पुरुषवेदमें अद्वाईस, मत्ताईस छम्बीस चौबीस तेईस पाईस, इक्कीस, तेरह
 चारह ग्यारह और पांच प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । अवगतवेदमें चौबीस इक्कीस ग्यारह
 पांच चार तीन, दो और एक प्रकृतिरूप स्थान होते हैं ।

१२३१ कपायमार्गणाक अनुवाटस कोपकयापी जीवोंके अद्वाईस, सत्ताईस छम्बीस
 चौबीस तेईस पाईस इक्कीस तेरह चारह ग्यारह पांच और चार प्रकृतिरूप सत्त्वरथान
 होते हैं । इसीप्रकार मानकयापी जीवोंके भी कहना चाहिये । इतनी विद्यपता है कि मानक-
 यापी जीवोंके तीन प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है । इसीप्रकार मायाकयापी जीवोंके भी कहना
 चाहिये । इतनी विद्यपता है कि इनके दो प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है । इसी प्रकार
 सोमकयापी जीवोंके भी कहना चाहिये । इतनी विद्यपता है कि इनके एक प्रकृतिरूप स्थान
 भी पाया जाता है । अकयापी जीवोंके चौबीस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं ।
 ऋमीप्रकार सूक्ष्मसांपराय और पणकजात भयमी जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विद्यपता
 है कि सूक्ष्मसांपरायिक सत्तोंके एक प्रकृतिरूप सत्त्वरथान भी पाया जाता है ।

§ २३२. आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघभंगो । णवरि सत्तावीस-छ्वीसट्टाणाणि णत्थि । एवं मणपञ्जव०-संजद० सामाइयत्तेदो०-ओहिदसण-सम्मादिट्ठि त्ति वत्तव्व । परिहार० अत्थि अट्टावीस-चउवीस तेवीस-वावीस-एक्कवीसपयडिट्टाणाणि । एवं संजदा-सजद० ।

§ २३३. लेस्साणुवादेण काउलेस्सा०वेउव्वियकायजोगिभंगो । णवरि, वावीसपयडिट्टाणं पि अत्थि । तेउ०-पम्म०-असंजद० अत्थि अट्टावीस-सत्तावीस छ्वीस-चउवीस-तेवीस-वावीस-एक्कवीसपयडिट्टाणाणि । अभवसिद्धि० अत्थि छ्वीसपयडिट्टाणं ।

§ २३४. खइयसम्माइही० अत्थि एक्कवीस-तेरस-वारस-एक्कारस-पंच-चत्तारि-तिण्ण-दोण्णि-एगपयडिट्टाणाणि । वेदगसम्माइही० अत्थि अट्टावीस-चउवीस-तेवीस वावीसपयडिट्टाणाणि । उवमम० अत्थि अट्टावीस-चउवीस०ट्टाणाणि । एवं सम्मामि० । सासण० अत्थि अट्टावीसाए ट्टाण ।

एव समुक्त्तिणा समत्ता ।

§ २३२ मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके ओघके समान स्थान होते हैं । इतनी विशेषता है कि इनके सत्ताईस और छ्वीस प्रकृतिरूप स्थान नहीं होते । इसीप्रकार मन पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । परिहारविशुद्धिसयतोंके अट्टाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । इसीप्रकार सयनासयतोंके कहना चाहिये ।

§ २३३ लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कापोतलेश्यावाले जीवोंके वैक्रियिककाययोगी जीवोंके समान सत्त्वस्थान होते हैं । इतनी विशेषता है कि इनके बाईस प्रकृतिरूप स्थान भी पाया जाता है । तेजोलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और असयत जीवोंके अट्टाईस, सत्ताईस, छ्वीस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । अभव्य जीवोंके छ्वीस प्रकृतिरूप स्थान होता है ।

विशेषार्थ—प्रथम नरकके नारकियोंके और अविरतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंके अपर्याप्त अवस्थामें कापोत लेश्या होती है । अतः कापोतलेश्यामें २२ प्रकृतिरूप स्थान बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

§ २३४ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अट्टाईस, चौबीस, तेईस और बाईस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । उपशम सम्यग्दृष्टियोंके अट्टाईस और चौबीस प्रकृतिरूप स्थान होते हैं । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके भी उक्त दो स्थान जानना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टियोंके एक अट्टाईस प्रकृतिरूप स्थान होता है ।

१२३५ संपदि समुच्चित्तमं मणिय शुष्णिमुत्तारिण स्रियान उचारभाइरिण समु
 च्चित्तया सादि० अनादि० ध्रुव अश्रुव एगलीवेण सामिच कालो अंतर पाणाबीवेदि
 मगविचओ मागामागो परिमाण खेच पोसण कालो अंतर भावो अप्पावहुव सुवगारो
 पदधिकखेचो वदिड ति उरिद्वाणमहियाराणं परुवणाए कीरमाणाए ताव शुष्णिमुत्त
 स्रदअरयाहियाराणमुत्तारिणस्र उचारणं मणिस्सामो । तं चहा—सादि-अणादि ध्रुव
 अश्रुवाणुगमेव दुविहो विरेसो ओवेण आदेसेण य । तत्त्व ओवेण ह्मणीसाए द्वाण
 किं सादिय किमनादियं किं ध्रुव किमश्रुव वा ? सादियं वा अनादियं वा ध्रुव वा अश्रुव
 वा । सेसाणि द्वाण्याधि सादि-अश्रुवाणि । एवं मदि-सुदअण्णाण-असंबद अचक्खु०

विशेषार्थ—अपरामसम्पत्ति जीवोंके २१ और २२ प्रकृतिरूप स्थानोंके नहीं कहनेका
 कारण यह है कि उपरमसम्पत्ति जीव वर्तनमोहनियकी शपणाका मारम्भ नहीं करते
 हैं । तथा उपरमसम्पत्तिज्योंके समान सम्पत्तिध्याष्टियोंके भी २८ और २९ वे दो
 स्थान होते हैं । ऐसा कहनेका यह अन्तिमार्थ है कि यद्यपि सिध्याष्टि जीव सम्पत्तिध्यात
 गुणस्थानको प्राप्त कर सकता है तथापि जिसने सम्पत्तिप्रकृतिकी खोजना कर ही है ऐसा २७
 विमल्लिखानवाला जीव सम्पत्तिध्यातव गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता । किन्तु शेषोत्तर
 सम्प्रदायमें प्रचलित कर्मप्रकृतिमें बतलाया है कि सम्पत्तिध्यातव गुणस्थानमें २८, २७
 और २९ वे तीन विमल्लिखान होते हैं । इससे यह निमित्त होता है कि कर्मप्रकृतिके
 अन्तिमार्थानुसार २७ विमल्लिखानवाला जीव भी सम्पत्तिध्यातव गुणस्थानको प्राप्त हो
 सकता है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार प्रकृतिज्ञान समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

१२३५ इस प्रकार समुत्कीर्तनाका कथन करके शूर्णिसूत्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा
 सूचित किये गये और उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये समुत्कीर्तना सादि अनादि, ध्रुव,
 अश्रुव, एक जीवकी अपेक्षा सामित्व, अन्त और अन्तर तथा नामा बीबोंकी अपेक्षा मग-
 विचय मागामाग, परिमाण, क्षेत्र स्पर्शन काष्ठ अन्तर, भाव, अस्पष्टत्व, सुवगार, पद-
 निक्षेप और इच्छि इल व्यधिकारोंकी प्ररूपणा करते समय पहले शूर्णिसूत्रके द्वारा सूचित
 किये गये व्यधिकारोंकी उच्चारणाचार्यके द्वारा कही गई उच्चारणाष्टिको करते हैं । यह इस
 प्रकार है—

सादि, अनादि, ध्रुव और अश्रुवालुगमकी अपेक्षा ओष और आवेसके मेरुछे निर्देश
 दो प्रकारका है । अन्तमें ओषनिर्देशकी अपेक्षा ह्मणीस प्रकृतिरूप ज्ञान क्या सादि है
 क्या अनादि है, क्या ध्रुव है क्या अश्रुव है ? ह्मणीस प्रकृतिरूप ज्ञान सादि भी है,
 अनादि भी है ध्रुव भी है और अश्रुव भी है । इस ज्ञानको छोड़कर शेष सभी ज्ञान
 सादि और अश्रुव हैं । इसीप्रकार मतिज्यामी, सुताज्यामी अथवा अचक्षुषरुमी, निष्पा-

मिच्छा०-भवसिद्धि० वत्तव्यं । णवरि, भवसिद्धिएसु ध्रुवं णत्थि । पदविसेसो च जाणियन्वो । अभवसिद्धिएसु अणादियं ध्रुवं च । सेसासु मग्गणासु सादि अद्भुवं ।

एवं सादि-अणादि-ध्रुव-अद्भुवाणुगमो समत्तो ।

❀सामित्तं ति जं पदं तस्स विहासा पढमाहियारो ।

§२३६. कुदो, चोदसमग्गणट्ठाणाणुगयत्थाणमाहारत्तणेण अवट्टाणादो । 'तस्स' अहियारस्स एसा 'विहासा' परूवणा ति एदेण सिस्ससंभालणं कय् ।

❀तं जहा—एक्किस्से विहत्तिओ को होदि ?

§२३७. एदं पुच्छासुत्तं किमट्ठ बुच्चदे ? मत्थस्म पमाणभावपदुप्पायणट्ठ । कधं

दृष्टि और भव्यजीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि भव्य जीवोंके ध्रुवपद नहीं पाया जाता है । यहा पदविशेष अर्थात् जिस मार्गणामे जितने सत्त्वस्थान हैं वे स्थान समुत्कीर्तनासे जान लेना चाहिये । अभव्य जीवोंके अनादि और ध्रुव ये दो पद पाये जाते हैं । शेष मार्गणाओंमें जहा जितने सत्त्वस्थान होते हैं वे सादि और अध्रुव होते हैं ।

विशेषार्थ—२६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सादि और अनादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके पाया जाता है इसलिये इसमे सादि आदि चारों विकल्प वन जाते हैं । किन्तु शेष सत्त्वस्थान अनादि मिथ्यादृष्टिके नहीं होते इसलिये उनमे सादि और अध्रुव ये दो विकल्प ही प्राप्त होते हैं । मूलमे जो मतिअज्ञान आदि मार्गणाए गिनाई हैं वे सादि और अनादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके सम्भव हैं अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु भव्य जीवोंके जब कर्मोंके सम्बन्धकी ध्रुवता नहीं स्वीकार की गई है तब यहा ध्रुव भग कैसे प्राप्त हो सकता है । यही सबव है कि इनके ध्रुव पदका निषेध किया है । इन मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाए बदलती रहती हैं इसलिये उनके सभी प्रकृतिस्थानोंकी अपेक्षा सादि और अध्रुव ये दो ही पद बतलाये हैं । किन्तु अभव्य मार्गणा सदा एकसी रहती है उसमें परिवर्तन नहीं होता और उसमे एक २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान ही पाया जाता है इसलिये उसमें उक्त स्थानकी अपेक्षा अनादि और ध्रुव ये दो ही पद कहे हैं । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार सादि, अनादि ध्रुव और अध्रुवानुगम समाप्त हुआ ।

❀स्वामित्व नामका जो पद है उसका विवरण करते हैं, यह पहला अर्थाधिकार है ।

§२३६. चूकि यह चौदह मार्गणास्थानोंके अर्थाधिकारोंका मूल आधार है अतः यह पहला अधिकार है । उस अधिकारकी यह विभासा अर्थात् विशेष रूपसे प्ररूपणा की जाती है । इससे शिष्यको सावधान किया गया है ।

❀वह इस प्रकार है—एकप्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ?

§२३७. शंका—यह पृच्छासूत्र किसलिये कहा है ?

पुच्छादो पमाणमाबावगमो ? एस गोदमसामिपुच्छा तिरिघपरविसया वेष तेण पमाणत्तमवगम्मदे, सगकत्तारत्त वा अवणिदमेदेण सुपेण ।

⊗णियमा मणुस्तो वा मणुस्तिणी वा न्वघओ एदिस्से चिहत्तिप सामिओ ।

१२३८. मणुस्तो वेष, गिरय तिरिक्ख-वेषगईसु मोहक्खवप्पाय अमावादो । त पि कुदोणम्भदे ? 'णियमा मणुस्तो' ति वयणादो । 'वा' सरेण ण अण्णगईणं गइण; मणुस्तिणी-समुच्चयद्द ववियस्स अण्णगइगइणविरोहादो । विदिओ 'वा' सरो मणुस्तिणीसमुच्चयदो ति काळ्ण पडम 'वा' सरो गइसमुच्चयदो ति किण्ण वेप्पदे ? ण, दोण्हं 'वा'सइणी

समाधान-शास्त्री प्रमाणवाक्ये प्रतिपादन करनेके लिये कहा है ।

द्वंद्व-पुच्छाक द्वारा शास्त्री प्रमाणवाक्य ज्ञान कैसे होता है ?

समाधान-जुक्ति यह पुच्छा गौतम स्वामीने तीर्थंकर महावीर भगवान से की है ।

अथ इससे शास्त्री प्रमाणवाक्य ज्ञान हो जाता है ।

अथवा, जूर्णिसूत्रकारने इस सूत्रके द्वारा अपने कर्तृत्वका निवारण कर दिया है अर्थात् इससे उन्होंने यह सूचित किया है कि यह वस्तु उनकी स्वयं की उपज नहीं है, किन्तु गौतम स्वामीने भगवान महावीरसे जो प्रश्न किये थे और उन्हें जमका ओ बरर प्राप्त हुआ था वसे ही उन्होंने निबद्ध किया है ।

अनियमसे अपक मनुष्य और मनुष्यनी ही एकप्रकृतिक स्वानविभक्तिका स्वामी होता है ।

१२३८. मनुष्य ही एक प्रकृतिकस्वानविभक्तिका स्वामी है, क्योंकि मरकगति, तिर्यच गति, और देवगतिमें मोहनीय कर्मकी अपणा नहीं होती है ।

सूत्रा-मरक, तिर्यच और देवगतिमें मोहनीय कर्मकी अपणा नहीं होती यह कैसे ज्ञाना जाता है ?

समाधान-जूर्णिसूत्रमें ज्ञाने रूप 'णियमा मणुस्तो' इस वचनसे ज्ञाना जाता है कि एक ही गतिमें मोहनीय कर्मका अण नहीं होता है ।

अथ कहा जाय कि 'मणुस्तो वा' कहाँ शिव 'वा' शब्दसे अन्य मरकगति गतिबोका प्रहण हो जावग्य सो भी बात नहीं है क्योंकि यहाँ पर 'वा' शब्द मणुष्यनिबोके समुच्चयके लिये रक्ता गया है, अथ वससे अन्य गतिकका प्रहण मानने में विरोध आता है ।

द्वंद्व-'मणुस्तिणी वा' यहाँ पर शिवत वृत्तरा 'वा' शब्द मणुष्यनिबोके समुच्चयके लिये है ऐसा मानकर पदार्थ 'वा' शब्द अन्य गतिबोके समुच्चयके लिये है ऐसा क्यों नहीं प्रहण किया जाता है ?

उत्तसमुच्चय चैय पउत्तीदो । 'मणुस्सो' ति वुत्ते पुरिस-णउंसयवेदविसेसणोवलक्खिय-मणुस्साणं गहणमण्णहा तत्थ एकस्से विहत्तीए अभावप्पसंगादो । 'खवओ' ति णिहेसो उवसामयपडिसेहफलो । कुदो ? तत्थ एकस्स वि कम्मस्स खवणाभावेण सयलपयडीणं घट्टकयाहलजलवि(चि)-क्खल्लो व्व उवसंतभावेण अवट्टाणादो ।

❀ एवं दोण्हं तिण्हं चउण्हं पंचण्हं एक्कारसण्हं चारसण्हं तेरसण्हं विहत्तिओ ।

§२३६. जहा एकस्से विहत्तीए सामित्तं वुत्तं तथा एदेसिं ट्टाणाणं वत्तव्वं, मणुस्सक्ख-वगं मोत्तूण अण्णत्थ खवणपरिणामाभावादो । तं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चैव सुत्तादो । ते परिणामा मणुस्सेसु व अण्णत्थ किण्ण होंति ? साहावियादो । णवरि, पंचण्हं विहत्ती मणुस्सेसु चैव, ण मणुस्सिणीसु; तत्थ सत्तणोकसायाणमक्कमेण खवणुवलंभादो ।

❀ एक्कावीसाए विहत्तिओ को होदि ? खीणदंसणमोहणिज्जो ।

समाधान—नहीं, क्योंकि उक्त अर्थके समुच्चय करनेमें ही दोनों 'वा' शब्दोंकी प्रवृत्ति होती है, अतः प्रथम 'वा' शब्दके द्वारा अन्य गतियोंका समुच्चय नहीं किया जा सकता है ।

चूर्णिसूत्रमें 'मणुस्सो' ऐसा कहनेपर पुरुषवेद और नपुंसकवेदसे युक्त मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये, अन्यथा नपुंसकवेदी मनुष्योंमें एक प्रकृतिस्थान विभक्तिके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । चूर्णिसूत्रमें 'क्षपक' पदसे उपशामकोंका निषेध किया है, क्योंकि उपशामकोंके एक भी कर्मका क्षय न होकर जिसप्रकार जलमें निर्मलीफलको घिस कर डालने से उसका कीचड़ उपशान्त होजाता है उसी प्रकार समस्त कर्मप्रकृतिया उपशान्तरूपसे अवस्थित रहती हैं ।

❀ इसीप्रकार दो, तीन, चार, पांच, ग्यारह, बारह और तेरह प्रकृतिरूप स्थानोंके स्वामी नियमसे मनुष्य और मनुष्यनी होते हैं ।

§ २३६. जिसप्रकार एक विभक्तिका स्वामी कहा उसीप्रकार इन स्थानोंका स्वामी कहना चाहिये, क्योंकि मनुष्य ही क्षपक होता है । उसे छोड़ कर अन्य देव नारक आदि जीवोंमें क्षपणाके योग्य परिणाम नहीं होते ।

शंका—अन्य गतियोंमें क्षपणारूप परिणाम नहीं होते यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—वे परिणाम मनुष्योंके समान अन्यत्र क्यों नहीं होते ?

समाधान—ऐसा स्वभाव है ।

यहा इतनी विशेषता है कि पांच प्रकृतिरूप स्थान मनुष्योंमें ही पाया जाता है मनुष्यनियोंमें नहीं, क्योंकि मनुष्यनियोंके सात लोकपायोंका एक साथ क्षय होता है ।

❀ इक्कीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी कौन होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका

३२४० ईशानमोहणीयकस्य वणा वि चारिचमोहनीयकस्य वन व मनुस्सेसु येव होवि-
 'णियमा मनुस्सगदीए' ति वयणादो । तम्हा णियमा मनुस्सो वा मनुस्सिणी वा खपओ
 ति एत्थ वि सामिचं वत्तम्भं ? न, खीणदसणमोहणीय चउगर्हसु उप्पज्जमाण पेत्तिसहूण
 वेरईओ तिरिक्खो मनुस्सो देवो खीणदसणमोहणीओ एक्खीसपयच्चिटाणस्स सामी
 होदि ति त्हा वयणादो । खविय चउग्गहसुप्पज्जाण पुम्भुत्तहाणाणि चउगर्हसु किम्भ
 उम्भंति ? न, चारिचमोहकस्य वयापं णिम्भीजीकयसतकम्माण सेसगर्हसु उप्पचीए
 वभावादो ।

अर्थात् सायं विहसिओ को होवि ? मनुस्सो वा मनुस्सिणी वा
 मिच्छते सम्मामिच्छते च आविदे समत्ते सेसे ।

३२४१ एत्थ वि 'मनुस्सो ति बुत्ते पुरिस-अवुसयवेदजीवाण गहणं; अण्णाहा अवुसय

वय कर दिया है ऐसा जीव इक्कीस प्रकृतिकस्थानका स्वामी होता है ।

३२४० श्लोक—अिसप्रकर चरित्रमोहनीयका क्षय मनुष्योंके ही होता है, वसीप्रकर
 दर्शनमोहनीयका क्षय भी मनुष्योंके ही होता है, क्योंकि णियमा मनुस्सगदीए' अर्थात्
 दर्शनमोहनीयका क्षय नियमसे मनुष्यगठिमें होता है ऐसा आगमका बचन है, अतएव इस
 सूत्रमें भी स्वामित्वको बतलाने हुए णियमा मनुस्सो वा मनुस्सिणी वा खपओ' ऐसा
 कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिनके दर्शनमोहनीयका क्षय होगया है ऐसे जीव चारों गति
 योंमें बलात् होते हुए वृत्ते जाते हैं, ततः जिसमे दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है ऐसा नारकी,
 तिर्यच मनुष्य और देव इक्कीस प्रकृतिकस्थानका स्वामी होता है इसलिये सूत्रमें 'सीपवस्तव
 मोहविओ' ऐसा सामान्य बचन दिया है ।

श्लोक—चारिचमोहनीयका क्षय करके चारों गतिबोंमें बलात् हुए जीवोंके पूर्वोक्त एक
 हो आवि प्रकृतिकस्थान क्यों नहीं पाये गते हैं ?

समाधान—नहीं क्योंकि चारिच मोहनीयका क्षय करनेवाले जीव सत्तामें स्थित
 व्यक्तियोंके निर्वाह कर देते हैं अतः कलकी क्षेत्र तदियोंमें अस्तित्व नहीं होती है ।

अर्थात् प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? जिस मनुष्य या मनुष्यनीके
 मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होकर सम्यक्त्व शेष है वह धार्मिक प्रकृतिक
 स्थानका स्वामी होता है ।

३२४१ यहां पर भी 'मनुस्सो पेसा करने से पुरुषवेदी और नर्पुंसकवेदी मनुष्योंका
 ग्रहण करता चाहिये अन्यथा नर्पुंसकवेदी मनुष्योंके दर्शनमोहनीयके क्षयके अभावका प्रसंग
 प्राप्त हो जायगा ।

वेदेसु दंसणमोहक्खवणाभावप्पसंगादो । मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेसु खविदेसु पुणो पच्छा सम्मत्तं खवेंतेण संखेज्जट्टिदिखंडयसहस्साणि पादिय पच्छा चरिमे सम्मत्तट्टिदिखडए पादिदे कदकरणिज्जो णाम होदि । तस्स वि वावीसाए ट्ठाणं; तत्थ सम्मत्तसंत-सम्भावादो । सो वि कालं काऊण सव्वत्थ उप्पज्जदि । तेण 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' त्ति वयणं ण घडदे । किंतु णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा बावीसविहत्तीए सामि त्ति वत्तव्वं ? ण एस दोसो; इच्छिज्जमाणत्तादो । सुत्तविरुद्धं कथमब्भुवंगंतुं सक्किज्जदे ? ण सुत्तविरुद्धो एसत्थो; सुत्तेणेव उवइट्टत्तादो । तं जहा-जदि मणुस्सा चेव बावीसविहत्तिया होंति तो एक्किस्से विहत्तियस्स सामित्ते भण्णमाणे जहा णियमा मणुस्सो णियमा खवगो सामी होदि त्ति भणिद तहा एत्थ वि भणेज्ज ? ण च एवं; णियमसद्दाभावादो । तम्हा चदुसु वि गदीसु बावीसविहत्तिएण होदव्वं । जदि एवं, तो सुत्ते सेसगइग्गहण किण्ण कय ? ण, तालपलवसुत्तं व देसामासियभावेण

शंका-मिध्यात्व और सम्यग्मिध्यात्वके क्षीण हो जानेपर उसके अनन्तर सम्यक्-प्रकृतिको क्षय करने वाला जीव जब सम्यक्प्रकृतिके सख्यात हजार स्थितिखण्डोंका घात करके उसके अन्तिम स्थितिखण्डका घात करता है तब उसकी कृतकृत्य वेदक सज्ञा होती है । इस जीवके भी बाईस प्रकृतिक स्थान पाया जाता है, क्योंकि यहा पर सम्यक्प्रकृतिकी सत्ता पाई जाती है । ऐसा जीव मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है, इसलिये मनुष्य और मनुष्यनी बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी हैं, यह वचन घटित नहीं होता अतः नारकी, तिर्यच, मनुष्य और देव बाईस प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिये ?

समाधान-यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि चारों गतिके जीव बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी हैं यह बात इष्ट ही है ।

शंका-चारों गतिके जीव बाईस प्रकृतिरूप स्थानके स्वामी हैं यह कथन उक्त सूत्रके विरुद्ध है । फिर इसे कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

समाधान-यह अर्थ सूत्रविरुद्ध नहीं है, क्योंकि सूत्रमें ही इसका उपदेश पाया जाता है । उसका खुलासा इस प्रकार है-यदि मनुष्य ही बाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी होते तो एक प्रकृतिक स्थानके स्वामित्वका कथन करते समय जिसप्रकार 'णियमा मणुस्सो णियमा खवगो सामी होदि' यह कहा है उसी प्रकार यहा भी कहते । परन्तु यहा ऐसा नहीं कहा क्योंकि उपर्युक्त सूत्रमें 'नियम' शब्द नहीं पाया जाता है, अतः चारों ही गतियोंमें बाईस प्रकृतिक स्थान होना चाहिये यह सिद्ध होता है ।

शंका-यदि ऐसा है तो सूत्रमें शेष गतियोंका ग्रहण क्यों नहीं किया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि जिस प्रकार 'तालपलंब' सूत्र देशामर्षकभावसे अशेष वनस्प-

सेसगण्यरूपपदादौ ।

१२४२ अथवा 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' चि तर्ह्याए विहत्तीए अत्य पढमाविहत्ती गिदेसो ददम्भो । तेण मणुस्सेण वा मणुस्सिणीए वा मिच्छत्ते सम्मामिच्छत्ते च खविदे सम्मत्ते च सेसे वावीसविहत्तीओ होदि चि एदेण सुत्तेष वावीसविहत्तियत्तमवपरुत्तपादुवारेण सामिपचरूढणा कदा । तेण वावीससत्तकम्मिओ अण्णदरो सामि चिसुत्तरथो ददम्भो । अथवा, जइवसहाइरियस्स वे उवएसा । तत्थ कदकरणिओ ष मरदि चि उवदेसम स्सिदण एदं सुत्तं कद, तेण मणुस्सा वेव वावीसविहत्तिया चि मिद । कदकर णिओ मरदि चि उवएसो जइवसहाइरियस्स अत्थि चि कय णम्भदे ? पढमसमयकद करणित्तो अदि मरदि णियमा देवेसु उववअदि । अदि णेरइएसु तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा उववअदि तो भियमा अंतोमुदुचकदकरणित्तो' चि जइवसहाइरियपत्तविदत्तुणि सुत्तादो । वावरि, उच्चारणाइरियउवएसेण पुण कदकरणिओ ण मरइ वेवेचि णियमो तिवोका प्रतिपादक हे तसीप्रकर प्रकृत सूत्र भी वैशामपकमावसे छेप तीन गतियोंका प्ररूपण करता है ।

१२४२ अथवा 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' यह लक्षणा विगच्छिके अर्थमें प्रथमा विभक्तिका निर्देश आनन्ध चाहिये । इसलिये एक सूत्र यह अर्थ हुआ कि मनुष्य वा मनुष्यनीके द्वारा सिध्यात्व और सम्बन्धिष्पात्वका अर्थ कर देनेपर और सम्बन्धप्रकृतिके छेप रहने पर चारों गतियोंका भीच वाईस प्रकृतिरूप स्थानका स्वामी होता है । इस प्रकार इस सूत्रके द्वारा वाईस प्रकृतिक स्थान किसके समर्थ है इसकी प्ररूपणाद्वारा उसके स्वामित्वकी प्ररूपणा की । अतः वाईस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य किसी भी गतिको भीच एक स्थानका स्वामी है यह सूत्रका अर्थ समझना चाहिये ।

अथवा पठित्थम आचार्यके दो उपदेश हैं । उनमेंसे कृतकृत्यवेदक भीच मरण नहीं करता है इस उपदेशका आशय लेकर यह सूत्र प्रकृत हुआ है इसलिये मनुष्य ही वाईस प्रकृतिक स्थानके स्वामी होते हैं यह बात सिद्ध होती है ।

शुक्रा-कृतकृत्यवेदक भीच मरता है यह उपदेश पठित्थमाचार्यका है यह कैसे जामा जाता है ?

समाधान- कृतकृत्यवेदक भीच यदि कृतकृत्य होनेका प्रथम समयमें मरण करता है तो नियमसे वैशोमें उत्पन्न हाता है । किन्तु जो कृतकृत्यवेदक भीच नारकी, तिर्यक और मनुष्योंमें कल्पित होता है वह नियमसे अन्तर्मुहूर्त कालतक कृतकृत्यवेदक रह कर ही मरता है इसप्रकार पठित्थमाचार्यके द्वारा कहे गये पूर्विसूत्रसे जाना जाता है कि कृतकृत्यवेदक भीच मरता है । किन्तु इतनी विदोषता है कि उच्चारणाचार्यके उपदेशानुसार कृतकृत्य वेदक

णत्थि; चउसु वि गईसु वावीसविहत्तियसंतसमुक्किणणादो ।

सम्यग्दृष्टि जीव नहीं ही मरता है ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि उच्चारणाचार्यने चारों ही गतियोंमें बाईस प्रकृतिक विभक्ति स्थानका सत्त्व स्वीकार किया है ।

विशेषार्थ—यहा यतिवृषभ आचार्यने बाईस विभक्तिस्थानका स्वामी मनुष्य और मनुष्यनीको बतलाया है । इसपर शकाकारका कहना है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला मनुष्य जब मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर चुकता है तब बाईस विभक्ति स्थानका स्वामी होता है । इस समय सम्यक्त्वप्रकृतिकी स्थिति आठ वर्ष प्रमाण होती है । यद्यपि जब तक यह जीव कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नहीं हो जाता है तब तक नहीं मरता है इसलिये इस अपेक्षासे बाईस विभक्तिस्थानका स्वामी केवल मनुष्य और मनुष्यनी भले ही हो जाओ, पर कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि हो जाने पर इसका मरण भी देखा जाता है और ऐसा जीव मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न होता है । ६३: बाईस विभक्तिस्थानका स्वामी चारों गतिका जीव होता है यतिवृषभ आचार्यको ऐसा कहना चाहिये था । शकाकारकी इस शकाका वीरसेन स्वामीने तीन प्रकारसे समाधान किया है । पहले तो यह बतलाया है कि बाईस विभक्तिस्थानके स्वामीका कथन करनेवाले उक्त चूर्णिसूत्रमें 'णियमा' पद न होनेसे यह जाना जाता है कि इस स्थानका स्वामी चारों गतियोंका जीव होता है । यद्यपि उक्त सूत्रमें चारों गतियोंका ग्रहण नहीं किया है फिर भी उक्त सूत्र तालप्रलम्ब सूत्रके समान देशामर्षक है अतः 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा' इस पदसे मनुष्यगतिके ग्रहणके समान अन्य तीन गतियोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये । दूसरा समाधान इसप्रकार किया है कि सूत्रमें 'मणुस्सो वा मणुस्सिणी' इसप्रकार जो प्रथमाविभक्त्यन्त पद है वह तृतीया विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये । और इसप्रकार यह तात्पर्य निकल आता है कि बाईस विभक्ति स्थानका प्रारम्भ मनुष्यगतिके ही होता है पर उसकी समाप्ति चारों गतियोंमें हो सकती है । तीसरा समाधान इसप्रकार किया है कि इस विषयमें यतिवृषभ आचार्यके दो उपदेश जानना चाहिये । एक उपदेशके अनुसार कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव मरता नहीं है और दूसरे उपदेशके अनुसार मरता भी है । इनमेंसे पहले उपदेशका संग्रह यहा किया गया है तथा दूसरे उपदेशका संग्रह दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नामक अधिकारमें किया गया है । इसप्रकार वीरसेनस्वामीने उक्त शकाके जो तीन उत्तर दिये हैं उनके देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि पहले दो समाधानोंके द्वारा वीरसेनस्वामीने यतिवृषभ आचार्यके भिन्न दो उपदेशोंके समन्वय करनेका प्रयत्न किया है । और तीसरे उत्तरमें समन्वय करनेकी दिशा छोड़कर मतभेदको स्वीकार कर लिया है । मालूम होता है कि वीरसेनस्वामीके सामने ऐसा कोई स्पष्ट आगमबचन न था जिससे 'कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि

० तेषीसाए बिहत्तिओ को होदि ? मणुस्सो वा मणुस्सिणी वा मिच्छन्ते ऋविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छन्ते सेसे ।

§ २४३ गियमगहबमेत्थ कायम्ब सेसगइमिबारण्ठं ? अ, परद्वयविसेइसुहेण सगह-परुवपसरम्मि गियमुबारण्ठस्स फलामावादो । अत्रोपयोगी श्लोकः—

मिरत्थन्ती परत्थय्यं त्थारं कथयति सुति ।

तमो विबुध्सी मास्य यथा मासयति प्रमा ॥ २ ॥

§ २४४ यदि एव तो एकस्से बिहत्तीए सामिन्नुचे वि गियमगहब य कायम्बं ? अ, तस्स खबगा मणुस्सा वेवेचि अवहारफलवादो । मिच्छन्त सुविय सम्मामिच्छन्तं सुवेवो य मरदि चि कुदो मग्ग्दे ? एवम्मादो वेव सुवादो । कथमेकं सुचं दोह्म बीव न्ही मरता हे' इस मठकी पुष्टि की जासके । फिर भी चूकि बहिवृत्तम आचार्यने दो अर्थोंपर दो प्रकारसे निर्देश किया है इससे सिद्ध होता है कि पतिवृत्तम आचार्यके सामने दो मात्कार्य रही होंगी । यहाँ इतनी विशेषता है कि उच्चारणाचार्यके उपदेशसे कुछ उच्चारण बीव मरता ही नहीं है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि उच्चारणाचार्यने चारों ही गतिबोमें चारों प्रकृतिक स्थानके अस्तित्वका कथन किया है ।

० तेईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? जिस मनुष्य या मनुष्यनीके मिथ्यात्वका क्षय होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व शेष है वह तेईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है ।

§ २४५ श्लोक—इस सूत्रमें शेष तीन गतिबोके निवारण करनेके लिये 'नियम' पदका प्रह्व करना चाहिये ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि प्रत्येक शब्द दूसरे शब्दसे संबन्ध होनेवाले अर्थका प्रतिबोध करके अपने अर्थका प्ररूपण करता है, इसलिये सूत्रमें नियम शब्दके कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है । अब यहाँ उपयोगी श्लोक देते हैं—

‘जिसप्रकार प्रमा अन्धकारका नाश करके प्रकाशमान पदार्थको प्रकाशित करती है उसीप्रकार शब्द दूसरे शब्दके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका निराकरण करके अपने अर्थको प्रकृत करता है ॥ २ ॥’

§ २४६ श्लोक—यदि ऐसा है तो एक प्रकृतिक स्थानके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रमें भी 'नियम' पदका प्रह्व नहीं करना चाहिये ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि इसके स्वामी क्षयक मनुष्य ही होते हैं यह बातअनेके लिये यहाँ 'नियम' पद दिया है ।

श्लोक—मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करनेवाला बीव नहीं मरता, यह कैसे जाना जाता है ?

मत्थाणं परूवयं ? ण, दिवायरस्स अंधयारविणासणदुवारेण घडादिविडित्थपया-
सयस्सुवलंभादो ।

* चउवीसाए विहत्तिओ को होदि ? अणंताणुबंधिविसंजोइदे सम्मा-
दिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा अण्णयरो ।

§ २४५. अट्टावीमसंतकम्मिण्ण अणंताणुबंधीविसंजोइदे चउवीसविहत्तिओ होदि ।
को विसंजोअओ ? सम्मादिट्ठी । मिच्छाइट्ठी ण विसंजोएदि त्ति कुदो णव्वदे ? सम्मादिट्ठी
वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा चउवीसविहत्तिओ होदि त्ति एदम्हादो सुत्तादो णव्वदे ।
अणंताणुबंधिविसंजोइदसम्मादिट्ठिमिह मिच्छत्तं पडिवण्णे चउवीसविहत्ती किण्ण होदि ?
ण, मिच्छत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव चारित्तमोहकम्मक्खधेसु अणंताणुबंधिसरूवेण
परिणदेसु अट्टावीसपयडिसंतुप्पत्तीदो । सम्मामिच्छाइट्ठी अणंताणुबंधिचउकं ण

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—एक सूत्र दो अर्थोंका कथन कैसे कर सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूर्य अन्धकारका विनाश करके उसके द्वारा घटादि नाना
पदार्थोंका प्रकाशन करता हुआ देखा जाता है । इससे प्रतीत होता है कि एक सूत्र दो
अर्थोंका कथन कर सकता है ।

* चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? अनन्तानुबन्धीकी
विसंयोजना करदेनेपर किसी भी गतिका सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव चौबीस
प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है ।

§ २४५. अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर
देने पर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला होता है ।

शंका—विसंयोजना कौन करता है ?

समाधान—सम्यग्दृष्टि जीव विसंयोजना करता है ।

शंका—मिध्यादृष्टि जीव विसंयोजना नहीं करता यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—‘सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिध्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी
है’ इस सूत्रसे जाना जाता है कि मिध्यादृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं
करता है ।

शंका—अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवके मिध्यात्वको प्राप्त
होजानेपर मिध्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसे जीवके मिध्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही
चारित्रमोहनीयके कर्मस्कन्ध अनन्तानुबन्धीरूपसे परिणत हो जाते हैं अतः उसके चौबीस
प्रकृतियोंकी सत्ता न रहकर अट्टाईस प्रकृतियोंकी ही सत्ता पाई जाती है ।

विसंज्ञोपदि चि हृदो यन्वदे ? उचरि मण्णामावुण्णिसुचादो । अविंसंज्ञोपंतो सम्मा
मिच्छाद्वी कर्ण चठवीसविहपियो ? ण, चठवीससतकम्मियसम्मादिडीसु सम्मा-
मिच्छतं पडिबभ्येसु तस्य चठवीसपपडिससुचसंमादो । आरिचमोहवीय तस्य अणताणु
वधिसरूवेण किण्ण परिणमइ ? न, तस्य तप्परिणमणहेडुमिच्छपुदयामाबादो, सासपे
इव विम्बसंकिंसेसामाबादो वा ।

§ २४६ का विसंज्ञोपणा ? अणताणुवधिसचठकसपाव परसरूवेण परिणमण
विसंज्ञोपणा । य परोदयकम्मकसवणाए विपदिचारो, तेसिं परसरूवेण परिणहाय
पुणकल्पणीए अमाबादो । अण्णदरो चि विहेसो किंफत्तो ? खेण्णो थिरिक्खो मज्जुस्सो

धुंका-सम्बग्मिप्यादृष्टि बीव अनन्तालुवग्धी चतुष्कधी विसंबोजन्य मही करता हे
वह कैसे जना जात है ?

समाधान-भक्तो कहे जानेवाले चूर्चिसूत्रसे जाना जाता है कि सम्बग्मिप्यादृष्टि
बीव अनन्तालुवग्धी चतुष्कधी विसंबोजना नहीं करता है ।

धुंका-अधकी सम्बग्मिप्यादृष्टि बीव अनन्तालुवग्धी चतुष्कधी विसंबोजना नहीं
करता है तो वह चौबीस प्रकृतिक स्वानक स्वामी कैसे हो सकता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि चौबीस कर्मोंकी सत्तावाले सम्बग्गुदृष्टि बीवोंके सम्बग्मि
प्यात्वको प्राप्त होनेपर उनके भी चौबीस प्रकृतिवर्षोंकी सत्ता बन जाती है ।

धुंका-सम्बग्मिप्यात्व गुणस्वानमे बीव चरित्रमोहनीयको अनन्तालुवग्धीरूपसे
क्यों नहीं परिणमा लेता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि वहाँ पर चरित्रमोहनीयको अनन्तालुवग्धीरूपसे परिणमानेका
करकभूत मिप्यात्वका उदय नहीं पाया जात है, अथवा सासादन गुणस्वानमे विस
प्रकारके तीव्र संज्ञेरूप परिणाम पाये जाते हैं, सम्बग्मिप्यादृष्टि गुणस्वानमे उतमकारके
तीव्र संज्ञेरूप परिणाम मही पाये जाते हैं, इसलिये सम्बग्मिप्यादृष्टि बीव चरित्रमो
हनीयको अनन्तालुवग्धीरूपसे नहीं परिणमाता है ।

§ २४९ धुंका-विसंबोजना किसे कहते हैं ?

समाधान-अनन्तालुवग्धी चतुष्कके स्वरूपोंके परप्रकृतिरूपसे परिणमा होनेके विसं
बोजन्य कहते हैं ।

विसंबोजन्य इस प्रकार उद्भव करनेपर विसं कर्मोंकी परप्रकृतिके उदयरूपसे
उपजा होती है इनके साथ व्यभिचार (व्यतिप्याप्ति) का जायगा सो भी बात नहीं है,
क्योंकि अनन्तालुवग्धीको छोड़कर पररूपसे परिणत हुए अन्यकर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं
पाई जाती है । अतः विसंबोजन्य उद्भव अन्य कर्मोंकी उपजामें पडित न होनेसे अति
व्याप्ति दोष नहीं जाता है ।

देवो वा सम्माइष्टी सम्मामिच्छाइष्टी च सामिओ होदि ति जाणावणफलो ।

शंका-चूर्णिसूत्रमें जो 'अन्यतर' पदका निदेश किया है उसका क्या फल है ?

समाधान-नारकी, तिर्यच, मनुष्य या देव इनमेसे किसीभी गतिका सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव चौबीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है इस बातके ज्ञान करानेके लिये चूर्णिसूत्रमें 'अन्यतर' पदका ग्रहण किया है ।

विशेषार्थ-अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना वेदकसम्यग्दृष्टि करता है यह तो सर्वसम्मत मान्यता है । पर उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है इसमें दो मत हैं । कुछ आचार्योंका मत है कि उपशमसम्यक्त्वका काल थोडा है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका काल अधिक है अत उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करता है । पर कुछ आचार्योंका मत है कि उपशमसम्यक्त्वके कालमें भी अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है । यह दूसरा मत प्रवाह रूपसे चला आता है, अतः मुख्य है । इससे यह तो निश्चित हो जाता है कि सम्यग्दृष्टि जीव ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करता है । पर ऐसा जीव यदि मिश्र प्रकृतिके उदयसे मिश्रगुणस्थानमें चला जाता है तो वहा भी अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अभाव बन जाता है अत. चौबीस विभक्तिस्थानका स्वामी सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव ही होता है । ऐसा जीव सासादन और मिथ्यात्वमें जा सकता है । पर वहा पहले समयसे ही अनन्तानुबन्धीका बन्ध होने लगता है और चारित्रमोहनीयकी अन्य प्रकृतियोंका अनन्तानुबन्धिरूपसे संक्रमण भी, अतः वहा भी चौबीस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है । यहा वीरसेन स्वामीने विसंयोजनाका 'अनन्तानुबन्धी चतुष्कके स्कन्धोंका परप्रकृतिरूपसे परिणमन करना विसंयोजना कहलाती है' यह लक्षण किया है । यद्यपि और भी ऐसी बहुतसी कर्मप्रकृतियां हैं जिनका परोदयरूपसे क्षय होता है । अत विसंयोजनाका लक्षण परोदयसे होने वाली अन्य प्रकृतियोंकी क्षपणामे चला जाता है इसलिये अतिव्याप्ति दोष आता है । पर इसपर वीरसेन स्वामीका कहना है कि जिस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होनेपर उसकी पुन. संयोजना देखी जाती है उस प्रकार जिन प्रकृतियोंका अन्य प्रकृतियोंके उदयरूपसे क्षय होता है उनकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये विसंयोजनाका लक्षण अन्य प्रकृतियोंकी क्षपणामें नहीं जाता है और इसलिये अतिव्याप्ति दोष भी नहीं आता है । तात्पर्य यह है कि विसंयोजनाके उपर्युक्त लक्षणमे 'पुन. उत्पत्तिकी शक्ति रहते हुए' इतना पद और जोड़ लेना चाहिये इससे विसंयोजनाके लक्षणका परोदयसे होनेवाली कर्मक्षपणामें जो अतिव्याप्ति दोष आता था वह नहीं आता । पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो जाने पर उसकी पुनः संयोजना होती ही है । किन्तु इसका यह अभिप्राय है कि जिसके मिथ्यात्वकी सत्ता है उसके अनन्तानुबन्धीकी पुनः संयोजना हो सकती है । तथा

✽ छत्वीसाए विहृत्तिओ को होदि ? मिच्छाइही नियमा ।

§ २४७ एत्यवणमिच्छादिद्विगिरेसो सेण सेसगुणहापपडिसेइफलो तेण नियम गगहण ष कायव्वमिदि ? ष, मिच्छादिही छत्वीसविहृत्तिओ वेवेचि नियमपडिसेइहं तका(तक्)-रप्पादो ।

✽ सत्तावीसाए विहृत्तिओ को होदि ? मिच्छाइही ।

§ २४८ अट्टावीससंतकम्मिओ उव्वलिदसम्मसो मिच्छाइही सत्तावीसविहृत्तिओ होदि । पथ वि पुब्बिस्सं नियमगगहणमजुवहावेदस्सं, अण्णहा अट्टावीस-छत्वीस ठाण्णम मिच्छादिद्विम्मि अमावप्पसंगादो पि भुचे ण; पुच्चावरसुणेहि तेसिं तत्थ अस्थितसिद्धीदो ।

✽ अट्टावीसाए विहृत्तिओ को होदि ? सम्माइही सम्मामिच्छा इही मिच्छाइही वा ।

जिसने मिष्यात्वका रूप कर दिया है उसके अनन्ताजुबन्धीकी उत्पत्ति नहीं ही होती ।

✽ छत्वीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी कौन होता है ? नियमसं मिष्यादृष्टि जीव छत्वीस प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है ।

§ २४७ श्रुक्का-भूँकि इस सूत्रमें आये हुए 'मिष्यादृष्टि' पदसे ही शेष गुणस्वानोका नियम होजाता है, अतः सूत्रमें 'नियम' पदका महत्त्व नहीं करना चाहिये ?

समाधान-नहीं क्योंकि मिष्यादृष्टि जीव छत्वीस प्रकृतिवर्षोंकी सत्तावाला ही होता है, इसप्रकारके नियमके निषय करनेके लिये पूर्विसूत्रमें मिष्यादृष्टि पदके साथ 'नियमा' पदका महत्त्व किया है । जिससे यह अभिप्राय निष्पन्न आता है कि मिष्यादृष्टि जीव अन्ध प्रकृतिक स्थानोका भी स्वामी होता है । पर छत्वीस प्रकृतिक स्थान केवल मिष्यादृष्टिके ही होता है अन्यके नहीं ।

✽ सत्तावीस विभक्ति स्थानका स्वामी कौन होता है ? मिष्यादृष्टि जीव सत्तावीस विभक्ति स्थानका स्वामी होता है ।

§ २४८ अट्टावीस प्रकृतिवर्षोंकी सत्तावाला मिष्यादृष्टि जीव सम्यक्प्रकृतिवर्षोंकी बनेकना करके सत्तावीस प्रकृतिवर्षोंकी सत्तावाला होता है ।

शंका-इससे पहलेके सूत्रमें कहे गये निष्पन्न पदकी अनुवृत्ति इस पूर्विसूत्रमें भी कर लेनी चाहिये, अन्धका मिष्यादृष्टिमें अट्टावीस और छत्वीस प्रकृतिक विभक्ति स्थानोके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है ।

समाधान-नहीं, क्योंकि इस सूत्रसे पिछले और अगले सूत्रके द्वारा मिष्यादृष्टि जीवमें वृत्त दोमों 'वानोका अस्तित्व सिद्ध हो जाता है ।

✽ अट्टावीस प्रकृतिक विभक्ति स्थानका स्वामी कौन होता है ? सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मि

§ २४६. सुगमतादो एत्थ ण वत्तव्वमत्थि । एवमोघेण जइवसहाइरियसामित्त-
सुत्तत्थं परूविय संपहि उच्चारणाइरिय उवसेण आदेसे सामित्तं भणिस्सामो ।

§ २५०. पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० कायजोगि-चक्खुदं०-अचक्खु०-
भवसिद्धि०-सण्णि-आहारीणं मूलोघमंगो ।

§ २५१. आदेसेण णिरयगईए गोरईएसु अट्टावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स
मिच्छाइट्ठिस्स सम्माइट्ठिस्स सम्मामिच्छाइट्ठिस्स वा । सत्तावीस-छ्वीसविहत्ती कस्स ?
अण्णदरस्स मिच्छाइट्ठिस्स । चउवीस-वावीस-एक्कवीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स
सम्माइट्ठिस्स । एवं पढमाए पुढवीए; तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-
पज्ज०-देव-सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवेजे त्ति वत्तव्वं । विदियादि जाव सत्तमी
त्ति एवं चेव । णवरि, वावीस-एक्कवीसविहत्ती णत्थि । एवं पंचिदियतिरिक्खजोगिणी-
भवण०-वाण-जोदिसियत्ति वत्तव्व ।

ध्यादृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव अट्टाईस प्रकृतिरु विभक्ति स्थानका स्वामी होता है ।

§ २४६. यह सूत्र सुगम है, अतः इस विषयमें अधिक कहने योग्य नहीं है । इस
प्रकार ओषकी अपेक्षा यतिवृषभ आचार्यके स्वामित्व विषयक सूत्रोंका अर्थ कहकर अ
वृत्तारणाचार्यके उपदेशानुसार आदेशकी अपेक्षा स्वामित्वानुयोगद्वाराका कथन करते हैं—

§ २५०. पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, प्रस, प्रसपर्याप्त, काययोगी चक्षुदर्शनी, अचक्षु
दर्शनी, भ्रम्य, सक्षी और आहारक जीवोंके मंग मूलोषके समान जानना चाहिये । तात्पर्य
यह है कि उक्त मार्गणाश्रमोंमें सब विभक्तिस्थानोंका पाया जाना समभव है अतः इनमें
स्वामित्वका कथन मूलोषके समान है ।

§ २५१. आदेशकी अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमें अट्टाईस विभक्तिस्थान किसमें
होता है ? मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि किसी भी नारकीके अट्टाईस
विभक्ति स्थान होता है । सत्ताईस और छ्वीस विभक्ति स्थान किसके होता है ?
किसी भी मिथ्यादृष्टि नारकीके होता है । चौबीस, वाईस और इक्कीस विभक्ति
स्थान किसके होते हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार पहली पृथिवी
तथा तिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच और पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त, सामान्य देव और सौधर्म
पेशान स्वर्गसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देवोंके कथन करना चाहिये । नरककी दूसरी
पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है
कि दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक नारकियोंके बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान
स्थान नहीं होते हैं । इसी प्रकार पचेन्द्रियतिर्यच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर और
व्योतिषी देवोंके भी कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंके २८, २७, २६, २४, २२ और २१ वे

§ २४२ पंचिदियतिरिक्त्वमपञ्च० अद्वाबीस-सत्ताबीस छम्बीस विहारी कस्त ?

सत्त्वस्थान होते हैं। इनमेंसे २८ सत्त्वस्थान नारकिबोंके चारों गुणस्थानोंमें सम्भव है। कारण स्पष्ट है। २७ और २६ सत्त्वस्थान मिथ्यादृष्टिके ही होते हैं, क्योंकि जिसमें सम्बन्धकी बदेखना की है वह २७ सत्त्वस्थानका स्वामी होता है। सो सम्बन्ध की बदेखना चारों गतिका मिथ्यादृष्टि ही करता है इसलिये नारकी मिथ्यादृष्टिके २७ प्रकृतिक सत्त्वस्थान बन जाता है। इसी प्रकार २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी चारों गतिके मिथ्यादृष्टिके ही होता है। यह सत्त्वस्थान दो प्रकारसे प्राप्त होता है। एक ता जो अनादि मिथ्यादृष्टि होता है उसके यह सत्त्वस्थान पाया जाता है और दूसरे जिस मिथ्यादृष्टिने सम्बन्धिमिथ्यात्वकी बदेखनाकी है उसके यह सत्त्वस्थान पाया जाता है। चतुः नरकमें दोनों प्रकारके बीच सम्भव है अतः नारकी मिथ्यादृष्टिके २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी बन जाता है। अब रहे शेष तीन सत्त्वस्थान सो वे सम्बन्धित्त्वत्व में ही प्राप्त होते हैं। जसमें भी केवल जन्ममृत्युवर्षाकी विसर्जना करनेवालेके २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। कृतकृष्णवेदक सम्बन्धित्त्विके २२ प्रकृतिक व क्षात्रिक सम्बन्धित्त्विके २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान होता है। सामान्यसे नारकीक के तीनों ही अवस्थाएँ सम्भव हैं अतः यहाँ एक सत्त्वस्थान भी सम्भव है। इस प्रकार सामान्यसे नारकिबोंके एक सत्त्वस्थान कैसे होते हैं इसका कारण बतलाना। प्रथम नरक आदि कुछ ऐसी मार्गोपाय हैं जिनमें भी एक सब अवस्थाएँ सम्भव हैं अतः वहाँ भी वे सत्त्वस्थान पाये जाते हैं। किन्तु दूसरे नरकसे ऊपर चातुर्वे नरक तकके बीच और पंचेन्द्रिय निर्बंध योनिनी, मन्मथवासी, व्यन्तर और ज्योतिनी देव इनमें कृतकृष्ण वेदकसम्बन्धित्त्विके और क्षात्रिक सम्बन्धित्त्विके बीच नहीं उत्पन्न होते; इसलिये इनके २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं पाये जाते हैं, शेष ९ सत्त्वस्थान पाये जाते हैं। यद्यपि वहाँ उच्चारणादृष्टिमें सामान्यसे तीर्थमें और यज्ञानवासी देवोंके २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान भी बतलाये हैं पर वे पुनःपेरी देवोंके ही जानना चाहिये देखियेके लक्ष्मी क्योंकि सम्बन्धित्त्विके बीच मर कर क्षीयेदियोंमें उत्पन्न नहीं होता ऐसा नियम है। एक बात और है और वह यह कि प्रकृतमें २४ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी सम्बन्धित्त्विके ही बतलाया है अब कि इसका स्वामी सम्बन्धिमिथ्यादृष्टि भी होता है, सो वह सामान्य बचन है इसलिये कोई बिरोध नहीं है। इसी प्रकार २८ प्रकृतिक सत्त्वस्थान सामान्य सम्बन्धित्त्विके भी होता है। पर उच्चारणमें उसका उल्लेख नहीं किया है सो वहाँ सामान्य सम्बन्धित्त्विके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें अन्तर्भाव करके ही ऐसा विधान किया गया है ऐसा समझना चाहिये।

§ २४२ पंचेन्द्रिय निर्बंध कृष्णपयोज्ज जीवोंमें अद्वाबीस, सत्ताबीस और छम्बीस

अण्णदरस्स । एवं मणुसअपज्ज०-पच्चिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-सच्चवएइंदिय-मच्चविग-
लिंदिय-सच्चपचकाय-असण्णि-मदि-सुदअण्णाणि-विहग-भिच्छाड्डी ति वत्तच्च ।

§ २५३. मणुसगईए मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं मूलोघभंगो । एव पचमणजं नि
पंचवषिजोगि - ओरालियकायजोगि ति वत्तच्च । सुक्खेस्साए वि मणुमगडभंगो ।
णवरि, वावीसविहत्ती करस ? अण्णदरस्स देवस्स मणुस्सस्स वा अक्खीणदमण-
मोहणीयस्स । णिरय-तिरिक्खेसु णत्थि । अणुद्दिसादि जाव सच्चवट्ठे ति अट्ठावीस-
चउवीस-एक्कवीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स० । वावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स
अक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी एक लब्धपर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंचके होते हैं । इसी
प्रकार मनुष्य लब्धपर्याप्त, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, त्रस लब्धपर्याप्त सभी एकेन्द्रिय, सभी
विकलेन्द्रिय, सभी पाचों स्थावर काय, असञ्जी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी और
मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । आशय यह है कि उक्त मार्गणावाले जीव मिथ्या-
दृष्टि ही होते हैं और मिथ्यादृष्टियों के २८, २७ और २६ ये तीन सत्त्वस्थान पाये
जाते हैं, अतः यहाँ ये तीन सत्त्वस्थान कहे हैं ।

§ २५३. मनुष्य गतिमें सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके मूलोघके
समान भग कहना चाहिये । इसी प्रकार पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी और औदारिक
काययोगी जीवोंके कहना चाहिये । शुक्ल लेश्यामे भी मनुष्य गतिके समान स्थान होते
हैं । इतनी विशेषता है कि शुक्ल लेश्यामे वाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ?
जिसने दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व प्रकृतिका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे किसी एक देव
या मनुष्यके वाईस विभक्ति स्थान होता है । नारकी और तिर्यंच जीवोंके वाईस विभक्ति
स्थान नहीं होता । तात्पर्य यह है कि मनुष्य गतिको छोडकर अन्य गतियोंमें वाईस
विभक्ति स्थान निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थामे ही पाया जाता है और देवोंके छोडकर उत्तम
भोगभूमिके तिर्यंच तथा पहले नरकके नारकियोंके अपर्याप्त अवस्थामें कापोत लेश्या
ही होती है, अत यहाँ शुक्ल लेश्याके साथ तिर्यंच और नारकियोंके वाईस विभक्ति
स्थानका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे अट्ठाईस, चौवीस और इक्कीस
विभक्ति स्थान किसके होते हैं ? किसी भी देवके होते हैं । वाईस विभक्ति स्थान किसके
होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व प्रकृतिका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे किसी
भी देवके होता है । आशय यह है कि ये देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं इस लिये इनके
२८, २४, २२ और २१ ये चार सत्त्वस्थान ही पाये जाते हैं । २७ और २६ सत्त्व-
स्थान नहीं पाये जाते ।

§ २५४ ओरासिपमिस्स० अद्वावीसविहती कस्त ? अण्णदरस्स तिरिक्ख-मणुस्स मिच्छाद्दिस्स मणुस्सस्स सम्मादिद्दिस्स वा । सचावीस-छब्बीसविहती कस्त ? अण्ण० दुगद्दिस्सिच्छाद्दिस्सि । चउवीसविहती कस्त ? अण्णदरस्स[मणुस्स] सम्माद्दिस्स । वावीसविहती कस्त ? अण्णदरस्स दुगद्दिस्सिच्छाद्दिस्सि । एकवीसविहती कस्त ? दुगद्दिस्सिच्छाद्दिस्सि ।

§ २५५ वेउम्बिय० अद्वावीसविह० कस्त ? देव-पेरद्दिस्सिच्छा० सम्मादिद्दिस्सि

§ २५६ औदारिक मित्र क्ययोगमै अद्वाईम विमत्ति स्थान किसके होता है ? किसी भी मिष्यादृष्टि त्रियच या मनुष्यके तथा सम्मगदृष्टि मनुष्यके होता है । सचाईस और छब्बीस विमत्ति स्थान किसके होते हैं ? त्रियच और मनुष्य इन दोनों गतियोंके किसी भी मिष्यादृष्टि जीवके होते हैं । चौबीस विमत्ति स्थान किसके होता है ? किसी भी सम्मगदृष्टि मनुष्यके होता है । बाईस विमत्ति स्थान किसके होता है ? जिसने वसुधैकुर्वन्मीमांसा क्य नहीं किया है उसे वृत्त दोनों गतियोंके किसी भी वृत्तव्य वेदक सम्मगदृष्टि जीवके होता है । इच्छीस विमत्ति स्थान किसके होता है ? वृत्त दोनों गतियोंके सम्मगदृष्टि जीवके होता है ।

विशेषार्थ—औदारिक मित्र क्ययोग त्रियच और मनुष्यके अपर्याप्त अवस्थामें होता है । अब देखना यह है कि औदारिक मित्र क्य योग अवस्थाक रहते हुए इन दो गतियोंमें से किस गतिमें कौमसा गुणस्थान रहते हुए कौन कौन सस्वरथान होते हैं । यह तो सुनिश्चित है कि वृत्त सम्मगदृष्टि जीव मर कर मनुष्य और त्रियचोंमें नहीं ब्यसन्न होता । इसलिये उपरान्त सम्मगदृष्टि जीवके २८ प्रकृतिक सस्वरथान इन दोनों गतिबोधी अपर्याप्त अवस्थामें नहीं पाया जा सकता । वृत्तव्यवेदकके सिवा वेदक सम्मगदृष्टि जीव मर कर त्रियचोंमें नहीं ब्यसन्न होता ही मनुष्योंमें अवश्य ब्यसन्न हो सकता है इसी से वहाँ औदारिक मित्रक्ययोगके रहते हुए मिष्यादृष्टि मनुष्य और त्रियचको तथा सम्मगदृष्टि मनुष्यको २० प्रकृतिक सस्वरथानका स्थानी बतलाया है । २७ और २६ प्रकृतिक सस्वरथान दोनों गतियोंके मिष्यादृष्टिके होता है । यह स्पष्ट ही है । २४ प्रकृतिक सस्वरथान मनुष्य सम्मगदृष्टिके होनेका कारण यह है कि यथा वेदक सम्मगदृष्टि देव और नारकी मनुष्योंमें ही ब्यसन्न होता है त्रियचोंमें नहीं । यह २२ और २१ ये दो सस्वरथान जो ये दोनों गतियोंमें औदारिक मित्र क्ययोगके रहते हुए वृत्त मोग भूमि अवस्थाकी अपेक्षा सम्भव हैं । इस प्रकार औदारिक मित्र क्ययोगमें २०, २७, २६, २४, २२ और २१ ये छह सस्वरथान किस प्रकार सम्भव हैं इसके कारणका विचार किया ।

§ २५७. वैदिकक्ययोगमै अद्वाईम विमत्तिस्थान किसके होता है ? मिष्यादृष्टि

वा । सत्तावीस-छब्बीसवि० कस्स ? देव-गेरइयमिच्छाइट्टिस्स । चउवीस-एकवीसविह० कस्स ? देव-गेरइयसम्माइट्टिस्स । वावीसविहत्ती णत्थि । एवं वेउन्वियमिस्सकायजो-गीसु वत्तव्वं । णवरि, वावीसविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स देव-गेरइयसम्माइट्टिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ २५६. आहार०-आहारमिस्स० अट्टावीस-चउवीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० वेद-यसम्माइट्टिस्स । एकवीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० खइयसम्माइट्टिस्स ।

§ २५७. कम्मइय० अट्टावीसविह० कस्स ? अण्णदरस्स चउगइमिच्छादिट्टिस्स देव-मणुस्ससम्माइट्टिस्स वा । सत्तावीस-छब्बीसविहत्ती कस्स ? अण्ण० चउगइमिच्छा-या सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीवोंके होता है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टि देव और नारकी जीवोंके होते हैं । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं । सम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीवोंके होते हैं । यहां बाईस विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें बाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीवके होता है ।

विशेषार्थ-वैक्रियिक काययोगमें २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके नहीं पाये जानेका कारण यह है कि यह सत्त्वस्थान मरकर अन्य गतिको प्राप्त हुए जीवके अपर्याप्त अवस्थामें ही होता है और अपर्याप्त अवस्थामें वैक्रियिककाययोग नहीं होता । यही सबब है कि वैक्रियिक काययोगमें २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका निषेध करके वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें उसे बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ २५६. आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें अट्टाईस और चौबीस विभक्ति-स्थान किसके होते हैं ? किसी भी वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्त सयत जीवके होते हैं । इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्त सयतके होता है ।

विशेषार्थ-आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग प्रमत्तसंयतके होते हैं । यद्यपि प्रमत्तसंयतके और भी सत्त्वस्थान पाये जाते हैं पर ऐसा जीव क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिका प्रारम्भ नहीं करता इसलिये उसके वेदक और क्षायिक सम्यक्त्वकी अपेक्षा तीन ही सत्त्वस्थान बतलाये हैं ।

§ २५७. कर्मणकाययोगमें अट्टाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतिके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके और सम्यग्दृष्टि देव तथा मनुष्यके होता है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? दोनों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि

इद्विस्स । चतुर्विंशतिह० कस्स ? अण्ण० दुग्गसम्मइद्विस्स । चावीस-एक्खवीसवि० कस्स ? अण्ण० चठगसम्मइद्विस्स ।

§ २५ = वेदाणुवादेण इत्थिबेद० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगमिच्छा० सम्माइद्विस्स वा । सचावीस-छप्पीसविह० कस्स ? तिगमिच्छाइद्विस्स । चतुर्विंशतिह० कस्स ? अण्ण० तिगसम्मइद्विस्स । तेवीस-चावीस-एक्खवीसवि० कस्स ? अण्ण० मणुसिणीसम्मइद्विस्स । तेरस-चारसविह० कस्स ? अण्ण० मणुसिणीसवयस्स ।

§ २६ = पुरिसवेदे अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगमिच्छा० सम्माइद्विस्स वा । सचावीस-छप्पीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगमिच्छाइद्विस्स । चतुर्विंशतिह०

कीर्णके होता है । यहां दो गतियोंसे देश और मनुष्य गतिक प्रश्न किया है । चाईस और इक्कीस विमत्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि कीर्णके होते हैं । विशेषार्थ—२ = मत्त्वियोंकी सचावाते वेदक सम्मगृष्टि देश वा मारकी मरकर मनुष्योंमें और मनुष्य मरकर देशोंमें ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये कर्मफलप्रयोगके लिये हुए देश और मनुष्यगतिके ही सम्मगृष्टि कीर्ण २ = मत्त्विक उत्तरवानके सामी बतलाये हैं । इसीप्रकार २४ मत्त्विक उत्तरवानके सम्मगृष्टिमें भी आम लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ २५ = वेदमार्गणाके अनुवासे कीर्णमें अट्ठाईस विमत्तिस्थान किसके होता है ? नरकगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कीर्णके होता है । नरकगतिके कीर्णमें नहीं होता इसलिये यहां बसका निषेध किया है । सचाईस और छप्पीस विमत्तिस्थान किसके होते हैं ? नरक गतिके बिना शेष तीन गतियोंके मिथ्यादृष्टि कीर्णके होते हैं । चौबीस विमत्तिस्थान किसके होता है ? उपर्युक्त तीनों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि कीर्णके होता है । तेईस, चाईस और इक्कीस विमत्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यकीके होते हैं । तेरह और चारह विमत्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी क्षणक मनुष्यकीके होते हैं ।

विशेषार्थ—कीर्णकी इत्थ मनुष्य दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षणका कर सकते हैं । इसलिये यहां मनुष्यकीके २३, २२, २१, १३ और १२ उत्तरवान बतलाये हैं । पर कस्सत्थ वेदक सम्मगृष्टि और धार्मिक सम्मगृष्टि कीर्ण मरकर कीर्णियोंमें नहीं उत्पन्न होता इसलिये २२ और २१ मत्त्विक उत्तरवा सामी भी मनुष्यकीके ही बतलाया है । शेषकथन सुगम है ।

§ २६ = पुण्यवेदमें अट्ठाईस विमत्तिस्थान किसके होता है ? तिर्यक, मनुष्य और देश इन तीन गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्दृष्टि कीर्णके होता है । सचाईस और छप्पीस विमत्तिस्थान किसके होते हैं ? उपर्युक्त तीनों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि कीर्णके होते हैं । मारकी पुण्यवेदी नहीं होते इसलिये यहां कथन प्रश्न नहीं किया है ।

कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्टिस्स । एवमेक्कीस । तेवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुससम्माइट्टिस्स अक्खविद-सम्माभिच्छत्तस्स । वावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइ-सम्माइट्टिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स । तेरस-बारस-एकारस-पंचविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्सखवयस्स ।

§ २६० गवुंस० अट्टावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइमिच्छा० सम्माइट्टिस्स वा । सत्तावीस-छब्बीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइमिच्छादिट्टिस्स । चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्टिस्स । वावीसविह० कस्स ? अण्ण० दुगइसम्माइट्टिस्स अक्खीणदंसणमोहणीयस्स । एक्कावीसविह० कस्स ? अण्ण० दुगइसइयसम्मादिट्टिस्स । तेवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्ससम्माइट्टिस्स अक्खविदसम्माभिच्छत्तस्स । तेरस-बारसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्सखवयस्स ।

चौबीस विभक्ति स्थान किसके होता है ? उपर्युक्त तीनों गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । इसी प्रकार इक्कीस विभक्तिस्थान भी उक्त तीन गतियोंके सम्यग्दृष्टि जीवके कहना चाहिये । तेईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने सम्यग्मिध्यात्वका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यके होता है । दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ और मिध्यात्व तथा सम्यग्मिध्यात्वकी क्षपणा मनुष्य ही करता है, इस लिये २३ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी मनुष्यको ही बतलाया है । बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे उक्त तीनों गतियोंके किसी भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । तेरह, बारह, ग्यारह और पाच विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी एक क्षपक मनुष्यके होते हैं ।

§ २६० नपुसकवेदमें अट्टाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतिके मिध्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । देवगतिके नपुसकवेद नहीं होता इसलिये यहा उसका निषेध किया है । सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी जीवके होते हैं । चौबीस विभक्ति स्थान किसके होता है ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । बाईस विभक्ति स्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे नरक और मनुष्यगतिके किसी भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होता है । इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? नरक और मनुष्य गतिके किसी भी क्षायिक सम्यग्दृष्टिके होता है । तेईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने सम्यग्मिध्यात्वका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी भी सम्यग्दृष्टि मनुष्यके है । तेरह और बारह विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी क्षपक मनुष्यके होते हैं ।

विशेषार्थ—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि मरकर नरकगतिके सिवा

‡ २६१ अबगद० अठबीस-एकवीसविह० कस्त ? अण्ण० उवसतकसायस्त ।

एकसरम-यप-बहु-विणि-दोणि-एकविहृत्पी कस्त ? अण्ण० खवयस्त ।

‡ २६२ कसायाणुवाडेण कोषक० अट्टाबीसादि साव पच अचारिविहृत्ति पि मूढो
धमगो । एव माण०, षवरि विविह० अत्थि । एव माया०, गवरि दुविह० अत्थि । एव
लोम० षवरि एयविह० अत्थि । अकसा० अठबीस-एकवीसविह० कस्त ? अण्ण०
उवसतकसायस्त । एव अहाकसाद० ।

‡ २६३ आमिभि० सुद० ओहि० अट्टाबीसविह० कस्त ? अण्ण० सम्माइडिस्त ।
सत्ताबीस-एकवीसविह० णत्थि । सेसावमोषमगो । एवमोहिदमणी-सम्माइडि-मण-
पज्जवणाणीय । एवं सामाइय-छेदो० ।

श्रेय नर्तुसकर्मि नहीं कल्पन होवा इसकिये २२ और २१ प्रकृतिक सखस्यानके स्वामी
नर्तुसकर्मि नारथी और मनुष्य बतखाये हैं । यहाँ मनुष्यपर्याय जिस मन्त्रमें द्वाविक
सम्बन्धर्म पैदा करना है उसी मन्त्रमें अपेक्षा लेना चाहिये । श्रेय कथन सुगम है ।

‡ २६१ अपगतवेदियोंमें चौबीस और इक्कीस विमच्छिखान किसके होते हैं ? किसी
भी उपशान्तकपाय जीवके होते हैं । म्यारह, पांच चार, तीन दो और एक विमच्छिखान
किसके होते हैं ? किसी भी अणुके होते हैं । अपगतवेदियोंके उपशमभेदीकी अपेक्षा २४
और २१ तथा अणुकेभीकी अपेक्षा ११, ५, ४ ३ २ और १ सखरचन होते हैं
यह एक कथनका तात्पर्य है ।

‡ २६२ कपाय मार्गणाके अनुवादसे श्रेयकपायी जीवोंमें अट्टाईस विमच्छिखानसे छेकर
पांच और चार विमच्छिखान तक मूढोभके समान कथन करना चाहिये । इसीप्रकार मात-
कपायियोंके भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके तीन विमच्छिखान भी
पाया जाता है । इसीप्रकार मायाकपायवाले जीवोंके भी कथन करना चाहिये । इतनी
विशेषता है कि इनके दो विमच्छिखान भी पाया जाता है । मायाकपायवालोंके समान
श्रेयकपायवालोंके भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके एक विमच्छिखान
भी पाया जाता है । कपायरहित जीवोंमें चौबीस और इक्कीस विमच्छिखान किसके होते
हैं ? किसी भी उपशान्तकपाय जीवके होते हैं । अणुकापी जीवोंके समान कपाय
संघोंके भी कथन चाहिये ।

‡ २६३ मच्छिखानी, मुत्तखानी और अणुविद्वानी जीवोंमें अट्टाईस विमच्छिखान किसके
होवा है ? किसी भी सम्बन्धके होवा है । एक तीन द्वाविकके जीवोंके सत्ताईस और
एकवीस विमच्छिखान नहीं पाये जाते हैं । श्रेय चौबीस आदि जानोंका जोवके समान
कथन करना चाहिये । अणुविद्वानवाले, सम्बन्धके और मनुष्यपर्यवधानवाले जीवोंके भी
इसीप्रकार समझना चाहिये । इसीप्रकार सामाविक और श्रेयकपायवालोंके भी

§ २६४ परिहार० अट्टावीस-चउवीस-तेवीस-वावीस-एकवीसविह० कस्स ? अण्ण० संजदस्स । सुहुमसांपराइय० चउवीस-एकवीसविह० कस्स ? अण्ण० उवसामयस्स । एकविह० कस्स ? अण्ण० खवयस्स । सजदासंजद० अट्टावीस-चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० दुगईसु वट्टुमाणस्स । तेवीस-वावीस-एकवीसविह० कस्स ? अण्ण० मणुस्सस्स मणुस्सिणीए वा । असंजद० अट्टावीसादि जाव एकवीसं ति ओघमंगो ।

§ २६५ लेस्साणुवादेण किणहलेस्साए अट्टावीसविह० कस्स ? अण्णद० चउगइमिच्छा-इट्ठिस्स, देवगईए विणा तिगइसम्माइट्ठिस्स । छव्वीस-सत्तावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइमिच्छाइट्ठिस्स । चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स । एकवीस-विह० कस्स ? अण्ण० मणुस्स-मणुस्सिणीखइयसम्माइट्ठिस्स । एवं णील-काउलेस्साणं । णवरि काउलेस्साए वावीसविह० कस्स ? अण्ण० तिगइसम्माइट्ठिस्स अक्खीणदसण-समझना चाहिये ।

§ २६४ परिहार विशुद्धिसंयतोंमें अट्टाईस, चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्ति-स्थान किसके होते हैं ? किसी भी सयतके होते हैं । सूक्ष्मसापरायिकशुद्धि सयतोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी उपशामकके होते हैं । एक विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी क्षपकके होता है । सयतासंयतोंमें अट्टाईस और चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? तिर्यंच और मनुष्यगतिमें विद्यमान किसी भी जीवके होते हैं । तेईस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी मनुष्य या मनुष्यनीके होते हैं । असंयतोंके अट्टाईस विभक्तिस्थानसे लेकर इक्कीस विभक्तिस्थान तक ओघके समान समझना चाहिये ।

विशेषार्थ—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर यदि तिर्यंच होता है तो उत्तम भोगभूमिज ही होता है पर वहा सयमासंयमकी प्राप्ति सम्भव नहीं, इसलिये संयतासयत गुणस्थानमें २२ और २१ ये दो सत्त्वस्थान केवल मनुष्य गतिमें ही बतलाये हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ २६५. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यामें अट्टाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीवके और देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके सम्यग्दृष्टि जीवके होता है । छव्वीस और सत्ताईस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतियोंके किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? देवगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है । इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? किसी भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य या मनुष्यनीके होता है । इसी प्रकार नील और कपोत लेश्याओंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कपोत लेश्यामें बाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीका पूरा क्षय

मोहवीयस्त । एक्षीसवीह० कस्त ? अण्य० तिगइत्तइयसम्माइडिस्त ।

१२६६ सेठ-यम्मसेस्सासु अट्टावीसविह० कस्त ? अण्य० तिगइमिन्हा०-सम्मामि-
सम्मादिहीम । सचावीस-छम्पीसविह० कस्त ? अण्य० तिगइमिन्हाइडिस्त । चठ
वीसविह० कस्त ? अण्य० तिगइसम्माइडिस्त । एवमक्षीस० वतव्य । तेवीसविह०
म्ही किंवा हे पेसे नरक, तिर्यक और मनुष्य गतिके किसी भी कृतकस्वदेह सम्बन्धितके
होता है । इक्षीस विमत्तिस्थान किसके होता है ? उक्त तीन गतिबोके किमी भी क्षात्रिक
सम्बन्धित जीवके होता है ।

विशेषार्थ—देवगतिके सिवा छेप हीम गतिबोमें कृष्णलेइयाके रहते हुए सम्बन्धित
और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके जीवोंके २० प्रकृतिक सत्त्वस्थान बन जाता है यह तो स्पष्ट
ही है, किन्तु देवगतिके कृष्णलेइयाके रहते हुए यह स्थान मिथ्यादृष्टिके ही प्राप्त होता है
क्योंकि कृष्णादि तीन अणुम लेइयाके भवनत्रिकमें अपर्णात अवस्थामें ही पाई जाती हैं
और इनके अपर्णात अवस्थामें सम्बन्धसंम नहीं होता । २७ और २६ प्रकृतिक सत्त्वस्थान
चारों गतिके कृष्णलेइयावाले मिथ्यादृष्टिके सम्मम है, क्योंकि पेसे जीवोंके चारों
गतियोंमें पाये जानेमें कोई बाधा नहीं । २७ प्रकृतिक सत्त्वस्थान कृष्णलेइयाके रहते
हुए देवगतिके म्ही वतव्यनेका कारण यह है कि देवगतिके कृष्णलेइया अपर्णात अवस्थामें
भवनत्रिकके पाई जाती है पर वहाँ सम्बन्धसंम नहीं होता पेसा मियम है । कृष्णलेइयामें
२३ और २२ प्रकृतिक सत्त्वस्थान नहीं पाये जाते, क्योंकि इर्द्धनमोहनीयकी अपणाका
प्रारम्भ अणुम लेइयावाले जीवके म्ही होता । २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थान पाषा तो जाता है
पर वह मनुष्य वा मनुष्यनीके ही सम्मम है क्योंकि क्षात्रिक सम्बन्धसंमकी प्राप्ति हो
जानेपर मनुष्यगतिके छहों लेइयायें सम्मम हैं । नीललेइया और कपोतलेइयामें भी इसी-
प्रकार सत्त्वस्थान प्राप्त होते हैं । किन्तु कपोतलेइयामें २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके
सम्बन्धमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि प्रथम नरकके नारकी, भोगभूमिज तिर्यक
और मनुष्यके अपर्णात अवस्थामें कपोत लेइया पाई जानेके कारण कपोत लेइयामें उक्त
तीन गतिके जीव २२ और २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानका स्वामी बन जाता है । प्रथम नरकमें
कपोतलेइया ही है और क्षात्रिकसम्बन्धित मनुष्यके भी कपोतलेइया हो सकती है इसलिये
इस दो गतिके जीव परमत्र अवस्थामें भी २१ प्रकृतिक सत्त्वस्थानके स्वामी हो सकते हैं ।

१२६६ पीत और पद्मलेइयामें अट्टाईस विमत्तिस्थान किसके होता है ? नरकगतिके
छोइकर छेप हीम गतिबोके मिथ्यादृष्टि, सम्बन्धिमिथ्यादृष्टि और सम्बन्धित जीवके होता है ।
सचाईस और छम्पीस विमत्तिस्थान किसके होते हैं ? उक्त तीन गतियोंके किसी भी
मिथ्यादृष्टि जीवके होते हैं । वीवीस विमत्तिस्थान किसके होता है । उक्त तीन गतियोंके
किसी भी सम्बन्धित जीवके होता है । इसीप्रकार इक्षीस विमत्तिस्थानका भी कथन

कस्स ? अण्ण० मणुस० मणुस्सिणीए वा । वावीसविहती कस्स ? अण्ण० दुग्गइअ-
क्खीणदसणमोहणीयस्स । अभव्वसिद्धि० छव्वीसविह० कस्स ? अण्ण० ।

§२६७. खइयस्स एकवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्माइट्ठिस्स । सेसमोघ-
भगो । वेदगसम्माइट्ठिस्स अट्ठावीस-चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्माइट्ठिस्स ।
तेवीसविह० कस्स ? मणुस्सस्स मणुस्सिणीए वा । वावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्मा-
इट्ठिस्स अक्खीणदसणमोहणीयस्स । उवमम० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउग्गइ-
सम्माइट्ठिस्स । चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउग्गइसम्माइट्ठिस्स विसंजोइदाण-
ताणुवधिचउक्कस्स । मामण० अट्ठावीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइमामणसम्मा-
इट्ठिस्स । सम्मामि० अट्ठावीस-चउवीसविह० कस्स ? अण्ण० चउगइसम्माभिच्छाडिट्ठिस्स ।
अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं मामित्तं समत्तं ।

करना चाहिये । तेईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने मिथ्यात्वका क्षय कर
दिया है ऐसे किसी भी मनुष्य या मनुष्यनीके होता है । वाईस विभक्तिस्थान किसके
होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका पूरा क्षय नहीं किया है ऐसे मनुष्य और देवगतिके
किसी भी जीवके वाईस विभक्तिस्थान होता है । अभव्योंमे छव्वीस विभक्तिस्थान किसके
होता है ? किसी भी अभव्यके होता है ।

§२६७ क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमे इक्कीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतियोंके
किसी भी सम्यग्दृष्टिके होता है । क्षायिकसम्यग्दृष्टिके शेष स्थान ओषके समान समझना
चाहिये । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमे अट्ठाईस और चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों
गतियोंके किसी भी सम्यग्दृष्टिके होते हैं । तेईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? मनुष्य
या मनुष्यनीके होता है । वाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने दर्शनमोहनीयका
पूरा क्षय नहीं किया ऐसे चारों गतियोंके किसी भी कृत्यकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके होता है ।
उपशमसम्यग्दृष्टियोंमे अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों गतियोंके किसी भी
सम्यग्दृष्टिजीवके होता है । चौबीस विभक्तिस्थान किसके होता है ? जिसने अनन्ताव-
वन्धीचतुष्ककी विसयोजना कर दी है, ऐसे चारों गतिके किसी भी उपशमसम्यग्दृष्टि-
जीवके होता है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमे अट्ठाईस विभक्तिस्थान किसके होता है ? चारों
गतिके किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमे अट्ठाईस और
चौबीस विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? चारों गतिके किसी भी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके
होते हैं । कर्मणकाययोगियोंके स्थानोंका जिसप्रकार कथन कर आये हैं उसीप्रकार अनाहारक
जीवोंके समझना चाहिये ।

इसप्रकार स्वामित्वानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

* कासो ।

३२६ = अहियारसमालणवयजमेर्द । तस्य कालानुगमेण दुषिहो णिदेसो ओपेण आदेसेम य । तस्य ओपेण एक्किस्से विहचिओ केवधिर कालादो होदि । जहणुज्जस्सेण अंतोमुहुचं । त अहा—इगिबीससंतकम्मिओ येव खवप्पाए अम्भुहेदि, सुद्धसइहमेण विणा चारितमोहकखणानुववचीदो । तदो सो खवगसेडिमम्भुट्टिय अभियट्ठिअद्दाए संखेजे मागे मत्तण तदो अट्टकसाए खवेदि । पुणो अंतोमुहुचमुवरि गंतूण पीप्पगिदीतिय विरयगइ-तिरिक्खगइ-णिरयगइपाओम्माणुपुब्बी [तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुब्बी] एइदिय बीइदिय-सीइदिय-वठरिइदियजादि-आदावुजोव-धावर-सुद्धम-साहारणसरीराधि एदाओ सोलसपयडीओ खवेदि । तदो उवरि अंतोमुहुचं गंतूण मणपजवणाणावरणीय-दाणंत-राइयाण सम्भवादिबधं देसपादिं करेदि । तदो उवरि अंतोमुहुच गंतूण ओहिणाणा वरणीय-ओहिदंसणावरणीय-साहंतराइयाण सम्भवादिबधं देसपादिं करेदि । तदो उवरि अंतोमुहुचं गंतूण सुदणाणावरणीय ब्रचक्खुदंसणावरणीय भोगतराइयाण्यं सम्भवादिबध देसपादिं करेदि । तदो उवरि अंतोमुहुचं गंतूण पक्खुदंसमावरणीयस्स सम्भवादिबध

* अब कालानुयोगद्वारका अभिस्कार है ।

३२६ = 'कासो' यह वचन अर्थाभिस्कारक निर्वेश करनेके लिए दिया है ।

कालानुयोगद्वारकी अपेक्षा ओप और आदेशके मेदसे निर्वेश हो मफारका है । उनसेसे ओपकी अपेक्षा एक विमलित्त्वानात्र किटना काष्ठ है । अपम्भ और अट्टक काष्ठ अन्तर्मुहूर्त है ।

इसका मुख्यता इसप्रकार है—जिसके चारित्रमोहनीयकी इच्छीस प्रकृतियोंकी सत्ता विद्यमान है वही चारित्रमोहकी क्षयजकम मारम्भ करता है क्योंकि ध्यायिकसम्भारम्भके बिना चारित्रमोहकी क्षयना नहीं बन सकती । इसप्रकार चारित्रमोहकी इच्छीस प्रकृतियोंकी सत्ताबन्धा ध्यायिकसम्भारम्भ कीव क्षयकमेपीपर आरोहण करके अनियुक्तिकरणके कारणके संख्यावर्षे मारकोभ्यतीत करके अनन्तर अमत्पत्तवानावरण चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्क क्षय करता है । अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विवाकर सत्यानगृह्णिक, नरकमति, नरकप्रत्यानुपूर्वी, तिर्बचगति तिर्बचगत्त्वानुपूर्वी, पकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति त्रीन्द्रियजाति चतुरिन्द्रियजाति, आवाप, चपोव त्वावर, सूस्मशरीर और साधारणशरीर इन सोलह प्रकृतियोंका क्षय करता है । पुन अन्तर्मुहूर्त विवाकर मनःपर्वेपद्यानावरण और दानान्त रावके सर्वपातिबन्धको देशपातिरूप करता है । इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विवाकर अवधि ज्ञानावरण; अवधिद्वैतावरण और कामान्तरावके सर्वपातिबन्धको देशपातीरूप करता है । इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विवाकर भुवजानावरण अवधुवसैमावरण और भोगान्तरावके सर्वपातिबन्धको देशपातिरूप करता है । इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विवाकर चतुर्वर्तना

देसघादिं करेदि । तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण आभिणिबोहियणाणावरणीय-परिमो-
 गंतराइयाणं सव्वघादिवंधं देसघादिं करेदि । तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण विरियंत-
 राइयसव्वघादिवंधं देसघादिं करेदि । तदो उवरि अंतोमुहुत्तं गंतूण चदुसंजलण-णवणो-
 कसायाणं तेरसण्हं कम्माणमंतरं करेदि, ण अणोसिं; तेसिं चारित्तमोहत्ताभावादो ।
 अंतरं करेमाणो पुरिसवेद-क्रोधसंजलणाणं पढमट्टिदिमतोमुहुत्तपमाणं मोत्तूण अंतर
 करेदि, सेसएक्कारसण्हं कम्माणमुदयावलिं मोत्तूण । तदो कदंतरविदियसमए मोहणी-
 यस्स आणुपुण्विसंकमो लोभस्स असंकमो मोहणीयस्स एगट्टाणिओ बंधो एगट्टाणिओ
 उदओ णत्तुंसयवेदस्स आउत्तकरणसंकामओ सव्वकम्माणं छसु आवलियासु गदासु
 उदीरणा सव्वमोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्टिदिओ बंधो त्ति एदाणि सत्तकरणाणि जुम्वं
 पारभदि । कयंतरविदियसमयप्पहुडि णत्तुंसयवेदं खवेमाणो अंतोमुहुत्तं गंतूण खवेदि ।
 से काले इत्थिवेदक्खवणं पारामिय तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण त पि खविज्जमाणं खवेदि ।
 एदेसिं दोण्हं पि कम्माण खवणकालो पढमट्टिदीए संखेजा भागा । तदो इत्थिवेदे स्त्रीणे
 सत्तणोकसाए अंतोमुहुत्तकालेण खवेमाणो सवेददुत्तरिमसमए पुरिसवेदाचिराणसंतकम्मं

वरणके सर्वघाति वन्धको देशघातिरूप करता है । इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विताकर
 मतिज्ञानावरण और परिभोगान्तरायके सर्वघातिवन्धको देशघातिरूप करता है । इसके
 अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विताकर वीर्यान्तरायके सर्वघातिवन्धको देशघातिरूप करता है ।
 इसके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त विताकर चार संज्वलन और नौ नोकपाय इन तेरह कर्मोंका अन्तर
 करता है और दूसरे कर्मोंका अन्तर नहीं करता, क्योंकि और दूसरे कर्म चारित्रमोहनीयके
 भेद नहीं हैं । उक्त तेरह प्रकृतियोंका अन्तर करते समय पुरुषवेद और क्रोध संज्वलनकी
 अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर ऊपरके निपेकोंका अन्तर करता है । और अनु-
 दयरूप शेष ग्यारह कर्मोंकी उदयावलि प्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर ऊपरके निपेकोंका
 अन्तर करता है ।

तदनन्तर अन्तर करनेके दूसरे समयमे क्षपक जीव मोहनीयका आनुपूर्वी क्रमसे
 सक्रम, लोभका असंक्रम, मोहनीयका एकस्थानिक वन्ध, मोहनीयका एक स्थानिक उदय, नपुं-
 सक वेदका आवृत्तकरण सक्रम, समस्त कर्मोंकी छह आवलीके अनन्तर ही उदीरणाका
 होना और समस्त मोहनीयका संख्यात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिबन्ध इन सात करणोंको एक
 साथ प्रारंभ करता है । फिर अन्तर करनेके दूसरे समयसे लेकर नपुंसकवेदका क्षय करता
 हुआ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालमे उसका क्षय करता है । उसके अनन्तर स्त्रीवेदकी क्षपणाका
 प्रारंभ करके अन्तर्मुहूर्त कालमे उसका भी क्षय करता है । इन दोनों ही कर्मोंका क्षपणाकाल
 प्रथमस्थितिका संख्यात बहुभाग प्रमाण है । इसप्रकार स्त्रीवेदके क्षय हो जानेपर अन्त-
 र्मुहूर्त कालके द्वारा शेष सात नोकपायोंका क्षय करता हुआ सवेद भागके द्विचरम समयमे

छण्णोक्तसायचरिमफालिं च सम्बसक्रमेण कोपसंमल्लणम्मि सकामेदि । तदो सधेदिय चरिमसमयप्पहुडि समयूणदोभावन्नियमेत्तकात्तं पंचविहत्तिओ होदि । से क्खत्ते अबेदयो होदुय अस्सकण्णकरणं करेमाओ पुरिसवेदवत्तवत्तं खवेदि । तम्मि खीये चत्तारि विहत्तिओ होदि । तदो उवरिमतोसुहुत्तं गंतूण अस्सकण्णकरणे समसे चहुण्ह संमल्लणाप्यमेत्तेत्तिस्से संमल्लणाए तिण्णि तिण्णि भादरक्किट्ठीओ अंतोसुहुत्तकात्तेण करेदि । तदो किट्ठीकरणे समसे कोपसंमल्लणम्मि तिण्णि किट्ठीओ बहाकमेण खवेदि । कोपसंमल्लणे क्वदिदे तिण्हं विहत्तिओ होदि । तदो बहाकमेण अंतोसुहुत्तकात्तेण मायासंमल्लण तिण्णिकिट्ठीओ खवेमाओ लोमसंमल्लणपडमकिट्ठीए अम्मत्तरे दुसमयूणदोभावन्नियमेत्त कात्त गंतूण खवेदि । तम्मि खीणे एत्तिस्से विहत्तिओ होदि । तदो बहाकमेण दुसमयूणदोभावन्नियमेत्तकात्तेणूओ लोमपडमविदियत्तदरक्किट्ठीओ लोमसुहुत्तकिट्ठीओ च खवे

पुरुषवेदके सत्तामें स्थित पुराने क्रमोंका और छह मोक्षायोकी अन्तिम कृष्टिका सर्वसम्बन्धके द्वारा श्लेष संव्यञ्जनमें सम्मिलन करता है । तदनन्तर वेदका अनुभव करने बाधा वह जीव सर्वेश्वरमात्रके वरम समयसे छेकर एक समय कम हो आवली कालक पुरुषवेद और चार संव्यञ्जन इन पांच प्रकृतिषोकी सत्तावाक्य होता है । इसप्रकार सर्वेश्वर अनिष्टितिकरणके अनन्तर अवेश्वर अनिष्टितिकरणके कालमें अवेश्वर होकर अवशकर्म करणको करता हुआ पुरुषवेदके तबकालका एक समयकम हो आवली प्रमाण कालके द्वारा क्षय करता है । इसप्रकार पुरुषवेदके क्षीय हो जानेपर वह जीव चार प्रकृतिषोकी सत्तावाक्य होता है । अन्तर्द्वैत प्रमाणकाल विताकर अवशकर्मकरणके समाप्त हो जानेपर अन्तर्द्वैत कालके द्वारा चारों संव्यञ्जन कर्षावर्गमेंसे एक एक संव्यञ्जनकी तीन तीन वादरकृष्टियां करता है । इसप्रकार कृष्टिकरणके समाप्त हो जानेपर श्लेषसंव्यञ्जनकी तीनों कृष्टियोंका वधाक्रमसे क्षय करता है । इसप्रकार श्लेषसंव्यञ्जनके क्षीय हो जानेपर यह जीव तीन प्रकृतिषोकी सत्तावाक्य होता है तदनन्तर अन्तर्द्वैत कालके द्वारा मानसंव्यञ्जनकी तीनों कृष्टियोंका वधाक्रमसे क्षय करता है । इसप्रकार मानसंव्यञ्जनके क्षीय होजानेपर चतुस्र समय यह जीव दो प्रकृतिषोकी सत्तावाक्य होता है । तदनन्तर अन्तर्द्वैतकालके द्वारा मायासंव्यञ्जनकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता हुआ लोमसंव्यञ्जनकी पहली कृष्टिके भीतर दो समय कम हो आवली-मात्र कालको व्यतीत करके तमका क्षय करता है । इसप्रकार मायासंव्यञ्जनके क्षीय हो जाने पर वह जीव केवल एक श्लेषप्रकृतिषोकी सत्तावाक्य होता है । तदनन्तर श्लेषकी पहली और दूसरी वादर कृष्टिका तथा लोमकी सूक्ष्मकृष्टियोंका वधाक्रमसे क्षय करते हुए इस जीवको लोयप्रकृष्टिके क्षय करनेमें विराम काल छगता है तसमेंसे दो समयकम हो जावलीप्रमाण कालके कम कर देनेपर जो काल शेष रहता है वह एक प्रकृतिरूप स्थानका

माणस्स जो कालो सो एगविहत्तियस्स जहण्णकालो होदि ।

§ २६६ उक्खस्सकालो वि अंतीमुहुत्तं । तं जहा-पुरिसवेद-लोभसंजलणाणं उदएण जो खवगसेटिं चडिदो सो कोधमंजलणोदएण खवगसेटिं चडिदस्स अस्सकण्णकरण-काले कोधसंजलणं फहयसरूवेण खवेदि । कोधसंजलणोदएण खवगसेटिं चडिदस्स किट्ठीकरणकाले माणसंजलणं फहयसरूवेण खवेदि । कोधसंजलणोदएण खवगसेटिं चडिदो जेण कालेण कोधसंजलणतिण्णकिट्ठीओ वेदयमाणो खवेदि तम्हि च्चव ट्ठाणे तेणेव कालेण एसो मायासंजलणं फहयसरूवेण खवेदि । कोधोदएण चडिदो जम्मि माणकिट्ठीओ खवेदि तम्हि लोहोदएण चडिदो एगविहत्तिओ होदूण अस्सकण्णकरणं करेदि । कोधोदएण खवगसेटिं चडिदो जम्मि मायाए तिण्ण किट्ठीओ खवेदि तम्मि उदसे तेणेव कालेण लोभस्स तिण्ण किट्ठीओ करेदि । कोधोदएण जम्मि काले लोभपढमविदियत्तादरकिट्ठीओ सुहुमकिट्ठिं च वेदेदि लोहोदएण खवगसेटिं चडिदो लोभकिट्ठीओ तम्हि च्चव उदसे तेणेव कालेण खवेदि । सपहि कोहोदएण जघन्य काल होता है ।

§ २६६ तथा एक प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट कालभी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है । वह इसप्रकार है—पुरुषवेद और लोभसज्वलनके उदयसे जो क्षपकश्रेणीपर चढता है यह जीव, क्रोधसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवका जो अश्वकर्णकरणका काल है, उस कालमें क्रोधसज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है । तथा क्रोधसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसज्वलनके कृष्टिकरणका जो काल है पुरुषवेद और लोभसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उस कालमें मानसज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है । तथा क्रोधसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढा हुआ जीव जिस कालमें क्रोधसज्वलनकी तीन कृष्टियोंका अनुभव करता हुआ उनका क्षय करता है, पुरुषवेद और लोभसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढा हुआ जीव उसी स्थानमें और कालमें मायासज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है । क्रोधसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय मानकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता है लोभके उदयसे चढ़ा हुआ जीव उस समय एक प्रकृतिकी सत्तावाला होकर अश्वकर्ण क्रियाको करता है । क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय मायाकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता है लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव उसी स्थानमें और उसी कालके द्वारा लोभकी तीन कृष्टिया करता है । क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय लोभकी पहली और दूसरी बादर कृष्टियोंका तथा सूक्ष्मकृष्टिका वेदन करता है लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढा हुआ जीव उसी स्थानमें और उसी कालके द्वारा लोभकी तीन कृष्टियोंका क्षय करता है । इसप्रकार क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके दो समय

खरगसेदिं चिदिदस्स सो माणसिणिमिक्किहीवेदयकालो दुसमपुणदोआवसियपरिहीणो मायासंजलणसिणिमिक्किहीवेदयकालो सोमपढमविदियभादराक्किहीण सुहुमकिहीण च सो वेदयकालो सो एक्किस्से विहसियस्स उक्कस्सकालो होदि । जहणकालादो उक्कस्स कालो अतोमुहुचमावेज सारिसो होव्व सखेज्जगुणो ।

* एष दोण्ह तिण्ह चतुण्हं विहसियाण ।

॥२७०॥ जया एक्किस्से विहसियस्स जहणुक्कस्सकालो अतोमुहुच तथा एवेसिंयि जह णुक्कस्सकालो अतोमुहुच वेव । त जहा-दोण्ह विहसियस्स ताव उक्कवे, कोपोत्तएण खरग सेदिं चिदिय माणसिणिमिक्किहीओ खवेमाणो मायाए पढमकिहीवेदयकालम्मतरे दुसम पुणदोआवसियमेचकालं गत्तम माणजबकम्बं खवेदि से काल दोण्हं विहसियो होदि । पुणो मायासंजलणपढमविदियतदिपकिहीओ खवेमाणो मायासंजलणभवकम्बं सोमसंज लणपढमकिहीवेदयकालम्मतरे दुसमपुणदोआवसियमेचकाल गत्तम खवेदि तेण माया संजलणसिणिमिक्किहीवेदयकालो सपलो दोण्ह विहसियस्स जहणमकालो होदि । दोण्हं कम दो आवसिबोसे नून मामकी तीन क्खिपोका ओ वेदक काल है और माया संज लणकी तीन क्खिबोका ओ वेदक काल है, और सोमसंजलणकी पहली और दूसरी भावरक्खिपोका तथा सुसमक्खिक्क ओ वेदक काल है वह सब छोमके चरमसे क्षपक भेयी- पर चरे हुए बीचके एक प्रकृतिरूप स्थानका उत्कृष्ट काळ होता है । एक प्रकृतिरूप स्थानके जपम्यकाळसे क्वीका उत्कृष्ट काळ सामान्यकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त होता हुआ भी संख्यात- गुणा है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त सामान्यकी अपेक्षा दोनों काळ समान हैं फिर भी जपम्यकाळसे उत्कृष्ट काळ संख्यातगुणा है ।

* इसीप्रकार दो, तीन और चार प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंका जपम्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है ।

॥२७०॥ जिस प्रकार एक प्रकृतिस्थानका जपम्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है उसीप्रकार इन स्थानोंका भी जपम्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त समयज्ञता चाहिये । वह इस प्रकार है । चरममें पहले दो प्रकृतिक स्थानका जपम्य और उत्कृष्टकाळ चरते हैं—ज्येष्ठके चरमसे क्षपकभेयीपर चरमेवाका बीच माणसंजलणकी तीन क्खिबोका क्षय करता हुआ मायाकी पहली क्खिके वेदन करनेके काळमेंसे दो समय कम दो आवसीप्रमाण काळके क्वीक होनेपर संजलणस्थानके नवक समयपरवद्धका क्षय करता है और इसप्रकार वेद बीच दो प्रकृतिरूप स्थानका स्वामी होता है । पुनः मायासंजलणकी पहली, दूसरी और तीसरी क्खिक्क क्षय करता हुआ छोमसंजलणकी पहली क्खिके वेदन करनेके काळमेंसे दो समय कम दो आवसी प्रमाण काळके जानेपर मायासंजलणके नवक समयपरवद्धका क्षय करता है । अतः माया संजलणकी तीन क्खिपोका समस्त वेदककाळ दो प्रकृतिक स्थानका जपम्यकाळ

विहत्तियाणमुक्त्सकालो पुण मायासंजलणोदएण खवगसेटिं चडिदस्स अस्सकण्णकरण-
कालं किट्टीकरणकालं मायातिण्णिकिट्टीवेदयकालं च घेत्तूण होदि । कुदो ? पुरिसवेद-
माओदएण जो खवगसेटिं चडिदो सो कोधोदएण चडिदस्स अस्सकण्णकरणकाले
कोधं फहयसरूवेण खवेदि । कोधोदएण चडिदस्स किट्टीकरणकाले माणं फहयसरूवेण
खवेदूण दोण्हं विहत्तियो होदि । तदो कोधकिट्टीवेदयकालम्मि मायालोभसजलणाण-
मस्स (कण्ण) करणं करेदि । पुणो माणकिट्टीवेदयकालम्मि मायालोभसंजलणकिट्टीओ
करेदि । तदो मायासंजलणाए अप्पणो तिण्णिकिट्टीओ पुच्चाविधाणेण खविय एकस्से
विहत्तियो होदि त्ति ।

§ २७१. तिण्हं विहत्तियस्स जहण्णकालो अंतोमुहुत्तं । त जहा—पुरिसवेदकोध-
संजलणाणमुदएण जो खवगसेटिं चडिदि सो कोधसंजलणतिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो
माणपढमकिट्टीअब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण कोधणवकबंधं खवेदि तिण्हं
विहत्तियो होदि । पुणो माणसंजलणतिण्णिकिट्टीओ खवेमाणो मायासजलणपढमकिट्टी-

होता है । दो प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल तो मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणी-
पर चढ़े हुए जीवके अश्वकर्णकरणके कालको मायासंज्वलनके कृष्टिकरणके कालको और
मायासंज्वलनके तीन कृष्टियोंके वेदकालको मिला कर होता है । इसका कारण यह है
कि जो जीव पुरुषवेद और मायाके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है वह, क्रोधके
उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वलनके अश्वकर्णकरणका जो काल है उस
कालमें क्रोधका स्पर्धकरूपसे क्षय करता है । क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए
जीवके क्रोधसंज्वलनके कृष्टिकरणका जो काल है मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा
हुआ जीव उस कालमें मानका स्पर्धकरूपसे क्षय करके दो प्रकृतिरूप स्थानका मालिक होता
है । तदनन्तर क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव जिस समय क्रोधकी तीन
कृष्टियोंका वेदन करता है उस समय, मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव
माया और लोभसंज्वलनकी अश्वकर्णक्रियाको करता है । तदनन्तर क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणी
पर चढ़ा हुआ जीव जिस समय मानकी तीन कृष्टियोंका वेदन करता है उस समय,
मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ जीव माया और लोभसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंको
करता है । तदनन्तर मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ वह जीव मायासंज्वलन सबन्धी
अपनी तीन कृष्टियोंका पूर्वोक्त विधिके अनुसार क्षय करके एक प्रकृतिकी सत्तावाला होता है ।

§ २७१. तीन प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । वह इसप्रकार है—पुरुषवेद
और क्रोधसंज्वलनके उदयसे जो क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है वह क्रोधसंज्वलनकी तीन कृष्टियोंका
क्षय करके मानसंज्वलनकी पहली कृष्टिके कालमेंसे दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके
जानेपर क्रोधसंज्वलनके नवक समयप्रबद्धका क्षय करता है और तब तीन प्रकृतिकस्थानका

अन्तरे दुसमयूषदोआवलिपमेचकाल गतूय जेण खवेदि तेण माणसम्बलणतिष्णिकिही-
 खणकालो तिण्ह विहचियस्स सहण्णकालो होइ । तस्संभ उक्कस्सकालो पुण्हदे । तं
 अहा-ओ पुरिसवेद-माणोदएण खवगसेहिं चाहिदो सो कोपोदएण खवगसेहिं चहिदस्स
 अस्सकण्णकरणकाले कोषसंभलणं फइयसरूबेण खवेदि । तापे तिण्ह विहचियो होदि ।
 तदो कोपोदएण चहिदस्स किहीकरणकाले माण-माया-ओमसंभलणमस्सकण्णकण्ण
 करेदि । कोपोदएणखवगस्स कोषतिष्णिकिहीवेदयकालमि माण-माया-ओमसंभलणार्ण
 किहीओ करेदि । तदो माणसंभलणतिष्णिकिहीओ खवेमायो मायासम्बलणपढमकिट्टि
 अन्तरे दुसमयूषदोआवलिपमेचकाल गतूण माणसम्बलणं जेण खवेदि तेण माणोद
 यखवगस्स अस्सकण्णकरणकालो किहीकरणकालो किहीवेदयकालो च तिण्ह विहचियस्स
 उक्कस्सकालो होदि ।

१२७२ चउत्थ विहचियस्स सहण्णकालो पुण्हदे । त अहा-पुरिसवेदमाणो-
 स्वामी होता है । पुन मानसम्बलणकी तीम कृष्टियोंका क्षय करता हुआ मायासम्बलणकी
 पहली कृष्टिके कासमेंसे दो समय कम दो जावली प्रमाण कासके जानेपर चूँकि बनका
 क्षय करता है इसलिये मानसम्बलणकी तीम कृष्टियोंका जो क्षयकास है वह तीम
 प्रकृतिक स्थानका अपन्यकास होता है ।

अब तीम प्रकृतिक स्थानका उक्कटकास करते हैं वह इस प्रकार है—जो पुरुषवेद
 और मानसम्बलणके उदयसे क्षयकालेपर चढ़ा है वह जीव श्लेषसम्बलणके उदयसे
 क्षयकालेपर चढ़े हुए जीवके श्लेषके अश्बकर्मकरणका जो कास है उस कासमें श्लेष-
 संबलणका स्पर्शरूपसे क्षय करता है । और तब वह जीव तीम प्रकृतिक स्थानका स्वामी
 होगा है । तदनन्तर श्लेषके उदयसे क्षयकालेपर चढ़े हुए जीवके श्लेषसंभलणके तीम
 कृष्टियोंके करनेका जो कास है उसकासमें, मानक उदयसे क्षयकालेपर चढ़ा हुआ जीव
 मान माया और ओमसंभलणकी अश्बकर्मक्रियाका करता है । तथा श्लेषके उदयसे
 क्षयकालेपर चढ़े हुए जीवके श्लेषकी तीम कृष्टियोंके वेदनका जो समय है मानके
 उदयसे क्षयकालेपर चढ़ा हुआ जीव उस समय मान, माया और ओमसंभलणकी तीम
 कृष्टियां करता है । तदनन्तर मानसंभलणकी तीम कृष्टियोंका क्षयण करता हुआ माया
 सम्बलणकी पहली कृष्टिके कासमेंसे दो समय कम दो जावली प्रमाण कासके जानेपर
 मानके मरकचयका चूँकि क्षय करता है इसलिये मानके उदयसे क्षयकालेपर चढ़े हुए
 जीवके अश्बकर्मकरणकास, कृष्टिकरणकास और कृष्टिवेदकालास यह सब मिसकर तीम
 प्रकृतिकस्थानका उक्कटकास होता है ।

१२७२ अब चार प्रकृतिरूप स्थानका अपन्यकास करते हैं । वह इस प्रकार है—जो पुरुष
 वेद और मानके उदयसे क्षयकालेपर चढ़ा है वह जीव, श्लेषसंभलणके उदयसे क्षय-

दण जो खवगसेहिं चडिदो सो कोधसंजलणोदयवखवयस्स अस्सकण्णकरणकालम्भि दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण पुरिसवेदणवकबंधं खवेदि, ताधे चउण्हं विहत्तिओ होदि । तदो कोधसंजलणं फद्दयसरूवेण खवेमाणो माणोदयवखवयस्स अस्सकण्णकरणकालब्भंतरे दुसमयूणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण कोधसंजलणणवकबंधे खवेदि जेण तिण्हं विहत्तिओ होदि, तेण कोधसंजलणस्स फद्दयसरूवेण खवणद्धा चदुण्हं विहत्तियस्स जहण्णकालो होदि । तस्सेव उक्कस्सकालो बुच्चदे । तं जहा—इत्थियेदकोधोदण जो खवगसेहिं चडिदो सो सवेदियचरिमसमए पुरिमवेदबंधगो होदूण तदो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण पुरिसवेदेण सह छण्णोकसाएसु खीणोसु जेण चत्तारि विहत्तिओ होदि तेण कोधोदयवखवगस्स अस्सकण्णकरणकालो किट्टीकरणकालो किट्टीवेदयकालो च दुसमयूणदोआवलियब्भहिओ चउण्हं विहत्तियस्स उक्कस्सद्धा ।

श्रेणीपर चढे हुए जीवके क्रोधसंज्वलनके अश्वकर्णकरणका जो काल है उसमे दो समय-कम दो आवली प्रमाण कालके जानेपर पुरुषवेदके नवकबन्धका क्षय करता है । तब जाकर चार प्रकृतिरूप स्थानका स्वामी होता है । तदनन्तर क्रोधसंज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय करता हुआ वह जीव चूँकि मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढे हुए जीवके अश्वकर्णकरणके कालमें दो समय कम दो आवली प्रमाण कालके व्यतीत होनेपर क्रोधसंज्वलनके नवकबन्धका क्षय करके तीन प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है इसलिये क्रोधसंज्वलनके स्पर्धकरूपसे क्षय होनेका जो काल है वह चार प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल है ।

अब इसी चार प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल कहते हैं । वह इसप्रकार है—जो जीव स्त्रीवेद और क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा है वह सवेदभागके चरम समयमें पुरुषवेदका बन्धक होकर अन्तर्मुहूर्त बिताकर पुरुषवेदके साथ छह नोकषायोंके क्षीण हो जानेपर चूँकि चार प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है इसलिये क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढे हुए जीवके अश्वकर्णकरणकाल, कृष्टिकरणकाल और दो समयकम दो आवलियोंसे अधिक कृष्टिवेदककाल यह सब मिलाकर चार प्रकृतिरूप स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

विशेषार्थ—एक, दो, तीन और चार विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल किस प्रकार प्राप्त होता है इस विषयका ठीक तरहसे ज्ञान करानेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है । इससे दो बातें जानी जाती हैं । एक तो यह कि किस कषायके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढे हुए जीवके चार कषायोंकी क्षपणा किस प्रकार होती है । और दूसरी यह कि किसी एक कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढे हुए जीवके जिस समय अमुक क्रिया होती है उसी समय दूसरी कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढे हुए जीवके कौनसी क्रिया होती है ।

काळ	शोधके उद्यसे	मानके उद्यसे	मायाके उद्यसे	शोमके उद्यसे
अमृत सुदुर्लभ	चारों कृपाभोक्त्र अश्वकर्षकरण	शोधक्षय (नवकवग्णके बिना)	शोधक्षय (नवकवग्णके बिना)	शोधक्षय (नवकवग्णके बिना)
"	शोध, मान माया व शोमकी १२ कृष्टिकरण	मान माया व शोमका अश्वकर्ष करण	मानक्षय (नवकवग्णके बिना)	मानक्षय (नवकवग्णके बिना)
"	शोध तीन कृष्टि क्षय (नवकवग्णके बिना)	मान, माया व शोमकी २ कृष्टि करण	माया और शोमका अश्वकर्ष करण	मायाक्षय (नवकवग्णके बिना)
"	मान तीन कृष्टि क्षय (नवकवग्णके बिना)	मान तीन कृष्टि क्षय (नवकवग्णके बिना)	माया व शोमकी ३ कृष्टि करण	शोमका अश्वकर्ष करण
"	माया तीन कृष्टि क्षय (नवकवग्णके बिना)	माया तीन कृष्टि क्षय (नवकवग्णके बिना)	माया तीन कृष्टि क्षय (नवकवग्णके बिना)	शोम ३ कृष्टि करण
"	शोम तीन कृष्टि क्षय	शोम तीन कृष्टि क्षय	शोम तीन कृष्टि क्षय	शोम तीन कृष्टि क्षय

अश्विदेके उद्यसे जो जीव क्षयकमेपीपर चढ़ता है वह छह मोकपाय और पुरुषवेदका एक साथ क्षय कर देता है, अतः शीवेदके उद्यसे साथ क्षयकमेपीपर चढ़े हुए शीवेके अश्वकणकरणके काळमें या तर्पककल्पसे शोधक्षयके काळमें पुरुषवेदके नवकवग्ण क्षयको प्राप्त न होकर पहले ही निर्धरित होजाते हैं। पर जो जीव पुरुषवेद या मनुसक वेदके उद्यसे साथ क्षयकमेपीपर चढ़ता है उसके अश्वकर्षकरणके काळमें या शोधक्षयके काळमें दो समय कम दो आशुकि काळ तक पुरुषवेदके नवकवग्ण रहते हैं। कोष्ठकके प्रथम नम्बरके चारों स्थानोंमें इतनी विरोधता है जो उनमें नहीं दिखाई गई है। अतः इस विरोधताको ध्यानमें रतना चाहिये, क्योंकि इतनी विरोधताको ध्यानमें रतकर कोष्ठकके ऊपरसे उक्त चारों स्थानोंके अपन्य और अकृष्ट काळके से ध्यानमें सरलता होती है। जब आगे ऊनी काळोंको कोष्ठकके ऊपरसे समझानेका प्रयत्न किया जाता है—जो जीव शोध, मान या मायाके उद्यसे क्षयकमेपीपर चढ़ेगा उसके एक बिमलि स्थानका अपन्य काळ दो समय भूत दो आशुकीकम अमृतसुदुर्लभ होगा। यह बात उक्त नम्बरके प्रारम्भके तीन स्थानोंसे मझी मान प्राप्त हो जाती है। अमृतसुदुर्लभ काळमेंसे दो समय कम दो आशुकिकाळ कम करनेका कारण यह है कि शोमकी तीन कृष्टियोंके क्षय काळमें दो समय कम दो आशुकिकाळ तक मायाके नवकवग्ण पाये जाते हैं। इसीप्रकार इतना काळ कम करनेका कारण अल्पत्र भी जानना। तथा जो जीव शोमके उद्यसे क्षयकमेपीपर चढ़ेगा उसके एक बिमलिस्थानका अकृष्टकाळ प्राप्त होगा। यह बात शोमके उद्यसे क्षयकमेपीपर चढ़े हुए

जीवके कोष्ठकके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे अन्तिम तीन खानोंसे जानी जाती है। यहां लोभका अश्वकर्णकरण, लोभकी तीन कृष्टिकरण और लोभकी तीन कृष्टियोंका क्षय, इम कालमेंसे दो समय कम दो आवली कम कर देनेपर एक विभक्ति स्थानका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है। दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल क्रोध या मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है यह वात ऊपरसे पांचवें नम्बरके प्रारम्भके दो खानोंसे जानी जाती है। वहां मायाकी तीन कृष्टियोंके क्षयका जो काल बतलाया है वही दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल है। यद्यपि मायाके नवकवन्धका क्षय लोभ कृष्टिक्षयके कालमें होता है, अतः दो विभक्तिस्थानका दो समय कम दो आवलिकाल और कहना चाहिये था, पर मायाकृष्टि क्षयके कालमें दो समय कम दो आवलिकाल तक मानके नवक वन्धका क्षय होता रहता है अतः यदि अन्तमें इतना काल बढ़ाया जाता है तो प्रारम्भमें उतनाही काल घटाना पडता है। इसलिये इस घटाने और बढ़ानेकी विधिकी छोडकर मायाकी तीन कृष्टियोंके क्षयका काल दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल है ऐसा कहा। तथा जो जीव मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढता है उसके दो विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल होता है। यह वात मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे तीसरे, चौथे और पांचवें नम्बरके खानोंसे जानी जा सकती है। तीन विभक्तिस्थानका जघन्य काल क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है। यह वात ऊपरसे प्रारम्भके चौथे खानेसे जानी जानी जा सकती है। विशेष कथन जिस प्रकार दो विभक्तिस्थानके जघन्य कालके कहते समय कर आये हैं उसी प्रकार यहा जानना। तथा तीन विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल मानसज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है। यह वात मानके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे प्रारम्भके दूसरे, तीसरे और चौथे खानेसे जानी जा सकती है। चार विभक्तिस्थानका जघन्यकाल स्त्रीवेदके विना शेष दो वेदोंमेंसे किसी एकके साथ मान, माया व लोभके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है। यह वात प्रथम नम्बरके कोष्ठकके अन्तके तीन खानोंसे जानी जाती है। तथा चार विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल स्त्रीवेद और क्रोधके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके होता है यह वात क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जो छह खाने दिये हैं उनमेंसे प्रारम्भके तीन खानोंसे जानी जाती है। यहा स्त्रीवेदके उदयकी प्रधानतासे उत्कृष्ट काल इसलिये कहा है कि ऐसे जीवके चारों कषायोंके अश्वकर्णकरणके कालमें पुरुषवेदके नवकवन्ध नहीं रहते। अतः अन्यवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके दो समय कम दो आवलि काल अधिक प्राप्त होता है। इसप्रकार एक, दो, तीन और चार विभक्तिस्थानोंका जघन्य व उत्कृष्ट काल जानना चाहिये।

ॐ पंचण्ड विहसिओ केबविर कालावो ? जहण्णुदस्सेण दोआवलि-
याओ समयूणाओ ।

§ २७३ कूदो ! कोवसअल्लपुसिसेदोदएण पसुवगसेदिं चडिदस्स सवेदियहुचरिम
समए लण्णोकसाण्हि सह खविदपुरिसवेदधिराणसंतस्स सवेदियचरिमसमए समयूणदो-
आवलियमेतपुरिसवेदजबकसमयपबद्धानुबलंमादो । धिराणसतसमयपबद्धानं च
नबकसंघसम्भसमयपबद्धानमेकसराहेण विमासो किण्ण होदि ? ज, बंधावलिपाए अइ
संताए पुणो संक्रमणआवलिपचरिमसमए सम्भणवकनचायं पिस्संतमापुबलमादो ।
ते च समयूणदोआवलिपजबकसमयपबद्दा कमेयेव परसरूवेण मच्छंति बंधावलिप
सक्रमणावलिपचरिमसमयाण सम्भसमयपबद्दसबंधिपाणमकमेण समधीए अमावात्तो ।

ॐ पांच प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय
कम दो आबडीप्रमाण है ।

§ २७३ छंका—पांच प्रकृतिक ज्ञानका एक समय कम दो आबडीप्रमाण काल क्यों है ?
समाधान—क्योंकि जो कोवसंज्वलन और पुरुषवेदके क्षयके साथ क्षयकमेजीपर चढ़ा
है, अतएव जिसने सवेदभागके चिचरम समयमें छह नोकपारोंके साथ पुरुषवेदके सत्तामें
स्थित पुटने कर्मोंका नारा कर दिया है, उसके सवेदभागके चरम समयमें एक समय कम
दो आबडी प्रमाण कालक स्थित रहनेवाके पुरुषवेदसंबन्धी नबक समयप्रबद्ध पाये जाते हैं ।
अतः पांच प्रकृतिक ज्ञानका जपन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आबडी होगा है ।

छंका—पुटने सत्कर्मोंके समान सम्पूर्ण नबक समयप्रबद्धोंका सहीसमय एकसाथ नारा
क्यों नहीं हो जाया ?

समाधान—नहीं क्योंकि बन्धावलिके व्यतीत हो जानेके अनन्तर संक्रमणावलि
अन्तिम समयमें सम्पूर्ण नबक समयप्रबद्धोंका विनाश देखा जाता है, इसलिये पुटने
सत्कर्मोंके साथ नबक समयप्रबद्धोंका नारा नहीं होता ।

तथा एक समय कम दो आबडीप्रमाण से नबक समयप्रबद्ध कमसे ही परमकृतिरूपसे
संक्रान्त होते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण समयप्रबद्धसम्बन्धी बन्धावलि और संक्रमणावलि
अन्तिम समयमें ही एकसाथ समाप्ति नहीं हो सकती ।

विशेषार्थ—यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि क्षीयके क्षयके साथ क्षयकमेजी-
पर चढ़े हुए क्षीयके छह नोकपारोंकी क्षयके साथ पुरुषवेदका क्षय हो जाता है अतः
वेसे क्षीयके पांच विमल्लिस्थान मही होता । पर जो पुरुषवेद या मपुसकवेदके क्षयके
साथ क्षयकमेजीपर चढ़ता है उसके छह नोकपारोंके क्षयके कालमें पुरुषवेदका क्षयतो
होगा है पर वेसे क्षीयके पुरुषवेदके दो समयकम दो आबडीप्रमाण नबकनबक समयप्रबद्धोंको
जेहकर क्षेपत्र ही क्षय होता है । अतः यह क्षीय दो समय कम दो आबडी काल तक

* एकारसण्हं चारसण्हं तेरसण्हं विहत्ती केवचिरं कालादो होटि ?
जहण्णुक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ २७४. एकारसविहत्तीए ताव उच्चदे । तं जहा-अण्णदरवेदोदएण खवगसेटिं चडिय इत्थिणवुंसयवेदेसु खविदेसु एकारसविहत्ती होदि । ताव सा होदि जाव छण्णोक-साया परसरूवेण ण गच्छंति । एसो एकारसविहत्तीए जहण्णकालो । उक्खस्सओ वि छण्णोकसायखवणकालो चैव अण्णत्थ एकारसविहत्तीए अणुवलंभादो । णवरि, छण्णो-कसायखवणजहण्णकालादो उक्खस्सकालेण विसेसाहिएण सखेज्जगुणेण वा होदब्बं, अण्णहा एकारसविहत्तिकालस्स जहण्णुक्खस्सविसेसणाणुवत्तीदो । अहवा जहण्णकालो उक्खस्सकालो च सरिसो छण्णोकसायखवणद्वामेत्तत्तादो । ण च छण्णोकमायखवणद्वा अणवाट्टिदो सव्वेसिं पि जीवाणं सरिसेत्ति भणंताणमाइरियाणमुवदेसालवणादो । ण च पांच विभक्तिस्थान वाला रहता है । यही सबब है कि पांच विभक्तिस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल दो समयकम दो आवलिप्रमाण वतलाया है ।

* ग्यारह, बारह और तेरह प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २७४. पहले ग्यारह प्रकृतिक स्थानका काल कहते हैं । वह इसप्रकार है—तीनों वेदोंमेंसे किसी एक वेदके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढकर स्त्रीवेद और नपुसकवेदके क्षपित हो जानेपर ग्यारह प्रकृतिक स्थान होता है । यह स्थान तवतक होता है जबतक छह नोकपाय परप्रकृतिरूपसे सक्रान्त नहीं होती हैं । ग्यारह प्रकृतिक स्थानका यह जघन्य काल है । इस स्थानका उत्कृष्ट काल भी छह नोकपायोंके क्षपणाका जितना काल है उतना ही होता है, क्योंकि छह नोक-पायोंके क्षपणोन्मुख जीवको छोड़कर अन्यत्र ग्यारह प्रकृतिक स्थान नहीं पाया जाता है । इतनी विशेषता है कि छह नोकपायोंकी क्षपणाके जघन्य कालसे छह नोकपायोंकी क्षपणाका उत्कृष्ट काल विशेषाधिक होना चाहिये वा सख्यातगुणा होना चाहिये । यदि ऐसा न माना जाय तो ग्यारह प्रकृतिक स्थानके कालके जो जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण दिये हैं वे नहीं बन सकते हैं । अथवा, उक्त स्थानका जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल समान है, क्योंकि दोनों काल छह नोकपायोंकी क्षपणामें जितना समय लगता है तत्प्रमाण हैं । यदि कहा जाय कि छह नोकपायोंकी क्षपणाका काल अनवस्थित है अर्थात् भिन्न भिन्न जीवोंके भिन्न भिन्न होता है सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि सभी जीवोंके छह नोकपायोंकी क्षपणाका काल सदृश है, इसप्रकारका कथन करनेवालोंको आचार्योंके उपदेशका आलम्बन है, अर्थात् आचा-र्योंका इसप्रकारका उपदेश पाया जाता है । यदि कहा जाय कि ऐसी अवस्थामें ऊपर चूर्णिसूत्रमें कालके जो जघन्य और उत्कृष्ट विशेषण दे आये हैं वे निष्फल हो जायेंगे सो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि दोनों विशेषण विवक्षाभेदसे दिये गये हैं, इसलिये

अहण्यकस्सविसेसणं पिप्फलत्तमत्तियइ, विषक्खानिसयाण दोण्ह णिप्फलत्तविरोहादो ।
 § २७५ बारसविहरीय उक्कस्सकालो अतोमुहुत्त । त अहा-इत्थियवेदेम वा पुरिसवेदेण
 वा खवगसेहिं चडिय णरुंसयवेद खविय आधित्थियवेदं ग खवेदि ताव बारसविहरीयस्स
 उक्कस्सकालो अतोमुहुत्तमेवो । अहण्यकालो बारसविहरीय किण्ण सुत्तो ? उवरि
 मणिस्समाणत्तादो ।

§ २७६ तेरसविहरीयस्स अहण्यकालो अतोमुहुत्त । स अहा-इत्थियवेदेण वा पुरिस
 वेदेण वा खवगसेहिं चडिय अहकसापस्सु खविदेसु तेरसविहरीय होदि । सा ताव होदि
 आव णरुंसयवेदसम्भसंक्रमपरिमसमओ चि । एसो तेरसविहरीय अहण्यकालो अतोमुहुत्त
 कालो । संपहि उक्कस्सो सुत्ते । त अहा-णरुंसयवेदोदयेण खवगसेहिं चडिय अह
 कसापस्सु खविदेसु तेरसविहरीय आदी होदि । पुणो ताव तरसविहरीय खेव होदण
 गण्णदि आबिस्सिबेदखवगकालपरिमसमओ चि । एसो तेरसविहरीय उक्कस्सकालो
 अहण्यकालादो इत्थियवेदकखवगकालमेत्तेण अम्महियत्तादो ।

इहै निष्कल माननमें विरोध जाता है ।

§ २७७ बारह प्रकृतिक ज्ञानका अकृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्त है । यह इस प्रकार है—स्त्रीवेदके
 अक्षयके साथ वा पुरुषवेदके अक्षयके साथ अणकमेणीपर चढ़ कर और मनुसकवेदका अण
 करके अणकजीव जब तक स्त्रीवेदका अक्षय नहीं करता है तब तक बारह प्रकृतिक ज्ञानका
 अकृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है ।

प्रश्न—बारह प्रकृतिक ज्ञानका अक्षय काळ क्यों नहीं कहा ?

समाधान—बारह प्रकृतिकज्ञानका अक्षय काळ आगे कहनेवाले हैं, अतः यहाँ
 नहीं कहा ।

§ २७८ तेरह प्रकृतिक ज्ञानका अक्षयकाळ अन्तर्मुहूर्त है । यह इस प्रकार है—स्त्रीवेदके
 अक्षयके साथ वा पुरुषवेदके अक्षयके साथ अणकमेणीपर चढ़ कर अमत्याक्षयानावरण और
 मत्याक्षयानावरण कोष मान माया तथा छोन इन आठ कषायोंके अक्षय कर देनेपर तेरह
 प्रकृतिक ज्ञान होता है । यह ज्ञान तब तक रहता है जब तक मनुसकवेदके सर्वसंक्र-
 मका अन्तिम समय प्राप्त होता है । यह इस ज्ञानका अन्तर्मुहूर्त अक्षयकाळ है ।

जब तेरह प्रकृतिक ज्ञानका अकृष्ट काळ रहते हैं । यह इस प्रकार है—मनुसकवेदके
 अक्षयके साथ अणकमेणीपर चढ़ कर आठ कषायोंके अक्षय कर देनेपर तेरह प्रकृतिक
 ज्ञानका प्रारम्भ होता है । पुनः यह ज्ञान तब तक अस्तित्वमें रहता है जब तक स्त्रीवेदके
 अक्षयकाळका अन्तिम समय प्राप्त होता है । यह तेरह प्रकृतिकज्ञानका अकृष्ट काळ अपने
 अक्षय काळसे स्त्रीवेदके अक्षय करनेका जिवना काळ है अतः अक्षय है ।

§ २७७. संपहि वारसविहत्तियस्स जहण्णकालविसेसपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणदि—

* णवरिवारसण्हं विहत्ती केवचिरकालादो ? जहण्णेण एगसमओ ।

§ २७८. तं जहा—णवुसयवेदोदएण खवगसेटिं चट्ठिय अट्टकसाएसु खविट्ठेसु तेरस-
विहत्ती होदि । पुणो पच्छा णवुंसयवेदमप्पणो एवणपारंभपदेसे आटविय खवेमाणो
णवुंसयवेदमप्पणो खवणकाले अक्खविय इत्थिवेदक्खवणामाटवेदि । पुणो इत्थिवेदेण
सह णवुंसयवेदं खवेमाणो ताव गच्छदि जाव इत्थिवेदचिराणखवणकालतचिरिमसमओ
त्ति तदो सवेदियदुचरिमसमए णवुंसयवेदपट्टमट्टिदीए दोट्टिदिमेत्ताए सेसाए इत्थिण-
वुंसयवेदसव्वसंतकम्ममि पुरिसवेदमि संलुद्धे से काले वारसविहत्तियो होदि, णवुस-
यवेदउदयट्टिदीए तत्थ विणासाभावादो । विदियसमए एकारसविहत्ती होदि, फल दाऊण
पुच्चिल्लट्टिदीए अकम्मसरूवेण परिणमत्तादो । तेण जहण्णेण एगसमओ त्ति वुत्तं ।

२७७ अब वारह प्रकृतिक स्थानके जघन्य कालविशेषके कथन करनेके लिये
आगेका सूत्र कहते हैं—

* इतनी विशेषता है कि वारह प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य
काल एक समय है ।

§ २७८ वारह प्रकृतिक स्थानके जघन्य कालका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—नपुसकवेदके
उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढकर आठ कषायोंका क्षयकर देनेपर तेरह प्रकृतिक स्थान प्राप्त होता
है । इसके पश्चात् नपुसकवेदकी क्षपणाके प्रारम्भस्थानसे नपुसकवेदका क्षय करता हुआ क्षपण-
कालके भीतर नपुसकवेदका क्षय न करके श्रीवेदकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है । अनन्तर
स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका क्षय करता हुआ तब तक जाता है जब तक स्त्रीवेदके सप्तममें
स्थित प्राचीन निपेकोंके क्षपणकालका त्रिचरम समय प्राप्त होता है । अनन्तर सवेद भागके
द्विचरम समयमें नपुसकवेदकी प्रथम स्थितिके दो समयमात्र शेष रहनेपर स्त्रीवेद और
नपुसकवेदसम्बन्धी सप्तम स्थित समस्त निपेकोंके पुरुषवेदमें सक्रान्त हो जानेपर तद-
नन्तर नपुसकवेदी वारह प्रकृतिक स्थानका स्वामी होता है, क्योंकि यहापर नपुसकवेदकी
उदयस्थितिका विनाश नहीं हुआ है । तथा यही जीव दूसरे समयमें ग्यारह प्रकृतिक स्थानका
अधिकारी होता है । क्योंकि पूर्वोक्त स्थिति अपना फल देकर अकर्मरूपसे परिणत हो जाती
है । अतः वारह प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल एक समय कहा है ।

विशेषार्थ—यदि कोई स्त्रीवेद या पुरुषवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है
तो वह आठ कषायोंका क्षय करनेके बाद पहले नपुसकवेदका क्षय करके अनन्तर अन्तर्मु-
हूर्तकालके द्वारा स्त्रीवेदका क्षय करता है । पर जो नपुसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी-
पर चढ़ता है वह आठ कषायोंके क्षय करनेके बाद पहले नपुसकवेदके क्षयका प्रारम्भ
करके बीचमें ही स्त्रीवेदका क्षय करने लगता है और इस प्रकार स्त्रीवेद और नपुसक-

० एकाबीसाय विहृती केयविरं कालावो ? अहृण्येण अतोमुहुसं ।

§ २७६ हृदो ? चतुससंतकम्मिएण तिणिं वि करणाणि काळण खविददंसप मोहणीएव एकवीसमोहपयडीप्पिमाहारचमुवगएण सम्बअहृणंतोमुहुचकालेण खवगसेडि मम्मृष्टिएण अट्टकसायसु खविसेसु इमिषीसविहरीए अहृण्येणतोमुहुचकालेणलभादो ।

० उक्तस्सेण तेतीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ २८ हृदो ? देवस्स पेरइयस्स वा सम्माइडिस्स चतुससंतकम्मियस्स पुम्ब कोडाठअमनुस्सेसुवपजिय गम्मदिअट्टवसणमुवरि दसवमोहखविय इगिषीसविहरीए आदिं कादुम पुम्बकोडिं सम्बसंजममशुपालेवून काल करिय तेतीससागरोवमाटएसु देवेसुप्पखिय पुणो अवसाणे कालं कादुम पुम्बकोडाठएसु मशुस्सेसु उववजिय सम्बज वेदक एक साथ धय करवा हुआ नपुसकवेदके धय होनेके अपान्त्व समपमें ही स्त्रीवेदक सब कर देता है । इस प्रकार बारह प्रकृतिक स्वानके अपान्त्वका एक ससपको छेद कर छेप तेरह और ग्यारह प्रकृतिक स्वानोंके अपान्त्व और उरुहट काठ तथा बारह प्रकृतिक स्वानका एकठकाठ अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होते हैं । ग्यारह विमल्लिस्वानक अपान्त्व और उरुहट काठ समाप्त होता है या अपान्त्वे एकठ काठ विशेषाधिक या संख्यातगुणा होता है । इस सम्बन्धमें अभी अधिक लिखनेके योग्य सामग्री नहीं प्राप्त हुई अतः यहाँ इस विषयमें कुछ नहीं लिखा है । इस विषयकी चर्चा करते हुए पद्यपि भीरसेन स्वामीने पहले अपान्त्व काठसे एकठकाठ विशेष अधिक या संख्यातगुणा होना चाहिये ऐसा निर्देश किया है पर अन्तमें वे स्वयं व्याख्यान परम्परासे प्राप्त हुए उपदेशानुसार इसी नतीजेपर पहुँचनेकी प्रेरणा करते हैं कि दोनों काठ समाप्त होना चाहिये ।

० इक्षीस प्रकृतिक स्वानका कितना काल है ? अपान्त्व काठ अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २७८ उक्ता—इक्षीस प्रकृतिक स्वानक अपान्त्वकाठ अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—चौबीस प्रकृतिषोकी सथाबास कोई एक सम्बन्धि और तीनों करण करके और बर्तनमोहमीयक धय करके इक्षीस मोहप्रकृतियोंक स्वामी होता हुआ सबसे अपान्त्व अन्तर्मुहूर्त काठके द्वारा अपकमेपीपर चढ़ कर आठ कपायोंका धय कर देता है । अतः इक्षीस प्रकृतिक स्वानका अपान्त्व काठ अन्तर्मुहूर्त बन जाता है ।

० इक्षीस प्रकृतिक स्वानका उरुहट काठ साधिक तेतीस सागर है ।

§ २८० उक्ता—इक्षीस प्रकृतिक स्वानका उरुहटकाठ साधिक तेतीस सागर क्यों है ?

समाधान—चौबीस प्रकृतिषोकी सथाबास कोई एक देव वा मारकी सम्बन्धि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ गर्भसे छेकर आठ वर्षके अनन्तर बर्तनमोहमीयक धय करके इक्षीस प्रकृतिक स्वानक स्वामी हुआ । अनन्तर छेप पूर्वकोटि काठ तक सक्क संयमका पाहन करके और मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें

हण्णंतोमुहुत्तसंसारे सेसे अट्टकसाए खविय तेरसविहत्तिभावमुवगयस्स अंतोमुहुत्तन्म-
हियअट्टवस्सेहियूण वेपुच्चकोडीहि सादिरेयतेत्तीससागरोवममेत्तुकस्सकालुवलभादो ।

* वावीसाए तेवीसाए विहत्तिओ केवचिरं कालादो ? जहण्णुक्कस्से-
णंतोमुहुत्तं ।

§ २८१. वावीसविहत्तियस्स ताव उच्चदे । तं जहा, तेवीसविहत्तीएण सम्मामिच्छते
खविदे वावीसविहत्तीए आदी होदि । पुणो जाव सम्मत्तअक्खीणचरिमसमओ ताव
वावीसविहत्तिओ । एसो वावीसविहत्तियस्स जहण्णकालो । उक्कस्सो वि एत्तिओ केव,
एगसमयम्मि वट्टमाणजीवाणमणियट्ठिपरिणामे पडुच्च भेदाभावादो । ण च अणि-
यट्ठीअट्ठ्ठाणं विसरिसत्तमत्थि एगसमयम्मि वट्टमाणजीवपरिणामाणं भेदप्पसंगादो ।

§ २८२. संपहि तेवीसविहत्तीए उच्चदे । तं जहा, चउवीससंतकम्मिण म्च्छते
खविदे तेवीसविहत्तीए आदी होदि । पुणो जाव सम्मामिच्छत्तसंतकम्म सव्वं सम्म-
त्तम्मि ण सल्लुहदि ताव तेवीसविहत्तीए जहण्णकालो । उक्कस्सविवक्खाए वि तेवीसविह-
उत्पन्न हुआ । पुन आयुके अन्तमे मर कर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ
वहाँ संसारमे रहनेका सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल शेष रह जानेपर आठ कपायोंका
क्षय करके तेरह प्रकृतिक स्थानको प्राप्त करता है । इस प्रकार इक्षीस प्रकृतिक स्थानका
उत्कृष्टकाल आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटिसे अधिक तैंतीस सागर होता है ।

* बाईस और तेईस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट
काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २८१ उनमेंसे पहले बाईस प्रकृतिक स्थानका काल कहते हैं । वह इस प्रकार है—
तेईस प्रकृतिकी सत्तावाले किसी जीवके द्वारा सम्यग्मिध्यात्वका नाश कर देनेपर बाईस
प्रकृतिक स्थानका प्रारम्भ होता है । अनन्तर जब तक सम्यक्प्रकृतिके क्षीण होनेका अन्तिम
समय नहीं प्राप्त होता तब तक वह जीव बाईस प्रकृतिक स्थानका स्वामी रहता है ।
बाईस प्रकृतिक स्थानका यह जघन्यकाल है । इसका उत्कृष्टकाल भी इतना ही होता है,
क्योंकि एक कालमें विद्यमान अनेक जीवोंमें अनिवृत्तिरूप परिणामोंकी अपेक्षा भेद नहीं
पाया जाता । यदि कहा जाय कि नाना जीवोंकी अपेक्षा होनेवाले अनिवृत्तिकरणसबन्धी
कालोंमें विसदृशता पाई जाती है सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर जो
जीव अनिवृत्तिकरणमें समान समयवर्ती हैं उनके परिणामोंमें भेदका प्रसंग प्राप्त होता है ।

§ २८२ अब तेईस प्रकृतिक स्थानका काल कहते हैं वह इस प्रकार है—चौबीस प्रकृति
योंकी सत्तावाले जीवके द्वारा मिध्यात्वके क्षयित कर देनेपर तेईस प्रकृतिक स्थानका प्रारम्भ
होता है । अनन्तर जब तक सत्तामें स्थित सम्यग्मिध्यात्व कर्म सम्यक्प्रकृतिमें सक्रमित
नहीं हो जाता तब तक तेईस प्रकृतिक स्थान पाया जाता है और यही इस स्थानका जघन्य

पिकालो एतितो येव, कारव सुगमं ।

० चउबीसविहती केवपिरं कालावो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्त ।

‡ २०३. इदो ? अट्टावीससंतकम्मियस्स सम्माइडिस्स भगताणुवधिपत्तक विसंबोइय पत्तवीसविहतीए आदिं कादूण सम्भजहण्णंतोमुहुत्तमच्छिय खुविदिमिच्छत्तस्स पत्तवीस विहतीए सहण्यकासुवत्तमादो ।

० उक्कस्सेण ये छावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

‡ २०४ इदो ? उक्कीससंतकम्मियस्स छांतवकानिहमिच्छाहइदेवस्स चोरससा गरोवमात्तट्ठिदिपस्स तत्थ पढम सागरे अंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्त पडिबलिय सम्भ उहुपण कात्तेण अजसाणुबंधिपत्तक विसंबोइय पत्तवीसविहतीए आदिं कादूण सम्भ उक्कस्ससुवसमसम्मत्तमच्छिय विदियसागरोवमपढमसमए वेदगसम्मत्तं पडिबलिय तेरससागरोवमाणि सादिरेयाणि सम्भत्तमजुपान्तेदूण काळं कादूण पुब्बकोट्ठात्तमजुस्से सुवबलिय पुणो एदेव मजुस्सात्तएण्णधावीससागरोवमात्तट्ठिदिपस्स वेवेसुवबलिय पुणो

काळ है । उक्क काळकी विवक्षा करनेपर तेईस प्रकृतिक स्थानका उक्क काळ भी इतना ही होता है । अथर्व्य और उक्क दोनों काळके समान होनेका कारण सुगम है ।

० चौबीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? अथर्व्य काळ अन्तर्मुहूर्त है ।

‡ २०५ शंका-चौबीस प्रकृतिक स्थानका अथर्व्य काळ अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान-जिसके प्रारंभमें अट्टाईस प्रकृतिबोधी सत्ता पाई जाती है परन्तान् जिसने अनन्तासुवन्धी बहुपत्तका विषयोजन करके चौबीस प्रकृतिक स्थानको प्रारंभ किया है, और उसके अनन्तर सबसे अथर्व्य अन्तर्मुहूर्त काळतक वहां रहकर सिध्दात्तका क्षय किया है ऐसे सम्पगृह्णि बीवके चौबीस प्रकृतिक स्थानका अथर्व्य काळ पाया जाता है ।

० चौबीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काळ साधिक एकसौ बत्तीस सागर है ।

‡ २०६ शंका-चौबीस प्रकृतिक स्थानका उक्क काळ साधिक एकसौ बत्तीस सागर कैसे है ?

समाधान-जिसके प्रारंभमें उक्कीस कर्मोंकी सत्ता है और जो चौबह सागर आयु वात्थ है वेशा छांतव और कापिष्ठ सर्गका सिध्दात्त देव जब पहले सागरमें अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयुके क्षेप रहनेपर अपसमसम्भक्त्वको प्राप्त करके सबसे कम काळके द्वारा चार अनन्तासुवन्धी बगिबोधी विषयोजना करके चौबीस प्रकृतिक स्थानको प्रारंभ करता है और अपसम सम्भक्त्वके सबसे उक्क काळतक अथर्व्य सम्भक्त्वके साथ रहकर दूसरे सागरके पहले सयबमें वेदक सम्भक्त्वको प्राप्त करके साधिक तेरह सागर अथ तक वहां सम्भक्त्वका पावन करके और मरकर पूर्वोक्ति प्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे मरकर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे कम बाईस सागर प्रमाण आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे

पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय तत्तो कालं काऊण अणंतरमणुस्साउएणूणएक्कीस-
सागरोवमट्टिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तदो अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए सम्मामिच्छत्तं गत्तूण
तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं काऊण पुव्वकोडाउएसु मणुस्से-
सुववज्जिय तदो कालं काऊण मणुस्साउएणूणवीससागरोवमाउट्टिदिएसु देवेसुप्पज्जिय
कालं काऊण पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय पुणो मणुस्साउएणूणवावीससागरोवम
ट्टिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तदो कालं काऊण पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुववज्जिय पुणो अतोमुहु-
त्तन्महियअट्टवस्साहियमणुस्साउएणूणचउवीससागरोवमट्टिदीएसु देवेसुववज्जिय काल
कादूण पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववज्जिय गन्धादिअट्टवस्साणमंतोमुहुत्तन्महियाणमुवरि
मिच्छत्तं खविय तेवीसविहात्तियत्त गयस्स चउवीसविहत्तीए सादारेयवेछावट्टिसागरोव-
ममेत्तुकस्सकालुवलंभादो ।

§ २८५. किमदिरेयपमाणं ? सम्मामिच्छत्त-सम्मत्तखवणकालं उवसमसम्मत्तेण सह
ट्टिदचउवीसविहात्तियकालम्मि सोहिदे सुद्धसेसमेत्तमदिरेगपमाणं । दंसणमोहक्खवण-
कालादो उवसमसम्मत्तकालो संखेज्जुणो त्ति कथं णव्वदे ? अप्पावहुगवयणादो । त
मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योमि उत्पन्न हुआ । फिर वहासे मरकर पूर्वोक्त मनु-
ष्यायुसे न्यून इक्कीस सागरप्रमाण आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ और वहा आयुमें अन्त-
र्मुहूर्त शेष रह जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर तथा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमे
अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर पुन सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और मरकर पूर्वकोटिप्रमाण आयु-
वाले मनुष्योमि उत्पन्न हुआ तदनन्तर वहासे मरकर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे कम वीस सागर-
प्रमाण स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहासे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले
मनुष्योमि उत्पन्न हुआ । फिर पूर्वोक्त मनुष्यायुसे कम बाईस सागरप्रमाण स्थितिवाले
देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहासे मरकर पूर्वकोटिकी जायुवाले मनुष्योमि उत्पन्न हुआ ।
अनन्तर आठवर्ष अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वोक्त मनुष्यायुसे न्यून चौबीस सागरप्रमाण
स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहासे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योमि
उत्पन्न हुआ । वहा गर्भसे आठवर्ष और अन्तर्मुहूर्त कालके व्यतीत हो जानेपर मिथ्यात्वका
क्षय करके तेईस प्रकृतिक स्थानको प्राप्त हुआ । तब उसके चौबीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट
काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर पाया जाता है ।

§ २८५. शंका—अधिक कालका प्रमाण क्या है ?

समाधान—उपशमसम्यक्त्वके साथ स्थित चौबीस प्रकृतिक स्थानके कालमेसे सम्यग्-
मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाके कालको घटा देनेपर जो शुद्धकाल शेष रह जाय
वह यहा अधिक कालका प्रमाण है ।

शंका—दर्शनमोहनीयके क्षपणाकालसे उपशमसम्यक्त्वका काल सख्यातगुणा है यह

ब्रह्मा-सम्भारयोवा पारिपमोहकस्रवण-अभियष्टिब्रह्मा, तस्सेष अपुष्पब्रह्मा सखेजगुणा,
 कसापठवसामयस्स अशियष्टिब्रह्मा सखेजगुणा, तस्सेष अपुष्पब्रह्मा सखेजगुणा,
 दंसणमोहकस्रवण अभियष्टिब्रह्मा सखेजगुणा, तस्सेष अपुष्प-ब्रह्मा सखेजगुणा, अप
 ताशुबभियष्टविसजोएतस्स अभियष्टिब्रह्मा सखेजगुणा, अपुष्पब्रह्मा सखेजगुणा ।
 दसणमोहकवसामयस्स अशियष्टिब्रह्मा सखेजगुणा, तस्सेष अपुष्पब्रह्मा सखेजगुणा,
 उवसमसम्मचदा सखेजगुणे पि ।

कैसे जाना जाता है ?

समाधान-अस्पृश्यत्वके प्रतिपादक बचनोसे जाना जाता है कि दर्शनमोहके क्षणका-
 कालसे उपशमसम्बन्धका काल सख्यातगुणा है । वे अस्पृश्यत्वके प्रतिपादक बचन इस
 प्रकार हैं-पारिमोहके क्षणक अभिवृत्तिकरणका काल सबध कम है । इससे पारिमोहके
 क्षणक अपूर्व करणका काल सख्यातगुणा है । इससे कपायके उपशमक अभिवृत्तिकरणका
 काल सख्यातगुणा है । इससे कपायके उपशमक अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे
 दर्शनमोहके क्षणक अभिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे इसी दर्शनमोहके क्षणक
 अपूर्वकरणका काल सख्यातगुणा है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंभोजना करने
 वाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे अनन्तानुबन्धीकी विसंभोजना
 करने वाले जीवके अपूर्वकरणका काल सख्यातगुणा है । इससे दर्शनमोहके उपशमना
 करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल सख्यातगुणा है । इससे कर्त्तिके अपूर्वकरणका काल
 संख्यातगुणा है । इससे उपशमसम्बन्धका काल सख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ-चौबीस विमलित्स्वानक उच्छ्रकाल सायिक एकसौ बत्तीस सागर होता
 है जिसे पटित करके ऊपर बतलाया ही है । यहाँ इतनी ही मिश्रेण बात लिखनी है कि जो
 जीव उपशमसम्बन्धके कालमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंभोजना करके उपशमसम्ब
 धके सबसे बड़े काल तक चौबीस विमलित्स्वानके साथ उपशमसम्बन्धी होकर रहता है
 पुनः वेदकसम्बन्धको प्राप्त करके कुछ कम छायासठ सागर काळ तक वेदक सम्ब
 धके साथ रह कर अन्तमें सम्मगिमध्यात्व गुणस्वानमें जाकर अन्तर्मुहूर्त क्षणके पश्चात्
 पुनः वेदकसम्बन्ध ही होता है और दूसरी बार वेदकसम्बन्धको प्राप्त करके छायासठ
 सागरमें जब अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाय तब मिध्यात्वकी क्षणका करके तेईस विमलित्स्वान-
 वाता हो जाता है इसके ही चौबीस विमलित्स्वानका यह उच्छ्र काल प्राप्त होता है । यहाँ
 यदि प्रारम्भमें बतलाये गये चौबीस विमलित्स्वानके साथ उपशमसम्बन्धके क्षणको
 धरणा करविना जाय और कुछ कम दूसरे छायासठ सागरमें सम्मगिमध्यात्व तथा सम्बन्ध
 प्रकृतिके क्षणकाक्षणको मिला दिया जाय तो प्रारम्भमें प्राप्त हुए वेदकसम्बन्धके कालसे
 छेकर सम्बन्धप्रकृतिके क्षणकाकाल तक एकसौ बत्तीस सागर होते हैं । किन्तु सम्मगिम

* छव्वीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? अणादि-अपज्जवसिदो ।

§ २८६ कुदो ? अभव्वस्स अभव्वसमाणभव्वस्स वा छव्वीमविहत्तीण आदि-अंताणमभावादो ।

* अणादि-सपज्जवसिदो ।

§ २८७, भव्वम्मि छव्वीसविहत्तिं पडि आदिवाजियम्मि सम्मत्ते पड्विण्णे छव्वीस-विहत्तीए विणासुवलंभादो ।

* सादि-सपज्जवसिदो ।

§ २८८, सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिय छव्वीसविहत्तियमाचमुवगयस्स छव्वीसविहत्तीए विणासुवलंभादो ।

ध्यात्व और सम्यक्प्रकृतिकी क्षपणाके समय चौबीस विभक्तिस्थान नहीं रहता, अतः इन दोनों प्रकृतियोंके क्षपणाकालको एकसौ बत्तीस सागरमेसे घटा देना चाहिये और प्रारम्भमे वतलाये गये उपशमसम्यक्त्वके कालमे चौबीस विभक्तिस्थान रहता है अतः इस कालको सम्यग्मिध्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणाकालसे रहित एकसौ बत्तीस सागरप्रमाण काबमें जोड़ देना चाहिये तो इस प्रकार चौबीस विभक्तिस्थानका साधिक एकसौ बत्तीस सागर-प्रमाण काल आ जाता है । यद्यपि एक ओर सम्यग्मिध्यात्व और सम्यक्प्रकृतिके क्षपणा-कालको घटाया है और दूसरी ओर चौबीस विभक्तिस्थानके साथ स्थित उपशमसम्यक्त्वके कालको जोड़ा है फिर भी उक्त दो प्रकृतियोंके क्षपणाकालसे चौबीस विभक्तिस्थानके साथ स्थित उपशमसम्यक्त्वका काल अधिक है अतः चौबीस विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ बत्तीस सागर हो जाता है ।

* छव्वीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? अनादि-अनन्त काल है ।

§ २८६ शंका—छव्वीस प्रकृतिक स्थानका अनादि-अनन्त काल कैसे है ?

समाधान—क्योंकि, जो जीव अभव्व्य हैं या अभव्व्योके समान हैं उनके छव्वीस प्रकृतिक स्थानका आदि और अन्त नहीं पाया जाता है ।

* छव्वीस प्रकृतिक स्थानका काल अनादि सान्त भी है ।

§ २८७ अनादि मिध्यादृष्टि भव्यजीवके छव्वीस प्रकृतिक स्थान आदिरहित है, पर जब वह सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब उसके छव्वीस प्रकृतिक स्थानका अन्त हो जाता है, इसलिये छव्वीस प्रकृतिक स्थानका काल अनादि-सान्त भी है ।

* तथा छव्वीस प्रकृतिक स्थानका काल सादि सान्त भी है ।

§ २८८, अट्टाईस प्रकृतिकी सत्तावाले जिस सादि मिध्यादृष्टिने सम्यक्त्व और सम्यग्मि-ध्यात्वकी उद्वेलना करके छव्वीस प्रकृतिरूपस्थानको प्राप्त किया है उसके छव्वीस प्रकृतिक स्थानका विनाश देखा जाता है, इसलिये छव्वीस प्रकृतिक स्थान सादि-सान्त भी है ।

• तस्य जो सादिओ सपञ्चसिदो जहणणेण एगसमओ ।

१२८६ कुदो ? सचाबीससंतकम्मिएण मिच्छादिदिणा पलिदोबमस्त असंखेअ विमागमेचकलेण सम्मानिच्छत्तमुत्तमायेण उव्वेअणकालम्मि अंतोसुहुत्तावसेसम्मि उवसमसम्मणाहिमुहमावमुवगएण अंतरकरण करिय मिच्छत्तपटमट्टिदिम्मि सम्भगोबुच्छओ गालिय उव्वराविदोगोबुच्छेअ विदियट्टिदिग्गि ट्टिसम्मामिच्छत्तपरिम फालिं सम्भसंक्रमेण मिच्छत्तसुवारी पक्खिअिय मिच्छत्तपटमट्टिअरिमगोबुच्छ-वेदयमायेण एगसमयं छम्बीसविहारीयत्तमुवणमिय तहुवारीसमए सम्मसं पट्ठिअिय अट्टाबीससंतकम्मियथे समासविदे छम्बीसविहारीए एगसमयकस्तुवत्तमादो ।

• उक्कस्सेण उव्वहं पोग्गलपरियट्ट ।

१२८७ कुदो ? अणादियमिच्छादिदिग्गि तिप्पि वि करमाभि काळण उवसमसम्मत्त पट्टिअम्मम्मि अणत्तसंसारं छेत्तूण हविद-अट्टपोम्मात्तपरियट्टम्मि पुणो मिच्छत्तं गत्तूण

• छम्बीस प्रकृतिक स्थानके इन तीनों भेदोंमें ओ सादि-सान्त छम्बीस प्रकृतिक स्थान हैं उसका अपन्य काल एक समय है ।

१२८८ सुक्का-सादि-सान्त छम्बीस प्रकृतिक स्थानका अपन्य काल एक समय कैसे है ?

समाधान-जिसके सम्पक्कप्रकृतिके बिना सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है, और जो पञ्चोपमके असत्तावतवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्पग्गिमिप्पात्त कर्मकी वट्टेअना कर रहा है पर वट्टेअनाके काळमें अत्तमुहूर्त काळ छेप रहनेपर ओ पपञ्चमसम्भत्तको प्राप्त करनेके सम्मुख हुआ है तथा अनन्तरकरण करके मिप्पात्तकी प्रथम स्थितिमें सर्व गोपुच्छोंको गत्ता कर जिसके दो गोपुच्छ छेप रह गये हैं, तथा ओ दूसरी स्थितिमें स्थित सम्भमिप्पात्तकी अन्तिम अक्षिको सर्व संक्रमणके द्वारा मिप्पात्तमें प्रक्षिप्त करके मिप्पात्तकी प्रथम स्थितिके अन्तिम गोपुच्छका वेदन कर रहा है वह मिप्पाट्टि जीव एक समय तक छम्बीस प्रकृतिक स्थानको प्राप्त करके उसके अनन्तर समयमें सम्भत्तको प्राप्त होकर अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है, अतः इसके छम्बीस प्रकृतिक स्थानका अपन्यकाल एक समय पाया जाता है ।

• सादि सान्त छम्बीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है ।

१२८९ सुक्का-सादिसान्त छम्बीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तन कैसे है ?

समाधान-ओ अनादि मिप्पाट्टि जीव तीनों करणोंको करके पपञ्चमसम्भत्तको प्राप्त हुआ और इस प्रकार जिसने अनन्तसंसारको छेदकर सत्तामें रहनेके काळको अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण किया । पुनः मिप्पात्तको प्राप्त होकर सबसे अपन्य पञ्चोपमके असत्तावतवें

सव्वजहणणेण पलिदोमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण उव्वेज्जणकालेण सम्मत्तसम्मा-
मिच्छत्ताणि उव्वेज्जिय छव्वीसविहत्तीए आदिं कादूण अद्दपोग्गलपरियटं देसुणं परि-
यट्टिदूण अद्दपोग्गलपरियट्टे सव्व-जहणणंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्टावीस-
विहत्तियभावमुवणमिय सिद्धिं गयम्मि छव्वीसविहत्तीए उवद्दपोग्गलपरियट्टमेत्ते
उक्कस्सकालुवलंभादो । केत्तिण्णमद्दपोग्गलपरियट्टं ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागेण । सुत्तेण अबुत्तं ऊणत्तं कधं णव्वदे ? ण, ऊणमद्दपोग्गलपरियट्टं उवद्दपोग्गल-
परियट्टमिदि णयारलोवं काऊण णिद्धित्तादो ।

* सत्तावीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहणणेण एगसमओ ।

§ २६१ कुदो ? अट्टावीससंतकम्मियमिच्छादिट्टिणा सम्मत्तुव्वेज्जणकाले अंतोमुहु-
त्तावसेसे तिण्णि वि करणाणि कादूण अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्टिदिदुचरिमसमए
सम्मत्तचरिमफालिं सव्वसंकमेण मिच्छत्तम्मि पक्खित्ते पढमट्टिदिचरिमसमए सत्तावीस
विहत्ती होदि । से काले उवसमसम्मत्तं घेत्तूण जेण अट्टावीसविहत्तिओ होदि तेण
भाग प्रमाण उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके
और इस प्रकार छव्वीस प्रकृतिक स्थानका प्रारम्भ करके देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण
काल तक परिभ्रमण करके अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप कालमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके
शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और अट्टाईस प्रकृतिक स्थानको प्राप्त होकर
क्रमसे सिद्धिको प्राप्त हुआ उसके छव्वीस प्रकृतिक स्थानका देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण
उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।

शंका—यहाँ अर्धपुद्गल परिवर्तनको जो देशोन कहा है सो देशोनका प्रमाण क्या है ?

समाधान—यहाँ देशोनका प्रमाण पत्योपमका असंख्यातवों भाग इष्ट है ।

शंका—सूत्रमें ऊनपनेका निर्देश तो नहीं किया है फिर यह कैसे जाना कि यहाँ
देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण काल इष्ट है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऊन+अर्धपुद्गल परिवर्तनके स्थानमें प्राकृतके नियमानुसार
णकारका लोप करके उपार्धपुद्गल परिवर्तन शब्दका निर्देश किया है ।

* सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है ।

§ २६१ शंका—सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय कैसे है ?

समाधान—जब अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्प्रकृतिके
उद्वेलनाकालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर तीनों करणोंको करता है और अन्तरकरण करके
मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सम्यक्प्रकृतिकी अन्तिम फालिको सर्वसंक्र-
मणके द्वारा मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त कर देता है तब वह मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम
समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है । पुन अनन्तर समयमें उपशम सम्य-

सचाबीसविहृत्पीठ अहृण्णकालस्स पमाणमेगसमओ ।

• उहस्सेण पस्सिपोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ २६२ हृदो ? अह्रावीससतकम्मियमिच्छादिदिग्गा पस्सिदोपमस्स असंखेज्जदिभाग मेचकालोव सम्मत्ते उव्वेद्दिदे सचाबीसविहृत्पीठोदि । तदो सम्बुद्धत्सण पस्सिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तेण कालेण चाव सम्मामिच्छत्तमुव्वेद्दि ताव सचाबीसविहृत्पीठ पस्सिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबुद्धत्सकालुत्तमादो ।

• अह्रावीसविहृत्पीठो वेत्थिर कालादो होदि ? उहृण्णेण अतोमुहुत्त ।

§ २६३ हृदो ? छम्बीससतकम्मियमिच्छादिदिग्ग्हि उवसमसम्मत्त पत्तण उप्पाद्दम ह्रावीससतकम्मियमि सम्बुद्धत्समत्तोमुहुत्तमह्रावीससतकम्मियमि सह उप्पिय अणत्ताणु वंविचत्तक विस्सिवाह्य उप्पाद्दत्तपतीससतकम्मियमि अह्रावीसविहृत्तियस्स अंतोमुहुत्त मेत्तबुद्धत्सकालुत्तमादो ।

• उहस्सेण वे-उावद्दि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ २६४ व अहा, एको मिच्छाद्दि उवसमसम्मत्तं पत्तण अह्रावीसविहृत्तियो वादो ।

स्वको प्राप्त करके बूँके वह अह्रावीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाधा होजाता है इसलिये सत्ताईस प्रकृतिक स्थानके अल्पकाल प्रमाण एक समय है वह सिद्ध होता है ।

• सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल पक्षके असंख्यातवें भाग है ।

§ २६२ शंका—सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्टकाल पक्षके असंख्यातवें भाग कैसे है ?

समाधान—अह्रावीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाधा मिच्छादिदिग्ग्हि जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण कालके द्वारा सम्बद्धकृतिकी उद्देखना करनेपर सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल पक्षके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालके द्वारा सम्बद्धकृतिकी उद्देखना करता है तबतक इसके सत्ताईस प्रकृतिक स्थान पाया जाता है । अतः सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल पक्षके असंख्यातवें भाग है ।

• अह्रावीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? अल्पकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ २६३ शंका—अह्रावीस प्रकृतिक स्थानका अल्पकाल अन्तर्मुहूर्त कैसे है ?

समाधान—छम्बीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाधे किसी एक मिच्छाद्दि जीवने उपलभ्य सम्बद्धकृतिके अल्पकाल अह्रावीस प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त किया । जनन्तर सबसे अल्पकाल अन्तर्मुहूर्त काल तक अह्रावीस प्रकृतियोंकी सत्तासे युक्त रहनेके पश्चात् अगन्ताजुवन्धी चतुष्ककी विस्सयोजना करके चौबीसप्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की । तब उसके अह्रावीस प्रकृतिक स्थानका अल्पकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

• अह्रावीस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है ।

§ २६४ वह इस प्रकार है—कोई एक मिच्छाद्दि जीव उपलभ्य सम्बद्धकृतिके अल्पकाल

तदो मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वुकस्ससम्मत्तुव्वेद्वणकाले अंतोमुहुत्तावसेसे सत्तावीसविहत्तिओ होदि त्ति ण होदूण उव्वेलणकालमचरिमसमए मिच्छत्तपढमट्ठिदीए चरिमणिसेयं काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । तदो पढम-छावट्ठिं भमिय मिच्छत्तं गंतूण पुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागभूदसव्वुकस्स सम्मत्तुव्वेल्लणकालचरिमसमए उवसमसम्मत्तं धेत्तूण विदियछावट्ठिं ममिय मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वुकस्ससम्मत्तुव्वेल्लणकालेण सत्तावीस-विहत्तिओ जादो । तदो तीहि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेहि सादियेयाणि वेछावट्ठि-सागरोवमाणि अट्ठावीस-विहत्तियस्स उक्कस्सकालो । एवं जइवसहाइरिय-त्तुण्णि-सुत्त-मस्सिदूण ओघे परूवणा कदा ।

§ २६५. संपहि उच्चारणाइरियपरूविद-ओघुच्चारणं चुण्णिसुत्तसमाणं पुणरुत्तभएण छड्डिय आदेसुच्चारणं भाणिस्सामो । अचक्खु ०-भवसिद्धि ० ओघमंगो ।

§ २६६ आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अट्ठावीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हुआ । तदनन्तर मिथ्यात्वकी प्राप्त होकर सम्यक्प्रकृतिके सबसे उत्कृष्ट उद्वेलनकाल पल्योपमके असख्यातवें भागके व्यतीत होनेपर वह सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता पर ऐसा न होकर वह उस कालमे अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर उद्वेलना कालके उपान्त्य समयमे मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम निपेकका अन्त करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पुनः सम्यक्प्रकृतिके सबसे उत्कृष्ट पल्योपमके असख्या-तवें भागप्रमाण उद्वेलना कालके अन्तिम समयमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और दूसरे छियासठ सागर काल तक भ्रमण करनेके पश्चात् पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्-प्रकृतिके सबसे उत्कृष्ट पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला हुआ । अतः पल्योपमके तीन असख्यातवें भागोंसे अधिक एक सौ बत्तीस सागर अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

इसप्रकार यतिवृषभके चूर्णिसूत्रोंका आश्रय लेकर ओघका कथन किया ।

§ २६५ अब यतः उच्चारणाचार्यके द्वारा उच्चारणावृत्तिमें किया गया ओघका कथन चूर्णिसूत्रोंके समान है अतः पुनरुक्त दोषके भयसे उसका कथन न करके उच्चारणामें कहे गये आदेश प्ररूपणाका कथन करते हैं—अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके प्रकृतिस्थानोंका काल ओघके समान है । तात्पर्य यह है कि ये दोनों मार्गणाएँ मोहनीयके अवस्थानकाल तक सर्वदापाई जाती हैं । अतः इनमे ओघके समान काल बन जाता है ।

§ २६६ आदेशकी अपेक्षा नरक गतिमें नारकियोंमे अट्ठाईस विभक्ति स्थानका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तेतीस सागर है । इसीप्रकार छब्बीस विभक्ति स्थानके कालका कथन करना चाहिये । सत्ताईस विभक्ति स्थानका काल ओघके समान

बहुष्णेण एगसमओ, उद्धस्सेण तेवीस सागरोबमाणि । एव छम्बीस० बत्तम्बं । सत्तावीस० ओषमगो । चउवीसविह० क्व० ? उह० अतोमुहुच, उक्क० तेवीस सागरोबमाणि देहमाणि । बावीसविह० केव० ? उह० एगसमओ, उक्क अतोमुहुच । एक्कीसविह० जह० चउरासीदिबस्सइस्साणि अतोमुहुचणाणि । उक्क० सागरोबम पत्तिदोबमस्स असखेअदिमागेण्ण । एवं पदमाए पुडवीए । मवरि, सगाट्टीदी बत्तम्बा । विदियादि आब सत्तमि चि अट्टावीस-छम्बीस विह० क्व० ? उह० एगसमओ उक्क० सगसगाट्टीदी । सत्तावीस ओषमगो । चउ वीसविह० केव० ? उह० अतोमुहुच, उक्क सगाट्टीदी देहमा ।

है । चौबीस विमलित्स्थानका कितना काळ है ? अपन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वैशोन तेवीस सागर है । बाईस विमलित्स्थानका कितना काळ है ? अपन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इक्कीस विमलित्स्थानका कितना काळ है ? अपन्य अन्तर्मुहूर्त कम चौदसी हजार वर्ष और उत्कृष्ट पम्बोपमके अर्धभ्यातवे माग कम एक सागर है । सामान्य नारकिबोक विमलित्स्थानके काळका विसप्रकार कपन किबा है इसीप्रकार पहले नरकमें समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहां उत्कृष्ट काळ अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकिबोके अर्द्धांश और छम्बीस विमलित्स्थानका कितना काळ है ? अपन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सत्ताईस विमलित्स्थानका अपन्य और उत्कृष्ट काळ ओषके समान है । चौबीस विमलित्स्थानका कितना काळ है ? अपन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वैशोन अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिसके सम्मगमिध्यात्वकी लक्षणनामें एक समय छेप रह गया है ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके नरक अवस्थामें २८ विमलित्स्थानका अपन्य काळ एक समय बन जाता है । इसीप्रकार मत्वेक नरकमें २८ विमलित्स्थानका एक समय काळ कामना चाहिये । तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंभोजना किया हुआ जो सम्मगृहृष्टि नारकी मिध्यात्वमें जाकर और एक समय तक अनन्तानुबन्धीकी सत्ताके साथ रहकर तथा दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है उसके भी २८ विमलित्स्थानका अपन्य काळ एक समय बन जाता है । पर यह व्यवस्था प्रथमादि छह नरकमें ही व्यगू होती है सातवेंमें नहीं, क्योंकि सातवेंमें ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त हुए बिना नहीं मरता है ऐसा नियम है । २८ विमलित्स्थानका कोई एक जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और वहां वह वैदक सम्मत्त्वके काळके भीतर वैदक सम्मत्त्वको प्राप्त करके मरण होनेमें अन्तर्मुहूर्त काळके छेप रहनेपर मिध्याहृष्टि हो गया उसके २८ विमलित्स्थानका उत्कृष्टकाळ तेवीस सागर पाया जाता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि ऐसे जीवके अनन्ता

नुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना नहीं होनी चाहिये । २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर अन्य प्रकारसे भी प्राप्त हो सकता है सो उसका विचार कर कथन कर लेना चाहिये । इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २८ विभक्तिस्थानके उत्कृष्ट कालका कथन अपने अपने नरककी स्थितिप्रमाण घटितकर लेना चाहिये । जिसके नरकमें रहनेका काल एक समय शेष रहनेपर सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना हो गई है उसके नरकमें २६ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इसीप्रकार सातों नरकोंमें २६ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय जानना चाहिये । तथा २६ विभक्तिस्थानवाला जो मिथ्यादृष्टि नारकी जीव नरकमें उत्पन्न होकर जीवन पर्यन्त मिथ्यादृष्टि बना रहता है उस नारकीके सामान्यसे २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पाया जाता है । इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २६ विभक्तिस्थानका अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उत्कृष्टकाल घटित कर लेना चाहिये । जिसके नरकमें रहनेका काल एक समय शेष रहनेपर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना हो गई है उसके २७ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय ओषके समान बन जाता है । इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २७ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय जानना चाहिये । तथा ओषकी अपेक्षा जो सत्ताईस विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है वह यहा सामान्यसे नारकियोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । जिस सम्यग्दृष्टि नारकीने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके चौबीस विभक्तिस्थानको प्राप्त किया और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त कर ली उस नारकीके २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । इसीप्रकार प्रथमादि नरकोंमें २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त जान लेना चाहिये । तथा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसने अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना कर दी पुनः जीवन भर २४ विभक्तिस्थानके साथ रहकर अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर वह मिथ्यात्वमें जाकर २८ विभक्तिस्थानवाला हो गया उसके २४ विभक्तिस्थानका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट काल पाया जाता है । सातवें नरकमें २४ विभक्तिस्थानका यही उत्कृष्ट काल होता है । किन्तु प्रथमादि छह नरकोंमें २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । उसमें जीवनके अन्तमें मिथ्यात्वमें नहीं ले जाना चाहिये, क्योंकि प्रारम्भके छह नरकोंमें सम्यग्दृष्टि नारकियोंका मरण होता है । अतः यहा कुछ कमसे भवके प्रारम्भमें विसयोजना होने तकके कालका ही ग्रहण करना चाहिये । कृतकृत्य वेदकके कालमें एक समय शेष रहनेपर जो जीव नरकमें उत्पन्न होता है । उसके २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा कृतकृत्य वेदकके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर जो जीव नरकमें उत्पन्न होता है उसके २२ विभक्तिस्थानका

१२२७ तिरिक्खुगार्प तिरिक्खेसु अट्टावीसविह० केव० ? अह० एगसमभो । उक्क० तिप्पि पत्तिदोवमाणि पत्तिदोवमस्स असंखेअदिमागेण सादिरेपाणि । सचाबीस० ओपमंगो । छब्बीसविह० केव० ? अह० एगसमभो, उक्क० अणत्तकालमसखेजा पुग्गलपरियत्ता । चठवीसविह० केव० अह० अतोसु०, उक्क० तिप्पि पत्तिदोवमाणि

उक्त काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । पहले नरकमें २२ विमलित्त्वानका अपत्य और एक काल इसीप्रकार जानना चाहिये, क्योंकि अन्य नरकमें २२ विमलित्त्वान नहीं होता है । नरकमें इसीस विमलित्त्वानका अपत्य काल जो अन्तर्मुहूर्त कम चौदासी हजार वर्ष प्रमाण अवधाय है उसका यह कारण प्रतीत होता है कि वही कृतकृत्य वेदक सम्पगृष्टि जीव कृतकृत्य वेदक कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर नरकसम्बन्धी सम्पगृष्टिकी अपत्य आयुके साथ मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो २१ विमलित्त्वानका अपत्य काल अन्तर्मुहूर्त कम चौदासी हजार वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि नरकमें उत्पन्न हुए सम्पगृष्टि जीवकी अपत्य आयु चौदासी हजार वर्षसे कम नहीं होती है किन्तु ऐसे जीवके २२ और २१ इन दोनों विमलित्त्वानोंका पाया जाना भी सम्भव है । अतः यहाँ २१ विमलित्त्वानका अपत्य काल अन्तर्मुहूर्त कम चौदासी हजार वर्ष कहा है । इससे यह भी निष्कर्ष निकल आता है कि जिसके २२ विमलित्त्वानके कालमें एक समय छेद रहा है ऐसा जीव यदि सम्पगृष्टिकी अपत्य आयुके साथ मरकर नरकमें उत्पन्न हो तो उसके २१ विमलित्त्वानका काल एक समय कम चौदासी हजार वर्ष होता है । इसीप्रकार उत्तरोत्तर बाईस विमलित्त्वानके कालमें एक एक समय तक बढ़ते हुए अन्तर्मुहूर्त काल तक छेदान्य चाहिये और इसीस विमलित्त्वानके कालमें एक एक समय बढ़ते हुए अन्तर्मुहूर्त कम चौदासी हजार वर्ष तक छेदान्य चाहिये । उक्त कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि कोई २१ विमलित्त्वानवाला जीव यहाँ की श्राविक सम्पगृष्टिकी आयुके साथ मरकर यदि नरकमें उत्पन्न हो तो उसके चौदासी हजार वर्षसे कम आयु नहीं पाई जायगी । तथा नरकमें २१ विमलित्त्वानका एक काल पत्यका असंख्यातवां भाग कम एक सागर प्रमाण है । इसका यह तात्पर्य है कि यद्यपि पहले नरककी एक कृत आयु परिपूर्ण एक सागर प्रमाण है फिर भी यहाँ उत्पन्न हुए श्राविक सम्पगृष्टिके पहले नरककी एक कृत आयु नहीं प्राप्त होती है किन्तु पत्यके असंख्यातवें भाग कम एक सागर ही प्राप्त होती है ।

१२२८ तिर्यग्गतिये तिर्यग्गोमे अट्टाईस विमलित्त्वानका कितना काल है ? अपत्य काल एक समय और एक कृत पत्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पत्य है । अर्थात्स विमलित्त्वानका काल ओपके समान जानना चाहिये । छब्बीस विमलित्त्वानका कितना काल है ? अपत्य काल एक समय और एक कृत अनन्तकाल है । वह अनन्तकाल असंख्यात पुत्रक परिवर्तन प्रमाण है । चौदास प्रकृतिक त्वानका काल कितना है ? अपत्यकाल अन्तर्मुहूर्त और

देखणाणि । चावीसविह० केव० ? जह० एगस० उक्क० अंतोमुहुत्तं । एकवीसविह० केव० ? जह० पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि । पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खपज्ज० अट्टावीस-छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि । सेमाणं तिरिक्खो-घमंगो । पंचिदियतिरिक्खज्जोणिणीसु अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस० पंचिदिय-तिरिक्खमंगो । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ । उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मणुस्सअपज्ज-वादरेइंदियअपज्ज०-सुहुम-पज्ज०-अपज्ज०-विगल्लिंदियअपज्ज०-पंचिदियअपज्ज०-पचकायवादरअपज्ज०-सुहुमपज्ज० अपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्व ।

उत्कृष्ट काल देशोन तीन पत्य है । बाईस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इक्षीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल पत्योपमका असख्यातवा भाग है और उत्कृष्टकाल तीन पत्य है ।

पचेन्द्रिय तिर्यच और पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीवोंके अट्टाईस और छव्वीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पत्य है । उक्त दोनों प्रकारके तिर्यचोंके शेष सम्भव प्रकृतिकस्थानोंका काल ओषके समान समझना चाहिये । पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, छव्वीस और चौबीस प्रकृतिकस्थानोंके कालका कथन पचेन्द्रियतिर्यचोंमें उक्त स्थानोंके कहे गये कालके समान करना चाहिये । पचेन्द्रियतिर्यच लब्ध्यपर्याप्तजीवोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, और छव्वीस प्रकृतिक स्थानोंका काल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, विकलेन्द्रिय अपर्याप्त, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाचों वादरकाय अपर्याप्त, पाचों सूक्ष्मकाय पर्याप्त, पाचों सूक्ष्मकाय अपर्याप्त और त्रसकाय अपर्याप्त इन जीवोंके भी अट्टाईस, सत्ताईस और छव्वीस प्रकृतिक स्थानोंका काल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—२८, २७, और २६ विभक्तिस्थानके जघन्य काल एक समयका खुलासा जिस प्रकार नरकगतिके कथनके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहा भी कर लेना चाहिये । तथा अन्य मार्गणास्थानोंमें जहां इन विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय बतलाया हो वहा भी इसी प्रकार खुलासा कर लेना चाहिये । हम पुन पुन इसका निर्देश नहीं करेंगे । तिर्यचगतिमें परिभ्रमण करनेवाले किसी एक जीवके उपशमसम्यक्त्व होकर २८ विभक्तिस्थानकी प्राप्ति हुई । पुन मिथ्यात्वमें जाकर जिसने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ किया और अतिदीर्घकाल तक जो तिर्यचगतिमें ही उसकी उद्वेलना करता हुआ तीन पत्यकी आयुवाले तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ और वहा सम्यक्त्व प्राप्तिके योग्य

काङ्के प्राप्त होने पर जिसने सम्बन्धितत्वकी उद्देशनाके अन्तिम समयमें पुनः उपरम सम्बन्धको प्राप्त कर लिया। तथा अनन्तर वेदक सम्बन्धित होकर जो जीवनपर्यन्त उसके साथ रहा उस तिर्थके २८ विमलित्त्वानका उत्कृष्टकाष्ठ पश्यन् असम्पातर्वा भाग अधिक तीन पश्य प्राप्त होता है। जो तिर्थके सम्बन्धितत्वकी उद्देशनाके प्रारम्भसे अन्त तक तिर्थके पर्वतमें ही बना रहता है उस तिर्थके २७ विमलित्त्वानका उत्कृष्टकाष्ठ ओषधके समान पश्यका असम्पातर्वा भाग प्राप्त होता है। २६ विमलित्त्वानका उत्कृष्टकाष्ठ असम्पात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण होता है वह स्पष्ट ही है, क्योंकि किसी एक जीवके मिथ्यात्वके मास मिरलर तिर्थपर्यायमें रहनेका काष्ठ उत्कृष्ट प्रमाण ही है। २५ विमलित्त्वानका उपपश्यकाष्ठ अन्तर्मुहूत नारकियोंके समान पटित कर लेना चाहिये। तथा उत्कृष्ट काष्ठ जो कुछ कम तीन पश्य कहा है इसका कारण यह है कि कोई एक जीव उत्तम भोगमूमिमें तीन पश्यकी आयु लेकर उत्पन्न हुआ और वहाँ पर उसने सम्बन्धके योग्य काङ्के प्राप्त होनेपर सम्बन्धको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसर्वायना कर ही। पुनः जीवन भर जो २४ विमलित्त्वानके साथ रहा। उसके २४ विमलित्त्वानका उत्कृष्ट काष्ठ कुछ कम तीन पश्य होता है। यहाँ कुछ कमसे अनन्तानुबन्धीकी विसर्वायना होने तकका काष्ठ लेना चाहिये। यहाँ २० विमलित्त्वानका उपपश्य और उत्कृष्ट काष्ठ नारकियोंके समान पटित कर लेना चाहिये। भोगमूमिके तिर्थकी उपपश्य आयु पश्यके असम्पातर्वा भाग प्रमाण और उत्कृष्ट आयु तीन पश्यप्रमाण होती है। इसी जपेद्यासे तिर्थमें २१ विमलित्त्वानका उपपश्य काष्ठ पश्यके असम्पातर्वा भाग प्रमाण और उत्कृष्ट काष्ठ तीन पश्यप्रमाण कहा है। यहाँ यह शक्य भी जा सकती है कि सर्वायसिद्धिमें बतलाया है कि जिसने आधिक सम्बन्धनको प्राप्त करनेके पहले तिर्थआयुका पश्य कर लिया है ऐसा मनुष्य उत्तम भोगमूमिके तिर्थके पुद्गलमें ही उत्पन्न होता है और उत्तम भोगमूमिमें उत्पन्न हुए जीवकी उपपश्य आयु भी दो पश्यसे अधिक होती है। अतः वहाँ २१ विमलित्त्वानका उपपश्यकाष्ठ पश्यके असम्पातर्वा भाग प्रमाण मही बन सकता है। इस शक्यता यह समापान है कि सर्वायसिद्धिके लोभ कर हमने विगम्बर और श्रेताम्बर सप्रहायमें प्रचलित कर्मिक ग्रन्थ देखे पर वहाँ हमें यह कही गिना हुआ मही मिला कि आधिकसम्बन्धित पर कर अन्तर तिर्थके और मनुष्य होता है तो उत्तमभोगमूमिका ही होता है। वहाँ तो केवल इतना ही लिखा है कि ऐसा जीव यदि मर कर तिर्थके और मनुष्य हो तो असम्पातर्वायकी आयु-पाठा भोगमूमिका ही होता है। इससे माहस होता है कि सर्वायसिद्धिमें जो 'उत्तम' पद ज्ञाया है वह भोगमूमि पदका विशेषण न होकर उच्य पदका विशेषण है। अतः वे दोनों कर्म मास्वताभेदसे सम्बन्ध रखते हैं तो भी कोई आश्चर्य नहीं। इस प्रकार ऊपर जो सामान्य तिर्थोंके २८ आदि विमलित्त्वानोंका काष्ठ बतलाया है, उसमेंसे २८ और २६

§ २६८. मणुस्सेसु अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० पंचिदियतिरिक्खभंगो । तेवीस-वावीस-तेरस-वारस-एक्कारस-पच-चत्तारि-तिण्णि-दोण्णि-एगविहत्तियाणमोघभंगो । एकवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं । उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि किंच्-णपुव्वकोडित्तिभागेणव्वभहियाणि । एव मणुसपज्ज० । णवरि, चावीसविह० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मणुस्सिणीसु । णवरि, वारस० जह० अंतोमुहुत्तं । एकवीसविह० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं । उक्क० पुव्वकोडी देसणा ।

विभक्तिस्थानोंके उत्कृष्टकालको छोड़ कर शेष सब कालविषयक कथन पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्तकोंके भी घटित हो जात-है । किन्तु इन दोनों प्रकारके तिर्यंचोंके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पत्यप्रमाण होता है । यहा पूर्वकोटि पृथक्त्वसे पचेन्द्रियतिर्यंचोंके १५ पूर्वकोटियोंका और पचेन्द्रिय-तिर्यंचपर्याप्तकोंके ४७ पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये । तथा पचेन्द्रिय तिर्यंच योनि-मतियोंके २८, २७, २६ और २४ विभक्तिस्थानोंका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल कहते समय पूर्वकोटिपृथक्त्वसे १५ पूर्वकोटियोंका ही ग्रहण करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इनके २८ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल १५ पूर्वकोटि अधिक तीन पत्य होता है । पचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानका एक समय प्रमाण जघन्यकाल उद्वेलनाकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये । तथा अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा यहा उक्त विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्टकाल कहा है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त आदि जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त घटित कर लेना चाहिये ।

§ २६८. मनुष्योंमें अट्टाईस, सत्ताईस, छव्वीस और चौबीस विभक्तिस्थानोंके जघन्य और उत्कृष्टकालका कथन पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें उक्त स्थानोंके कहे गये जघन्य और उत्कृष्ट-कालके समान है । तेईस, बाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाच, चार, तीन, दो और एक स्थानोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओषके समान है । इक्कीस विभक्तिस्थानका काल कितना है । जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पत्य है । इसीप्रकार मनुष्यपर्याप्तकोंके समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके बाईस विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार मनुष्यणियोंके समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके बारह विभक्तिस्थानका जघन्य-काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा इनके इक्कीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि है ।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें २८, २७, २६ और २४ विभक्तिस्थानोंका काल पचेन्द्रिय-

तिर्यचोके समान होता है। इसका यह तात्पर्य है कि पंचेन्द्रनिर्घोके समान सामान्य मनुष्योंमें भी २८, २७, और २६ विमलिस्थानोंका अपत्यकाळ एक समय, २४ विमलिस्थानका अपत्यकाळ अन्तर्मुहूर्त तथा २८ और २६ विमलियोंका उत्कृष्टकाळ पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पक्ष, २७ विमलिस्थानका उत्कृष्टकाळ ओपके समान पक्षके अंतर्मातर्से मागप्रमाण और २४ विमलिस्थानका उत्कृष्टकाळ कुछ कम तीन पक्ष खानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां पूर्वकोटिपृथक्त्वका सुझासा करते समय तिर्यचोकी २५ पूर्वकोटियां न कह कर मनुष्योंकी ४७ पूर्वकोटियां ही कहना चाहिये। श्रेय सुझासा जिस प्रकार पंचेन्द्रनिर्घोके कवनके समय कर भाये हैं वही प्रकार यहां कर लेना चाहिये। तथा सामान्य मनुष्योंमें केवल २१ विमलिस्थानके कासको छोड़ कर श्रेय विमलिस्थानोंका काळ ओपके समान है। अत ओपका कवन करते समय जिस प्रकार सुझासा कर भाये हैं उसी प्रकार यहां कर लेना चाहिये। हां, ओपसे २१ विमलिस्थानके कासमें कुछ विशेषता है जो निम्न प्रकार है। उसमें भी सामान्य मनुष्योंके २१ विमलिस्थानका अपत्यकाळ तो ओपके समान अन्तर्मुहूर्त ही होता है। पर उत्कृष्ट काळ जो साधिक ठेठीस सागर बतलाया है वह न होकर कुछ कम पूर्वकोटि त्रिभागसे अधिक तीन पक्ष प्रमाण ही होता है। यथा—एक पूर्वकोटिकी आयुवासे जिस कर्मभूमिया मनुष्यने आयुके त्रिभागप्रमाण श्रेय रहनेपर परमवसम्बन्धी मनुष्यायुका बन्ध किया। पुनः आयु बन्धके पश्चात् वेदक सम्बन्धि होकर अनन्तर ध्यायिकसम्पत्त्वको प्राप्त किया। तदनन्तर ध्यायिकसम्पत्त्वके साथ श्रेय आयुका भोग करके और आयुके अन्तमें भरकर उत्तम भोगभूमिमें तीन पक्षकी आयुके साथ मनुष्य हुआ और वहांसे देवगतिमें गया। इसके २१ विमलिस्थानका उत्कृष्टकाळ पूर्वकोटिके कुछ कम एक त्रिभागसे अधिक तीन पक्षप्रमाण पाया जाता है। ऊपर जिस प्रकार सामान्य मनुष्योंमें २८ आदि विमलिस्थानोंके कासका सुझासा किया है वही प्रकार पर्याप्त मनुष्योंके कर लेना चाहिये। पर इतना ध्यान रखना चाहिये कि पर्याप्त मनुष्योंके २८ और २६ विमलिस्थानोंके उत्कृष्ट कासका सुझासा करते समय पूर्वकोटिपृथक्त्वसे २१ पूर्वकोटियों ही प्रहण करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके २२ विमलिस्थानका अपत्यकाळ एक समय और उत्कृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। इतदन्त वेदक कासमें एक समय श्रेय रहनेपर जो भरकर मनुष्योंमें अपत्य हुआ है उम पर्याप्त मनुष्यके २२ विमलिस्थानका अपत्यकाळ एक समय पाया जाता है। तथा जिस मनुष्य पर्याप्त वृद्धनोद्विनीयकी कृपणाका प्रारम्भ किया है और इतदन्तवेदक होकर जो नहीं मरू है उसका २२ विमलिस्थानका उत्कृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। तथा सामान्य मनुष्योंके समान मनुष्यवियोंके भी २८ आदि विमलिस्थानोंका काळ जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका यह विम

§ २६६. देवेसु अट्टावीसविह० जह० एगसमओ । चउवीसविह० जह० अंतोमुहुत्तं । उक्क० दोण्हंपि तेतीसं सागरोवमाणि । सत्तावीसविह० ओघभंगो । छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ । उक्क० एकत्तीससागरोवमाणि । वावीसविह० जह० एगसमओ । उक्क० अतोमुहुत्तं । एकवीसविह० केव० ? जह० पालिदोवमं मादिरेय, उक्क० तेतीसं सागरोवमाणि । भवण०-वाण०-जोडमि० अट्टावीस-छव्वीसविह० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । सत्तावीस० ओघभंगो । चउवीसविह० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्टिदी देसुणा । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जदेवाणमोघभंगो ।

किस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, क्योंकि जो जीव स्त्रीवेदके उदयके माथ क्षपकधेणीपर चढ़ता है उसके नपुसकवेदके क्षय हो जानेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा ही स्त्रीवेदका क्षय होता है । इसी प्रकार मनुष्याणियोंके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण ही होता है । इनके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त क्यों होता है, यह तो स्पष्ट ही है पर उत्कृष्टकाल जो कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण बतलाया उसका कारण यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यणियोंमें उत्पन्न नहीं होता अतः एक भवकी अपेक्षा ही इनका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है । किन्तु क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति कर्मभूमिज मनुष्यके ही होती है और कर्मभूमिज मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होती है । साथ ही यह भी नियम है कि कर्मभूमिज मनुष्यके आठ वर्षके पहले सम्यक्त्व उत्पन्न करनेकी योग्यता नहीं होती, अतः एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यणीने आठ वर्षके उपरान्त वेदक सम्यक्त्वपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न किया है उसके २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण देखा जाता है ।

§ २६६. देवोंमें अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय है और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा दोनों स्थानोंका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है । सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है । छव्वीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है । बाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इक्कीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है जघन्य काल साधिक पत्य और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है ।

भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अट्टाईस और छव्वीस प्रकृतिकस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है । चौबीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

पपरि, उक्त० सगहिदी बचम्बा । अणुदिसादि आब सम्बन्धे चि अद्वावीस-चउबीस बिह० केव० ? अह० अतोमुहुत्त, उक्त० सगहिदी । बावीस० णारगमगो । एक्कीस० केव० ? अह० अहण्णहिदी अंतोमुहुत्तुणा, उक्त० उक्तस्सहिदी ।

सौधर्म सर्गसे छेकर उपरिम प्रैवेयक तक देबोके आनोंके क्कळका क्कम अपोपके समान करमा चाहिये । इतनी बिसेपता है कि इनके उत्कृष्टकाळ अपनी अपनी स्थिति प्रमाण करमा चाहिये । अनुदिससे छेकर सर्वांसिद्धि तक देबोके अद्वाईस और चौबीस प्रकृतिक स्थानका क्कळ कितना है ? जपम्यकाळ अन्तमुहुत्त और उत्कृष्टकाळ अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । बाईसप्रकृतिक स्थानका क्कळ नारुकिपोंके समान समझना चाहिये । इक्कीस प्रकृतिक स्थानका क्कळ कितना है ? जपम्यकाळ अन्तमुहुत्त कम अपनी अपनी जपम्य स्थिति प्रमाण है और उत्कृष्टकाळ अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जिस बेदकसम्बगृह्णित मनुष्के अनन्तानुबन्धीकी बिसबोजना नहीं की है वह मर कर जब उत्कृष्ट आयुके साथ चार बिसयादिकमें या सर्वांसिद्धिमें उत्पन्न होता है और वहां भी यदि वह अनन्तानुबन्धीकी बिसबोजना नहीं करता है तो उसके २८ बिमच्छिस्थानका उत्कृष्टकाळ ३३ सागर पाया जाता है । तथा जिसने अनन्तानुबन्धीकी बिसबोजना कर दी है ऐसा जो बेदकसम्बगृह्णित मनुष्क ऊक्त स्थानोंमें पैदा होता है उसके २७ बिमच्छिस्थानका उत्कृष्टकाळ ३३ सागर देला जाता है । २६ बिमच्छिस्थान मिध्याहृष्टिके ही होता है । अतः देबोंमें २६ बिमच्छिस्थानका उत्कृष्टकाळ ३१ सागर ही कहमा चाहिये, क्योंकि मिध्याहृष्टि कीच नौप्रैवेयक तक ही पैदा होता है और नौप्रैवेयकमें उत्कृष्ट आयु ३१ सागरप्रमाण ही है इससे अधिक नहीं । बैमानिकोंमें जपम्य आयु साधिक एक पन्च और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है अतः वहां २१ बिमच्छिस्थानका जपम्यकाळ साधिक एक पन्च और उत्कृष्टकाळ तेतीस सागर कहा है । मबनत्रिकोंमें चौबीस बिमच्छिस्थानका उत्कृष्ट काळ कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण करनेका कारण यह है कि इनमें सम्बगृह्णित कीच अल्प गतिसे आकर उत्पन्न नहीं होते हैं । अतः वही जिन्होंने बेदक सम्बन्ध प्राप्त करके अनन्तानुबन्धी जपुष्की बिसबोजना कर दी है इनके ही २७ बिमच्छिस्थान होता है जिसका जीवन मर पाया जाना सम्भव है, अतः मबनत्रिकोंमें २७ बिमच्छिस्थानका उत्कृष्टकाळ कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होता है । सौधर्मसे छेकर नौप्रैवेयक तक तो सम्बगृह्णित और मिध्याहृष्टि दोनों प्रकारके कीच पैदा होते हैं । अतः वहां २८, २६ २४ और २१ बिमच्छिस्थानोंका उत्कृष्ट काळ अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बन जाता है । अनुदिससे छेकर सर्वांसिद्धि तकके देबोंमें वचपि सम्बगृह्णित ही उत्पन्न होते हैं फिर भी जो वहां उत्पन्न होनेके अनन्तर अन्तमुहुत्त काळके पश्चात् अनन्तानुबन्धी जपुष्की बिसबोजना कर देते हैं इनके २८ बिमच्छिस्थानका जपम्य काळ अन्तमुहुत्त प्राप्त होता है ।

§ ३००. इंदियाणुवादेण एंडियं वादरं सुहुमं अट्टावीस-सत्तावीसविहं केवं ? जहं एगसमओ उक्कं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । छव्वीसविं जहं एगसमओ, उक्कं सगट्ठिदी । वादरपज्जं अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीसविहं केवं ? जहं एगसमओ, उक्कं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । एवं विगर्ल्लिदिय-विगर्ल्लिदियपज्जं । पंचिदिय-पंचिदि-

और जो जीवनके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्क्री विसंयोजना करते हैं उनके चौवीस विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है यहा हमने जिन विभक्तिस्थानोंके जघन्य या उत्कृष्ट कालके विषयमे विशेष कहना था उन्हींके कालका खुलासा किया है शेषका नहीं । अतः शेषका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ३०० इन्द्रियमार्गणाकेअनुवादसे एकेन्द्रिय, तथा इनके वादर और सूक्ष्म जीवोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पत्यके असख्यातवें भाग है । छव्वीस विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । एकेन्द्रिय वादर पर्याप्त जीवोंमे अट्टाईस, सत्ताईस और छव्वीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सख्यात हजार वर्ष है । इसीप्रकार विकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यद्यपि एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेनि य जीवका निरन्तर उस पर्यायमें रहनेका काल पत्यके असख्यातवें भागसे अधिक है, फिर भी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें २८ और २७ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण ही होता है इससे अधिक नहीं । अतः एकेन्द्रियादि उक्त जीवोंके २८ और २७ विभक्तिस्थानोंका काल पत्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है । किन्तु २६ विभक्तिस्थानके, विषयमें यह बात नहीं है अतः उसका काल उक्त जीवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण कहा है । तथा वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष प्रमाण ही होता है अतः इनके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष कहा है । तथा विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके भी २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल सख्यात हजार वर्ष जानना चाहिये । क्योंकि कोई एक जीव विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रियपर्याप्त पर्यायमें निरन्तर सख्यात हजार वर्ष तक ही रहता है । इसके पश्चात् उसकी विवक्षित पर्याय बदल जाती है । वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और विकलेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके २८, २७ और २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है । जो सुगम होनेके कारण वीरसेनस्वामीने नहीं कहा है । विशेषार्थमे हमने जिन विभक्तिस्थानोंके जघन्य या उत्कृष्ट कालोंका खुलासा नहीं किया है इसका कारण यह है कि उनका खुलासा नरकगति आदिके सम्बन्धमें विशेषार्थ लिखते समय कर आये हैं ।

यपञ्ज-तस-तसपञ्जचाममोचमगो । णवरि, अट्टापीस० अह० एगसमओ उक्त० सग
 द्विदी ! छम्बीसबिह० के० ? अह० एगसमओ, उक्त० सगद्विदी । पुढवि०-आठ०
 तेठ-भाठ०-बादर-सुहुम० बणप्फदि-बादर-सुहुम० णिगोद०-बादर-सुहुम० अट्टापीस
 सत्तापीस० एह्दियमगो । छम्बीसबिह० के० ? अह० एगस० उक्त० सगद्विदी । बादर
 पुढवि० आठ०-तेठ०-भाठ०-बादरबणप्फदिपत्तेय०-बादरणिगोदपदिद्विदपञ्जच० बादर
 एह्दियपञ्जचमगो ।

पंचेन्द्र, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके ओषधके समान कर्म करना चाहिये ।
 इतनी विशेषता है कि अट्टाईस विमक्तिस्वानका अपम्यकाळ एक समय है और उक्तकाळ अपनी
 अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा छम्बीस विमक्तिस्वानका काळ कितना है ? अपम्यकाळ एक
 समय और उक्तकाळ अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । प्रथिवीकायिक, अप्पयिक, अमिकायिक
 और वायुकायिक तथा इनके बादर और सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक तथा इनके बादर और
 सूक्ष्म, निगोदजीव तथा इनके बादर और सूक्ष्म जीवोंके अट्टाईस और सत्ताईस विमक्ति
 स्वानका काळ एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । उक्त जीवोंके छम्बीस विमक्तिस्वानका
 काळ कितना है ? अपम्यकाळ एक समय और उक्तकाळ अपनी अपनी स्थितिप्रमाण
 है । बादर प्रथिवीकायिकपर्याप्त, बादर अप्पयिकपर्याप्त, बादर अमिकायिकपर्याप्त, बादर
 वायुकायिकपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और बादर निगोद प्रविष्टिय
 पर्याप्त जीवोंके २८, २७ और २६ विमक्तिस्वानोंका काळ बादर एकेन्द्रियपर्याप्त जीवोंके
 समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—२७ विमक्तिस्वानसे लेकर शेष सब विमक्तिस्वान पंचेन्द्र, पंचेन्द्रिय
 पर्याप्त त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके ही होते हैं अतः इनके २७ आदि विमक्तिस्वानोंका
 अपम्य और उक्तकाळ ओषधके समान बन जाता है । अब रही २८, २७ और २६
 विमक्तिस्वानोंके काळोंकी बात, सो इनके २७ विमक्तिस्वानका अपम्य और उक्तकाळ भी
 ओषधके समान बन जाता है । किन्तु २८ विमक्तिस्वानके अपम्यकाळमें और २६ विमक्ति-
 स्वानके उक्तकाळमें कुछ विशेषता है जो ऊपर बताई ही है । तथा एकेन्द्रिय जीवोंके
 २८ और २७ विमक्तिस्वानोंके काळोंका तथा एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके २६ विमक्तिस्वानके
 काळका जिसप्रकार सुझासा कर जाये हैं वहीप्रकार प्रथिवीकायिक आदि जीवोंके भी २८
 आदि विमक्तिस्वानोंके काळोंका सुझासा करकेना चाहिये । तथा शीतसेमआमीने जिसप्रकार
 बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि जीवोंके २८ आदि विमक्तिस्वानोंके काळोंका विवेचन नहीं
 किया है वहीप्रकार यहाँभी इन प्रथिवी कायिक आदिके बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त
 और सूक्ष्म अपर्याप्तमेंदोके २८ आदि विमक्तिस्वानोंके काळोंका विवेचन नहीं किया है सो
 जिसप्रकार एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त आदिके २८ आदि विमक्तिस्वानोंका काळ ऊपर कह

§ ३०१. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि०-वेउन्विय०-आहार० अप्पणो पदानां विह० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। कायजोगि० अट्टावीस-सत्तावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो। छब्बीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी। सेसाण मणजोगिभंगो। ओरालियकायजोगि० अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बावीसवस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। सेसाण मणजोगिभंगो। ओरालियमिस्स० अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-बावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं। चउवीस-एक्कीसवि० के० ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। एवं वेउन्वियमिस्स०। आहारमिस्स० सव्वपदानं विह० के० ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। कम्मइय^६ अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। चउवीस-बावीस-एक्कीसवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वेसमया।

आये है उसीप्रकार यहां भी कह लेना चाहिये।

§ ३०१. योगमार्गणाके अनुवादसे पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाय-योगी और आहारककाययोगी जीवोंके अपने अपने विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी जीवोंके अट्टाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानोंका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पत्यके असख्यातवें भाग है। छब्बीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी स्थिति प्रमाण है। शेष स्थानोंका काल मनोयोगियोंके समान है। औदारिककाययोगी जीवोंके अट्टाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। शेष स्थानोंका काल मनो-योगियोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्टाईस, सत्ताईस, छब्बीस और बाईस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्त-मुहूर्त है। चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। जिसप्रकार औदारिक मिश्रकाययोगियोंके अट्टाईस आदि स्थानोंका काल कह आये है उसीप्रकार वैक्रियिकमिश्र काययोगियोंके उक्त स्थानोंका काल जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंके समव समी स्थानोंका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कार्माणकाययोगियोंके अट्टाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्ति स्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। चौबीस, बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोग, पाचों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग और आहारक काय-

योगका अपन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है अतः इन योगोंमें सम्भव अपने अपने विमक्तिस्थानोंका अपन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । तथा अपन्य प्रकरसेमी इन योगोंमें अपने अपने विमक्तिस्थानोंका अपन्यकाळ एक समय और उत्कृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्त बन सकता है सो विचार कर कबन कर लेना चाहिये । अथ योगमें २८, २७ और २६ विमक्तिस्थानोंका अपन्यकाळ एक समय जिसप्रकार मारकियोंके घटित करके जिस भासे हैं उसीप्रकार घटित कर लेना चाहिये । सर्वथा अथयोग एकेन्द्रियोंके ही रहता है और एकेन्द्रियोंके एक मिध्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है अतः काययोगमें २८ और २७ विमक्तिस्थानका उत्कृष्टकाळ पश्यके असक्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि सम्भव और सम्भ्रामिध्यात्वकी उल्लेखनामें इतना ही काळ लगाता है । काययोगका उत्कृष्ट काळ असक्यात पुत्रवर्धनप्रमाण होता है अतः इसमें २६ विमक्तिस्थानका उत्कृष्टकाळ इतना ही प्राप्त होता है । क्योंकि इतन काळ तक निरन्तर २६ विमक्तिस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं है । अथयोगमें श्रेय विमक्तिस्थानोंका काळ मनोयोगियोंके समान करनेका कारण यह है कि श्रेय विमक्तिस्थान सञ्जीके ही होते हैं और वहां तीनों योग बदलते रहते हैं अतः अथयोगमें भी श्रेय विमक्तिस्थानोंका अपन्यकाळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । औदारिक अथयोगमें २८, २७, और २६ विमक्तिस्थानोंका अपन्य काळ एक समय पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिये । वा इसका अपन्यकाळ एक समय है इसलिये भी इसमें उक्त विमक्तिस्थानोंका अपन्य काळ एक समय बन जाता है । तथा औदारिकअथ योगका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कम चाईस हजार वर्ष है अतः इसमें २८, २७ और २६ विमक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कम २२ हजार वर्ष प्रमाण बन जाता है । तथा औदारिक अथयोगमें भी श्रेय विमक्तिस्थानोंका काळ मनोयोगियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । औदारिक मिमकाययोगमें २८, २७ २६ और २२ विमक्तिस्थानोंका अपन्य काळ एक समय मारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा औदारिक मिमकाययोगका काळ अन्तर्मुहूर्त होनेसे इसमें उक्त विमक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । तथा औदारिकमिमकाययोगमें २४ और २१ विमक्तिस्थानका अपन्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि वा २४ और २१ विमक्तिस्थानका भी औदारिकमिम काययोगको प्राप्त हुआ है इसके औदारिक मिमकाययोगके काळमें २४ और २१ विमक्तिस्थान ही बना रहता है । यद्यपि जो २२ विमक्तिस्थानका भी औदारिकमिमकाययोगको प्राप्त होता है । उसका औदारिकमिमकाययोगके रहते हुए ही २२ विमक्तिस्थान बदल कर २१ विमक्तिस्थान आजाता है किन्तु इसप्रकार २१ विमक्तिस्थानके प्राप्त होनेपर भी अन्तर्मुहूर्त काळ तक औदारिक मिमकाययोग फिर भी बना रहता है अतः औदारिक मिमकाययोगमें २१ विमक्तिस्थानका काळ अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं करा

१३०२. वेदाणुवादेण इत्थि० अट्टावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपलिदोवमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीसवि० ओघभंगो । छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । चउवीसविह० जह० एगसमओ । कुदो ? उवसमसेटीदो ओदरिय सवेदी होदूण विदियसमए कालं कादूण देवेसुप्पण्णस्स एगसमयकालुवलंभादो । उक्क०पणवण्णपलिदोवमाणि देख्खणाणि । तेवीस-चावीस-तेरस-वारसवि० ओघभंगो । णवरि, वारसविह० एयसमओ णत्थि । एकवीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देख्खणा । पुरिसवेदे अट्टावीस-चउवीस-

है । औदारिक मिश्रकाययोगके समान वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे सम्भव विभक्तिस्थानोंका काल होता है, उससे इसमे कोई विशेषता नहीं है । आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः इसमे सम्भव २८, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । कर्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय है अतः इसमें सम्भव २८, २७, २६, २४ २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय कहा है । यहां २८, २७, २६ और २२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय अन्य प्रकारसे भी बन सकता है सो विचार कर कथन कर लेना चाहिये । तथा निष्कृष्ट क्षेत्रके प्रति गमन करने वाले जीवोंके ही तीन विग्रह होते हैं और ऐसे जीव मिथ्यादृष्टि ही होते हैं । तथा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमे २८, २७ और २६ ये तीन विभक्ति-स्थान ही सम्भव हैं अतः कर्मणकाययोगमे इन तीनोंका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा । तथा २४, २२ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव यदि मरते हैं तो अधिकसे अधिक दो विग्रह ही कर लेते हैं अतः कर्मणकाययोगमे इनका दो समय प्रमाण उत्कृष्ट काल कहा है ।

§ ३०२ वेदमार्गाणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें अट्टाईस प्रकृतिस्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पत्य है । सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है । छव्वीस प्रकृतिक स्थानका काले कितना है ? जघन्य काल एक समय उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय है ।

शंका—स्त्रीवेदमें चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जो षपशमश्रेणीसे उतरकर वेद सहित हुआ और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुला उस स्त्रीवेदीके चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । स्त्रीवेदमें चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्टकाल देशोन पचपन पत्य है । तेईस, बाईस, तेरह और बारह प्रकृतिक स्थानका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिकस्थानका जघन्यकाल एक समय नहीं है । इक्कीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटिप्रमाण है ।

विह० क० ? अह० एगसमओ, अतोमुहुच । उक्क० ओपमगो । सत्तावीस० ओप
मगो । छम्बीसविह० के० ? अह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । तेबीस-तेरस-चारस
एकरसविह० ओपमगो । षवरि, बारसविह० एगसमओ गत्थि । एकवीसविह०
कव० ? अह० अतोमुहुच, उक्क० आधमगो । वावीसविह० अह० एगसमओ,
उक्क० अतोमुहुच । पचविह० के० ? अह० एगसमओ । षवुस० अट्टावीसविह०
के० ? अह० एगसमओ, उक्क० तेचीससागरोभमाप्पि सादिरेयाणि । सत्तावीस-छम्बीस
वि० एवदियमंगो । चठवीस-वावीस-एकवीसविह० गारममगो । णवरि, चठवीस
एकवीसवि० अह० एगसमओ । सेसं इरिपमगो । षवरि, बारस-वि० अह० एगसमओ,
एगसमओ । अबगदवेदे चठवीस-एकवीसवि० केव० ? अह० एगसमओ, उक्क०
अतोमुहुच । सेसाणं अह० एगसमओ अतोमुहुच । णवरि, पचविहवी कव० ? वेआवलि
याओ विसमउप्पाओ ।

पुरुषवेदमें अट्टाईस और चौबीस विमट्टित्थानका काळ कितना है ? इन दोनों
स्वार्थोंका अपन्यकाळ क्रमसे एक समय और अन्तमुहुर्व है । तथा दोनों ही स्वार्थोंका
उत्कृष्टकाळ ओपके समान है । तथा सत्ताईसप्रकृतिक स्वानका काळ ओपके समान है ।
छम्बीस प्रकृतिकस्वानका काळ कितना है ? अपन्यकाळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अपनी
स्मिति प्रमाण है । तेईस तेरह बारह और ग्यारह प्रकृतिकस्वानका काळ ओपके समान
है । इतनी विशेषता है कि बारह प्रकृतिकस्वानका अपन्यकाळ एक समय नहीं है ।
इक्कीस प्रकृतिकस्वानका काळ कितना है ? अपन्यकाळ अन्तमुहुर्व और उत्कृष्ट काळ ओपके
समान है । बाईस प्रकृतिकस्वानका अपन्यकाळ एक समय और उत्कृष्टकाळ अन्तमुहुर्व है ।
पाँच प्रकृतिकस्वानका काळ कितना है ? अपन्य और उत्कृष्टकाळ एक समय है ।

नपुंसकवेदमें अट्टाईस प्रकृतिकस्वानका काळ कितना है ? अपन्यकाळ एक समय
और उत्कृष्टकाळ साधिक तेतीस सागर है । सत्ताईस और छम्बीस प्रकृतिकस्वानका काळ
एकेन्द्रियोंके समान है । चौबीस बाईस और इक्कीस प्रकृतिकस्वानका काळ नारदियोंके
समान है । इतनी विशेषता है कि चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक स्वार्थोंका अपन्यकाळ
एक समय है । सेप स्वार्थोंका काळ स्त्रीवेदियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि
बारह प्रकृतिकस्वानका अपन्य और उत्कृष्टकाळ एक समय है ।

अपगतवेदमें चौबीस और इक्कीस प्रकृतिकस्वानका काळ कितना है ? अपन्यकाळ
एक समय और उत्कृष्टकाळ अन्तमुहुर्व है । सेप स्वार्थोंका अपन्य और उत्कृष्ट काळ अन्त-
मुहुर्व है । इतनी विशेषता है कि पाँच प्रकृतिकस्वानका दो समय कम दो आबडी प्रमाण
काळ तक होता है ।

विशेषार्थ-स्त्रीवेद मं २० विमट्टित्थानम ओ साधिक पचपन पश्य उत्कृष्ट काळ

बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि २८ विभक्तिस्थान वाला कोई एक स्त्रीवेदी मनुष्य पचपन पल्यकी आयुवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ और वहा पर्याप्त होनेके पश्चात् उसने सम्यकप्रकृतिकी उद्वेलना होनेके अन्तिम समयमें उपसमसम्यक्त्व पूर्वक वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की। तथा वह जीवन भर वेदकसम्यक्त्वके साथ ही रहा तो उसके पचपन पल्यकाल तक २८ विभक्तिस्थान पाया जाता है। देवी होनेके पहले यह स्त्रीवेदी जीव और कितने काल तक २८ विभक्तिस्थानके साथ रह सकता है इसका स्पष्ट उल्लेख अन्यत्र देखनेमें नहीं आया। स्वयं वीरसेन स्वामीने भी इस कालको साधिक कहेके छोड़ दिया है। किन्तु एकैक प्रकृतिविभक्ति अनुयोगद्वारमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका उत्कृष्ट काल बतलाते हुए उनका उत्कृष्टकाल साधिक पचपन पल्य कहा है। इससे मालूम पड़ता है कि यहां साधिक से सम्यक्प्रकृतिका उद्वेलनाकाल इष्ट है। जो कुछ भी हो तात्पर्य यह है कि स्त्रीवेदमें २८ विभक्तिस्थान साधिक पचपन पल्यकाल तक पाया जाता है। स्त्रीवेदमें २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्टकाल सौ पल्यपृथक्त्वप्रमाण बतलाया है और इतने काल तक यह जीव मिध्यादृष्टिभी रह सकता है तथा मिध्यादृष्टिके निरन्तर २६ विभक्तिस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं है। अतः स्त्रीवेदमें २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण बन जाता है। स्त्रीवेदमें २४ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय स्वयं वीरसेन स्वामीने बतलाया है। तथा उत्कृष्टकाल जो कुछ कम पचपन पल्य बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि कोई एक जीव पचपन पल्यकी आयुवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ और वहा पर्याप्त होनेके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी। अनन्तर जीवन भर ऐसा जीव २४ विभक्तिस्थानके साथ रहा तो उसके २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम पचपन पल्यप्रमाण प्राप्त होता है। २३ और १३ विभक्तिस्थानका काल ओघके समान है। इसमें ओघसे कोई विशेषता नहीं है। २२ विभक्तिस्थानवाला जीव यद्यपि मर सकता है पर अन्य पर्यायमें ऐसे जीवके नपुंसकवेद या पुरुषवेदका ही उदय होता है अतः स्त्रीवेदमें २२ विभक्तिस्थानका काल भी ओघके समान बन जाता है। अब रही बारह विभक्तिस्थानकी बात, सो स्त्रीवेदके उदयसे जो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके बारह विभक्तिस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त ही पाया जाता है, एक समय नहीं। तथा जो स्त्रीवेदी क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ा और वहासे गिर कर एक समयके लिये सवेदी होकर मर गया उसके २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा जो स्त्रीवेदी जीव आठ वर्षके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करलेता है और आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि

१३०३ कसायापुवादेण कोपक० अट्टाबीस-सत्ताबीस-छम्बीस-चठबीस-तेबीस

काळ तक इस पर्यायमें बना रहता है उसके २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाळ कुछ कम पूर्वकोटि अथप्रमाण प्राप्त होता है । जिस पुरुषवेदी २० विभक्तिस्थान काळ सम्यगृष्टि जीवने धनस्त्याजुबन्धी अतुष्ककी जिसबोद्धना करके २४ विभक्तिस्थानको प्राप्त किया और एक अन्तर्मुहूर्त काळके पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त कर दिया उस पुरुषवेदी जीवके २४ विभक्तिस्थानका अथम्यकाळ अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । बारह विभक्तिस्थानका अथम्यकाळ एक समय जिसप्रकार क्षीवेदमें नहीं प्राप्त होता है वही प्रकार पुरुषवेदमें भी नहीं प्राप्त होता है । जो पुरुषवेदी जीव २१ विभक्तिस्थानको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त काळके भीतर अपगतवेदी होजाता है उसके २१ विभक्तिस्थानका अथम्यकाळ अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । २२ विभक्तिस्थानके काळमें एक समय शेष रहते हुए जो मनुष्य तिर्यक या वैश्वतिमें जन्म हुआ है उसके पुरुष वेदके साथ २२ विभक्तिस्थानका अथम्यकाळ एक समय प्राप्त होता है । तथा जो जीव पुरुषवेदके उदयके साथ अथम्यभेदीपर चढ़ता है, उसके छह मोक्षबाधोंकी क्षणमा अपगतवेदी होनेके उपान्त्य समयमें ही होती है अतः पुरुषवेदमें पांच विभक्तिस्थानका अथम्य और उत्कृष्ट काळ एक समय प्राप्त होता है । क्षीवेदमें २० विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काळ जिसप्रकार साधिक पञ्चपन पस्व पटित करके छिन्न आये हैं वही प्रकार नपुंसकवेदमें २० विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाळ साधिक ३३ सागर पटित कर लेना चाहिये । तथा २४ और २१ विभक्तिस्थानका अथम्यकाळ एक समय भी क्षीवेदके समान पटित कर लेना चाहिये । तथा जो नपुंसकवेदके उदयके साथ अथम्यभेदीपर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदके अथ होनेके उपान्त्य समयमें क्षीवेदका क्षय होजाता है इसलिये इसके बारह विभक्तिस्थानका अथम्य और उत्कृष्ट काळ एक समय ही प्राप्त होता है । जो २४ और २१ विभक्तिस्थानकाळा जीव एक समय तक अपगतवेदी होकर और दूसरे समयमें मरकर वैश्वतिको प्राप्त होजाता है उस अपगतवेदी जीवके २४ और २१ विभक्तिस्थानका अथम्य काळ एक समय प्राप्त होता है । तथा २४ या २१ विभक्तिस्थानकाळा जो जीव अथम्यभेदीपर चढ़ा और नौवें गुणस्थानमें अपगतवेदी हो गया । पुनः उत्तरके समय मौर्वे गुणस्थानमें सबेदी होगया उसके २४ या २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । अपगतवेदमें श्रेय उपारह आदि विभक्तिस्थानोंका अथम्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है । किन्तु पांच विभक्तिस्थानका अथम्य और उत्कृष्ट काळ दो समय कम दो जाबड़ी प्रमाण है । अतः अपगतवेदीके इसका काळ उत्कृष्टप्रमाण जानना चाहिये । अतः जिस वेदमें जिस विभक्ति स्थानके काळका ज्ञान सुगम समझा वसका सुझासा नहीं किया है ।

१३३ कपायमार्गणाके अनुवासे श्रेय कपायमें अट्टाईस सत्ताईस छम्बीस, चौबीस तेईस बाईस और दूबीस प्रकृतिस्थानोंका अथम्यकाळ एक समय और उत्कृष्टकाळ

वावीस-एकवीसवि० जह० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्तं । तेरस० चारस० आदिं कादूण जाव चदुविहत्तिओ ति ओघभंगो । एवं माण०, णवरि अत्थि तिण्ह विहत्तिओ । एवं माय०; णवरि अत्थि दोण्हं विहत्तिओ । एवं लोभ०, णवरि अत्थि एक्किस्से विहत्तिओ । माण-माया-लोभकसायीसु चदुण्ह तिण्हं दोण्ह विह० जहण्णा दो आवलि-याओ दुसमयूणाओ । अकसाईसु चउवीस-एकत्रीमविह० केव० ? जहण्ण० एग०-समओ, उक० अंतोमुहुत्तं । एवं सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं । णवरि, सुहुमसांप-राइय० एक्किस्से विहत्तिओ केव० ? जहण्णुक० अतोमु० ।

अन्तर्मुहूर्त है । तेरह और बारहसे लेकर चार प्रकृतिकस्थान तकका काल ओघके समान है । क्रोधकषायके समान मानकषायमें भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानकषायमें तीनप्रकृतिक स्थान भी है । इसीप्रकार मायाकषायमें भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि माया कषायमें दोप्रकृतिक स्थान भी है । इसीप्रकार लोभकषायमें भी समझना चाहिये । इतनी विशेषता है कि लोभकषायमें एक प्रकृतिक स्थान भी है । मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें क्रमसे चार, तीन और दो प्रकृतिक स्थानका जघन्य काल दो समयकम दो आवलीप्रमाण है ।

कषाय रहित जीवोंमें चौबीस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार सूक्ष्मसापराय संयत और यथाख्यात सयतोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसापरायिक सयतके एक प्रकृतिक स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ-क्रोधादि कषायोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमें २८, २७, २६, २४, २३, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । किन्तु जिस कषायके उदयसे जीव क्षपकश्रेणी चढ़ता है उसके अपनी अपनी कृष्टि वेदनके काल तक उसीका उदय बना रहता है, अतः क्रोधमें चार विभक्तिस्थान तकका काल, मानमें तीन विभक्तिस्थान तकका काल, मायामें दो विभक्तिस्थान तकका काल और लोभमें एक विभक्तिस्थान तकका काल ओघके समान बन जाता है । किन्तु जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मानकषायमें चार विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । जो मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मायाकषायमें तीन विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । तथा जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके लोभकषायमें दो विभक्तिस्थानका जघन्यकाल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । अकषायी सूक्ष्मसापरायिक संयत और यथाख्यात संयत जीवोंमें २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय उपशमश्रेणीमें

३३०४ पावायुबादेण मदि-सुदअण्णाणि० अट्ठावीसवि० के० ? जह० अतोसु०,
उक्क० पल्लिदो० असखे० मागो । सत्तावीस-उम्भीसविह० ओपमगो । विमंग० अट्ठावीस
सत्तावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असखिज्जदिमागो । उम्भीसवि०
के० ? जह० एगसमओ उक्क० तेयीससागरोवमाणि देसुणाणि ।

अकपायी आदि होनेके एक समय बाद मरणकी अपेक्षासे कहा है और उत्कृष्ट काळ अन्त
मुहूर्त तक विमक्तिस्थानोंके साथ इन अकपायी आदिके उपसमभेजीमें इतने काळ तक रहनेकी
अपेक्षासे कहा है। किन्तु इतनी मिशेषता है कि अकपायीपर चढ़े हुए सूक्ष्मसांपरायिक
जीवके एक विमक्तिस्थान ही होता है अतः सूक्ष्मसांपरायिक सत्यके विमक्तिस्थानका
अपम्य और उत्कृष्ट काळ अन्तमुहूर्त कहना चाहिये ।

३३०४ ज्ञानमार्गीयाके अनुचारसे मत्तज्ञानी और भ्रुताज्ञानी जीवोंमें जट्टाईस प्रकृति-
स्थानका काळ कितना है ? अपम्य काळ अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काळ पत्त्वके असम्पातवें
माग है। सत्ताईस और उम्भीस प्रकृतिस्थानका काळ ओपके समान है। विमंग
ज्ञानियोंमें जट्टाईस और सत्ताईस प्रकृतिस्थानका काळ कितना है ? अपम्य काळ एक समय
और उत्कृष्ट काळ पत्त्वके असम्पातवें माग है। उम्भीस प्रकृतिस्थानका काळ कितना है ?
अपम्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ देसोन तेयीस सागर है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थानमें रहनेका अपम्यकाळ अन्तमुहूर्त है। यद्यपि साक्षात्
का अपम्यकाळ एक समय है, पर ऐसा जीव निवमसे मिथ्यात्व ही जाता है और मति-
अज्ञान तथा भ्रुताज्ञान इन दोनों गुणस्थानोंमें ही पावे जाते हैं। इस सिधे इन दोनों अज्ञा-
निबोंके २८ विमक्तिस्थानका अपम्यकाळ अन्तमुहूर्त कहा है। तथा उत्कृष्टकाळ पत्त्वके
असम्पातवें भागप्रमाण सम्बन्धप्रकृतिकी वद्वेष्टमाके उत्कृष्टकाळकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि
जब तक कोई एक मत्तज्ञानी या भ्रुताज्ञानी जीव सम्बन्धप्रकृतिकी वद्वेष्टना करता रहता है
तब तक उसके २८ विमक्तिस्थान बना रहता है। तथा इनके २७ और २६ विमक्ति-
स्थानका काळ ओपके समान बटित कर लेना चाहिये। सुगम होनेसे नहीं जिला है। जो
अबधिज्ञानी २४ विमक्तिस्थानवाला जीव मिथ्यात्वमें धाकर और एक समय रह कर मर
जाता है उसके विभागस्थानके रहते हुए २८ विमक्तिस्थानका अपम्यकाळ एक समय प्राप्त
होता है। तथा जो सम्बन्धप्रकृतिकी वद्वेष्टना करनेवाला विभागस्थानी वद्वेष्टना करनेके एक
समय पश्चात् उपसम सम्बन्धको प्राप्त करता है उसके २७ विमक्तिस्थानका अपम्यकाळ
एक समय प्राप्त होता है। तथा इनके २८ और २७ विमक्तिस्थानका उत्कृष्टकाळ पत्त्वके
असम्पातवें भागप्रमाण वद्वेष्टनाकी अपेक्षासे कहा है। जो विभागस्थानी जीव सम्बन्धमिथ्या-
त्वकी वद्वेष्टना करनेके पश्चात् एक समय तक २६ विमक्तिस्थानके साथ रह कर पश्चात्
उपसमसम्बन्धको प्राप्त कर लेता है उसके २६ विमक्तिस्थानका अपम्य काळ एक समय

३ ३०५. आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्टात्रीम-चउत्रीमविह० के० ? जह० अंतोमू०, उक्क० छावटिसागरोवमाणि देसूणाणि । णवग्गि, चउत्रीमविह० सादिरेवाणि । सेम० ओघभगो । एवमोहिदम०-गम्माइट्टि० वत्तव्वं । मणपज्ज० अट्टात्रीसविह० ३० ? प्राप्त होता है । तथा अपर्याप्त अवस्थामें विभंगज्ञान नहीं होता । अतः इतने कालसे कम तेतीस सागर काल तक जो नारत्ती २६ विभक्तिस्थानके माथ मिथ्यादृष्टि घना रहता है उसके २६ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर प्राप्त होता है ।

३ ३०५. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस और चौबीस प्रकृतिक स्थानका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन द्वायामठ सागर है । इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतिस्थानका काल साधिक छयासठ सागर है । शेष स्थान ओघके समान है । इमीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी यद्दना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व या वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके और अन्तर्मुहूर्त काल तक उनके साथ रह कर अनन्तर सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है उसके उमके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानके रहते हुए २८ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा जो मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभयोजना करके और २४ विभक्तिस्थानके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर सम्यक्त्वसे च्युत हो जाता है उसके २४ विभक्तिस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है । वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल छयासठ सागर प्रमाण है । अब यदि इसमें उपशम-सम्यक्त्वका काल जोड़ दिया जाये और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभयोजना होनेके अनन्तरका मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षपणाकाल घटा दिया जाय तो उक्त काल कुछ कम छयासठ सागर प्रमाण रह जाता है, जो २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल ठहरता है, अतः उक्त तीन ज्ञानोंमें २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम छयासठ सागर प्रमाण कहा है । तथा जो उपशमसम्यक्त्वके कालमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभयोजना करके वेदकसम्यग्दृष्टि होता है और अपने उत्कृष्ट काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहते हुए अन्तमें मिथ्यात्वकी क्षपणा करता है उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विभयोजनासे लेकर मिथ्यात्वकी क्षपणा तकका काल छयासठ सागरसे अधिक प्राप्त होता है और यही २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल है । अतः उक्त तीन ज्ञानोंमें २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर कहा है । इन तीन ज्ञानोंमें शेष २३ आदि विभक्तिस्थानोंका काल ओघके समान जानना चाहिये, क्योंकि उक्त विभक्तिस्थान सम्यग्दृष्टि जीवके ही होते हैं और वहाँ इन तीनों ज्ञानोंका पाया जाना सम्भव ही है । अवधि दर्शनी और सम्यग्दृष्टिके भी विभक्तिस्थानोंके काल मतिज्ञानी आदिके समान जान लेना चाहिये ।

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल

अहृष्य० अंतोमुहुत्, उक्त० पुम्बकोडी देसमा । एव चतुर्वीसविह० अचम्य । तेवीस
 बावीस-तेरसादि जाय एकस्से विहचिभो चि ओपमंगो । पवरि चारसविह० एग
 समभो पारिष । एकवीसविह० क्व० ? अह० अंतोमुहुत्, उक्त० पुम्बकोडी देसमा ।
 एवं संजद० । पवरि चारस० अह० एगसमभो । एव सामाशयछेदो , पवरि शिगीवीस
 चतुर्वीसविह अह० एगसमभो । परिहार० अहावीस चतुर्वीस-तेवीस बावीस-एकवीस-
 विह० मणपलममगो । एव संजदासजद । असंजद० अहावीस-सचावीस-छम्बीस०
अन्तर्मुहुत् और अहृष्य काळ देखोन पूर्वकोटिप्रमाण हे । इसीप्रकार चौवीस प्रकृतिकस्वानके
काळअत्र कवन करना चाहिये । तेईस, बाईस, और तेरहसे छेकर एक प्रकृतिकस्वान तकका
 काळ ओपके समान हे । इतनी विशेषता हे कि बारह प्रकृतिकस्वानका अचम्य काळ एक
 समय नहीं हे । इक्कीस प्रकृतिकस्वानका काळ कितना हे ? अचम्य काळ अन्तर्मुहुत् और
 अहृष्य काळ देखोन पूर्वकोटि हे । इसीप्रकार सप्तोके समझना चाहिये । इतनी विशेषता
 हे कि सप्तोके बारह प्रकृतिकस्वानअत्र अचम्य काळ एक समय हे । इसी प्रकार सामा
 यिक सबत और ऐशोपस्वापन्य सबत बीसोके समझना चाहिये । इतनी विशेषता हे कि इन
 दोनो सप्तोके इक्कीस और चौबीस प्रकृतिकस्वानअत्र अचम्य काळ एक समय हे । परि
 हारविद्युद्धि सप्तोमें अहाईस, चौबीस, तेईस बाईस और इक्कीस प्रकृतिकस्वानोका काळ
 मत्तःपर्यबन्धानियोके समान हे । इसीप्रकार सप्ततासंक्तोके समझना चाहिये ।

विशेषार्थ—मत्तःपर्यबन्धान अत्रअ सक्तके होला हे अतः अत्रअ सक्तका जो अचम्य
 और अहृष्य काळ हे वही मत्तःपर्यबन्धानमें २८ और २४ विभक्तिस्वानअत्र अचम्य और
 अहृष्यकाळ जानना चाहिये जो ऊपर बतलाया ही हे । तथा २१ विभक्तिस्वानके अहृष्य
 काळ और १२ विभक्तिस्वानके काळको छोड़ कर शेष २१ आवि विभक्तिस्वानोका
 अचम्य और अहृष्य काळ मत्तःपर्यबन्धानमें भी ओपके समान बन जावा हे । किन्तु ०१
 विभक्तिस्वानअत्र अहृष्य काळ कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण प्राप्त होला हे । यहाँ कुछ
 कमसे जाठ वर्ष और अन्तर्मुहुत् काळ छिना गया हे । तथा बारह विभक्तिस्वानका अचम्य
 और अहृष्य काळ अन्तर्मुहुत् ही प्राप्त होला हे, क्योंकि मत्तःपर्यबन्धान पुत्रपवेत्री बीसके
 होला हे और पुत्रपवेत्रमें १२ विभक्तिस्वानअत्र अचम्य काळ एक समय नहीं बनता हे ।
 मत्तःपर्यबन्धानके समान सप्तोके भी जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता हे कि
 इनके बारह विभक्तिस्वानअत्र अचम्यकाळ एक समय भी बन जावा हे, क्योंकि सप्तोमें
 नपुंसकपवेत्रके बीसोअत्र भी समावेश हे । सप्तोके समान सामायिक और ऐशोपस्वापना
 सक्तोके भी जानना चाहिये । किन्तु इनके २४ और २१ विभक्तिस्वानोका अचम्य काळ
 एक समय भी बन जावा हे क्योंकि जो बीस उपसमवेपीसे छतर कर और एक समय
 एक सामायिक और ऐशोपस्वापना सबत रह कर मर जाते हैं उनके २४ और २१

मदिअण्णाणिमंगो । णवरि, अट्ठावीस० उक्क० तेत्तीससागरो० पल्लिदो० असंखे० भागेण सादिरेयाणि । चउवीस-एक्कवीसविह० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि । वावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतो-मुहुत्तं । चक्खुदंस० तसपञ्जत्तमंगो ।

विभक्तिस्थानोंका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है । परिहार विशुद्धि सयतोंके २८, २४, २३, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल यद्यपि मन पर्ययज्ञानीके समान होता है फिर भी इनके २८, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट काल कहते समय पूर्व-कोटि वर्षमेंसे ३८ वर्ष कम करना चाहिये । तथा सयतासयतोंके २८, २४, २३, २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान कहना चाहिये ।

असयतोंके अट्ठाईस, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानोंका काल मत्यज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि अट्ठाईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तेतीस सागर है । चौबीस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानोंका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । बाईस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंके स्थानोंका काल त्रसपर्याप्त जीवोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यद्यपि असंयतोंमें २८ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल और २७ तथा २६ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान बन जाता है किन्तु असंयतोंमें २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है, क्योंकि असंयत पदसे मिथ्यात्वादि चार गुणस्थानोंका ग्रहण होता है और इस अपेक्षासे असंयतोंके २८ विभक्तिस्थानका उक्त काल प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती है । तथा जिस असंयतने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसयोजना की है या दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी क्षपणा की है उसके अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही अन्य गुणस्थानकी प्राप्ति होती है अतः असयतोंके २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । जो जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी या तीन दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करके संयत होता है, तथा मर कर एक समय कम तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न होता है और वहासे च्युत होकर एक पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य होकर भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर संयत हो क्षपकश्रेणीपर आरोहण करता है उसके असंयत अवस्थामें २४ और २१ विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व-कोटि अधिक तेतीस सागर देखा जाता है । तथा जो संयत बाईस विभक्तिस्थानके कालमें एक समय शेष रहनेपर अन्य गतिको प्राप्त होजाता है उसके असंयत अवस्थामें २२ विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट

॥ ३०६ ॥ सेस्तापुबादेन किन्द्व-धीस-काठ० अद्वावीस-छप्पीसवि० के० ? अह० एगसमओ, उक्क० तेचीस-सचारस-सत्तसागरोबमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीसविह० ओषर्मगो । अठवीसविह० अह० अंतोमुहुत्त, उक्क० तेचीस-सचारस-सत्तसागरो० देह्ण पाप्पि । बावीसविह० क्व० ? अह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्त । एकवीसवि० अह० अंतोमुहुत्त, उक्क० सागरोबम देह्णं । जवरि, किन्द्व-धीठ० बावीसविहची अरियि । एकवीसविहची अहण्णुद्धस्सेण अंतोमुहुत्त । तेउ० पम्म० अद्वावीस-छप्पीसविह० अह० एगसमओ, उक्क० वे-अट्टारस सागरो० सादिरेयाणि । सत्तावीसविह० ओषर्मगो । अठवीसविह० के० ? अह० अंतोमुहुत्त, उक्क० वे अट्टारससागरो० सादिरेयाणि । तेवीस-बावीसवि० अह० अंतोमुहुत्त एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्त । एकवीसवि० अह० एगसमओ उक्क० वे-अट्टारससागरो० सादिरेयाणि । सुद्धत्ते अद्वावीसविह०

ही है। अद्वावीसबादेन धीसके विमत्तिस्थानोंका काठ त्रस पर्याप्तकोंके समान हो है इससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

॥ ३०६ ॥ सेरयामार्गणाके अनुबावसे कृष्ण, नीळ और कपोत छेरवावासे अर्धोस और छप्पीस प्रकृतिस्थानोंका काठ कितना है ? अल्प्य काठ एक समय और उत्कृष्ट काठ क्रमसे साधिक तेचीस सागर साधिक सत्रह सागर और साधिक सात सागर है । सत्तावीस प्रकृतिस्थानका काठ ओषर्के समान है । चौबीस प्रकृतिस्थानका अल्प्य काठ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काठ क्रमशः कुछ कम तेचीस कुछ कम सत्रह और कुछ कम सात सागर है । बाईस प्रकृतिस्थानका काठ कितना है ? अल्प्यकाठ एक समय और उत्कृष्ट काठ अन्तर्मुहूर्त है । तथा इक्कीस प्रकृतिस्थानका अल्प्यकाठ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाठ कुछ कम एक सागर है । इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीळ सेरयावालोंके बाईस प्रकृतिस्थान नहीं पाया जाता है तथा इक्कीस प्रकृतिस्थानका अल्प्य और उत्कृष्ट काठ अन्तर्मुहूर्त है ।

पीत और पच्छिमियावालोंके अद्वावीस और छप्पीस प्रकृतिस्थानका अल्प्य काठ एक समय है । उत्कृष्ट काठ क्रमशः साधिक दो और साधिक अठारह सागर है । तथा सत्तावीस प्रकृतिस्थानका काठ ओषर्के समान है । चौबीस प्रकृतिस्थानका काठ कितना है ? अल्प्य काठ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काठ क्रमशः साधिक दो और साधिक अठारह सागर है । तेईस प्रकृतिस्थानका अल्प्य काठ अन्तर्मुहूर्त और बाईस प्रकृतिस्थानका अल्प्य काठ एक समय है । तथा दोनों स्थानोंका उत्कृष्ट काठ अन्तर्मुहूर्त है । इक्कीस प्रकृतिस्थानका अल्प्य काठ एक समय तथा उत्कृष्ट काठ क्रमसे साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है ।

दुह सेरयावालोंके अद्वावीस प्रकृतिस्थानका अल्प्य काठ एक समय और उत्कृष्ट

जह० एगस०, उक्क० तेतीससागरोवमाणि सादिरियाणि । सत्तावीस-छव्वीमविह० देवोधभंगो । णवरि छव्वीस० एकतीससागरो० सादिरियाणि । चउवीसविह० जह० अंतोसुहुत्तं, उक्क० तेतीससागरो० सादिरियाणि । एकवीसविह० जह० एगसमओ । उक्क० तेतीससागरो० सादिरियाणि । सेस० ओघभंगो । णवरि वावीस० जह० एगसमओ । अभव्वसिद्धिं छव्वीसवि० केव० ? अणादि-अपञ्जवसिदो ।

§ ३०७. खइयसम्मादिट्ठीसु एकवीसादि जाव एयविहात्तिओ त्ति ओघभंगो । वेदग-सम्मादि० अट्टावीस चउवीस-तेवीस-वावीसविह० आभिणि० भंगो । णवरि चदुवीस० छावट्टिसागरो० देखणाणि । उवसमे अट्टावीस-चउवीस० जहणुक्क० अंतोसुहुत्त । सासणे अट्टावीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छआवाल्याओ । सम्मामि० उवसमसम्माइट्टिभंगो । मिच्छाइट्टि० मदिअण्णाणिभंगो । सण्णीसु छव्वीस० पुरिम० भंगो । सेम० ओघभंगो । असण्णि० एइदियभंगो । आहार० छव्वीसविह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्टिदी । सेम० ओघं जाणिदूण भाणिदव्वं ।

काल साधिक तेतीस सागर है । सत्ताईस और छव्वीस प्रकृतिकस्थानका काल सामान्य देवोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि छव्वीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है । चौवीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । तथा इक्कीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । शेष स्थानोंका काल ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके वाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य काल एक समय है । अभव्वोंके छव्वीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? अनादि-अनन्त है ।

§ ३०७. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतिक स्थानसे लेकर एक प्रकृतिक स्थान तक प्रत्येक स्थानका काल ओघके समान है । वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस, चौवीस, तेईस और बाईस प्रकृतिक स्थानका काल मतिजानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि चौवीस प्रकृतिक-स्थानका उत्कृष्ट काल देशोन छथासठ सागर है । उपशमसम्यक्त्वमें अट्टाईस और चौवीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सासादनमें अट्टाईस प्रकृतिक-स्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल उपशम सम्यग्दृष्टिके समान जानना चाहिये । मिथ्यादृष्टिका काल कुमतिज्ञानीके समान जानना चाहिये ।

संज्ञी जीवोंमें छव्वीस प्रकृतिकस्थानका काल पुरुषवेदके समान है । शेष कथन ओघके समान है । असंज्ञी जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान है ।

आहारक जीवोंमें छव्वीस प्रकृतिकस्थानका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । शेष कथन ओघके समान कहना चाहिये ।

वजाहारि० कम्मद्वयमेव ।

एवं कालो समसो ।

अन्तराणुगमेण एकिस्से विहत्तीए णत्थि अतर ।

३०० क्वदो ? सुबमसेदीए उप्पण्णचादो । य च खविदकम्मसामं पुणरुप्पणी अत्थि, भिच्छवासंनम-कसांय-जोगाणं संसारकारणाणमभावादो । न च कारयेष विष्णा कञ्जुंप्पञ्जं, अजवत्थापसंगादो ।

वजाहारक बीबीमें कर्मण कार्ययोगिबोके समाप्त जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—कृष्ण, नील और कपोत सेर्यामें २१ विमत्तिस्नानका अल्पम्य काष्ठ जो अन्तर्गुह्यत और कृष्ण काष्ठ कुछ कम एक सागर बतलाया है सो यहाँ कृष्ण काष्ठ कपोत सेर्याकी अपेक्षासे जालना चाहिये क्योंकि यह काष्ठ प्रथम मरकती अपेक्षासे प्राप्त होता है और प्रथम मरकती कपोत सेर्या ही होती है । किन्तु कृष्ण और नील सेर्यामें २१ विमत्तिस्नानका उत्कृष्ट काष्ठ अन्तर्गुह्यत ही प्राप्त होगा, क्योंकि २१ विमत्तिस्नानके रहते हुए कृष्ण और नील सेर्या कर्मभूमिज मनुष्योंके ही सम्भव है पर इनके पूर्वके सेर्याका उत्कृष्ट काष्ठ अन्तर्गुह्यतसे अधिक नहीं होता है । तथा कृष्ण और नील सेर्यामें जो २२ विमत्तिस्नानका विषेष किमा है सो इसका कारण यह है कि २२ विमत्तिस्नानके रहते हुए यदि अष्टम सेर्या होती है तो एक कपोत सेर्या ही होती है । सेर्याओंमें श्रेष्ठ कर्मोंका कथम सुगम है अतः यहाँ सुझावा नहीं किया है । इसी प्रकार आगेकी मार्ग-जांभीमें भी अपने अपने विमत्तिस्थानोंका काष्ठ सुगम होनेसे नहीं लिखा है । हाँ वेदक-सम्यक्त्वमें २२ विमत्तिस्नानका उत्कृष्ट काष्ठ जो कुछ कम उपासठ सागर प्रमाप्य बतलाया है सो इसका कारण यह है कि वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काष्ठ पूरा उपासठ सागर है जिसमें उत्कृष्टपवेदक तकका काष्ठ सम्मिश्रित है, अतः इसमेंसे सम्यगिच्छास्व और सम्यक्प्रकृतिके उपमा काष्ठको कम कर देनेपर २२ विमत्तिस्नानका उत्कृष्ट काष्ठ प्राप्त होता है ।

इसप्रकार काष्ठानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

अन्तराणुगमेण अपेक्षा एक प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं होता है ।

३१०० शक्य—एक प्रकृतिक स्थानका अन्तर क्यों नहीं होता है ?

समाधान—क्योंकि एक प्रकृतिक स्थान अपकथेपीमें होता है, अतः इसका अन्तर नहीं पाया जाता । क्योंकि जिन कर्मोंका क्षय कर दिया जाता है उनकी पुनः उत्पत्ति होती नहीं, क्योंकि हमका क्षय करनेवाले जीवोंके ससारके कारणमूल मिथ्यात्व, असंयम कथाय और योग नहीं पाये जाते । और कारणके बिना कार्यकी उत्पत्ति मानना मुक्त नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर कार्य-कारणमात्रकी व्यवस्था नहीं बन सकती ।

* एवं दोणहं तिणहं चउणहं पंचणहं एक्कारसणहं बारसणहं तेरसणहं एकवीसाए बावीसाए तेवीसाए विहत्तियाणं ।

§ ३०६. जहा एक्किस्से विहत्तियाणं णत्थि अंतरं तथा एदेसिं पि, खवणाए उप्पणत्तं पडि विसेसाभावादो ।

* चउवीसाए विहत्तियस्स केवडियमंतरं ? जह० अंतोमुहुत्तं ।

§ ३१०. कुदो ? अट्टावीससंतकम्मियसम्माइट्टिस्स अणंताणु० चउक्कं विसंजोइय चउवीसविहत्तीए आदिं कादूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण अट्टावीसविहत्तिओ होदूण अंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो सम्मत्तं वेत्तूण अणंताणु० विसंजोइय चउवीसविहत्तियभावमुवगयस्स चउवीसविहत्तीए अट्टावीसविहत्तिएहि अंतोमुहुत्तमेत्तंरुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण उवट्टपोग्गलपरियट्टं देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं ।

§ ३११. कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टस्स आदिसमए अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमस-

* इसीप्रकार दो, तीन, चार, पाँच, ग्यारह, बारह, तेरह, इक्कीस, बाईस और तेईस प्रकृतिकस्थानोंका भी अन्तर नहीं होता है ।

§ ३०६. जिसप्रकार क्षपकश्रेणीमें उत्पन्न होनेके कारण एक प्रकृतिकस्थानका अन्तर नहीं होता है उसीप्रकार ये दो आदि प्रकृतिकस्थान भी क्षपकश्रेणीमें ही उत्पन्न होते हैं, अत एक प्रकृतिकस्थानसे इनमें कोई विशेषता नहीं है, और इसलिये इन दो आदि स्थानोंका भी अन्तर नहीं पाया जाता है ।

* चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर कितना है । जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३१०. शंका—चौबीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—कोई एक सम्यग्दृष्टि अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला है । उसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके चौबीस प्रकृतिकस्थानका प्रारभ किया । पुनः वह सम्यक्त्व दशामें अन्तर्मुहूर्त रह कर मिथ्यात्वमें गया और अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला हुआ उसके एक अन्तर्मुहूर्त तक चौबीस प्रकृतिकस्थान नहीं रहा । पुनः अन्तर्मुहूर्तके बाद सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके चौबीस प्रकृतिकस्थानको प्राप्त हो गया । इसप्रकार पूर्वोक्त जीवके अट्टाईस प्रकृतिकस्थानकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है ।

* चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन अर्थात् देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है ।

§ ३११. शंका—चौबीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कैसे है ?

समाधान—कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रथम समयमें

म्मतं वेत्सु अद्वावीसविहृषिओ होत्सु अंतोमुहुचमाच्छिय पुषो अर्धतापु० विसंनोएत्सु
 अतवीसविहृषीए आदिं काट्ण मिच्छत्त गत्णतरिदो । तदो उक्त्वापोम्मलपरियट् ममि
 ह्म अतोमुहुचावसेसे सिञ्जिदम्भवे पि उक्त्तसमसम्मत्त वेत्सु अद्वावीसविहृषिओ होत्सु
 वेत्त अर्धतापुवपित्तत्तं विसंनोएत्सु अतवीसविहृषियत्तमुप्पाइत्तस्स दोहि अंतोमुहु
 चेहि उण-अद्दपोम्मलपरियट्मेत्तत्तत्तमादो । उक्त्तरे अग्घे पि अतोमुहुचा अत्थि
 वे किम्म गहिदा ? गहिदा वेत्त, किंतु वेत्तु सम्भेत्तु मेत्तिदेत्तु पि अतोमुहुच वेत्त होदि
 पि वेदि वेत्त अतोमुहुचेहि अद्दपोम्मलपरियट्मूष्मिदि मभिदं ।

० छम्बीसविहृषीए केवळियमत्तरं? अहण्णेण पत्तिवो० असंखे० भागो ।

३१२ छंका? ओ मिच्छादिद्वी छम्बीसविहृषिओ होत्सुच्छिदो, पुषो उक्त्तसमसम्मत्त
 वेत्सु अद्वावीसविहृषिओ होत्सु अंतरीदो, मिच्छत्तं गत्सु सम्भसहण्णेषु पत्तिवोवमस्स

उपशम सम्पत्त्वको महण करके अद्वाईस प्रकृतिकत्त्वामकी सत्तावात्ता हुआ और अन्तर्मुहूर्त
 वहाँ रह कर तथा अनन्तामुषन्वीकी विसंबोवना करके उसने चौबीस प्रकृतिकत्त्वानका प्रारंभ
 किया । अनन्तर मिथ्यात्वमें आकर अद्वाईस प्रकृतिकत्त्वान वात्ता होकर उसने चौबीस प्रकृतिक-
 त्त्वानका अन्तर किया । तदनन्तर अपार्थपुत्रक परिवर्तन काष्ठक संसारमें परिभ्रमण करके
 सिद्ध होनेके छिन्ने जब अन्तर्मुहूर्त कम छेप रहा तब वह उपशम सम्पत्त्वको महण करके
 अद्वाईस प्रकृतिक त्त्वानवात्ता हुआ । पुनः कूकि वह इतना काष्ठ जानेपर अनन्तामुषन्वी
 चारकी विसंबोवना करके चौबीस प्रकृतिकत्त्वानको उपशम करता है, इसछिन्ने उसके चौबीस
 प्रकृतिकत्त्वामका अन्तर हो अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुत्रक परिवर्तन प्रमाय पावा जाता है ।

छंका—अपर त्रिम हो अन्तर्मुहूर्तको कम किया है उनके अतिरिक्त अर्धपुत्रक परिवर्तन
 प्रमाय काष्ठमेंसे कम करने योग्य और भी अन्तर्मुहूर्त है उन्हें वहाँ क्यों नहीं महण किया ?

समाधान—कम करने योग्य छेप सभी अन्तर्मुहूर्तका वहाँ महण कर ही किया है ।
 किन्तु पुनः उपशम सम्पत्त्वकी प्राप्तिसे छेकर मोक्ष जाने तकके कम सब अन्तर्मुहूर्तके
 मिछने पर भी एक ही अन्तर्मुहूर्त होता है इसछिन्ने सभी अन्तर्मुहूर्तको अलगसे न गिना
 कर चौबीस प्रकृतिकत्त्वामका अन्तर हो अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुत्रक परिवर्तन काष्ठ होता
 है ऐसा कहा है ।

० छम्बीस प्रकृतिकत्त्वानका कितना अन्तर है ? उपन्य अन्तर पस्सोपमके अस
 क्मात्तवें भाग प्रमाय है ।

३१२ छंका—छम्बीस प्रकृतिकत्त्वामका उपन्य अन्तर पस्सोपमके असंक्मात्तवें भाग
 प्रमाय क्यों है ?

समाधान—छम्बीस प्रकृतिवात्ता ओ मिथ्यादिद्वि ओर उपशम सम्पत्त्वको महण करके
 और अद्वाईस प्रकृतिवात्ता होकर छम्बीस प्रकृतिकत्त्वानके अन्तरको प्राप्त हुआ । अनन्तर

असंखेजदि भागमेतुच्चेल्लणकालेण सम्मत-सम्मामिच्छताणि उव्वेलिय छुव्वीसविह-
त्तियो जादो तस्स पलिदोवमस्स असंखेजदिभागमेतजहण्णंतरुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण वेछावट्टि सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ३१३ कुदो ? अट्टावीस-सत्तावीसविहत्तियाणं जो उक्कस्सकालो पुव्वं परूविदो सो
छुव्वीसविहत्तियस्स उक्कस्संतरकालो त्ति अब्भुवगमादो ।

* सत्तावीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पलिदो० असंखे०
भागो ।

§ ३१४ कुदो ? सत्तावीसविहत्तियमिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्टावीसविह-
त्तियो होदूण अतरिदो । पुणो मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णुच्चेल्लणकालेण सम्मतमुच्चे-
ल्लिय जो सत्तावीसविहत्तियो जादो, तत्थ पलिदो० असंखे० भागमेतअंतरकालुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्ठं ।

मिध्यात्वमे जाकर सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उद्वेलन कालके द्वारा
सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना करके पुन छुव्वीस प्रकृतिक स्थानवाला हो
गया । उसके छुव्वीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण
पाया जाता है ।

* छुव्वीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक सौ बत्तीस सागर है ।

§ ३१३. शंका—छुव्वीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक सौ बत्तीस सागर
कैसे है ?

समाधान—अट्टाईस और सत्ताईस प्रकृतिकस्थानोंका जो उत्कृष्ट काल पहले कह आये
हैं वह छुव्वीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल होता है ऐसा स्वीकार किया गया
है, अतः छुव्वीस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है ।

* सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर पल्यके असंख्या-
तवें भाग है ।

§ ३१४. शंका—सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग क्यों है ?

समाधान—जो सत्ताईस प्रकृतिकस्थानवाला मिध्याट्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण
करके और अट्टाईस प्रकृतिकस्थानवाला होकर सत्ताईस प्रकृतिकस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ ।
पुनः मिध्यात्वमे जाकर सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करके
सत्ताईस प्रकृतिकस्थान वाला हो गया । उसके सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर
काल पल्यके असंख्यातवें भाग पाया जाता है ।

* सत्ताईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है ।

द्विय चरिमसमए सत्तावीसविहत्तिओ जो जादो तेण से काले उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्टावीससंते समुप्पाइदे एगसमयअंतरुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण उवड्हपोग्गलपरियट्टं ।

§ ३१७ कुदो, अणादियमिच्छाइही अद्धपोग्गलपरियट्टस्सादिममए उवसमसम्मत्तं घेत्तूण जो अट्टावीसविहत्तिओ जादो, तत्थ अट्टावीसविहत्तीए आदिं कादूण तदो सच्च-जहण पलिदोवमस्स असंखे० भागमेत्तकालेण सम्मत्तमुव्वेद्विय सत्तावीसविहत्तिओ जादो । अंतरिय अद्धपोग्गलपरियट्टं भमिय सच्चजहणतीमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अट्टावीसविहत्तिओ होदूण तदो अतोमुहुत्तेण सिद्धो जादो । तस्स पुव्विन्नेण पलिदो० असंखे० भागेण पच्छिल्लेण अतोमुहुत्तेण च ऊण-अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तु-क्कसंतरकालुवलंभादो । एवमचक्खु०-भवसिद्धियाणं वत्तव्वं ।

§ ३१८. सपहि उच्चारणाहरियवक्खाणमस्सिदूण भणिस्सामो । उच्चारणाए ओघो

करके मिध्यात्वकी प्रथमस्थितिके अन्तिम समयमें सत्ताईस प्रकृतिवाला हुआ । पुनः तदन-न्तर कालमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्टाईस प्रकृतिकी सत्ता उपार्जित की, उसके अट्टाईस प्रकृतिकस्थानका अन्तरकाल एक समय पाया जाता है ।

* अट्टाईम प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ३१७. शंका—अट्टाईस प्रकृतिकस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण कैसे है ?

समाधान—जब ससारमें रहनेका काल अर्धपुद्गलपरिवर्तन शेष रह जाय तब जो अनादि मिध्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालके प्रथम समयमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्टाईस प्रकृतिस्थानकी सत्तावाला हुआ, और इसप्रकार अट्टाईस प्रकृतिकस्थानका प्रारम्भ करके अनन्तर सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके द्वारा सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिकस्थानवाला होकर अट्टाईस प्रकृतिकस्थानके अन्तरको प्राप्त हुआ और उपार्धपुद्गलपरिवर्तन कालतक संसारमें परिभ्रमण करके ससारमें भ्रमण करनेका काल सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके जो पुनः अट्टाईस प्रकृतिकस्थानवाला होकर अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सिद्ध हो जाता है उसके अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका, अट्टाईस प्रकृतिकस्थानके अन्तर होनेके पहलेके पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण कालसे और पुनः अट्टाईस प्रकृतिकस्थानके प्राप्त होनेके बादके अन्तर्मुहूर्त कालसे न्यून अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र उत्कृष्ट अन्तर काल होता है । इसी-प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ३१८ अब उच्चारणाचार्यके व्याख्यानका आश्रय लेकर अन्तरकालको कहते हैं ।

शंका—उच्चारणा वृत्तिके अनुसार ओघ अन्तरकालका कथन क्यों नहीं किया ?

किंणु बुधदे ? न, तस्मिन् बुधिसुप्तसमाये भ्रम्यमाये पुणरुचदोसप्यसगादो ।

§ ३१६ आदेशेण भिरयगईए येरईएअ अट्टावीस-सत्तावीस-छम्बीस-चठवीसवि० अह० एगसमओ, पसिदो० असखे भागो, अंतोमुहुच । उक्क० सम्भेसिं तेवीससागरो० देसणाभि । बावीस-एकवीसवि० णसिय अतर । पठमाए पुठवीए अट्टावीस-सत्तावीस छम्बीस-चठवीसविह० अह० एगसमओ, पसिदो० असखे० मागो, अतोमुहुच । उक्क० सगद्धिदी देसणा । बावीस०-एकवीसविह० णसिय अंतरं । विदियादि आव सत्तमित्ति अट्टावीस-सत्तावीस छम्बीस-चठवीसविह० अह० एगस०, पसिदो० असखे० मागो, अतोमु० । उक्क० सगसगद्धिदी देसणा ।

समाधान—जहाँ क्योंकि पूर्णसूत्रके समान होनेसे वसन्त पुनः कथन करने पर पुनरुक्त दोषका प्रसंग प्राप्त होता है, अतः उच्चारणाका आशय लेकर जोष अन्तरका लक्ष्य नहीं था ।

§ ३१७ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्टाईस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर एक समय, सत्ताईस और छम्बीस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर परस्पोपमके असम्भारतर्षे भाग प्रमाण तथा चौबीस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । उक्त तीनों प्रकृतिस्थानोंका इच्छुअ अन्तर वेशोन तेतीस घागर है । नाईस और इक्कीस प्रकृतिस्थानोंका अन्तर नहीं होता है । पछवी पृथिवीमें अट्टाईस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर एक समय सत्ताईस और छम्बीस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर परस्वके असम्भारतर्षे भाग तथा चौबीस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । उक्त तीनों स्थानोंका इच्छुअ अन्तर वेशोन अपनी स्थितिप्रमाण है । नाईस और इक्कीस प्रकृतिस्थानका अन्तर नहीं है । दूसरी पृथिवीसे लेकर साठवी तक मत्पेक मरकमें अट्टाईस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर एक समय, सत्ताईस और छम्बीस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर परस्पोपमके असम्भारतर्षे भाग तथा चौबीस प्रकृतिस्थानका अपभ्रम अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उक्त तीनों स्थानोंका इच्छुअ अन्तर वेशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जो नारकी सम्भक्तमहत्तिका उच्छेदना करनेके परचात् एक समय वाए तप शम सम्भक्तको प्राप्त होता है उसके २० विमक्तिस्थानका अपभ्रम अन्तर एक समय पाक जाता है । जो २० विमक्तिस्थानवाला धारकी वपशम सम्भक्तको प्राप्त करके अति छपु अन्तर्मुहूर्त काळमें सिध्दात्त्वमें जाता है और वहाँ परस्वके असंभारतर्षे भागप्रमाण काळके घाट सम्भक्तमहत्तिका उच्छेदना करता है उसके २० विमक्तिस्थानका अपभ्रम अन्तर परस्वको असंभारतर्षे भाग प्रमाण प्राप्त होता है । जो २९ विमक्तिस्थानवाला नारकी वपशमसम्भक्तको प्राप्तकरके अति छपु अन्तर्मुहूर्त काळमें सिध्दात्त्वमें जाता है और वहाँ परस्वके

असंख्यातवें भागप्रमाण कालकेद्वारा सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना कर देता है उसके २६ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर काल पत्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है । तथा जो २४ विभक्तिस्थानवाला नारकी मिध्यात्वमें जाकर और अति लघु कालके द्वारा पुनः सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर देता है उसके २४ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा इन सब विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । जो निम्न प्रकार है—कोई एक जीव 'श्रद्धाईस विभक्तिस्थानके साथ तेतीस सागरकी आयुवाला नारकी' हुआ । अनन्तर पर्याप्त होनेके पश्चात् वेदकसम्यग्दृष्टि होकर उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी और जीवन भर २४ विभक्ति स्थानके साथ रहा । अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर वह मिध्यादृष्टि होगया और इस प्रकार २८ विभक्तिस्थानको प्राप्त कर लिया तो उसके २८ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल प्रारम्भके और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालको छोडकर तेतीस सागर प्रमाण पाया जाता है । कोई एक २७ विभक्तिस्थान वाला जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उसने उपशम सम्यक्त्व पूर्वक वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया और जब आयुमें पत्यका असंख्यातवा भाग-प्रमाण काल शेष रहा तब मिध्यात्वमें जाकर उसने सम्यक्त्वप्रकृतिकी उद्वेलनाका प्रारम्भ किया । तथा आयुमें एक समय शेष रहनेपर वह २७ विभक्तिस्थानवाला होगया, तो उसके अन्तर्मुहूर्त कालको छोडकर शेष ३३ सागर काल २७ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है । इसी प्रकार २६ विभक्तिस्थानका अन्तर काल कहना चाहिये । विशेषता इतनी है कि प्रारम्भमें २६ विभक्तिस्थानसे उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करावे तथा पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके शेष रहनेपर सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलना करावे । कोई एक जीव ३३ सागरकी आयुके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदक सम्यग्दृष्टि होकर उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करदी । पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके बाद वह मिध्यात्वमें गया और जीवन भर मिध्यादृष्टि बना रहा । किन्तु अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर पुन वह उपशम सम्यक्त्व पूर्वक वेदक सम्यग्दृष्टि होगया और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करदी, तब जाकर उसके प्रारम्भके और अन्तके कुछ अन्तर्मुहूर्त कालोंको छोडकर शेष तेतीस सागर काल २४ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर काल होता है । किन्तु ऐसे जीवको मरते समय अन्तर्मुहूर्त पहले पुन मिध्यात्वमें लेजाना चाहिये । तथा नरकमें २२ और २१ विभक्ति-स्थान होते हैं पर उनका अन्तर काल नहीं पाया जाता । प्रथमादि नरकमें भी इसी प्रकार अन्तरका कथन करना चाहिये किन्तु उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते समय कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । तथा आगेकी मार्गणाओंमें भी जहां जिन

३२० विरिक्त्वगदीय विरिक्त्सेसु अद्वावीस-सत्तावीस-चउवीसविह० ओमप्रमगो ।
 कुम्भीसविह० अह० पल्लिदो० असखे० मागो, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० सादिरयाणि ।
 वावीस-एक्कवीसविह० णणिय अंतर । पंचिदियविरिक्त्व-पंचिदियविरिक्त्वपञ्च-पंचि
 विरि० ओणिणीसु अद्वावीस-सत्तावीस-कुम्भीस चउवीसविह० अह० एगसमगो, पल्लिदो०
 असखे० मागो, अतोसुहृत्त । उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पुम्भक्कोटिपुषत्तेणम्महि
 याणि । वावीस-एक्कवीसविह० णणिय अंतर । णवरि, ओभिणी० वावीस-इग्गिणीस
 प्पत्थि । पंचिदियविरिक्त्वअपञ्चत्त० सम्भपदाव अरिय अंतर । एवं मणुसअपञ्चत्त०
 अणुसिदादि ज्ञाव सम्भहु०-सम्भएदिय-सम्भविगळिदिय-पंचिदियअपञ्चत्त-सम्भ
 पञ्चअप-त्तअपञ्चत्त०-ओरालिपमिस्स०-वेउअियमिस्स० आहार०-आहारमिस्स०-कम्म
 इय अचगदवेद-अकमायि०-सम्भणाणि केवसुपञ्च-सम्भसंयम असंयद्वत्त ओहिदसण
 अमवसिद्धि०-सम्भसम्मादिट्ठि असण्णिय अण्णहारि ति वचम्भ ।

विमलित्वानोक्त अन्तर सम्भव हे वहाँ इसी प्रकार विचार कर उसका कथन करना चाहिये ।
 किन्तु उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते समय उस उस मार्गवादी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा ही
 उसका कथन करना चाहिये ।

३२० तिर्य्यगतिमें तिर्य्यचोमें अद्वाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिकस्थानका
 अन्तर ओचके समान है । तथा छत्तीस प्रकृतिकस्थानका अपत्य अन्तर पत्यके असंख्यातवें
 भागप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर साचिक तीन पत्य है । बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका
 अन्तर नहीं है । पंचेन्द्रियतिर्य्यच पंचेन्द्रियतिर्य्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्य्यच योनिमयी
 जीवोंमें अद्वाईस प्रकृतिक स्थानका अपत्य अन्तर एक समक, सत्ताईस और कुम्भीस
 प्रकृतिक स्थानका अपत्य अन्तर पत्यका असंख्यातवां भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका
 अपत्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पूरकत्व अधिक तीन पत्य है ।
 बाईस और इक्कीस प्रकृतिकस्थानका अन्तर नहीं है । इसी विधेयता है कि पंचेन्द्रिय-
 तिर्य्यच योनिमयी जीवोंमें बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थान नहीं पाया जाता है । पंचे
 न्द्रियतिर्य्यच छत्त्यपर्वीत्यक जीवोंमें समक समी पद्दोच अन्तरका नहीं होता है । इसीप्रकार
 छत्त्यपर्वीत्यक मनुष्य अनुदिष्टसे लेकर सर्वावैसिद्धि तकके इव समी प्रकारके पंचेन्द्रिय
 समी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्वीत्य समी प्रकारके पांच स्थावरकायिक जीव
 प्रस अपर्वीत्य औरारिकमिन्नकाययोगी, वैकियिकमिन्नकाययोगी, आहारककाययोगी
 आहारकमिन्नकाययोगी कर्मकाययोगी, अपरगतवेदी अकपावी, केवस्थानको छोड़ कर
 छेप समस्त ज्ञानवाले असंयतोंको छोड़कर समी संयमवाले अवविदसंती, अमभ्य, समी
 प्रकारके सम्बगदृष्टि, असञ्जी और अण्णहारक जीवोंके कथन करना चाहिये । अर्थात् हम
 जीवोंके किसी भी स्थानका अन्तरका नहीं पाया जाता है ।

§ ३२१. मणुस्स-मणुस्सपज्ज-मणुसिणीसु अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीस-विह० जह० एगसमओ, पालिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमु० । उक्क० तिण्णि पालिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि । तेवीस-वावीसादि उवरि० णत्थि अंतरं ।

§ ३२२. देवेसु अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चदुवीस० जह० एयसमओ, पालिदो० असंखे० भागो, अतोमुहुत्तं । उक्क० एकत्तीसं सागरो० देस्सणाणि । वावीस-इगिवीम० णत्थि अंतरं । भवण०-वाण०-जोदिसि० अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पालिदो० असंखे० भागो, अतोमु० । उक्क० सगट्ठिदी देस्सणा । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवजेत्ति अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीसवि० जह० एगममओ, पालिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० सगट्ठिदी देस्सणा । वावीस-एक्कवीस-विह० णत्थि अंतरं । पंचिदिय-पंचिदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० अट्टावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पालिदो० असंखे० भागो, अंतोमुहुत्तं । उक्क०

§ ३२१. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योमें अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पत्यका असंख्या-तवां भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पत्य है । किन्तु तेईस और बाईससे लेकर आगे एक प्रकृतिकस्थान तक किसी भी स्थानका अन्तर नहीं होता है ।

§ ३२२. देवोंमें अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पत्यके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन इकतीस सागरोपम है । बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं होता है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें अट्टाईस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पत्यके असंख्यातवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । बाईस और इक्कीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर नहीं होता । पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, ब्रस, ब्रस पर्याप्त जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पत्यके असंख्या-तवें भाग और चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर देशोन अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । इतनी विशेषता है कि इन जीवोंमें छब्बीस

सगङ्गिणी देव्या । इन्ध्रीसविह० ओषमंगो । सेसाभ परित्थ जतर ।

१३२३ ओगापुत्रादेण पचमण०-पंचवधि० अट्टावीसवि० छह० एगसमओ, उक्क० अतोमुत्तुच । सेसाभं हाप्पाभं परित्थ अतर । एवं कयजोगि-ओराठिय०-भेठम्भिय० पचारिकसाय० वचम्भ ।

१३२४ वेदापुत्रादेण इत्थि-पुरिस-गजुसयवेदेसु अट्टावीस-सत्तावीस-चठवीसविह० छह० एगसमओ, पत्तिदो० असंखे० मागो, अतोमुत्तु० । उक्क० पत्तिदोषमसदपुत्तुच, सागरोवमसदपुत्तुच, उवहपोम्मसपरियट्ठं । इन्ध्रीसविह० अह० पत्तिदो० असंखे० मागो । उक्क० पञ्चण्णपत्तिदोषमाभि, वे ज्ञावट्टिसागरोषमाभि, तेपीससागरोषमाभि सादिरे याभि । सेसाभं हाप्पाभं परित्थ अतर । असंखद० अजुस० मगो । चक्खु० तसमगो ।

१३२५ सेसापुत्रादेण क्खिण्ण-णीत्थि-क्यठ० अट्टावीस-सत्तावीस-इन्ध्रीस-चठवीसवि०

प्रकृतिक स्वानका उत्कृष्ट अन्तर ओषके समान है । रोष स्वानोका अन्तर नहीं होता है ।

१३२६ योममार्गणाके अनुवाहसे धाँचो मनोयोगी और पाँचो बचनयोगी जीबोमें अट्टाईस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । रोष सत्ताईस आदि प्रकृतिक स्वानोका अन्तर नहीं होता है । इसीमकर कयजोगी, औदारिक कयजोगी, वैदिकिककावयोगी और चारो कपाववाले जीबोमें अट्टाईस आदि स्वानोका अन्तर कइना चाहिये ।

१३२७ वेदमार्गणाके अनुवाहसे जीबेदी पुरुषकेरी और नपुसककेरी जीबोमें अट्टाईस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर पस्वोपमके असक्यावर्षे भाग और चौबीस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा जीबेरी जीबोमें अट्टाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक स्वानका उत्कृष्ट अन्तर सौ पस्य पृबकत्थ है । पुरुषकेरी जीबोमें अट्टाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक स्वानोका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृबकत्थ है । तथा नपुसककेरी जीबोमें अट्टाईस, सत्ताईस और चौबीस प्रकृतिक स्वानोका उत्कृष्ट अन्तर क्यार्थपुत्तुच परिवर्तन प्रमाण है । तथा उठ दीबो वेदवाले जीबोमें इन्ध्रीस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर पस्वोपमके असक्यावर्षे भाग है । और उत्कृष्ट अन्तर जीबेरी जीबोमें साधिक पचपन पस्य, पुरुषकेरी जीबोमें साधिक एक सौ बत्तीस सगर और नपुसककेरी जीबोमें साधिक सेतीस सगर है । समथ ज्ञेय स्वानोका अन्तर ही नहीं है । असक्यतोमें नपुसककेरीके समान ज्ञानन्य चाहिये । चण्डरसनी जीबोमें बस जीबोके समान ज्ञानसा चाहिये ।

१३२८ सेसापुत्रादेण क्खिण्ण, नीक और कपोस केरवावाले जीबोमें अट्टाईस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और इन्ध्रीस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर पस्वोपमके असक्यावर्षे भाग और चौबीस प्रकृतिक स्वानका अपन्य अन्तर अन्त-

जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो, अंतोमु० । उक्क० तेत्तीस-मत्तारस-सत्त-
सागरोवमाणि देसूणाणि । णवरि, सत्तावीस० सादिरेय० । एगवीसविह० णत्थि अतरं ।
णवरि काउ० वावीसवि० अत्थि । णवरि तिस्सेवि अंतरं णत्थि । तेउ०-पम्म०-सुक्क०
अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीसविह० जह० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो,
अंतोमु० । उक्क० वे-अट्टारससागरो० सादिरेयाणि, एकत्तीमसागरोवमाणि देसूणाणि ।
णवरि सत्तावीस० सादिरे० । सेसाणं णत्थि अंतरं । सण्णी० पुरिसभंगो । आहारि०
अट्टावीस-सत्तावीस-चउवीसवि० जहण्ण० एगसमओ, पलिदो० असंखे० भागो,
अंतोमु० । उक्क० अगुलस्स असंखे० भागो । छव्वीसविह० ओघभंगो । सेसाणं
णत्थि अंतरं ।

एवमंतर समत्तं ।

* णाणाजीवेहि भंगविचओ । जोसिं मोहणीयपयडीओ अत्थि
मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तर कृष्णलेश्यावालोंमें देशोन तेतीस सागर, नीछ लेश्यावालोंमें
देशोन सत्रह सागर और कापोत लेश्यावालोंमें देशोन सात सागर होता है । इतनी
विशेषता है कि सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कमकी जगह साधिक
कहना चाहिये । यद्यपि उक्त तीनों लेश्यावालोंके इक्कीस प्रकृतिकस्थान सभव है पर वह
स्थान अन्तररहित है । इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यावालोंके बाईस प्रकृतिकस्थान
भी सभव है परन्तु उसका भी अन्तर नहीं होता है । पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले
जीवोंमें अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस और छव्वीस
प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग और चौवीस प्रकृतिक स्थानका
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है । उक्त चारों स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पीतलेश्यावाले
जीवोंमें साधिक दो सागर, पद्मलेश्यावाले जीवोंमें साधिक अठारह सागर और शुक्ललेश्यावाले
जीवोंमें कुछ कम इकतीस सागर होता है । इतनी विशेषता है कि सत्ताईस प्रकृतिक
स्थानका उत्कृष्ट अन्तर तीनों लेश्यावालोंके कुछ कमके स्थानमें साधिक कहना चाहिये ।
शेष स्थानोंका अन्तर ही नहीं होता है ।

सत्री जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कहना चाहिये । आहारक जीवोंमें अट्टाईस
प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर एक समय, सत्ताईस प्रकृतिक स्थानका जघन्य अन्तर पल्यो-
पमके असंख्यातवें भाग और चौवीस प्रकृतिकस्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है ।
तथा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाशके जितने प्रदेश हों उतने
समय प्रमाण होता है । परन्तु छव्वीस प्रकृतिक स्थानका अन्तर ओघके समान जानना
चाहिये । शेष स्थानोंका अन्तर ही नहीं पाया जाता ।

इसप्रकार अन्तरानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय अनुयोगद्वाराका कथन करते हैं । जिन

तेसु पयस ।

‡३२६ 'षाणाधीवेहि मंगविषयो' ति एत्थ 'कीरदे' इषेदेव पदेण सपधो कायम्भो, अण्णहा अत्पावममामावादो । जेसु धीवेसु मोहणीयपयसी अत्तिव तेसु वेव एत्थ पयसं, मोहणीए अहियारादो ।

* मन्वे जीवा अट्टाधीस-सत्ताधीस-उम्भीस-चठधीस-एक्कीससंत कम्मविहत्तिया णियमा अत्थि ।

‡३२७ मन्वे जीवा अट्टाधीसविहत्तिया ते णियमा अत्थि ति संबंधो ण कायम्भो, सम्भेसि जीवाण अट्टाधीसविहत्तियामावादो । किंसु जो (जे) अट्टाधीसविहत्तिया जीवा, ते सम्भे अत्थि ति संबंधो कायम्भो । एव सम्भत्य वत्तम्भ । तदो एदेसि हाणाण विहत्तिया अविहत्तिया च णियमा अत्थि ति सिद्ध ।

* सेस विहत्तिया भजियम्भा ।

‡३२८ २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १ । एदाणि मयणित्ताणि पदाणि । पुणो एदेसि मयणित्तपदानं मंगपमाणपरुवणगाहा एसा । त अहा, मयणित्तपदा तिगुणा अण्णोण्णगुणा पुणो ति कायम्भा ।

पुवरहिमा कण्ठा पुवसत्तिया तत्तिया वेव ॥ ३ ॥'

जीबोंके मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां पाई जाती हैं उनका यहाँ प्रकरण है ।

‡३२९ 'आण्णधीवेहि मंगविषयो' इस वाक्यमें 'कीरदे' परका सम्बन्ध कर लेना चाहिये, अन्यथा अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता । जिन जीबोंमें मोहनीयकर्म विद्यमान हैं इस अधिकारमें उनका ही प्रकरण है, क्योंकि मनुष्यमें मोहनीयकर्मका अधिकार है ।

* जो जीब मोहनीय कर्मप्रकृतियोंकी अट्टाईस, सत्ताईस, उम्भीस, चौबीस और इक्कीस विमक्तिवाले हैं वे सब नियमसे हैं ।

‡३२० सभी जीब अट्टाईस विमक्तिस्वानवाले नियमसे हैं इसप्रकार सबन्ध नहीं करना चाहिये, क्योंकि सभी जीबोंके अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता नहीं पाई जाती है । किन्तु ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये कि जो जीब अट्टाईस विमक्तिस्वानवाले हैं वे सभी हैं । इसी प्रकार सभी स्थानोंमें कहना चाहिये । इस कथनसे इन अट्टाईस आदि स्थानोंसे कुछ जीब और इन अट्टाईस आदि स्थानोंसे रहित जीब नियमसे हैं यह सिद्ध होगा है ।

* शेष तेईस आदि विमक्तिस्वानवाले जीब कमी होते हैं और कमी नहीं भी होते ।

‡३२८ २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ ये स्थान भजनीय हैं । जब इन भजनीय पदोंके मंगोंके प्रमात्यको वचकानेवासी गाणा देते हैं—

“भजनीय पदोंका १ १ इसप्रकार बिरहण करके तिगुना करे । पुनः उस तिगुनी बिरहित राक्षिक परस्परमें गुणा करे । इस क्रियाके करनेसे जो कथ्य जाता है उससे अष्टव

§ ३२६ एदिस्से गाहाए अत्थो बुच्चदे । तं जहा, भयणिज्जपदाणि दस । पुणो एदाणि विरलिय तिग कादूण अण्णोण्णेण गुणिदे सन्वभंगा उप्पजंति । तेसिं पमाणमेद-५६०४६ । पुणो एत्थ एगरूवे अवणिदे भयणिज्जपदभंगा होंति । तम्हि चेव अवाणिदरूवे पक्खित्ते ध्रुवभंगेण सह सन्वभगा उपजंति ।

§ ३३०. संपहि तिगुणिय अण्णोण्णगुणस्स कारणे भण्णमाणे ताव एसा संदिट्ठी ठवेदन्वा । १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ । एत्थ उवरिमअंका एयवयणस्स हेट्ठिम-अका २ २ २ २ २ २ २ २ २ २ ।

वि बहुवयणस्स । एव द्दविय तदो एदोस्मालावपरूवणा कीरदे । तं जहा-सिया एदे भङ्ग एक कम होते हैं और ध्रुवभङ्ग सहित अध्रुवभङ्ग उक्त संख्याप्रमाण ही होते हैं ।”

§ ३२६ अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं । वह इसप्रकार है—प्रकृतमे २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ इसप्रकार ये दस विभक्तिस्थान भजनीय हैं । इन १० पदोंका १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ इसप्रकार विरलन करके इन्हें ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ इसप्रकार तिगुना करे और परस्परमें ३×३×३×३×३×३×३×३×३ गुणा कर दे । ऐसा करनेसे सभी ध्रुव और अध्रुव भङ्ग उत्पन्न हो जाते हैं । उन सबका प्रमाण ५६०४६ होता है । इस उपर्युक्त राशिमेंसे १ कम कर लेनेपर भजनीय पदोंका प्रमाण ५६०४६ होता है । तथा इस संख्यामें, जो एक घटाया था उसे मिला देने पर ध्रुवभङ्गके साथ सभी भङ्गोंका प्रमाण ५६०४६ आता है ।

उदाहरण—भजनीयपद १०,

भजनीय पदोंका विरलन— १ १ १ १ १ १ १ १ १ १

विरलितराशिका त्रिगुणीकरण } - ३×३×३×३×३×३×३×३×३×३=५६०४६ ।
और परस्पर गुणा

५६०४६-१=५६०४६ अध्रुवभंग ।

५६०४६+१=५६०४६ ध्रुव और अध्रुव सभी भग ।

§ ३३०. विरलित राशिके प्रत्येक एकको तिगुना करनेके और उसके परस्पर गुणा करनेके कारणको बतलानेके लिये निम्न लिखित संहृष्टि स्थापित करनी चाहिये—

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १
२ २ २ २ २ २ २ २ २ २

इस संहृष्टिमें ऊपर रखा हुआ एकका अक एकवचनका और नीचे रखा हुआ दो का अक बहुवचनका द्योतक है । इसप्रकार संहृष्टिको स्थापित करके अब उन भंगोंके आलापोंका कथन करते हैं । वह इसप्रकार है—

कदाचित् ये २८, २७, २६, २४ और २१ ध्रुवस्थानवाले ही जीव होते हैं ।

च, सिया एदे च तेवीसविहसिओ च, सिया एद च तेवीसविहसिया च ।

३३३१ 'सिया एदे च' एव मभिदे धुबपदान गहन, तेसिं बहुरयणभिदेसो येव जीवसु बहुवेसु येव धुबपदाणमबद्धानादो । 'तेवीसविहसिओ च' एवं मभिदे एगबयणगगहन । कुदो ? संसणमोहकस्त्रबगस्स तेवीसविहसियस्स कयाइ एकस्सेव उवलमादो । 'सिया तेवीसविहसिया च एव मभिदे हेद्विमबहुरयणस्म गहन । कुदो ? तेवीसविहसियाण दसणमोहकस्त्रबयाण कयाइ अट्टोत्तरमयमेत्ताणसुबलमादो । एवसुप्पण्णदोमगसंदिही एसा १ । पुणो एदेसिं करणकिरियाए आगमणे इच्छिज्जमाणे एगस्सं द्वयिय दोहि रूवेहि गुभिदे धुबमणेण विप्पा तेवीसविहसियस्स एवबहुरयणमगा येव आगच्छन्ति । पुणो धुबमगण सह आगमणमिच्छामो चि दोरुप्पेसु एव पक्खियिण गुभिदे धुबमगण सह तिण्णिमगा आगच्छन्ति १ । एदेण कारणेण मयाणलपद तीहि रूवेहि गुणिज्जादि ।

कदाचित् ये अट्टाईस आदि मुबविमत्तिस्वानवाले अनेक जीव और तेईस विमत्तिस्वानवालय एक जीव होता है । कदाचित् ये अट्टाईस आदि मुबविमत्तिस्वानवाले अनेक जीव और तेईस विमत्तिस्वानवाले अनेक जीव होते हैं ।

३३३१ 'सिया एदे च' ऐसा करनेपर मुबपदोंका ग्रहण करना चाहिये । इन मुबपदोंका बहुबचनके द्वारा निर्देश किया है क्योंकि मुब पद बहुत जीवोंमें ही पाये जाते हैं । अर्थात् उपर्युक्त अट्टाईस आदि मुबस्वानोंके पारक सर्वथा अनेक जीव रहते हैं अतः मुबपदोंका निर्देश बहुबचनके द्वारा किया गया है । 'तेवीसविहसिओ च' इसप्रकार करनेपर एक बचनका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि जो मिध्यात्व नामक दसममोहनीयकी क्षयणा करके तेईस विमत्तिस्वानको प्राप्त हुआ है ऐसा जीव कदाचित् एक हो पाया जाता है । 'सिया तेवीसविहसिया च' ऐसा करनेपर जो सद्यष्टि पीछे है आये हैं वसमें नीचरण हुए दो अंकसे गृहित होनेवाले बहुबचनका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि कदाचित् मिध्यात्व नामक दसममोहनीयका क्षय करके तेईस विमत्तिस्वानको प्राप्त हुए एक ही आठ जीव पाये जाते हैं । इसप्रकार मुबमंगके बिना तेईस विमत्तिस्वानके निमित्तसं क्षयन हुए दो भगोंकी संदष्टि यह है २ । गजितकी विधिके अनुसार यदि इन दो भगोंको छाना इष्ट हो तो एक अंकको स्थापित करके उसे दो अंकस गुणितकर देनेपर तेईस विमत्तिस्वानक मुबभगक बिना एकबचन और बहुबचनके द्वारा यह मंग ही आता है । और यदि मुबभगके साथ तेईस विमत्तिस्वानक मंग छाना इष्ट हो तो दोके अङ्कमें एकको जोड़ देनेपर मुबभगक साथ तीन मंग उत्पन्न होते हैं ३ । इसी कारणमे मञ्जनीयपदको तीनमे गुणित करे ऐसा कहा है ।

बगदत्त-१×२=२ तेईस विमत्तिस्वानके भंग ।

२+१=३; १×१=१ मुबमंगके साथ तेईस विमत्तिस्वानके भंग ।

एवं सेमवावीसविहत्तियप्पहुडि जाव एगविहत्तिओ त्ति ताव पादेकं तिहि गुणो कारणं वत्तन्व ।

§ ३३२. संपहि तिगुणिय अण्णोण्णगुणस्स कारणं बुच्चदे । तं जहा-सिया एदे च वावीसविहत्तिओ च, सिया एदे च वावीसविहात्तिया च । एवं वावीसविहत्तियस्स एग-संजोगेण एगवहुवयणाणि अभिस्सदूण दो भगा २ । पुणो वावीस-तेवीसविहत्तियाणं दुसजोगो बुच्चदे । त जहा-सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च वावीसविहत्तिओ च १ । सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च वावीसविहत्तिया च २ । सिया एदे च तेवीस-विहत्तिया च वावीसविहत्तिया (ओ) च ३ । सिया एदे च तेवीसविहत्तिया च वावीस-विहत्तिया च ४ । एव वावीसविहत्तियस्स दुसजोगभंगा चत्तारि हवति । पुणो एदेसु पुच्चुत्तेगमजोगभगेसु पक्खित्तेसु छम्भवति ।

§ ३३३. पुणो एदेसिं करणाकरियाए आणयण बुच्चदे । तं जहा-पुच्चुत्तेवीसविह-

इसीप्रकार शेष बाईस विभक्तिस्थानसे लेकर एक विभक्तिस्थान तक प्रत्येक स्थानको तीनसे गुणा करनेका कारण कहना चाहिये ।

§ ३३२ अब विरलित राशिके प्रत्येक एकको तिगुना करके परस्परमे गुणा करे यह कह आये हैं उसका कारण कहते हैं । वह इसप्रकार है—

कदाचित् ये २८ आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । इसप्रकार एकवचन और बहुवचनका आश्रय लेकर बाईस विभक्तिस्थानके एकसयोगी भङ्ग दो होते हैं । अब बाईस और तेईस विभक्ति-स्थानोंके दोसयोगी भङ्ग कहते हैं । वे इसप्रकार हैं— कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुव स्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । यह पहला भङ्ग है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । यह दूसरा भग है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्ति-स्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । यह तीसरा भग है । कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव, तेईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । यह चौथा भङ्ग है । इस प्रकार बाईस विभक्तिस्थानके तेईस विभक्तिस्थानके संयोगसे द्विसयोगी भग चार होते हैं, इन चार भगोंमें पहले कहे गये बाईस विभक्तिस्थानके एक संयोगी दो भङ्गोंके मिला देनेपर कुल भङ्ग छह होते हैं ।

§ ३३३ अब ये छहों भङ्ग गणितकी विधिके अनुसार कैसे निकलते हैं यह बतलाते हैं ।

यतिष्मिभगेसु दोहि रूवेदि गुणिदसु तेवीसविहचियसस तिहि भगेदि विषा बावीस-
विहचियसस एगदुसभोगमगा येव आगच्छति । पुणो तेसिं षड्भंगमाव पि आगमप-
मिच्छामो चि पुच्छिद्वयुगगारस्मि रूव पक्खिचिय गुणिद बावीसविहचियसस एग
दुसंभोगमगा तेवीसविहचियसस एगसंभोगमगा च सव्ये एगवारेव आयच्छति । तेसिं
पमाणमेद ६। एव तेवीस-बावीसविहचियाणमेगदुसभोगपकूणणा कया ।

§ ३३४ सपदि तिसुभण्णोष्मगुणसस मिष्णयत्वं पुणो वि परूवया फीरद । तं अहा-
तेरसविहचियसस एगसंभोगस एग-बहुवयमाणे अस्सिदूण दो मगा उप्पज्जति २ ।
पुणो तस्सेव दुसंभोगालावे भण्णमाये पुष्यं च तेरस-तेवीसविहचियाण सज्जोएव
चचारि ४ । तेरस-बावीसविहचियाण सज्जोएव वि चचारि येव ४ । पुणो तेरसविहचि-
यसस तिसभोगे भण्णमाणे तेवीस-बावीस-तेरसविहचियाण द्दविदसविट्ठीए एग-बहु
वयणापि अस्सिदूव अकूणपरावचे कदे अट्ट तिसभोगमगा उप्पज्जति । मंगदि तेरस
विहचियसस एगदोविसभोगाण सव्यभगसमासो अट्टारस १८ । एदेमिं करण
फिरियाए आचयण बुद्धे । तं अहा-तेवीस-बावीसविहचियाण णवमगेसु दुगुणिवेसु

बह विधि इसप्रकार है- तेईस विमलित्स्थानसंबन्धी पूर्वोक्त धीन भङ्गोके दोसे गुणित
कर देनेपर तेईस विमलित्स्थानके धीन भगोके बिना केवळ बार्ईस विमलित्स्थानके एक
संबोगी और द्विसबोगी भंग ही आते हैं । अब यदि इन बार्ईस विमलित्स्थानके भगोके
साथ तेईस विमलित्स्थानके पदाय हुए भगोको छाना भी इष्ट है तो पूर्वोक्त दो संस्कारूप
गुणकारमें एक सबवा मिश्र कर पूर्वोक्त गुणव्यवस्थिसे गुणित करने पर बार्ईस विमलित्स्थानके
एक-द्विसबोगी और तेईस विमलित्स्थानके एक संबोगी सभी भंग एक साथ आ जाते हैं ।
उन सभी भङ्गोका प्रमाण २ होता है । इसप्रकार तेईस और बार्ईस विमलित्स्थानके एक
संबोगी और द्विसबोगी भगोकी प्रकृपणा की ।

§ ३३४ अब विरलित् राशिके मत्येक एकको तिसुगा करके परस्पर गुणा करनेकी विधिके
निर्णय करनेके लिये और भी करते हैं । उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है- एकवचन और
बहुवचनका आशय लेकर तेरह विमलित्स्थानके एकसबोगी दो भंग उत्पन्न होते हैं । पुनः
छठी तेरह विमलित्स्थानके द्विसबोगी भगोका कथन करनेपर पूर्ववत् तेरह और तेईस
विमलित्स्थानोके सबोगसे चार भंग तथा तेरह और बार्ईस विमलित्स्थानोके संबोगसे भी
चार भंग होते हैं । तथा तेरह विमलित्स्थानके त्रिसबोगी भगोका कथन करनेपर तेईस
बार्ईस और तेरह विमलित्स्थानोकी जो सद्यष्टि स्थापित है उसमें एकवचन और बहुवचनका
आशय लेकर अष्टसंचार करनेपर त्रिसबोगी भंग आठ उत्पन्न होते हैं । इसप्रकार तेरह
विमलित्स्थानके एकसबोगी द्विसबोगी और त्रिसबोगी सभी भगोका जोड़ अट्टारह होता
है । अब हमकी गणितके अनुसार विधि करते हैं । वह इसप्रकार है- तेईस और बार्ईस

तेवीस-वावीसविहत्तियाणं भंगेहि विणा तेरसविहत्तियस्स भंगा चैव आगच्छति । संपहि तेवीस-वावीस-तेरसविहत्तियसव्वभंगाणमागमणभिच्छामो त्ति पुव्वुत्तणवभंगेसु तीहि रूवेहि गुणिदेसु तेवीस-वावीस-तेरसविहत्तियाणं एग-बहुवयणाणि अस्सि-दूण एग-दु-तिसंजोगसव्वभंगा सत्तावीस २७ । एव सेसवारसदिविहत्तियाणं पि एग-बहुवयणमस्सिदूण एग-दुसंजोगादिभंगा जाणिदूणप्पाएदव्वा । एवसुप्पाइदे सव्वभंग-समासो एत्तिओ होदि ५६०४६ । एव भयणिज्जपदाणं तिगुणे दव्वस्स अण्णोण्णगुण-णाए च कारणं वुत्तं ।

विभक्तिस्थानोंके नौ भंगोंको दूना कर देनेपर तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंके भंगोंके बिना तेरह विभक्तिस्थानके समी भग आते हैं । अब यदि तेईस, बाईस और तेरह विभक्तिस्थानोंके समी भंगोंके लानेकी इच्छा हो तो पूर्वोक्त नौ भङ्गोंको तीनसे गुणित करनेपर एकवचन और बहुवचनका आश्रय लेकर तेईस, बाईस और तेरह विभक्तिस्थानोंके एक संयोगी, द्विसंयोगी और तीन संयोगी सब भङ्ग सत्ताईस होते हैं । इसी प्रकार एकवचन और बहु वचनकी अपेक्षा शेष बारह विभक्तिस्थानोंके भी एकसंयोगी और द्विसंयोगी आदि भङ्ग उत्पन्न कर लेना चाहिये । इसप्रकार उत्पन्न हुए सब भङ्गोंका जोड़ ५६०४६ होता है । इस प्रकार भजनीय पदोंको विरलित करके तिगुना क्यों करना चाहिये और तिगुणित द्रव्यको परस्परमें गुणित क्यों करना चाहिये इसका कारण कहा ।

उदाहरण—

१ ध्रुवभङ्ग

२ तेईस विभक्तिस्थानके भङ्ग

३ ध्रुवभङ्ग सहित तेईस विभक्तिस्थानके भङ्ग

३×२=६ बाईस विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

३×३=९ ध्रुवभग सहित २३ व २२ स्थानके सब भग

६×२=१२ तेरह विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भग

६×३=२७ ध्रुवभग सहित २३, २२ व १३ विभक्तिस्थानोंके सब भंग

२७×२=५४ बारह विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

२७×३=८१ ध्रुवभग सहित २३, २२, १३ व १२ वि०स्थानके सबभग

८१×२=१६२ ग्यारह विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग

८१×३=२४३ ध्रुवभंग सहित २३ से ११ तकके स्थानोंके सब भंग

२४३×२=४८६ पांच विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भग

२४३×३=७२९ ध्रुवभग सहित २३ से ५ तकके स्थानोंके सब भंग

७२९×२=१४५८ चार विभक्तिस्थानके प्रत्येक व संयोगी भग

$७२९ \times ३ = २१८७$ शुभमंग सहित १३ से ४ तकके स्थानोंके भग
 $२१८७ \times २ = ४३७४$ तीन विमलिस्थानके प्रत्येक व सयोगी भंग
 $२१८७ \times ३ = ६५६१$ शुभमंग सहित २३ से ६ तकके स्थानोंके भग
 $६५६१ \times २ = १३१२२$ दो विमलिस्थानके प्रत्येक व सयोगी भग
 $६५६१ \times ३ = १९६८३$ शुभमंग सहित २३ से २ तकके स्थानोंके भग
 $१९६८३ \times २ = ३९३६६$ एक विमलिस्थानके प्रत्येक व सयोगी भग
 $१९६८३ \times ३ = ५९०४९$ शुभमंग सहित २३ से १ तकके स्थानोंके सब मंग

नोट—तेईस विमलिस्थानको प्रथम मान कर ये चत्तरोत्तर भग छापे गये हैं । ये भग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके मंगोंको २ से गुणा करने पर उत्पन्न होते हैं । अत आगे जो बार्हस आदि एक एक स्थानके भग बतलाये गये हैं उनमें वस वस स्थानके प्रत्येक भग और वस स्थान तकके स्थानोंके द्विसयोगी आदि भग सम्मिलित हैं । प मंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके मंगोंको दो से गुणा करनेपर उत्पन्न होते हैं तथा इन मंगोंमें पीछे पीछेके स्थानोंके भग मिला देनेपर वहाँ तकके सब भग होते हैं । ये भग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भगोंको तीनसे गुणा करनेपर उत्पन्न होते हैं ।

विशेषार्थ—मोहनीय क्रमके २८ भेद हैं । उनमेंसे किसीके २८ किसीके २७ और किसीके २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ९, ४, ३, २ या १ प्रकृतिबोधि सचा पार्श्व छाती है । इस प्रकार इसके पन्द्रह विमलिस्थान होते हैं । इनमें से २८, २७, २६, २४ और २१ विमलिस्थानवाले बहुवच जीव सधारमें सर्षवा पाये जाते हैं ऐसा समय नहीं है जब इन विमलिस्थानवाले जीवोंका जमाव होने । अर्थात् इनका कर्म जमाव नहीं होता, अतः वे पांचों भुव स्थान हैं । तथा सब स्थानवाले कभी एक और कभी अनेक जीव होते हैं अतः श्रेय अभुवस्थान हैं, यहाँ भुवस्थानोंकी अपेक्षा २८, २७, २६, २४ और २१ विमलिस्थानवासं माना जीव है यही एक भग होग्य पर अभुवस्था नोंकी अपेक्षा एक सयोगी, द्विसयोगी आदि प्रस्तारविकल्प और उनमें एक जीव तथा माना जीवोंकी अपेक्षा अनेक मंग प्राप्त होते हैं । तात्पर्य यह है कि प्रत्येक स्थानक या अन्व बृहदरे स्थानोंके सयोगसे द्विसयोगी आदि नियते विकल्प प्राप्त होते हैं अतः प्रस्तार होते हैं । यहाँ आकाशोंके स्थापित करनेको प्रस्तार कहते हैं । और इन प्रस्तारोंमें उनके जितन आकाश होते हैं उतने भंग होते हैं । यहाँ पहले जो 'मयमिन्द्रपरा' आदि करण ग्राह्य ही है वससे प्रस्तार विकल्प उत्पन्न न होकर आकाश विकल्प ही उत्पन्न होते हैं । जो भुव भगके सब चत्तरोत्तर सिगुने सिगुने होते हैं । ये आकाशविकल्प या मंग चत्तरोत्तर सिगुने कबों होते हैं इसका कारण मूखमें ही दिया है ।

§ ३३५. संपहि एदेसिं चैव मंगानमण्णेण पयारेण आणयणं बुच्चदे । तं जहा-

‘एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितश्च पदवृद्धैः ।

गच्छस्सपातफलं समाहृतस्सन्निपातफलम् ॥ ४ ॥’

§ ३३६. एदीए अजाए एसा संदिट्ठी ^{१०, ६, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १} ठवेय^३वा ।
^{१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०,}

एवं ठविय तदो एग-दु-तिसंजोगादिपत्थारसलागाओ आणिञ्जति । तत्थ तेवीमविहत्ति-
 यस्स एगसंजोगपत्थारो एसो १ ३ । एत्थ उवरिमसुण्णाओ धुव ति ठविदाओ ।

§ ३३५. अब अन्य प्रकारसे इन भंगोंके लानेकी विधि कहते हैं । वह इसप्रकार है—

“आदिमें स्थापित एकसे लेकर बढ़ी हुई सख्यासे, अन्तमें स्थापित एकसे लेकर बढ़ी
 हुई सख्यामें भाग देना चाहिये । इस क्रियाके करनेसे संपात फल अर्थात् एकसयोगी (प्रत्येक)
 भंग गच्छ प्रमाण होते हैं और सम्पात फलको नौ बटे दो आदिसे गुणित कर देनेपर
 सन्निपातफल प्राप्त होता है ॥ ४ ॥”

§ ३३६. इस आर्याकी यह संदृष्टि लिखना चाहिये—

१०	६	८	७	६	५	४	३	२	१
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

उदाहरण संपातफलका—

$$१० - १ = ९ \quad \text{सम्पातफल या प्रत्येक भंग ।}$$

उदाहरण सन्निपातफलका— $१० \times \frac{१}{३} = ३\frac{२}{३}$ द्विसंयोगी

$$१० \times \frac{१}{३} \times \frac{१}{३} = १\frac{२०}{९} \quad \text{त्रिसंयोगी}$$

$$१० \times \frac{१}{३} \times \frac{१}{३} \times \frac{१}{३} = २\frac{१०}{२७} \quad \text{चतुःसयोगी}$$

पांच सयोगी आदि भंगोंको इसी क्रमसे ले आना चाहिये ।

इसप्रकार सदृष्टिको स्थापित करके इससे एकसयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी
 आदि प्रस्तार सबन्धी शलाकाएं ले आना चाहिये । उनमेंसे तेईस विभक्तिस्थानका एकसयोगी
 प्रस्तार १ ३ यह है । इस प्रस्तारमें ध्रुव विभक्तिस्थानोंके द्योतन करनेके लिये अङ्कोंके
 ऊपर शून्य रखे हैं । उन शून्योंके नीचे जो १ और २ के अङ्क रखे हैं उनसे क्रमसे

(१) ‘एकाद्येकोत्तरा अका व्यस्ता भाज्या क्रमस्थितैः । पर पूर्वैण सगुण्यस्तत्परस्तेन तेन च ।’
 —लीला ०५० १०७ । (२) सम्माहृतं स० । समाहृतं-आ० । समाहित-अ० । (३) एद दृविय अतिम-
 चउसट्ठीए एगख्वेण भाजिदाए चउसट्ठीो संपातफल लब्धदि ६४ । कि संपादफल णाम ? संपादो एगसंजोगो
 तस्स फलं संपादफल णाम । पुणो तिसद्विदुब्बमाणेण संपादफले गुणिदे चउसद्विअक्खराण दुसजोगमगा
 एत्तिया होति २०१६ । $\times \times$ सपहि चउसद्विअक्खराण तिसजोगभगे भण्णमाणे दुसजोगभगे उप्पण-
 णोलुत्तरवेसहस्सेसु तिसजोगमगा एत्तिया होति ४१६६४ ।—ध० आ० ८७३ ।

हेट्टिमएक-वेअक्य वि तेवीसविहतिवयस्स एग-बहुवपणाणि ति गेहिद्वव्वाणि ।

३३७ सपदि तेवीसविहतिवयस्स एगसमोगपत्पाराळावो बुबदे । व जहा-सिया एदे च तेवीसविहतिवो च १ । सिया एदे च तेवीसविहतिवो च २ । एदाहि उषारपा-

वेईस विमच्छिज्जामके एकवचन और बहुवचनका प्रहण करना चाहिये ।

विशेषार्थ-वीरसेन स्वामीने 'एकोत्तरपद्दुत्तो' इत्यादि आर्याकी १, २, ३ इत्यादि सट्टि बतलाई है । अतः हमने आर्योंके पूर्वार्थका इसीके अनुसार अर्थ किया है । पर प्रकृति अनुवागधारमें भुतके संयोगी अक्षरोंके भग झठे समय लक्ष्मीने जठ आर्याकी १, २, ३ इत्यदि रूपसे मी सट्टि स्थापित की है । लेखकने प्रमादसे इसे उल्ट कर लिख दिया होग्य सो मी बात नहीं है क्योंकि 'एदं ठविय अक्षिमचउसट्टाप एगकलेय माधियाय चउसठी सपातफळं छम्मदि' (इन सट्टिको स्थापित करके अन्तमें आये हुए बीसठमें एकका भाग देनेपर सपातफळ चौसठ प्राप्त होता है) । इससे जाना जाता है कि जठ प्रकारसे इस सट्टिको स्वयं वीरसेन स्वामीने स्थापित किया है । इसके अनुसार आर्याका अर्थ निम्न प्रकार होगा- 'एकसे लेकर एक एक बढ़ते हुए पद्मप्रमाण सख्या स्थापित करो । पुनः इसमें अन्तमें स्थापित एकसे लेकर पद्मप्रमाण बढ़ी हुई सख्याका मग दो । इस क्रियाके करनेसे सपातफळ गच्छप्रमाण प्राप्त होता है और सपातफळको नौ बदे दो आदिसे गुणित कर देने पर सभिपातफळ प्राप्त होता है' । इन दोनों अर्थोंमेंसे किसी मी अर्थके प्रहण करनेसे तात्पर्यमें अन्तर नहीं पड़ता । और आर्योंके पूर्वार्थके दो अर्थ सम्भव हैं । मात्स्य होता है इसीसे वीरसेन स्वामीने एक अर्थका वहां और एकका प्रकृति अनुवागधारमें मकळन कर दिया है । यहां सप्यातफळसे एकसयोगी भगोंका प्रहण किया है इसीप्रिये उन्हें गच्छप्रमाण कहा है । तथा सभिपातफळसे छिसयोगी आदि भगोंका प्रहण किया है । इस मत्स्यीय पदोंमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा भगोंका प्रहण करना है अतः मत्स्यीय पदोंके सयोगसे जितने विकल्प जाते हैं उनमें प्रत्यार विकल्प जानना चाहिये । यहां ये प्रत्यार विकल्प ही जठ आर्योंके अनुसार निकाल कर बतलाये गये हैं । तात्पर्य यह है कि वहां स्वानोंके सयोगी भग और इनमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा अनाम्य भग इसप्रकार दो दो जाते हैं । अतः वहां स्वानोंके सयोगी भग प्रत्यारविकल्प हो जाते हैं । जो आर्योंके द्वारा निकाल कर बतलाये गये हैं । पर अन्यत्र वहां अनाम्य भग नहीं होते हैं वहां इस आर्योंके द्वारा केवल भग ही व्यक्त किये जाते हैं ।

३३७ अब वेईस विमच्छिज्जामके एक सयोगी प्रत्यारका जास्यप कहते हैं । यह इच्छाकार है-कदाचित् अहार्स आदि भुवत्पानवाळे अनेक जीव और वेईस प्रकृतिस्वानवाळा एक जीव होता है । कदाचित् अहार्स आदि भुवत्पानवाळे अनेक जीव और वेईस विमच्छिज्जामके

१३३८ मपहि एहस्तालाको पुचदे । स अहा-सिया एदे च तेबीसविहचिओ च बाबीसविहचिओ च १ । सिया एद च तेबीमविहचिओ च बाबीमविहचिया च २ । सिया एदे च तेबीसविहचिया च बाबीसविहचिओ च ३ । सिया एदे च तेबीस विहचिया च बाबीसविहचिया च ४ । एव तेबीस-बाबीसविहचियाणं दुसंजोमस्स एहा चेव पत्थारसलागा होदि १ । उचारणसलागाओ पुण ताव पुष ढवेदम्वा । सपहि तेबीस-तेरसविहचियाणं पत्थारे इमिय एवं चेव आसावा वचम्वा । एव पे दुसंजोग पत्थारसलागा २ । तेबीसवारसण्ह सजोगेण तिष्णि पत्थारसलागा ३ । तेबीसाए सह एकारसण्ह संजोगेण चत्तारि पत्थारसलागा ४ । तेबीसाए पंचण्ह सजोगेण पंच पत्थारसलागा ५ । तेबीसाए चतुण्ह सजोगेण छ पत्थारसलागा ६ । तेबीसाए

१३३८ अब इस प्रस्तारका आख्या करते हैं । यह इस प्रकार है—

कदाचित् ये अट्टाईस आवि भुवस्थानवाळे अनेक जीव, तेईस विमक्तिस्थानवाळा एक जीव और वार्डस विमक्तिस्थानवाळा एक जीव होता है । कदाचित् ये अट्टाईस आवि भुवस्थानवाळे अनेक जीव तेईस विमक्तिवाळा एक जीव तथा वार्डस विमक्तिस्थानवाळे अनेक जीव होते हैं । कदाचित् ये अट्टाईस आवि भुवस्थानवाळे अनेक जीव, तेईस विमक्तिस्थानवाळे अनेक जीव और वार्डस विमक्तिस्थानवाळा एक जीव होता है । कदाचित् ये अट्टाईस आवि भुवस्थानवाळे अनेक जीव तेईस विमक्तिस्थानवाळा अनेक जीव और वार्डस विमक्तिस्थानवाळे अनेक जीव होते हैं । इस प्रकार तेईस और वार्डस विमक्तिस्थानोंके द्विसयो बोगधी एक ही प्रस्तारसंख्या होती है । पर वसकी जो चार उचारणसंख्याए अथात् आख्या कह जावे हैं उन्हें अलग स्थापित करना चाहिये । तेईस और तेरह विमक्तिस्थानोंके प्रस्तारको स्थापित करके इसीप्रकार आख्या करना चाहिये । इस प्रकार तेईस और वार्डस विमक्तिस्थानोंकी द्विसयोगी एक प्रस्तार संख्या तथा तेईस और तेरह विमक्तिस्थानोंकी द्विसयोगी एक प्रस्तारसंख्या ये द्विसयोगी दो प्रस्तारसंख्याए होती हैं । तेईस और बारह विमक्तिस्थानोंके सयोगसे एक प्रस्तारसंख्या होती है । इस प्रकार ऊपरकी दो और एक यह सब मिळकर तीन प्रस्तारसंख्याए हो जाती हैं । इनमें तेईस विमक्तिस्थानको ग्यारह विमक्तिस्थानके साथ मिळानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तार संख्याके मिळा देने पर चार प्रस्तारसंख्याए हो जाती हैं । इनमें तेईस विमक्तिस्थानको पांच विमक्तिस्थानके साथ मिळानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तार संख्याके मिळा देनेपर पांच प्रस्तार संख्याए हो जाती हैं । इनमें तेईस विमक्तिस्थानको चार विमक्तिस्थानके साथ मिळानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तार संख्याके मिळा देनेपर छह प्रस्तार संख्याए हो जाती हैं । इनमें तेईस विमक्तिस्थानको तीन विमक्तिस्थानके साथ मिळानेसे उत्पन्न हुई एक प्रस्तारसंख्याके मिळा देनेपर साठ प्रस्तारसंख्याए हो जाती हैं । इनमें तेईस विमक्तिस्थानको दो

विहचियस्स उवरिमेहि सह दुसजोगे मण्यमाये चचारि पत्थारसलागाओ लम्मति ४ ।
 चचारिविहचियस्स उवरिमेहि सह दुसजोगे कीरमाये तिप्पि पत्थारसलागाओ ३ ।
 तिप्पिविहचियस्स उवरिमेहि सह दुसजोगे कीरमाये दोण्णि पत्थारसलागाओ २ ।
 दोण्ह विहचियस्स एहिस्सेहि विहचीए सह दुसजोगे कीरमाये एका पत्थारसलागा १ ।
 एवं दुसजोगसम्भपत्थारसलागाओ एद्धो मेत्तिवे पथेवालीस ४५ होति । अहवा पुम्ब
 हविदसंदिदिम्हि उवरिमदस-अण्ह अण्णोण्णगुणेदाय हेद्धिमत्रण्णोण्णगुणित्पक्क-वै-अंकेहि
 ओवहुणम्मि क्खे पुम्बुचपत्थारसलागा आगच्छति । एव दुसजोगपरूपणा गदा ।

०' ०' ०' ०' ०' ०' ०' ०'

३३४१ तिसजोगपरथारो १ १ १ १ २ २ २ २ एसो । एत्थ उवरिम
 १ १ २ २ १ १ २ २
 १ २ १ २ १ २ १ २

महसुण्णाओ धुवस्स । ततो अमन्तरहेद्धिमप्ररूपती तेथीसविहचियस्स । उवरीदो तदिय

स्थानोंके साथ त्रिसयोगी प्रस्तारोंका विचार करनेपर चार प्रस्तारसंख्याकार्य उत्पन्न होती हैं । चार विभक्तिस्थानोंके ऊपरके तीन आदि विभक्तिस्थानोंके साथ त्रिसयोगी प्रस्तारोंका विचार करनेपर तीन प्रस्तारसंख्याकार्य उत्पन्न होती हैं । तीन विभक्तिस्थानोंके ऊपरके दो आदि विभक्तिस्थानोंके साथ त्रिसयोगी प्रस्तारोंका विचार करनेपर दो प्रस्तारसंख्याकार्य उत्पन्न होती हैं । दो विभक्तिस्थानोंके एक विभक्तिस्थानके साथ त्रिसयोगी प्रस्तारके ध्यने पर एक प्रस्तारसंख्याकार्य उत्पन्न होती है । इसप्रकार त्रिसयोगी सभी प्रस्तारसंख्याकार्योंको एकत्रित करनेपर कुल जोड़ पैंतालीस होता है । जबका 'एकोत्तरपदबुद्धो' इत्यादि आर्वाची जो ऊपर सहस्रि स्थापित कर भाषे हैं वसमें ऊपरकी पंक्तिमें स्थित १० और ९ का अक्षरा गुणा करे । तथा नीचेकी पंक्तिमें स्थित १ और २ का अक्षरा गुणा करे । अनन्तर १० और ९ के गुणनफलको १ और २ के गुणनफलसे भाजित कर दे । इस प्रकारकी विधि करनेपर भी पूर्वोक्त पैंतालीस प्रस्तारसंख्याकार्य आ जाती हैं । इसप्रकार त्रिसयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

३३४१ त्रिसयोगी प्रस्तार यह है— ० ० ० ० ० ० ० ०
 १ १ १ १ २ २ २ २
 १ १ २ २ १ १ २ २
 १ २ १ २ १ २ १ २

इस प्रस्तारमें ऊपरके आठ शून्य मुक्तस्थानके सूचक हैं । इसके अनन्तर नीचेकी पंक्तिमें स्थित आंक वेईस विभक्तिस्थानके सूचक हैं । इसके अनन्तर ऊपरसे तीसरी पंक्तिमें स्थित

अकपंती वावीसविहत्तियस्स । सव्वहेट्ठिमअंकपंती तेरसविहत्तियस्स । संपहि एदस्सालात्रो बुच्चदे । सिया एदे च तेवीसविहत्तिओ च वावीसविहत्तिओ च तेरसविहत्तिओ च । एव सेसालावा जाणिदूण वत्तच्चा । एत्थ एगा पत्थारसलागा लब्भदि १ । उच्चारणाओ पुण अह होंति ८ । ताओ पुण ताव द्दवणिज्जाओ । संपहि तेवीसवावीसट्ठिद-अक्खे धुवे काऊण वारसविहत्तिएण सह तिसंजोगपत्थारो होदि ति विदियपत्थारसलागा २ । एवमेक्कारसविहत्तियप्पहुडि जाणिदूण णेदव्वं जाव एगविहत्तिओ ति । एवं णीदे अट्ठतिसंजोगपत्थारसलागाओ उप्पज्जति ८ । संपहि तेवीसविहत्तियक्खं धुवं कादूण तेरस-वारसविहत्तिएहि सह विदिओ तिसंजोगपत्थारो २ । पुणो तेवीस-तेरसक्खे धुवे कादूण एक्कारसादीसु णेदव्वं जाव एगविहत्तिओ ति । एवं णीदे सत्त-पत्थारसलागाओ उपज्जति ७ । एवं तिसंजोगसेसपत्थाराविही जाणिदूण णेदव्वो । एवं णीदे अट्ठण्हं संकलणासंकलणमेत्तपत्थारसलागाओ वीसुत्तरसयमेत्तीओ उपज्जति १२० ।

अक बाईस विभक्तिस्थानके सूचक हैं । तदनन्तर सबसे नीचेकी पक्तिमें स्थित अंक तेरह-विभक्तिस्थानके सूचक हैं । अब इसका आलाप कहते हैं— कदाचित् ये अट्ठाईस आदि ध्रुवस्थानवाले अनेक जीव तेईसविभक्तिस्थानवाला एक जीव, बाईस विभक्तिस्थानवाला एक जीव और तेरह विभक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । इसीप्रकार शेष सात आलाप भी जानकर कहना चाहिये । इन सभी आलापोंकी एक प्रस्तारशलाका प्राप्त होती है । परन्तु आलाप आठ होते हैं अभी उन आठों आलापोंको स्थापित कर देना चाहिये । इसीप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंके अक्षोंको ध्रुव करके वारह विभक्तिस्थानके साथ त्रिसंयोगी एक प्रस्तार होता है । इसप्रकार यह दूसरी प्रस्तारशलाका हुई । इसीप्रकार तेईस और बाईस विभक्तिस्थानोंको ध्रुवकरके ग्यारह विभक्तिस्थानसे लेकर एक विभक्तिस्थान तक जान कर प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न कर लेना चाहिये । इसप्रकार प्रस्तारशलाकाओंके लानेपर त्रिसंयोगी आठ प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न होती हैं । इसीप्रकार तेईस विभक्तिस्थानसंबन्धी अक्षको ध्रुव करके तेरह और वारह विभक्तिस्थानोंके साथ अन्य त्रिसंयोगी प्रस्तार ले आना चाहिये । अनन्तर तेईस और तेरह विभक्तिस्थानसंबन्धी अक्षोंको ध्रुव करके एक विभक्तिस्थानतक ग्यारह आदि विभक्तिस्थानोंमें इसीप्रकार ले जाना चाहिये । इसप्रकार प्रस्तारोंके उत्पन्न करनेपर त्रिसंयोगी सात प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न होती हैं । इसीप्रकार त्रिसंयोगी शेष प्रस्तारविधिको जानकर शेष प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न कर लेना चाहिये । इसप्रकार त्रिसंयोगी प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न करनेपर आठ गच्छके सकलनाके जोड़प्रमाण कुल एकसौ बीस प्रस्तारशलाकाएँ उत्पन्न होती । अथवा, 'एकोत्तरपदवृद्धो' इत्यादि आर्याकी

(१) 'गच्छकदी मूलजुदा उत्तरगच्छादिएहि सगुणिदा । छहि मजिदे ज लद्ध सकलणाए हवे कलणा'ध्व० प० अ० प० ८४७ ।

अहवा पुम्बुचसंदिष्टिम्हि उबरिमदस-भव-अट्टण्हमण्योष्णगुणिदाजे हेदिमएक-वे-सीहि
अण्योष्णगुणिदेहि ओषट्टणम्मि कडे अट्टण्हं संकलपासंकलममेचपरवारससगाओ
उम्मंति । एवैण बीनपदेण चदुसंजोगादीण सम्भपत्तारा भाभिरूप गेदम्भा भाव
दससंभोगपरवारो पि ।

को ऊपर सदृष्टि स्थापित कर भाये हैं इसमें ऊपरकी पक्तिमें स्थित १०, १ और ८ का गुणा करे। तथा नीचेकी पक्तिमें स्थित-१, २ और ३ का अलग गुणा करे। अन्तर १०, १ और ८ के गुणनफल ७२० को १, २ और ३ के गुणनफल ६ से भाजित करनेपर आठ गण्डके संकलनाके बौद्ध प्रमाण कुछ प्रस्तारसक्यरूपं प्राप्त होती हैं। इसी बीनपदसे चार सयोगी भावितसे केकर बस सयोगी प्रस्तार एक समी प्रस्तार जानकर निकाल लेना चाहिये।

विशेषार्थ—यद्यपि प्रकृति अनुयोगधारमें मुख्यतः त्रिसयोगी भर्गोके धानेके सिधे एक करबसूत्र आया है। जिसका आशय यह है कि 'गण्डकन वर्ग करके इसमें वर्गमूलको जोड़ दे। पुनः भावि चरसहित गण्डसे गुणा करके ब्रह्मा मास दे दें तो संकलनाकी कलना अर्थात् बौद्ध प्राप्त होता है। इसके अनुसार प्रकृतमें मज्जनीय पद १० होते हुए भी धर्मसे जो कम कर देनेपर शेष ८ प्रमाण गण्ड होता है, क्योंकि त्रिसयोगी भंग उत्पन्न करते समय कमसे कोई दो पद ब होते जाते हैं और शेष पदोंपर एक एक करके तीसरे अक्षर सचार होता है। अतः ८ का वर्ग ६४ हुआ, तथा इसमें ८ मिलाने पर ७२ हुए। पुनः भावि चर सहित गण्डसे गुणा करनेपर ७२ हुए। तबअन्तर इसमें ६ का भाग देनेपर ८ गण्डकी संकलनाकी कलना अर्थात् बौद्ध १२० हुआ। यहाँ से ही त्रिसयोगी प्रस्तारनिकल्प जानना चाहिये। वरिसेन स्वामीने इसर 'अनुष्ण संकलना संकलनमेचपरवारससगाओ' पदसे इन्हीं १२० प्रस्तारविकल्पोंका उल्लेख किया है। पूवक् पूवक् वे १२० प्रस्तारनिकल्प इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

गुण किये हुए २ पद	तीसरापद	मग	गुण किये हुए २ पद	तीसरापद	मग
२३, २२	१३ से १ तक कोई =		१३, ११	"	३
२३, १३	१२ से १ तक "	७	१२, ११	"	३
२२, १३	"	७	२३, ३	४ से १ तक "	४
२३, १२	११ से १ तक "	६	२२, ३	"	४
२२, १२	"	६	१३, ३	"	४
१३, १२	"	६	१२, ३	"	४
२३, ११	३ से १ तक "	३	११, ३	"	४
२२, ११	"	३	२३, ४	३ से १ तक "	६

§ ३४२. तेषां पत्थाराणमुच्चारणाए विणा दृवणविहाणपरूवणगाहा एसा । तं जहा-
 'भगार्यामपमाणो लहुओ गरुओ ति अक्खणिक्खेओ ।
 ततो य दुगुण-दुगुणो पत्थारो होइ कायव्वो ॥ ५ ॥'

२२, ४	"	३	४, ३	"	२
१३, ४	"	३	२३, २	१ स्थान	१
१२, ४	"	३	२२, २	"	१
११, ४	३ से १ तक कोई	३	१३, २	"	१
५, ४	"	३	१२, २	"	१
२३, ३	२ व १ कोई	२	११, २	"	१
२२, ३	"	२	५, २	"	१
१३, ३	"	२	४, २	"	१
१२, ३	"	२	३, २	"	१
११, ३	"	२			
५, ३	"	२			
				प्रस्तारविकल्प	१२०

अथवा ये १२० प्रस्तारविकल्प 'एकोत्तरपदबुद्धो' इत्यादि करणसूत्रके नियमानुसार भी प्राप्त किये जा सकते हैं जो अनुवादमें बतलाये ही हैं । तथा चारसंयोगी आदि प्रस्तारविकल्प भी इसी प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं । यथा—

चारसंयोगी—	$१२० \times \frac{५}{४} = २१०$	प्रस्तारविकल्प
पाचसंयोगी—	$२१० \times \frac{६}{५} = २५२$	"
छहसंयोगी—	$२५२ \times \frac{७}{६} = २९०$	"
सातसंयोगी—	$२९० \times \frac{८}{७} = ३२०$	"
आठसंयोगी—	$३२० \times \frac{९}{८} = ३६०$	"
नौसंयोगी—	$३६० \times \frac{१०}{९} = ४००$	"
दससंयोगी—	$४०० \times \frac{११}{१०} = ४४०$	"

§ ३४२. आलापोंके बिना, उन प्रस्तारोंकी स्थापनाकी विधिका प्ररूपणा करनेवाली गाथा इस प्रकार है—

'पहली पंक्तिमें जहा जितने भंग हों तत्रमाण एक लघु उसके अनन्तर एक गुरु इस प्रकार क्रमसे अक्षका निक्षेप करना चाहिये । तथा इसके आगे द्वितीयादि पंक्ति-धोमें दूना दूना करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे प्रस्तार प्राप्त होता है ॥ ५ ॥'

(१) 'पादं सवगुरावाद्याल्लघु न्यस्व गुरोरथ । यथोपरि तथा षोष भूय कुर्यादमु विधिम् ॥२॥
 अने वधात् गुरूनेव यावत्सर्वलघुभवेत् । प्रस्तारोज्यं समाख्यातशछन्दोषचितिवेदिभिः ॥३॥'
 धृतर० अ० ६ श्लो० २-३ ।

१ ३४३ सप्तदि क्रमक्रमेणाभिदधदुसंज्ञोगपत्वारसलागपमाणमेद २१० ।
 पंचसंज्ञोगपत्वारसलागा एतिया २५२ । छसंज्ञोगपत्वारसलागा एतिया २१० ।
 मृचसंज्ञोगपत्वारसलागा १२० । अट्टसंज्ञोगपत्वारसलागा ४५ । षसंज्ञोगपत्वार
 सलागा १० । दससंज्ञोगपत्वारसलागा १ ।

विशेषार्थ—यद्यपि अत्र प्रत्येक त्रिसंयोगी और त्रिसंयोगी स्वार्थे प्रस्तारोक्त निर्देश
 कर भाये हैं किन्तु इस गणनामें सप्त प्रस्तारोक्ती स्थापनाधी विधिक निर्देश किया है ।
 यहाँ गणनामें छपु और दीर्घ शब्द भाये हैं जिनसे छपु और दीर्घ वर्णोंका बोध होता है ।
 किन्तु यहाँ कीर्त्तिके भग अना इह है अत छपु शब्दसे एक जीव और दीर्घ शब्दसे अनेक
 जीवोंका ग्रहण करना चाहिये । प्रस्तार रचनाके समय यहाँ एक ही स्थानके प्रस्तारकी रचना
 करना हो यहाँ कितने भग हों जितनी बार क्रमसे ह्रस्व और दीर्घ लिख लेना चाहिये ।
 यथा १ २ । यहाँ त्रिसंयोगी प्रस्तार अना हो यहाँ पक्षी पक्षिमें त्रिसंयोगी प्रस्तारके कितने
 भग हों जितनी बार छपु और दीर्घ लिखे तथा द्विसंयोगी पक्षियोंमें इन्हें दूना दूना करता
 था । यथा— द्विसंयोगी १ १ २ २

प्रथमपक्षि १ २ १ २

इसी प्रकार त्रिसंयोगी, चारसंयोगी आदि प्रस्तारोक्ती के नामा चाहिये ।

तीनसंयोगी प्रस्तार—

ए० प० १ १ १ १ २ २ २ २

द्वि० प० १ १ २ २ १ १ २ २

म० प० १ २ १ २ १ २ १ २

चारसंयोगी प्रस्तार—

अ० प० १ १ १ १ १ १ १ १ २ २ २ २ २ २ २ २

ए० पं १ १ १ १ २ २ २ २ १ १ १ १ २ २ २ २

द्वि० प० १ १ २ २ १ १ २ २ १ १ २ २ १ १ २ २

म० प० १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २ १ २

आगे पांचसंयोगी आदि प्रस्तार इसी प्रकार बूने बूने प्राप्त होते जाते हैं ।

१ ३४५ इसप्रकार करणसूत्रके नियमानुसार अथे हुए चारसंयोगी प्रस्तारोक्ती सलाख
 औक्त प्रमाण २१० है । तथा पांचसंयोगी प्रस्तारसंख्या २५२, छसंयोगी प्रस्तारसंख्या
 २१०, सातसंयोगी प्रस्तार संख्या १२०, आठसंयोगी प्रस्तारसंख्या ४५, नौसंयोगी
 प्रस्तार संख्या १० और दस संयोगी प्रस्तार संख्या १ होती है ।

§ ३४४. एवं विहाणेणुप्पाद्दपत्थारसलागाओ अस्सिदुण तेसिं पत्थारणमुच्चारण-
सलागाणयणट्टमेसा अज्जा—

‘सूत्रानीतविकल्पेण्वेकविकल्पान् द्विकेन संगुणयेत् ।

द्वयादिविकल्पान् भाज्यान् द्विगुणद्विगुणेन तेनेव ॥६॥’

§ ३४५. एदिस्से अत्थो वुच्चदे । तद्यथा—‘रूपोत्तरपदवृद्ध’ इति सूत्रम् । एतेन
सूत्रेण आनीतविकल्पाः १०, ४५, १२०, २१०, २५२, २१०, १२०, ४५, १०, १,
एतेषु विकल्पेषु ‘एकविकल्पान्’ एकसंयोगविकल्पान् ‘द्विकेन’ द्वाभ्यां रूपाभ्यां
‘गुणयेत्’ ताडयेत् । कुतः ? एकसंयोगे एकवहुवचनभेदेन द्वयोरेव भंगयोस्समुत्पत्तेः ।
‘द्वयादिविकल्पान्’ द्विसंयोगादिप्रस्तारविकल्पान् ‘भाज्यान्’ भाज्यस्थानसम्बन्धिनः
‘तेनेव’ ताभ्यां द्वाभ्यामेव रूपाभ्यां गुणयेत् । कीदृचाभ्या ‘द्विगुणद्विगुणेन’
द्विगुणद्विगुणाभ्यां । एवं गणयित्वा एकत्र कृते सति सर्वोच्चारणसङ्ख्योत्पद्यते । २,
४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२, १०२४, एते गुणकाराः । कुतः,
द्विगुणद्विगुणक्रमेणोच्चारणशलाकोत्पत्तेः । एतैर्गुण्यमानराशिषु गुणितेषु समुत्पन्नोच्चा-

§ ३४४. इसप्रकार विधिपूर्वक उत्पन्नकी हुई प्रस्तार शलाकाओंका आश्रय लेकर उन
प्रस्तारोंके आलापोंकी शलाकाओंके लानेके लिये यह निम्नलिखित आर्या है—

‘रूपोत्तरपदवृद्धः’ इत्यादि सूत्रके अनुसार लाये गये प्रस्तार विकल्पोंमे एकसयोगी
प्रस्तार विकल्पोंको दोसे गुणित करे । तथा द्विसयोगी आदि भजनीय प्रस्तार विकल्पोंको
उत्तरोत्तर दुगुने दुगुने उसी दोसे गुणा करे । ऐसा करनेसे आलापोंके सब भग आ
जाते हैं ॥ ६ ॥’

§ ३४५. अब इस आर्याका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है— पूर्वोक्त आर्यामें आये
हुए ‘सूत्र’ पदसे ‘रूपोत्तरपदवृद्धः’ इत्यादि सूत्र लिया गया है । इस सूत्रसे लाये हुए एक
सयोगी आदि प्रस्तारोंकी शलाकाएँ क्रमसे १०, ४५, १२०, २१०, २५२, २१०, १२०, ४५,
१० और १ होती हैं । इन प्रस्तार शलाकाओंमेंसे एकसयोगी शलाकाओंको दोसे गुणित
करे, क्योंकि एकसयोगीके एक वचन और बहुवचनके भेदसे दो ही भग होते हैं । तथा
भाज्य अर्थात् भजनीय स्थानसम्बन्धी द्विसयोगी आदि प्रस्तार शलाकाओंको उसी दोसे
गुणित करे । पर द्विसयोगी आदि प्रस्तार शलाकाओंको दोसे गुणा करते समय वह दो
उत्तरोत्तर दूना दूना होना चाहिये । इसप्रकार गिनती करके एकत्र करनेपर सभी
आलापोंकी संख्या उत्पन्न होती है । दोको इसप्रकार दूना दूना करनेपर एकसयोगी आदि
प्रस्तार शलाकाओंके क्रमसे २, ४, ८, १६, ३२, ६४, १२८, २५६, ५१२ और १०२४
ये गुणकार होते हैं, क्योंकि आलाप शलाकाएँ उत्तरोत्तर दूने दूनेके क्रमसे उत्पन्न होती हैं ।
इन गुणकारोंके द्वारा गुण्यमानराशि १०, ४५, १२०, २१०, २५२, २१०, १२०,

रत्नमंगा' पृथक् पृथगेते मबन्ति-२०, १८०, ६६०, ३३६०, ८०६४, १३४४०, १५३६८, ११५२०, ५१२८, १०२४। एतेषां सर्वेषां मंगानां मानः इयान् मबन्ति ५६०४८। शुभे प्रक्षिप्ते सति इयती सङ्ख्या ५६०४६। एवं मणुस्ततिपस्त। बवरि, मणुस्तिनीसु मयाजितपदाणि षष ह्येति पचण्डममाबादो।

§ ३४६ पंचिदिय-वर्षि० पञ्च०-तस-तसपञ्च०-यचमण०-यचवधि -कायजोगि०

४५, १० और १ को क्रमसे गुणित करनेपर सभी आत्मप मग अलग अलग २०, १८०, ६६०, ३३६०, ८०६४, १३४४०, १५३६८, ११५२०, ५१२८ और १०२४ तत्काल होते हैं। इन सब मंगोंका प्रमाण ५६०४८ होता है। इसप्रकारमें एक शुभ मगके सिद्धा देने पर कुछ जोड़ ५६ ४६ होता है।

इसीप्रकार सामान्य, तथा पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनिर्मोके समझना चाहिये। अर्थात् इनके रूपर कहे गये विमक्तिस्थान सम्बन्धी सभी मग होते हैं। इतनी विसेषता है कि मनुष्यनिर्मोके मजनीय पद नही होते हैं। क्योंकि इनके मांष विमक्तिस्थान नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ—रूपर मजनीय पद इस कह जाये हैं। ये वसों पद सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्यके पावे जाते हैं। अतः इन वसों मजनीय पदोंके एक बीच और मामा बीचोंकी अपेक्षा होनेवाले समग्र ५६०४८ मग सामान्य और पर्याप्त मनुष्योंके सम्मत् हैं। तथा अष्टाईस आदि विमक्तिस्थान सम्बन्धी एक शुभपद भी इन दोनों प्रकारके मनुष्योंके निरन्तर पाया जाता है, अतः ओष प्ररूपणामे कुछ मग जो ५६०४६ कहे हैं वे सभी सामान्य और पर्याप्त मनुष्योंके सम्मत् हैं इसलिये इसकी प्ररूपणा ओष प्ररूपणाके समान है। परन्तु मनुष्यनिर्मोके इस मजनीय पदोंमें पांच विमक्तिस्थान नहीं पाया जाता है, अतः इनके २३, २२ १३ १२ ११, ४, ३ २ और १ ये नौ मजनीय पद खानना चाहिये। जिनके एकसयोगीसे लेकर नौसयोगी तक प्रस्ताविकस्य क्रमशः ६, ३३, ८४, १२६, १२६ ८४ ३६ ६ और १ होंगे। तथा आत्मप मग २ ४, ८, १६, ३२ ६४, १२८ २५६ और ५१२ होंगे। इन ६ आदि प्रस्तार विमक्तियोंको २ आदि आत्मप मंगोंसे क्रमशः गुणित कर देनेपर एक सयोगी आदि मंगोंका प्रमाण १८, १४४, ६७ २०१६, ४०३२ ५३७६, ४६ ८, २३०४ और ५१२ होगा। जिनका कुछ जोड़ १६६८२ होता है। ये अष्टम मग हैं। इनमें शुभ मंगके सिद्धा देने पर मनुष्यनिर्मोके कुछ मंगोंका प्रमाण १६६८३ होगा। तेईस विमक्तिस्थानके एक बीच और माना बीचोंकी अपेक्षा दो मग और एक शुभ मग इसप्रकार इन तीन मंगोंके उचरोत्तर आठ बार तिगुना तिगुना करनेसे भी सब मंगोंका प्रमाण १६६८३ का जाता है।

§ ३४६ पंचिदिय पंचिदियपर्याप्त त्रस त्रसपर्याप्त, पांचोंमनोयोगी, पांचोंवचनयोगी

(१) -वा... (बु ४) ना-त । -वा पुण्यना-व वा ।

ओरालि०-इत्थि०-पुरिस०-णवुस०-चत्तारि०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-तेउ० पम्म० सुक्क०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारित्ति मूलोघभंगो । णवरि इत्थि०-पुरिस०-णवुस०-संजदासंजद-असंजद-तेउ०-पम्म०-चत्तारि कसायाण भयणिज्जपदपमाणं णादूण भंगा उप्पादेदन्वा ।

§ ३४७ आदेसेण णिरयगईए णेरईएसु अहावीम-सत्तावीस-छव्वीम-चउवीस-एक्का-योगी, औदारिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, तेजोलेइयावाले, पद्मलेइयावाले, शुक्ललेइयावाले, भव्य, संह्री और आहारी जीवोंके मूलोघके समान भंग जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी, संयतासयत, असयत, तेजोलेइयावाले, पद्मलेइयावाले और क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके भजनीय पदोंका प्रमाण जानकर उनके भग उत्पन्न करना चाहिये ।

विशेषार्थ-पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचो मनयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ल लेइयावाले, भव्य, संह्री और आहारक जीवोंके ध्रुव अट्टाईस आदि और भजनीय तेईस आदि सभी पद पाये जाते हैं, इसलिए इनके ऊपर कहे गये ५६०४६ ये सभी भग सम्भव हैं । स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवके ध्रुवपद तो सभी पाये जाते हैं पर भजनीय पदोंमें तेईस, वाईस, तेरह और बारह ये चार विभक्तिस्थान ही पाये जाते हैं, अतः इन दोनों वेदवालोंके भजनीय पदसम्बन्धी ८० भग और १ ध्रुवभग इसप्रकार कुल ८१ भग सम्भव हैं । पुरुषवेदियोंके ध्रुवपद सभी पाये जाते हैं और भजनीय पदोंमें तेईस, वाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, और पाच ये छह विभक्तिस्थान पाये जाते हैं । अतः पुरुषवेदी जीवोंके भजनीय पदसम्बन्धी ७२८ भग और १ ध्रुवभग इसप्रकार कुल ७२९ भंग सम्भव हैं । असयत, तेजोलेइयावाले और पद्मलेइयावाले जीवोंके ध्रुवपद सभी पाये जाते हैं और भजनीयपदोंमें तेईस और बाईस ये दो पद ही पाये जाते हैं, अतः इनके भजनीय पदसम्बन्धी ८ भग और १ ध्रुवभग इसप्रकार ९ भग सम्भव हैं । क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके ध्रुवपद सभी पाये जाते हैं और अध्रुव पद क्रोधकषायवालोंके तेईस, वाईस, तेरह, बारह, ग्यारह, पाच और चार ये सात पद, मानकषायवाले जीवोंके इन सात पदोंमें तीन विभक्तिस्थानके मिला देनेसे आठ पद, मायाकषायवाले जीवोंके इन आठ पदोंमें दो विभक्तिस्थानके मिला देनेपर नौ पद और लोभकषायवालोंके इन नौ पदोंमें एक विभक्तिस्थानके मिला देनेपर दस पद पाये जाते हैं, अतः इन क्रोधादि कषायवाले जीवोंके क्रमशः २१८७, ६५६१, १६६८३ और ५६०४६ भग सम्भव हैं ।

§ ३४७ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, छव्वीस, चौबीस, और इक्कीस विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । वाईस विभक्तिस्थानवाले जीव

बीसबिहचिया बियमा अरिय । बाबीसबिहचिया मयणिजा । सिया एदे च बाबीसबिहचिओ च १, सिया एदे च बाबीसबिहचिया च २ । घुवे पक्खिचे तिष्णिमंगा १ । एवं पढमपुढवि० तिरिक्ख - पंचिदियतिरिक्ख पंचि०तिरि०पज्ज०-कठलेस्सा-देव-सोहम्मवि जाव सम्बहसिदे सि । अवरि नवापुदिस-पचापुचरेसु सचाबीस-छम्बीसबिहचिया अरिय ।

§ १४८. विदियादि जाव सचमि सि अट्टाबीस-सचाबीस-छम्बीस-चठबीस बिहचिया बियमा अरिय । एव ओणिणी-मरण०-बाण्य०-ओदिसि० वचम्व । पचि० तिरि अपज्जचएसु अट्टाबीस-सचाबीस-छम्बीसबिहचिया बियमा अरिय । एव सम्बएदिय-सम्बविगळिदिय पंचिदियपज्जपज्ज पचकाय-तस अपज्ज० वेठम्वय०-

मञ्जनीय हैं । अतः बाईस विमक्तिस्थानकी अपेक्षा दो मग होंगे । १-कवाचित् ये अट्टाईस जादि विमक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विमक्तिस्थानवाला एक जीव होता है । २-कवाचित् ये अट्टाईस जादि विमक्तिस्थानवाले अनेक जीव और बाईस विमक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं । इन दो महोंमें एक भ्रुव मज्जेके मिद्धा देनेपर नारकियोंमें तीन मज्ज होते हैं । इसी प्रकार पइसी पृथिवीके बीबोंके तथा तिर्यंच पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पचांस और कापोतभेद्रपावासे बीबोंके तथा सामान्य देवोंके और सौमर्य वर्गसे छेकर मर्वांससिद्धि तकके देवोंके समग्रमा चाहिये । इतनी बिधेपता है कि नौ अनुदिस और पांच अनुचरवासी देवोंमें सचाईस और छम्बीस विमक्तिस्थानवाले जीव न्ही होते ।

विशेषार्थ-सामान्य नारकियोंके जो तीन मज्ज बताये हैं वे ही तीनों मज्ज उपयुक्त सभी बीबोंके सम्भव हैं; क्योंकि सामान्य नारकियोंके भ्रुव और मञ्जनीय जो विमक्तिस्थान पाये जाते हैं वे सभी इन उपयुक्त बीबोंके पाये जाते हैं । यद्यपि नौ अनुदिस और पांच अनुचरवासी देवोंके सचाईस और छम्बीस विमक्तिस्थान न्ही बतलाये हैं फिर भी इन स्थानोंके व होमेसे महोंकी संख्यामें कोई अन्तर न्ही पकटा है, क्योंकि इन देवोंके अट्टाईस चौबीस और इच्छीस इन तीन भ्रुव पर्वोंकी अपेक्षा एक भ्रुवमज्ज हो जाता है ।

§ १४८ इतरी पृथिवीसे छेकर सातवी पृथिवी तक नारकियोंमें अट्टाईस, सचाईस छम्बीस और चौबीस विमक्तिस्थानवाले जीव नियमसे होते हैं । अतः यहाँ 'अट्टाईस जादि चार विमक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा नियमसे होते हैं' यही एक भ्रुवमज्ज पाया जाता है । इसी प्रकार तिर्यंच बोनिमती बीबोंमें तथा मचनवासी, म्पन्तर और ज्योतिषी देवोंमें एक अट्टाईस जादि विमक्तिस्थानोंकी अपेक्षा एक भ्रुवमज्ज कइया चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच सम्प्यपयांसकोंमें अट्टाईस सचाईस और छम्बीस विमक्तिस्थानवाले जीव निम्नसे होते हैं । अतः इनमें अट्टाईस जादि तीन विमक्तिस्थानवाले जीव सर्वदा निम्नसे होते हैं' यही एक भ्रुवमज्ज पाया जाता है । इसीप्रकार सभी पचेन्द्रिय सभी विमक्तिस्थान पचेन्द्रिय सम्प्यपयांस, पांचों प्रकारके स्वावरकाव, त्रस सम्प्यपयांस, वेन्द्रियिक

मदिसुदअण्णाण-विहंग-किण्ह०-णील०-मिच्छा०-असण्णि ति वत्तव्वं । णवरि वेउव्विय०-
किण्ह०-णील० चउवीस-एक्कीसविहत्तिया णियमा अत्थि । मणुस्सअपज्जत्तएसु सव्वपदा
भयाणिज्जा । एव वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहागमिस्स०-अवगद०-अकसाय०-
सुहुमसांपराय०- जहाक्खाद०-उव्वसममम्मत्त-मम्मामि० वत्तव्वं ।

काययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, कृष्णलेख्यावाले, नीललेख्यावाले, मिथ्यादृष्टि
और असङ्गी जीवोंके अट्टाईस आदि विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा एक ध्रुवभङ्ग कहना चाहिये ।
इतनी विशेषता है कि वैक्रियिककाययोगी, कृष्णलेख्यावाले और नीललेख्यावाले जीवोंमें
चौबीस और इक्कीस विभक्तिवाले जीव भी नियमसे होते हैं ।

लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें सभी पद भजनीय हैं । इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी,
आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकपायी, सूक्ष्मसापरायसंयत,
यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—अपगतवेदी, अकपायी और यथाख्यात मयत इन तीन स्थानोंको छोड़कर
शेष सात मार्गणाएं सान्तर हैं । इन मार्गणाओंमें कमी एक और कभी अनेक जीव होते
हैं । तथा कभी इनमें जीवोंका अभाव भी रहता है । शेष तीन अपगतवेदी आदि मार्ग-
णाएं यद्यपि सान्तर तो नहीं हैं क्योंकि वेदरहित, कषायरहित और यथाख्यात संयत जीव
लोकमें सर्वदा पाये जाते हैं । फिर भी मोहनीयकी सत्तासे युक्त इन मार्गणाओंवाले जीव
कभी विलकुल नहीं होते हैं, कमी एक होता है और कभी अनेक होते हैं, अतः इस अपेक्षा
से ये तीन मार्गणाएं भी सान्तर हैं ऐसा समझना चाहिये । इसप्रकार इन उपर्युक्त दस
मार्गणाओंके सान्तर सिद्ध होजानेपर इनमें संभव सभी पद भजनीय ही होंगे । लब्धपर्याप्त
मनुष्योंके अट्टाईस, सत्ताईस और छब्बीस ये तीन स्थान पाये जाते हैं, अतः यहा
प्रस्तारविकल्प सात और उच्चारणाविकल्प अर्थात् भंग छब्बीस होंगे । वैक्रियिक मिश्र
काययोगियोंके अट्टाईस, सत्ताईस छब्बीस, चौबीस, बाईस और इक्कीस ये छह स्थान
पाये जाते हैं, अतः यहा प्रस्तारविकल्प ६३ और भंग ७२८ होंगे । आहारककाययोगी
और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अट्टाईस, चौबीस और इक्कीस ये तीन स्थान
पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तारविकल्प सात और भंग २८ होंगे । अपगतवेदी
जीवोंके २४, २१, ११, ५, ४, ३, २ और १ ये आठ स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां
प्रस्तारविकल्प २५५ और भंग ६५६० होंगे । कषायरहित जीवोंके और यथाख्यात-
संयतोंके २४ और २१ ये दो स्थान पाये जाते हैं, अतः यहापर प्रस्तारविकल्प ३ और
भंग ८ होंगे । सूक्ष्मसापराय संयतोंके २४, २१ और १ ये तीन स्थान पाये जाते हैं,
अतः यहापर प्रस्तारविकल्प ७ और भंग २८ होंगे । उपशमसम्यग्दृष्टि और
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें २८ और २४ ये दो स्थान पाये जाते हैं, अतः यहां प्रस्तार

१३४६. जोरालियमिस्स० अट्टावीस-सत्तावीस-छम्बीस० गियमा अत्थि । सेसपदा मयणित्ता । कम्मइय० छम्बीस० गियमा अत्थि संसपदा मयणित्ता । एवमप्पा हरिं० । आभित्ति०-सुद० ओहिं० अट्टावीस-चठवीस-एक्कीसविह० गियमा अत्थि । सेसपदा मयणित्ता । एव मज्जपत्तण०-सज्जद-सामाइय-च्छेदो०-परिहार०-संज्जदासंज्जद ओहिंदंस०-सम्मादिट्ठि-वेदय० वचम्य । जवरि वेदय० इगिबीस णत्थि । अम्मवसिद्धि० छम्बीसविह० गियमा अत्थि । खविगे एक्कीसविह० गियमा अत्थि । सेसपदा

विकल्प १ और भग ८ होंगे । सासाधन सम्पत्ति स्थान भी साधन मार्गणा है पर उसके मंग आगे बढ कर स्वतन्त्र गिनाये हैं, अतः यहां उसके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है ।

१३४८ औदारिकमिस्स काययोगियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस और छम्बीस विमत्तिस्थानके धारक जीव नियमसे हैं । श्रेय स्थान मज्जनीय हैं । अर्भण काययोगमें छम्बीस विमत्तिस्थान नियमसे है, श्रेय स्थान मज्जनीय हैं । इसीप्रकार जनाहारक काययोगियोंमें समझना चाहिये ।

विशेषार्थ—औदारिकमिस्स काययोगियोंमें २८, २७, २६, २४, २२ और २१ ये ब्रह्म स्थान पाये जाते हैं । इनमेंसे २८, २७ और २६ स्थानके धारक ब्रह्म जीव सर्वथा रहते हैं, अतः इन तीन स्थानोंकी अपेक्षा एक एक भुवभग होमा । श्रेय २४, २२ और २१ य तीन स्थान मज्जनीय हैं । अतः इसकी अपेक्षा प्रत्येक विकल्प ७ और मंग २८ होंगे इसप्रकार प्रत्येक विकल्प ७ और कुछ भग २२ होंगे ।

मतिज्ञानी भुवज्ञानी और अन्नभिज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस, चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्थान निबन्धसे हैं । श्रेय स्थान मज्जनीय हैं । इसीप्रकार मज्जपत्तणज्ञानी, संघस, साम्पायिक संघस, छेरोपस्थापना संघस, परिहारविमुद्धि संघस, संघसासंघस, अन्नविषईनी, सम्पत्ति और वेदक सम्पत्ति जीवोंमें कदमा चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदक सम्पत्तिवर्गके इक्कीस विमत्तिस्थान नहीं होता है ।

विशेषार्थ—मतिज्ञानी आदि जीवोंके सत्ताईस और छम्बीसके सिवा मोहनीयके सभी स्थान पाये जाते हैं, अतः इनके मज्जनीय २३ आदि दसों विमत्तिस्थानोंके प्रत्येक विकल्प १०२३ और भुव तथा अणु सभी भग ४९०४२ पाये जाते हैं । परिहारविमुद्धि संघस और संघसासंघस जीवोंके २८, २४, २३, २२ और २१ ये पांच स्थान तथा वेदक सम्पत्तिवर्गके २१ विमत्तिस्थानके विना श्रेय चार स्थान पाये जाते हैं । इनमेंसे २३ और २२ विमत्तिस्थान तीनों मार्गणाओंमें मज्जनीय हैं, अतः इस तीनोंमेंसे प्रत्येक मार्गणामें ३ प्रत्येक विकल्प और २ मंग होते हैं । इनमें एक भुवभग भी सम्मिश्रित है ।

अन्नय जीवोंके नियमसे छम्बीस विमत्तिस्थान पाया जाता है । आनिक-सम्पत्ति जीवोंके इक्कीस विमत्तिस्थान नियमसे है । तथा श्रेय २३ आदि ८ स्थान मज्जनीय हैं ।

भयणिजा । सासण० सिया अट्टावीसविहत्तिया सिया अट्टावीसविहत्तिओ ।

एव णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

* सेसाणिओगद्वाराणि णेदव्वाणि ।

§ ३५०. कुदो ? सुगमत्तादो । संपहि चुण्णिसुत्तेण सच्चिदाणमुच्चारणामस्सिदूण

सेसाहियाराणं परूवणं कस्सामो ।

§ ३५१. भागाभागानुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छव्वीसविह० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो । अणंता भागा । सेसपदा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुस०-चत्तारिक०-मदि-सुद-अण्णाण-असंजद-अचक्खु०-तिणिल्लेस्सा-भवसिद्धि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारिन्ति वत्तव्व ।

सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें कदाचित् २८ विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव होते हैं और कदाचित् अट्ठाईस विभक्तिस्थान वाला एक जीव होता है ।

विशेषार्थ—अभव्योंके २६ विभक्तिस्थानको छोड़कर और दूसरा कोई स्थान नहीं पाया जाता है तथा अभव्यराशि ध्रुव है । इसलिये यहां एक ही भगु संभव है । क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके इक्कीस विभक्तिस्थान ध्रुव है शेष ८ स्थान भजनीय हैं, अतः यहा प्रस्तार विकल्प २५५ और ध्रुव तथा अध्रुव दोनों प्रकारके भगु ६५६१ होंगे । सासादन सान्तर मार्गणा है । अतः यहा २८ स्थानकी अपेक्षा भी २ भगु होंगे ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगुविचय अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

* भागाभाग, परिमाण आदि शेष अनुयोगद्वार जान लेने चाहियें ।

§ ३५०. शङ्का—यहा शेष अनुयोगद्वारोंका कथन न करके सूचनामात्र क्यों की है ?

समाधान—क्योंकि वे सुगम हैं, अतः चूर्णिसूत्रकारने उनकी सूचनामात्र की है ।

अब चूर्णिसूत्रके द्वारा सूचित किये गये भागाभाग आदि शेष अनुयोगद्वारोंका उच्चारणाका आश्रय लेकर कथन करते हैं—

§ ३५१. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छव्वीस विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग है । शेष विभक्तिस्थानवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यच, सभी प्रकारके एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोदकायिक, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुसकवेदी, चारों कपायवाले, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्याओंमें प्रत्येक लेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असङ्गी, आहारक और अनाहारक इनके भी भागाभाग

१५२ जावेसेण पिरयमईए येरईएए छम्बीसविहृतिया सम्बजीबाण केव० ? असखेजा मागा । सेसपदा सम्बजीव० केव० ? असखे मागो । एव सम्बणेरइय-सम्ब पंषिदिय तिरिक्ख-मणुस्स-मणुस्स अपज०-देव० भवणादि जाव सहस्सारे ति-सम्ब-विगळिदिय-पषिदिय-पषि०-पज०-पचि अपज०-चचारिकाय०-तस-तसपज०-तस अपज०-पचमण०-पचबधि०-वेठम्बिय०-वेउ० मिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहग०-चक्खु०-तठ०-पम्म०-सण्णि ति पचम्ब । मणुस्सपज०-मणुस्सिप्पीसु छम्बीसविह० सम्बजीबाण के० मागो ? सखेजा मागा । सेसपदा सखे० मागो । आणदादि जाव उवरिमगेबजेति अट्टावीसविह० सम्बजीबाण क० मागो ? सखेजा मागा । छम्बीस चठवीस-एक्खवीसविह० सखेजादि मागो । बावीस-सत्तावीसविह० असत्तज्जदि मागो । अणुदिसादि जाव अवराइद ति अट्टावीसविह० सम्बजीबाण के० मागो ? सखेजा मागा । संसपदा सखेजादि मागो । बावीसवि० असखे० मागो ।

बोधप्ररूपजाके समान जान्ना चाहिये । तात्पर्य यह है इन एक मार्गणाओंमें छम्बीस किम चिस्थानवाले जीव अनन्त बहुमाग प्रमाण हैं और छेप विमच्छिस्थानवाले जीव अनन्तमें मग प्रमाण हैं । अतः इनके कथनमें जोपके समान द्वा है ।

१५२ आदेशकी अपेक्षा नरक गतिमें मारकियेमें छम्बीस विमच्छिस्थानवाले जीव सर्व जीवोंके कितनेमें भाग हैं ? असंख्यात बहुमाग हैं । छेप विमच्छिस्थानवाले जीव सभी जीवोंके कितनेमें भाग हैं ? असंख्यातमें भाग हैं । इसीप्रकार सभी मारकी, सभी पंचेन्द्रियवर्तिर्यं, सामान्य मनुष्य, छम्प्यपर्याप्त मनुष्य सामान्य देव तथा भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कस्य तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, पंचेन्द्रिय छम्प्यपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, ब्रह्म, ब्रह्मपथात, ब्रह्म छम्प्यपर्याप्त, पापों प्रकरक मनोयोगी, पापों प्रकरके बचनयोगी, वैदिकिय काययोगी, वैदिकियकमिब्रह्मययोगी, खीवैदी, पुठपवेदी, विभगदाधी, चहुदधनी, पीठसेय्यावाले, पद्यसेय्यावाले और सभी जीवोंके कइन्ना चाहिये ।

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियेमें छम्बीस विमच्छिस्थानवाले जीव सब एक जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुमाग हैं । तथा छप स्थानवाले संख्यातमें भाग हैं ? अनन्त कस्यसे लेकर उपरिम प्रेथेथिक तक अट्टाईस विमच्छिस्थानवाले जीव सब एक जीवोंके कितनेमें भाग हैं ? संख्यात बहुमाग हैं । छम्बीस चौबीस और इदीस विमच्छिस्थानवाले जीव संख्यातमें भाग हैं । तथा आईस और सत्ताईस विमच्छिस्थानवाले जीव असंख्यातमें भाग हैं । अनुदिसासे लेकर अपरात्रित तक प्रत्यक ज्ञानके अट्टाईस विमच्छिस्थानवाले जीव सब एक जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुमाग हैं । छेप विमच्छिस्थानवाले जीव संख्यातमें भाग हैं । तथा आईस विमच्छिस्थानवाले जीव असंख्यातमें भाग हैं ।

§ ३५३ सव्वे अट्टावीस० सव्वजीवाणं के० ? सखेज्जा भागा । सेसपदा संखेज्जदि भागो । एवमाहार०-आहारमिस्स०-मणपज्ज० सजद०-सामाह्य-छेदो०-परिहार० चत्तव्वं । अवगदवेद० चउण्हं वि०सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा । सेसप० संखे० भागो । अकसाय० चउवीस० सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा । सेसप० संखे० भागो । एवं जहाक्खाद० । आभिणि०-सुद-ओहिं० अट्टावीसविह० सव्वजीवाणं के० ? असं-खेज्जा भागा । सेसपदा असंखे० भागो । एवं संजदासजद० ओहिदंसण०-सम्मादि०-वेदग०-उवसम०-सम्माभिच्छाइट्टि ति वत्तव्व । सुहुमसांपराय० एकविह० सव्वजीवाणं के० ? संखेज्जा भागा । सेसप० संखे० भागो । सुक्क० अट्टावीस० के० ? संखेज्जा भागा । छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस० संखे० भागो । सेसप० असंखे० भागो । अभ-व्वसिद्धि०-सासण० णत्थि भागाभागो । खइए एकवीसविह० सव्वजीवाणं के० ?

§ ३५३ सर्वार्थसिद्धिमें अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सब उक्त जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहु भाग हैं । शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं । इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मन.पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदो-पस्थापनासयत और परिहारविशुद्धिसयत जीवोंके कहना चाहिये ।

अपगतवेदवालोंने चार विभक्तिस्थानवाले जीव सब अपगतवेदी जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । शेष विभक्तिस्थानवाले संख्यातवें भाग हैं । कपायरहित जीवोंमें चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव सब कपायरहित जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं । इसीप्रकार यथाख्यात-संयतोंके जानना चाहिये ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव उक्त सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं । शेष विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं । इसीप्रकार संयतासयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

सूक्ष्मसापरायिक संयतोंमें एक विभक्तिस्थानवाले जीव सब सूक्ष्मसापरायिक जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं । शुक्ललेश्यावालोंने अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । छव्वीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भाग हैं । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं । अभव्य और सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें विभक्तिस्थानसम्बन्धी भागाभाग नहीं पाया जाता है । ज्ञायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सब ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यात

असंखेज्जा भागा । सेसप० असंखेज्जदिमागो ।

एव मामामागो समचो ।

§ ३५४ परिमाणासुगमेण दुबिहो भिरेसो ओपेण आदसेण य । तत्थ ओपेण अट्ठावीस-सत्तावीस-चठवीस-एक्खवीसवि० केत्तिया ? असंखेज्जा । छप्पीसवि० के० ? अप्पता । सेसद्वायविहत्तिया केत्तिया ? संखेज्जा । एवं तिरिक्ख-अपज्जोगि ओरा त्तिप०-णत्तुमय०-अचारिक०-असंजद०-अथक्खु० मवसि०-आहारि ति वचम्य ।

§ ३५५ आदेसेण पिरयगईए पेरईएसु अट्ठावीस-सत्तावीस-छप्पीस-चठवीस-एक्ख-वीसवि० केत्ति० ? असंखेज्जा । षाठीसविह० क० ? संखेज्जा । एव पट्टमपुट्टवि०-पार्चिदिय तिरिक्ख पार्चि०तिरि०पज्ज -देव-सोहम्मिसाणादि माव उवरिमगेवज्जे ति । विदि

बहुभाग है । सेप विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातवर्ग भाग है ।

इसप्रकार भागाभागासुगमेण समाप्त हुआ ।

§ ३५४ परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देस दो प्रकारका है—ओपनिर्देस और आदेसनिर्देस । जन्मसे ओपनिर्देसकी अपेक्षा अट्ठाईस, सत्ताईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । छप्पीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सेव विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार तिर्यच सामान्य अथ-योगी औदारिककाययोगी, नपुसकबेरी, कोभादि चारों कपाववाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, मय्य और आहारक जीवोंके करना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओपसे जिस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी जो संख्या पतझाई है वह तिर्यच सामान्य आदि मार्गप्राप्तिमें भी वन जाती है । वचपि विविध मार्गप्राप्तिमें संख्या बट जाती है अतः ओपप्ररूपणसे आदेशा प्ररूपणमें अन्तर पड़ना संभव है फिर भी अनन्तत्व सामान्य आदिको उक्त मार्गप्राप्तानवाले जीव इस इस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्याधी अपेक्षा उल्लंघन नहीं करते हैं अतः इनकी प्ररूपण ओपके समान करी है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यच सामान्य आदि मार्गप्राप्तिमें कहां कितने विभक्तिस्थान पाये जाते हैं वह बात स्वमित्त्व अनुयोगकारसे जानकर ही कबन करना चाहिये क्योंकि उक्त सब मार्गप्राप्तिमें सब विभक्तिस्थान करी पाये जाते हैं ।

§ ३५५. आदेसकी अपेक्षा मरकगतिमें मारकियोंमें अट्ठाईस सत्ताईस छप्पीस चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार पट्टी पृष्ठीके मारकी पवेम्भियमिथच, पवे-म्भियतिर्यचपर्याप्त, सामान्य देव और सौपर्ये स्वर्गसे सेकर नीमिबेक तकके देवोंकी संख्या करना चाहिये ।

विशेषार्थ—इपर त्रितनी मार्गप्राप्ति गिनवाई है इनमें प्रत्येकका प्रमाण अमंख्यात है ।

यादि जाव सत्तमि ति सव्वपदा केत्तिया ? असंखेज्जा । एवं पाँचि०तिरि०जोणिणी-पाँचि०तिरि० अपज्ज० -मणुसअपज्ज० -भवण०-वाण०-जोदिसि० -सव्वविगालिंदिय-पाँचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-वादर-सुहुम पज्ज० अपज्ज०-तस अपज्ज०- विहंग० वत्तव्वं ।

§ ३५६ मणुसगईए मणुस्सेसु अट्टावीस-सत्तावीस-छुव्वीसविह केत्ति० ? असं-खेज्जा । सेसपद० सखेज्जा० । मणुमपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदा के० ? सखे-ज्जा । एव सव्वट्ट०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकमा०-मणपज्ज०-संजद०-समाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्व ।

अतः इनमें २८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानवालोंका प्रमाण असख्यात बन जाता है । पर २२ विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यात ही होंगे, क्योंकि सामान्य बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात नहीं होता । अतः मार्गणाविशेषमें उनका असंख्यातप्रमाण किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें स्थित अट्टाईस आदि संभव सभी विभक्तिस्थानवाले नारकी जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसीप्रकार पचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त, बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त, और अपर्याप्त चारों प्रकारके पृथिवी आदि कायवाले, त्रस लब्ध्यपर्याप्त और विभङ्गज्ञानी जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—ज्योतिषी देवों तक ऊपर जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें २८, २७, २६ और २४ ये चार विभक्तिस्थान पाये जाते हैं किन्तु शेष विकलेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें २८, २७ और २६ ये तीन विभक्तिस्थान ही पाये जाते हैं । तथा इन सभी मार्गणाओंमें प्रत्येक मार्गणावाले जीवोंका प्रमाण असख्यात है अतः यहा उक्त प्रत्येक विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात बन जाता है ।

§ ३५६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें अट्टाईस, सत्ताईस और छुव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीमें सभी विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? सख्यात हैं । इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव तथा आहारककाययोगी, आहारकूमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसयत, सूक्ष्म-सांपरायसंयत और यथाख्यात सयत जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन उपर्युक्त मार्गणाओंमें कहा कितने विभक्तिस्थान होते हैं, इसका चलेख पहले कर आये हैं । यहा इन मार्गणास्थानवर्ती जीवोंकी संख्या पर्याप्त मनुष्य और

३२५७ अणुदिसादि जाव अचराद्व वि बावीसविह० केचि० ? संखेज्जा । सेसपदा असखेज्जा । एइदिय-बादरेइदिय-सुहमेईदिय अहाबीस-सत्तावीसविह० केचिया ? अमखेज्जा । छवीसविह० के ? अजंता । एवं बजप्फदि०-णिगोद० पज्ज अण्वज -मदि-सुदअज्जाण-मिच्छदि०-असण्णि वि बत्तम् । पंथिदिय-पथि दियपज्ज०-सस-तसपज्ज० अहाबीस-सत्तावीस-[छम्बीस] विह० चतवीसविह० एक-बीसविह० केचिया ? असखेज्जा । सेसप० सखेज्जा । एवं पचमण -पंचवधि पुरिस०-चक्खु०-सण्णि वि बत्तम् ।

मनुष्यनीकी संख्याके साथ संख्यात सामान्यकी अपेक्षा समान है यह दिखानेके लिये 'एव सच्चद्व' इत्यादि कहा है ।

३३५७ नौ अनुविशोसे केकर अपच्छविततक मत्सेक ज्ञानमें बाईस विमच्छिस्वानवासे देव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अपनेमें समथ छेव ज्ञानवासे देव असंख्यात हैं ।

एकेन्द्रिय, बावर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अट्ठाईस और सत्ताईस विमच्छिस्वानवासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । छम्बीस विमच्छिस्वानवासे जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार बभस्पतिक्रायिक, पर्वात बभस्पतिक्रायिक अपर्याप्त बभस्पतिक्रायिक निगोद पर्वात निगोद अपर्याप्त निगोद मतिब्रह्मानी, भुताश्रामी, मिच्छादृष्टि और असही जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

विशेषार्थ-२० और २७ विमच्छिस्वानवासे वे ही जीव होते हैं जिन्होंने कभी उपग्राम सम्बन्ध प्राप्त किया हो अतः इनका प्रमाण असंख्यात ही होगा । पर २६ विमच्छिस्वानवासे जीवोंमें सम्यग्मिच्छात्व और सम्यक्प्रकृतितसे रहित सभी मिच्छादृष्टियोंका ग्रहण हो जाता है अतः इनका प्रमाण अनन्त होगा । इसी अपेक्षासे उपर्युक्त अनन्त संख्या वाली मार्गजाओंमें २० और २७ विमच्छिस्वानवासे प्रमाण असंख्यात और २६ विमच्छिस्वानवासे प्रमाण अनन्त कहा है ।

पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें अट्ठाईस सत्ताईस छम्बीस चौबीस और इक्कीस विमच्छिस्वानवासे जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तथा छेव विमच्छिस्वानवासे जीव संख्यात हैं । इसीप्रकार पांचों यथोयोगी, पांचों बचनयोगी पुद्गल वेदी चक्षुर्दर्शनी और सही जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

विशेषार्थ-क्यर्षुक मार्गजाओंमें सभी स्वाम सम्मथ हैं पर किन विमच्छिस्वानोंमें रहनेवासे ठक जीव असंख्यात होते हैं ऐसे विमच्छिस्वान २० = २७, २६, २४ और २१ ही हो सकते हैं । अतः इन विमच्छिस्वानवासे पंचेन्द्रिय आदिका प्रमाण असंख्यात कहा है । तथा इससे अतिरिक्त छेव विमच्छिस्वानवासे जीव सर्वत्र संख्यात ही होते हैं । अतः इनका प्रमाण संख्यात ही कहा है ।

§ ३५८. ओरालियमिम्स०, अट्टावीस-सत्तावीसविह० केत्ति० ? अमंखेज्जा । छव्वीसविह० के० ? अणंता । वावीस-एक्कवीस-चउवीसविह०के० ? मखेज्जा । एवं कम्मइय० । णवरि चउवीस० असंखेज्जा । एवमणाहार० । एवं वेउन्वियमिस्स० । णवरि छव्वीस० असंखेज्जा । वेउन्विय० मन्वपदा० असखेज्जा । इत्थि० पंचिदिय-भंगो । णवरि एक्कवीस० केत्तिया ? मखेज्जा । आभिणि०-सुद-ओहि० अट्टावीस-चउवीस-एक्कवीसविह० के० । अमखेज्जा । सेमप० संखेज्जा । एवं ओहिदस०-सम्मा-इट्ठि०-वेदयसम्माइट्ठि त्ति वत्तव्वं । णवरि वेदयसम्माइट्ठिसु इगिवीसादिपट णत्थि ।

§ ३५८. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । वाईस, इक्कीस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार कामेणकाययोगी जीवोंकी संख्या जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि कामेणकाययोगी चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं । इसीप्रकार अनाहारकोंमें जानना चाहिये । तथा इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये । पर यहा इतनी विशेषता है कि छव्वीस विभक्तिस्थानवाले वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीव असख्यात होते हैं ।

विशेषार्थ—जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य भोगभूमिके तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके वाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानके होते हुए औदारिक मिश्रकाययोग होता है । जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव या नारकी मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके इक्कीस विभक्तिस्थानके होते हुए औदारिक मिश्रकाययोग होता है । तथा जो वेदक सम्यग्दृष्टि देव और नारकी मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके चौबीस विभक्तिस्थानके रहते हुए औदारिक मिश्रकाययोग होता है । अतः औदारिकमिश्रकाययोगमें इन तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात कहा है । शेष कथन सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें सभी सम्भव विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं । स्त्रीवेदियोंमें सभब अट्टाईस आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्या पचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदके रहते हुए मनुष्य ही इक्कीस विभक्तिस्थानवाले होते हैं अतः इनका प्रमाण संख्यात कहा है । शेष कथन सुगम है ।

मत्तिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात हैं । इसीप्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें संख्या कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके इक्कीस आदि विभक्तिस्थान नहीं हैं ।

१३५६ संज्ञदासंज्ञद अद्वावीसविह० षठवीसविह० के० ? असंस्वेज्जा ।
 सेसप० सस्वेज्जा । काठ० तिरिक्कलोपमगो । किण्ह० पीठ० एव पेव । प्परि एक्क-
 वीसविह० क० ? संस्वेज्जा । तेठ० पम्म० सुद्ध० पच्चिदियमगो । अमम्भसिद्धि०
 छक्कीसवि० के० ? अयंता । खइए० एक्कवीसविह० के० असंस्वेज्जा । सेसपदा
 सत्त्वज्जा । ठवसमे अद्वावीस-षठवीसवि० क० ? असंस्वेज्जा । सासण० अद्वावीस
 वि० असंस्वेज्जा । सम्मामि० अद्वावीस-षठवीस० के० ? असंस्वेज्जा ।

एव परिमाण समत्त ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त मार्गणाओंमें २७ और २६ विमत्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं
 क्योंकि वे मिच्छादृष्टिके ही होते हैं । शेष सब पाये जाते हैं किन्तु वेदकसम्पत्तदृष्टियोंके
 २८, २४, २३ और २२ ये चार विमत्तिस्थान ही पाये जाते हैं । अतः उपर्युक्त मार्गणा-
 ओंमें जहाँ कितने स्थान पाये जाते हैं उन स्थानवाले जीवोंकी संख्या ओपके समान
 बन जाती है ।

१३५८ सबदासंज्ञत जीवोंमें अद्वाईस और चौबीस विमत्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ?
 असंख्यात है । तथा अपनेमें समस्त श्रेय स्थानवाले जीव संख्यात हैं । कापोठ क्षेत्रवामें
 ओपतिवचके समान जानना चाहिये । कृष्ण और नील क्षेत्रवामें इत्थिमक्खर जानना चाहिये ।
 इसी विधेयता है कि कृष्ण और नील क्षेत्रवामें इक्कीस विमत्तिस्थानवाले जीव कितने
 हैं ? संख्यात है । पीठ, पद्य और दुष्क ज्ञप्पामं पचेत्थिमोक्क समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सबदासंज्ञत गुणस्थानमें २८ और २६ विमत्तिस्थानवाले विषय भी होते हैं
 अतः इन ही स्थानवाले संख्यासंज्ञतोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है । तथा शेष स्थान-
 वाले मनुष्य ही होते हैं अतः उनकी अपक्षा सबदासंज्ञतोंका प्रमाण संख्यात ही होगा ।
 जहाँ क्षेत्रवावाओंमें किसका कितन स्थान किस किस गतिशील अपक्षा संज्ञत हैं यह बात
 स्वामित्व अनुबोधद्वारास जान लेना चाहिये । इसका किस क्षेत्रवामें किस स्थानवाले जीव
 कितने सम्भव हैं इसका भी आशय मिश्रजता है जिसका उल्लेख ऊपर किया ही है ।

अमम्भोमें उष्णीम विमत्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त है । धाविक
 सम्पत्तदृष्टियोंमें इक्कीस विमत्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है । अपनेमें समस्त
 श्रेय विमत्तिस्थानवाले जीव संख्यात है । उपरान्त सम्पत्तत्त्वमें अद्वाईस और चौबीस विम-
 त्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है । सासाएवसम्पत्तत्त्वमें अद्वाईस विमत्तिस्थान
 वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है । मन्पम्मिच्छात्वमें अद्वाईस और चौबीस विमत्तिस्थान
 वाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है ।

विशेषार्थ—सभी अमम्भ उष्णीम विमत्तिस्थानवाले ही होते हैं और इनका प्रमाण अनन्त
 है, अतः अमम्भोमें २६ विमत्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त क्या है । यद्यपि उद्द

§ ३६०. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छ्वीस-विहात्तिया केवडिए खेत्ते ? सव्वलोगे । सेसप० के० खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइदिय-पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ० तेसिं वादर अपज्ज०-सुहुमपज्ज० अपज्ज०-वणफ्फदि०-णिगोद०-वादर सुहुम० पज्ज० अपज्ज०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०

माह और आठ समयमें संख्यात जीव ही क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न करते हैं पर उनका संचयकाल साधिक तेतीस सागर होनेसे २१ विभक्तिस्थानवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण असख्यात बन जाता है । तथा शेष विभक्तिस्थानवाले जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि और मनुष्य ही होते हैं अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें २८ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात है यह तो स्पष्ट है । किन्तु उपशम सम्यक्त्वमें २४ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात उसी मतके अनुसार प्राप्त होगा जो उपशम सम्यक्त्वके कालमें भी अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसयोजना मानते हैं । सासादनमें एक अट्ठाईस विभक्तिस्थान ही होता है और उनका प्रमाण असख्यात है अतः यहां सासादनमें अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात कहा है । सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण भी असंख्यात है और उनमें २८ और २४ विभक्तिस्थानवाले जीव पाये जाते हैं अतः सम्यग्मिध्यात्वमें २८ और २४ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण असख्यात कहा है ।

इसप्रकार परिमाणानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३६० क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छ्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वलोकमें रहते हैं । शेष विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यच, समी प्रकारके एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वादरपृथिवीकायिक, वादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक अपर्याप्त, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वादर वायुकायिक, वादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, साधारण वनस्पतिकायिक, वादरवनस्पति, वादरवनस्पति पर्याप्त वादर वनस्पति अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त, वादर निगोद, वादर निगोदपर्याप्त, वादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी

तिष्णित्ते० भवसि०-मिन्त्र० असण्णि० आहारि० अणाहारि चि वचन्व ।

१३६१ आदेसेण गिरपगईए घेरइएसु सम्भप० फे० खेचे ! लोण असखे० मागं । एव सम्भपुडवि -सम्भपंधिदिय तिरिक्ख-सम्भमणुस्त सम्भदेव-सम्भविगळिदिय सम्भपंधिदिय-बादरपुडवि० आउ० नेउ०-बादरपण्णदिपचेप-णिगोद-पदिद्धिदपल्लत्त वसपज्जापल्लत्त-पंचमण -पचवधि०-वेठाविय०-वेठ० मिस्त० आहार० आहारमिस्त० इत्थि०-पुरिस० अन्नगद० अकसा०-विहग० भामिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज -सब्ब सामाइयखेदो० परिहार० सुहुम ब्रह्मकस्साद०-सब्बदासब्बद-चक्खु० ओहिदंस० तिष्णिसुहलेस्सा०-सम्मादि० लुइय०-वेदग०-उवसम० मम्मामि०-सण्णि चि वचन्व ।

कर्मण कर्मयोगी नर्पुसक बरी, शोषारि चारो कपायवाले मन्नाहानी, सुताहानी, असपत्त, अचरुवर्त्तनी कृष्ण नीळ और कपोत छेश्यावाले भव्य मिथ्यादृष्टि, असह्यी आहारक और अनाहारक जीवोंक २६ विमत्तिस्थानकी अपेक्षा सर्वशोक और श्लेष समझ विमत्तिस्थानोंकी अपेक्षा शोकप्र असम्भ्यातवां भागप्रमाण क्षेत्र कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यह परिमाणानुसंगोद्गममें ही वचन आये हैं कि २८, २७, २४ और २१ विमत्तिस्थानवाले जीव असम्भ्यात हैं, २६ विमत्तिस्थानवाले जीव अनन्त हैं तथा श्लेष विमत्तिस्थानवाले जीव सम्भ्यात हैं । अतः २६ विमत्तिस्थानवाले जीवोंक क्षेत्र सब शोक और श्लेष विमत्तिस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र शोकका असम्भ्यातवां भागप्रमाण कम जाता है । ऊपर जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार विमत्तिस्थानोंका विचार करके श्लेषके समान क्षेत्रका कथन कर लेना चाहिये ।

१३६१ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें समझ सभी विमत्तिस्थानवाले जीव कितन क्षेत्रमें रहते हैं ? शोकके असम्भ्यातयें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार द्वितीयादि क्षप सभी पृथिवीबोधमें रहनवाले नारकी सभी पंचेन्द्रियतत्त्व सभी मनुष्य सभी देव सभी विकसेन्द्रिय सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त बादर वनस्पति प्रत्येक क्षरीर पर्याप्त बादर निर्गोद प्रतिष्ठित प्रत्येक क्षरीर पर्याप्त ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त ब्रह्मअपर्याप्त, पांचों मनोवोगी, पांचों वचनवोगी, वैश्वियिक कायवोगी, वैश्वियिकमिजहायवोगी, आहारककायवोगी, आहारकमिजहायवोगी, खीवैरी, पुद्गलवैरी, अपगतवैरी अकपायी, विभगहानी मतिहानी, सुतहानी अवधिहानी मनाःपबंधहानी सपत्त सामायिकसपत्त, छेदोपस्थापनासपत्त, परिहारविद्युदिसपत्त, सूक्ष्म छांपरायिक सपत्त, यथाक्यात सपत्त सपत्तासपत्त चरुवर्त्तनी अवधिवर्त्तनी पीत आदि धीन हुम छेश्यावाले सम्भ्यगृहृष्टि, भ्रामिकसम्भ्यगृहृष्टि वेदकसम्भ्यगृहृष्टि, कपठसम्भ्यगृहृष्टि, सम्भ्यगूमिष्यादृष्टि और सहीजीवोंमें सभी विमत्तिस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र शोकके असम्भ्यातयें भागप्रमाण कहना चाहिये । बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें उष्णीस विमत्ति-

षादरवाउ० पज्ज० छव्वीस० लोग० संखे० भागे । सेसपदाणं लोगस्स असंखे० भागे ।
अभव्वसिद्धि० छव्वीसविह० के० खेत्ते ? सव्वलोगे । सासण० अट्ठावीम० के०
खेत्ते ? लोग० असंखे० भागे ।

एव खेत्त समत्तं ।

§ ३६२ फोसणाणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण
अट्ठावीस-सत्तावीस० केव० खेत्तं फोसिद ? लोग० असखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा
देसुणा, सव्वलोगो वा । छव्वीस० केवल्लियं खेत्तं फोसिद ? सव्वलोगो । चउवीम-
एक्कवीस० केव० खे० फोसिद ? लोगस्स असंखे० भागो, अट्ठ-चोद्दसभागा वा देसुणा ।
सेसप० खेत्तभगो । एवं कायजोगि०-चत्तारिकसाय-अचक्खु०-भवासिद्धि०-आहारि
त्ति वत्तव्वं ।

स्थानवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके सख्यातर्वे भागप्रमाण है । तथा इनमे सभव शेष विभक्ति-
स्थानवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असख्यातर्वेभाग प्रमाण है । अभव्योंमे छव्वीस विभक्ति-
स्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? सर्व लोकमे रहते हैं ? अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले सासा-
दन सम्यग्दृष्टि जीव कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? लोकके असख्यातर्वे भागप्रमाण क्षेत्रमे रहते हैं ।

विशेषार्थ—वादर वायुकायिक पर्याप्त और अभव्य जीवोंको छोड कर ऊपर जितने
मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमे जितने पद सम्भव हों उनकी अपेक्षा लोकका असंख्यातवा
भागप्रमाण ही क्षेत्र प्राप्त होता है । किन्तु वादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमे २६ विभक्तिस्थान-
वाले जीवोंका क्षेत्र लोकका सख्यातवा भाग प्रमाण होता है तथा अभव्योंमे २६ विभक्ति-
स्थान ही होता है और उनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है अतः २६ विभक्तिस्थानवाले
अभव्योंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक जानना चाहिये ।

इस प्रकार क्षेत्रानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३६२. स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
उनमेंसे ओषनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने
क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकका असंख्यातवा भाग, कुछ कम आठ घटे चौदह भाग और
सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितना क्षेत्र स्पर्श
किया है ? सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले
जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातर्वे भाग और कुछ कम आठ
घटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये ।
इसीप्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके
कथन करना चाहिये ।

५ ३६३ आदेसेण भिरमयईए नेरईएसु अहाबीस-सचाबीस-छम्बीसविह० के० स्वर्ण फोसिद ? सोम० असस्वे० मागो, छ-चोइसमागा वा देखणा । सेसपदान स्वेच भगो । पढमाए स्वेचमगो । विदियादि आव सचमि पि अहाबीस-सचाबीस-छम्बीस वि० के० स्वेच फोसिद ? सोम० असस्व० मागो, एक-वे-ठिण्ण-चचारि-पच-छ चोइसमागा वा देखणा । पठबीस० स्वचमगो ।

विशेषार्थ—वहां ओपकी अपेक्षा २८ और २७ विमच्छिस्थानवास जीबोंका अतीत क्खीन स्पर्श या प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण कहा है वह देबोंकी सुख्यतासे कहा है क्योंकि तीन गतिके जीबोंमें देबोंका स्पर्श सुख्य है । तथा सब स्वेचप्रमाण स्पर्श त्रिबर्णोंकी सुख्यतासे कहा है । इसीप्रकार २४ और २१ विमच्छिस्थानवासोंका अतीत क्खीन स्पर्श भी देबोंकी सुख्यतासे कहा है । दोष गतियोंकी अपेक्षा २४ और २१ विमच्छिस्थानवाले जीबोंका स्पर्श इसमें गर्भित हो जाता है । दोष कम्य सुगम है ।

५ ३६३ आदेसकी अपेक्षा नरकगतियोंमें नारकियोंमें अहाईस सचाईस और छम्बीस विमच्छिस्थानवाले जीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? ओके असम्भवातवें भाग और कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । दोष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये । पहले नरकमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । दूसरे नरकसे ऊपर सातवें नरक तक अहाईस, सचाईस और छम्बीस विमच्छिस्थानवाले नारकियोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? ओके असम्भवातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । वज दूसरे नरककी अपेक्षा कुछ कम एक बटे चौदह भाग तीसरे नरककी अपेक्षा कुछ कम हो बटे चौदह भाग चौथे नरककी अपेक्षा कुछ कम तीन बटे चौदह भाग पांचवें नरककी अपेक्षा कुछ कम चारबटे चौदह भाग, छठे नरककी अपेक्षा कुछ कम पांच बटे चौदह भाग और सातवें नरककी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इन द्वितीयादि नरकोंमें चौबीस विमच्छिस्थानवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका या प्रत्येक पृथिवीके नारकियोंका जो वर्तमान और अतीत क्खीन स्पर्श है वही वहां २८, २७ और २६ विमच्छिस्थानकी अपेक्षा वर्तमान और अतीत क्खीन स्पर्श जानना चाहिये; क्योंकि इन विमच्छिस्थानवाले जीबोंकी नारकियोंमें गति और जागतिक प्रमाण अधिक है किन्तु २४ विमच्छिस्थानवाले नारकियोंमें यह बात नहीं है । चौबीस विमच्छिस्थानवाला अन्य गतिके जीब तो नारकियोंमें उत्पन्न होता ही नहीं । हां ऐसा नारकी जीब मनुष्योंमें अवश्य उत्पन्न होता है पर वनका प्रमाण अति कल्प है अतः २४ विमच्छिस्थानकी अपेक्षा सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक

§ ३६४. तिरिक्ख० अट्टावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिद ? लोग० असंखे० भागो । सव्वलोगो वा । छव्वीस० ओधमंगो । चउवीस० के० खे० फोसिद ? लोगस्स असखे० भागो, छ-चोदसभागा वा देखणा । सेसप०खेत्तमंगो । पंचिदिय-तिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज० पंचि०तिरि०जोणिणीसु अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० खे० फोसिद ? लोगस्स असखेभागो, सव्वलोगो वा । सेमप०तिरिक्खमंगो । णवरि, पंचि० तिरि० जोणिणीसु वावीस एकवीसविहत्तिया णत्थि । पंचि० तिरि० अपज्ज० अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीसवि० के खेत्तं फोसिद ? लोग० असखे० भागो, सव्वलोगो वा । एवं मणुसअपज्ज० पंचि० अपज्ज०-तमअपज्ज०-वादर पुढवि०-आउ०-तेउ०-पज्ज० वत्तव्व । मणुम-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस०-

नारकियोंका वर्तमान व अतीत कालीन स्पर्श लोकके असख्यातवें भागप्रमाण कहा है । कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्यभी नरकमें उत्पन्न होते हैं पर ऐसे जीव पहली पृथिवी तक ही जाते हैं । अत नारकियोंमें २२ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका वर्तमान और अतीत कालीन स्पर्श भी लोकके असख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है ।

§ ३६४ तिर्यचगतिमें तिर्यचोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्वलोकका स्पर्श किया है । छव्वीस विभक्तिस्थानवालोंका स्पर्श ओधके समान है । चौवीस विभक्तिस्थानवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा कुछ कम छह बटे चौदह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

पचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस और छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग तथा सर्वलोकक्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका स्पर्श सामान्यतिर्यचोंके समान है । इतनी विशेषता है कि पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थान नहीं पाये जाते हैं ।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यचोंके स्पर्शमें शेष पदसे २२ और २१ विभक्तिस्थानोंका ग्रहण करना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोंमें अट्टाईस, सत्ताईस और छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार लब्धपर्याप्त मनुष्य, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, त्रस लब्धपर्याप्त, बादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त और बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये ।

सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें अट्टाईस, सत्ताईस और

पंचि० तिरिक्खमंगो, बिसेसा (सेसवि०) खेचमंगो ।

३३६५ द्देषु अट्टावीस-सत्तावीस-छप्पीमवि० के० खेच फोसिद ? सोग० असंखे० मागा, अट्ट-णव-चोरसमागा वा देखणा । चठवीस-एक्कीस० के० खेच फोसिद ? लोगस्स असंखे० मागो, अट्ट-चोरसमागा वा देखणा । बावीस० के० खेच फोसिद ? लोग० असंखे० मागो । एवं सोदम्मीसाणदेवायं । मवण० बाण० धोदिसि० अट्टावीस-सत्तावीस-छप्पीस० के० खेच फोसिद ? लोग० असंखे० मागो, अट्ट-अट्ट-चोरसमागा वा देखणा । चठवीस० के० खेच फोसिद ? लोग० असंखे० मागो, अट्ट-अट्ट-चोरस० देखणा । सणक्कुमारादि ञ्च सहस्सारे चि बावीस० खेचमंगो । सेसपदाय छप्पीस विमत्तिस्वानवासे जीवोका स्पर्श पचेत्त्रिष तिपचोके समान है । संभव होय पचोका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

विशेषार्थ-२०, २७ और २६ विमत्तिस्वानवासे उक्त तीन प्रकारके मनुष्य सर्वत्र उत्पन्न होते हैं तथा उक्त विमत्तिस्वानवासे चारों गतिचोके जीव आकर इनमें उत्पन्न होते हैं अतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श पचेत्त्रिष तिपचोके समान बन जाता है । अब रही क्षेत्र विमत्तिस्वानवोकी अपेक्षा स्पर्शकी बात । सो कर्मसे २१, २२ और २१ विमत्तिस्वानवासे मनुष्य ही जन्म गतिमें आकर उत्पन्न होते हैं या देव और गरुड गतिके २१ और २१ विमत्तिस्वानवासे जीव आकर मनुष्योमें उत्पन्न होते हैं । पर ये सम्पगृह्णति होते हुए अतिस्वप्न होते हैं अतः इनका वर्तमान और अतीतकालीन स्पर्श छोडके असंख्यातवें मागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इनसे अतिरिक्त क्षेत्र विमत्ति स्वानवासे मनुष्योका स्पर्श छोडके असंख्यातवें मागप्रमाण ही प्राप्त होगा यह बात स्पष्ट है ।

३३६५ देवोमें अट्टाईस, सत्ताईस और छप्पीस विमत्तिस्वानवासे जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोडके असंख्यातवें माग क्षेत्रका तथा कुछ कम आठ बटे चौदह माग और कुछ कम नौ बटे चौदह माग क्षेत्रका स्पर्श किया है । चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्वानवासे देवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोडके असंख्यातवें माग तथा कुछ कम आठ बटे चौदह माग क्षेत्रका स्पर्श किया है । बाईस विमत्तिस्वानवासे देवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोडके असंख्यातवें माग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार सौषर्म और देशान्तरके देवोके स्पर्शका कथन करना चाहिये । मवनवासी, व्यन्तर और श्योतिषी देवोमें अट्टाईस सत्ताईस और छप्पीस विमत्तिस्वानवासे जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोडके असंख्यातवें माग तथा कुछ कम सादे तीन बटे चौदह माग कुछ कम आठ बटे चौदह माग और कुछ कम नौ बटे चौदह माग क्षेत्रका स्पर्श किया है । चौबीस विमत्तिस्वानवासे जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोडके असंख्यातवें माग तथा कुछ कम सादे तीन बटे चौदह माग और कुछ कम आठ बटे चौदह माग

लोग० असंखे० भागो, अट्ट-चोइस० देखणा । एवमाणद-पाणद-आरणच्चुद० ।
णवरि छ-चोइस० देखणा । उवरि खेत्तमंगो । एवं वेउव्वियमिस्स०-[आहार०]-
आहारमिस्स०-अवगद०-अकसाय०-मणपज्जव०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-
जहाक्खाद०-अमव्वसिद्धि० वत्तव्वं ।

§ ३६६. इंदियाणुवादेण एइंदिय० अट्टावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ?
लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । छव्वीसवि० के० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो ।
एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज० -बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्ज०-
सुहुमेइंदियअपज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढ० अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढ
वि० पज्ज०-सुहुमपुढ०-अपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ०-अपज्जत्त-सुहुमआउ०-
सुहुमआउ० पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ० अपज्जत्त-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ०
पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ० पज्जत्ता-

क्षेत्रका स्पर्श किया है । सानत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक बाईस विभक्तिस्थान-
वाले देवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा शेष पदोंका स्पर्श लोकके असख्यातवें भाग
तथा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग है । इसीप्रकार आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
कल्पमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहा कुछ कम आठ बटे चौदह
भागके स्थानमें कुछ कम छह बटे चौदह भाग स्पर्श कहना चाहिये । सोलह कल्पोंके ऊपर
नौ त्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । अपने अपने क्षेत्रके ममान ही वैक्रियिकमिश्र-
काययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्य-
यज्ञानी, सयत, सामाधिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापराय-
सयत, यथाख्यातसयत और अभव्य जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ३६६ इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थान-
वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवें भाग तथा सर्वलोक क्षेत्रका
स्पर्श किया है । छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्व-
लोकका स्पर्श किया है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय
अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक,
बादर पृथिवीकायिक, वादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक
पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, वादर जलकायिक, वादर जलकायिक
अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-
कायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-
कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, वादर वायुकायिक, वादर वायु-
कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त,

पञ्च-बभ्रुदिकाइय-बादरवणप्फदिकाइय-बादर बभ्रुदिके ०-पञ्चपापञ्च-सुहुमबभ्रु
 प्फदि०-सुहुमबभ्रुदिके० पञ्चपापञ्च-बादरबभ्रुदिकेपतेयसरीर-बादरवणप्फदि पतेय
 सरीर अपञ्च -बादरणिगोदपदिद्विद-बादरणिगोदपदिद्विद अपञ्च०-बिगोद०-बादरबिगोद
 तेसि पञ्चपापञ्च, सुहुमबिगोद०-सुहुमणिगोद पञ्चपापञ्च० बचस्व । बादरवाट
 पञ्च अट्टावीस-सत्तावीस० के० खेव फोसिद ? छोगस्त असंखे० मागो, सम्बलोगो
 वा । छम्बीस० के० खेव फोसिद ? छोग० संखे० मागो, सम्बलोगो वा । बादर
 वणप्फदिपतेयसरीरपञ्च०-बादर-बिगोदपदिद्विदपञ्च -सम्बबिगोदिदियाण तसअपञ्च
 मंगो । पंचिदिप-पचि०पञ्च०-तस-तसपञ्च० अट्टावीस-सत्तावीस-छम्बीस० के० खेचं
 फोसिद ? छोग० असंखे० मागो, अट्ट-चोरसमाग वा वेद्यथा, सम्बलोगो वा । सेसप०
 ओषमंगो । एवं पचमण०-पचत्रचि०-पुरिस०-चक्षु०-सञ्चि चि बचस्व ।

§ १६७. ओरालिय० अट्टावीस-सत्तावीस-छम्बीस-चटवीस० तिरिक्खोपमंगो । सेस
 पदाखे खेचमंगो । ओरालियमिस्स० अट्टावीस-सत्तावीस० के० खेव फोसिद ? छोग०

बनस्पतिकायिक, बादर बनस्पतिकायिक, बादर बनस्पतिकायिक पयांस, बादर बनस्पतिकायिक
 यिक अपयांस, सूक्ष्म बनस्पतिकायिक, सूक्ष्म बनस्पतिकायिक पयांस, सूक्ष्म बनस्पतिकायिक
 अपयांस, बादर बनस्पति प्रत्येकपटीर, बादर बनस्पति प्रत्येकपटीर अपयांस, बादर निगोद
 प्रतिष्ठित प्रत्येकपटीर, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकपटीर अपयांस, निगोद, बादर निगोद
 बादर निगोद पयांस बादर निगोद अपयांस, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पयांस और सूक्ष्म
 निगोद अपयांस जीवोंके कहना चाहिये । बादरबाहुकयिक पयांसकोमें अट्टाईस और सत्ता-
 ईस विमलित्स्वानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? छोकके असम्प्राप्तबे माग
 और सर्व छोक क्षेत्रका स्वर्ण किया है । तथा छम्बीस विमलित्स्वानवाले जीवोंने कितने
 क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? छोकके सम्प्राप्तबे माग और सर्व छोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्ण किया
 है । बादर बनस्पतिकायिक प्रत्येकपटीर पयांस, बादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकपटीर पयांस
 और सभी प्रकारके विकसन्त्रिष जीवोंका स्वर्ण छम्बपयांस त्रसोंके समान जानना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पयांस, त्रस और त्रसपयांसकोमें अट्टाईस, सत्ताईस और छम्बीस
 विमलित्स्वानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वर्ण किया है ? छोकके असम्प्राप्तबेमाग, त्रस
 पयांसके चौदह मागोंमेंसे कुछ कम जाठ माग तथा सर्व छोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्ण किया है ।
 सेस पदाखे अपेक्षा स्वर्ण ओषके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार पंचोमनोबोगी,
 पंचो बचमचोमि, पुरुबवेदी, चञ्चुरसमी और सैखी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १६७ औदारिककययोगियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, छम्बीस, और चौबीस विमलि-
 त्स्वानवाले स्वर्ण सामान्य त्रिषोंके समान है । तथा सेस पदाखे स्वर्ण क्षेत्रके समान है ।
 औदारिकमिन्नकययोगियोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विमलि त्स्वानवाले जीवोंने कितने

असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । छव्वीस० सव्वलोगो । सेस० खेत्तभंगो । कम्मइय० अट्टावीस सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असखेज्जदि भागो, सव्वलोगो वा । छव्वीस० केव० खेत्तं फोसिदं ? सव्वलोगो । चउवीस० लोगस्स असंखे० भागो, छ-चोइस० । सेसपदाणं खेत्तभंगो । एवमणाहारि० । वेउब्बिय० अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो; अट्ट-तेरह-चोइस-भाग वा देसूणा । चउवीस-एक्कवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट-चोइस० देसूणा । इत्थिवेदे पंचिदियभंगो । णवरि एक्कवीस० खेत्तभंगो । णउंस० अट्टावीस सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस० तिरिक्खोघभंगो । सेसपदाणं खेत्तभंगो । मदि-सुद-अण्णाण० अट्टावीस-सत्तावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे०-भागो, सव्वलोगो वा । छव्वीस० सव्वलोगो । एवं मिच्छादि०-असाण्णि० । विहंग०

क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । छव्वीस विभक्ति स्थानवाले औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंने सर्व लोकका स्पर्श किया है । तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

कार्मणकाययोगियोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विभक्ति स्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । छव्वीस विभक्तिस्थानवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्व लोकका स्पर्श किया है । चौबीस विभक्तिस्थानवालोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमें से छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार अनाहारक जीवोंके स्पर्शका कथन करना चाहिये ।

वैक्रियिक काययोगियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस और छव्वीस विभक्ति स्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवालोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

स्त्रीवेदियोंमें स्पर्श पचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इक्कीस विभक्तिस्थानको प्राप्त हुए स्त्रीवेदियोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । नपुसकवेदियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, छव्वीस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यै-चोंके समान जानना चाहिये । तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

मत्स्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस और सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा सर्वलोक प्रमाण

अद्वावीस-सत्तावीस-छत्वीस० के० स्वेत फोसिद ? लोम० असंखे० भागो, अठ-चौरस० देसणा, सम्बलोगो वा । आभिणि०-सुद० खोहि० अद्वावीस-चतवीस-एक-वीस० के स्वच फोसिद ? लोम असस० भागो, अठ-चौरस० देसणा । सेसप० खेचमगो । एवमोहिदस०-सम्मादिही पि वचन् । संजदासंबद० अद्वावीस-चतवीस० के० खेच फोसिद ? लोम० असखे० भागो, छ-चौरस० देसणा । सेसप० खेचमगो । असंबद० सम्बपदाजमोघमगो ।

३३६८ फिह-गील फाठ० अद्वावीस-सत्तावीस-छत्वीस० विरिक्त्वोघमगो । सेस-खेचमगो । गवार फाठसेसाप वावीस० क० खेच फोसिद ? लोम० असखे० भागो । वेठ० अद्वावीस-सत्तावीस-छत्वीस-चतवीस-एकवीस० सोहम्ममगो । तेवीस-वावीस० खेचमगो । पम्मसेसा० अद्वावीस-सत्तावीस-छत्वीस-चतवीस-एकवीस० सहसारमगो ।

क्षेत्रका स्पर्श किया है । छत्वीस विमक्तिस्वानवाले उक्त जीवोंने सर्व ओकका स्पर्श किया है । इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि और असही जीवोंका स्पर्श जानना चाहिये । विभंगस्थानियोंमें अद्वाईस, सत्ताईस और छत्वीस विमक्तिस्वानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? ओकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सर्व ओकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

मविद्यानी, सुवद्यानी और अवधिद्यानी जीवोंमें अद्वाईस, चौबीस और इक्कीस विमक्तिस्वानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? ओकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । उक्त जीवोंके शेष पक्षोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसीप्रकार अवधिद्वयनी और सम्बगदृष्टियोंके स्पर्श कदा चाहिये ।

सम्बतासंभवोंमें अद्वाईस और चौबीस विमक्तिस्वानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? ओकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पक्षोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । असंभवोंमें सभी पक्षोंका स्पर्श ओपके समान है ।

३३६८ कृष्ण, नील और कापोत क्षेत्र्यामें अद्वाईस, सत्ताईस और छत्वीस विमक्तिस्वानवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य विधियोंके समान है । तथा शेष पक्षोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि कापोत क्षेत्र्यामें बाईस विमक्तिस्वानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? ओकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

पीतक्षेत्र्यामें अद्वाईस, सत्ताईस, छत्वीस, चौबीस और इक्कीस विमक्तिस्वानवाले जीवोंका स्पर्श चौबनेकक्षके क्षेत्रोंके समान है । वेईस और बाईस विमक्तिस्वानवालों का स्पर्श क्षेत्रके समान है । पद्मक्षेत्र्यामें अद्वाईस, सत्ताईस, छत्वीस, चौबीस और इक्कीस

तेवीस-वावीस० खेत्तभंगो । सुक्कलेस्मा० अट्टावीस-मत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कवीस०
आणदभंगो । सेस० खेत्तभंगो ।

§ ३६८ वेदग० अट्टावीस-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो,
अट्टचोदस० देखणा । तेवीस-वावीस० खेत्तभंगो । खइयसम्माइट्ठी० एक्कवीस० के०
खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट-चोदस० देखणा । सेस० खेत्तभंगो ।
उवसम० अट्टावीस०-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे भागो, अट्ट-
चोदस० देखणा । मासणे अट्टावीस० के० खेत्तं फोसिदं ? , लोग० असंखे० भागो, अट्ट-
वारह-चोदस० देखणा । सम्मामिच्छाइट्ठी० अट्टावीस-चउवीस० के० खेत्तं फोसिदं ?
लोग० असंखे० भागो, अट्ट-चोदस० देखणा ।

एवं फोसणं समच्चं ।

§ ३७०. कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्टा-
विभक्तिस्थानवाल्लोका स्पर्शं सहस्रार स्वर्गके देवोंके स्पर्शके समान है । तेईस और बाईस
विभक्तिस्थानवाल्लोका स्पर्श क्षेत्रके समान है । शुक्कलेरयामें अट्टाईस, सत्ताईस, छव्वीस,
चौवीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाल्लोका स्पर्श आनत करूपके देवोंके स्पर्शके समान
है । तथा शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ ३६९. वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस और चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने
क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे
कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा तेईस और बाईस विभक्तिस्थान
वाल्लोका स्पर्श क्षेत्रके समान है । ज्ञायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने
कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागों
मेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंका स्पर्श क्षेत्रके समान
है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस और चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका
स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम
आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस विभक्तिस्थान-
वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श
किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें अट्टाईस और चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने
क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे
कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

इसप्रकार स्पर्शानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३७० कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

वीस-सत्ताबीस-छत्तीस-चत्तीस-एकवीस० केबचिरं कालादो ह्येति ? सञ्चदा । तेवीस
 बाबीस-तेरस-एकदश-चतु-तिष्णि-दोष्णि एक० क ? सहस्रशुक्र० अतोमुद्रुच । बारस०
 के० ? अह एगसमओ, उह० अतोमुद्रुच । पच० के० ? अह० वे भाबलिपाओ
 विसमऊआओ, उह० अतोमु । एव पचिदिय-पचि पञ्ज०-तस-तसपञ्ज०-चकसु०
 अचकसु०-मबासिदि०-सणि० आहारि ति वचस्यं ।

॥३७१ आदेशेण चेरदपसु बाबीस० के० ? अह० एगसमओ, उह० अतोमुद्रुच ।

इनमेंसे ओपकी अपेक्षा अट्ठाईस, सत्ताईस, छत्तीस चौबीस और इत्तीस विमलिस्थान-
 वाले बीबोंका कितना काळ है ? सब काळ है । तेईस, बाईस, तेरह म्यारह, चार, तीन
 दो और एक विमलिस्थानवालोंका कितना काळ है ? अघम्य और अकृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्त
 है । बारह विमलिस्थानवालोंका कितना काळ है ? अघम्यकाळ एक समय और अकृष्ट काळ
 अन्तर्मुहूर्त है । पांच विमलिस्थानवालोंका कितना काळ है ? अघम्य काळ दो समय कम
 दो आवळी और अकृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिच, पचेन्द्रिच पचास, त्रस,
 त्रसपचास, चतुर्दशी, अचतुर्दशी, मय्य, सत्री और आहारक जीबोंके कइना चाहिये ।

विशेषार्थ—बड़ा माना जीबोंकी अपेक्षा काळका निर्देश किया है । अतः ओपसे २८,
 २७, २६, २५, और २१ विमलिस्थानवाले बीबोंका काळ सर्वदा बन जाता है, क्योंकि
 एक विमलिस्थानवाले जीब ओकमें सर्वदा पाये जाते हैं । इनके अतिरिक्त छेब विमलिस्थान-
 न सात्तर हैं कमी होते हैं और कमी नहीं होते । जब होते हैं तो कमी इनमें एक जीब
 और कमी माना जीब पाये जाते हैं । फिर भी हर शाकतमें २३, २२, १३, ११, ४, ३, २ और
 १ विमलिस्थानोंका अघम्य और अकृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि जगा
 तार कमसे अनेक जीबोंके एक विमलिस्थानोंको प्राप्त होनापर भी प्रत्येक विमलिस्थानमें
 जगातार रहनेका काळका योग अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता है । जो नर्तुसक बेरी एक
 वा अनेक जीब एक साथ अघक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके बारह विमलिस्थानका अघम्य
 काळ एक समय प्राप्त होता है । तथा जो जीबेरी और पुढबेरी एक वा अनेक जीब एक
 साथ वा कमसे अघक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके बारह विमलिस्थानका काळ अन्तर्मुहूर्त ही
 प्राप्त होता है । अतः बारह विमलिस्थानका अकृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कहा है । एक जीबकी
 अपेक्षा पांच विमलिस्थानका काळ दो समय कम दो आवळी प्रमात्त है । जब पचि कम
 से अनेक जीब अघक श्रेणीपर चढ़ते हैं तो पांच विमलिस्थानका काळ कई आवळिप्रमात्त
 हो जाता है, अतः पांच विमलिस्थानका अघम्य काळ दो समय कम दो आवळि और
 अकृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । ऊपर जितनी मार्गणार्थ गिवाई हैं उनमें यह ओपम-
 रूपका बटिच हो जाती है अतः इनके कवनओ ओपके समान कहा है ।

॥३७१ आदेशकी अपेक्षा नारकिओमें बाईस विमलिस्थानवालोंका कितना काळ है ?

सेसपदानं मन्वद्वा । एवं पृथमाए तिरिक्क्य-पार्चि० तिरिक्क्य-पार्चि० तिग्गि० पञ्ज०-देवा सोहम्मीसाणादि जाव सव्यष्टे ति वत्तव्वं । विद्यादि जाव सत्तमि ति मन्वपदानं मन्वद्वा । एवं पार्चि० तिरि० अपञ्ज०-भवण०-वाण०-जोदिमि०-पार्चि० तिरि० जोण्णिणी-सव्यएइंदिय-सव्यत्रिगार्लिंदिय-पार्चि० अपञ्ज०-पचकाय-वाटर मुहुम पञ्जत्तापञ्जत्त-तम-अपञ्जत्त-वेउव्विय०-मदि-सुदअण्णाण-विहग०-मिच्छादि०-असण्णि ति वत्तव्व ।

§ ३७२. मणुम० ओघभगो । एणं मणुमपञ्ज० । णवरि वात्रीम० जह० एग समओ, उक्क० अतोमु० । मणुस्मिणी० ओघभगो । णवरि वाग्म० जहण्णुक्क०

जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । शेष पदोका मर्म काल है । इसीप्रकार पहले नरकमे तथा तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, देव और सौधर्म-ऐशानसे लेकर सर्वार्थ सिद्धि तकके देवोंके कहना चाहिये । दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तकके नारकियोंके सभी सभय पदोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, वाटर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे पाचो स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, वक्रियिक काययोगी, मलयज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभग-ज्ञानी, सिध्यादृष्टि और असज्ञी जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके भी २२ विभक्तिस्थान होता है और इनके सम्बन्धमें ऐसा नियम है कि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके कालके चार भाग करे । उनमेंसे यदि पहले भागमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि मरता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है, दूसरे भागमें यदि मरता है तो देव और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, तीसरे भागमें यदि मरता है तो देव, मनुष्य और तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है तथा चौथे भागमें यदि मरता है तो चारों गतिके जीवोंमें उत्पन्न होता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि अन्तिम भागमें मरा हुआ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है । अतः सामान्य नारकियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धिके देवों तक उक्त मार्गणाओंमें २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । इसमें शेष २८ २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा है, क्योंकि ये विभक्तिस्थानवाले जीव उक्त मार्गणाओंमें सर्वदा पाये जाते हैं । इसी प्रकार दूसरे नरकसे लेकर असज्ञी तक जो ऊपर मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी २८, २७, २६ और २४ विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा जानना चाहिये । यहा शेष विभक्तिस्थान सम्भव नहीं हैं ।

§ ३७२ मनुष्योंमें ओघके समान काल कहना चाहिये । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्तकोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बाईस विभक्तिस्थानवाले पर्याप्त मनुष्योंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । स्त्रीवेदी मनुष्योंका काल ओघके समान

अतोमु० । मनुस्सअपज्ज० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस० के० ? अह० एगसमओ,
उच्च० पल्लिदोवमस्स असखेत्तादि भागो

१३७३ योगाणुवादन पचमण०-पचवाचि० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस-चठवीस-
एकवीस० के० ? सम्बद्धा । तेवीस-वावीस-चेरस-वाग्म एक्कारस-पच-चट्टु तिण्णि
दोण्णि एगविइत्ति के० ? अह० एगममओ, उच्च० अतोमु० । एव कायओपी,
ओरासि० । ओरासिपमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-छब्बीस० के० ? सम्बद्धा । चठवीस
एकवीस० के ? अहण्युक्क० अतोमुहुत्त । वावीस० केवधिरे० ? अह० एगसमओ,

अह्ना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बारह विमक्तिस्थानका अपत्य और अकृष्ट का
अन्तर्मुहूर्त है । सम्बन्धपूर्णक मनुष्योंमें अट्ठाईस सत्ताईस और छब्बीस विमक्तिस्थानवालोंका
कितना काळ है ? अपत्य काळ एक समय और अकृष्टकाळ अपत्यके असंज्ञावर्षे भाग प्रमाण है ।

विशेषार्थ—कृत्कृत्तवेदक सम्बन्धपूर्वके मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर यदि
कृत्कृत्तवेदक सम्बन्धके कालमें एक समय शेष रह जाता है तो उन पर्याप्त मनुष्योंके
२२ विमक्तिस्थानका अपत्यकाळ एक समय प्राप्त होता है । तथा अकृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्त
स्पष्ट ही है । जो जीव जीविके उत्पत्तसे अकृष्टमेपीपर चढ़ते हैं उनके बारह विमक्ति-
स्थानका अन्तर्मुहूर्तसे कम नहीं होता है अतः जीविके मनुष्योंके बारह विमक्ति-
स्थानका अपत्य और अकृष्टकाळ अन्तर्मुहूर्त कहा है । अट्ठाईस और सत्ताईस विमक्ति-
स्थानोंके अन्तर्में एक समय शेष रहतेहुए जो नाना जीव एक साथ सम्बन्धपूर्णकोंमें
उत्पन्न हो जाते हैं उनके २८ और २० विमक्तिस्थानका अपत्यकाळ एक समय पाया
जाता है । तथा जिन २८ विमक्तिस्थानवाले माना जीवोंके मरणमें एक समय शेष रहने
पर २७ विमक्तिस्थान आ जाता है उनके २७ विमक्तिस्थानका अपत्यकाळ एक समय इस
प्रकार भी प्राप्त हो जाता है । तथा २७ विमक्तिस्थानवाले जिन नाना जीवोंके मरणमें
एक समय शेष रहनेपर २६ विमक्तिस्थान आ जाता है उनके २६ विमक्तिस्थानका
अपत्यकाळ एक समय प्राप्त होता है । तथा शेष काळ सुगम है । अतः इसका सुझसा
नहीं किया ।

१३७४ योगमार्मणाक अनुवाचसे पांचों मनोबोगी और पांचो वचनबोगी जीवोंमें
अट्ठाईस सत्ताईस छब्बीस चौबीस और इक्कीस विमक्तिस्थानवाले जीवोंका काळ कितना
है ? सर्वकाळ है । तेईस, बाईस, सैष्ट, चार, ग्यारह पांच चार तीस दो और एक
विमक्तिस्थानवालोंका कितना काळ है ? अपत्य काळ एक समय और अकृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त
है । इसीकार कायबोगी और औदारिक कायबोगी जीवोंका काळ जानना चाहिये ।
औदारिकमिन्नकायबोगी जीवोंमें अट्ठाईस सत्ताईस और छब्बीस विमक्तिस्थानवाले जीवोंका
अन्तर् कितना है ? सर्वकाळ है । चौबीस और इक्कीस विमक्तिस्थानवाले जीवोंका काळ

उक० अंतोमु० । वेउवियमिस्स० अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस० के० ? जह० एग-समओ, उक० पलिदो० असंखे० भागो । चउवीस० के० ? जह० अतोमु०, उक० पलिदो० असंखे० भागो । वावीस० जह० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्त । एकवीस० जहणुक्क० अंतोमु० । आहार० सव्वपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक० अंतो-मुहुत्त । आहारमिस्स० जहणुक्क० अंतोमुहुत्त । कम्मइय० अट्टावीस-सत्तावीस-चउ-वीस० के० ? जह० एगसमओ, उक० आवलि० असंखे० भागो । छव्वीस० के० ? सव्वद्धा । वावीस-एकवीस० जह० एगसमओ, उक० संखेजा समया ।

कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस, और छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारककाययोगियोंमें संभव सर्व विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिश्रकाययोगियोंमें संभव सभी स्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । फर्मणकाययोगियोंमें अट्टाईस, सत्ताईस और चौबीस विभक्ति स्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असं-ख्यातवें भागप्रमाण है । छव्वीस विभक्ति स्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

विशेषार्थ-२८, २७, २६, २४ और २१ विभक्तिस्थान सर्वदा पाये जाते हैं और पाचों मनोयोगी तथा पाचों वचनयोगी जीव भी सर्वदा होते हैं । अतः पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें उक्त विभक्तिस्थानोंका काल सर्वदा कहा । तथा २३, २२, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ विभक्तिस्थान सर्वदा नहीं होते और इन विभक्तिस्थान वाले जीवोंके योग बदलते रहते हैं । अतः पाचों मनोयोगी और पाचों वचनयोगी जीवोंमें उक्त विभक्तिस्थानोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । इसी प्रकार काययोगमें और औदारिक काययोगमें भी घटित कर लेना चाहिये । औदारिक मिश्रकाययोगमें २८, २७, और २६ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका सर्वकाल होता है यह सुगम है । किन्तु २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यात ही होते हैं अत इनका

१३७४ वेदाणुवादेण इत्येवेद० अद्वावीस-सत्तावीस-छन्वीस-पठवीस-एकवीस०
के० ? सम्बद्धा । तेवीस-बावीस-तेरस-बारस० अहण्युक्क० अंतोसु० । एव गणुस० ।

अथ्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त ही होय । तथा इतकृत्यवेदक सम्पगृह्यियोंके मरकर
औशरिकमित्र काययोगी होनेपर यदि इतकृत्यवेदके काळमें एक समय येय रह जाता
है तो इनके २१ विमक्तिस्थानका अथ्य काळ एक समय प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्ट
काळ अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है । जिसमकर छन्व्यपर्याप्तक मनुष्योंके २८, २७ और
२६ विमक्तिस्थानोंका अथ्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ पर्यके असक्यातवें
मागप्रमाण पठित करके छित्त जाये हैं उसीप्रकार वैक्रियिकमित्रकाययोगी जीवोंके पठित
कर लेना चाहिये । २४ विमक्तिस्थानवाले जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाळ तक और अगाधार
पर्यके असक्यातवें माग काळतक वैक्रियिक मित्रकाययोगी हो सकते हैं, अतः वैक्रियिक-
मित्रकाययोगी २४ विमक्तिस्थानका अथ्य काळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काळ पर्यके
असक्यातवें मागप्रमाण कहा । तथा वैक्रियिकमित्रकाययोगी २२ विमक्तिस्थानका अथ्य
और उत्कृष्ट काळ औशरिकमित्रकाययोगीके समान पठित कर लेना चाहिये । वैक्रियिक-
मित्रकाययोगी २१ विमक्तिस्थानका अथ्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त बतलानेका कारण
यह है कि २१ विमक्तिस्थानवाले वैक्रियिकमित्रकाययोगी जीवोंका प्रमाण संख्याय है ।
अहारककाययोगीका अथ्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें
सम्भव सब पक्षोंका अथ्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कहा है । अहार-
कमित्रकाययोगीका अथ्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सम्भव सब पक्षों-
का अथ्य और उत्कृष्ट काळ अन्तर्मुहूर्त कहा । यद्यपि कर्मजकाययोगीका काळ सर्वथा है तो
भी २८ २७ और २४ विमक्तिस्थानवाले जीव मरकर निरन्तर कर्मजकाययोगीकी मूर्ति प्राप्त
होते हैं अतः इनका अथ्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ आबलीके असक्यातवें
मागप्रमाण बन जाता है । तथा २१ विमक्तिस्थानवाले जीव निरन्तर कर्मजकाययोगीको
प्राप्त होते रहते हैं अतः उनका अर्थ सर्वथा कहा है । तथा जो २२ और २१ विमक्ति-
स्थानवाले जीव एक विमहसे अन्व गतिमें लयन्न होते हैं या जिनके २२ विमक्तिस्थानके
काळमें एक समय छेप रहनेपर कर्मजकाययोगी प्राप्त होता है और इसके बाद व्यवधान
पद जाता है इनके २२ और २१ विमक्तिस्थानका अथ्य काळ एक समय पाया जाता
है । तथा जो २२ और २१ विमक्तिस्थानवाले जीव निरन्तर कर्मजकाययोगी होते रहते
हैं इनके २२ और २१ विमक्तिस्थानका उत्कृष्ट काळ संख्याय समय पाया जाता है,
क्योंकि ऐसे जीव सक्यात ही होते हैं ।

१३७४ वेद मार्गणाके अनुवादसे जीवैरमें अद्वाईस सत्ताईस, छन्वीस, चौबीस और
एकवीस विमक्तिस्थानवाले जीवोंका काळ कितना है ? सर्व अत्र है । तेईस, बाईस, तेरह

णवरि० वावीस० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । वारस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेजा समया । पुरिस० अट्टावीस-सत्तावीस-छव्वीस-चउवीस-एक्कीस० के० ? संव्वद्धा । तेवीस-तेरस-वारस-एक्कारस० जहणुक्क० अंतोमु० । वावीस० जह० एगसमओ, उक्क० अतोमुहुत्तं । पंचवि० के० ? जह० एगसमओ उक्क० संखेजा समया । अवगद० चउवीस-एक्कीस० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एक्कारस-चदु-तिण्णिण-दोण्णिण-एयविह० के० ? जहणुक्क० अंतोमु० । पंचवि० जह० वे आवलियाओ विसमऊणाओ, उक्क० अंतोमु० ।

और बारह विभक्तिस्थानवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बाईस विभक्तिस्थानवाले नपुंसकवेदी जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा बारह विभक्तिस्थानवाले नपुंसकवेदियोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होता है । पुरुषवेदमें अट्टाईस, सत्ताईस, छव्वीस, चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तेईस, तेरह, बारह, और ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पांच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अपगतवेदमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । ग्यारह, चार, तीन दो और एक विभक्तिस्थानवाले अपगतवेदी जीवोंका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पाच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विश्वार्थ—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके मर कर नारकी होनेपर यदि कृतकृत्यवेदके कालमें एक समय शेष रहता है तो नपुंसकवेदमें २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा नपुंसकवेदी नाना जीवोंके एक साथ १२ विभक्तिस्थानको प्राप्त होनेपर यदि अन्तर पड़ जाता है तो १२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है और यदि अन्तर नहीं पड़ता है तो १२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल संख्यात समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार पुरुषवेदियोंके पाच विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय घटित कर लेना चाहिये । तथा पुरुषवेदियोंके २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय भी नपुंसकवेदियोंके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु ऐसे जीवोंको नारकियोंमें नहीं उत्पन्न कराना चाहिये । जो एक समय तक अपगतवेदी रहकर मर जाते हैं उनके २४ और २१ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक

१३७५ कसापाशुवादेण कोषक० अट्ठावीस-सत्तावीस-द्वन्वीस-चत्तवीस-एकवीस० के० । सम्बद्धा । तेवीस-वावीस० के० । अह० एयसमजो, उक्क अतोसु० । तेरस बारस-एकारस पच-चहु० ओपमगो । एव माय०, णवरि तिण्ह विहपिया अत्तिव । एव माय०, णवरि दोण्ह विहपिया अत्तिव । एव लोम०, णवरि एय० अत्तिव । माय-माया-लोमकसाईसु अहाकम चहुण्ह तिण्ह दोण्ह विह० अह० दोजावलि० इ-समज-पामो । अकसा० चटवीस-एकवीस० के० । अह एयसमजो, उक्क अतोसु० । एवं अहाक्साद० । सुद्धमसांपराइय० एव वेव । णवरि एयवि० अहणुक्क० अतोसु० ।

समय प्राप्त होता है । तथा जो अपगक्षेत्री निरन्तर पांच विमत्तिस्थानवाले होते रहते हैं उनके पांच विमत्तिस्थानका एकत्र एक अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । यहाँ निरन्तर होनेका तात्पर्य यह है कि नाना बीज पांच विमत्तिस्थानको प्राप्त हुए और उनके पांच विमत्तिस्थानके फलके समाप्त होनेके अन्तिम समयमें अन्य नाना बीज पांच विमत्तिस्थानको प्राप्त हो गये । इसी प्रकार धीसरी, चौबी आदि बार भी जानना । किन्तु ऐसे बार अति लक्ष्य ही होते हैं अतः एकत्र एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता । श्रेय कथन सुगम है ।

१३७६. कषायमार्यपाके अनुवासे श्रेय कषायमें अट्ठाईस, सत्ताईस द्वन्वीस, चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्थानवालोंका एक कितना है ? सर्व काठ है । तेईस और चाईस विमत्तिस्थानवाले बीजोंका एक कितना है ? अपम्य काठ एक समय और एकत्र एक अन्तर्मुहूर्त है । तेरह, बारह, ग्यारह, पांच और चार विमत्तिस्थानवाले बीजोंका एक ओषके समान है । इसीप्रकार मान कषायमें आमवा चाहिये । इतनी विशेषता है कि मान कषायमें तीन विमत्तिस्थानवाले बीज भी पाये जाते हैं । इसीप्रकार मायाकषायमें आमना चाहिये । इतनी विशेषता है कि माया कषायमें दो विमत्तिस्थानवाले भी बीज पाये जाते हैं । इसी प्रकार लोमकषायमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वहाँ एक विमत्तिस्थानवाले भी बीज पाये जाते हैं । मान, माया और लोमकषायी बीजोंमें तथा क्रमसे चार, तीन और दो विमत्तिस्थानोंका अपम्य काठ दो समय कम हो आवली है । अकषायी बीजोंमें चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्थानवाले बीजोंका एक कितना है ? अम्य काठ एक समय और एकत्र एक अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार वषाकषाय संघर्षोंमें जानना चाहिये । तथा इसीप्रकार सूक्ष्मसांपद्य सक्तोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सूक्ष्म सांपदाधिक सक्तोंमें एक विमत्तिस्थानवाले बीजोंका अपम्य और एकत्र एक अन्तर्मुहूर्त होता है ।

विशेषार्थ-श्रेय कषायमें जो २८, २७, २६, २४ और २१ विमत्तिस्थानोंका एक सभेदा वषाकषाय सो इसका कारण यह है कि श्रेय कषायवाले बीज और उक्त विमत्तिस्थानवाले बीज सभेदा पाये जाते हैं, अतः श्रेय कषायमें एक विमत्तिस्थानोंका सभेदा

§ ३७६. आभिणि०-सुद०-ओहि० अट्टावीस-चउवीस-एकवीस० केव० ? सखद्धा ।
 सेसप० ओघमंगो । एवं मणपज्जव०-संजद०-सामाइय-छेदोव०-संजदासंजद०-ओहि-
 दंम०-सम्मादिट्ठी ति वत्तव्वं । णवरि मणपज्जव० बारस० जह० एगसमओ णत्थि ।
 पाया जाना असम्भव नहीं है । २३ और २२ विभक्तिस्थानवाले जो नाना जीव एक
 समय तक क्रोध कषायमें रहे और दूसरे समयमें उनकी कषाय बदल गई उन क्रोध कषा-
 यवाले जीवोंके २३ और २२ विभक्तिस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है ।
 तथा क्रोध कषायमें २३ और २२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है ।
 इसी प्रकार क्रोध कषायमें १३, १२, ११, ५ और ४ विभक्तिस्थानोंका काल जो ओघके
 समान बतलाया है सो इसका यह अभिप्राय है कि जो क्रोधके उदयके साथ क्षपक
 श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके क्रोध कषायमें उक्त विभक्तिस्थानोंका काल ओघके समान बन
 जाता है । इसी प्रकार मान, माया और लोभ कषायमें विभक्तिस्थानोंका काल जानना
 चाहिये । किन्तु मान कषायमें तीन विभक्तिस्थान, माया कषायमें दो विभक्तिस्थान और
 लोभ कषायमें एक विभक्तिस्थान भी होता है जिनका उत्कृष्ट काल ओघके समान बन
 जाता है । किन्तु जो जीव क्रोध कषायके उदयके साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़े हैं, उनके मान
 कषायमें चार विभक्तिस्थानका, माया कषायमें तीन विभक्तिस्थानका और लोभ कषायमें
 दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होगा । जो मानके
 उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़े हैं उनके माया कषायमें तीन विभक्तिस्थानका और लोभ
 कषायमें दो विभक्तिस्थानका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है ।
 तथा जो जीव मायाके उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़े हैं उनके लोभ कषायमें दो विभक्तिस्था-
 नका जघन्य काल दो समय कम दो आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । जो जीव एक समयतक
 अकषायी होकर दूसरे समयमें मर जाते हैं उनके २१ और २४ विभक्तिस्थानका जघन्य
 काल एक समय प्राप्त होता है । तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त स्पष्ट ही है । अकषायी
 जीवोंके समान यथाख्यात सयत और सूक्ष्म साम्पराय संयत जीवोंके जानना । किन्तु
 सूक्ष्म साम्पराय सयतोंके एक विभक्तिस्थान भी होता है जिसका काल ओघके समान
 जानना चाहिये ।

§ ३७६ मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस, चौबीस और इक्कीस
 विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । शेष पदोंका काल ओघके
 समान है । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, सयता-
 सयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टियोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मनःपर्य-
 यज्ञानियोंमें चारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय नहीं है ।

विशेषार्थ—जो जीव वे उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़ते हैं उनके चारह

परिहार० सेवीस-बाबीस० के० ? अहण्डु० अंतोमु० । सेसपदानं सम्बद्धा । असम्बद्ध०
 अह्वावीस-सचावीस-छम्बीस-चउवीस-एकवीस० के० ? सम्बद्धा । सेवीस-बाबीस०
 अहण्डु० अंतोमु० । षवरि बाबीस० अह० एगसमओ । एव फिण्ड-बील०, षवरि
 सेवीस-बाबीस० गत्तिव । कउ० असंबद्धमओ । षवरि सेवीसं गत्तिव । तेउ-यम्म०
 अह्वावीस-सचावीस-छम्बीस-चउवीस-एकवीस० के० ? सम्बद्धा । सेवीस-बाबीस० अह०
 अंतोमु० एगसमओ, उख० अंतोमु० । मुक्कलेस्सा० मयुसमंगो । षवरि बाबीस०
 अह० एगसमओ ।

बिमक्तिस्थानका अपत्यकाळ एक समय होता है पर मनःपर्यवधानी जीबोंके मनुष्यकेव और
 जीबोंके उद्यम नहीं पाया जाता । अतः मनः पर्यवधानमें बारह बिमक्तिस्थानके अपत्यकाळ
 एक समयका नियम किया है । श्रेय कथन सुगम है ।

परिहारविद्युत्सप्तधर्मोंमें तेईस और बाईस बिमक्ति स्थानवाले जीबोंका काल
 कितना है ? अपत्य और उच्छ्रयकाळ अन्तर्मुहूर्त है । तथा श्रेय पदोंका सर्वकाळ है ।
 असंपत्तोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस, छम्बीस, चौबीस और इक्कीस बिमक्तिस्थान वाले जीबोंका
 काल कितना है ? सर्व काळ है । तथा तेईस और बाईस बिमक्तिस्थानवालोंका अपत्य
 और उच्छ्रयकाळ अन्तर्मुहूर्त है । इतनी विशेषता है कि बाईस बिमक्तिस्थानवालोंका अपत्य
 काळ एक समय है । इसीप्रकार कृष्ण और मीळ छेरयावाले जीबोंके ज्ञानमा चाहिये ।
 इतनी विशेषता है कि इन दोनों छेरयावाले जीबोंके तेईस और बाईस बिमक्तिस्थान नहीं
 पाये जाते हैं । कापोठ छेरयावाले जीबोंके बिमक्तिस्थानोंकी अपेक्षा काळ असंपत्तोंके काळके
 समान ज्ञानमा चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके तेईस बिमक्तिस्थान नहीं पाया
 जाता है । पीठ और पद्य छेरयावाले जीबोंमें अट्ठाईस, सत्ताईस छम्बीस चौबीस और
 इक्कीस बिमक्तिस्थानवाले जीबोंका काल कितना है ? सर्व काळ है । तथा तेईस और
 बाईस बिमक्तिस्थानवाले जीबोंका अपत्यकाळ क्रमशः अन्तर्मुहूर्त और एक समय है ।
 तथा उच्छ्रय काळ अन्तर्मुहूर्त है । शुक्लछेरयावाले जीबोंके मनुष्योंके समान ज्ञानमा
 चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें बाईस बिमक्तिस्थानवाले जीबोंका अपत्यकाळ
 एक समय है ।

विशेषार्थ—बाईस बिमक्तिस्थानवाले सबध या संघटासयत जीबोंके मर कर असंपत्त
 होने पर यदि उनके बाईस बिमक्तिस्थानका काल एक समय श्रेय रहता है तो असंपत्तोंके
 बाईस बिमक्तिस्थानका अपत्यकाळ एक समय प्राप्त होता है । शुभछेरयावाले जीबोंके ही
 वरीनमोहनीकधी क्षणमा होती है । जब यदि कुवद्वन्द्ववेदक सम्पन्मृष्टि हो जानपर छेरयामें
 परिवर्तन हो तो अरब विशेषसे कापोठ छेरया एक प्राप्त हो सकती है अतः कृष्ण और
 मीळ छेरयामें २१ और २२ बिमक्तिस्थान तथा कापोठ छेरयामें २३ बिमक्तिस्थान नहीं

§ ३७७. अभव्वसिद्धि० छव्वीस० के० ? सव्वद्धा । वेदय० अट्टावीस-चउवीस० के० ? सव्वद्धा । तेवीस-आवीस० ओघभंगो । खइय० एक्कवीस० के० ? सव्वद्धा । सेसप० ओघभंगो । उवमम० अट्टावीस० के० ? जह० अंतोमु० उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । चउवीस० के० ? जह० अंतोमु० उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । सासण० अट्टावीस० जह० एगसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । सम्मामि० अट्टावीस-चउवीस० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । अणाहारिय० कम्मइयभंगो ।

एव कालो समत्तो !

§ ३७८. अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अट्टा-
होता यह सिद्ध हुआ । शेष कथन सुगम है ।

§ ३७७. अभव्वयोमें छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्व काल है । तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले वेदक सम्यग्दृष्टियोंका काल ओघके समान है । ज्ञायिक सम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदोंका काल ओघके समान है । उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग है । सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अट्टाईस और चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अनाहारक जीवोंमें कार्मणकाययोगिथोंके समान कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उपशम सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये तीन सान्तर मार्गणाएं हैं अत इनमें अपने अपने विभक्तिस्थानोंका यथायोग्य जघन्यकाल प्राप्त हो जाता है । तथा उत्कृष्टकाल जो पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा सो इसका कारण यह है कि उक्त मार्गणास्थानवाले जीव निरन्तर इतने काल तक होते रहते हैं । अतः इनमें सम्भव विभक्तिस्थानोंका काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण बन जाता है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३७८ अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश

बीम-मच्छाबीम-सम्बीस-चउबीम-एकबीम० अतरं केवधिं कालादो होदि ? णरिष
अतरं । तेबीस-बाबीस-तेरस बारम-एकारम-यंच-अचारि-तिणिज्-दोणिण-एगविहचिया
णमंतग केव० ? अह० एगसमओ, उक्क० झम्मासा । णवरि पचवि० वास सादिरेय ।
एव मणुम-मणुसपज्ज०-पचिदिप-पचि० पज्ज०-उस-ससपज्ज०-पंचमण०-पचबवि०-काप-
ओगि ओरासिय-ओम०-अकसु० अचकसु०-मवसिदि०-साणि जाहारि चि वत्तव्व ।
मणुसिणीसु अतरमेवं केव । णवरि उक्क वामपुपत्तं ।

निर्देश । ठमनेसे ओषनिर्देशकी अपेक्षा अट्ठाईस मच्छाईस, सम्बीस बीबीस और २१
बिमच्छिस्थानवाले जीवोंका कितना अन्तरकाळ है ? इनका अन्तरकाळ मही है । ये अट्ठा-
ईस आदि अत्युत्त बिमच्छिस्थानवाले जीव सर्वथा पाये जाते हैं । ठेईस, बाईस, तेरह,
बारह, ग्यारह, पांच बार, तीन दो और एक बिमच्छिस्थानवाले जीवोंका कितना अन्तर
काळ है ? अथवा अन्तरकाळ एक समय और अल्प अंतरकाळ कुछ माह है । इतनी
विशेषता है कि पांच बिमच्छिस्थानका अल्प अन्तरकाळ साधिक एक वर्ष है । इसी प्रकार
सामान्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्य पंचेन्द्रिय पचेन्द्रिय पर्याप्त व्रत व्रतपर्याप्त पांचों ममो
योगी, पांचों बचनयोगी, कथयोगी औरारिककथयोगी छोम कथापवाले अक्षुरक्षमी,
अचक्षुरक्षमी मध्य मही और आहारक जीवोंके रहना चाहिये । अग्निरी मनुष्योंमें भी
इसी प्रकार अन्तर होता है । इतनी विशेषता है कि ठमने अल्प अन्तर छह माहके स्थानमें
वर्ष पूरकत्व होता है ।

विशेषार्थ—२०, २७, २६, २४ और २१ बिमच्छिस्थानवाले जीव सर्वथा पाये
जाते हैं अथ इन बिमच्छिस्थानोंका ओषसे अन्तर मही प्राप्त होता है । जब जाना जीव २३,
२२, १३, १२, ११, ९, ४, ३, २ और १ बिमच्छिस्थानवाले हो जाते हैं और एक
समय बार दूसरे जाना जीव इन बिमच्छिस्थानोंको प्राप्त होते हैं तब तब बिमच्छिस्थानोंका
अथवा अन्तरकाळ एक समय प्राप्त होता है । तथा जब छह माह तक कोई जीव न तो
दर्शनमोहनीबन्धी क्षपणा करते हैं और न क्षपण भेजीपर चढ़ते हैं तब तब २२ आदि
बिमच्छिस्थानोंका अल्प अन्तरकाळ छह माह प्राप्त होता है । किन्तु पांच बिमच्छिस्थानका
अल्प अन्तरकाळ साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है क्योंकि पुरुषवेद और मनुसकवेदके
अथवा क्षपणभेजीपर चढ़े हुए जीवोंके पांच बिमच्छिस्थान होता है और पुरुषवेदके
अथवा किसी जीवके क्षपण भेजीपर चढ़नेका अल्प अन्तर साधिक एक वर्ष है तथा
मनुसकवेदके अथवा क्षपणभेजीपर चढ़नेका अल्प अन्तर अपूर्णकत्व है । अतः कभी ऐसा
समय आता है जब साधिक एक वर्ष तक किसीके पांच बिमच्छिस्थान मही होता है ।
किन्तु तब अग्निदेके अथवा ही जीव क्षपणभेजीपर चढ़ते हैं । ऊपर और अितनी मार्गानार्थ
गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है । अतः इन मार्गानामोंमें तब सब बिम

§ ३७६. आदेसेण गेरइएसु वावीस० अंतरं के० ? जह० एगममओ, उक्क० वास-पुधत्तं । सेसप० णत्थि अतर । एव पढमाए पुढवीए, तिरिक्ख-पच्चिं० तिरिक्ख-पच्चिं० तिरि०पज्जत्त-देव-सोहम्मादि जाव सव्वह -काउलेस्सिया त्ति वत्तव्व । णवरि सव्वहे वावीस० उक्क० पलिदो० असखे० भागो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्व-पदाण णत्थि अंतर । एवं पच्चिं० तिरि० जोणिणी-पच्चिं० तिरि० अपज्ज०-भवण०-वाण०-जोदिसि०-सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय०-पच्चि० अपज्ज०-पचकाय०-तस-अपज्ज०-वेउच्चिय०-क्किण्ह० णील० वत्तव्व । मणुसअपज्ज० अट्टावीम-सत्तावीस-छब्बीस० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असखे० भागो ।

क्तिस्थानोंका अन्तरकाल श्रोधके समान कहा है । किन्तु स्त्रीवेदी मनुष्योंके २२, २२, १३, १२, ११, ४, ३, २, और १ विभक्तिस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्राप्त होता है, क्योंकि कोई भी स्त्रीवेदी मनुष्य दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीयकी क्षपणा न करे तो अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं करता है ऐसा नियम है ।

§ ३७६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । नारकियोंमें शेष विभक्तिस्थानोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार पहली पृथिवीमें नारकियोंके तथा सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीवोंके, सामान्य देवोंके, सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके और कापोत लेश्यावाले जीवोंके अन्तरकाल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्न्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक सभी पदोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार पचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती, पचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, समी एकेन्द्रिय, समी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय, प्रस लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिक-काययोगी, कृष्णलेश्यावाले और नील लेश्यावाले जीवोंके अन्तरकाल कहना चाहिये । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें अट्टाईस, सत्ताईस और छब्बीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तर काल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल पत्न्यके असख्या-तवें भाग प्रमाण है ।

विशेषार्थ—नरकमें जो २२ विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर एक समय कहा है इसका यह तात्पर्य है कि नरकमें जो पहले २२ विभक्तिस्थानवाले जीव थे उनके एक समयके पश्चात् २२ विभक्ति स्थानवाले जीव वहा पुनः उत्पन्न होसकते हैं । तथा उत्कृष्ट अन्तर जो वर्षपृथक्त्व कहा है इसका यह तात्पर्य है कि यदि २२ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका नरकमें उत्पन्न होना बन्द हो जाय तो अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक ही ऐसा

३३०० ओराठिपमिस्स० चउपीस-एफवीस० अतर के० ? जह० एगसमओ,
 उक० मासपुघच । बावीस० के० ? जह० एगसमओ, उक० मासपुघच । सेस
 पदाण णत्थि अतर । वेउन्वियमिस्स० अट्ठावीस-सत्तावीस-उन्वीस० अतर के० ?
 जह० एगसमओ, उक० बारसमुहुवा । चदुवीस-एफवीस० के० ? जह० एगसमओ,
 उक० मासपुघच । बावीस० अतर के ? जह० एगसमओ, उक० मासपुघच ।
 आहार०-आहारमिस्स० अट्ठावीस चउपीस-एफवीस० जह० एगसमओ, उक० मास
 पुघच । कम्मइय० उन्वीस० णत्थि अतर । अट्ठावीस-सत्तावीस० जह० एगसमओ,

होगा इसके बाद २२ विमत्तिस्थान वाले जीव नियमसे मरकमें उत्पन्न होंगे । किन्तु
 मरकमें वहाँ सम्भव छय विमत्तिस्थानोंका अन्तर काळ नहीं पाया जाता है । पहली पृथिवी
 से छेकर सर्वाभिसिद्धि तक ऊपर और अितनी मार्गभार्य गिनाई हैं इनमें भी इसीप्रकार
 जानना चाहिये । किन्तु सर्वाभिसिद्धिमें २२ विमत्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर पस्वके अस
 क्वातके जागप्रमाण होता है । इसका यह तात्पर्य है कि यदि कृतकृत्यवैदक सम्पगृह्ण
 जीव मरकर सर्वाभिसिद्धिमें उत्पन्न न हो तो असक्वात कर्प तक नहीं होता इसके बाद
 अवश्य उत्पन्न होता है । दूसरी पृथिवीसे छेकर नीलमेरुयातक ऊपर और अितनी मार्ग-
 भाप गिनाई है इनमें अन्तर काळ नहीं है । तथा छम्प्यपर्याप्तक मनुष्योंका जो अपम्य
 और उत्कृष्ट अन्तर काळ है वही इनमें २०, २७ और २९ विमत्तिस्थानोंका अन्तर
 काळ जानना चाहिये ।

३३०० औदारिक मित्रहाययोगमें चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्थानवाले जीवोंका
 अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ मास पूषकर
 है । बाईस विमत्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक
 समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ वर्षरूपकर है । औदारिकमित्रहाययोगमें शेष चर्षोंका
 अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है । वैदिकमित्रहाययोगमें अट्ठाईस, सत्ताईस और
 छत्तीस विमत्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक
 समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ बारह मुहूर्त है । तथा चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्थान
 वाले जीवोंका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तर
 काळ मासपूषकर है । बाईस विमत्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य
 अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ वर्षरूपकर है । आदारकहाययोग और
 आहारकमित्रहाययोगमें अट्ठाईस, चौबीस और इक्कीस विमत्तिस्थानवाले जीवोंका अपम्य
 अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ वर्षरूपकर है । कर्मपहाययोगमें छत्तीस
 विमत्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है । अट्ठाईस और सत्ताईस विम

उक्क० अंतोसुहुत्तं । चउवीस-एक्कीस० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० मास-पुधत्तं । बावीस०जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ३८१. वेदानुवादेण इत्थि० तेवीस-तेरस-वारस० जह० एगसमओ, उक्क० वास-पुधत्तं । सेसप० णत्थि अंतरं । एवं णवुंस० वत्तव्वं । पुरिस० तेवीस-बावीस० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । तेरस-वारस-एकारस-पच० जह० एगसमओ, उक्क० वास सादिरेय । सेसप० णत्थि अतर । अवगद० चउवीस-एक्कीस० जह० एग-

क्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल मासपृथक्त्व है । बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ।

विशेषाथ—औदारिकमिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय स्पष्ट ही है । कि तु उत्कृष्ट अन्तर जो मासपृथक्त्व बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि २४ और २१ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका यदि मरण न हो तो एक मासपृथक्त्व तक नहीं होता है । तथा उक्त योगोंमें जो २२ विभक्तिस्थानका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है उसका यह अभिप्राय है कि २२ विभक्तिस्थानवाले जीवोंका यदि मरण न हो तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं होता है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें जो २८, २७ और २६ विभक्ति-स्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बतलाया है वह वैक्रियिक मिश्रकाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकी अपेक्षासे जानना चाहिये । इसी प्रकार आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें २८, २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकी अपेक्षासे जानना चाहिये । तथा कार्मणकाययोगमें २८ और २७ विभक्तिस्थानोंका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है इसका यह अभिप्राय है कि २८ और २७ विभक्तिस्थानवाले कोई भी जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक कार्मणकाययोगी नहीं होते ।

§ ३८१ वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें तेईस, तेरह और बारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । स्त्रीवेदमें शेष पदोंका अन्तर नहीं पाया जाता है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें कथन करना चाहिये । पुरुषवेदमें तेईस और बाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तेरह, बारह, न्यारह और पाच विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है ।

समञ्जो, उक्क० वासपुष्य । सेसाञ्ज प० ब्रह्० एगसमञ्जो, उक्क० छम्मासा ।
ज्वरि पचवि० वास सादिरेय ।

१३८२ क्रमायाजुवाइय कोषक० तेवीस-वाबीस० ब्रह्० एगसमञ्जो, उक्क०
छम्मासा । तेरस्वाइ ब्राव चचारि बिहवि पि ब्रह्० एगसमञ्जो, उक्क० वास सादि
रेय । सेमप० णस्सि अंतरं । एव माच०, णवरि विविह० अत्थि । एवं माय०, णवरि

पुरुषवेदमें छेप पदोका अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है । अपगतवेदियोंमें चौबीस और
इकतीस विमक्तिस्थानवाले जीवोंका अथम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ
वर्षपूर्वकत्व है । छेप पदोका अथम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ ब्रह्म
महीना है । इतनी विशेषता है कि यहां पाच विमक्तिस्थानवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर
साधिक एक वर्ष है ।

विशेषार्थ—येसा नियम है कि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीव यदि वर्सनमाहनीय
और चारिप्रमोहनीयकी क्षपणा न करें तो वर्षपूर्वकत्व काळ तक नहीं करते हैं अतः
स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें २३, १३ और १२ विमक्तिस्थानोंका अथम्य अन्तर एक समय
और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूर्वकत्व कहा है । यदि पुरुषवेदी जीव वर्सनमाहनीयकी क्षपणा न
करें तो ब्रह्म माह तक मही करते हैं और यदि चारिप्रमोहनीयकी क्षपणा न करें तो
साधिक एक वर्ष तक मही करते हैं । अतः पुरुषवेदमें २३ और २२ विमक्तिस्थानोंका
अथम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मास प्राप्त होता है तथा १३, १२ ११,
और ९ विमक्तिस्थानोंका अथम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष
प्राप्त होता है । उपसमवेदीका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूर्वकत्व वतछाया है । अतः अपगतवेदमें
२४ और २१ विमक्तिस्थानोंका अथम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपूर्वकत्व
प्राप्त होता है । तथा उपकज्जीका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः अपगतवेदमें छेप
पदोका अथम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बन जाता है । किन्तु
इतनी विशेषता है कि ९ विमक्तिस्थान पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके ही होता है
और पुरुषवेदी जीव अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक तथा नपुंसकवेदी जीव वर्ष
पूर्वकत्व काळ तक क्षपणवेदीपर मही चढ़ते हैं अतः अपगतवेदमें ९ विमक्तिस्थानका
उत्कृष्ट अन्तरकाळ साधिक एक वष कहा ।

१३८३ कृपायमार्गीयाके अनुवाकसे कोषकृपायमें तेईस और चाईस विमक्तिस्थानवाले
जीवोंका अथम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काळ छह महीना है । तथा
तेरहसे छेकर चार तकके विमक्तिस्थानवाले जीवोंका अथम्य अन्तरकाळ एक समय और
उत्कृष्ट अन्तर काळ साधिक एक वर्ष है । छेप पदोका अन्तर काळ नहीं पाया जाता है ।
इसीप्रकार मामकृपायमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मानकृपायमें तीन

दोण्हं वि० अत्थि । अकसा० चउवीस-एक्कीस० अंतरं के० ? जह० एयसमओ, उक० वासपुघत्तं । एवं जहाक्खाद० । एव सुहुमसांप०, णवरि एयवि० जह० एयसमओ, उक० छम्मासा । मदि-सुद-विहंगअण्णाण० एइदियभंगो । एवमभवसिद्धि० मिच्छादि असणि ति । अभिणि०-सुद० अट्टावीस-चउवीस-एक्कीस० णत्थि अंतर । सेसपदाण

विभक्तिस्थान भी पाया जाता है । इसीप्रकार मायाकपायमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मायाकपायमें दो विभक्तिस्थान भी पाया जाता है । कपायरहित जीवोंमें चौबीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । इसीप्रकार यथाख्यात संयत और सूक्ष्मसांपरायिक सयतोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपरायिक सयतोंमें एक विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह महीना है ।

विशेषार्थ—क्रोधकषायी, मानकषायी और मायाकषायी जीव यदि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा न करें तो अधिक से अधिक छ महीना काल तक नहीं करते हैं इसके पश्चात् अवश्य करते हैं और इसीलिये इन कपायोंमें २३ और २२ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है । तथा उक्त कपायवाले जीव यदि क्षपकश्रेणीपर नहीं चढ़ते हैं तो अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक नहीं चढ़ते हैं और इसीलिये क्रोधकषायमें १३, १२, ११, ५ और ४ विभक्तिस्थानोंका, मानकषायमें १३, १२, ११, ५, ४ और ३ विभक्तिस्थानोंका तथा माया कपायमें १३, १२, ११, ५, ४, ३ और २ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष कहा है । इन कषायोंमें शेष विभक्तिस्थानोंका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व कहा है और इसीलिये अकषायी जीवोंके २४ और २१ विभक्तिस्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण होता है । तथा अकषायी जीवोंके समान यथाख्यातसंयत और सूक्ष्मसांपराय सयत जीवोंके जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपरायसयतके एक विभक्तिस्थान भी होता है तथा क्षपक सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान अधिकसे अधिक छह महीनाके पश्चात् नियमसे होता है, अतः सूक्ष्मसांपराय संयतोंके एक विभक्तिस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है ।

मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । तथा इसीप्रकार अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असह्यी जीवोंके कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—ऊपर जितने मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमें, जहा जितने विभक्तिस्थान सम्भव हैं उनका अन्तरकाल नहीं पाया जाता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

ओषधमगो । एव संबद्ध-सामाह्य-द्वेदो-संबद्धासंबद्ध-सम्मादि-वेद्य-वचन्य ।
 णवरि वेद्य-एकवीस-णत्यि । ओहि-मणपञ्च-एव चेत, णवरि वासपुत्रत । एव
 परिहार-ओहिर्दसण वचन्य । असंबद्ध-सेठ-पम्-सुद्ध अप्ययो पदाण ओष-
 मंगो । स्वह्य-एकवीस-णत्यि अतर । सेसप-ओषधमगो । उवसम-अट्टावीस-
 अह-एगसमओ, उद्ध-चतवीसमहोरची- । एवं चतवीसविह- । सासण-अट्टा
 वीस-के- ? अह-एयसमओ, उद्ध-पलिदो असंखे-मागो । मम्मामिच्छाह्ठी-
 अट्टावीस-चतवीस-अह-एयसमओ, उद्ध-पात्तेदो-असंखे-मागो । अणाहार-

मतिज्ञानी और सुतज्ञानी जीवोंमें अट्टाईस, चौबीस और इक्कीस विमक्तिस्वानवाले
 जीवोंका अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है । तथा छत्र पक्षोंका अन्तरकाळ ओषधके समान
 है । इसीप्रकार संवत्, सामायिकसंबद्ध क्षेत्रस्वापना सब्ध मयतासंघत सम्पत्ति और
 वेदकसम्पत्तिद्विकोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्पत्तयमें इक्कीस
 विमक्तिस्वान नहीं पाया जाता है । अबधिज्ञान और मनःपर्यवधानमें भी इसीप्रकार कथन
 करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तरकाळ वर्षष्टकत्व कहना चाहिये ।
 इसीप्रकार परिहारविभुदिसंबद्ध और अबधिदर्शनमें कथन करना चाहिये ।

। विशेषार्थ-वेदकसम्पत्तयमें ११ आदि विमक्तिस्वान तो होते ही नहीं । साब ही २१
 विमक्तिस्वान भी नहीं होता । अतः मातज्ञानी और सुतज्ञानी जीवोंके २१ और २२
 तथा ११ आदि स्थानोंका अन्तरकाळ वहां ओषधके समान होगा वहां वेदकसम्पत्तयमें
 २१ और २२ विमक्तिस्वानोंका अन्तरकाळ भी ओषधके समान होगा । तथा अबधिज्ञानी
 और मनःपर्यवधानी जीव अधिकसे अधिक वषष्टकत्व काळ तक न तो दर्शनमोहिमीयकी
 और न आदिप्रमोहनीयकी भयना करते हैं अतः इनके २१, २२ और ११ आदि विमक्ति-
 स्थानोंका अप्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षष्टकत्व कहा है । तथा अबधि
 ज्ञानी जीवोंके समान परिहारविभुदिसंबद्ध और अबधिदर्शनी जीवोंके ज्ञानमा चाहिये ।
 विभु परिहारविभुदिसंबद्धमें ११ आदि विमक्तिस्वान नहीं होते ।

असंघतोंमें तथा पीठ पद्य और गुणधेर्यामें अपन अपने पक्षोंका अन्तरकाळ ओषधके
 समान कहना चाहिये । आयिकसम्पत्तयमें इक्कीस विमक्तिस्वानका अन्तरकाळ नहीं पाया
 जाता है । छत्र पक्षोंका अन्तरकाळ ओषधके समान है । उपजसम्पत्तयमें अट्टाईस विमक्ति-
 स्वानवाले जीवोंका अप्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ चौबीस विमक्ति
 है । इसी प्रकार उपजसम्पत्तयद्विकोंके चौबीस विमक्तिस्वानका अन्तरकाळ जानना चाहिये ।
 सासाधनमें अट्टाईस विमक्तिस्वानका अन्तरकाळ कितना है ? अप्य अन्तरकाळ एक
 समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ पक्षके असंबद्धमवे भाग प्रमाव है । सम्पत्तिस्वानद्विकोंमें
 अट्टाईस और चौबीस विमक्तिस्वानवाले अप्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तर

कम्मइयभंगो ।

एवमंतर समत्तं ।

§ ३८३. भावाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मव्व-
पदानं को भावो ? ओदइओ भावो । एव णेदव्व जाव अणाहारए त्ति । णवरि
अप्पप्पणो पदाणि जाणियव्वाणि ।

एवं भावो समत्तो ।

* अप्पावहुअं ।

§ ३८४ पुव्वं परिमाणादिना अवगयपदानं थोववहुत्तं परूवेमो त्ति जइवसहा-
इरण कयपइजावयणमेयं । तम्मि जीव अप्पावहुए भणमाणे पुव्वं ताव पदविसय-
कालाणमप्पावहुअं उच्चदे, तेण विणा जीवप्पावहुअस्स अवगमोवायाभावादो । त जहा-
काल पल्यके असन्ध्यातवे भागप्रमाण है । अनाहारकोका अन्तरकाल कर्मणकाययोगियोंके
अन्तरकालके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ३८३ भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।
उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अट्टाईस आदि सभी पदोंका कौनसा भाव है ? औदयिक-
भाव है । इसीप्रकार अनाहारको तक कथन करते जाना चाहिये । इतनी विशेषता है
कि सर्वत्र अपने अपने पद जानकर कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—अट्टाईस आदि सब पद मोहनीयके उदयके रहते हुए होते हैं इस अपेक्षासे
यहा अट्टाईस आदि सबपदोंका औदयिक भाव कहा है । तात्पर्य यह है कि यद्यपि उप-
शान्तमोही जीवके २४ और २१ विभक्तिस्थान मोहनीयके उदयके अभावमें भी होते हैं
तो भी वे स्थान उदयके अनुगामी हैं, क्योंकि ऐसा जीव उपशान्तमोह गुणस्थानसे नियमसे
च्युत होकर पुनः मोहनीयके उदयसे संयुक्त हो जाता है, अतः २८ आदि विभक्तिस्थानोंका
औदयिक भाव कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है ।

इसप्रकार भावानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

* अब अल्पबहुत्वानुयोगद्वारका कथन करते हैं ।

§ ३८४ पहले सख्या आदिके द्वारा जाने गये पदोंके अल्पबहुत्वका कथन करते हैं, इस
बातका ज्ञान करानेके लिये यतिवृषभ आचार्यने यह प्रतिज्ञावचन किया है । उसमें भी
जीव विषयक अल्पबहुत्वका कथन करनेसे पहले अट्टाईस आदि पदोंके कालोंका अल्पबहुत्व
कहते हैं, क्योंकि इसके बिना जीवविषयक अल्पबहुत्वके ज्ञान करानेका कोई दूसरा उपाय
नहीं है । पदविषयक कालोंका अल्पबहुत्व इसप्रकार है—

१३८४ काष्ठ अल्पबहुलाशुगमेण दुर्वेहो णिवेसो, ओषेण आदेसेण य । तस्य ओषेण सम्बधोवो पञ्चविहसियकालो । लोमसुदुमसंगहकिट्टीवेदयकालो संखेज-
गुणो, पञ्चविहसियसमयूष-दोत्रावलिकालेष संखेजावलिपमेचसुदुमाकिट्टीवेदयका
सम्मि मागे हिदे संखेजकूबोवत्तमादो । लोमविदियवाद्राकिट्टीवेदयकालो विसे
साहियो । केसियमेचो विसेसो ? संखेजावलिपमेचो । उवरि वि अत्थ विसेसाहिय
मपिहिदि तस्य तस्य सो विसेसो संखेजावलिपमेचो । ति वेत्थो । लोम० पढमसगह
किट्टीवेदयकालो विसेसाहियो । मायाए तदियसगहकिट्टीवेदयकालो विसेसा-
हियो । तिस्से वेव विदियसगहकिट्टीवेदयकालो विसे० । पढमसमहाकिट्टीवेदय
कालो विसे । मापतदियसगहकिट्टीवेदयकालो विसे० । विदियसगहकिट्टीवेदय
कालो विसे० । पढमसगहकिट्टीवेदयकालो विसेसाहियो । कोहतदियसगहकिट्टीवेदय
कालो विसे० । विदियसगहकिट्टीवेदयकालो विसे० । पढमसगहकिट्टीवेदयकालो

विशेषार्थ—यहां अल्पबहुत्वके दो भेद कर दिये हैं एक काष्ठ अल्पबहुत्व और दूसरा
जीव अल्पबहुत्व । काष्ठ अल्पबहुत्वके द्वारा विमच्छिन्नान विषयक काष्ठोंके अल्पबहुत्वका
विचार किया गया है और जीव अल्पबहुत्वके द्वारा एक भावि विमच्छिन्नानवाले जीवोंके
अल्पबहुत्वका विचार किया गया है ।

१३८५ काष्ठ-अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्वेरा दो प्रकारका है—ओषनिर्वेरा और
आहेष्ठनिर्वेरा । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा पांच विमच्छिन्नानका काष्ठ सबसे बड़ा है इससे
ओषकी सूक्ष्म समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ सक्यावगुणा है । पांच विमच्छिन्नानका जो एक समय
रुम दो भावकी काष्ठ कहा है वतका ओषके सूक्ष्म समग्रहृष्टिके संख्याव जावकीप्रमाण
वेदककाष्ठमें माग हेनेपर सक्याव एक प्राप्त होते हैं । इससे जामा जाता है कि पांच
विमच्छिन्नानके कालसे ओषकी सूक्ष्म समग्रहृष्टिका वेदक काष्ठ संख्यावगुणा है । इससे
ओषकी दूसरी वावरहृष्टिका वेदककाष्ठ विशेष अधिक है । जहां विशेषका प्रमाण
कितना है ? सक्याव जावकी है । जामे भी जहां जहां पूर्व ज्ञानके कालसे वतसे
जागके ज्ञानका काष्ठ विशेष अधिक कहा जायगा जहां वह विशेष सक्याव जावकी
प्रमाण लेना चाहिये । ओषकी दूसरी वावरहृष्टिके कालसे ओषकी पहली समग्रहृष्टिका वेदक
काष्ठ विशेष अधिक है । इससे मायाकी तीसरी समग्रहृष्टिका वेदक काष्ठ विशेष अधिक
है । इससे मायाकी दूसरी समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ विशेष अधिक है । इससे मायाकी
पहली समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ विशेष अधिक है । इससे मानकी तीसरी समग्रहृष्टिका
वेदककाष्ठ विशेष अधिक है । इससे मानकी दूसरी समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ विशेष अधिक
है । इससे मानकी पहली समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ विशेष अधिक है । इससे ओषकी तीसरी
समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ विशेष अधिक है । इससे ओषकी दूसरी समग्रहृष्टिका वेदककाष्ठ

विसे० । चदुण्हं संजलणाणं किट्टीकरणद्धा मंखेजगुणा । अस्सकण्णकरणद्धा विसे०
 छण्णोकसायखवणद्धा विसे० । इत्थि० खवणद्धा विसे० । णवुस० खवणद्धा विसे० ।
 तेरसविहत्तियकालो संखेजगुणो, बावीसविहत्तियकालो विसे०, तेवीसविहत्तियकालो विसे-
 साहियो । सत्तावीसविहत्तियकालो असखेजगुणो । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखे०
 भागो । एकवीसविहत्तियकालो असंखेजगुणो । चउवीसविहत्तियकालो सखेजगुणो ।
 अट्टावीसविहत्तियकालो विसे० । केत्तियमेत्तो विसेसो ? तिण्णि पालिदो० असखे-
 ज्जदिभागमेत्तो । कुदो ? चउवीसविहत्तियउक्कस्सकालो अतोमुहुत्तम्भहियवेत्तावट्ठिभाग-
 रोवममेत्तो । तं पेक्खिवय अट्टावीसविहत्तियकालस्स तीहि पालिदो० असंखेज्जदिभागैहि
 अम्भहियवेत्तावट्ठिसागरोवममेत्तस्स विसेमाहियत्तुवलंभादो । छन्वीसविहत्तियकालो
 अणंतगुणो । चउण्हं तिण्हं दोण्हमेक्खिस्से विहत्तियकालो जहण्णओ वि अत्थि उक्कस्सओ
 वि । तत्थ परोदएण चडिदस्स जहण्णओ । सोदएण चडिदस्स उक्कस्सो होदि । पच-
 विहत्तियप्पडुडि जाव तेवीसविहत्तियो ति ताव एदेसिं जहण्णुक्कस्सकालो सरिसो । कुदो

विशेष अधिक है । इससे क्रोधकी पहली संप्रहकृष्टिका वेदकाल विशेष अधिक है ।

इससे चारों संज्वलनोंके कृष्टिकरणका काल संख्यातगुणा है । इससे अश्वकर्णकरणका काल
 विशेष अधिक है । इससे लूह नोकषायोंके क्षपणका काल विशेष अधिक है । इससे स्त्री-
 वेदके क्षपणका काल विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदके क्षपणका काल विशेष अधिक
 है । इससे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है । इससे बाईस विभक्तिस्थानका काल
 संख्यातगुणा है । इससे तेईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । इससे सत्ताईस
 विभक्तिस्थानका काल असंख्यातगुणा है । गुणकारका प्रमाण क्या है ? यहा गुणकारका
 प्रमाण पल्लोपमका असंख्यातवा भाग है । इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल असंख्यात-
 गुणा है । इससे चौबीस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है । इससे अट्टाईस विभक्ति-
 स्थानका काल विशेष अधिक है । यहा विशेषका प्रमाण कितना है ? पल्लोपमके तीन
 असंख्यातवें भागमात्र है, क्योंकि चौबीस विभक्तिस्थानका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक
 एकसौ बत्तीस सागर है । और अट्टाईस विभक्तिस्थानका काल पल्लोपमके तीन असंख्यातवें
 भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर प्रमाण है । अतः इन दोनों कालोंको देखते हुए
 चौबीस विभक्तिस्थानके कालसे अट्टाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है यह सुनि-
 श्चित होता है । अट्टाईस विभक्तिस्थानके कालसे छन्वीस विभक्तिस्थानका काल अनन्त-
 गुणा है । चार, तीन, दो और एक विभक्तिस्थानका काल जघन्य भी पाया जाता है और
 उत्कृष्ट भी । उनमेंसे अन्य कषायके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके जघन्य काल
 पाया जाता है और स्वोदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके उत्कृष्ट काल पाया जाता है ।
 पांच विभक्तिस्थानसे लेकर तेईस विभक्तिस्थान तक ५, ११, १२, १३, २१, २२, २३

जम्बदे ? आइरियपरंपरागपसयल्लुत्तानिहृदवक्त्राणादो । अथरि तेरस-बारसविदधि
यकालो अहण्यो वि अरिय सो एरय ण विवक्खिओ ।

एषमोपप्यावहुअ समत्त ।

३३=६ आदेसेय येरइएसु सव्वयोवो वावीसवि० कालो । सचावीसविह०
कालो असखेअगुणो, एण्णवीसविह० कालो असखेअगुणो, अठवीसविह० सखेअगुणो,
अण्णवीस-अट्टावीसविहृत्थियकालो विसेसो । पटमाए पुट्ठीए सम्भरयोवो वावीसवि०
कालो, सचावीसविह० असखेअगुणो, एण्णवीसविह० असखेअगुणो, अठवीसविह०

इन सप्त विमक्तिस्थानोंका अण्ण्य और अण्ण्य काळ समान है ।

श्रुक्का-एह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान-आचार्यपरंपरासे सक्क सुओअ ओ अणिकइ अण्ण्यमान अण्ण्य आ एहा
है, इससे जाना जाता है कि उक्त विमक्तिस्थानोंका अण्ण्य और अण्ण्य काळ समान है ।
यहां इतनी विशेषता है कि तेरह और बारह विमक्तिस्थानोंका अण्ण्य काळ भी पाया
जाता है पर इसकी यहां विवक्षा नहीं की गई है ।

विशेषार्थ-ओपके उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़े हुए जीवके चार विमक्तिस्थानका,
मानके उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़े हुए जीवके तीन विमक्तिस्थानका, मायाके उदयसे अण्ण्य
मेणीपर चढ़े हुए जीवके दो विमक्तिस्थानका और ओपके उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़े
हुए जीवके एक विमक्तिस्थानका अण्ण्य काळ प्राप्त होता है । तथा इनसे अतिरिक्त कणावके
उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़े हुए जीवके चार आदि विमक्तिस्थानोंका अण्ण्य काळ प्राप्त
होता है । किन्तु ऊपर ओपकी सूक्ष्म समझ कृपिस लेकर अण्ण्यमेणीपर चढ़े हुए जीवके
अण्ण्यमेणीपर चढ़े हुए जीवके उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़े हुए जीवकी प्रमाणतासे
जानना चाहिये । तथा जो जीव नपुंसकमेणीके उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़ता है उसके १३
विमक्तिस्थानका अण्ण्यकाळ प्राप्त होता है और बारह विमक्तिस्थानका अण्ण्य । तथा जो
जीव पुरुषवैश या स्त्रीवैश उदयसे अण्ण्यमेणीपर चढ़ता है उसके १३ विमक्तिस्थानका
अण्ण्य काळ प्राप्त होता है और १२ विमक्तिस्थानका अण्ण्य । किन्तु इस अण्ण्यमेणीपर
१३ और १२ विमक्तिस्थानका अण्ण्य काळके कबकी विवक्षा नहीं की गई है ।

इस प्रकार ओप अण्ण्यमेणीपर समान हुआ ।

३३=६, आदेशुकी अण्ण्य नारकियोमें गईस विमक्तिस्थानका काळ सबसे बोधा है ।
इससे सचाईस विमक्तिस्थानका काळ असंख्यावगुणा है । इससे इण्णवीस विमक्तिस्थानका काळ
असंख्यावगुणा है । इससे चौबीस विमक्तिस्थानका काळ संख्यावगुणा है । इससे अण्ण्य
और अट्टाईस विमक्तिस्थानका काळ विशेष अधिक है ।

पहली श्रुतिमें गईस विमक्तिस्थानका काळ सबसे बोधा है । इससे सचाईस

विसेसाहियो । केत्तियमेत्तेण ? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागेण । छव्वीस अट्ठा-
वीस-विहत्तियाणं काला वे वि सरिमा विसेमाहिया । केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तेण ।
विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वत्थोवो सत्तावीसविह० कालो । चउवीसवि० कालो
असंखेज्जगुणो । छव्वीस-अट्ठावीसविह० कालो दो वि सरिसा विसेसाहिया । एवं
भवण०-वाण० जोदिसि० वत्तव्वं ।

§ ३८७ तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु सव्वत्थोवो वावीमविह० कालो । सत्तावीस-
विह० कालो असंखेज्जगुणो । चउवीसविह० कालो असंखेज्जगुणो । एकवीमविह०
कालो विसे० । केत्तियमेत्तेण ? मासपुधत्तेण सादिरेएण । अट्ठावीसविह० कालो वि० ।
के० मेत्तेण ? पलिदो० असंखे० भागेण । छव्वीसविह० कालो अणंतगुणो । एवं दोण्हं
पच्चिदियतिरिक्खाणं । णवरि एकवीम-विहत्तियकालस्सुवरि अट्ठावीस-छव्वीमविहत्तिय-
कालो विसेसा० । केत्तियमेत्तेण ? पुव्वकोडिपुधत्तेण । एवं जोणिणीणं । णवरि वावीम-
विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा है । इससे इक्कीम विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा
है । इससे चौवीस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । कितना विशेष अधिक है ?
पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण विशेष अधिक है । छव्वीस और अट्ठाईस विभक्तिस्था-
नोंके काल परस्पर समान होते हुए भी चौवीस विभक्तिस्थानके कालसे विशेष अधिक हैं ।
कितने विशेष अधिक हैं ? अन्तर्मुहूर्तप्रमाण विशेष अधिक हैं ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें सत्ताईस विभक्तिस्थानका
काल सबसे थोड़ा है । इससे चौवीस विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा है । छव्वीस
और अट्ठाईस विभक्तिस्थानके काल परस्पर समान होते हुए भी चौवीस विभक्तिस्थानके काल
से विशेष अधिक हैं । इसीप्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके कहना चाहिये ।

§ ३८७. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें वाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है । इससे सत्ता-
ईस विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा है । इससे चौवीस विभक्तिस्थानका काल असख्या-
तगुणा है । इससे इक्कीस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । कितना विशेष अधिक
है ? साधक मासपृथक्त्व विशेष अधिक है । इक्कीस विभक्तिस्थानके कालसे अट्ठाईस विभ-
क्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । कितना विशेष अधिक है ? पल्योपमके असख्यातवें
भागप्रमाण विशेष अधिक है । अट्ठाईस विभक्तिस्थानके कालसे छव्वीस विभक्तिस्थानका
काल अनन्तगुणा है । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंके कथन
करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन दोनोंके इक्कीस विभक्तिस्थानके कालसे
अट्ठाईस और छव्वीस विभक्तिस्थानोंका काल विशेष अधिक कहना चाहिये । कितना
विशेष अधिक कहना चाहिये ? पूर्वकोटि पृथक्त्व विशेष अधिक कहना चाहिये । इसी-
प्रकार योनिमती पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके कथन कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके

एकबीसविहारीया णत्वि । पंचिदियतिरिक्ख-मज्जुस्सअपञ्चपसु णरिय कालअप्या बहुअ । इदो ? अहाबीस-सचाबीस-छन्नीसवि० उक्कस्सकालाण तत्थ सरिसपुबल-मादो । अथवा पंचिदियतिरिक्ख-मज्जुस्सअपञ्चपसु सम्बत्थोवा छन्नीस-सचाबीस अहाबीसवि० अहणाकालो । उक्कस्सओ असखेज्जगुणो ।

३३८८ मज्जुस्सेसु पंचविहारीय-कालअप्याहुदि जाव तेबीसविहारीयकालो पि ताव मूलोपमंगो । तदो सचाबीसविह० कालो असखेज्जगुणो । चठबीसविह० कालो असखेज्जगुणो । एककबीसविहारीयकालो विसेसाहिओ पुण्यकोटिदिमाणेण सादिरेएअ । छन्नीस-अहाबीसविह० कालो विसेसाहिओ पुण्यकोटिपुचवेअ । एअ मज्जुसपञ्चपणं । मज्जुसिन्नीसु लोमसुहुमकिड्डीवेदय-कालअप्याहुदि जाव तेबीसविहारीयकालो पि ताव मूलोपमंगो । तदो तेबीस विहारीयकालअसुपरि एककबीसविहारीयकालो सखेज्जगुणो, सचाबीसविह० कालो असखेज्जगुणे, चठबीसविहारीयकालो असखेज्जगुणो, छन्नीस अहाबीसविह० कालो विसे० ।

बाईस और इक्कीस विमक्तिस्वान नहीं पाये जाते हैं । पंचेन्द्रिय स्थिरच छम्पपयास और मज्जुप्य छम्पपयास जीर्णोमें काठविपयक अस्पकहुत्त्व नहीं पाया जाता है, क्योंकि इन जीर्णोके अहाईस, सचाईस और छन्नीस विमक्तिस्वानोंका उत्कृष्टकाठ समान पाया जाता है । अथवा पंचेन्द्रिय स्थिरच छम्पपयास और मज्जुप्य छम्पपयासमें छन्नीस, सचाईस और अहाईस विमक्तिस्वानोंका अस्पककठ सचसे थोड़ा है और उत्कृष्टकाठ असम्पातगुणा है ।

३३८९ मज्जुप्योमें पाँच विमक्तिस्वानके काठसे लेकर तेईस विमक्तिस्वानके काठ तकके स्वानोंका काठविपयक अस्पकहुत्त्व मूलोपके समान है । तदनन्तर तेईस विमक्तिस्वानके काठसे सचाईस विमक्तिस्वानका काठ असम्पातगुणा है । इससे चौबीस विमक्तिस्वानका काठ असम्पातगुणा है । इससे इक्कीस विमक्तिस्वानका काठ विशेष अधिक है । वहाँ विशेष अधिकका प्रमाण साधिक पूर्वकोटिका विभाग है । इक्कीस विमक्तिस्वानके काठसे छन्नीस और अहाईस विमक्तिस्वानका काठ विशेष अधिक है । वहाँ विशेष अधिकका प्रमाण पूर्वकोटिपुचवत्त्व है । इसीप्रकार मज्जुप्य पर्याप्तकोके कथन करना चाहिये । जीवेवी मज्जुप्योमें लोमकी सूस्मकृत्तिके वेदककाठसे लेकर तेईस विमक्तिस्वान तक काठ विपयक अस्पकहुत्त्व मूलोपके समान जानना चाहिये । तदनन्तर तेईस विमक्तिस्वानके काठसे इक्कीस विमक्तिस्वानका काठ सम्पातगुणा है । इससे सचाईस विमक्तिस्वानका काठ असम्पातगुणा है । इससे चौबीस विमक्तिस्वानका काठ असम्पातगुणा है । इससे छन्नीस और अहाईस विमक्तिस्वानका काठ विशेष अधिक है ।

§ ३८६. देवेसु सन्वत्थोवो वावीसविह० कालो । सत्तावीसविह० असंखेज्जगुणो । छव्वीसविह० असंखेज्जगुणो । एकवीस-चटुवीस-अट्टावीसवि० कालो विसेसाहिओ । मोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्ज त्ति ताव सन्वत्थोवो वावीसवि० कालो, सत्तावीसवि० कालो असंखेज्जगुणो, एकवीस-चउवीस-छव्वीस-अट्टावीसवि० काला चत्तारि वि सरिसा असंखेज्जगुणा । अणुदिसादि-अणुत्तरविमाणवासियदेवेसु सन्वत्थोवो वावीसवि० कालो । एकवीस-चउवीस अट्टावीसविह० काला तिण्णि वि सरिसा असंखेज्जगुणा ।

§ ३८७. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सन्वत्थोवो सत्तावीसवि० कालो, अट्टावीस-विह० कालो असंखेज्जगुणो, छव्वीसविह० कालो अणंतगुणो । एवं जाणिदूण णेद्व जाव अणाहारए त्ति ।

एव काल-अप्पावहुअं समत्तं ।

§ ३८१. संपहि कालमस्सिदूण जीव-अप्पावहुअं परूवणट्ठं जइवसहाहरियो उत्तरसुत्त

§ ३८८. देवोंमें बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है । इससे सत्ताईस विभक्ति-स्थानका काल असख्यातगुणा है । इससे छव्वीस विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा है । इससे इक्कीस, चौबीस और अट्टाईस विभक्तिस्थानका काल विशेष अधिक है । सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तक बाईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है । इससे सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा है । इक्कीस, चौबीस, छव्वीस और अट्टाईस विभक्तिस्थानोंके चारों काल परस्परमें समान होते हुए भी सत्ताईस विभक्तिस्थानके कालसे असंख्यातगुणे हैं । अनुदिशसे लेकर अनुत्तर विमान तक रहनेवाले देवोंमें बाईस विभक्ति-स्थानका काल सबसे थोड़ा है । इक्कीस, चौबीस और अट्टाईस विभक्तिस्थानोंके काल परस्परमें समान होते हुए भी बाईस विभक्तिस्थानके कालसे असख्यातगुणे हैं ।

§ ३९०. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानका काल सबसे थोड़ा है । इससे अट्टाईस विभक्तिस्थानका काल असख्यातगुणा है । इससे छव्वीस विभक्तिस्थानका काल अनन्तगुणा है । इसीप्रकार जानकर अनाहारक मार्गणा तक कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहा शेषमार्गणाओंमें विभक्तिस्थानोंके काल विषयक अल्पबहुत्वका कथन नहीं किया है किन्तु जानकर कथन कर लेनेकी सूचना की है । सो पहले सब मार्गणाओंमें एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन कर आये हैं । अतः उसके अनुसार यहा अल्पबहुत्वका विचार करलेना चाहिये ।

इस प्रकार कालविषयक अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ ३९१. अब कालका आश्रय लेकर जीवविषयक अल्पबहुत्वके कथन करनेके लिये अतिशुभ आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

मन्त्रि-

☉ सञ्चयोवा पञ्चसंतकम्मविहृत्तिया ।

§ ३६२ श्रीवा इदि एत्थ वत्तम् ? ण, अत्तावत्तीदो येव तदवगमदो । इदो ण्देसिं थोवत्तं ? समयुणदोआवत्तियाहि सविदत्तादो ।

☉ एकसंतकम्मविहृत्तिया संखेअणुणा ।

§ ३६३ इदो ? संखेआवत्तियकालम्मतरे सविदत्तादो । संखेआवत्तियत्त इदो अवदे ? उचवे, तं अहा-सोममुदुमकिहीवेदयकालं अबियत्तम्म विदियवादरत्तोम समहकिहिं वेदय-काल (-किहिवेदयकाल) समयुणदोआवत्तियलोमपडमसगहकिही-वेदयकाल च वेत्तुण एगविहृत्तियकालो होदि । पुणो एदे तिण्णिवि काला पादेक्कं संखे आवत्तियमेत्ता अण्णोत्तं पेक्खिय संखेआवत्तियाहि समय (समम्) हिया । तेण एक्किस्से

☉ पांच विभक्तिस्वानवाले श्रीव सबसे बोके हैं ।

§ ३६२ श्रुक्क-इस उपसुक्क सूत्रमें 'श्रीवा' इस पदको और निश्चित करमा चाहिये वा ? समाधान-श्री, क्योंकि उक्त सूत्रमें 'श्रीवा' इस पदके मही रक्त्ते पर भी बर्बापत्तिसे ही वत्तव्य ज्ञान हो जात्य है ।

श्रुक्क-ये पांच विभक्तिस्वानवाले श्रीव अन्य सभी विभक्तिस्वानवाले श्रीवोंसे बोके क्यों हैं ?

समाधान-क्योंकि पांच विभक्तिस्वानवाले काल एक समय कम दो जावती है, अत इतने कालमें सबसे बोके ही श्रीव संचित होंगे ।

☉ पांच विभक्तिस्वानवाले श्रीवोंसे एक विभक्तिस्वानवाले श्रीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ३६३ श्रुक्क-ये एक विभक्तिस्वानवाले श्रीव पांच विभक्तिस्वानवाले श्रीवोंसे संख्यातगुणे क्यों हैं ?

समाधान-क्योंकि एक विभक्तिस्वानवाला काल संख्यात जावती है जो कि पांच विभक्तिस्वानवाले कालसे संख्यातगुणा है । अतः पांच विभक्तिस्वानवाले कालसे संख्यातगुणे कालके भीतर संचित एक विभक्तिस्वानवाले श्रीव पांच विभक्तिस्वानवाले श्रीवोंसे संख्यातगुणे ही होंगे ।

श्रुक्क-एक विभक्तिस्वानवाला काल संख्यात जावती है यह किससे जान्य जाता है ?

समाधान-इस कालका समाधान इसमकर है-सोमकी सूस्महृत्तिका वेदककाल तथा अनिहृत्तिकरणमें सोमकी वृत्तौ वादर समहृत्तिका वेदककाल और सोमकी पइकी समहृत्तिका एक समवक्त्र हो जावतीसे न्यून वेदककाल इन तीनों कालोंको मिलाकर एक विभक्तिस्वानवाला काल होता है, इससे जाना जाता है कि एक विभक्तिस्वानवाला काल संख्यात जावतीप्रमाण है । तथा ये तीनों ही काल अलग अलग संख्यात जावतीप्रमाण हैं और एक दूसरेसे संख्यात जावती अधिक हैं । इससे जाना जाता है कि एक विभक्तिस्वानवाला

विहात्तियकालो संखेज्जगुणो । लोभतदियवादरकिट्टीवेदयकालो एक्किस्से विहात्तिए काल-
व्भतरे किण्ण गहिदो ? ण, तिस्से सगमरूवेण उदयाभावेण वेदयकालाभावादो ।
अट्टममयाहियछम्माम्भतरे जेण अट्ट चेव सिद्धममया होंति तेण समयूण-दोआव-
लियमेत्तकालभतरे संखेजावलिआसु च अट्टसमयसंचओ सब्बो लब्भइ त्ति जीव-अप्पा-
वहुअसाहण्ट परूविदकाल-अप्पावहुअं णिरत्थयमिदि ? होदि णिरत्थयं जदि अट्टमम-
याहियछम्मासम्भतरे चेव अट्टमिद्धसमया होंति त्ति णियमो, किंतु अंतोमुहुत्त-दियस-
पक्ख-मासम्भतरे वि अट्टसिद्धसमया वि होंति, सत्त-छ-पच चत्तारि-त्ति-दु-एकसिद्ध-
समया वि होंति अणियमेण तेण कालपडिभागेणेव सचओ त्ति काल-अप्पावहुअं ण
काल पाच विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा है ।

शंका—लोभकी तीसरी वादरकृष्टिका वेदककाल एक विभक्तिस्थानके कालमें सम्मिलित
क्यों नहीं क्रिया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोभकी तीसरी वादरकृष्टिका स्वरूपसे उदय नहीं होता है,
अतः उसका वेदककाल नहीं पाया जाता । तात्पर्य यह है कि लोभकी तीसरी वादर
कृष्टि सूक्ष्म कृष्टिरूपसे परिणत हो जाती है जिसका उदय सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें होता
है । अतः लोभकी तीसरी वादरकृष्टिका अलगसे वेदककाल नहीं बतलाया है ।

शंका—चूकि आठ समय और छह महीना कालमें केवल आठ ही सिद्ध समय होते हैं
अतः आठ सिद्ध समयोंमें होनेवाला जीवोंका समस्त संचय एक समय कम दो आवलि
कालके भीतर तथा संख्यात आवली कालके भीतर प्राप्त हो जाता है, इसलिये जीवविषयक
अल्पबहुत्वकी सिद्धिके लिये जो कालविषयक अल्पबहुत्व कहा है वह निरर्थक है । इस
शंका का यह तात्पर्य है कि छह माह और आठ समयोंमें जो आठ सिद्ध समय होते हैं
वे लगातार होनेके कारण पाच विभक्तिस्थानके एक समय कम दो आवलिप्रमाण कालमें
तथा अन्य एक आदि विभक्तिस्थानोंके संख्यात आवलिप्रमाण कालमें भी एक साथ प्राप्त
हो जाते हैं । अतः विभक्तिस्थानके कालविषयक अल्पबहुत्वकी अपेक्षा जो जीवोंका अल्प-
बहुत्व कहा है वह नहीं बनता है ।

समाधान—यदि आठ समय अधिक छह महीना कालके भीतर ही लगातार आठ
सिद्धसमय होते हैं ऐसा नियम होता तो जीवविषयक अल्पबहुत्वकी सिद्धिके लिये कहा
गया काल विषयक अल्पबहुत्व निरर्थक होता, किन्तु एक अन्तर्मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष,
और एक महीनाके भीतर भी अनियमसे आठ सिद्ध समय भी प्राप्त होते हैं और सात
छह, पाच, चार, तीन, दो और एक सिद्ध समय भी प्राप्त होते हैं । अतः कालके प्रति-
भागसे ही जीवोंका संचय होता है ऐसा मानना चाहिये और इसलिये कालविषयक अल्प-
बहुत्व निरर्थक नहीं है ।

गिरस्थयं । पञ्च जीवद्वानुसुषेभ अहसमयाहियद्वमासणियमबलण एगेगुणहा
णम्मि जीवसत्तय सरिसमावेब परूबणेण सह विरोहो, पुबभूद-आहरियाण मुहवि
न्निमायमेत्तण दोण्ण धप्पमावमुवगपाय विरोहाणुववचीदो ।

परि क्हा जाय कि आठ समय अधिक छह महीनाके नियमके बलसे एक एक गुण
स्वामने जीवोंके मयवका समामरूपसे कम करनेवाले जीवस्वामके सूत्रके साथ इस कथन
का विरोध हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्यों कि ये दोनों उपदेश जलग जलग
आचार्योंके मुक्तसं निश्चले हैं, अतः दोनों स्वतन्त्ररूपसे स्थित होनेके कारण इनमें विरोध
नहीं हो सकता ।

विशेषार्थ—इसमें गुणस्वानमें १ विमक्तिस्वान होता है और नीचे गुणस्वानमें २, ३,
४, ५, ११, १२ और १३ विमक्तिस्वान होते हैं । यद्यपि २१ विमक्तिस्वान भी नीचे
गुणस्वानमें होता है किन्तु वह केवल नीचेमें न होकर अप्यत्र भी होता है और इस विम
क्तिस्वानवाले जीवोंकी सख्याका निर्देश भी इसी उपेक्षासे किया गया है । अतः इसे छोड़
भी बिना जाय तो भी इसमें गुणस्वानसे नीचे गुणस्वानमें कई गुनी जीवराशि प्राप्त होती
है । यह बात उक्त विमक्तिस्वानोंके अस्पष्टत्वपर ध्यान देनेसे समझमें आ जाती है ।
किन्तु जीवद्वानके द्रव्यप्रमाणानुसंगद्वारमें बतसाबा है कि अपूर्वकरण, अनिष्टचिकरण,
सूक्ष्मसाम्यराय क्षीणमोह और अबोगिकेवली गुणस्वानमें जीवोंकी उत्कृष्ट सख्या समान
होती है । अतः पतिवृषम आचार्योंके पूर्विसूत्रोंके उक्त कथनका जीवद्वानके कथनके साथ
विरोध जाय है । किन्तु वीरसेम स्वामीने इसको मान्यतामेद कर कर समाधान किया है ।
वे लिखते हैं कि क्वाचित् छह माह और आठ समयके अन्तमें जगत्तार आठ सिद्ध समय
प्राप्त होसकते हैं और इनमें ६०० जीव क्षपक मेजीपर बढ़ सकते हैं । अतः प्रत्येक गुण
स्वानमें ६०० जीव बन जाते हैं यह जीवद्वानके द्रव्यप्रमाणानुसंगद्वारके उक्त सूत्रका
अभिप्राय है । किन्तु पूर्विसूत्रोंका यह अभिप्राय है कि यद्यपि आठ सिद्ध समयोंके
प्राप्त होनेका कोई नियम नहीं है क्वाचित् ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ सिद्ध समय भी
प्राप्त होते हैं, फिर भी वे जगत्तार न प्राप्त होकर एक अन्तर्मुहूर्त एक दिन, एक पक्ष
आदिके भीतर भी प्राप्त होते हैं । अतः प्रत्येक गुणस्वानमें ६०० जीव न मान कर क्वाचित्
प्रतिभागके अनुसार ही जीवोंकी सख्या मानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि क्वाचित्
इस क्रमसे जीव क्षपकमेजीपर बढ़ें जिससे उक्त विमक्तिस्वानोंके अन्तमें अनुसार बटवारा
होगा । इसप्रकार यह बात पूर्विसूत्रोंके अभिप्रायानुसार सम्भव है किन्तु जीवद्वानके अभि
प्रायानुसार सम्भव नहीं । तथा जो बात जीवद्वानके अभिप्रायानुसार सम्भव है वह
पूर्विसूत्रोंके अभिप्रायानुसार सम्भव नहीं है ।

* दोण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसा० ।

§ ३६४. कुदो ? लोभतिण्णिकिटीवेदयकालसंचिदजीवेहिंतो मायाए तिण्णिसंगहकिटीवेदयकालेण लोभतिण्णिसंगहकिटीवेदयकालादो विसेसाहिण्ण संचिदजीवाणं पि विसेसाहियचदसणादो । ण च विसेसाहियदंसणमसिद्धं पुव्विल्लकालादो अहियसंखेजावलियासु सिद्धासिद्धसमएहि करवियासु संचिदजीवोपलभादो ।

* तिण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया ।

§ ३६५. कुदो ? मायातिण्णिसंगहकिटीवेदयकालसंचिदजीवेहिंतो माणतिण्णिसंगहकिटीवेदयकालेण मायातिण्णिसंगहकिटीवेदयकालादो विसेसाहिण्ण संचिदजीवाणं विसेसाहियचुवलंभादो । ण च संचयकाले विसेसाहिण्ण सते जीवसंचओ सरिसो, विरोहादो ।

* एक विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ३६४ शंका—एक विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं ?

समाधान—जब कि लोभकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालसे मायाकी तीन संग्रहकृष्टिका वेदककाल विशेष अधिक है, तब लोभकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालमें जितने जीवोंका संचय होता है, उससे मायाकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालमें जीवोंका संचय भी विशेष अधिक ही देखा जाता है । और यह विशेष अधिक जीवोंका पाया जाना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि एक विभक्तिस्थानके कालसे दो विभक्तिस्थानका काल सख्यात आवलि प्रमाण होते हुए भी विशेष अधिक है, और उन सख्यात आवलियोंमें, जिनमे कि सिद्ध समय और असिद्ध समय, दोनों पाये जाते हैं, जीव संचित होते हैं । अतः दो विभक्तिस्थानका काल बहुत होनेसे उसमे संचित होने वाले जीव भी बहुत हैं ।

* दो विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ३६५ शंका—दो विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं ?

समाधान—मायाकी तीन संग्रहकृष्टिके वेदककालसे मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंका वेदककाल विशेष अधिक है, अतः मायाकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालमें जितने जीवोंका संचय होता है उससे मानकी तीन संग्रहकृष्टियोंके वेदककालमें साधिक जीवोंका संचय पाया जाता है । यदि कहा जाय कि दो विभक्तिस्थानवाले जीवोंके संचय कालसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीवोंका संचयकाल विशेष अधिक भले ही पाया जाय पर दोनों विभक्तिस्थानोंमे जीवोंका संचय समान ही होता है सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

• प्रकारसण्ड संतकम्मविहृत्तिया विसेमाहिया ।

§ ३६६ कुदो ? मात्पतिष्णिसंगहकिट्टीवेदयकालसविदजीवेहितो छप्पोकसाय कत्तवणकालेण मात्पतिष्णिसंगहकिट्टीवेदयकालादो विसेसाहिएण सविदएकारसविहृत्तियाज-मद्दावहुचबलेण बहुचसिद्धिदो । मात्पतिष्णिसंगहकिट्टीवेदयकालादो कोष तिष्णिसंगहकिट्टीवेदयकालो सखेजाबलियाहि अम्माहियो । कोषतिष्णिसंगहकिट्टीवेदय कालादो किट्टीकरणद्दा सखेजाबलियाहि अम्माहिया । ततो अस्तकण्णकरणद्दा संखेजा बलियाहि अम्माहिया । ततो छप्पोकसायकत्तवणद्दा सखेजाबलियाहि अम्माहिया । एदाओ चचारि सखेजाबलियाओ मिळेरुण तिष्णिसंगहकिट्टीवेदयकालस्स सखेजादि मागमेचाओ पेष हौति । एण तिण्ह विहृत्तियाअमुवरि चठण्ण विहृत्तिया किण्ण पादिदा ? ण, तिण्ह विहृत्तियकालादो सखेजगुणम्मि चठण्हं विहृत्तियकालम्मि सविदसीषाण संखेज

• तीन विमत्तिस्वानवाले बीबोसे म्यारह विमत्तिस्वानवाले बीब विशेष अधिक हैं ।

§ ३२६ धुक्का—तीन विमत्तिस्वानवाले बीबोसे म्यारह विमत्तिस्वानवाले बीब विशेष अधिक क्यों हैं ?

समाधान—क्योंकि मापकी तीन समहृत्तियोंके बेरक काजसे छह नोकपायोका क्षपण काज विशेष अधिक है । अतः मानकी तीन समहृत्तियोंके बेरककाजमें बितने बीबोका क्षपण होता है उससे छह नोकपायोके क्षपणकाजमें संचित हुए ग्यारह विमत्तिस्वानवाले बीब संखयकाजके अधिक होनेसे बहुत सिद्ध होते हैं । मानकी तीन समहृत्तियोंके बेरक काजसे कोषकी तीन समहृत्तियोंका बेरककाज संख्यात आबकी अधिक है । कोषकी तीन समहृत्तियोंके बेरककाजसे कृत्तिकरणका काज संख्यात आबकी अधिक है । कृत्तिकरणका काजसे अदककर्मकरणका काज संख्यात आबकी अधिक है । अदककर्मकरणका काजसे छह नोकपायोका क्षपणकाज संख्यात आबकी अधिक है । व चारों (विशेषाधिकार) संख्यात आबकिन्हीं मिलकर तीन समहृत्तियोंके बेरककाजके संख्यातवें मागमात्र ही होती हैं, इसलिये तीन विमत्तिस्वानवाले बीबोसे म्यारह विमत्तिस्वानवाले बीब विशेष अधिक हैं यह कहा है ।

धुक्का—तीन विमत्तिस्वानवाले बीबोके अनन्तर चार विमत्तिस्वानवाले बीब क्यों गयीं हैं ?

समाधान—श्री, क्योंकि तीन विमत्तिस्वानवाले काजसे चार विमत्तिस्वानवाले काज संख्यातगुण है, अतः संख्यातगुण काजमें संचित हुए बीब तीन विमत्तिस्वानवाले बीबोसं संख्यातगुण ही होंगे । इसलिये यहाँ तीन विमत्तिस्वानवाले बीबोके कथनके अनन्तर चार

गुणचं ददूण तथा अपरूवणादो । ण च त्कालस्स संखेज्जगुणत्तमसिद्धं, कोध-अस्स-
कण्णकरणकालं कोध-किट्ठीकरणकालं कोधतिण्णिसंगहकिट्ठीवेदयकालं च घेतूण चउण्ह
विहानियाणमद्दाए अवट्टाणादो । पेदमेत्थासंकणिज्जं सोदएण चडिदस्स तिण्हं दोण्ह
मेक्किस्से विहानियकालो वि एकारसविहत्तियकालादो संखेज्जगुणो लब्भइ तदो तेहि-
म्मि एकारसविहत्तिएहिंतो संखेज्जगुणेहि होदव्वमिदि । किं कारणं ? कोहोदएण
खवगसेट्ठिं चडंताणमेव सव्वत्थ पहाणभावोवलंभादो । तदो ण किंचि विरुज्जभदे ।

* बारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया ।

§ ३६७. कुदो ? छण्णोकसायखवणकालादो इत्थिवेदखवणकालस्स संखेजावलि-

विभक्तिस्थानवाले जीवोंका कथन नहीं किया है ।

तीन विभक्तिस्थानके कालसे चार विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है यह बात असिद्ध नहीं है, क्योंकि क्रोधके अन्धकर्णकरणका काल, क्रोधकी छुट्टिकरणका काल और क्रोधकी तीन संग्रहछुट्टियोंका वेदककाल इन तीनोंको मिलाकर चार विभक्तिस्थानका काल होता है ।

यहा पर ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिये कि स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके तीन, दो और एक विभक्तिस्थानका काल भी ग्यारह विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा पाया जाता है इसलिये तीन, दो और एक विभक्तिस्थानवाले जीव भी ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे संख्यातगुणे होने चाहिये । इसका कारण यह है कि क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवोंकी ही सर्वत्र प्रधानता देखी जाती है, इसलिये पूर्वोक्त कथनमें कोई विरोध नहीं आता है । तात्पर्य यह है कि यद्यपि मानके उदयसे चढ़े हुए जीवोंके दो विभक्तिस्थानका काल, मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवोंके तीन विभक्तिस्थानका काल और लोभके उदयसे चढ़े हुए जीवोंके एक विभक्तिस्थानका काल ग्यारह विभक्तिस्थानके कालसे संख्यातगुणा होगा । पर मान, माया और लोभके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव बहुत थोड़े होते हैं । अतः एक, दो और तीन विभक्तिस्थानवाले जीव ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंके संख्यातगुणे न होकर कम ही होते हैं ।

* ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ३६७. शुका-ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक क्यों हैं ?

समाधान-क्योंकि छह नोकषायोंके क्षपणकालसे स्त्रीवेदका क्षपणाकाल संख्यात आवली अधिक पाया जाता है । अतः ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।

याहि समहियचुबलमादो । केचित्तयेणेण विसेसाहिया ? अहियसंसेजावलियासु संचिद
जीवमणेण ।

• चतुण्ह संतकम्मविहत्तिया संसेजगुणा ।

§ ३६८ को गुणगारो ? किंचूण तिप्पि रूवापि । कुदो ? इत्थिवेदकखममकालादो
पचारिविहत्तियकालस्स किंचूणतिगुणचुबलमादो । तं अहा—दुसमयूगदोजावळि-
यूमअस्सकण्णकरणकालो कोभकिट्टीकरणकालो कोभतिप्पिसंगहकिट्टीवेदयकालो ति,
एदे तिप्पि चतुण्ह विहत्तियकाला वारसविहत्तियकालादो पादेकं विसेसहीवा ।
संपहि एवमु तिसु कालेसु तत्थ एगकालस्स सखेअदिभाग पेचूय सेसदोकसेसु अहा
परिवादीए दिण्णेषु तं दो वि काला इत्थिवेदकखममकालम सरिसा होदुव ततो दुगुणच
पावेंति । पुजो सखेअदिभागूणो गहिदसेसकालो इत्थिवेदकखममकालादो जण किंचूणो
तेव वारसविहत्तियकालादो चतुण्ह विहत्तियकालो किंचूणतिगुणो ति सिद्धं । एवम्मि
काले संचिदजीवाण पि एसो येव गुणगारो; कालासुसारिजीवसचयमचुबलममस्स

अकाल—उन विशेष अधिक जीवोंका प्रमाण क्या है ?

समाधान—भारतमें विभक्तिस्थानके कालसे भारतमें विभक्तिस्थानका काल कितनी
सख्यात जाचछिया अधिक है, उसमें कितने जीवोंका संचय होता है उतना ही विशेषा-
धिक जीवोंका प्रमाण है ।

• भारत विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे वार विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं ।

§ ३६८ अकाल—वहाँ गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान—कुछ कम तीन गुणकारका प्रमाण है ।

अकाल—गुणकारका प्रमाण इतना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि स्त्रीवेदक भयवकाळसे वार विभक्तिस्थानका काल कुछ कम तिगुना
पाया जाया है । उसका मुख्यता इसप्रकार है—शे समवकम शे जाचछियोंसे न्यून अर्ध
कालकारका काल, कोचकी कृष्टि फरणका काल और कोचकी तीन समह कृष्टियोंका वेदक
काल ये तीनों काल मिलकर वार विभक्तिस्थानका काल होता है । किन्तु इस तीनों कालों
में से प्रत्येक काल भारत विभक्तिस्थानके कालसे विशेषीम है । अब इन तीनों कालोंमेंसे
किसी एक कालके सख्यातमें मागको महज करके और उसके शे माग करके प्रत्येक मागके
अपर छेव दो कालोंको क्रमशः वैचकणसे वै वेनेपर ने दोनों ही प्रत्येक काल स्त्रीवेदक
कालके समान होते हैं और मिलकर स्त्रीवेदके कालसे दूने हो जाते हैं । तथा सख्यातमें मागसे
न्यून छेव तीसरा काल चूकि स्त्रीवेदक भयवकाळसे कुछ कम होता है, इससे सिद्ध होता
है कि भारत विभक्तिस्थानके कालमें वार विभक्तिस्थानका काल कुछ कम तिगुना है ।
तथा इस कालमें सचित हुए जीवोंका गुणकार भी इतना ही होगा । कालके अनुसार

पमाणानुकूलतदसणादो ।

* तेरसणहं संतकम्मविहत्तिया संग्वेजगुणा ।

§ ३६६. कुदो ? चदुण्ह विहत्तियकालादो मखेजगुणम्मि तेरसविहत्तियकालम्मि सचिदजीवाण पि जुत्तीण मखेजगुणतदसणादो । तेरसविहत्तियकालस्स मखेजगुणत्तं कथ णव्वद ? जुत्तीदो । त जहा-थीणगिद्धियादिसोलसकम्माण खवणकालो मणपजव-णाणावरणादिवारसण्ह देसघादीवधकरणकालो अंतरकरणकालो अंतरकरणे कदे णवुसयवेदकखवणकालो च एदे चत्तारि वि काला तेरसविहत्तियस्म । अस्मकण-करणकालो क्रोधकिहीकरणकालो क्रोधतिणिसगहकिट्टीवेदयकालो च एदे तिण्णि वि चदुण्हं विहत्तियस्स । एदे तिण्णिवि काले पेक्खिदूण पुव्विज्जकालो संखेजगुणो । कालतिय पेक्खिदूण पुव्विज्जकालचउक्क विसंमाहिय किण्ण होदि ? ण, णवण्ह कालाणं समुदयसमागमेण कालचदुक्कप्पचीदो । के ते णवकाला ? जीवोंके सचयकी पद्धति प्रमाणानुकूल देगो जाती हैं ।

* चार विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात गुणे होते हैं ।

§ ३६६ शंका—चार विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात-गुणे क्यों हैं ?

समाधान—चूकि चार विभक्तिस्थानके कालसे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है, इसलिये युक्तिसे यही सिद्ध होता है कि चार विभक्तिस्थानके कालमें सचित दूए जीवोंसे तेरह विभक्तिस्थानके कालमें सचित हुए जीव संख्यातगुणे होते हैं ।

शंका—चार विभक्तिस्थानके कालसे तेरह विभक्तिस्थानका काल संख्यात गुणा है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—युक्तिसे जाना जाता है । उसका खुलासा इसप्रकार है—स्थानगुद्धि आदि सोलह कर्मोंका क्षपणकाल, मन-पर्यय ज्ञानावरण आदि बारह कर्मोंका देशघातिवन्धकरण-काल, अन्तरकरणकाल, और अन्तरकरण करनेके अनन्तर नपुंसकवेदका क्षपणकाल ये चारों मिलाकर तेरह विभक्तिस्थानका काल है । तथा अश्वकर्णकरणकाल, क्रोधकृष्टिकरणकाल और क्रोधकी तीन सप्रहृष्टियोंका वेदककाल ये तीनों ही चार विभक्तिस्थानके काल हैं । इस-प्रकार इन तीनों कालोंको देखते हुए इनकी अपेक्षा पूर्वोक्त तेरह प्रकृति स्थानका काल संख्यातगुणा है ।

शंका—पूर्वोक्त तेरह विभक्तिस्थानसबन्धी चारों काल चार विभक्तिसंबन्धी तीनों कालोंसे विशेषाधिक क्यों नहीं हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नौ कालोंके समुदायके समागमसे चार कालोंकी उत्पत्ति हुई

* बावीससंतकम्मविहत्तिया संखेजगुणा ।

१४००. कुदो ? चारित्तमोहणीय-अणियट्टीकालादो संखेजगुणम्मि दंमणमोहणीय-अणियट्टिकालम्मि सच्चिदजीवाणं पि संखेजगुणत्तं पडि विरोहाभावादो । अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मे चेट्ठिदे तदो प्पट्टुडि जाव सम्मत्तवववणद्धाचरिमममओ त्ति ताव बावीसविहत्तियकालो । एसो चारित्तमोहक्खववण-अणियट्टी अट्टादो संखेजगुणो त्ति कघ णव्वदे ? एव मा जाणिज्जदु, किंतु तेरमविहत्तियकालादो एसो कालो संखेजगुणो त्ति णव्वदे । कत्तो ? पुण्विल्लकाल-अप्पावहुगादो । चारित्तमोहक्खववण पट्टव्वेत जीवेहिंतो दमणमोहक्खववणं पट्टव्वेतजीवा सरखेजगुणा त्ति ण घेत्तव्व, उभयन्थ अट्टुत्त-सदजीवे मोत्तूण एत्तो चहुआण चडणासंभवादो । ण च पट्टववणकालस्स योव्वबहुत्त-

* तेरह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

१४००. शका-तेरह विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे क्यों हैं ?

समाधान-चूकि चारिमोहनीयके अनिवृत्तिकरणसवन्धी कालसे दर्शनमोहनीयका अनिवृत्तिकरणकाल संख्यातगुणा है, इसलिये इसमें सचित हुए जीव भी संख्यातगुणे होते हैं इस कथनमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका-स्थितिका पुन पुन अपकर्षण करते हुए जब सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति आठ वर्ष प्रमाण रह जाती है उस समयसे लेकर सम्यक्प्रकृतिके क्षपणकालके अन्तिम समय तक बाईस विभक्तिस्थानका काल होता है । यह काल चारित्रमोहनीयके क्षपक जीवके अनिवृत्तिकरणके कालसे संख्यातगुणा है यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान-इस प्रकारका ज्ञान भले ही मत होओ किन्तु तेरह विभक्तिस्थानके कालसे बाईस विभक्तिस्थानका काल संख्यातगुणा है यह तो जाना ही जाता है ।

शका-किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान-पूर्वोक्त कालविषयक अल्पबहुत्वसे जाना जाता है ।

यहां पर चारित्रमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाले जीवोंसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेवाले जीव संख्यातगुणे होते हैं ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि दोनों जगह एक सौ आठ जीवोंसे अधिक जीव दर्शनमोहनीय या चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके लिये एक साथ आरोहण नहीं करते हैं । यदि कहा जाय कि चारित्रमोहनीयके क्षपणाके प्रारम्भ कालसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भकाल अधिक होगा इसलिये दोनोंके कालमें विशेषता होगी सो बात भी नहीं है, क्योंकि, दोनों प्रस्थापककालोंमें संख्यात समयका नियम देखा जाता है । यदि कहा जाय कि जघन्य अन्तर और उत्कृष्ट

करो विसेसो अत्थि, उभयत्थ संखेजसमयणियमदसमादो । न च बह्व्युक्तसंखर
विसेसो अत्थि एगसमयज्जम्मासम्मतराणियमदसमादो । एदो पुम्बिहत्थो वेव
वेचम्भो ।

• लेवीसाए संतकम्मविहत्थिया विसेसाहिया ।

§ ४०१ इदो ? सम्मतकत्तवणकालादो विसेसाहियम्मि सम्मामिच्छत्तवण
कालम्मि सच्चिदबीबाणं वि शुचीए विसेसाहियत्तदसमादो । सम्मतकत्तवणकालादो
सम्मामिच्छत्तवणकालो विसेसाहियो पि इदो णम्भे ? पुम्बिहत्त-अदप्पाबहुआदो ।

• सत्तावीसाए सतकम्मविहत्थिया असस्सेत्तगुणा ।

§ ४०२ का गुणगारो ? पळिदो • असंखेमागो । इदो ? पळिदो • असंखे० भाग
येचकस्सेण संचिदत्तादो सम्मत्तादो मिच्छत्त पडिबत्तमानबीबाण बहुगुणत्तमादो च ।

अन्तरके अपेक्षा दोनो प्रज्ञापककाळोमें निक्षेपता होनी सो बात भी नही है, क्योंकि दोनो
प्रज्ञापककाळोमें अथवा अन्तरके एक समय बीर एकद्व अन्तरके छह महीना होनेका
नियम देखा जाता है । अतः तेरह विभक्तिस्वानके काळसे बार्हस विभक्तिस्वानका
अस्वभावगुण है यह पूर्वोक्त अर्थ ही ग्रहण करना चाहिये ।

• बार्हस विभक्तिस्वानवाले बीबोसे तेईस विभक्तिस्वानवाले बीब विशेष
अधिक हैं ।

§ ४०१ छंका-बार्हस विभक्तिस्वानवाले बीबोसे तेईस विभक्तिस्वानवाले बीब विशेष
अधिक क्यों हैं ?

समाधान-क्योंकि सम्बन्धकालके अणुकाळसे सम्बन्धिध्यात्व प्रकृतिका अणुकाळ
निक्षेप अधिक है । अतः उसमें सचित रूप बीब भी विशेष अधिक है । यह मुक्तिसे सिद्ध
होता है ।

छंका-सम्बन्धकालके अणुकाळसे सम्बन्धिध्यात्वप्रकृतिका अणुकाळ निक्षेप अधिक
है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान-पूर्वोक्त काळविषयक अस्पष्टतासे जाना जाता है ।

• तेईस विभक्तिस्वानवाले बीबोसे सत्ताईस विभक्तिस्वानवाले बीब असस्वभाव
गुण हैं ।

§ ४०२ छंका-प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान-प्रकृतमें पस्वोपमका असस्वभावबोमान गुणकारका प्रमाण है ।

छंका-प्रकृतमें पस्वोपमका असस्वभावका भाग गुणकारका प्रमाण क्यों है ?

समाधान-क्योंकि सत्ताईस विभक्तिस्वानवाले बीबोका सत्त्व पस्वोपमके असस्वभाव
तवे भाग प्रमाण काळ तक होता रहता है और सम्बन्धसे मिथ्यात्वके प्राप्त होने वाले

※ एकवीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेज्जगुणा ।

§ ४०३. को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जदिभागो । कुदो ? वे सागरो-वमकालम्भंतरउवक्कमणकालम्मि संचिदत्तादो । गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदि-भागो ति कुदो णव्वदे ? आहरियपरंपरागयसुत्ताविरुद्धवक्काणादो । अहवा गुण-गारो तप्पाओग्गअसंखेज्जरूवमेत्तो, मम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालम्मि सचिदजीवे पडुव्व पालिदोवमस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागो चैव भागहारो होदि ति णियमकारणा-णुवलंभादो । जुत्तीए पुण असंखेजावलियाहि भागहारेण होदव्वं, अण्णहा एकवीस-विहत्तियभागहारोदो असंखेज्जगुणाणुववत्तीदो । तं जहा-संखेजावलियाओ अतरिय जदि संखेजा उवक्कमणसमया एकवीसविहत्तियाणं लब्भंति, तो दोसु सागरेसु किं जीव बहुत पाये जाते हैं, इन दोनों कारणोंसे जाना जाता है कि यहा गुणकारका प्रमाण पत्त्योपमका असंख्यातवा भाग है ।

※ सत्ताईम विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४०३. शंका-प्रकृतमे गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान-प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवा भाग है ।

शंका-प्रकृतमें आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकारका प्रमाण क्यों है ?

समाधान-क्योंकि प्रकृतमे दो सागरोपमकालके भीतर जितने उपक्रमण काल होते हैं उनमें संचित हुए इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव लिये गये हैं । अतएव प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवा भाग कहा है ।

शंका-फिर भी इससे यह कैसे जाना जाता है कि प्रकृतमे गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवा भाग है ?

समाधान-आचार्य परम्परासे सूत्रके अविरोद्ध जो व्याख्यान चला आ रहा है उससे जाना जाता है कि प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असंख्यातवा भाग है ।

अथवा तत्प्रायोग्य अर्थात् सत्ताईस विभक्तिस्थानमें संचित जीवराशिका इक्कीस विभक्तिस्थानमें संचित जीवराशिके भाग देनेपर जो असंख्यात प्रमाण लब्ध आता है उतना ही यहा गुणकारका प्रमाण है, क्योंकि पत्त्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यग्निध्यात्वके उद्वेलन कालमें संचित हुए जीवोंकी अपेक्षा विचार करनेपर पत्त्योपमका भागहार आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही होता है, इस प्रकारके नियमका कोई कारण नहीं पाया जाता । परन्तु युक्तिसे असंख्यात आवली प्रमाण भागहार होना चाहिये, अन्यथा वह भागहार इक्कीस विभक्तिस्थानके भागहारसे असंख्यात गुणा नहीं हो सकता है । आगे इसीका खुलासा करते हैं-संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे यदि इक्कीस

सुमामो चि पमायेण फलगुणिमिच्छामोवद्विदे सखेजावडियाहि पळिदोवमे खंडिदे एयमागो एकवीसविहचियाजसुबकमणकालो होदि । उषरिमपीसकोडाकोडीरुवमेण पळिदोवमगुणगारतो हेहा आबलियाए द्विविहगुणगारो सखेजगुणो चि कुदो पम्बदे । पळिदोवममेचकम्माद्विदीए आबाधा सखेजावडियमेचा होदि चि आहरियवपपादो, आबाधाकडमपकडमसुसादो च पम्बदे । एदम्हादो अबहारकालादो एकवीसविहचिय अबहारकालो अदि चि संखेजगुणहीनो तो चि सखेजावडियमेचेण होदम्ब अदुत्तर-सदमेचमीवेहितो उषरि उबकमणामाबादो । अह अह बहुआ होंति भाउवबसेच, तो चि आबलियाए असखेजदिमागमेतेण होदम्ब । एदमबहारकाल तप्याभोग्ग-असंखेज रुवेदि गुणिदे सचावीसविहचिय-अबहारकालो जेच होदि तेण सचावीसविहचियाच अबहारकालो असंखेजावडियमेचो चि सिद्ध ।

विमक्तिस्थानवाले बीबोके संख्यात उपक्रमण-समय प्राप्त होते हैं तो दो सागर प्रमाण कालमें कितने उपक्रमण-समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैपक्षिक करके फलरहितसे इच्छा-रहितको गुणित करनेपर जो अर्थ आये उसमें प्रमाणरहित भाग देनेपर संख्यात आब डियोस पत्रोपमको भावित करने पर एक भागप्रमाण इन्कीस विमक्तिस्थानवाले बीबोके उपक्रमणकाल आता है ।

संख्या-रूपर अर्थात् 'तो दोसु सागरेसु कि सुमामो' वहां पर जो पत्रोपम गुणकर बीस कोडाकोडी एक प्रमाण है, उससे नीचे अर्थात् 'सखेजावडियाहि पळिदोवमे खंडिदे' वहां पर आबडिका गुणकार जो संख्यातगुणा स्थापित किया है, सो यह बात किंच प्रमाणसे जानी जाती है ?

सुमाधान—एक पत्रोपम कर्मविविधकी आबाधा संख्यात आबडिप्रमाण होती है इस प्रकारके आचार्य बचनसे और आबाधाकालकाल कथन करनेवाले सूत्रसे जानी जाती है ।

इस अबहारकालसे इन्कीस विमक्तिस्थानवाले बीबोके अबहारकाल परचि संख्यातगुणा हीन होता है तो भी वह संख्यात आबडि प्रमाण होना चाहिये, क्योंकि अधिकसे अधिक एक साथ एक सौ आठ आविक सम्पादद्वि बीब उपक्रमण करते हैं अधिक नहीं । अथवा आयुकी स्पृमाधिकताके कारण अधिक जीव उपक्रमण करते हैं ऐसा मान लिया जाय तो भी इन्कीस विमक्तिस्थान वाले बीबोके अबहारकाल आबडिके संख्यातवर्षे भाग प्रमाण होना चाहिये । और इस अबहारकालको सचाईस विमक्तिस्थान वाले बीबोके अबहारकालके योग्य असंख्यात अंकोसे गुणित कर देनेपर चूंकि सचाईस विमक्तिस्थानवाले बीबोके अबहारकाल प्राप्त होता है अतः सचाईस विमक्तिस्थानवाले बीबोके अबहारकाल असंख्यात आबडि प्रमाण सिद्ध होता है ।

* चउवीसाए संतकम्मिया असंखे० गुणा ।

§ ४०४. को गुणगारो ? आवलि० असंखे० भागो । एकवीसविहत्तियकालेण चउवीसविहत्तियकालो सरिसो, सोहम्मीसाणकप्पेसु सयल-असंजदमम्मादिट्ठीणिवासेसु चेव चउवीस-एकवीसविहत्तियाणं संभवादो । उवरि किण्ण घेप्पदे ? ण, सोहम्मीमाण-सम्माइट्ठीहिंतो असंखेज्जगुणहीणेसु घेप्पमाणे कारणवहुत्ताभावेण असंखेज्जगुणहीणाणं गहणप्पसंगादो । ण च उवक्कमणकालमस्सिदूण गुणगारो आवलियाए असंखेज्जदि भागो ति वोत्तुं सक्किज्जदे, सोहम्मीसाण-उवक्कमणकालादो वेद्धावट्ठिसागरम्भरुवक्कमण-कालस्स वि संखेज्जगुणस्सेव उवलभादो । एवमुवक्कमणकाले सरिसे संते कथमसंखेज्ज-गुणत्तं ज्जुज्जदि ति, ण एस दोसो, मणुसेहि समुप्पज्जमाणखइयसम्माइट्ठिसंखेज्जवीवेहिंतो सोहम्मीसाणकप्पेसु अणताणुवंधिचउक्कं विसंजोएमाण-अट्ठावीससतकम्मियवेदग-सम्माइट्ठीण-गुवसमसम्माइट्ठीण च समयं पडि पल्लिदो० असंखे० भागमेचाणमुवलं-

* इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४०४. शंका-प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान-प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आवलीका असख्यातवा भाग है ।

शंका-चौवीस विभक्तिस्थानका काल इक्कीस विभक्तिस्थानके कालके समान है, क्योंकि समस्त असयतसम्यग्दृष्टियोंके निवासभूत सौधर्म और ऐशान कल्पमे ही चौवीस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव अधिक संभव हैं । शायद कहा जाये कि सौधर्म और ऐशान कल्पके ऊपरके सम्यग्दृष्टि जीव प्रकृतमें क्यों नहीं ग्रहण किये गये हैं ? तो उसका समाधान यह है कि सौधर्म और ऐशान कल्पके सम्यग्दृष्टियोंसे ऊपरके कल्पोंमें असंख्यातगुणे हीन सम्यग्दृष्टि होते हैं, अतः उनके ग्रहण करनेपर बहुत्वका कारण न होनेसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी अपेक्षा चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हीन स्वीकार करना पड़ेंगे । तथा उपक्रमण कालकी अपेक्षा इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका गुणकार आवलीके असख्यातवें भागप्रमाण है, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्रकृतमे यदि एकसौ बत्तीस सागरके भीतर होनेवाले उपक्रमण कालका भी ग्रहण किया जाय तो वह सौधर्म और ऐशानके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा ही पाया जायेगा । इसप्रकार उपक्रमण कालके समान रहते हुए इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौवीस विभक्तिस्थान-वाले असख्यातगुणे कैसे बन सकते हैं ?

समाधान-यह ठीक नहीं है, क्योंकि सौधर्म और ऐशान कल्पमे मनुष्योंमेंसे उत्पन्न होने वाले संख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करने वाले अट्ठाईस विभक्तिस्थानी वेदक सम्यग्दृष्टि तथा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रति समय पत्योपम

मादो, असखेजदीवेसु मोगभूमिपटिभागसु कम्मभूमिपटिभागदीवससुरेसु च गिवसत
 षठवीससतकम्मियसम्माइहीण सोइम्मिसाणेसु असखेजाणसुवकमणममय पठि
 उप्पज्जमाणणसुबलमादो च । जदि एवं सो पठिदोषमस्म असखेजदिभागेण गुण
 गारेण होदम्भ ? न, सम्भोवकमणसमणसु पठिदो० असखे० भागमेचाण जीवाण
 षठवीससतकम्मियमावसुवकममाणणमणुबलमादो । जदि एवं सो कपमुवकमंति ?
 कत्य वि ण्णो, कत्य पि दोष्णि, एवं गट्ठण कत्यवि० संखेजा, कत्य पि आबलिपाए
 असखेज्जदिभागमत्ता, कत्य पि आवसिपमेत्ता, संखेज्जावलिपमेत्ता असखेज्जावलिप
 मेत्ता वा उवपमति षठवीससतकम्मियमाव, तण आबलिपाए असखे० भागणेव
 गुणगारेण होदम्भ । षठवीससतकम्मियमाणगारेण आवलिपाए असखेज्जदिभागण
 संखेज्जावलिपमेत्ते एकवीसविहसियमाणगारे ओवहिदे आबलिपाए असखेज्जदि
 माणुबलमादो वा गुणगारे आबलिपाए असखे० भागो । संखेज्जावलिपमेत्ते सोइ

के असंख्यातये माग पाव जाते है, तथा भोगभूमिसम्बन्धी असंख्यात द्वीपोंमें और कर्म-
 भूमिसम्बन्धी द्वीप समुद्रोंमें निवास करने वाले चौबीस विमत्तिरयानवाले सम्बगुट्टि जीव
 सौधर्म और देशान्तरके प्रत्येक उपक्रमणकालमें असंख्यात उत्पन्न होते हुए देते जाते
 हैं । इस हेतुओंसे प्रतीत होता है इन्हीं विमत्तिरयानवाले जीवोंसे चौबीस विमत्तिरयानवाले
 जीव असंख्यात गुणे होते हैं ।

उदाहरण—यदि ऐसा है तो प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण आबन्धीन असंख्यातवां भाग न
 होकर बस्योमका असंख्यातवां भाग होना चाहिये ?

समाधान—गटी, बबोदि सभी उपक्रमण कालोंमें पस्वोपमके असंख्यातवे मागप्रमाण
 जीव चौबीस विमत्तिरयानको प्राप्त होते हुए नदी पाये जाते हैं, अतः प्रकृतमें गुणकारका
 प्रमाण पस्वोपमका असंख्यातवां भाग नही रहा ।

उदाहरण—यदि ऐसा है तो सम्बगुट्टि जीव किस क्रमसे चौबीस विमत्तिरयानको प्राप्त
 होते हैं ?

समाधान—किसी उपक्रमणकालमें एक जीव किमीमें हो, इसपर उच्चोत्तर किमीमें
 सख्यात किमीमें आबन्धीके असंख्यातवे भाग प्रमाण, किमीमें आबन्धीप्रमाण, किमीमें सख्यात
 आबन्धी प्रमाण, किमीमें असंख्यात आबन्धीप्रमाण जीव चौबीस विमत्तिरयानको प्राप्त होते हैं,
 इससे परे निश्चित होता है कि गुणकार आबन्धीके असंख्यातवे भागप्रमाण ही होना चाहिये ।
 अथवा आबन्धीके असंख्यातवे भागप्रमाण चौबीस विमत्तिरयान सबंधी मागहारसे सख्यात
 आबन्धी प्रमाण इन्हीं विमत्तिरयान सबंधी मागहारको मात्रित कर देतेपर आबन्धीके असं-
 ख्यातवां भागप्राप्त प्राप्त होता है, इसमें भी परी निश्चित होता है कि प्रकृतमें गुणकारका
 प्रमाण आबन्धीका असंख्यातवां भाग ही है ।

म्मीसाणकप्पेसु एकवीसविहत्तिया (-य) जीवभागहारे संते णिरयतिरिक्खेसु असंखेज्जा-
वलियमेत्तेण भागहारेण होदव्व ? ण च एवं, वात्तपुधत्तमेत्तुवक्कमणंतरेण उक्खसेण
सह विरोहादो । ण एस दोसो, णिरयतिरिक्खगईसु एकवीसविहत्तियाणमसंखेज्जा-
वलियमेत्तभागहारब्भुवगमादो । ण च वात्तपुधत्ततरेण सह विरोहो, तस्स वइपुल्ल-
वाचयत्तावलंबणादो । पयारतरेण वि एत्थ परिहारो चित्तिय वत्तव्वो ।

* अट्ठावीससंतकम्मिया असंखेज्जगुणा ।

§ ४०५ कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिए सम्मादिट्ठिणो मोत्तूण अण्णत्थ अणंताणु०
चउक्खस्स विसंजोयणाभावादो । ण च ते सव्वे विसजोएंति तेसिमसंखेज्जदिभाग-
मेत्ताणं चैव जीवाणं अणंताणुबंधिविसंजोयणपरिणामाण संभवादो । एत्थ को गुण-

शंका—जब कि सौधर्म और ऐशान कल्पमे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंका प्रमाण
लानेके लिये भागहार सख्यात आवली प्रमाण है तो नारकी और तिर्यंचोंमें इक्कीस विभक्ति-
स्थानवाले जीवोंका प्रमाण लानेके लिये भागहारका प्रमाण असंख्यात आवली होना चाहिये ।
परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर नारकी और तिर्यंचोंमें इक्कीस विभक्ति-
स्थानवाले जीवोंके उत्कृष्ट उपक्रमणकालका अन्तर जो वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा उसके साथ
विरोध आता है ?

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि नरकगति और तिर्यंचगतिमें इक्कीस
विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी सख्या लानेके लिये भागहारका प्रमाण असंख्यात आवली
स्वीकार किया है। किन्तु ऐसा स्वीकार करनेपर भी इस कथनका वर्षपृथक्त्व प्रमाण अन्तर
कालके साथ विरोध नहीं आता है, क्योंकि यहा वर्षपृथक्त्व पद वैपुल्यवाची स्वीकार किया
है। अथवा यहा उक्त शकाका परिहार प्रकारान्तरसे विचार करके कहना चाहिये।

* चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात-
गुणे हैं ।

§ ४०५ शंका—चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव
असंख्यातगुणे क्यों हैं ?

समाधान—अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंको छोड़ कर अन्यत्र चार
अनन्तानुबन्धी प्रकृतियोंकी विसंयोजना नहीं होती है। पर सभी अट्ठाईस विभक्तिस्थान-
वाले सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करते हैं, क्योंकि उनके
असंख्यातवें भागमात्र ही जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके कारणभूत परिणाम
सम्भव हैं। इससे प्रतीत होता है कि चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अट्ठाईस विभ-
क्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं।

मारो ? आबलियाए असंस्नेहदिमागो । उबकमणकालविसेसो एत्य ण णिहासे-
यम्भो, उबकममाणजीवाण पमाणेण अबिसेसे संते उबकमणकालविसेसफलोवर्धमादो ।

✽ छत्वीसविहसिया अणंतगुणा ।

१४०६ को गुणमारो ? छत्वीसविहसियरासिस्स असंस्नेहदिमागो ।

एवं पुण्ड्रिसुत्तोपो उच्चारणोपसमाणो समसो ।

१४०७ सपहि उच्चारणमस्सियुण आदेसप्यापहुअं वचइस्सामो । अययोगि ओरा

लिय०-अपकसु० मवसिदि०-आहारि ति ओपमगो ।

१४०८ आदेसेण चिरयगईएणेइएसु सभ्वयोवा बावीसविहसिया । मत्तानी-
सविह० असंस्नेहगुणा, एकवीसविह० अमस्नेहगुणा, चउवीसवि० असंस्नेहगुणा, अद्वा
वीसवि० असंस्ने० गुणा, छत्वीसविह० असंस्नेहगुणा । एवं पढमपुटवि-पंचिदियतिरिक्ख

सुक्क-बीवीस विमक्तिस्वानवाले जीवोकी संख्यासे अद्वाईस विमक्तिस्वानवाले जीवोकी
संख्याके छानेके छिये गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान-गुणकारका प्रमाण आबलीका असंख्यातवां माग है ।

प्रकृतमें अणकमण कालविसेसका विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि अणकमण कालमें
अपन होनेवाले जीवोकी संख्या यदि समान हो तो अणकमणकालकी अपेक्षा विचार करनेमें
सार्थकता है ।

✽ अद्वाईस विमक्तिस्वानवाले जीवोसे छत्वीस विमक्तिस्वानवाले जीव
अनन्तगुणे हैं ।

१४०६ सुक्क-प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान-प्रकृतमें गुणकारका प्रमाण छत्वीस विमक्तिस्वानवाली जीवराशिका असं-
ख्यातवां माग है ।

इस प्रकार पूर्वसूत्रके ओपका कथन समाप्त हुआ । इसके समान ही उच्चारणका
ओपका कथन है ।

१४०७ जब उच्चारणका अग्रव लेकर आदेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्वको बतलाते
हैं-अययोगी, लौदारिककाययोगी, अजसुवर्जनी, मध्य और आहारक इनमें अद्वाईस
आदि विमक्तिस्वानवाले जीवोका अल्पबहुत्व ओपके समान है ।

१४०८ आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें अद्वाईस विमक्तिस्वानवाले जीव सबसे
थोड़े हैं । इनसे सत्ताईस विमक्तिस्वानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विम
क्तिस्वानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे बीवीस विमक्तिस्वानवाले जीव असंख्यातगुण
हैं । इनसे अद्वाईस विमक्तिस्वानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे छत्वीस विमक्ति-
स्वानवाले जीव असंख्यातगुण हैं । इसीप्रकार पहली द्विविधीके नारकी जीवोंमें, पंचेन्द्रिय

पंचि०तिरि०पञ्जत्त-देव-गोहम्मादि जाव महस्मारे नि वत्तव्व । विदियादि जाव सत्तामि ति एव चेव वत्तव्वं । णवरि वावीम-एक्कवीमविहत्तिया णत्थि । एवं पांचिदिय-तिरिक्खवजोणिणी-मण्ण०-वाण०-जोदिसि० वत्तव्व । तिरिक्खव० पढमपुढविभंगो । णवरि छव्वीसविहात्तिया अणतगुणा । पंचिदियतिरिक्खवअपञ्ज० सव्वत्थोवा सत्तावीम-विह० । अट्ठावीसविह० असंखेज्जगुणा । छव्वीसविह० अमं० गुणा । एणं मणुम-अपञ्ज०-सव्वविगालिंदिय-पंचिदिय अपञ्ज०-चत्तारिकाय वादर-मुट्टम-पञ्जचापञ्जत्त-तस अपञ्ज०-विहग० वत्तव्वं ।

§ ४०६ मणुस्सेसु सव्वत्थोवा पचविहत्तिया । एगवि० संखेज्जगुणा, द्रुपि० त्रिसे-साहिया, तिवि० त्रिसेसा०, ण्कारसवि० त्रिसे०, चारसवि० त्रिसे०, चद्रुवि० संखे-ज्जगुणा, तेरसवि० संखे०गुणा०, वावीसवि० संखे० गुणा, तेवीमपि० त्रिसे०, एक्क-तिर्यच और पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त जीवोंमें तथा सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तक भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहा बाईस और इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव नहीं होते हैं । दूसरी आदि पृथिवियोंमें अल्पबहुत्वका जिसप्रकार कथन किया है उसीप्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंमें तथा भवनग्रामी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें कहना चाहिये । सामान्य तिर्यचोंमें पहली पृथिवीके समान अल्प-बहुत्वका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहाँ पर अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे होते हैं । पचेन्द्रिय तिर्यच लब्ध्य-पर्याप्तकोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थान वाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थान-वाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, वादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे पृथिवी आदि चारों स्यावरकाय, त्रम्ललब्ध्यपर्याप्त और विभगह्वानी जीवोंमें कथन करना चाहिये ।

§ ४०६ मनुष्योंमें पाच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे एक विभक्ति-स्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे बारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे बाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यात-गुणे हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे सत्ताईस विभ-

वीमवि० संखेजगुणा, चठवीमवि० संखेजगुणा, सत्तावीमवि० असंखेजगुणा, अष्टा
वीमवि० असंख० गुणा, छष्ठीसवि० असख गुणा । एष मणुसपत्न , णवरि सख
जगुण क्खय्यव्व । मणुस्सिमीसु सम्भरयोवा एगविहृणिया, दुवि० विसेसा०, तिबि०
विसे०, एक्कारसवि० विसे०, धारसवि० विसे०, चदुवि० मख० गुणा, तेरमवि०
संखे० गुणा, पावीसविह० सखे गुणा, तेवीमवि० विसेसा०, एक्खवीसवि सखे
जगुणा, चठवीमवि० समेजगुणा, सत्तावीसविह० सखे० गुणा, अष्टावीसवि० सखे०
गुणा, छष्ठीसवि० संखे० गुणा ।

§ ४१ आणदादि चाप तवरिमगेवसे चि सम्भरयोवा वारीसवि०, सत्तावी-
सवि० असखे गुणा, छष्ठीमवि० असंखे० गुणा, एक्कावीसवि सखे० गुणा, चठ
वीसवि० सखे गुणा, अष्टावीसवि० सखे गुणा । अनुदिसादि चाप अवराइदपि
सम्भरयोवा वारीसवि , एक्खवीसवि असंखे० गुणा, चठवीसवि० संखे० गुणा,
क्खिस्वानवाळे जीव असंखवातगुणे हैं । इनसे अट्ठाईस विमत्तिस्वानवाळे जीव असंख्यात
गुणे हैं । इनसे छष्ठीस विमत्तिस्वानवाळे जीव असंख्यातगुण हैं । इतीमक्खर पर्याप्त
मनुष्योंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये । इतनी विद्येपणा है कि मामान्य मनुष्योंमें
सत्ताईस, अट्ठाईस और छष्ठीस स्वानवाळे चत्तरोत्तर असंख्यातगुणे हैं । पर पर्याप्त-
मनुष्योंमें ठक स्वानवाळे जीवोंको चत्तरोत्तर संख्यातगुण कहना चाहिये । श्रीवेदी मनुष्योंमें
एक विमत्तिस्वानवाळे जीव सबसे बड़े हैं । इनसे दो विमत्तिस्वान वाळे जीव विशेष अधिक हैं ।
इनसे तीन विमत्तिस्वानवाळे जीव विशेष अधिक हैं । इनसे ग्यारह विमत्तिस्वानवाळे जीव विशेष
अधिक हैं । इनसे बारह विमत्तिस्वानवाळ जीव विशेष अधिक हैं । इनसे पार विमत्ति-
स्वानवाळे जीव संख्यातगुण हैं । इनस तेरह विमत्तिस्वानवाळे जीव संख्यातगुण हैं । इनसे
चाईस विमत्तिस्वानवाळे जीव संख्यातगुण हैं । इनसे तेईस विमत्तिस्वान वाळे जीव विशेष
अधिक हैं । इनसे इत्थीम विमत्तिस्वानवाळे जीव संख्यातगुण हैं । इनसे चौबीस विमत्ति-
स्वानवाळे जीव संख्यातगुणे हैं । इनस सत्ताईस विमत्तिस्वानवाळे जीव संख्यातगुणे हैं ।
इनसे अट्ठाईस विमत्तिस्वान वाळे जीव संख्यातगुण हैं । इनस छष्ठीस विमत्तिस्वानवाळे
जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४१० आनतकस्ससे लेकर उपरिम प्रेवयक तकके देवोंमें चाईम विमत्तिस्वानवाळे
जीव सधमे बड़े हैं । इनसे सत्ताईस विमत्तिस्वानवाळे जीव असंख्यातगुण हैं । इनसे
छष्ठीम विमत्तिस्वानवाळ जीव असंख्यातगुण हैं । इनम इत्थीस विमत्तिस्वानवाळे जीव
संख्यातगुण हैं । इनस चौबीस विमत्तिस्वानवाळ जीव संख्यातगुण हैं । इनम अट्ठाईस
विमत्तिस्वानवाळे जीव संख्यातगुण हैं । अनुदिसम लेकर अपरमित तकके देवोंमें
चाईस विमत्तिस्वानवाळ जीव सबसे बड़े हैं । इनस इत्थीम विमत्तिस्वानवाळे जीव

अष्टावीसवि० संखे० गुणा । एवं मन्वन्ते, णवरि संसेजगुणं कायचवं ।

§ ४११. इटियाणुवादेण एहंदिय-वादर० पञ्ज० अपञ्ज०-सुहुमेहंदिय-सुहुमेहंदिय-पञ्ज०-सुहुमेहंदिय अपञ्जत्तएसु मन्वत्योवा मत्तावीमविहत्तिया । अष्टावीसवि० अमंखेज-गुणा, छव्वीमवि० अणंतगुणा । एवं मन्वन्नणप्फदि-मन्वणिगोद-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादिट्ठि असण्णि त्ति वत्तव्व । णवरि वादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयमरीगपञ्ज० अपञ्ज०-वादरणिगोदपदिट्ठिदपञ्जत्तअपञ्जत्ताणं पुढविकाइयभंगो । पंचिदिय-पंचिदिय-पञ्ज०-त्तस-त्तसपञ्ज० ओघभगो । णवरि छव्वीसवि० अमंखे० गुणा । एवं पचमण०-पचवचि०-सण्णि-चक्खु त्ति वत्तव्वं ।

§ ४१२. ओरालियमिस्स० मन्वत्योवा वावीसविहत्तिया, एक्खवीमवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, सत्तावीसवि० अमंखे० गुणा, अष्टावीसवि० असंखे० असख्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अनुट्टिशादिकमें वाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे कह आये हैं, पर यहा वाईस विभक्तिस्थानवालोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे होते हैं ।

§ ४११ इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, वाटर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, मूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्याट्टि और असङ्गी जीवोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वादरवनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त और वादर निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर अपर्याप्त जीवोंमें पृथिवी कायिक जीवोंके अल्पबहुत्वके समान अल्पबहुत्व कहना चाहिये । पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें ओघके समान अल्पबहुत्व कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव अट्ठाईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे अनन्तगुणे न होकर असख्यातगुणे होते हैं । इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, संङ्गी और चञ्जुदर्शनी जीवोंमें अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिये ।

§ ४१२ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें वाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे

गुणा, छम्बीसवि अक्षरगुणा । वेतम्बिय० सम्बत्पोवा सचावीसवि० एकवीसवि० असखे० गुणा, चठवीसवि० अमंखे० गुणा, अट्टावीसवि० असखे० गुणा, छम्बीसवि० संखे० गुणा । वेतम्बियमिस्स० सम्बत्पोवा वावीसविहत्तिया, एकवीसवि० सखे० गुणा, सचावीसवि० असखे गुणा, चठवीसवि असखे० गुणा, अट्टावीसवि० असखे० गुणा, छम्बीसवि० असखे० गुणा । कम्मइय० एव येव । जपरि छम्बीसवि० अक्षरगुणा । एवमयाहार० इत्थम् । आहार०-आहारमिस्स० सम्बद्धमगो, जपरि वावीसं गत्थि ।

३४१२ वेदाजुवादेज इत्थिय० सम्बत्पोवा वारसविहत्तिया, तेरसवि० सखे० गुणा, वावीसवि० सखे गुणा, तेवीसवि० विस०, एकवीसवि सखे० गुणा, सचावीसवि० असखे० गुणा, चठवीसवि असखे० गुणा, अट्टावीसवि० असखे० गुणा, छम्बीसवि०

अट्टाईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे छम्बीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव अनन्तगुणे है । वैकिकिक क्रययोगी जीवोंमें सत्ताईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव सबसे बोधे है । इनसे इक्कीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे चौबीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है ; इनसे अट्टाईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे छम्बीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव सक्यात्तगुणे है । वैकिकिकमिक्कययोगी जीवोंमें चारईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव सबसे बोधे है । इनसे इक्कीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव सक्यात्तगुणे है । इनसे सत्ताईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे चौबीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे अट्टाईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे छम्बीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इसीप्रकार कर्मवक्रययोगी जीवोंमें भी असक्यात्तगुण कर्मन कर्मन चाहिये । इतनी विशेषता है कि कर्मवक्रययोगी जीवोंमें अट्टाईस विमत्तिस्वान्नावासे जीवोंसे छम्बीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव अनन्तगुणे होते हैं । कर्मवक्रययोगीके समान अन्याहारक जीवोंमें असक्यात्तगुण कर्मन करना चाहिये । आहारक और अन्याहारकमिक्कययोगी जीवोंमें सर्वोपसिद्धिके वेबोके समान असक्यात्तगुण कर्मन कर्मन चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन दो बोगावासे जीवोंके चारईस विमत्तिस्वान्नावासे जीवोंमें पत्ता जाता है ।

३४१३ त्व मार्गणाक अनुवावसे जीवोंमें चारह विमत्तिस्वान्नावासे जीव सबसे बोधे है । इनसे तेरह विमत्तिस्वान्नावासे जीव सक्यात्तगुणे है । इनसे चारईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे तेईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव विशेष अधिक है । इनसे इक्कीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव सक्यात्तगुणे है । इनसे सत्ताईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे चौबीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे अट्टाईस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है । इनसे छम्बीस विमत्तिस्वान्नावासे जीव असक्यात्तगुणे है ।

असंखे० गुणा । पुरिसवेदे सव्वत्थोवा पचविहात्तिया, एकारसवि० संखे० गुणा, वारसवि० विसेसा०, तेरसवि० संखे० गुणा, वावीसवि० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसे०, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, एकवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्टावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० असंखे० गुणा । णवुंसए सव्वत्थोवा वारसविहात्तिया, तेरसवि० संखे० गुणा, वावीसवि० संखे० गुणा, तेवीसवि० विसे०, सत्तावीसवि० असंखे० गुणा, एकवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्टावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० अणंतगुणा । अवगद० सव्वत्थोवा एकारसवि०, एकवीसवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, पंचवि० संखे० गुणा, एगवि० संखे० गुणा, दुवि० विसेसा०, तिवि० विसेसा०, चदुवि० संखेञ्जगुणा ।

१४१४. कसायाणुवादेण कोधक० सव्वत्थोवा पचविहात्तिया, एकारसवि० संखे० तगुणे हैं । पुरुषवेदमें पाच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे वारह विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे वार्डस विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । नपुसकवेदमे वारह विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे वार्डस विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं । अपगतवेदमे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे पाच विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे एक विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे दो विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे तीन विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे चार विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

१४१४. कपाय मार्गणाके अनुवादसे कोधकपायमे पाच विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे वारह विभक्ति-

गुणा, बारसवि० विसे०, चतुर्वि० सखे० गुणा । सेसमोघमंगो । माणक सख्य
 त्थोबा पचवि , चतुर्वि सखे० गुणा, एकारसवि० विसे०, बारसवि० विसे०,
 तिण्हं सखे० गुणा, तेरसण्हं सखे० गुणा । सेसमोघमंगो । मापाकसाय० सख्यत्थोबा
 पचण्ह विहसिया, तिण्ह वि० संखे० गुणा, चतु० विसे , एकारस० विसे०, बारस०
 विसे०, दोण्ह सखे० गुणा, तेरस० सखे० गुणा । सेसमोघमंगो । सोमक० सख्यत्थोबा
 पचण्ह, दोण्ह० सखे० गुणा, तिण्ह विसे०, चतुर्वि० विसे , एकारस० विसे०,
 बारस० विसे , एकरवीस सखे० गुणा, तेरसण्हं वि० संखे० गुणा । सेसमोघमंगो ।
 अकसायि सख्यत्थोबा एकरवीसविहसिया, चठवीस० सखे० गुणा । एव जहाकसादाणं
 वसण्ह ।

§ ४१५ आमिणि०-सुद -ओहि सख्यत्थोबा पचविहसिया, एकरवि सखे०

स्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे चार विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।
 छेप कवन ओपके समान है । मानकपायमें पांच विभक्तिस्वानवाले जीव सबसे बोड़े हैं ।
 इनसे चार विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्वानवाले जीव
 विशेष अधिक हैं । इनसे पारह विभक्तिस्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे तीन
 विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे
 हैं । छेप कवन ओपके समान है । मापाकपायमें पांच विभक्तिस्वानवाले जीव सबसे
 बोड़े हैं । इनसे तीन विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे चार विभक्तिस्वान-
 वाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
 इनसे बारह विभक्तिस्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे दो विभक्तिस्वानवाले जीव
 संख्यातगुणे हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । छेप कवन ओपके
 समान है । सोमकपायमें पांच विभक्तिस्वानवाले जीव सबसे बोड़े हैं । इनसे दो विभ-
 क्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तीन विभक्तिस्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं ।
 इनसे चार विभक्तिस्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे ग्यारह विभक्तिस्वानवाले जीव
 विशेष अधिक हैं । इनसे बारह विभक्तिस्वानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे एक
 विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे तेरह विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे
 हैं । छेप कवन ओपके समान है । अकपायी जीवोंमें इक्कीस विभक्तिस्वानवाले जीव
 सबसे बोड़े हैं । इनसे चौबीस विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । अकपायी जीवोंमें
 तिसप्रकार अस्पष्टवृत्त कवन किना है वहीप्रकार वचनस्वातसबतोंके भी अस्पष्टवृत्त
 कवन करना चाहिये ।

§ ४१६. मतिहानी, भुतहानी और अचविहानी जीवोंमें पांच विभक्तिस्वानवाले जीव
 सबसे बोड़े हैं । इनसे एक विभक्तिस्वानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसप्रकार तेईस विभक्ति-

गुणा । एव जाव तेवीसविहत्तिओ त्ति ओघभंगो । तदो एकवीस० असंखे० गुणा, चउवीस० असंखे० गुणा, अट्टावीस० असंखे० गुणा । एवमोहिदमण० सम्मादिट्टि त्ति वत्तव्व । मणपज्ज० एव चेव, णवरि मण्णेज्जगुणं कायव्व । एव मज्जद० सामा-इयच्छेदो० वत्तव्वं । परिहार० सव्वत्थोवा वावीसविहत्तिया, तेनीसविह० विसे०, एकवीसवि० संखे० गुणा, चउवीसवि० संखे० गुणा, अट्टावीसवि० संखे० गुणा । एवं संजदासंजदाणं । णवरि चउवीसवि० असंखे० गुणा, अट्टावीसवि० असंखे० गुणा । सुहुमसांपरा० सव्वत्थोवा एकवि०, चउवीसवि० संखे० गुणा, एकवीस० संखे० गुणा । असंजद० सव्वत्थोवा वावीसविह०, तेवीसविह० विसे०, सत्तावीस० असंखे० गुणा, एकवीसवि० असंखे० गुणा, चउवीस० असंखे० गुणा, अट्टावीसवि० असंखे० गुणा, छव्वीसवि० अणतगुणा । एव तेउ०पम्म० । णवरि छव्वीस० स्थान तक ओघके समान कथन करना चाहिये । तदनन्तर तेईस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी कथन करना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि मतिज्ञानी आदि जीवोंमें जिन स्थानवाले जीवोंको असंख्यातगुणा कहा है उन्हें यहा सख्यातगुणा कर लेना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके अल्पवहुत्वके ममान सयत, सामाधिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके अल्पवहुत्वका कथन करना चाहिये । परिहारविशुद्धिसयतोंमें वाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इनसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार सयतासयतोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनमें इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीवोंसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । सूक्ष्मसापराधिकसयतोंमें एक विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातगुणे हैं । असयतोंमें वाईस विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे तेईस विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सत्ताईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे इक्कीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इससे चौवीस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अट्टाईस विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इससे छव्वीस विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार तेजोलेइया और पद्मलेइयामें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि

अमत्से० गुणा ।

॥ ४१६ ॥ किण्व०-बील० सम्बन्धोवा एकवीमविह०, सत्तावीसविह० असत्से० गुणा षट्ठीस अमत्से गुणा, अट्टावीस० असत्से० गुणा, छम्बीस० अजतगुणा । ऋत० सम्बन्धोवा वावीम विह० सत्तावीम० असत्से० गुणा । सेस ओपमगो । सुक-लेस्ति० जाव तेवीमविहृत्पिया ति ओपमगो । तदो सत्तावीस० असत्से गुणा । तवति आणदमगो । अमवमिद्धि० सामण० णत्थि अप्याबहुग । सुइयसम्माइहीसु जाव तेरसविहृत्पिओ ति ओपमगो । तदो एकवीस० असत्सेअगुणा । वेदय० सम्बन्धोवा वावीसविह०, तेवीसविहृ विसेसा०, षट्ठीस० असत्से० गुणा, अट्टावीस० असत्से० गुणा । तवसम० सम्बन्धोवा षट्ठीसविह०, अट्टावीस० अमत्से० गुणा । एवं सम्मामिच्छते वि ।

एवमप्याबहुग समत्त ।

इनमें अट्टाईस विमक्तिस्वानवाले जीवोंसे छम्बीस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुणे होते हैं ।

॥ ४१७ ॥ कृष्ण और नीळ छेदवामें इक्कीस विमक्तिस्वानवाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे सत्ताईस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुणे हैं । इनसे चौबीस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुण हैं । इनसे अट्टाईस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुणे हैं । इनसे छम्बीस विमक्तिस्वानवाले जीव अनन्तगुण हैं । कपोतछेदवामें बार्हिस विमक्तिस्वानवाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे सत्ताईस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुणे हैं । शेष कथन ओपके समान है । छुड्छेइयावाले जीवोंमें तेईस विमक्तिस्वान तक अस्पबहुत्व ओपके समान है । तदनन्तर तेईस विमक्तिस्वानवाले जीवोंसे सत्ताईस विमक्तिस्वानवाले असम्पातगुणे हैं । इनके ऊपर आनतके समान जानना चाहिये । जम्बव और सासाकन सम्बन्धविहृत् जीवोंमें अस्पबहुत्व नहीं है । शायिकसम्बन्धविहृत्तोंमें तेरह विमक्तिस्वान तक अस्पबहुत्व ओपके समान है । तरह विमक्तिस्वानवाले जीवोंसे इक्कीस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुण हैं । वेदकसम्बन्धविहृत्तोंमें बार्हिस विमक्तिस्वानवाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे तेईस विमक्तिस्वानवाले जीव विशेष अर्थिक हैं । इनसे चौबीस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुण हैं । इनसे अट्टाईस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुणे हैं । अणमसम्बन्धविहृत्तोंमें चौबीस विमक्तिस्वानवाले जीव सबसे बड़े हैं । इनसे अट्टाईस विमक्तिस्वानवाले जीव असम्पातगुणे हैं । इसीप्रकार सम्बन्धविहृत्त्वमें भी कथन करना चाहिये ।

इसप्रकार अस्पबहुत्वानुयोगाद्वार समान हुआ ।

* भुजगारो अप्पदरो अवट्टिदो कायञ्चो ।

§ ४१७ एदेण भुजगाराणिओगद्वार सूचिदं जडवमहाहरिण । कथं भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदाण तिण्हं पि भुजगारसण्णा ? ण, तिण्हमण्णोण्णाविणाभावीणमण्णोण-सण्णाविरोहादो, अवयविदुवारेण तिण्हमज्जवाणमेयत्तादो वा । भुजगाराणिओगद्वार किमट्ठं बुच्चदे ? पुव्वुत्तपदाणमवट्टाणाभावपरूवणट्ठं । तत्थ भुजगारविहत्तीए इमाणि सत्तारस आण्णोओगद्वाराणि णादव्वाणि भवंति । त जहा—समुक्कित्तणा सादियविहत्ती अणादियविहत्ती ध्रुवविहत्ती अद्ध्रुवविहत्ती एगजीवेण सामिच कालो अंतर, णाणा-जीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसण कालो अतरं भावो अप्पाबहुअ चेदि ।

§ ४१८. समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अत्थि भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदविहत्तिया । एवं सत्तसु पुटवीसु । तिरिक्ख-पाच्चदिय-तिरिक्ख-पाच्चिं० तिरिं० पज्ज०-पाच्चिं० तिरिं० जोणिणी मणुसतिय-देव-भवणादि जाव

* अव विभक्तिस्थानोंके विषयमे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थानोंका कथन करना चाहिये ।

§ ४१७ यतिवृषम आचार्यने इम उपर्युक्त सूत्रके द्वारा भुजगार अनुयोगद्वारको सूचित किया है ।

शंका—भुजगार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंकी भुजगार संज्ञा कैसे हो सकती है ? समाधान—भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीनों एक दूसरेकी अपेक्षासे होते हैं, इसलिये इन्हें तीनोंमेंसे कोई एक सज्ञाके देनेमें कोई विरोध नहीं आता है । अथवा अवयवीकी अपेक्षा ये तीनों अवयव एक हैं, इसलिये भी ये तीनों किसी एक नामसे कहे जा सकते हैं ।

शंका—यहां भुजगार अनुयोगद्वारका कथन किसलिये किया है ?

समाधान—पूर्वोक्त विभक्तिस्थान सर्वथा अवस्थित नहीं है, इसका ज्ञान करानेके लिये यहा भुजगार अनुयोगद्वारका कथन किया है ।

भुजगार विभक्तिस्थानमें ये सत्रह अनुयोगद्वार जानने चाहियें । वे इसप्रकार हैं—समुक्कीर्तना, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति और अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर, तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भगुविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व ।

§ ४१८. इनमेंसे समुक्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थान-वाले जीव हैं । इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके नारकियोंमे तथा तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये

उत्तरिमगोबन्धे ति-पश्चिदिय-पश्चि०-परञ्च०-तप्त-सप्तपञ्च०-पञ्चमण०-पञ्चवर्षि०-काय-
 योगि-ओरासिप०-वेउम्बिप०-तिण्णिवेद०-चत्तारि क्काम असंभद चक्खु० अचक्खु०
 छलेस्स०-भवसि०-सम्भि०-आहारि ति वत्थन् । पश्चि० तिरिक्खअपञ्च० अरिप
 अप्पदर अबद्धिदविहसिया । एव मणुसअपञ्च० अणुदिसादि जाव सञ्चद० सम्भ-
 प्पदिय-सम्भविगल्लिदिय-पश्चि० अपञ्च०-पञ्चकाम०-तप्तअपञ्च० ओरासिपमिस्स०
 वेउम्बिपमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-मदि सुद अण्णत्त विइण० भामिणि ०-सुव००
 ओहि०-ममपञ्च०-सज्जद-सामाअयच्छेत्तो०-परिहार०-सज्जदासन्नद ओहिदस०-सम्मादि०
 ल्हाइय०-वेदय०-उत्तमम०-मिच्छादि० असण्णि० अपाहारि ति वत्थन् । आहार० आहार-
 मिस्स० अरिप अबद्धिदविहसिया । एवमकसायि०-सुद्धमसांपराइय० जहाक्खवाइ०
 अमवसिद्धि०-सायण०-सम्मात्तिच्छाइ० ।

एव समुक्तिष्या समथा ।

तीनों प्रकारके समुप्य, सामान्य देव, भवमवासिबोसे लेकर अपरिम प्रीयेवक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोबोगी, पांचों बचनयोगी, कायबोगी, औदारिक काययोगी, वैकिकिमि काययोगी, बीवेरी, पुरुषवेरी, मणुसकवेरी, चारों कपाय पाके, असंपत्, चत्तुर्वर्त्तनी, अचत्तुर्वर्त्तनी, छहों छेत्तयवाले, मध्य, संखी और आहारक जीबोंमें कवन करना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गवाजोंमें मुजगार, अस्पतर और अचक्षित ये तीनों प्रकारके स्थान पाये जाते हैं ।

पंचेन्द्रियवर्षिच कम्म्यपर्याप्तक जीबोंमें अस्पतर और अचक्षित ये दो स्थान पाये जाते हैं मुजगार वही । इसीप्रकार कम्म्यपर्याप्तक समुप्य, अणुदिकसे लेकर सर्ववैसिद्धि तकके देव, सत्री पकेन्द्रिय, समी विकसेन्द्रिय पंचेन्द्रिय कम्म्यपर्याप्त पांचों स्वाचरकाय, त्रसकम्म्य पर्याप्त, औदारिकमिअकायबोगी वैकिकिमिअकायबोगी, कर्ममकायबोगी अपगतवेरी मत्तज्जानी, बुवाज्जानी, विमग्गज्जानी मटिज्जानी ज़ुत्तज्जानी, अचक्षिज्जानी, मन्त्तपर्यवज्जानी, छपत्त, सामायिकसपत्त, छेत्तोत्तवापनासंपत्त, पट्टिहारविद्धिदिसकत्त सबतासंकत्त अचक्षि-
 वर्त्तनी, सम्पत्तद्धि, धाविकसम्पत्तद्धि, वेदकसम्पत्तद्धि, तपक्कमसम्पत्तद्धि, मिप्पात्तद्धि, असंखी और ज्ञाताहारक जीबोंमें कवन करना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गवाजोंमें मुजगारके बिना अस्पतर और अचक्षित ये दो स्थान पाये जाते हैं ।

आहारककाययोगी और आहारकमिअकायबोगी जीबोंमें केवल एक अचक्षित विमत्ति-
 त्तामचक्षे ही जीव होते हैं । इसीप्रकार अकयापी, सुक्कसांपत्तविकसकत्त, वचत्तनात्त-
 पंक्त्त, अमम्य, सासाहत्तसम्पत्तद्धि और सम्पत्तमिप्पात्तद्धि जीबोंमें आबना चाहिये ।

इस प्रकार समुक्तीर्वर्त्तन कर्तुयोग्यार समाप्त हुआ ।

§ ४१६. सादिय-अणादिय धुव-अद्दुव-अणिओगदाराणि जाणिदूण वत्तव्वाणि ।

§ ४२०. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदविहत्ती कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादिट्टिस्स मिच्छादिट्टिस्स वा । एवं सत्तमपुढवि०-तिरिक्ख-पंचि०-तिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज०-पंचि० तिरि० जोणिणी-मणुस्सतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिदिय-पंचि० पज्ज०-तम-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-वेडव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारि क०-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धिय०-सण्णि०-आहारि त्ति वत्तव्वं । पंचि० तिरि० अपज्ज० अप्पदर० अवट्टिद० कस्स ? अण्णदरस्स । एव मणुसअपज्ज०, अणुहिसादि जाव सव्वट्ट०-सव्वएइदिय-सव्वविगल्लिदिय-पंचि० अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स० वेडव्वियमिस्स०-कम्मइय - मदि - सुद-अण्णाण-विहग०-मिच्छाइ०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्व ।

§ ४२१. आहार०-आहारमिस्स० अवट्टिद० कस्स ? अण्णदरस्स । एवमकसायि०-

§ ४१६. सादि, अनादि, धुव और अधुव अनुयोगद्वारोंको जानकर कथन करना चाहिये ।

§ ४२०. स्वामित्व अनुयोगद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? यथासम्भव किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार सातवीं पृथ्वीके जीवोंमें तथा तिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय-तिर्यंच योनीमती, सामान्य पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, मवनवासियोंसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस-पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाय-योगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुसकवेदी, चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छोहों लेइयावाले, भव्य, सही और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थान किसके होते हैं ? किसी भी पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तके होते हैं । इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्त पचेन्द्रिय, पाचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाय योगी, कर्मणकाययोगी, मलयज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिए ।

§ ४२१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्ति-स्थान किसके होता है ? किसी भी आहारककाययोगी या आहारकमिश्रकाययोगी जीवके होवा है । इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसयत, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-

ब्रह्मन्वाद्-सासण-सम्मामि-वचन्व । अणद-अप्यदरं कस्स ? खयस्स ।
 अबद्धिदं कस्स ? अण्ण-उवसामयस्स खयस्स वा । आमिणि-सुद-ओदि-
 मणपज्ज-अप्यदरं कस्स ? अण्ण-अबद्धिद कस्स ? अण्ण-एव सज्जदासवद्
 सामाहय-छेदो-परिहार-सवद् ओद्धिस-सम्मादि-वेदय-उवसम-वचन्व । सुहुम
 सांपराइय-अबद्धिदं कस्स ? अण्णदर-उवसामयस्स खयस्स वा । अम्मवसि-
 अबद्धिद कस्स ? अण्णद-स्वइयसम्मइदि-अप्यदरं कस्स ? खयस्स । अबद्धिद-
 कस्स ? अण्ण- ।

एव सामिचं समच ।

• पृथ एगजीवेण कासो ।

§ ४२२ समुच्चिष्य सामिच सेसाणिजोगदाराणि च अमभिदूण कालाणिजोग-
 येव मयतस्स अहवसह मयवतस्स को अहिप्पाओ ? कालाणिजोगदारे अबगए संते
 दृष्टि जीवोके कथन करन्य चाहिये ।

अपगतवेदी जीवोमें अस्पतर विमत्तिस्वान किसके होता है ? क्षपक अपगतवेदोके होता
 है । अवस्थित विमत्तिस्वान किसके होता है ? किसी भी उपशामक या क्षपक अपगत
 वेदी जीवके होता है ।

मतिज्ञानी, धृतज्ञानी, भवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी जीवोमें अस्पतर विमत्तिस्वान
 किसके होता है ? किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके होता है । एक चार क्षामबाडे
 जीवोमें अवस्थित विमत्तिस्वान किसके होता है ? किसी भी मतिज्ञानी आदि जीवके
 होता है । इसीप्रकार सपत्तसंबन्ध सामाधिकसंबन्ध, छेदोपभाषनासपत्त, परिहारविशुद्धि
 संबन्ध सपत्त, अवधिर्धमी सम्बन्धदृष्टि, वेदकसम्बन्धदृष्टि और उपशामसम्बन्धदृष्टिके कथन
 चाहिये ।

सूक्ष्मसांपरायिकसंबन्धोमें अवस्थित विमत्तिस्वान किसके होता है ? किसी भी उप-
 सामक या क्षपक सूक्ष्मसांपरायिकसंबन्ध जीवके होता है । अमग्गोमें अवस्थित विमत्ति-
 स्वान किसके होता है ? किसी भी अमग्गके होता है । शायिकसम्बन्धगृष्टियोमें अस्पतर
 विमत्तिस्वान किसके होता है ? किसी भी क्षपक शायिकसम्बन्धगृष्टिके जीवके होता है ।
 अवस्थित विमत्तिस्वान किसके होता है ? किसी भी शायिकसम्बन्धगृष्टिके होता है ।

इसप्रकार सामित्वानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

• अब एक जीवकी अपथा कासका कथन करते हैं ।

§ ४२२ ईन्द्र-वतिह्वम आचार्येन समुत्कीर्त्तना, स्वमित्त्व और सेव अनुयोगद्वारा
 कथन न करके केवल कालानुयोगद्वारा कथन किया, सो इससे उनका क्या अधिप्राय है ?
 समाधान-अनुयोगद्वारा काय हो जानपर मुद्रिमान शिष्य दूसरे अनुयोगद्वाराको

सेसाणिओगदाराणि बुद्धिमंतेहि सिस्सेहि अवगंतुं साक्किंति, सेसाणिओगदाराणं काल-
जोणित्तादो, तेण कालाणुओगदारं चैव परूवेभि त्ति एदेण अहिप्पाएण एत्थ एगजीवेण
कालो त्ति भणिदं ।

* भुजगार-संतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहणु-
क्खस्सेण एगसमओ ।

§ ४२३. कुदो ? छ्वीसविहात्तिएण संतावीसविहात्तिएण वा सम्मचे गहिदे जहणु-
क्खस्सेण भुजगारस्स एगसमयमेत्तकालुवलंभादो । को भुजगारो णाम ? अल्पदरपयडि-
संतादो बहुदरपयडिसंतपडिवज्जणं भुजगारो । चंडवीससंतकम्मियसम्मादिट्ठिम्मि मिच्छ-
त्तमुवगदम्मि वि भुजगारस्सेगसमओ लब्भइ, चंडवीससंतादो अंडावीससंतपुवगयस्स
पयडिवइदिदंसणादो ।

* अल्पदर-संतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेण
एगसमओ ।

ज्ञान सकते हैं, क्योंकि शेष अनुयोगद्वारोंका काल अनुयोगद्वार योनि है । इसलिये 'मै
(यतिवृषभ आचार्य) कालानुयोगद्वारका ही कथन करता हूँ' इस अभिप्रायसे यतिवृषभ
आचार्यने यहा 'एगजीवेण कालो' यह सूत्र कहा है ।

* भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय है ।

§ ४२३ शंका—भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवका जघन्य और उत्कृष्ट काज एक समय
कैसे है ?

समाधान—जब कोई एक छ्वीस विभक्तिस्थानवाला या सत्ताईस विभक्तिस्थानवाला
जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करके अट्टाईस विभक्तिस्थानवाला होता है तब उसके भुजगारका
जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है ।

शंका—भुजगार किसे कहते हैं ?

समाधान—थोड़ी प्रकृतियोंकी सत्तासे बहुत प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होना भुजगार
कहलाता है । तथा धनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होकर जिसके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता
है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तब उसके भी भुजगारका एक समय
मात्र काल देखा जाता है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तासे अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ताको
प्राप्त हुए जीवके प्रकृतियोंमें वृद्धि देखी जाती है, इसलिये यह भुजगार है ।

* अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवका कितना काल है ? जघन्य काल एक
समय है ।

१४२४ कुदो ? अद्वासीस-विहारीएण अणतासुबंधिचठके विसंजोइवे अप्पदरस्स एगसमयकासुबळंमादो । एवं सम्मत्तसम्माभिच्छुम्भेद्विदपढमसमए मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्त-सम्मात्ताभि अविदपढमसमए सुवगसेदीए अविदपपदीण पढमसमए प अप्पदरस्स एगसमयो अहण्णो पक्खेयम्भो ।

० उक्तस्तेण वे समयया ।

१४२५ कुदो ? अनुसयवेदोइएण सुवमसेदिं अदिदम्मि सवेदयदुचरिमसमए इत्थिवेदे परसकमेव संकामिदे तेरससत्तकम्मादो पारससत्तकम्मसुवणमिय से काळे अनुसयवेदे उदयदिद माळिय पारससत्तकम्मादो एकरससत्तकम्मसुवगयम्मि विरंतर मप्पदरस्स वेसमयतवळंमादो ।

० अबद्धिवसंतकम्मविहृत्तिपाण तिणिण भंगा ।

१४२६ उ अहा, केरुं पि अजादिओ अपत्तवसिदो, अमम्भेसु अमम्भसमाण मम्भेसु च विवग्गिगोदमावसुवगएसु अब्हावं मोचूण सुजगारअप्पदरायममावादो ।

१४२७ अंका—अस्पतर विमक्तिस्थानवाळे जीवका अस्पतरका एक समय कैसे है ?

समाधान—जो अद्वासीस विमक्तिस्थानवाळ जीव अनन्तानुबन्धी चारही विसंयोजन्य करता है उसके अस्पतरका एक समय मात्र फल देखा जाता है ।

इसीप्रकार सम्पत्कृति और धम्ममिष्वात्थ प्रकृतिकी ब्रह्मता कर चुकनेपर पहले समबने मिष्वात्थ, सम्परिमष्वात्थ और सम्पत्कृतिके अय कर चुकनेपर पहले समबने तथा अफक जेनीमें अयको प्राप्त हुई प्रकृतियोंके अय हो चुकनेपर पहले समबने अस्पतरके एक समयप्रमाण अयम्ब अस्पत्र कथन करना चाहिये ।

० अस्पतर विमक्तिस्थानवाळे जीवका उत्कृष्टकाल दो समय है ।

१४२८ अंका—अस्पतर विमक्तिस्थानवाळेका उत्कृष्टकाल दो समय कैसे है ?

समाधान—अब कोई जीव अनुसकवेदके अयके साथ अफकजेनीपर पहुँकर और और अवेद भागके द्विचरय समयमें अवेदको परमंठविकरसे संकाम्य करके तेरह प्रकृतियोंकी सत्तासे चारह प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होता है और उसके अनन्तर समयमें ही अनुसकवेदकी अद्विचरविको गळकर चारह प्रकृतियोंकी सत्तासे स्यारह प्रकृतियोंकी सत्ताको प्राप्त होता है तब उसके अस्पतरका अस्पतर दो समय प्रमाण फल देखा जाता है ।

० अबस्थित विमक्तिस्थानवाळे जीवोंके अबस्थित विमक्तिस्थानोंके तीन संय होते हैं ।

१४२९ वे इसप्रकार हैं—किन्ही जीवोंके अबस्थित विमक्तिस्थान असादि-अनन्त होता है क्योंकि जो अनन्त है या अयम्भोंके समान निम्नगिगोदको प्राप्त हुए मम्ब हैं, उनके अवरिवत् स्थानके सिवाय भुतागात् और अस्पतर स्थान नहीं पाये जाते हैं । किन्ही जीवोंके

केसिं पि अणादिओ सपज्जवसिदो, अणादिसरूवेण छुव्वीसपयडीसंतम्मि अञ्चिय सम्मत्तमुवगयजीवम्मि अवट्ठाणस्स अणादिसाणिहणत्तदंसणादो । केसिं पि सादिस-पज्जवसिदो ।

* तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जह० एगसमओ ।

§ ४२७. कुदो ? अतरकरणं करिय मिच्छत्तपटमट्ठिदिदुचरिमसमयम्मि सम्मत्त-मुवेलिय अप्पदरं काऊण तदो मिच्छादिट्ठिचरिमसमयम्मि एगसमयमवट्ठाणं काऊण तदियसमए सम्मत्तं पडिवण्णजीवम्मि अप्पदरभुजगाराणं मज्झे अवट्ठिदस्स एगसमय-कालवलंभादो ।

* उक्कस्सेण उवट्ठुपोग्गलपरियट्ठं ।

अवस्थित विभक्तिस्थान अनादि-सान्त होता है, क्योंकि जिस जीवके अनादि कालसे छुव्वीस प्रकृतियोंकी सत्ता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर अवस्थित विभक्तिस्थान अनादि-सान्त देखा जाता है। किन्हीं जीवोंके अवस्थित विभक्तिस्थान सादि-सान्त होता है।

* इन तीनोंमेंसे जो अवस्थित विभक्तिस्थानका सादि-सान्त भंग है उसका जघन्यकाल एक समय है ।

§ ४२७. शंका—इसका जघन्यकाल एक समय कैसे है ?

समाधान—जो जीव अन्तरकरण करनेके अनन्तर मिध्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमे सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके अट्टाईस विभक्तिस्थानसे सत्ताईस विभक्तिस्थानको प्राप्त होकर एक समय तक अल्पतर विभक्तिस्थानवाला होता है। अनन्तर मिध्यादृष्टि गुण-स्थानके अन्तिम समयमें सत्ताईस विभक्तिस्थानरूपसे एक समय तक अवस्थित रहकर मिध्यात्वके उपान्त्य समयसे तीसरे समयमे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अट्टाईस विभक्ति-स्थानवाला होता है उसके अल्पतर और भुजगारके मध्यमे अवस्थितका जघन्यकाल एक समय देखा जाता है।

विशेषार्थ—यहा अवस्थित विभक्तिस्थानका जघन्यकाल एक समय बतलाते समय मिध्यात्वगुणस्थानके अन्तके दो समय और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए सम्यग्दृष्टिका पहला समय, इसप्रकार ये तीन समय लेना चाहिये। इनमेंसे पहले समयमे सम्यक्त्वकी उद्वेलना फराके सत्ताईस विभक्तिस्थान प्राप्त करावे, दूसरे समयमे तदवस्थ रहने दे और तीसरे समयमे उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कराके अट्टाईस विभक्तिस्थानको प्राप्त करावे। तब जाकर अल्पतर और भुजगार विभक्तिस्थानके मध्यमे अवस्थितविभक्तिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। इसीप्रकार सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा भी अवस्थितका एक समय काल प्राप्त किया जा सकता है।

* अवस्थित विभक्तिस्थानका उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्टकाल है ।

५४२८ ऊनस्त अद्रपोगलपरियद्मस्त उचद्रुपोगलमिदि सण्णा । उपशब्दस्य हीनार्थवाचिनो ब्रह्मणात् । तं ब्रह्मा-एगो अणादियमिच्छादिही तिष्ठि वि करणाणि काळ्य पदमसम्मत्त पट्टिबण्णो । तस्य सम्मत्तं पट्टिबण्णपदमसमए ससारमणत्त सम्मत्तगुणेण केत्तुण पुणो सो ससारो तेण अद्रपोगलपरियद्मत्तो कदो । सम्भ लद्दएण काळेण मिच्छत्त गत्तुण सम्भबइण्णुव्वेत्तणद्दाए सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताभि उव्वेत्तिय अप्पदर करिय अबहाणमुबभदो । पुणो एदण पत्तिदो० असत्त्वे० भागेणूण मद्रपोगलपरियद्मत्तद्विदेण सह परिममिय अतोमुद्दुत्तावसेसे ससारे सम्मत्त भेत्तुण मुजमारविहत्तिओ जादो । एवमत्तद्विदस्स पत्तिदोवमस्स यत्तंत्वेत्तदिभागेणूणमद्र पोगलपरियद्मत्तस्यकालो । एवमत्तवत्सु० मत्तसिद्धि ।

५४२९ सपहि अइसहाइरियपरिविदमोभमुत्तारणमरिस मणिय बालजणापुग्ग इह परविदमुत्तारणादेत्तं वत्तइस्सामो ।

५४३ आदेसेण विरयमईए येरईएसु मुत्त० अप्प० सइत्तुत्त० एगसमओ ।

५४२० अर्थपुद्गलपरिवर्तनमुद्गलसे कृत्त कम काळकी वपार्थपुद्गलपरिवर्तन संज्ञा है, क्योंकि यहांपर 'तप' शब्दका अर्थ हीन छिया है । इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है-कोई एक अनादि मिच्छादष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके मत्तमोपरम सम्भक्त्वको प्राप्त हुआ । तथा सम्भक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समभवे सम्भक्त्वगुणके द्वारा जनन्त ससारका छेदन कर उसने इस ससारको अर्थपुद्गलपरिवर्तनमात्र कर दिया । जनन्तर वह अठिउपु कालके द्वारा मिच्छात्तको प्राप्त होकर और सबसे अयम्भ उद्देखनकाळके द्वारा सम्भक्त्वकृति तथा सम्भग्मिच्छात्तवमद्दत्तीधि उद्देखना करके २० विमत्तित्त्वानसे सत्ताईस और सत्ताईन विमत्तित्त्वानसे छम्पीस, इसप्रकार अल्पतर करवा हुआ छम्पीस विमत्तित्त्वानमें अवस्थानको प्राप्त हो गया । यह सब काळ पस्वके असम्भत्तवै भागप्रमाण होवा है । अतः इस काळसे न्यून अर्थपुद्गलपरिवर्तन तक अवस्थित विमत्तित्त्वानके साथ संसारमें परिभ्रमण करके वह जीव संसारमें रहनेका काळ अन्तर्मुहूर्त छेप रह जानेपर सम्भक्त्वको प्रदण करके छम्पीस विमत्तित्त्वानसे अद्दाईस विमत्तित्त्वानको प्राप्त करके मुजगारविमत्तित्त्वानवात्त हो जावा है । इसप्रकार अवस्थित विमत्तित्त्वानका उत्कृष्टकाळ पस्वके असम्भत्तवै भागप्रमाण काळसे कम अर्थपुद्गलपरिवर्तनमात्र प्राप्त होता है । इसीप्रकार अचमुद्देखनी और मत्त जीवोंके क्त्वमा वाहिये ।

५४२१ इसप्रकार पठिदुपमावाथके द्वारा कहे गये ओपनिर्देशका जो कि उच्चारणके समान है, कवन करके अब वाळ अमोकि अनुग्रहके छिये कहे गये उच्चारणमें वर्जित आवेशको वत्तत्ते है-

५४३० आदेत्तनिर्देशकी जपेसा नरकगतिये मारुक्कियेमि मुजगार और अस्सत्तका

अवाट्टि० जह० एगममओ, उफ० तेत्तीम सागरोवमाणि । पढमादि जात्र सत्तमिति भुज० अप्प० जहण्णुफ० एगममओ, अवाट्टिद० जह० एगसमओ, उफ० अप्पपवो उपस्माट्टिदी । एव तिरिक्खव-पंचिदियतिरिक्ख पंचि० तिरि० पञ्ज०-पंचि० तिरि० जोणणीमु । णवरि अवाट्टिद० उफ० अप्पपणो उफस्माट्टिदी । एत मणुस मणुसपञ्ज-एसु । णवरि अप्प० जह० एगस० उफ० वे गमया । मणुगणीणमेव नेव, णवर अप्प० जहण्णुफास्सेण एगममओ । पंचि० तिरि० अपञ्ज० अप्पदर० के० ? जहण्णुफ० एगसमओ । अवाट्टिद० के० ? जह० एगममओ, उफ० अतोमूहत्तं । एवं मणुस अपञ्ज० वत्तव्व ।

§ ४३१ देव० भुज० अप्पदर० के० ? जहण्णुफ एगसमओ । अवाट्टिद० के० ? जह० एगममओ, उफ० तेत्तीम सागरोवमाणि । भवणादि जात्र उवग्गिमेवञ्जे णि भुज० अप्पदर० जहण्णुफ० एगममओ । अवाट्टिद० के० ? जह० एगसमओ, उफ० सग-जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितता जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागर है । पहली पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथ्वी तक प्रत्येक नरकमे सुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसीप्रकार सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें सुजगार आदि तीनोंके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिये । यथा इतनी विशेषता है कि इन सामान्य तिर्यंच आदिकमे अवस्थितका उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये । इसीप्रकार सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त जीवोंमें कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतरका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय कहना चाहिये । स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय होता है ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोमें अल्पतरका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्योंके अल्पतर और अवस्थितके जघन्य और उत्कृष्टकालका कथन करना चाहिये ।

§ ४३१ देवोंमें सुजगार और अल्पतरका काल कितना है ? इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागर है । भवनवासियोंसे लेकर उपरिमग्नैवेयक तक प्रत्येक चातिके देवोंमें सुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अवस्थितका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण

सगुणस्सद्धिदी। अक्षुरिसादि आब सम्बद्धे वि अप्यदर० अहण्णुक्० एगसमओ। भव
द्विद० के० ? अह० एगसमओ, उक्० सगसगउक्त्स्सद्धिदी।

१ ४३२ एरुदिय० अप्यदर० अहण्णुक्० एकसमओ। अवद्विद के० ? अह०
एगसमओ, उक्० अणतकालमसस्येजा पोगलपरियद्दा। पादरसुद्धुम-एरुदियाणमेबं येव।
अवरि अवद्विद० उक्० सगसगुक्त्स्सद्धिदी। बादरेरुदियपञ्ज० अप्यदर के० ? अह
ण्णुक्० एगसमओ। अवद्विद० अह० एगसमओ, उक्० सस्येजाणि वाससहस्साधि।
बादरेरुदियअपञ्ज०-सुद्धुमेरुदियपञ्जचापञ्जच-विगळिंदियपञ्ज० (अपञ्ज०)-पधि० अपञ्ज०
पंचक्यापाय बादर-अपञ्ज० तेसि सुद्धुम पञ्जचापञ्जच-वस अपञ्ज०-ओरासियमिस्स०
वेत्तम्बियमिस्सक्यायसोगीमं पधि० विरिक्ख-अपञ्जचमंगो। विगळिंदिय-विगळिंदि
पपञ्ज०-पञ्चक्यापाणं बादरपञ्ज० बादरेरुदियपञ्जचमंगो। पधिदिय-पधि० पञ्ज०-वस-
वसपञ्जचाणं सुम० अप्यदर० ओपमंगो। भवद्विद० अह० एगसमओ, उक्० सगस
गुक्त्स्सद्धिदी।

है। अक्षुरिसादि लेख सर्वाधिकार एक प्रत्येक स्थानमें अक्षररका अण्य और सत्कृत
का एक समय है। अवस्थितका काल कितना है ? अण्यका एक समय और सत्कृत
का अपनी अपनी सत्कृत स्थिति प्रमाण है।

१ ४३२ एकेन्द्रियोंमें अक्षररका अण्य और सत्कृत का एक समय है। अव
स्थितका काल कितना है ? अण्य का एक समय और सत्कृतका अनन्तकाल है जो
असंख्यवत् पुत्रपरिवर्तनप्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके अक्षरर और
अवस्थितका अण्य और सत्कृतका इसीप्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें
अवस्थितका सत्कृतका अपनी अपनी सत्कृत स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। बादर एकेन्द्रिय
पर्याप्तकोंमें अक्षररका कितना अक्षर है ? अण्य और सत्कृत का एक समय है। अवस्थितका
अण्यका एक समय और सत्कृत का सख्यात इतर बर्ये है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त,
सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त विक्रमेन्द्रिय अपर्याप्त, पचेन्द्रिय अपर्याप्त,
पांचों स्थावर काय बादर अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त, पांचों स्थावर काय
सूक्ष्म अपर्याप्त, अक्ष अपर्याप्त, औदारिक सिद्धकायबोगो और वैकिकिकमिद्धकायबोगी बीचोंके
पचेन्द्रिय दिव्यं च अण्यपर्याप्तकोंके समान अक्षरर और अवस्थितका काल जामना चाहिये।
विक्रमेन्द्रिय, विक्रमेन्द्रिय पर्याप्त, पांचों स्थावर काय बादर अपर्याप्त बीचोंके अक्षरर और
अवस्थितका काल बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त बीचोंके समान जामना चाहिये। पचेन्द्रिय
पचेन्द्रिय पर्याप्त अक्ष और अक्ष पर्याप्त बीचोंके मुक्तगार और अक्षररका काल जोपके
समान है। तब अवस्थितका अण्यका एक समय और सत्कृत का अपनी अपनी
सत्कृत स्थितिप्रमाण है।

§ ४३३. जोगाणुवादेण पंचमण०-पंचवचि० भुज० अप्प० ओघमंगो । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । कायजोगि-ओरालिय० भुज० अप्पदर० ओघमंगो । अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० सगट्टिदी । आहार० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० वत्तवं । आहारमिस्स० अवट्टि० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमुवसम०-सम्मामि० । णवरि उवसम० अप्प० जहण्णुक्क० एयसमओ । कम्मइय० अप्पदर० के० ? जहण्णुक्क० एयसमओ । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । वेउन्विय० भुज० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ४३४. वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु भुज० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्टिदी । अवगद० अप्पदर० जहण्णुक्क० एगसमओ, अवट्टिद० जह० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्तं । कोध-माण-

§ ४३३. योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । काययोगी और औदारिक काययोगी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । आहारक काययोगमें अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । इसीप्रकार कषाय रहित जीवोंमें तथा सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कथन करना चाहिये । आहारकमिश्रकाययोगमें अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि उपशमसम्यक्त्वमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । कर्मणकाययोगियोंमें अल्पतरका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है । वैक्रियिककाययोगियोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४३४. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अपगतवेदमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

संज्वलनक्रोध, संज्वलनमान, संज्वलनमाया और संज्वलन लोभमें भुजगार और

माया-सोमसंज्ञक० बुद्ध० अप्य० बोधमयो । अबद्धि० बह० एयसमओ, उक्त० अंतो-
मुहूर्त ।

१४३५ मदि-सुद मध्याह्न० अप्य० अहण्युक्त० एयसमओ, अबद्धि० तिष्णि
मगा । ओ सो सादि सपञ्चसिद्धो, तस्त बह० एयसमओ उक्त० उवसुहोपोगलपरियह ।
एवं सिद्धादिदीप वचम्ब । बिहंग० अप्य० अहण्युक्त० एयसमओ । अबद्धिद० बह०
एयसमओ, उक्त० सयुक्तसिद्धिदी । आमिष्णि-सुद०-ओहि० अप्यद० बोधमयो ।
अबद्धिद० बह० दुसमऊण दोआवसियाओ, उक्त० अाबद्धिसामरोबमाधि सादिरेयाधि ।
एयमोहिदस० सम्मादिद्धी० वचम्ब । मणपत्त० अप्यदर० अहण्युक्त० एयसमओ ।
अबद्धिद० बह० दुसमऊण दोआवसिय०, उक्त० पुम्बकोबी देवणा । एव परिहार०
संबदासब्द । णवरि, अबद्धिद० बह० अंतोमुहूर्त । सामाह्य-स्येदो अप्यदर०
ओपमंयो । अबद्धिद० मयपत्तवमंयो । णवरि बह० एयसमओ । संबद० अप्यदर०
अबद्धिद० सामाह्यस्येदोवद्वावमंयो । णवरि अबद्धि० बह० दुसमपूज दो आवसि० ।

अस्पतरका काळ बोधके समान है । तथा अवस्थितका अपन्य काळ एक समय और अकृष्ट
काळ अन्तर्मुहूर्त है ।

१४३६. मस्यज्ञान और मुक्ताज्ञानमें अस्पतरका अपन्य और अकृष्ट काळ एक समय
है । तथा अवस्थितके तीन भग हैं । इनमेंसे सादि-सप्त अवस्थितका अपन्य
काळ एक समय और अकृष्ट काळ उपाधेपुत्रपरिचयप्रमाण है । इसीप्रकार विष्णुवृष्टि
जीवोंके भी अस्पतर और अवस्थितका काळका कथन करना चाहिये । विभगज्ञानियोंमें
अस्पतरका अपन्य और अकृष्ट काळ एक समय तथा अवस्थितका अपन्य काळ एक समय
और अकृष्ट काळ अपनी वक्त्य भित्तिप्रमाण है । मतिज्ञानी, भुवज्ञानी और ज्ञानिज्ञानी
जीवोंमें अस्पतरका काळ बोधके समान है । तथा अवस्थितका अपन्य काळ दो समय
का दो जावधीप्रमाण और अकृष्ट काळ साधिक उपाधत जागर प्रमाण है । इसीप्रकार
अविश्वज्ञानी और सन्धगुष्टि जीवोंके अस्पतर और अवस्थितका काळ करना चाहिये ।
मनःपर्यवज्ञानमें अस्पतरका अपन्य और अकृष्ट काळ एक समय है । तथा अवस्थितका
अपन्य काळ दो समय का दो जावधीप्रमाण और अकृष्टकाळ कुछ का पूर्णभेदि प्रमाण
है । इसीप्रकार परिहार विद्युति सपत और सपतासपत जीवोंके करना चाहिये । इतनी
विशेषता है कि परिहारविद्युतिसपत और सपतासपत जीवोंके अवस्थितका अपन्यकाळ
अन्तर्मुहूर्त है । सामायिक और अदोपस्थापना सपतोंमें अस्पतरका काळ बोधके समान
है । तथा इसके अवस्थितका काळ मनःपर्यवज्ञानके समान है । इतनी विशेषता है कि
इन्के अवस्थितका अपन्यकाळ एक समय है । सपतोंमें अस्पतर और अवस्थितका काळ
सामायिक और उदोपस्थापनाके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सपतोंमें

असंजद० भुज० अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टिद० मदि-अण्णाणीभंगो ।

§ ४३६. चक्खु० तसपज्जतभंगो । पंचलेस्सा० भुज० अप्प० णारयभंगो । अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीस सत्तारस सत्त वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सुक्केले० भुज० अप्प० ओघभंगो । अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीससागरो० सादिरेयाणि । एवं खइय० । णवरि० भुज० णत्थि । अवट्टि० जह० दुसमयूण दीआवलि० । वेदग० आभिणि० भंगो । णवरि अप्प० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टि० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्टिसागरोवमाणि देसूणाणि । अभव्व० अवट्टि० अणादि-अपज्जवसिद । सासण० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० छावलिआओ । सण्णि० भुज० अप्पदर० ओघभंगो । अवट्टि० पुरिसभंगो । असण्णि० एइंदियभंगो । आहारि० भुज० अप्प० ओघभंगो । अवट्टि० जह एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे० भागो ।

अवस्थितका जघन्यकाल दो समय कम दो आवलीप्रमाण है । असंयतोमे भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थितका काल मत्यज्ञानी जीवोंके समान है ।

§ ४३६. चक्षुदर्शनी जीवोंमें भुजगार आदिका काल त्रस पर्याप्त जीवोंके समान है । कृष्ण आदि पाच लेश्याओंमें भुजगार और अल्पतरका काल त्रारकियोंके समान है । तथा अवस्थितका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल क्रमसे साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागरप्रमाण है । शुक्लेश्यामे भुजगार और अल्पतरका काल ओन्नके समान है । तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरप्रमाण है । इसीप्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भुजगार विभक्तिस्थान नहीं पाया जाता है । तथा, अवस्थितका जघन्य काल दो समय कम दो आवलीप्रमाण है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर आदिका काल मतिज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थितका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छायासठ सागर प्रमाण है । अभव्योंमें अवस्थितका काल अनादि-अनन्त है ॥ सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ आवलीमात्र है । संज्ञी जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है । तथा अवस्थितका काल पुरुषवेदियोंके समान है । असंज्ञी जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । आहारक जीवोंमें भुजगार और अल्पतरका काल ओघके समान है । तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण

अजाहारि० कम्मप्रयममो ।

एवमेगशीवेण काले समतो ।

० एव सत्त्वाणि अणिओगदाराणि वेदव्याणि ।

१४१० सुयमचादो । एव अद्भवसहपरिण्य चरदाण्य सेसाभिजोमदाराण मंद

शुद्धिअजाशुग्माहर्हं उचारण्यारिण्य लिहियुचारण्यमेत्य वचइस्तामो ।

१४१२ अंतराशुग्ममेण दुबिहो पिहेसो ओपेण आदेसेन य । तस्य ओपेण

सुव० विह० अतरं के० ? अह० अतोमुहुत्तं, उक्त० अद्पोम्मलपरियहं देव्यं । अप्य-

दर० अह० दो आबलिपाओ दुसमपूणाओ, उक्त० अद्पोम्मलपरियहं देव्यं । अक्कि०

अह० एयसमओ, उक्त० वेसमया । एवमचक्कुं मवसिद्धिं वत्तम्यं । एवं तिरि-

क्खा० गजुंस० अस्तंजद० । जवरि अप्यदरस्त अहर्णातरं दुसमपूय-दोआबलियमेत्तं

परिय किंत्तु अंतोमुहुत्तमेत्त । कम्मवद्विहस्स उक्तस्संतरं दुसमपमेत्तं ? उच्चदे-पदमसम्मचा-

दिसुहेण इंसममोहस्स कयंतरेण अक्किदपदाक्किदेव मिच्छत्तपदमद्विद्विचारिमसमए

है । अनाहारक जीवोंमें कर्मकामपयोगियोंके समान कामना चाहिये ।

इसप्रकार एक बीवकी अपेक्षा कम समाप्त हुआ ।

० इसीप्रकार शेष अनुयोगधारोंका कथन कर लेना चाहिये ।

१४१३ यैकि शेष अनुयोगधारोंका कथन सरल है, अतएव बलिहृतम आचार्यने

यहां बनका कथन नहीं किया ।

इसप्रकार बलिहृतम आचार्यने कर्तुंछसूत्रके द्वारा त्रिन शेष अनुयोगधारोंकी यहां सूचना

की है, उचारण्यचार्यके द्वारा किसी गई इन अनुयोगधारोंकी उचारण्यओ मन्त्रशुद्धि जनोंके

अनुष्ठानके लिये यहां बतलवते हैं—

१४१२ अन्तरानुगमकी अपेक्षा निरंतरा दो प्रकारका है, ओबनिरंतरा और आदेउ-

निरंतरा । इनमेंसे ओबनिरंतराकी अपेक्षा सुवगायविमत्तिका अन्तर कितना है ? जपम्य

अन्तर अन्तर्मुहुत्तं और उक्तं अन्तर उक्तं कम अर्धपुत्रलपरिचरन प्रमाण है । अबलित-

वियत्तिका जपम्य अन्तर एक समय और उक्तं अन्तर दो समय है । इसीप्रकार अचमु-

वसनी और मध्य बीवके सुवगाय आदि विमत्तियोंका अन्तर कहना चाहिये । इसी-

प्रकार श्रमाल्य विभव, मपुसकपेरी और अर्धवत्त जीवोंके कहना चाहिये । यहां इतकी

विशेषता है कि इन बीवोंके अल्पतरका जपम्य अन्तर काळ दो समय कम दो आबकी

की है किन्तु अन्तर्मुहुत्तं है ।

सूत्र-अबलितका उक्तं अन्तरकाळ दो-समय केसे है ?

समाधान-बिद्यमे दर्शनमोद्गीकण अन्तरकरण किना है और ओ मोद्गीकणकी

बद्धाईच अक्षयियोंकी उचारण्यसे अबलितपदमें कितने देखा कोई एक प्रबमोपदम

सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेकदरमुव्वेलिय अप्पदरेणंतरिय विदियसमए सम्मत्तं वेत्तूण उव्वेद्विदपयडिसंतमुप्पाइय भुजगारेणंतरिय तदियसमए अवट्ठाणे पदिदस्स उक्कस्सेण वेसमया अवट्ठिदस्स अंतरं ।

§ ४३६. आदेसेण णेरइय० भुज० अप्पद० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीससा-गरोवमाणि देसूणाणि । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० वे-समया । कारणमेत्थ वि उवरिं पि पुव्विल्लमेव वत्तव्वं । पढमादि जाव सत्तामि ति भुज० अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सग-सगुक्कसाट्ठिदीओ देसूणाओ । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० वेसमया । पंचिदियतिरिक्खतिगे भुज० अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० तिष्णि पलिदो-वमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्भहियाणि । अवट्ठि० ओघमंगो । एवं मणुसतियस्स वत्तव्वं । णवरि मणुस-मणुसपज्जत्तएसु अप्प० जह० दोआवलियाओ दु-समयूणाओ । पंचि-दियतिरिक्खअपज्ज० अप्पदरस्स णत्थि अंतरं । अवट्ठि० जह० उक्क० एगसमओ ।

सम्यक्त्वके सम्मुख हुआ जीव जव सम्यक्प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति इन दोमेंसे किसी एक प्रकृतिकी उद्वेलना करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें अल्पतर पदके द्वारा अवस्थित पदको अन्तरित करता है । तथा दूसरे समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उद्वेलित प्रकृतिकी सत्ताको पुनः उत्पन्न करके भुजगार पदके द्वारा अवस्थित पदको अन्तरित करता है और तीसरे समयमें पुनः अवस्थानपदको प्राप्त करता है तब उसके अवस्थितपदका उत्कृष्टरूपसे दो समय प्रमाण अन्तरकाल देखा जाता है ।

§ ४३६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तर-काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण है । तथा अवस्थितका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । यहां पर भी अवस्थितके उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय होनेका कारण पहलेके समान कहना चाहिये । पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्त-र्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अव-स्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्ततिर्यंच और पंचेन्द्रिय योनिमती 'तिर्यंचोमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि-पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्यप्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है । इसीप्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और स्त्रीवेदी मनुष्योंके भुजगार आदिका अन्तरकाल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमें अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली प्रमाण है ।

पंचेन्द्रिय ळब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोमें अल्पतरका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है ।

एवं मण्डसअपज्ज० । अणुदिसादि आब सन्वहासिदी एरुदिय-बादरएरुदिय-तेसिं पज्ज०
 अपज्ज०-सुहुम०-तेसिं पज्ज० अपज्ज०-सन्वविगर्त्तिसिदिय-पांथिं० अपज्ज०-पचक्यप०-तेसिं
 बादर०-तेसिं पज्ज० अपज्ज०-सन्वसुहुम०-तसमपज्ज०-ओराठियमिस्स०-वेउठिय-
 मिस्स०-कम्मइय-मदि-सुद अण्णाण-विहय०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारि पि वचन्वं ।
 गवरि एरुदिय-बादर-सुहुम०-पचक्यप० बादर सुहुम मदि-सुद अण्णाण-विहंग०
 मिच्छादि० अण्णिसु अप्पदर० अहण्णुक्क० पल्लिदो० अंसले० मायो ।

१४४० देवेसु सुज्ज० अप्प० अह० अंतोसुहुचं, उक्क० एकतीससामरोवमाप्पि
 देसुमाप्पि । अबट्ठि० ओपमगो । मवणादि आब उवरिम-नोवज्ज ति सुज्ज० अप्प०
 अह० अंतोसुहुचं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदीओ देसुमाप्पो । अबट्ठि० अहण्णुक्क०
 ओपमयो । पचिदिय-पांथिं० पज्ज०-तस-तसपज्ज० सुज्ज० अह० अंतोसुहुच, अप्पदर०
 अह० दोआवसिपाओ दु-समउत्तमाओ । उक्क० दोणं पि सगुक्कस्सट्ठिदी देसुमा ।
 अबट्ठि ओपमयो । पचमण०-पचपथि० सुज्ज० णसिय अंतरं । अप्पद० अहण्णुक्क०

तथा अवस्थितका अपन्थ और अण्ड अन्तरका एक समय है । इसीप्रकार छम्प्य
 पर्याप्त मसुप्य अनुदिससे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देव, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर
 एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म
 एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी प्रकारके विकलेन्द्रिय पचिन्द्रिय छम्प्यपर्याप्त, पांचों प्रकारके स्वावर
 काच, पांचों प्रकारके बादर आवरकाच और इनके पर्याप्त अपर्याप्त सभी प्रकारके सूक्ष्म,
 त्रस छम्प्यपर्याप्त औदारिकमिअधययोगी, वैकियिकमिअधययोगी, कर्मवधययोगी, मस-
 ज्ञानी, सुवाज्ञानी, विमगज्ञानी, मिच्छावृद्धि, असङ्गी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।
 इतनी विशेषता है कि बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर और सूक्ष्म पांचों स्वावरकाच,
 मसज्ञानी, सुवाज्ञानी विमगज्ञानी मिच्छावृद्धि और असङ्गी जीवोंमें अस्परतका अपन्थ
 और अण्ड अन्तरका एकसमयमें अंतोसुहुचं भागप्रमाण है ।

१४४० देवोंमें मुक्तगार और अस्परतका अपन्थ अन्तरका अन्तर्मुहुतं और अण्ड
 अन्तरका एक कम इक्षीस सागर है । तथा अवस्थितका अन्तरका ओपके समान है ।
 मवववासिपोंसे लेकर उपरिम प्रदेवक तक प्रत्येक स्थानमें मुक्तगार और अस्परतका अपन्थ
 अन्तरका अन्तर्मुहुतं और अण्ड अन्तरका एक कम अपनी अपनी अण्ड स्थितिप्रमाण
 है । तथा अवस्थितका अपन्थ और अण्ड अन्तरका ओपके समान है ।

पचिन्द्रिय पचिन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मुक्तगारका अपन्थ अन्तर
 का अन्तर्मुहुतं है । अस्परतका अपन्थ अन्तरका दो समय कम दो भावकी है । तथा
 मुक्तगार और अस्परत इन दोनोंकी ही अण्ड अन्तरका एक कम अपनी अपनी अण्ड
 स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरका ओपके समान है ।

वे-आवलियाओ दुसमऊणाओ । अवट्टि० ओघभंगो । एवमोरालिय० कायजो० । भुज० णत्थि अंतरं । अप्प० जह० दो-आवलियाओ दु-समऊणाओ, उक्क० पत्थिओ-वमस्स असंखे० भागो । अवट्टि० ओघभंगो । आहार०-आहारमिस्स० अवट्टि० णत्थि अंतरं । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-सामण०-सम्मामि०-अभव्वसि० वत्तम्भं । वेउच्चिय० भुज० अप्प० जहणुक्क० णत्थि अंतर । अवट्टि० जह० एयसमओ, उक्क० वेसमया ।

§ ४४१. वेदानुवादेण इत्थि-पुरिस० भुज० अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० संगट्ठिदी देखणा । अवट्टि० ओघभंगो । अवगद० अप्प० जहणुक्क० अंतोमु०, अवट्टि० जहणुक्क० एगसमओ । चत्तारि कसाय भुज० णत्थि अंतरं । अप्प० जह० दुसमऊणदोआवलिय०, उक्क० अंतोमु० । अवट्टिद० ओघभंगो । आभिणि०-सुद०-ओहि०

पाँचों मनोयोगी और पाँचों धचनयोगी जीवोंमें भुजगारका अन्तर नहीं पाया जाता है । अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय कम दो आवली प्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है । इसीप्रकार औदारिककाययोगमें जानना चाहिये । यहाँ भी भुजगारका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें अवस्थितका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार अकपायी, सूक्ष्मसापरायिक संयत, यथाख्यात संयत, सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, और अभन्य जीवोंमें कहना चाहिये । वैकिक्रिक काययोगमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । तथा अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय है ।

§ ४४१ वेदमार्गणाके अनुवादसे खीवेद और पुरुषवेदमें भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है । अपगद्वेदमें अल्पतरका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है ।

चारों कषायोंमें भुजगारका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समयकम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है ।

मतिज्ञान श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें अल्पतरका अन्तरकाल दो समय कम दो आवली और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक लयासठ सागर है । तथा अवस्थितका अन्तर-

अप्य० अह० दो भावतियामो दुममऊणामो, उक्क० छावटि सागरोवमाणि साविरे
याणि । अवट्टिद० ओषमगो । एवं सम्मादि० ओहिरमणी० । मणपजव० अवट्टि०
अहण्णुक्क० एयसमओ । अप्य० अह० दोआवतियामो दुममऊणामो, उक्क० पुम्बकोडी
देवणा । सवदासंबद-सामाहय छदो० अप्यदर० अवट्टि० मणपजवमगो । अवरि
सबदासजद० अप्य० अह० अतोमु० । सामाहयछेदो० अवट्टि उक्क० वैसमया ।
परिहार० सवदासंबदमगो । अवसु० तसपजवमगो ।

१४४२ पचलेम्सा० पुज्ज० अप्य० अह० अतोमु०, उक्क० तेतीस-सचारस-सच
सामरो० देवणाणि सादि०, वमट्टारस सागरा० साविरेयाणि । अवट्टि० ओषं । सुक्क०
सुज्ज० अप्य० अह० अतोमु० दुसमऊण-दोआवतिय०, उक्क० एकतीससागरो० देव
णाणि सादि० । अवट्टि० ओषमगो । वेइयसम्मादि० अप्यदर० अह० अतोमु०
अवट्टि० सा देवणाणि । अवट्टि अहण्णुक्क० एयसमओ । खइय० अप्य० अह०

काळ जोबके समान है । इसीप्रकार सम्बग्गुह्ठि और अवविदसमी जीबोंके जानना
चाहिये । मनाःपर्यय ज्ञानमें अवस्थितका अपम्य और अक्कह अन्तरकाळ एक समय है ।
तथा अस्वतरका अवम्व अन्तरकाळ दो समय कम दो भावती थीर अक्कह अन्तरकाळ
कुछ कम पूषकोटि है । सप्तसांसपठ सामायिकसंबठ और छेरोपस्वापना सप्त जीबोंके
अस्वतर और अवस्थितका अन्तरकाळ मनाःपर्ययज्ञानके समान है । इतनी विशेषता है कि
सप्तसांसपठजीबके अस्वतरका अपम्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त है । तथा सामायिक और
छेरोपस्वापना संपठ जीबोंके अवस्थितका अक्कह अन्तरकाळ दो समय है । परिहारविहृति-
सप्त जीबोंके सबसांसपठ जीबोंके समान कथन करना चाहिये । चन्द्ररसनमें वसपवीरकोंके
समान कथन करना चाहिये ।

१४४२ कुम्मादि पांचों छेइयाओंमें मुद्गरा और अस्वतरका अपम्य अन्तरकाळ-
अन्तर्मुहूर्त है और मुद्गरका अक्कह अन्तरकाळ कुम्ब, मीछ और कनोड वैश्यामें क्रमसे कुछ
कम तेतीस सागर, कुछ कम सत्रह सागर, कुछ कम साठ सागर तथा अस्वतरका अक्कह अन्तर
काळ साधिक तेतीस सागर, साधिक सतरह सागर और साधिक साठ सागर है । तथा वीच
और वहाछेइयामें दोनोंअ अक्कह अन्तरकाळ क्रमशः साधिक दो सागर और साधिक अठारह
सागर है । तथा अवस्थितका अन्तरकाळ ओषके समान है । कुछ छेइयामें मुद्गरा और
अस्वतरका अपम्य अन्तरकाळ क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और दो समय कम दो भावती है तथा
मुद्गरका अक्कह अन्तरकाळ कुछ कम इकतीस सागर और अस्वतरका अन्तरकाळ
साधिक इकतीस सागर है । तथा छुइछेइयामें अवस्थितका अन्तरकाळ ओषके समान है ।

वेइयसम्बग्गुह्ठिमें अस्वतरका अपम्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त और अक्कह अन्तरकाळ
कुछ कम सत्रासठ सागर है । तथा अवस्थितका अपम्य और अक्कह अन्तरकाळ वेइ

दुसमऊणदोआवलि०, उक्क० अंतोसु० । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० बे-समया ।
 उवसम० अप्प० णत्थि अंतरं । अवट्टि० जहणुक्क० एयसमओ । सण्णि० पुरि-
 समंगो । णवरि अप्प० जह० दुसमऊणदोआवलि० । आहारि० भुज० अप्प० जह०
 अंतोसु० दुसमऊण-दोआवलि०, उक्क० अगुलस्स असंखे० भागो । अवट्टि० ओघभंगो ।
 एवमेगजीवेण अंतरं समत्तं ।

§ ४४३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देशो, ओघेण आदेशेण य ।
 तत्थ ओघेण अवट्टिद० णियमा अत्थि, सेसपदाणि भयणिजाणि । एव सत्तसु पुट-
 वीसु, तिरिक्ख०-पंचिदियतिरिक्ख-पंचि० तिरि० पज्ज०-पंचि० तिरि० जोर्णणी-मणु-
 सतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज ति-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंच-
 मण०-पंचवाचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउन्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-असं-
 जद-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि ति वत्तन्वं ।

समय है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली
 और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय
 और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो समय है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरका अन्तरकाल नहीं
 पाया जाता है । तथा अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है ।

संज्ञी मार्गणामें पुरुषवेदके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके
 अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल दो समय कम दो आवली प्रमाण है । आहारक जीवोंमें
 भुजगार और अल्पतरका जघन्य अन्तरकाल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और दो समय कम दो आवली
 प्रमाण है । उत्कृष्ट अन्तरकाल दोनोंका अगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा
 अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है ।

इसप्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ४४३. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है ओघ-
 निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले
 जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं अर्थात् भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले
 जीव कभी रहते भी हैं और कभी नहीं भी रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी,
 तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें तथा
 सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें, सामान्य देवोंमें और भवनवासियोंसे लेकर उपरिम
 प्रेक्षक तकके देवोंमें तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, अस, असपर्याप्त, पाचों मनोयोगी,
 पांचों ध्यानयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले,
 ऋषादि चारों कषायवाले, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छह लेश्यावाले, भव्य, सही
 और आहारक जीवोंमें कहना चाहिये । अर्थात् इन मार्गणाओंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले

१४४४ पंचि० तिरि० अपज० सिया सभ्ये बीबा अबडिदविहचिया, सिया अबडिदविहचिया च अप्पदरविहचिमो च, सिया अबडिदविहचिया च अप्पदरविहचिया च । एव तिष्पि मंगा ३ । एवमजुदिसादि जाव सम्बट्ट सि-सम्बपरदिप सम्बविगसिदिय पंचि० अपज०-पंचक्य० तसअपज० ओराठिपमिस्स०-कम्मइय० मदिअण्णाय-सुद-अण्णा० विहग० आभिनि०-सुद०-ओहि०-मणपज० सअद-सामा-इय-हेदो०-परिहार०-संजदासंजद-ओहिदंस० सम्मादि०-खइय०-वेदय० मिच्छादि० असण्णिय०-अणाहारय चि वचम्व । मजुसअपज० अट्टममा ८ । एव वेतथिय मिस्स०-अवगद०-उवसम० वचम्व ।

माना बीब निरन्तर नियमसे पावे जाते हैं । पर सेप दो स्वामबाळे बीब कराचित् होते ही हैं और कराचित् नही भी होते हैं ।

१४४४ पंचेत्थिच तिर्थेच सम्भ्यपवात्तकोमें कराचित् सभी बीब अबस्थितविमत्तिस्वानवाळे होते हैं । कराचित् अनेक बीब अबस्थित विमत्तिस्वानवाळे और एक बीब अस्पतर विमत्तिस्वानवाळा होता है । कराचित् माना बीब अबस्थित विमत्तिस्वानवाळे और माना बीब अस्पतर विमत्तिस्वानवाळे होते हैं । इसप्रकार तीन भग पाये जाते हैं । इसीप्रकार अजुदिससे केकर सर्वाथिदित्तिकके देवोंमें तथा सभी मक्करके पके-इय, सभी मक्करके विकसंभ्रुव, पंचेत्थिच सम्भ्यपवात्त, पांचो मक्करके खावर क्य, प्रस सम्भ्यपवात्त, औदारिकमिक्कवावयोगी, कार्यक्कवावयोगी, मज्झानी, सुवाज्जानी, निमगज्जानी, मठिज्जानी, सुठज्जानी, अवधिज्जानी, मनःपर्येक्कानी, धवत्त, सामायिकसवत्त, छेरोपस्वात्तमसवत्त, परिहारनिज्जित्तवत्त, धवत्ता सवत्त, जेवधिदसमी, सम्भगृह्ठि, धायिकसम्यगृह्ठि, वेदकसम्यगृह्ठि, तिष्प्यह्ठि, जसकी और अनाहारक बीबोंमें कइना चाहिये । अर्थात् इन मात्तपानोमें सम्भ्यपवात्तक पंचेत्थिचपतिवचोके समान कराचित् सब बीब अबस्थित विमत्तिस्वानवाळे होते हैं । कराचित् माना बीब अबस्थित विमत्तिस्वानवाळे और एक बीब अस्पतर विमत्तिस्वानवाळा होता है । तथा कराचित् माना बीब अबस्थित विमत्तिस्वानवाळे और माना बीब अस्पतर विमत्तिस्वानवाळे होते हैं ।

मजुप्प सम्भ्यपवात्तकोमें अबस्थित और अस्पतर विमत्तिस्वानोमें एक बीब और माना बीबोंकी अवेसा जाठ भग होते हैं । इसीप्रकार पैकिधिकमिक्कवावयोगी, अपगतवेरी और वपसमसम्यगृह्ठि बीबोंमें कइना चाहिये ।

विशेषार्थ—ये सम्भ्यपवात्तक मजुप्प आदि ऊपरकी चारों मार्गोपय साम्भ्यपवात्तव्य है । इनमें कराचित् एक बीब और कराचित् माना बीब पाये जाते हैं । तथा कराचित् इन मार्गोपात्रोंमें एक ही बीब नही पावा जावा है । अत इनमें अबस्थित विमत्तिस्वानवाळे कराचित् माना बीबोंका और कराचित् एक बीबका तथा अस्पतर विमत्तिस्वानवाळे कदा-

§ ४४५. आहार०-आहारमिस्त० सिया अवट्टिदविहात्तिओ, सिया अवट्टिदविह-
चियाँ, एव वे भंगार। एवमकसाय०-सुहुमसांपराय०-जहाकखाद०-सासण०-सम्मामि०
वचव्वं । अमव्व० अवट्टि० णियमा अत्थि ।

एवं णाणाजीवेहि भगविचओ समत्तो ।

§ ४४६. परिमाणगुणमेण दुविहो णिदेसो, ओवेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण
भुंजे० अप्पदं० विहंतिया केत्तिया ? असंखेज्जा । अवट्टि० केत्तिया ? अर्णता ।
एवं तीरिक्ख-कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारि कसाय०-असजद-अचक्खु०-
तिणिले०-भवसिद्धि०-आहारि चि वचव्व ।

§ ४४७. आदसेण णेरईएसु भुज० अप्पदं० अवट्टि० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं
सत्तसु पुद्वीसु, पचिदियतिरिक्खतिय-देव-भवगादि जावं उवरिमगेवज्ज०-पचिदिय-
चित्तं नाना जीवोंका और कदाचित् एक जीवोंका पाया जाना सम्भव है । अतः इनके प्रत्येक
और द्विसयोगी इसप्रकार कुल आठ भग हो जाते हैं ।

§ ४४५. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कदाचित् अवस्थित
विभक्तिस्थानवाला एक जीव तथा कदाचित् अवस्थित विभक्तिस्थानवाले अनेक जीव इस-
प्रकार दो भंग होते हैं । इसीप्रकार अकपायी, सूक्ष्म सापरायसयत, उपशमश्रेणीपर चंदे
हुए यथाख्यातसंयत, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये ।
ये उपर्युक्त सभी मार्गणाए सांतरमार्गणाए हैं और इनमें एक अवस्थित विभक्तिस्थान ही
पाया जाता है । इसलिये इनमें एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो ही भंग होते हैं ।
अमव्वोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे हैं ।

इसप्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४४६. परिमाणगुणमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव
कितने हैं ? असख्यात हैं । अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं ।
इसीप्रकार तिर्यच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले,
असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीनों लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंमें कथन
करना चाहिये । अर्थात् इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थान
वाले जीव असंख्यात और अवास्थित विभक्तिस्थानवाले जीव अनन्त हैं ।

§ ४४७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकिर्योंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित
विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असख्यात हैं । इसीप्रकार सातों पृथिवियोंमें, पचेन्द्रिय,
पचेन्द्रिय पर्याप्त और पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यचोंमें, देवोंमें तथा भवनवासियोंसे लेकर उप-
रिक्त प्रवेयक तकके देवोंमें, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्म पर्याप्त, पांचों मनोयोगी,

पंचि०पञ्ज०-तप्त-तप्तपञ्ज०-पञ्चमण्ड०-पञ्चवर्षि०-वेतस्त्रिय०-इरिय०-पुरिस०-चक्षु०-
 तेठ०-यम्म०-सुप्त०-साष्णि०-वत्सर्गं । पंचिदियतिरिक्त्वप्रपञ्चतपसु अप्पदर० अबद्धि०
 के० । असखेजा । एवं मणुसप्रपञ्ज० मणुदिसादि ज्ञाव अत्राजिद०-सम्भविगतिदिय
 पंचिदियप्रपञ्ज०-पचारिकप्रप०-तप्तप्रपञ्ज०-वेतस्त्रियामिस्स०-विहंग०-ग्रामिणि०-सुद०
 ओहि०-संभदासद्व-ओहिदस०-सम्मादिद्वि-वेदय०-उवसम०-वत्सर्गं ।

१४४८ मणुस्तेसु सुख० के० । संखेजा । अप्पदर० अबद्धि० के० । असखेजा ।
 मणुसपञ्ज०-मणुसिणी सुख० अप्पदर० अबद्धि० के० । सखेजा । सम्भवे अप्पदर०
 अबद्धि० के० । सखेजा । एवमपगद०-मणपञ्ज० समद० सामादयखेदो०-परिहार०
 वत्सर्गं ।

१४४९ एन्द्रियसु अप्पदर० के० । असखेजा । अबद्धि० के० । अर्पता । एव

पांचों वचमयोगी वैश्विककाययोगी, बीबेरी, पुकपवेरी, जहुरसनी, पीतलेइयवासे, पद्य
 छेरपावासे, घुक्कसप्रवासे और सखी जीवोंमें कर्म करना चाहिये । अर्थात् इन कर्मुक्त
 मार्गवास्यानोंमें नारकियोंके समान मुद्गगार आदि तीनों विमच्छिस्थानवासे जीव प्रक
 प्रक असंख्यात असंख्यात हैं ।

पंचेन्द्रियतियव छम्प्यर्पातकोमें अल्पतर और अवस्थित विमच्छिस्थानवासे जीव
 कितने हैं । असंख्यात हैं । इसीप्रकार छम्प्यर्पात मनुष्योंमें, अनुचितसे छेकर
 अपराजितं तर्कके देवोंमें तथा सभी प्रकारके विकसेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय छम्प्यर्पातक, पृथिवी
 आदि चार प्रकारके स्वावर काय, इस छम्प्यर्पातक, वैश्विकमिन्द्रिययोगी विमगजानी,
 मतिज्ञानी, सुवज्ञानी अवधिज्ञानी सपतासंयत, अपचिदज्ञानी सन्पद्भि, वेदकसम्प्राद्वि
 और कपसमसम्प्राद्वि जीवोंमें कहा चाहिये । अर्थात् इन कर्मुक्त मार्गवास्यानोंमें पंचेन्द्रिय
 तियव छम्प्यर्पातकोके समान अल्पतर अवस्थित वे दो स्थान होते हैं । तथा प्रत्येक
 स्थानमें असंख्यात जीव होते हैं ।

१४४८ सामान्य मनुष्योंमें मुद्गगार विमच्छिस्थानवासे जीव कितने होते हैं ।
 संख्यात होते हैं । तथा अल्पतर और अवस्थित विमच्छिस्थानवासे जीव कितने हैं ।
 असंख्यात हैं । मनुष्यवर्षात और स्त्रीवेरी मनुष्योंमें मुद्गगार, अल्पतर और अवस्थित
 विमच्छिस्थानवासे जीव कितने हैं । संख्यात हैं । सर्वावस्थिमें अल्पतर और अवस्थित
 विमच्छिस्थानवासे जीव कितने हैं । संख्यात हैं । इसीप्रकार अपगत वेरी, मनापर्वंधानी,
 धंषत, सामाधिकसंयत, सेहोरवापमासंयत और बरिहार्चिनुदिसपत्तोंमें अल्पतर और
 अवस्थित विमच्छिस्थानवासे जीवोंकी संख्या कहा चाहिये ।

१४४९ एकेन्द्रियोंमें अल्पतर विमच्छिस्थानवासे जीव कितने हैं । असंख्यात हैं ।
 अवस्थित विमच्छिस्थानवासे जीव कितने हैं । अनन्त हैं । इसीप्रकार चारों एकेन्द्रिय,

चादरेइंदिय-चादरेइंदियपजतापजत्त - सुहुमेइंदिय -सुहुमेइंदियपजत्तापजत्त -सम्बवणप्फ-
दिकाइय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादिट्ठि-असण्णि० आणा-
हारि ति वत्तव्वं । आहार०आहारमिस्स० अवट्ठि० के० ? संखेज्जा । एवम-
कसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं । अभव्व० अवट्ठि० के० ? अणंता । स्वइय०
अप्पदर० के० ? संखेज्जा । अवट्ठि० के० ? असंखेज्जा । सासण-सम्भाभि० अवट्ठि०
के० ? असंखेज्जा ।

एव परिमाणानुगमो समत्तो ।

§ ४५०. भागाभागानुगमेण दुविहो णिद्वेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण
अवट्ठिदविहत्तिया सम्बजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंता भागा । भुजगार-अप्पदर-
विहत्तिया सम्बजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख-कायजोगि-
ओरालि०-णवुस० - चत्तारिक० -असंजद-अचक्खु० -तिण्णिले० -भवसि० -आहारि०
वत्तव्वं ।

चादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, चादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त,
सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी प्रकारके वनस्पतिकायिक, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मण-
काययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर
और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंकी संख्या कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले
जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात
संयत जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यात कहना चाहिये ।

अमव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । क्षायिक
सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अवस्थित
विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-
दृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

इसप्रकार परिमाणानुगम द्वार समाप्त हुआ ।

§ ४५०. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ? ओघनिर्देश और
आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिवाले जीव सर्व जीवोंके
कितनेवें भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव
सर्व जीवोंके कितनेवें भाग हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यक्,
काययोगी, औदारिक काययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षु-
दर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंमें अवस्थित क्षादि विभक्ति-
स्थानवाले जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

॥४५१॥ आदेसेव पेरईपसु अवट्टि० के० मामो ? असखेजा मागा । सुअ० अप्पद० के० मामो ? असखे० मागो । एव सत्तसु पुढवीसु पंचिदियतिरिक्ख-पंचि० तिरि० पत्त०-पंचि० तिरि०-बोणिसी-मजुस-देव मवणादि जाव उवरिमगेवत्त०-पंचिदिय पंचि०-पत्त०-तस-तसपत्त०-पचमण० पचवधि०-वेतावेवय० इत्थि० पुरिस० चत्तु० तिण्णिठ०-सच्चि ति वचम्भ । पंचि तिरि०-अपत्त० अवट्टि० सम्बधीवाप केवट्टिमो मामो ? असखेजा मागा । अप्पद० असखे०-मागो । एवं मजुसअपत्त० मजुसि सादि जाव अपराहद०-सम्बविमार्थिदिय-पंचि अपत्त०-चचारिकय-तसअपत्त०-वेठ म्बिमिस्स० विहग०-आमिणि०-सुद० ओहि०-सवदासवद ओहिदंसण०-सम्मादि० सुइय० वेदय०-उवसम० वचम्भ ।

॥४५२॥ मजुसपत्त०-मजुसिणी अवट्टि० सखेज्जा मागा । सुअ० अप्पद० के० ? सखे० मागो । सम्बद्ध० अवट्टि० सम्बधी० के० ? संखेज्जा मागा । अप्प०

॥४५१॥ आदेसनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थित विभक्तिस्वानवाले जीव सर्व नारकियोंके कितनेवें मागप्रमाण हैं ? असक्यात बहुभागप्रमाण हैं । मुज्जगार और अल्पतर विभक्तिस्वानवाले जीव कितनेवें मागप्रमाण हैं ? असक्यातवें भाग प्रमाण हैं । इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके भारतकी तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यच बानीमसी, सामान्य मनुष्य और सामान्य देवोंमें तथा मचनवासीबोंसे लेकर उपरिम प्रैवैक तकके देवोंमें तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पांचों मनोबोगी, पांचों वचनपोगी, वैदिकियक्यावोगी, खीवेरी, पुढपवेरी चत्तुरर्द्धनी, कृष्ण जावि तीन केरवावाले और संझी जीवोंमें कइना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच कल्पपर्याप्तकोंमें अवस्थित विभक्तिस्वानवाले जीव सर्व पंचेन्द्रिय तिर्यच कल्पपर्याप्त जीवोंके कितनेवें मागप्रमाण हैं ? असक्यात बहुभाग प्रमाण हैं । तथा अल्पतर विभक्तिस्वानवाले जीव असक्यातवें भाग प्रमाण हैं । इसीप्रकार मनुष्य कल्पपर्याप्त कोंमें, अनुविठसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें तथा समी प्रक्यरके विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कल्पपर्याप्त, पृथिवी जादि चार रथवरकाय, ब्रह्म कल्पपर्याप्त वैदिकिय-मिमक्यवोगी, विमज्जामी, मट्टिजामी, सुतजामी, अचधिजामी, सवतासंपत, अचविदुत्तमी सम्मन्दट्टि, धामिकम्मन्दट्टि वेदकसम्बन्दट्टि और उपरिम सम्यन्दट्टि जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्वाननोंकी अपेक्षा मागप्रमाण कइना चाहिये ।

॥४५२॥ मनुष्यपर्याप्त और खीवेरी मनुष्योंमें अवस्थित विभक्तिस्वानवाले जीव असक्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा मुज्जगार और अल्पतर विभक्तिस्वानवाले जीव कितनेवें भागप्रमाण हैं ? असक्यातवें भागप्रमाण हैं । सर्वापसिद्धिमें अवस्थित विभक्तिस्वानवाले जीव सर्वापसिद्धिके समी देवोंके कितनेवें मागप्रमाण हैं ? असक्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा

संखे० भागो । एवं अवगद०-मणपज्ज०-मंजद-सामाइयछेदो०-परिहार० वत्तम् ।
 सव्वएइंदिएसु अवट्टि० सव्व० के० ? अणता भागा । अप्पद० सव्व० के० । अण-
 तिमभागो । एवं वणप्फदि०-णिगोद०-ओरालियमिस्त०-कम्मइय०-मदिअण्णाण-
 सुद०-मिच्छादि०-असण्णि० अणाहारि० वत्तव्व । आहार०-आहारमिस्स० अत्रट्टि०
 भागाभागो णत्थि । एवमकमा०-सुहुममांप०-जहाक्खाद०-अन्भव०-मासण०-
 सम्मामि० वत्तव्व ।

एव भागाभागानुगमो समत्तो ।

§ ४५३. खेत्तानुगमेण दुविहो णिहेमो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अब-
 ट्टिदविहत्तिया केवडि०खेत्ते ? सव्वलोए । भुज०अप्पद० के० खेत्ते ? लोगस्म अमखे०
 भागे । एवं सव्वासिमणतरासीणं चत्तारिकाय चादर० अपज्ज० सुहुमपज्जतापज्जताणं
 अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसीप्रकार अपगतवेदी, मन-
 पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, और परिहारविशुद्धि मयत जीवोंमें
 अवस्थित और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

सभी प्रकारके एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सभी एकेन्द्रियोंके
 कितनेवें भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । तथा अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव
 सभी एकेन्द्रियोंके कितनेवें भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भाग प्रमाण हैं । इसीप्रकार घनस्पति-
 कायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, भुताज्ञानी,
 मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अवस्थित और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले
 जीवोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें एक अवस्थित विभ-
 क्तिस्थान ही पाया जाता है, इसलिये वहा भागाभाग नहीं है । इसीप्रकार अकपायी,
 सूक्ष्मसापरायिक संयत, यथाक्यात संयत, अश्वभय, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-
 दृष्टि जीवोंमें एक अवस्थित विभक्तिस्थान पाया जाता है इसलिये यहा भी भागाभाग नहीं
 पाया जाता, ऐसा कहना चाहिये ।

इसप्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४५३. चेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
 निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें
 रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं । भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव कितने
 क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार जितनी भी अनन्त
 राशिया हैं उनका तथा पृथिवी आदि चार स्थावरकाय तथा इनके बादर और बादर-
 अपर्याप्त, सूक्ष्म, सूक्ष्मपर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंका क्षेत्र कहना चाहिये । इतनी

च वचम् । पवरि पदविसेमो वापियवो । बादरवाठ० पन्च० अबद्धि० के० । लोमस्स संखे० मागे । अप्प० असंखे० मागे । सेससखेन्नासखेन्नासम्भरासीओ केवदि० खेचे । लोमस्स असंखेन्नादिमागे ।

एव खेचाजुगमो समचो ।

§ ४५४ श्लेष्याह्वगमेण बुविहो निरेसो भोपेण मारेसेत्र प । तस्व ओपेण मुजगारविहतिपदि केवदिप्य खेचं फोसिद्दं । लोमस्स असंखे० मागे, अह-चोरस माया वा देख्वा । अप्पदरविहतिप केवदिप्य खेचं फोसिद्दं । लोम० असंखे० मागे, अह-चोरसमामा देख्वा, सम्भसोमो वा । अबद्धि० सम्भसोमो । एव क्खपजोगि चचारि क्खसाय-असंखद-अचक्खु-अवसिद्धि-आहारि पि वचम् ।

§ ४५५ आदेसेण वेरएयसु सुसं खेचमयो । अप्पदर० अबद्धिद्विहतिपदि केव० फोसिद्दं । लोमस्स असंखे० मागे, अ चोरस मामा वा देख्वा । पढमपुडवि०

वियेक्खा है जहां कितने अवस्थित जादि पद हों उन्हें जानकर ही उदनुसार क्षेत्र कहना चाहिये । बादर वापुक्खविक पर्याप्त जीवोंमें अवस्थित विमच्छिस्वानवासे जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं । लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । तथा वे ही बादरवापुक्खविक अस्पतर विमच्छिस्वानवासे पर्याप्त जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली सर्व जीव पच्छिमा कितने क्षेत्रमें रहती हैं । लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहती हैं ।

इसप्रकार क्षेत्रानुगत समान हुआ ।

§ ४५६ स्पर्धनामुगमकी अपेक्षा निर्देठ हो प्रकारका है । ओषनिर्देठ और आदेश निर्देठ । उनमेंसे ओषनिर्देठकी अपेक्षा मुजगार विमच्छिस्वानवासे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रस नाकीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम अठ प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अस्पतर विमच्छिस्वानवासे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनाकीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम अठ भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अवस्थित विमच्छिस्वानवासे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार क्खबोगी, ओषादि चारों क्खवासे अवस्थित अचक्खुदर्सी, मच्च और आहारक जीवोंमें मुजगार जादि विमच्छिस्वानवासे जीवोंका स्पर्शम कहना चाहिये ।

§ ४५७ आदेशकी अपेक्षा मारकियोंमें मुजगारविमच्छिस्वानवासे जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । मारकियोंमें अस्पतर और अवस्थित विमच्छिस्वानवासे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनाकीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । पइली पृथिवीमें मुजगार जादि विमच्छिस्वानवासे जीवोंका

खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति भुज खेत्तभंगो । अप्पदर० अवट्टि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो । एक-वे-तिण्ण-चत्तारि-पच-छ-चोइस-भागा वा देसूणा ।

§ ४५६ तिरिक्खेसु भुज० अवट्टिदाणं खेत्तभंगो । अप्पद० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । एवमोरालि०-णनुस०-तिण्णले० वत्तव्वं । पच्चिदियतिरिक्ख-पच्चि०तिरि० पञ्ज०-पच्चि० तिरि० जोणिणीसु भुजगार० खेत्तभंगो । अप्पद० अवट्टि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । एव मणुसतियस्स वत्तव्वं । पच्चि० तिरि० अपञ्ज० अप्पद० अवट्टिदवि० के० खे० फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । एवं मणुसअपञ्ज०-सव्वविगल्लिदिय-पच्चिदिय-अपञ्ज० ।

स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके मुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे दूसरी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम एक राजु, तीसरी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम दो राजु, चौथी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम तीन राजु, पाचवीं पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम चार राजु, छठी पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम पाच राजु और सातवीं पृथिवीकी अपेक्षा कुछ कम छह राजु प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ ४५६. तिर्यचोमें मुजगार और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तिर्यचोमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार औदारिककाययोगी, नपुसकवेदी और कृष्ण आदि तीन लेइयावाले जीवोंके कहना चाहिये । पंचेन्द्रियतिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच थोनिमती जीवोंमें मुजगार विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा इन्हीं तीन प्रकारके तिर्यचोमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और खीवेदी मनुष्योंके स्पर्शका कथन करना चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार मनुष्य लब्धपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, और पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये ।

१४५७ देव० सुज० फे० खेत फोसिद ? लोगस अंसखे० मागो, अट्ट चोदस मागा वा देवणा । अप्पद० अबट्टि० फे० खेत फोसिद ? लोय० अंसखे० मामो, अट्ट मव-चोदसमागा वा देवणा । एव सोहम्मीशाम्पेसु । मवम०-वाण० जोदिसि० एवं येव, णवरि अम्मि अट्ट मव चोदसमागा देवणा वि बुव तम्मि अट्टुठ-अट्ट-अव चोदसमागा देवणा वि मवध्वं । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारे वि सुज० अप्प० अबट्टि० फेव० । लोय० अंसखे० मागो, अट्ट-चोदसमागा वा देवणा । आणद पाणद आरणञ्जुद एवं येव । णवरि छ चोदसमागा देवणा । उवरि खेतमंगो । एवं वेउम्भियमिस्स० आहार० आहारमिस्स०-अवगदवेद०-अकसा०-मवणत्तव०-सामाप्प छेदो०-परिहार०-सुहुममाप०-अहाकसाद० अमविय० वत्तव ।

१४५८. एरुदियसु अप्प० फे० खेतं फोसिद ? लोय० अंसखे० मागो, सम्भसोगो

१४५७ देवोंमें मुद्रगार विमल्लिखानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ?

छोकके असङ्घातवें भाग और त्रसनाधीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अस्पतर और अवलित विमल्लिखानवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकके असङ्घातवें भागप्रमाण तथा त्रस नाधीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार धौपर्म और ऐशान कस्समें मुद्रगार आदि विमल्लिखानवाले जीवोंका स्पर्श कहना चाहिये । मवववासी अस्पतर और ज्योतिषी देवोंमें भी इसीप्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सामाप्प देवोंमें त्रिम विमल्लिखानवाले जीवोंने त्रसनाधीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण स्पर्श कहा है । मवनत्रिक देवोंमें त्रसनाधीके चौदह भागोंमें से कुछ कम साढ़े तीन भाग, कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण स्पर्श कहना चाहिये । सनत्तुमार जगसे छेकर सहस्सर करी तकके देवोंमें मुद्रगार, अस्पतर और अवलित विमल्लिखानवाले देवोंमें कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकके असङ्घातवें भाग तथा त्रसनाधीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । आन्त, अण्ण और अण्णुव कस्सके देवोंमें भी इसीप्रकार स्पर्श कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वहकि मुद्रगार आदि विमल्लिखानवाले देवोंने त्रसनाधीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इनके ऊपर नौ प्रेक्षेय आदिके देवोंका स्पर्श क्षेत्रके उभाव है । इसीप्रकार वैश्वियकमिअकाययोगी, आहारकअययोगी आहारकमिअकाययोगी, अण्णववैरी, अकणावी, मत्तःपर्यवज्जामी, सामा-यिकसयव, उज्जोपस्वापनासवव, परिहारविष्णुअिसयव, सूस्ससापरवसंयव, ववत्तवावसंयव और अमम्य जीवोंमें कहना चाहिये ।

१४५८ एकेन्द्रियोंमें अस्पतर विमल्लिखानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया

वा। अवट्टि० के० खेतं फोसिदं ? सन्वलोगो । एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपञ०-
 बादरेइंदियअपञ०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपञ०-सुहुमेइदि० अपञ०-पुढवि०-
 बादरपुढवि०-बादरपुढवि० अपञ०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि० पञत्तापञत्त-आउ०-
 बादरआउ०-बादरआउ० अपञ०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ० पञत्तापञत्त तेउ०-बादर-
 तेउ०-बादरतेउ० अपञ०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ०पञत्तापञत्ताणं वत्तं । बादर-
 पुढवि०पञ०-बादरआउ०पञ०-बादरतेउपञत्ताणं अप्पदर-अवट्टिदविहत्तिएहि के० खेतं
 फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, सन्वलोगो वा । वाउ०-बादरवाउ०-बादरआउ-
 अपञ०-सुहुमवाउ०-सुहुमवा०पञत्तापञत्त-ओरालियमिस्स०-असणीणमेइंदियभंगो ।
 बादरवाउ०पञ० अप्पद० लोग० असंखे० भागो, सन्वलोगो वा । अवट्टि० के० खेतं
 फोसिदं ? लोगस्स संखे० भागो, सन्वलोगो वा ।

§ ४५६. पंचिदिय-पंचिदियपञ-तस-तसपञ० भुज० अप्प० ओघभंगो । अवट्टि०

है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्व लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अवस्थित
 विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।
 इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय,
 सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक,
 बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म
 पृथिवीकायिक अपर्याप्त, अष्कायिक, बादर अष्कायिक, बादर अष्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म
 अष्कायिक, सूक्ष्म अष्कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अष्कायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर
 अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त
 और सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका
 स्पर्श कहना चाहिये । बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और बादर
 अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका
 स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।
 वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म
 वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी और असंज्ञी जीवोंका
 स्पर्श एकेन्द्रियोंके समान है । बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले
 जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकक्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा उनमें अवस्थित
 विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके संख्यातवें भाग और
 सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ ४५६. पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें भुजगार और
 अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है । तथा उक्त चारों प्रकारके

के० खेचं फोसिद ? लोग० असखे० मागो अह-चोरसमाया वा देखणा, सभ्यलोगो वा । एव पचमच०-पचवाधि०-इत्थि -पुरिस० चकसु०-सगि० बचचन । वेउभिय० सुब० अप्प अवट्टि० के० खेच फोसिद ? लोगस्त असखे० मागो, अह-तेरह चोरस माया वा देखणा । अवरि सुब० तेरस० बत्ति । कम्मइय० अप्प० के० खेच फोसिद ? सोम० असखे० मामो, सभ्यलोगो वा । अवट्टिद० के० खेचं फोसिद ? सभ्यलोगो । मदि-अण्णाच-सुद अण्णाप० अप्प० ओषमगो, अवाट्टि० ओषं । एव मिच्छादिटी० । विहंग० अप्प० अवट्टि० के० खेच फोसिद ? सोमस्त असखे० मामो, अह-चोरसमाया वा देखणा सभ्यलोगो वा । आमिभि०-सुद०-ओहि० अप्प० अवट्टि० के० खेचं फोसिद ? लोग० असखे० मामो । अह चोरस० देखणा । एव

जीवोंमें अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरके अस फ्यातवें माग, त्रसनालीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम जाठ माग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार पांचों मनोबोगी, पांचों बचनबोगी, खीवैदी, पुक्कपेदी, चसुवईवी और सखी जीवोंमें मुजगार जादि विमच्छिस्तानवाळे जीवोंका स्पर्श कइया चाडिबे ।

वैकिकिक कइबोगी जीवोंमें मुजगार, अल्पतर और अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरके असंख्यातवें माग तथा त्रसनालीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम जाठ माग और कुछ कम तेरह माग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी विधेवद्य है कि वैकिकिककइयनोगियोंमें मुजगार विमच्छिस्तानवाळे जीवोंका स्पर्श त्रसनालीके तेरह माग प्रमाण नहीं पाया जाता है । कर्मणकइययोगियोंमें अल्पतर विमच्छिस्तानवाळे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरके असंख्यातवें माग और सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्व लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

मदि-अण्णानी और सुत्तण्णानी जीवोंमें अल्पतर विमच्छिस्तानवाळे जीवोंका स्पर्श ओपके समान है । तथा अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंका भी स्पर्श ओपके समान है । इसीप्रकार मिच्छादिट्टियोंमें अल्पतर और अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंका स्पर्श कइया चाडिबे । विमज्झामियोंमें अल्पतर और अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंका स्पर्श क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरके असंख्यातवें माग, त्रसनालीके चौरह भागोंमें से कुछ कम जाठ माग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । मदिज्जानी, सुत्तण्णानी और अवधिज्जानी जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विमच्छिस्तानवाळे जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? छोकरके असंख्यातवें माग और त्रसनालीके चौरह भागोंमें से कुछ कम जाठ मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार अवधिईनी, सभ्याट्टि, वेरुत्तवगट्टि

एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्टि० सव्वद्धा । मणुसपज्ज०-मणु-
सिणीसु भुज० अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्टि० सव्वद्धा ।
मणुसअपज्ज० अप्पद० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्टि० जह०
एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एव वेउच्चियमिस्स० । सव्वट्टे अप्पद०
जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्टि० सव्वद्धा । एव मणपज्ज०-संज्जद-
सामाइय-छेदो०-परिहार० खइयसम्माइट्टि ति वत्तच्चं । आहार० अवट्टि० जह० एय-
समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमकसा० सुहुम-जहाक्खाद० वत्तच्च । आहारमिस्स०
अवट्टि० जहणुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

१४६२ उवसम० सम्मामि० अवट्टि० जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० पालिदो० असंखे०

एय समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अवस्थित विभ-
क्तिस्थानवाले मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्व काल है । पर्याप्त मनुष्य
और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले पर्याप्त और
स्त्रीवेदी मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये इनका सर्व काल है । लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें
अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके
असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले लब्धपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य
काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसीप्रकार
वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल
जानना चाहिये ।

सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और
उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले सर्वार्थसिद्धिके वेष
सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्वकाल है । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत,
सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें
अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये ।

आहारक काययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और
यथाख्यात संयतोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये । आहारक-
मिश्रकाययोगियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१४६२. उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले
जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

मोहिदस०-सम्मादि०-वेदय०-उच्चसम० वत्तव्वं । संजदासंजद० अप्प० के० खेत्तं
 फोसिदं ? लोग० अमंखे० भागो । अवट्टि० लोग० अमंगे० भागो, छ चोदस०
 देखणा । तेउ० मोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमारभंगो । सुक्क० आणदभंगो । सइय०
 अप्प० खेत्तभंगो । अट्टि० लोग० अमंखे० भागो, अट्ट चोदम० देखणा । सम्मामि०
 अवट्टि० के० खेत्तं फोसिदं ? लोग० अमंखे० भागो, अट्ट-चोदस० देखणा । मामण०
 अट्टि० लोग० अमंखे० भागो, अट्ट-चारह-चोदम० देखणा । अणाहारि० कम्मइय भगो ।

एवं फोसणाणुगमो समत्तो ।

§ ४६०. कालाणुगमेण दुविहो णिंदेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज्ज०
 अप्प० के० ? जह० एगममओ उक्क० आवलियाए असखे० भागो । अवट्टि० के० ?
 सव्वद्धा । एव सव्वणिरय-तिरिक्ख पच्चि० तिरिक्खति य-देन-मव्वणादि जाव उवरिमगे-
 और उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंमें कहना चाहिये । संयतासगतोंमें अल्पतर विभक्तिस्थान-
 वाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया
 है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और चौदह राजु-
 मेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

तेजोलेइयामें मौघर्म स्वर्गके समान, पद्मलेइयामें मानत्कुमार स्वर्गके समान और
 शुक्ललेइयामें आनत स्वर्गके समान स्पर्श जानना चाहिये । क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें
 अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है । तथा अवस्थित विभ-
 क्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ
 कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्ति-
 स्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस-
 नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादनसम्य-
 ग्दृष्टियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रसनालीके
 चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम चारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया
 है । अनाहारक जीवोंमें कर्मणकाययोगियोंके समान जानना चाहिये ।

इसप्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४६०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-
 निर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा भुज्जगर और अल्पतरविभक्तिस्थानवाले जीवोंका
 काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भाग-
 प्रमाण है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्वकाल है ।
 इसीप्रकार समी नारकी, सामान्य तिर्यच, पचेन्द्रिय तिर्यच, पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच,
 पचेन्द्रिययोनीमती तिर्यच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देव

बल०-पंचिदिय पंचिभय०-तस-तसपञ्ज०-पचमण०-पचबधि०-क्यपयोगि०-ओरालि०
 वेटाभिय०-तिष्णिबेद०-चत्तारि कसाय० असंभद-चकस्तु० अचकस्तु०-छद्मस्त० मब
 सिद्धि०-सष्णि०-आहारि० बत्तम्बे । पचि० तिरि०अपञ्ज० अप्यद० सह० एगसमभो,
 ठह० आबलि० असंखे० भागो । अर्बदि० सम्बदा । एवमजुदिसादि जाब अदराद्द
 सम्बएद्दिय-सम्बविगलिदिय पचि० अपञ्ज०-पचक्य-तसअपञ्ज०-ओरालिपमिस्त०
 कम्मदय०--मदिअप्पाण सुदअप्पाण विहग आभिनि सुद० ओदि० संबदा
 संबद०-ओदिदस० सम्मादि०-बदगसम्मा० मिष्ठादि०-असाणि०-अमाहारि सि बत्तम्बे ।
 १४६१ मणुस० सुब० सह० एयसमभो, उह० संखेजा समया । अप्प० जह०

पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों बचनयोगी कर्मयोगी,
 औदारिककर्मयोगी वैकिकिकर्मयोगी तीनों वेदवाले क्रोधादि चारों कपावधान, असबत,
 बहुरर्तनी अचहुरर्तनी इहाँ सेइपावाले, मध्य, संखी और आहारक जीवोंमें मुजगार
 आदि विमलित्स्वानवाले जीवोंका क्यक कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जब बहुतसे जीव एक समय तक मुजगार और अस्पतर विमलिको करते
 हैं किन्तु इनमें समयमें संसारमें कोई जीव इन विमलियोंको नहीं करता तब मुजगार
 और अस्पतरका अपभ्यकाळ एक समय पाया जाता है । तथा प्रत्येक समयमें अन्य अन्य
 मान्य जीव मुजगार और अस्पतर विमलियोंको निरन्तर करें तो आबलीके असक्यातवें
 भाग क्यक तक करते हैं । अतः मुजगार और अस्पतरका उत्कृष्टकाळ आबलीके असक्यातवें
 भागप्रमाण कहा है । तथा अवस्थित पक्षका काळ सर्वदा स्पष्ट ही है । ऊपर और जितनी
 मार्गत्वार्य गिनार्थ हैं उनमें कल व्यवस्था बन जाती है अतः उनमें मुजगार आदिके क्यकको
 ओषके समान कहा है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच छम्पपर्याप्तकोंमें अस्पतर विमलित्स्वानवाले जीवोंका अपभ्य काळ
 एक समय और उत्कृष्ट काळ आबलीके असक्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थित
 विमलित्स्वानवाले पंचेन्द्रिय तिर्यच छम्पपर्याप्त जीव निरन्तर पाये जाते हैं इसलिये
 बनका सर्वकाळ है । इसीप्रकार अहुदियसे सेकर अपराजित तकके वेवोंमें तथा समी पंचे
 न्द्रिय समी विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रिय छम्पपर्याप्त पांचों स्थावरकाव, ब्रह्म छम्पपर्याप्त
 औदारिककर्मयोगी कर्मणक्ययोगी, मत्स्यजानी, सुताजानी, विमलजानी मातजानी
 सुतजानी अचविदानी सबवासंबत, अचविदानी सम्पम्पुष्टि, वेदक सम्पम्पुष्टि मिष्पा-
 ट्टि, असखी और अनाहारक जीवोंमें अस्पतर और अवस्थित विमलित्स्वानवाले जीवोंका
 क्यक कहा चाहिये ।

१४६१ सामान्य मनुष्योंमें मुजगार विमलित्स्वानवाले जीवोंका अपभ्य काळ एक
 समय और उत्कृष्ट काळ सक्यात समय है । अस्पतर विमलित्स्वानवाले जीवोंका अपभ्य काळ

एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्टि० सव्वद्दा । मणुमपज्ज०-मणु-
सिणीसु भुज० अप्प० जह० एगममओ, उक्क० 'संखेज्जा समया । अवट्टि० सव्वद्दा ।
मणुसअपज्ज० अप्पद० जह० एयममओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्टि० अह०
एगसमओ, उक्क० पालिदो० असंखे० भागो । एव वेउन्वियमिस्स० । सव्वट्टे अप्पद०
जह० एगसमओ, उक्क० सत्वेज्जा समया । अवट्टि० सव्वद्दा । एव मणपज्ज०-संजद-
सामाइय छेदो०-परिहार० खइयसम्माइट्टि ति वत्तव्व । आहार० अवट्टि० जह० एय-
समओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमकसा०-सुहुम-जहाक्खाद० वत्तव्व । आहारमिभस०
अवट्टि० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं ।

१४६२ उवसम० सम्मामि० अवट्टि० जह० अंतोमुहुत्तं उक्क० पालिदो० असंखे०
एय समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अवस्थित विभ-
क्तिस्थानवाले मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्व काल है । पर्याप्त मनुष्य
और स्त्रीवेदी मनुष्योंमें भुजगार और अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल संख्यात म्मय है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले पर्याप्त और
स्त्रीवेदी मनुष्य सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये इनका सर्व काल है । लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें
अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके
असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले लब्धपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य
काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्न्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसीप्रकार
वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल
जानना चाहिये ।

सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और
उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानवाले सर्वार्थसिद्धिके देध
सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये उनका सर्वकाल है । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, सयत,
सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसयत, और ज्ञायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें
अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये ।

आहारक काययोगी जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य काल एक
समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और
यथाख्यात सयतोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका काल कहना चाहिये । आहारक-
मिश्रकाययोगियोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१४६२ उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले
जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्न्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

मागो ।

१४६३ उवसमसम्मादिद्विस्स अब्बतापुबंभिचठक विसजोएतस्स अप्पदर होदि
 ति तएय अप्पदरकालपकूवणा कायन्वा ति ? ए, उवसमसम्मादिद्विस्सि अप्पतापुबधि
 विसजोयपाए अमावात्तो । तदमावो कुदो णम्भदे ? उवसमसम्मादिद्विस्सि अप्पद्विद
 पदं वेव परूवेमाव-उच्चारणाइरियवयवात्तो णम्भदे । उवसमसम्मादिद्विस्सि अप्पता
 पुबधिचठकविसंजोयण मच्चत आइरियवयवेष विरुम्भमावमेद वयपमप्यमाणमाव
 किं ण वुक्कदि ? सच्चमेद अदि त सुए होदि । सुचेय वक्खामं वाहिअदि ण वक्खामेण
 वक्खामं । एएय पुण दो वि उवएसा परूवेयन्वा दोम्भेकदरस्स सुपापुसारिवाव-
 यमामावात्तो । किमदसुवसमसम्मादिद्विस्सि अप्पतापुबंभिचठकविसजोयपा एएयि ?

१४६३ श्लोक—जो उपसमसम्बन्धद्वि चार अनन्तालुबन्धी विनियोजना करता है
 उसके अन्तर विभक्तिस्थान पाया जाता है, इसलिये उपसम सम्बन्धियोंमें अन्तर
 विभक्तिस्थानके कसकी प्रकृष्टता करनी चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपसमसम्बन्धि बीबके अनन्तालुबन्धी चारकी विसंजो-
 वना नहीं पाई जाती है ।

श्लोक—उपसमसम्बन्धि बीबके अनन्तालुबन्धी चारकी विसंजोवना नहीं होती है
 वह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—उपसमसम्बन्धिके एक अवस्थित पद ही होता है इसप्रकार प्रतिपाद्य
 करनेवाले उच्चारणार्थके बचनसे जाना जाता है कि उपसमसम्बन्धिके अनन्तालुबन्धी
 चारकी विसंजोवना नहीं होती ।

श्लोक—उपसमसम्बन्धिके अनन्तालुबन्धी चारकी विसंजोवना होती है इसप्रकार
 बचन करनेवाले उच्चारणार्थ बचनके साथ यह कुछ बचन विरोधको प्राप्त होता है इसलिये
 वह बचन अप्रमाण क्यों नहीं है ?

समाधान—यदि उपसमसम्बन्धिके अनन्तालुबन्धी चारकी विसंजोवनाका बचन
 करनेवाला बचन सूत्रबचन होता तो वह कदा सत्य होता, क्योंकि सूत्रके द्वारा व्याख्यान
 बाधित होजाता है, परन्तु एक व्याख्यानके द्वारा दूसरा व्याख्यान बाधित नहीं होता ।
 इसलिये उपसमसम्बन्धिके अनन्तालुबन्धी विसंजोवना नहीं होती है वह बचन अप्र-
 माण नहीं है । फिर भी यहाँ पर दोनों ही उपदेशोंका प्रकृष्टण करना चाहिये; क्योंकि
 दोनोंमेंसे अमुक उपदेश सूत्रानुसारी है इसप्रकारके ज्ञान करनेका कोई साधन नहीं पाया
 जाता है ।

श्लोक—उपसमसम्बन्धिके अनन्तालुबन्धी चारकी विसंजोवना क्यों नहीं होती है ?

उवसमसम्मत्तकालं पेक्खिय अणंताणुबंधिचउक्कविसंजोयणाकालस्स बहुत्तादो अणं-
ताणुबंधिविसंजोयणपरिणामाणं तत्थाभावादो वा । एत्थ पुण विसंजोयणापक्खो वेव
पहाणभावेणात्रलंबियन्वो पवाइज्जमाणत्तादो चउवीससंतकम्मियस्स सादिरेयवेच्चावाट्ठि-
सागरोवममेत्तकालपरुवयसुत्ताणुसारित्तादो च । तदो अप्पदरसंभवो वि सन्वत्थाणुम-

समाधान—उपशम सम्यक्त्वके कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनाका
काल अधिक है, अथवा वहा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके कारणभूत परिणाम नहीं
पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना
नहीं होती है।

फिर भी यहां उपशमसम्यग्दृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है यह पक्ष ही
प्रधानरूपसे स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि, इस प्रकारका उपदेश परंपरासे चला आ रहा
है। तथा इस प्रकारका उपदेश 'चौवीस सत्त्वस्थानवाले जीवका काल साधिक एकसौ बत्तीस
सागरप्रमाण है' इस प्रकार ररूपण करनेवाले सूत्रके अनुसार है। इस लिये सर्वत्र उपशम-
सम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानकी सम्भावना भी समझ लेना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां उपशमसम्यक्त्वमें अल्पतरविभक्तिका कथन नहीं किया है। इसपर
शंकाकारका कहना है कि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना
करके २८ विभक्तिस्थानसे २४ विभक्तिस्थानको प्राप्त होता है अतः उसके अल्पतरविभ-
क्तिका कथन करना चाहिये। इस शकाका समाधान करते हुए धीरसेन स्वामीने बतलाया
है कि 'उच्चारणाचार्यने उपशमसम्यग्दृष्टिके एक अवस्थित पदका ही कथन किया है और
यहा मुजगारविभक्तिका कथन उन्हींके कथनानुसार किया जा रहा है। अतः उपशमसम्यक्त्वमें
अल्पतरविभक्तिका कथन नहीं किया है। यद्यपि उच्चारणाचार्यका यह उपदेश उपशमसम्य-
क्त्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका कथन करनेवाले उपदेशके प्रतिकूल पड़ता है,
किन्तु मूल सूत्रमन्त्रोंमें अनुकूल या प्रतिकूल कोई उल्लेख न होनेसे ये दोनों उपदेश पर-
स्पर बाधित नहीं होते, अतः दोनों उपदेशोंका संग्रह करना चाहिये।' उपशमसम्यक्त्वमें
अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती इसकी पुष्टिमें धीरसेन स्वामीने दूसरी यह युक्ति
दी है कि उपशमसम्यक्त्वके कालसे अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजनाकाल संख्यातगुणा
है। अत उपशमसम्यक्त्वके कालमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना सम्भव नहीं
है। किन्तु धीरसेनस्वामी 'उपशमसम्यक्त्वके कालसे अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजना
काल संख्यातगुणा है' यह किस आधारसे लिख रहे हैं इसका हमें अभी स्रोत नहीं
मिल सका। मालूम होता है यह मत भी उन्हीं उच्चारणाचार्यका होगा जिनके मतसे
यहां उपशमसम्यक्त्वमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका निषेध किया है। हां, यह
उल्लेख अवश्य पाया जाता है कि 'अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विसंयोजनाकालसे उपशम-

रिमयणो सि । सासज० अशुद्धि० बह० एयसमजो, उक्त० पस्त्रिदो० अस्तंखे०
भागो । अमविय० अशुद्धि० सम्बद्धा ।

एवं क्वासाष्टुगमो समथो ।

§ ४१४ अंतराष्ट्रगममेव इतिहो विदेशो ओषेय आवेसेय प । तस्य ओषेय इव०
अप्यदर० अतरं के० ? बह० एगसमजो, उक्त० चतवीस-अहोरथा सादि० । अशुद्धि०
अस्थि अतरं । एवं सम्बधिरय-तिरिक्त्वा-पंथिदियतिरिक्त्वा०-पथि० तिरि० पत्त०
पथि०-तिरि०-ओषिणी-मनुसतिप-देव-मवपादि जाव उवरिमगेवत्त०-पंथिदिय-पथि०
पत्त०-तस-तसपत्त०-पंथमय०-पचवथि० क्वायमोगि० ओरासि० वेतथिय० तिपिय
वेद०-वचारिकसा०-असंभ०-चकसु०-अपकसु०-इत्सेस०-मवसिद्धि०-सम्बि०-आहारि

सम्बन्धका क्वासाष्टुगमो है ।' जिसका प्रतिपादन क्य भीरसेम स्वामी २४ विमक्ति-
स्वानके क्वासाष्टुगम कवन करते समय कर जाये हैं । इससे तो यही सिद्ध होता है कि
उपलसमसम्बन्धके अन्तर्गतानुबन्धी चतुष्करी विसंबोजना हो सकती है । स्वयं भीरसेन
स्वामी इसे प्रमाणमान उपदेश बतला रहे हैं । तथा पतिहृदय आचार्यने जो २४ विमक्ति-
स्वानका क्वासाष्टुगम साधक एक ही चरीस सागर बतलाया है वह उपलसमसम्बन्धके
अन्तर्गतानुबन्धी चतुष्करी विसंबोजना माने बिना बन नहीं सकता । अतः सिद्ध होता है
कि प्रकृत कथाप्रामाण्यमें उपलसमसम्बन्धके रहते हुए अन्तर्गतानुबन्धी चतुष्करी विसंबो-
जना हो सकती है वह उपदेश मुख्य है । और अन्त्यमें स्वयं भीरसेन स्वामी इसी उपदेश
पर जोर देते हैं ।

साधारणसम्बन्धविधियोंमें अवस्थित विमक्तिस्वानवाले बीबीका अमन्यकाल एक समय
और उक्तकाल पस्यके अक्षय्यातमें भागप्रमाण है । अमन्यमें अवस्थित विमक्तिस्वान
वाले बीच ही सर्वथा पाये जाते हैं इसलिये हमका सर्वकाल है ।

इसप्रकार क्वासाष्टुगम समस्त हुआ ।

§ ४१४ अन्तराष्ट्रगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषिर्देश और आवेद
निर्देश । हममेंसे ओषिर्देशकी अपेक्षा मुंबगार और अक्षय्यत विमक्तिस्वानवाले अन्त-
रकाल कितना है ? अमन्य अन्तरकाल एक समय और उक्त अन्तरकाल साधक बीबीस
दिन रात है । अवस्थित विमक्तिस्वानवाले बीबीका अन्तरकाल नहीं पाया जाय है । इसी
प्रकार सभी नारकी, सामान्य शिर्ष, पंचेन्द्रिय शिर्ष, पंचेन्द्रिय शिर्ष पर्याप्त, पंचेन्द्रिय-
शिर्ष बोमिमरी, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, शिर्षी मनुष्य, सामान्यदेव,
मवनवास्तिबोसे केकर उपरिम प्रियेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त, प्रस, इस
पर्याप्त, बाँधो मन्त्रोयोगी, पाँचों वचनबोगी काययोगी, औदारिककाययोगी, वैकल्पिककाय
योगी, सीनो वैदवासे, ओषामि चारों कपाववासे, असंपद, चतुर्दशैनी, अचतुर्दशैनी, उहो

त्ति वत्तव्वं ।

§ ४६५. पांचिदियतिरिक्खअपज्ज० अप्पदर० जह० एगसमओ उक्क० चउवीसअहो-
रत्ता सादि० । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवमणुहिसादि जाव अवराइद त्ति-सव्वएइंदिय-
सव्वविगलिंदिय-पांचि० अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-
मदि-अण्णाण-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-
क्खेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणा
हारि त्ति वत्तव्वं । मणुस-अपज्ज० अप्पदर० अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो०
असंखे० भागो । सव्वट्ठे अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

§ १६६ अणुहिसादि अवराइयदंताणं अप्पदरस्स अंतरं एत्थ उच्चारणाए चउवीस
अहोरत्तमेत्तमिदि भणिदं । वप्पदेवाइरियलिहिद-उच्चारणाए वासपुधत्तमिदि परूविदं ।
एदासिं दोणहमुच्चारणाणमत्थो जाणिय वत्तव्वो । अम्हाणं पुण वासपुधत्तं सोह-
लेइयावाले, भन्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ४६५ पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है । तथा अव-
स्थित विभक्तिस्थानका अन्तरकाल नहीं पाया जाता है । अर्थात् अवस्थित विभक्तिस्थानवाले
पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव सर्वदा पाये जाते हैं । इसीप्रकार अनुदिशसे लेकर
अपराजित तकके देवोंमें तथा सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त,
पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी,
श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामा-
यिकसंयत, लेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि
वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित
विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अन्तरकाल कहना चाहिये ।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त जीवोंमें अल्पतर और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य
अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।
सर्वाधीसिद्धिमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट
अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ४६६. अनुदिशसे लेकर अपराजितकल्प तकके देवोंके अल्पतर विभक्तिस्थानका
अन्तरकाल यहाँ उच्चारणमें चौबीस दिनरात कहा है, पर वप्पदेवके द्वारा लिखी गई उच्चा-
रणमें वर्षपृथक्त्व कहा है । अतएव इन दोनों उच्चारणाओंका अर्थ समझकर अन्तर
कालका कथन करना चाहिये । पर हमारे (वीरसेन स्वामीके) अभिप्रायसे वर्ष पृथक्त्व
अन्तरकाल ही ठीक प्रतीत होता है । क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका उत्कृष्ट

यमिदि अहिष्वाजो । इदो ! अणवाशुबंषिषिसञ्जीयणाए उक्तस्यैव वासपुषत्तरे संते विसंजोयचापमभाषादो । तस्य चतवीस अहोरचाभि अंतरं होदि अर्य सम्मत् सम्मामिच्छचापमुद्वेष्टणादो अप्पदरमिच्छिज्जदि । एर्य पुण त पारिष । तम्हा वास पुषत्तरेमजुदिसादिसु पिरवज्जमिदि ।

१४६७ वेदभियमिस्स० अप्पदर० एगसमओ, उक्क० चतवीस अहोरचापि सादि० । अबट्ठि० अह एगसमओ, उक्क० चारस मुहुत्ता । आहार० आहारमिस्स० अबट्ठि० अह० एगसमओ, उक्क० वासपुषत्त । एवमकसाय० अहाकत्ताद् अेदरुव । अबगद० अप्पदर० अबट्ठि० अह० एगसमओ, उक्क० इम्मासा । सुहुमसांपराइय० अबट्ठि० अह० एगसमओ उक्क० इम्मासा । अमम्ब० अबट्ठि० अरिष अतरं । खइय० अप्प० अह० एगसमओ, उक्क० इम्मासा । अबट्ठि० णरिष अतरं । उवसम०-सासव०-

अन्तरकाळ वर्षेपुषत्त्व ररते हुप बीचमें विसंजोवना वही वन सफती है । अस्पतर विमच्छिस्वानक्य चौबीस दिनरत अन्तरकाळ गो वहां होता है वहां सम्पत्कृति और सम्मगमिष्वात्त्व प्रकृतिकी उद्वेष्टनासे अस्पतर विमच्छिस्वान लीकार किय जाता है । पर अनुदिशसे छेकर अपराजित तकके देवोंमें इस प्रकारक अस्पतर विमच्छिस्वान ही मही पाया जाता है । इससे प्रतीत होता है कि अनुदिशाधिकमें अस्पतर विमच्छिस्वानक्य वर्षेपुषत्त्वप्रमाण अन्तरकाळक्य कवन निर्वाच है ।

१४६७ वैदिकिक्रमिकक्यबसोमिबोमें अस्पतर विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अचम्य अन्तरकाळ एक समय और अक्कड अन्तरकाळ साधिक चौबीस दिनरत है । तथा अवस्थित विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अचम्य अन्तरकाळ एक समय और अक्कड अन्तरकाळ चारह सुहृत है । आहारककावयोगी और आहारकमिच्छक्ययोगी बीबोंमें अवस्थित विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अचम्य अन्तरकाळ एक समय और अक्कड अन्तरकाळ वर्षेपुषत्त्व है । इसीप्रकार अक्याबी और वचाकमावसवत बीबोंमें अवस्थित विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अन्तरकाळ कइय चामिने ।

अपमत्तवेदियोंमें अस्पतर और अवस्थित विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अचम्य अन्तरकाळ एक समय और अक्कड अन्तरकाळ कइ महीना है । सूक्ष्मसांपरायिकसंनतोंमें अवस्थित विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अचम्य अन्तरकाळ एक समय और अक्कड अन्तरकाळ कइ महीना है । अमम्बोंमें सर्वदा अवस्थित विमच्छिस्वानकाळे ही बीच पाये जाते हैं इसलिये हममें अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है ।

आधिकसम्भगृहियोंमें अस्पतर विमच्छिस्वानकाळे बीबोंक्य अचम्य अन्तरकाळ एक समय और अक्कड अन्तरकाळ कइ महीना है । तथा आधिकसम्भगृहियोंमें अवस्थित विमच्छिस्वानक्य अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है । उपसमसम्भगृहिये, सासाएन सम्यगृ-

सम्मामि० अवट्टि० जह० एगसमओ । उक्क० चउवीसअहोरत्ताणि सादि० उवसमसम्मा-
दिट्ठीणमंतरं । सेसदोण्हं वि पालिदो० असंखे० भागो । उवसम० अप्पदर० अवट्टिद० मंगो ।
एवमतराणुगमो समत्तो ।

§ ४६८. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ ४६९ अप्पावहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओषेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण
सव्वत्थोवा अप्पदरविहत्तिया, भुजगारविहत्तिया विसेसाहिया, अवट्टिदविहत्तिया अणंत-
गुणा । एव तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालिय०-णतुंस०-चत्तारिकसा०-असंजद०-अचक्खु०
किण्ह-णील-काउ०-भवसिद्धि०-आहारि त्ति ।

§ ४७०. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अप्पदर०, भुज० विसेसाहिया, अवट्टि०
असंखेज्जगुणा । एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिम-
गेवज्ज०-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि-

दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका जघन्य अन्तर-
काल एक समय है । और उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात
है तथा सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टियोंमें उत्कृष्ट अन्तर पर्यके अष्टादश्यातवे
भाग है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानका अन्तर अवस्थितके समान है ।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४६८ भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदायिक भाव होता है ।

इसप्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४६९. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और
आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अल्पतर विभक्तिस्थान वाले जीव सबसे थोड़े हैं ।
इनसे भुजगार विभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अवस्थित विभक्तिस्थान
वाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यंच, काययोगी, औदारिक काययोगी
नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंचयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण, नील और कापोत
लेख्यावाले, भव्य तथा आहारक जीवोंमें अल्पतर आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्प-
बहुत्व कहना चाहिये ।

§ ४७०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर विभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े
हैं । इनसे भुजगारविभक्तिस्थानवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अवस्थित विभक्ति-
स्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार सभी नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यंच, सामान्य पंचे-
न्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम
त्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पांचों

पुरिस०-बन्धु०-सेठ०-पम्प०-सुद्ध०-सण्णि वि । पंथिदियतिरिक्खअपज०-मपुस
अपज०-अणुसिआदि आब अवरत्तद वि-सम्भविगसिंदिय-पंथिदियअपज -पचा-
रिक्खय-तसअपज०-वेठम्भियमिस्स०-विहग० आमिणि०-सुद० ओहि०-संखदा-संखद
ओहिदस० सम्माइही-वेदय०-त्तइयसम्मादिदि वि एदेसु सम्भेसु वि सम्भ
त्थोवा अप्पदरविहात्थिया, अबद्धिद० असंखे०गुणा । सम्भटे सम्भत्थोवा अप्पदर
विहात्थिया, अबद्धिदविहात्थिया संखेजगुणा । एवमपेद० मणपज्जव०-संखद०-सामाएय
छेदो०-परिहार० बत्तर्च ।

१४७१ मणुस्सेसु सम्भत्थोवा सुब०, अप्पदर० असंखेजगुणा, अबद्धि० असंखेज
गुणा । मणुसपज्जव-मणुसिपीसु सम्भत्थोवा सुब०, अप्पदर० संखेजगुणा, अबद्धि०
संखेजगुणा ।

१४७२ एइयिपसु सम्भत्थोवा अप्पदर०, अबद्धि० अणतगुणा । एवं सम्भणणप्फदि
बचनबोगी, बैक्रियिक कायबोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, बभ्रुवर्द्धनी, पीतलेइयावाले, पच-
लेइयावाले, सुखखेइयावाले और संझी जीर्णो अस्पतर आदि विमत्तिस्वानवाले जीर्णो
अस्पबहुत्व जानना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच छम्भपर्याप्तक, मनुष्य छम्भपर्याप्तक, अनुविदसं सेकर अपराधित
तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय छम्भपर्याप्तक प्रविषी आदि चार आचरकाय,
प्रसम्भपर्याप्तक, बैक्रियिकमिब्रह्मबोगी, विमग्यज्ञानी मतिज्ञानी, सुतज्ञानी, अबधि
ज्ञानी, संवत्तासयत, अबधिदर्सनी, सम्भगट्टि, वेदकसम्भगट्टि और धायिकसम्भगट्टि
जीर्णो सबसे बोड़े अस्पतर विमत्तिस्वानवाले जीव हैं । इनसे अबरिपत विमत्तिस्वान
वाले जीव असम्भवातगुण हैं ।

सुर्धार्यासिद्धिमें अस्पतरविमत्तिस्वानवाले जीव सबसे बोड़े हैं । इनसे अबरिपत
विमत्तिस्वानवाले जीव सम्भवातगुणे हैं । इसीप्रकार अपराधवेदी, ममापर्ययज्ञानी, सयत,
सामायिकसंयत छेदोपस्थापनासयत और परिहारविद्युदिसयत जीर्णो अस्पतर आदि
विमत्तिस्वानवाले जीर्णो अस्पबहुत्व कहना चाहिये ।

१४७३ मनुष्योमें सुभगार विमत्तिस्वानवाले जीव सबसे बोड़े हैं । इनसे अस्पतर
विमत्तिस्वानवाले जीव असम्भवातगुणे हैं । इनसे अबरिपत विमत्तिस्वानवाले जीव असं
म्भवातगुणे हैं । मनुष्य पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योमें सुभगार विमत्तिस्वानवाले जीव
सबसे बोड़े हैं । इनसे अस्पतर विमत्तिस्वानवाले जीव संम्भवातगुणे हैं । इनसे अबरिपत
विमत्तिस्वानवाले जीव सम्भवातगुणे हैं ।

१४७४ एकेन्द्रियोमें अस्पतर विमत्तिस्वानवाले जीव सबसे बोड़े हैं । इनसे अब
रिपत विमत्तिस्वानवाले जीव असम्भवातगुणे हैं । इसीप्रकार सभी वनस्पतिकाधिक, सभी

सन्वाणिगोद० -ओरालियमिस्स० -कम्मइय० -मदि-सुद -अण्णाण० -मिन्हा० -अमण्णि० -
अणाहारि त्ति वत्तच्च्वा। आहार० -आहारमिस्स० -अकमाय० -सुहुम० -जहाक्खाद० -अमन्व० -
उवमम० सासण० -सम्मामि० णत्थि अप्पाबहुअं एगपदत्तादो । अथवा उवसम०
सन्वत्थो० अप्पद०, अवट्ठि० अमंखे० गुणा ।

एवं पयडिभुजगारविहत्ती समत्ता ।

निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मि० यादृष्टि,
असंज्ञी और अनाहारक जीवोंमें अल्पतर आदि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका अल्पबहुत्व
कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकपायी, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथा-
ख्यातसंयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें
अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, इनमें एक अवस्थितस्थान ही पाया जाता है । अथवा, उप-
शमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतरविभक्तिस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अवस्थितविभ-
क्तिस्थानवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ।

इसप्रकार प्रकृतिभुजगारविभक्ति समाप्त हुई ।

१. * पदविश्लेषे यद्गीष् च अणुमग्निवाप सम्मत्ता पयद्विविहती ।
 § ४७३ पदविश्लेषो नाम अहिपारो अबरो यद्गीष्णाम् । एतेसु दोसु अहिपारेसु
 एव्य परूविदेसु पयद्विविहती सम्पदि ति अहसहाइरिएण भणिदं ।
 § ४७४ संपदि अहसहाइरिय-सहाइरणं दोसुमस्याहियाराणसुचारणाइरियपरूविद
 सुचारणं वचस्सामो-

§ ४७५ पदविश्लेषे तिप्पि अवियोगद्वाराणि समुक्तिष्यां, सामित्तमप्याबहुअ
 पेदि । को पदविश्लेषो नाम ? अहण्णुस्सपदविषयपिच्छए खिबदि पादेदि ति
 पदविश्लेषो । तस्य समुक्तिष्याणुगमो दुनिहो उक्कस्सओ अहण्णओ पेदि । तस्य
 उक्कस्सए पयदं ।

* यहां पर पदनिर्घेप और वृद्धि इन दो अनुयोगद्वारोंका विचार कर लेनेपर
 प्रकृतिविभक्तिका रूपन समाप्त होता है ।

§ ४७३ एक अधिकारका नाम पदनिर्घेप है और वृद्धेरका नाम वृद्धि । इन दोनों
 अधिकारोंका यहां रूपन कर देनेपर प्रकृतिविभक्तिका रूपन समाप्त होता है, यह पठित्व
 मात्रार्थक अभिप्राय है ।

§ ४७४ अब पठित्वमात्रार्थके द्वारा सूचित किये गये दोनों अर्थाधिकारोंकी उच्चार
 मात्रार्थके द्वारा करी गई उच्चारणावृत्तिको बतलाते हैं-

§ ४७५ पदनिर्घेपमें तीन अनुयोगद्वार हैं-समुत्कीर्तना, स्वमित्त्व और अल्पबहुत्व ।
 श्लेष-पदनिर्घेप किसे कहते हैं ?

समाधान-जो अल्प्य और उत्कृष्ट पदविषयक निरूपणमें से जाता है उसे पदनिर्घेप
 कहते हैं ।

पदनिर्घेपके इन तीनों अनुयोगद्वारोंमेंसे समुत्कीर्तनानुयोगद्वार उत्कृष्ट और अल्प्यके
 भेदसे दो प्रकारका है । इन दोनोंमेंसे उत्कृष्ट समुत्कीर्तना प्रकृत है अर्थात् पहले उत्कृष्ट
 समुत्कीर्तनाका रूपन करते हैं-

विशेषार्थ-पहले २०, २१ आदि विभक्तिरूपन बतसा जाये हैं । उनमेंसे अमुक स्थान
 से अमुक स्थानकी प्राप्ति होने समय वह हासित्व है या वृद्धित्व इत्यादि बातोंका इन्हमें
 विचार किया गया है । यथा-एक जीव अद्वांसि विभक्तिरूपनवाला है उसने सम्पत्त्वकी
 लोभना करके सत्तांसि विभक्तिरूपनको प्राप्त किया तो यह अल्प्य हासि हुई । तथा एक
 जीव इत्थोम विभक्तिरूपनवाला है उसने अल्पत्वकेपीपर बढ़कर आठ कपायोंका श्रय करके
 तेरह विभक्तिरूपनको प्राप्त किया तो यह वृद्धि हासि है । इसी प्रकार सत्तांसि विभक्ति-
 रूपनवाले जिस जीवने उपराम सम्पत्त्वको प्राप्त करके अद्वांसि विभक्तिरूपनको प्राप्त किया
 तो यह अल्प्य वृद्धि है तथा चौबीस विभक्तिरूपनवाले एक जीवने मिथ्यात्वमें जाकर अद्वांसि

§ ४७६. उक्त्सपदसमुक्त्तित्ताणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अत्थि उक्त्सवद्दी-हाणि-अवट्टाणाणि । एवं सत्तपुटवि०-तिरिक्ख०-पंचिदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादिं जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिदिय-पंचि-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउच्चि०-तिण्णिवेद-चचारि क०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारिं ति । पंचि० तिरि०अपज्ज० अत्थि उक्त्सहाणि-अवट्टाणाणि । एवं मणुसअपज्ज०-अणुहिसादि

विभक्तिस्थानको प्राप्त क्रिया तो यह उत्कृष्ट वृद्धि है । यहा इतनी विशेषता है कि हानि सब स्थानोंसे होती है पर वृद्धि २७, २६ और २४ इन तीन विभक्तिस्थानोंसे ही होती है । इस प्रकार इन सब बातोंका विचार इस पदनिक्षेप अनुयोगद्वारमे किया गया है ।

§ ४७६. उत्कृष्ट पद समुक्त्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय-तिर्यंच आदि तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य आदि तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देव, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि छहों लेश्यावाले, भव्य, संह्री और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघकी अपेक्षा २१ विभक्तिस्थानसे १३ विभक्तिस्थानकी प्राप्तिके समय उत्कृष्टहानि और २४ विभक्तिस्थानसे २८ विभक्तिस्थानकी प्राप्तिके समय उत्कृष्टवृद्धि होती है । तथा उत्कृष्ट हानिके पश्चात् होनेवाले अवस्थानको हानिसम्बन्धी और उत्कृष्ट वृद्धिके पश्चात् होनेवाले अवस्थानको वृद्धिसम्बन्धी उत्कृष्ट अवस्थान कहते हैं । उपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उन सबमें उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान समभव हैं अत उनके कथनको ओघके समान कहा । पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि उक्त सभी मार्गणाओंमें २१ विभक्तिस्थानसे १३ विभक्तिस्थानकी प्राप्ति होती है । किन्तु यहां ओघके समान कहनेका यह अभिप्राय है कि उक्त मार्गणाओंमें हानि, वृद्धि और अवस्थान तीनों सम्भव हैं अतः उनका कथन ओघके समान कहा गया है । किस मार्गणांमें अधिकसे अधिक कितनी प्रकृतियोंकी हानि, वृद्धि और तदनन्तर अवस्थान होता है इसका आगे खामित्व अनुयोगद्वारमें खुलासा किया ही है । अतः इस विषयको वहांसे जान लेना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, अनुविशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सर्व एकेन्द्रिय,

§ ४७६. उक्त्सपदसमुक्त्तिणाणुगमेण दुर्विहो णिदेसो, ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अत्थि उक्त्सवद्दी-हाणि-अवट्टाणाणि । एवं सत्तपुटवि०-तिरिक्ख०-पंचिदियतिरिक्खवतिय-मणुसतिय-देव-भवणादिं जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिदिय-पंचि-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउच्चि०-तिण्णिवेद-चत्तारि क०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-उल्लेस्सा-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि ति ।

पंचि० तिरि० अपज्ज० अत्थि उक्त्सहाणि-अवट्टाणाणि । एवं मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि विभक्तिस्थानको प्राप्त किया तो यह उत्कृष्ट वृद्धि है । यहा इतनी विशेषता है कि हानि सब स्थानोंसे होती है पर वृद्धि २७, २६ और २४ इन तीन विभक्तिस्थानोंसे ही होती है । इस प्रकार इन सब बातोंका विचार इस पदनिक्षेप अनुयोगद्वारमें किया गया है ।

§ ४७६. उत्कृष्ट पद समुक्त्तीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय-तिर्यंच आदि तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मनुष्य आदि तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देव, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अक्षुदर्शनी, कृष्णादि छहों लेश्यावाले, मन्थ, संझी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघकी अपेक्षा २१ विभक्तिस्थानसे १३ विभक्तिस्थानकी प्राप्तिके समय उत्कृष्टहानि और २४ विभक्तिस्थानसे २८ विभक्तिस्थानकी प्राप्तिके समय उत्कृष्टवृद्धि होती है । तथा उत्कृष्ट हानिके पश्चात् होनेवाले अवस्थानको हानिसम्बन्धी और उत्कृष्ट वृद्धिके पश्चात् होनेवाले अवस्थानको वृद्धिसम्बन्धी उत्कृष्ट अवस्थान कहते हैं । उपर जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उन सबमें उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान समब हैं अत उनके कथनको ओघके समान कहा । पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि उक्त सभी मार्गणाओंमें २१ विभक्तिस्थानसे १३ विभक्तिस्थानकी प्राप्ति होती है । किन्तु यहां ओघके समान कहनेका यह अभिप्राय है कि उक्त मार्गणाओंमें हानि, वृद्धि और अवस्थान तीनों सम्भव हैं अतः उनका कथन ओघके समान कहा गया है । किस मार्गणामें अधिकसे अधिक कितनी प्रकृतियोंकी हानि, वृद्धि और तदनन्तर अवस्थान होता है इसका आगे स्वामित्व अनुयोगद्वारमें खुलासा किया ही है । अतः इस विषयको वहांसे जान लेना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सब एकेन्द्रिय,

आय सम्बन्ध०-सम्बन्धद्वय-सम्बन्धविगर्हीद्वय-पश्चि० अपज०-पश्चिम-समपज०-ओरा
 त्रियमिस्स० वेठम्बियमिस्स० कम्मइय०-अवगदवेद मदि सुदअम्ब्याक्-विइग०
 आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज० सजद० सामाइयच्छेदो० परिहार० समदासंजद०
 ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-सग्गि०-अणाहारि पि। आहार०-आहार
 मिस्स०-अकसा०-सुइम०-अहाक्खाद० अमम्ब०-उवसम०-सासज०-सम्मामि० अत्ति
 उक्कस्समवट्ठाण ।

एषमुक्कस्सवट्ठी-हाणि-अवट्ठाण-समुच्चिपया समदा ।

§ ४०७ अहण्य पयर्द । बुविहो मिदेसो ओषेण आदेसेण य । तत्त्व ओषेण

एषं विकल्पेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सम्बन्धपर्याप्त, पांचों स्थावरकाम, अथ सम्बन्धपर्याप्त, औदारिक-
 मित्रकामयोगी, वैकल्पिकमित्रकामयोगी, कर्मव्यययोगी, अवगतवेदी, मत्पुत्रानी कुवा-
 ज्ञानी, विमगज्ञानी, मतिज्ञानी, कुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक-
 संकत, छेदोपस्थापनासकत, परिहारविद्युत्संयत, सपतासकत, अवपिदसंती, सुम्बगट्टि,
 धायिक सम्बगट्टि, वेदकस्सम्बगट्टि, मिप्यागट्टि, सदी और अनाहारक जीवोंके करना
 चाहिये ।

विशेषार्थ—आरेराकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि नहीं होती । किन्तु उत्कृष्ट हानि और अहृष्ट
 अवस्थानरूप विचार करते समय जिस जिस मार्गजामे अधिकसे अधिक कितनी प्रकृति-
 बोंकी हानि और अवगत्तर अवस्थान होता है वही वहाँ उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अव-
 स्थान किया गया है । अवगत्तरके छिये सम्बन्धपर्याप्त तिथियोंमें अधिकसे अधिक एक प्रकृ-
 तिकी ही हानि होती है तथा मतिज्ञानिकोंके अधिकसे अधिक आठ प्रकृतियोंकी हानि
 होती है । अतः ये अपनी अपनी अपेक्षासे उत्कृष्ट हानिवां ध्यानना चाहिये । इसीप्रकार ऊपर
 कितनी और मार्गजार्थ गिनाई हैं उनमें भी समझ लेना ।

आहारकामयोगी, आहारकमित्रकामयोगी, अकपाधी, सुस्मसांपराधिकसंयत, पञ्च-
 क्पाठसकत, अमम्ब, उपशमसम्बगट्टि सासादनसम्बगट्टि और सम्बमिप्यागट्टि, जीवोंमें
 उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

विशेषार्थ—ये आहारककामयोगी आदि मार्गजार्थ देसी हैं जिनमें ज्ञानकी हानि वृद्धि
 तो नहीं होती, परन्तु इनमें अमम्बमार्गजामे छोड़ कर दोष सब मार्गजामोंमें उत्कृष्ट और
 अपम्ब अवस्थान सम्भव है । इनमेंसे वहाँ उत्कृष्ट अवस्थानका ग्रहण किया है । यद्यपि
 उपशमसम्बगट्टि जीव अन्तःशुद्धिकी अनुष्ठीकी विसयोजना करते हैं, अतः वहाँ उत्कृष्ट
 हानि सम्भव है पर यह कुछ आचार्योंका मत है इसछिये इसकी वहाँ विषया नहीं की ।
 इस प्रकार वृद्धि हानि और अवस्थानरूप समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

§ ४०७ अथ अपन्य वृद्धि आविकी समुत्कीर्तनाका प्रकरण है । इसकी अपेक्षा निर्देश

अत्थि जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्टाणाणि । एवं गिरय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज-पंचिदिय-पंचि-पज्ज-तस-तसपज्ज-पचमण-पंचवचि-कायजोगि-ओरालि-वेउव्विय-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-असंजद-चक्खु-अचक्खु-छलेस्सा-भवसिद्धि-सण्णि-आहारि ति । पंचिदियतिरिक्ख-अपज्ज-अत्थि जहण्णहाणि-अवट्टाणाणि । एव मणुसअपज्ज-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ-सव्वएहंदि-सव्वविगल्लिदिय-पंचि-अपज्ज-पंचकाय-तसअपज्ज-ओरालिय-मिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-अवगदवेद-मदि-सुदअण्णाण-विहग-आभिण-सुद-ओहि-मणपज्ज-संजद-सामाइयच्छेदो-परिहार-सजदासंजद-ओहिदस-सम्मादि-खइय-वेदय-मिच्छा-असण्णि-अणाहारि ति । आहार-आहारमिस्स-अकसाइ-सुहुम-जहाक्खाद-उवसम-सासण-सम्मामि-अत्थि जहण्णमवट्टाण ।

दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्यवृद्धि जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार नारकी, तिर्यच, पचेन्द्रियतिर्यच आदि तीन प्रकारके तिर्यच, सामान्य मनुष्य आदि तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिमत्रैवेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्मपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, उहों बेर्यावाले, भव्य, संझी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तकोमे जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार लब्धपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, ब्रह्मलब्धपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, भतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंझी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें जघन्य अवस्थान होता है ।

विशेषार्थ—जघन्य वृद्धि आदिकी समुत्कीर्तनामें जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका ग्रहण किया है, जो स्वामित्व अनुयोगद्वारासे जाना जा सकता है । अभव्योंके एक २६ विभक्तिरूप ही स्थान होता है अतः उसका जघन्य अवस्थानमें निर्देश नहीं किया है ।

एष संसृष्टिगणा समचा ।

§ ४७८ सामिचं बुबिहं बहण्णुयस्स च । उच्चस्से पयद । बुबिहो णिरेसो ओषेण आदेसेण य । उरय ओषेण उच्चस्सिया बद्दी कस्स ? अण्णदरो सो चउवीससत कम्मिओ भिच्छरं गदो तस्स उच्चस्सिया बद्दी । उच्चस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स सो एकवीससतकम्मिओ अट्टकसाए ख्खेदि तस्स उच्चस्सिया हाणी । तस्सेच से क्खळे उच्चस्समबद्धानं । एष मणुसायिय-पंचिदिय-पंचि-पल-उस-उसपल-पंचमण-पच वधि क्कयजोगि-ओरासि-तिण्णिबेद-चत्तारि क-चक्खु-अचक्खु-सुक्क-मवसिद्धि-साणि-आहारि चि ।

§ ४७९ आदेसेण बेरएणसु उच्चस्सिया बद्दी कस्स ? अण्णदरस्स अणंताणुवधि चउव विसओरय सञ्चउस्स । हाणी कस्स ? अण्णदरस्स अट्टावीस-संतकम्मियस्स अणंताणुवधिचउव विसओरयतस्स उच्चस्सिया हाणी । एगदरएय अबद्धान । एष सण्ण गिरय-तिरिक्ख-पंचि-तिरि-पंचितिरि-पल-पंचितिरि-ओपिणी-देव-मवणादि खाव

इसप्रकार संसृष्टीर्तना समाप्त हुई ।

§ ४७८ अल्प और उत्कृष्टके भेदसे स्वामित्व दो प्रकारका है । इनमेंसे उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रकार है । उसकी अपेक्षा निर्देह जो प्रकारका है ओपनिर्देह और आदेह-निर्देह । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा उत्कृष्ट बुद्धि किसके होती है ? चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता-बासा जो कोई भीच सिध्दात्तको प्राप्त हुआ, उसके उत्कृष्ट बुद्धि होती है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? इसीस प्रकृतियोंकी सत्ताबासा जो कोई जीव जाठ कथापोक्य रूप करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा इसी भीचके उदमन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसीप्रकार सामान्य, पचास और बीसवीं इन तीन प्रकारके मनुष्य, पंचेन्द्रिब, पंचेन्द्रियपयास, त्रस त्रसपयास, पांचों मनोयोगी, पांचों बचनयोगी क्कयबोली औदारिककाययोगी, तीनों देवबाळे, ओषाचि चारों कथायबाळे, चण्डूररईनी, अचण्डूररईनी, सुक्कबेरयाबाळे मम्म, सञ्जी और अत्तारक बीबोंके रहना चाहिये ।

§ ४७९ आदेहसे नारकियोंमें उत्कृष्ट बुद्धि किसके होती है ? जो अनन्तालुक्की चतुष्ककी विसंयोजना करके पुनः वससे समुत्प होता है अर्थात् अनन्तालुक्कीकी सत्ता-बासा होता है उस नारकी भीचके उत्कृष्ट बुद्धि होती है । नारकियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिस नारकीके पहले अहर्निश प्रकृतियोंकी सत्ता है उसके अनन्तर जिसने अनन्तालुक्की चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एक स्वानमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसीप्रकार समी न्यरकी, तिर्बच पंचेन्द्रिब तिर्बच, पंचेन्द्रिय तिर्बच पयास, पंचेन्द्रिय तिर्बच योनिमयी, सामान्य देव, मवनवासिबोंसे लेकर उपरिम वैदेवक तकके देव, वैदिकविककाययोगी, असक्त और कृप्य आदि पांच देवयाबाळे

उवरिमगेवञ्ज०-वेउन्विय०-असंजद०-पंचलेस्साणं वत्तवं । पंचि०तिरि०अपञ्ज० उक्क०
 हाणी कस्स ? अण्णदरस्स अट्टावीससंतकम्मियस्स सत्तावीससंतकम्मियस्स वा सम्मत्तं
 सम्मामिच्छत्तं वा उव्वेल्लंतस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं ।
 एवं मणुसअपञ्ज०-सव्वएहंदिय-सव्वविगालिंदिय-पंचिंदिय-पंचिंदिय अपञ्ज०-पचकाय-
 तसअपञ्ज०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-मिच्छादि०-असण्णीण वत्तवं । अणुहिसादि
 जाव सव्वदु० उक्क०हाणी कस्स ? अण्णद० अट्टावीससंतकम्मियस्स अणंताणुवाधि-
 चउक्कविसंजोएंतस्स णिस्सतकम्मियपढमसमए उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले
 उक्कस्समवट्ठाणं । एवं परिहार०-संजदासंजद०-वेदय० सम्मादिट्ठीणं वत्तवं । ओरालिय-
 मिस्स० उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स वावीससंतकम्मियस्स कदकरणि-
 अस्स पुव्वाउअबंधवसेण तिरिक्खेसुव्वण्णसम्मादिट्ठिस्स अपञ्जत्तकाले एकावीससंत-
 कम्मियपढमसमए वट्ठमाणस्स उक्क० हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं ।

जीवोंके कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके पहले
 अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है अनन्तर जिसने सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना की है उसके या
 जिसके पहले सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ता है अनन्तर जिसने सम्यग्मध्यात्वकी उद्वेलना
 की है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा इसी उत्कृष्ट हानिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध-
 पर्याप्तक जीवके उत्कृष्ट हानिके अनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसीप्रकार लब्ध-
 पर्याप्तक मनुष्य, सर्व एकेन्द्रिय, सर्व विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक, पाचों स्थावर
 काय, प्रसल्लब्धपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिध्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके
 कहना चाहिये ।

अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ?
 जिसके पहले अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है अनन्तर जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसं-
 योजना की है उसके अनन्तानुबन्धी कर्मका अभाव होनेके पहले समयमें उत्कृष्ट हानि होती
 है । तथा इसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धि
 संयत, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके बाईस
 प्रकृतियोंकी सत्ता है, अतएव जो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि है और सम्यग्दर्शन होनेके पहले
 तिर्यंचायुका बन्ध कर लेनेके कारण तिर्यंच सम्यग्दृष्टि जीवोंमें उत्पन्न हुआ है ऐसे किसी
 औदारिकमिश्रकाययोगी जीवके अपर्याप्त कालमें बाईस प्रकृतियोंसे इक्कीस प्रकृतियोंकी
 सत्ताके प्राप्त होने पर पहले समयमें उत्कृष्ट हानि होती है । तथा इसी जीवके तदनन्तर
 कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसीप्रकार वैकियिकमिश्रकाययोगी और कर्मणकाययोगी

वेतम्बियमिस्स • कम्मइय० एव वेव वचम्बं । अवरि देव पेराय-अपज्जएणु वेतम्बिय
मिस्सअपज्जोमीसु विग्गाहगदीए च बहुमण्णंवेत्तीसविहवियसम्माइहीसु वचम्ब ।
अभाहारीण कम्मइयमगो । आहार०-आहारमिस्स०-अकंसो०-सुइम०-अहाकसा०
अमम्बे०-उवसम -सांसेण०-संम्मामिच्छादिहीके वद्दी-हाणी-अवट्ठोआमि णारिब । इहो
अवट्ठान्सेस अमाओ ? वद्दीहाणीअममाओ । ण च समुच्चित्वाए वियहिचारे,
तरय वद्दीहाणिविरवेअठपियमेचावट्ठानमस्सिअण तहा पक्खिच्चाओ । अवमइ०
उक्खं० हाणी कस्स ? ओ अवमइवेदो एअरसविहवियो सच णोकसाए खवेदि तस्स
उक्खं० हाणी । तस्सेव से काले उक्खस्समवट्ठाम्ब । आमिबि०-सुइ०-ओहि०-मणपज्ज०
संजिद०-सामांइय-हेवो०-ओहिदंसं०-संम्मादि०-अइयसम्माइहीअ उक्खस्सिया हाणी
कस्स ? अणोइरस्स अणियट्टियस्स अइकसाए खवेतस्स उक्खस्सिया हाणी । तस्सेव

बीबेके अक्खइ हानि और अक्खइ अवस्थानका कथन करना चाहिये । इतनी विवेचना है कि
वैकल्पिकमित्रकामयोगियोंमें अक्खइ हानि और अक्खइ अवस्थान कहते समय वेव और
नारकियोंकी अपेक्षा अवस्थामें कहा चाहिये । तथा कामजकामयोगीमें कहते समय विभि-
न्नविधमें विद्यमान कार्यस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्बन्धमें ही कहना चाहिये । अभाहारक
बीबेमें अक्खइ हानि और अक्खइ अवस्थान कामजकामयोगिकोंके समान जानना चाहिये ।
आहारककामयोगी, अभाहारकमित्रकामयोगी अकेलायी, सूअसांपरायिकसंस्कृत, वर्षा-
प्रातसकृत, अमम्ब उपसमसम्बन्धि, सासाअसम्बन्धि और सम्बन्धिप्राप्ति बीबेके
प्रकृतियोंकी वृद्धि हानि और अवस्थान नहीं पाये जाते हैं ।

श्रेयः-अथ बीबेके प्रकृतियोंके अवस्थानका अभाव कैसे है ?
समाधान-यथा अथ बीबेके प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है, अतः
वहाँ अवस्थानका भी अभाव कहा है ।

यदि कहा जाय कि इस कथनका समुत्प्रेरकसे स्पष्टीकरण हो जायगा तो भी बात
नहीं है क्योंकि समुत्प्रेरकमें वृद्धि और हानिकी अपेक्षा न करके एक समान रूपसे
तदवस्थ रहने वाली प्रकृतियोंकी अपेक्षा असमकारक कथन किया है ।

अपगतवेदियोंमें अक्खइ हानि किसके होती है ? अथ विमल्लिखानकी सत्तावाला
ओ अपगतवेदी बीब सात नोक्यावोंका अर्थ करता है उसके अक्खइ हानि होती है । तथा
वही बीबके तदनन्तर कालमें अक्खइ अवस्थान होता है ।

मतिज्जानी, बुद्धज्जानी अविज्जानी ममापर्ययज्जानी, सकल सामापिकसंबन्ध, सेवोप
त्थपण्यसपथ, अविज्जानी सम्बन्धि, और चायिकसम्बन्धि बीबेमें अक्खइ हानि
किसके होती है ? कपावोंका अर्थ करनेवाले किसी अनिष्टकारण गुणत्वानवर्ती बीबके
अक्खइ हानि होती है । तथा वहीके तदनन्तर कालमें अक्खइ अवस्थान होता है ।

से काले उक्कससमवट्टाणं ।

एवमुक्कससयं सामित्तं समत्तं ।

§ ४८०. जहण्णए पयदं । दुविहो णिदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जहण्णिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरो जो सत्तावीससंतकम्मिओ तेण मम्मत्ते गहिदे तस्स जहण्णिया वड्ढी । जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अट्ठावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते उव्वेत्थिदे तस्स जह० हाणी । एगदरत्थ अवट्टाणं । एवं सत्तपुट्ठवि-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि० तिरि०जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-काय-जोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्सा०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारीणं वत्तव्व । पंचि० तिरि० अपज्जत्तएसु जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अट्ठावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते उव्वेत्थिदे तस्स जह० हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्टाण । एवं मणुस-अपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लि-दिय-पंचिदिअपज्ज०-पचकाय०-तसअपज्ज०-मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-मिच्छादि०

इसप्रकार उत्कृष्ट स्वामित्वानुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

§ ४८० अब जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है । उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तब उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना कर देता है तब उसके जघन्य हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रस, ब्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असयत, चक्षुदर्शनी, जचक्षुदर्शनी, छहों लेइयावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जघन्य हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करता है, तब उसके जघन्य हानि होती है । तथा उसी जीवके तदनन्तर कालमें जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, ब्रस लब्ध्यपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभग-

असण्णीय वत्त्व ।

१४०१ अणुदिमादि आब सण्णहृत्ति अहण्णिया हाणी कस्स ? ओ वावीससत्त कम्मिओ तेण सम्मणे खवेदे तस्स अह० हाणी । तस्सेव से काले अहण्णमवहाण । एवमवगद० आमिणि -सुद०-ओहि०-मज्जण०-सज्जद०-सामाह्य-छेदो०-परिहार०-मज्जदामंजद०-ओहिदस -सम्मादि०-खइय०-वेदय० दिट्ठीण वत्त्व० । ओराळियमिस्स० अहण्णिया हाणी कस्स ? ओ अहावीससत्तकम्मिओ अण्णदरो तेण सम्मणे उम्भेळिदे अहण्णिया हाणी । तस्सेव से काले अहण्णमवहाण । एव वेत्थियामिस्स०-कम्मइय०-अणाहारीणं वत्त्व० । आहार० आहारमिस्स० अकमा०-सुहुम०-अहाकखाद०-अमवि० उवसम -सासण०-सम्मामि० अहण्णवद्दी-हापि-अवहाणाणि परिण ।

एव सामिचं समत्त ।

१४०२ अण्णामहुअ दुबिह अहण्णमुक्कस्स च । उक्कस्सए पयद । दुबिहो भिदेसो ओपेण आदेसेम य । तस्य ओपण सक्खरयोवा उक्कस्सिया वद्दी ४। उक्कस्सिया हाणी

ज्ञानी, सिध्मादृष्टि और वसन्ती जीवोंके अण्ण्य हाणि और अण्ण्य अवस्थान कहना चाहिये ।

१४०१ अनुदिशसे लेकर सर्वाथं सिद्धि तकके क्षेत्रमें अण्ण्य हाणि किसके होती है ? वार्डस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य जीव जब सण्णकूपकृतिरूप शय करता है तब उसके अण्ण्य हाणि होती है । तथा वही क्षेत्रके तदन्तर समयमें अण्ण्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार अण्णवयेशी मतिज्ञानी, ज्ञतज्ञानी अवधिज्ञानी मन्तर्परीयज्ञानी, संयत सामाधिकसंयत छेदोपस्थापनासयत परिहारविशुद्धिसयत, सयतासयत, अवधिदर्शनी, सम्मगदृष्टि, ध्यायिक-सम्भगदृष्टि और वेदकसम्भगदृष्टि जीवोंके अण्ण्य हाणि और अण्ण्य अवस्थान कहना चाहिये ।

औदारिक मित्रकाययोगियोंमें अण्ण्य हाणि किसके होती है ? अण्णवार्डस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य ओ कोई एक औदारिकमित्रकाययोगी जीव जब सण्णकूपकृतिरूपी चञ्चलता करता है तब उसके अण्ण्य हाणि होती है और तदन्तर समयमें वहीके अण्ण्य अवस्थान होता है । इसीप्रकार वैश्विकमित्रकाययोगी कर्मणकाययोगी और जनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी, आहारकमित्रकाययोगी, अकबायी, सुस्मसांपराधिकसयत, वसन्तासयत अमम्ब, अण्णमसम्भमृष्टि सासाहनसम्भगदृष्टि और सण्णमिध्यादृष्टि जीवोंके अण्ण्य वृद्धि, अण्ण्य हाणि और अण्ण्य अवस्थान ये तीनों ही नहीं पाये जाते हैं । इसप्रकार स्वामित्थालुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

१४०२ अण्णवहुअ हो प्रकरका है-अण्ण्य और अण्ण्य । इनमेंसे पहले अण्ण्य अण्णवहुअ प्रकरण प्राप्त है । इसकी अपेक्षा निर्देस हो प्रकरका है-ओप और आदेस ।

से काले उकस्समवट्टाणं ।

एवमुक्कस्सय मामित्तं समत्तं ।

- §४८०, जहण्णाए पयदं । दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जहण्णिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरो जो सत्तावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते गहिदे तस्स जहण्णिया वड्ढी । जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अट्ठावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते उव्वेत्थिदे तस्स जह० हाणी । एगदरत्थ अवट्टाणं । एवं सत्तपुट्ठवि-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचि० तिरि०जोणिणी-मणुमतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवचि०-काय-जोगि०-ओरालि०-वेउच्चिय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-अमंजद०-चक्खु०-अचक्खु० छलेस्सा०-भवसिद्धि०-मणि०-आहारीणं वत्तव्वं । पंचि०तिरि० अपज्जत्तएसु जहण्णिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अट्ठावीससंतकम्मिओ तेण सम्मत्ते उव्वेत्थिदे तस्स जह० हाणी । तस्सेव से काले जहण्णमवट्टाणं । एवं मणुस-अपज्ज०-सव्वएइदिय-सव्वविगालि-दिय-पंचिदिय-अपज्ज०-पचकाय०-तस-अपज्ज०-मदि-सुद-अण्णाण-विहग०-मिच्छादि०

इसप्रकार उत्कृष्ट स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§४८०. अब जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है । उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तब उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना कर देता है तब उसके जघन्य हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एकके जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रस, ब्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संक्षी और आहारक जीवोंके जघन्य हानि, जघन्य वृद्धि और जघन्य अवस्थान कहना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? जो अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव जब सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलना करता है, तब उसके जघन्य हानि होती है । तथा उसी जीवके तदनन्तर कालमें जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पाचों स्थावरकाय, ब्रस लब्ध्यपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभग-

गद०-मदि-सुद-अण्णाणि विहंस०-आमिषि०-सुद०-ओहि०-मणपञ्च०-संजद०-सामाहय
 छेदो० परिहार० संजदासंजद० ओहिदस० सम्मादि० लहय०-वेदय०-मिच्छादि०
 असणि अणाहारि ति वचम् । आहार०-आहारमिस्स० गत्व अण्णावहुज एम
 पदपादो । एवमकसा०-सुहुम०-अहाक्खाद०-अमब०-उवसम०-सासब०-सम्मामि० ।
 एवमुद्धस्सप्यावहुजं समत ।

१४८४ नहण्णए पपदं । बुविहो विदेसो ओषेण आदेसेण य । तस्य ओषेण

आहारकाय, अण्णाणिकार्ययोगी, भौतिकमिन्नकाययोगी, वैदिकमिन्नकाययोगी, कर्मण
 काययोगी, अपगतवेदी, मत्पज्ञानी, ज्ञुताज्ञानी, विमगज्जानी, मतिज्ञानी, ज्ञुतज्ञानी, अवि
 ज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, संवत्, सामायिकसंवत् छेदोपस्थापनासंवत्, परिहारमिच्छासंवत्,
 संवत्संवत् अवधिदसमी, सम्बग्दृष्टि, धायिकसम्बग्दृष्टि, वेदकसम्बग्दृष्टि, मिच्छादृष्टि,
 असङ्गी और अमाहारक जीवोंके कर्मा चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर अण्णपर्याप्तक मनुष्योंसे लेकर अनाहारकजीवों तक ऊपर गिनाये
 गये मार्गजात्वानोंमें—उच्छ्र हानि और अवस्थानको जो पंचेन्द्रियतिर्यक् अण्णपर्याप्तकोंके
 उच्छ्र हानि और अवस्थानके समान बताया है, इसका यह अर्थ नहीं कि जिसप्रकार
 अण्णपर्याप्तक पंचेन्द्रियतिर्यकोंमें उच्छ्र हानि और अवस्थानका प्रमाण एक है वसीप्रकार
 इन सब रूपयुक्त मार्गजात्वानोंमें भी उच्छ्र हानि और अवस्थानका प्रमाण एक एक है ।
 यहाँ पंचेन्द्रियतिर्यक् अण्णपर्याप्तकोंके समान करनेका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जिस
 प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यक् अण्णपर्याप्तकोंके उच्छ्र हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं वसी
 प्रकार ऊपर कही गई मार्गजात्वोंमें भी उच्छ्र हानि और अवस्थानकी समानता जान लेना
 चाहिये । जिस मार्गजात्वमें उच्छ्र हानि और अवस्थान कितना है वह ऊपर स्वामित्वात्
 योगद्वारमें बतला ही आये हैं ।

आहारककाययोगी और आहारकमिन्नकाययोगी जीवोंमें प्रकृतियोंकी बुद्धि और हानि-
 सम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, क्योंकि इनके जो स्वाम होता है आहारक-
 काययोग और आहारकमिन्नकाययोगके काळ तक वही एक बना रहता है उसमें अल्प
 प्रकृतियोंकी बुद्धि और हानि नहीं होती । इसीप्रकार अकयापी सूक्ष्मसांप्रदायिकसंवत्,
 पचासपातसंवत्, अमण्य उपरामसम्बग्दृष्टि, सासादनसम्बग्दृष्टि और सम्बग्मिच्छादृष्टि
 जीवोंके कर्मा चाहिये । अर्थात् आहारककाययोगी और आहारकमिन्नकाययोगी जीवोंके
 समान इनके भी प्रकृतियोंकी बुद्धि और हानि सम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है ।

इसप्रकार उच्छ्र अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

१४८४, अब अयन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसका निर्देश दो प्रकारका होता

अवद्याणं च दोवि सरिसाणि संखेजगुणाणि ८। एवं मणुसतिय-पंचिदिय-पंचि०पञ्ज०-
तस-तसपञ्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-तिणिणवेद-चत्तारि क०-
चक्खु०-अचवखु०-सुक०-भवसि०-सणिण-आहारीणं वत्तव्वं ।

§ ४८३. आदेसेण गिरयगईए गेरईएसु उक्क० वट्ठी-हाणी-अवद्याणाणि तिणिण
वि तुल्लाणि ४। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पचि०तिरि०पञ्ज०-पंचि०-
तिरि०जोगिणी-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-असंजद-पंचले०वत्तव्वं ।
पंचि०तिरिक्खअपञ्ज० उक्कसिसया हाणी अवद्याणं च दोवि सरिसाणि | १ | १ | ।
एवं मणुसअपञ्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वह्ठ०-सव्वएहदिय-सव्वविगलिदिय-पंचिदिय-
अपञ्ज०-पंचकाय०-तसअपञ्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अव-

उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है, जिसका प्रमाण चार है। उत्कृष्ट हानि
और उत्कृष्ट अवस्थान ये दोनों समान होते हुए भी उत्कृष्ट वृद्धिकी अपेक्षा सख्यातगुणे
हैं। जिनमें प्रत्येकका प्रमाण आठ है। इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी इन
तीन प्रकारके मनुष्योंके तथा पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाचों मनोयोगी,
पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले,
चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—यह ऊपर ही बता आये हैं कि उत्कृष्ट वृद्धि चार प्रकृतियोंकी और
उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट हानि संबन्धी अवस्थान आठ प्रकृतियोंका होता है, इसीलिये
यहा पर प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी और उत्कृष्ट हानि तथा उत्कृष्ट अव-
स्थान उत्कृष्ट वृद्धिसे सख्यातगुणा बताया है। यहा संख्यातका प्रमाण दो है, क्योंकि
चारको दोसे गुणा करनेपर आठ होते हैं।

§ ४८३ आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि
और उत्कृष्ट अवस्थान ये तीनों ही समान हैं, जिनका प्रमाण चार है। इसीप्रकार सभी
नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच
योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक-
काययोगी, असयत और कृष्णादि पाचों लेदयावाले जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ऊपर जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें अधिकसे अधिक चार प्रकृतियोंकी
वृद्धि, चार प्रकृतियोंकी हानि और अवस्थान होता है, इसलिये यहां तीनोंको समान वताते
हूए इनका प्रमाण चार कहा है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान
हैं, जिनमें प्रत्येकका प्रमाण एक है। इसीप्रकार लब्धपर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर
सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, लब्धपर्याप्तक पचेन्द्रिय, पाचों

अप्याहारीण वचस्व । आहार० आहारमिस्स० णरिष अप्याबहुअ । एवमकसाय०
सुहुमसांपराय०-अहाकखाद० अमवसि०-उपसम०-सासण०-सम्मामि० वचस्व ।

एव अइण्णप्याबहुअ समच ।

एव पवणिकस्सेवो समत्तो ।

§ ४८५ बह्वीविहारी तत्त्व इमाणि तेरस अपियोगहाराभि समुक्तिपद्या आव
अप्याबहुए पि । समुक्तिपद्याणुगमेण दुबिहा भिदेसो ओपेण आदेसेण य । तत्त्व
ओपेण अत्थि संखेज्जमागबद्वीहाणीओ सखेज्जगुण्णहाणी अबद्दार्थं च । एव मणुस
त्थि पंचिदिय -पंचि०पज०-उस तसपज० पचमण० पंचवचि०-अयसोमि०-ओरा-
ठिय०-पुरिस -वत्तारिक० चक्खु०-अचक्खु०-सुद्ध०-मवसि०-सग्गि-आहारीण वचस्व ।

आहारकथाययोगी और आहारकमिन्नकथाययोगी जीवोंके प्रकृतियोंकी वृद्धि और हानि
सम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार अकवायी सूक्ष्मसांपरायिकसवत,
पयाण्णावसमत्त, अमम्य, उपशमसम्भट्टि, सासादमसम्यग्दृष्टि और सम्मग्गिप्यादृष्टि
जीवोंके कहना चाहिये । तत्पर्य यह है कि इन मार्गणामोंमें हानि और वृद्धि तो है ही
महीं, केवल अवस्थान है अतः अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता ।

इसप्रकार अमम्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इसप्रकार पचनिक्षेप अनुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

§ ४८६. वृद्धिबिभक्तिकर कथन करते हैं । उसके विषयमें समुत्कीर्तनासे लेकर
अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वारा होते हैं । इनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा
निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेसनिर्देश । इनमेंसे ओपनिर्देशकी अपेक्षा
सक्यावभागवृद्धि सक्यावभागहानि संख्यावगुण्णहानि और अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार
सामान्य पयास और खीरेवी इन तीन प्रकारके मणुम्य, पचेत्थिय, पचेत्थिय पर्यास,
त्रस, त्रसपर्यास, पांचो मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, काथयोगी औरारिककथाययोगी, युवर
वेही, ओवादि चारों कथावभाषे, चहुवरसनी अचहुवरसनी, शुक्ककथावभाषे, मम्य, संखी
और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—एक ज्ञानसे दूसरे ज्ञानके प्राप्त होते समय जो हानि और वृद्धि और
अवस्थान होता है वह उसके सक्यावर्षे भाग है या सक्याव गुणा, इसका विचार वृद्धि
बिभक्तिमें किया गया है । वचपि हानिकी अपेक्षा सक्याव भाग हानि, सक्यावगुण हानि
और इनके अवस्थान समच हैं क्योंकि वचपि जीवोंके दो मकृतिक विभक्तिसामसे एक
मकृतिक विभक्तिज्ञानके प्राप्त होते समय या म्यारह विभक्तिज्ञानसे पांच या चार विभक्ति-
ज्ञानके प्राप्त होते समय सक्याव गुणहानि और उचका अवस्थान होता है तथा क्षेत्र
हानियाँ और कमक अवस्थान संख्याव भाग हानि रूप ही होते हैं । पर वृद्धिकी अपेक्षा

अहणवदूढीहाणीअवट्टाणाणि तिण्णि वि तुल्लाणि । एव सव्वणिरय-तिरिक्ख-
पच्चिदियतिरिक्खितिय-मणुमतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पच्चिदिय-पच्चि०-
पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पचवच्चि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णि
वेद-चचारिकसाय-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-छलेस्मा०-भवसिद्धि०-सण्णि-आहारीणं
वत्तव्वं । पच्चि०तिरि०अपज्ज० जहणहाणिअवट्टाणाणि दो वि तुल्लाणि । एव
मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वह०-सव्वएहंदि-मव्वविगल्लिदिय-पच्चिदिय-
अपज्ज०-पचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-
मदि-सुद-अण्णाण-विहंग०-आभिणि० सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-
परिहार०-सजदासजद-ओहिदंसण०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०- मिच्छादि०- असण्णि-

है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्यवृद्धि, जघन्यहानि
और अवस्थान ये तीनों समान हैं । इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय
तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंच, सामान्य, पर्याप्त और स्त्रीवेदी
ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देव,
पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी,
औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, असं-
यत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके
कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जघन्य वृद्धि और जघन्य हानि एक प्रकृतिकी होती है अतः यहां ओघकी
अपेक्षा जघन्य वृद्धि जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानको समान कहा है । ऊपर और
जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये ।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमे जघन्य हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं ।
इसीप्रकार मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एक-
न्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रसलब्ध्यपर्याप्त, औदा-
रिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, अपगतवेदी, मत्यज्ञानी,
श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी, संयत, सामा-
यिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि,
क्षाधिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना
चाहिये ।

विशेषार्थ—इन मार्गणास्थानोंमें वृद्धि तो होती ही नहीं, हा हानि और अवस्थान होता
है । सो सर्वत्र जघन्य हानिका प्रमाण एक है अतः यहां सबकी जघन्य हानि और अव-
स्थानको समान कहा है ।

अणाहारीण वचस्व । आहार० आहारमिस्स० णप्पि अप्पाबहुअ । एवमकसाय० सुहुमसांपराय -ब्रह्मकखाद०-अभवसि०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० वचस्व ।

एव सद्गजप्पाबहुअ समत्त ।

एवं पदगिक्खेयो समत्तो ।

§ ४८५ बद्धीबिहारी तत्त्व इमाभि तेरस भणियोगहाराणि समुद्रित्वा आब अप्पाबहुए ति । समुद्रित्वायुगमन दुबिहो गिदेसो ओषेण आदसेव य । तत्त्व ओषेण अस्सि संखेज्जभागवद्धोहाणीओ संखेज्जगुणहाणी अवहाण च । एवं मणुस तिय पंथिदिय -यत्ति०पज्ज०-उस ससपज्ज० पच्चमण० पंचवत्ति०-अपज्जोगि०-ओरा लिय० पुरिम -वत्तारिक० पकसु०-अपकसु०-सुद्ध०-भवसि -सण्णि-आहारीण वचस्व ।

आहारकषाययोगी और आहारकमिअकषाययोगी बीबोंक मकृतियोंकी वृद्धि और हानि-सम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है । इसीप्रकार अकषायी सूक्ष्मसांपर्यादिकस्यत्त, पचाइयावस्यत्त, अमम्य, उपरामसम्पगृह्णि, सासावनसम्पगृह्णि और सम्पनिमप्पाहृदि बीबोंके कहना चाहिये । तत्पर्य यह है कि इन मार्गजाओंमें हानि और वृद्धि तो है ही नहीं, केवल अवस्थान है अतः अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता ।

इसप्रकार अमम्य अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इसप्रकार पदनिधेय अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४८६ वृद्धिबिभक्तिक कथन करते हैं । उसके विषयमें समुत्कीर्तनासे छेकर अल्पबहुत्व तक पे तेरह अद्युयोगद्वार होते हैं । इनमेंसे समुत्कीर्तनानुयमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारके हैं—ओवनिर्देश और आवेसनिर्देश । इनमेंसे ओचनिर्देशकी अपेक्षा सक्खावभागवृद्धि संघनावभागहानि संघनावगुणहानि और अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार सामान्य, पनात और खीवेही इन तीन प्रकारके मनुम्य, पचेम्विय, पचेम्विय पर्यात्त, त्रस, त्रसपर्यात्त, पांचो मनोयोगी पांचो वचनयोगी, अपयोगी, आहारिककषाययोगी, गुरुव वेरी, ओषावि चारों कषायवाले, चहुदरंती अचहुदरंती, सुक्खसेइयावासे, मम्य, संघी और आहारक बीबोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—एक ज्ञानस बूधरे ज्ञानके प्राप्त होते समय जो हानि और वृद्धि और अवस्थान होता है वह उसके संख्यावर्षे भाग है या संख्याव गुण इसका विचार वृद्धि विभक्तिये किया गया है । यद्यपि हानिकी अपेक्षा संख्याव भाग हानि, संघनावगुण हानि और इनके अवस्थान समत्त हैं, क्योंकि अल्प बीबोंके दो मकृतिक विभक्तिसामसे एक मकृतिक विभक्तिकानक प्राप्त होते समय या म्याह विभक्तिकानसे पांच या चार विभक्ति-ज्ञानके प्राप्त होत समय संख्याव गुणहानि और उचका अवस्थान होता है तथा शेष हानिपा और कमक अवस्थान संघनाव भाग हानि रूप ही होते हैं । पर वृद्धिकी अपेक्षा

§४८६. आदेसेण णेरईएसु अत्थि संखेज्जभागवद्धी-हाणी-अवट्टाणाणि । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुंस०-असंजद०-पंचत्तेस्सा० वत्तव्व । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अत्थि संखेज्ज-मागहाणी-अवट्टाणाणि । एव मणुस्सअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ट०-सव्वएइंदिय-सव्वविगल्लिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद अण्णाण-विहग०-परिहार०-सजदासंजद०-वेदय०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारीणं वत्तव्व । आहार० आहारमिस्स० पात्थि समुक्कित्ताणा, वद्धी-हाणीहि विणा अवट्टाणाभावादो । अथवा अत्थि वद्धी-हाणीणिरवेक्ख

संख्यातभागवृद्धि और उसका अवस्थान ही सम्भव है, क्योंकि २४, २६ और २७ प्रकृतिक विभक्तिस्थानसे २८ प्रकृतिक विभक्तिस्थानके प्राप्त होनेपर संख्यातवें भाग प्रमाण क्रमशः ४, २ और १ प्रकृतिकी ही वृद्धि होती है । ऊपर जितनी भी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको ओषके समान कहा है । आगे आदेशकी अपेक्षा भी जहा जो वृद्धि हानि और अवस्थान कहा हो उसे इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिये ।

§ ४८६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यात भागवृद्धि, संख्यातभागहानि और इनके अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच और योनिमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, नपुसकवेदी, असयत और प्रारभके पाच लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यात गुणहानिको छोड़ कर शेष सब पद होते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान ये दो स्थान होते हैं । इसीप्रकार मनुष्यलब्धपर्याप्त, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, पाचों स्थावर काय, त्रस लब्धपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, सयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान ही होते हैं, क्योंकि इनमें मुजगार विभक्ति नहीं पाई जाती ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुत्कीर्तना नहीं है, क्योंकि वहा स्थानोंकी वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है और इनके न पाये जानेसे वहा इनका अवस्थान नहीं हो सकता है । अथवा उक्त दोनों योगवाले जीवोंमें वृद्धि और हानिकी

तदियमेतावद्वाप्यस्त विवाङ्मिथ्यवादी । एषमकसा०-सुहुममांप०-अहाकसाद० अमव०-
 उवमम०-सासव -सम्मामि० वत्तम् । अदगद० अथि सखेज्जमागहाणि-सखेज्जगुण
 हाणी-अवहाणाणि । एषमामिणि०-सुद० ओहि०-मवपज्ज० संअद०-सामाइयहेदो०
 ओहिदसण०-सम्मदि०-सुइयसम्मदिदि चि वत्तम् ।

एव समुक्तिवत्ता समत्ता ।

§ ४८७ सामिचासुगमेण दुविहो णिरेसो ओषम आदेसेण य । तस्य ओषेण
 मखेज्जमागवह्दी-हाणि-अवहाणाणि कस्त ? अण्णदरस्त सम्मादिद्विस्त मिच्छादिद्विस्त
 वा । संखेज्जगुणहाणी कस्त ? अण्णदरस्त अणियद्विक्खववयस्त । एव मणुमतिय
 पचिदिय-पचि०-पन्न०-त्तस-त्तसपन्न० पचमण -पचपाधि० क्खपवोमि०-ओराळिय०
 पुरिस०-पचारिक०-पचसु अचसु सुक०-मवसिदिय०-सण्णि० आहारीण वत्तम् ।

अपेक्षाक विना तावन्मात्र स्थानोन्नी विवक्षासे समुत्कीर्तना है । इसीप्रकार अक्यायी,
 सुस्मसापराधिक सबत बहाण्यात सयत अमम्य, उपशमसम्भृष्टि सासादनसम्भृष्टि,
 और सम्बन्धिप्यादृष्टि जीवोंके कइना चाहिये । तात्पर्य यह है कि एक मार्गप्राप्तोमें जहाँ
 जो स्वाम है वही रहता है इदि और हानि नहीं होती, अत वहाँ इदि हानि और
 अवस्थात्मक निषेध किया है । अब यदि इन मार्गप्राप्तोमें इदि और हानिके विना
 अवरतान स्वीकार किया जाय तो जहाँ जो स्वान होया है उसकी अपेक्षा अवस्थाम स्वीकार
 किया जा सकता है । तथा उपशमसम्भृष्टि अमन्तासुबन्धी वस्तुष्की विसंयोजना नहीं
 करता इस अपेक्षासे यहाँ उपशमसम्भृष्टिके हानिका निषेध किया है ।

अपगतवेदी जीवोंमें सङ्घातमागहानि सङ्घातगुणहानि और अवस्थाम ये स्वाम
 हैं । इसी प्रकार मतिज्ञानी, अतज्ञानी अविज्ञानी मनःपर्यवज्ञानी संयत सामाधिकसयत,
 छेदोपस्थापनासयत अवधिर्ज्ञानी, सम्भृष्टि और शायिक सम्भृष्टि जीवोंके कइना
 चाहिये ।

इस प्रकार समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

§ ४८७ स्वामिस्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारके हैं—भोचनिर्देश और अन्त-
 निर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा सङ्घातमागइदि सङ्घातमाग हानि और अवस्थाम
 किसके होते हैं ? किसी भी सम्भृष्टि वा मिच्छादृष्टि जीवके होते हैं । सङ्घातगुणहानि
 किसके होती है ? किसी भी अनिदृष्टिहरण गुणस्थानवर्ती कपक जीवके होती है । इसी
 प्रकार सामान्य पशों और स्त्रीवेदी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके और पबेन्द्रिय पबेन्द्रिय-
 पशों अत अतपवर्तन पशों मनोयोगी पशों वचनयोगी क्खपयोगी औदारिक काययोगी,
 पुत्रवेदी कोवादि पशों कथापवसे वसुधसंज्ञी, अचसुधसंज्ञी, सुखेदेववाचके, मय्य, संज्ञी
 और आहारक जीवोंके कइना चाहिये ।

§४८६. आदेशेण णेरईएसु अत्थि संखेज्जभागवड्ढी-हाणी-अवट्टाणाणि । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं० तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुंस०-असंजद०-पंचलेस्सा० वत्तव्व । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० अत्थि संखेज्ज-मागहाणी-अवट्टाणाणि । एव मणुस्सअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय सव्वविगल्लिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद अण्णाण-विहंग०-परिहार०-सजदासंजद०-वेदय०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारीणं वत्तव्वं । आहार० आहारमिस्स० णत्थि समुक्कित्तणा, वड्ढी-हाणीहि विणा अवट्टाणाभावादो । अथवा अत्थि वड्ढी-हाणीणिरवेक्ख

संख्यातभागवृद्धि और उसका अवस्थान ही सम्भव है, क्योंकि २४, २६ और २७ प्रकृतिक विभक्तिस्थानसे २८ प्रकृतिक विभक्तिस्थानके प्राप्त होनेपर संख्यातवें भाग प्रमाण क्रमशः ४, २ और १ प्रकृतिकी ही वृद्धि होती है । ऊपर जितनी भी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको ओवके समान कहा है । आगे आदेशकी अपेक्षा भी जहा जो वृद्धि हानि और अवस्थान कहा हो उसे इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिये ।

§ ४८६ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सख्यात भागवृद्धि, संख्यातभागहानि और इनके अवस्थान होते हैं । इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पर्याप्त तिर्यंच और योनिमती तिर्यंच, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, असयत और प्रारभके पाच लेख्यावाले जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यात गुणहानिको छोड़ कर शेष सब पद होते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें सख्यातभागहानि और अवस्थान ये दो स्थान होते हैं । इसीप्रकार मनुष्यलब्धपर्याप्त, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, पाचों स्थावर काय, त्रसं लब्धपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसयत, सयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें सख्यातभागहानि और अवस्थान ही होते हैं, क्योंकि इनमें भुजगार विभक्ति नहीं पाई जाती ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समुत्कीर्तना नहीं है, क्योंकि वहा स्थानोंकी वृद्धि और हानि नहीं पाई जाती है और इनके न पाये जानेसे वहा इनका अवस्थान नहीं हो सकता है । अथवा उक्त दोनों योगवाले जीवोंमें वृद्धि और हानिकी

असुष्णीर्गं वचस्व । ओरास्थिमिस्स० सखेज्जमागहाणी-अवहाणामि कस्स ? अण्य०
सम्मादि० मिच्छादिहिस्स वा । एवं वेठणियमिस्स०-कम्मइय० मणाहारीय । आहार०-
आहारमिस्स० अवहाण कस्स ? अण्यद० । एवमकसाय०-सुहुम०-ब्रहाकस्ताद०-
अभव० उवत्तम०-सात्तम० सम्मामि० वचस्व । अवगद० सखेज्जमागहाणीमखे०
गुणहाणीओ अवहाण च कस्स ? अण्यद० खवपस्स । आमिणि०-सुद० ओहि०
मणपज्ज० सखेज्जमा० हाणी-सखे० गुणहाणीअवहाणामं ओपभगो । एव मज्जद०
सामाएय-खेदो० ओहिदस०-सम्मादि०-सइय० वचस्व ।

एव सामिच समच ।

अथ, असुष्ण्यपर्याप्त, मज्जहानी, सुवाह्वानी, त्रिमगह्वानी, परिहारविद्युत्सिंघ्य, संघटा-
सघठ, वेदकसम्बन्धति, मिच्छामृष्टि, और असुष्णी बीबोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है
कि इन मार्गण्यार्थोंमें अहाईस विमक्तिस्वानसे सचाईस और सचाईससे सुष्णीस विमक्ति-
स्वामोक्ष प्राप्त होना ही सम्भव है । अतः इनमें सक्यातमागहाणि और उसक्य अवस्थान
के पर ही सम्भव हैं ।

औदारिक मित्रअवयोगी जीबोंमें सक्यातमागहाणि और अवस्थान किसके होते हैं ?
किसी भी सम्बन्धति वा मिच्छामृष्टि बीबके होते हैं । इसीप्रकार वैकियिकमिअक्ययोगी,
कार्मण्यकाययोगी और अनाहारक बीबोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्ग-
ण्यार्थोंमें २० से २७, २७ से २६ और २२ से २१ विमक्तिस्वानोक्ष प्राप्त होना सम्भव
है । अतः इनमें भी सक्यातमागहाणि और उसक्य अवस्थान के पर ही सम्भव हैं ।

आहारक्याययोगी और आहारकमिअक्ययोगी बीबोंमें अवस्थान किसके होता है ?
किसी भी बीबके होता है । इसीप्रकार अक्यायी सूस्मसांवरण्यिकसंघठ, पञ्चक्यात
सघठ अमण्य, अण्यमसम्बन्धति, सासादनसम्बन्धति और सम्पग्मिच्छामृष्टि बीबोंके
कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गण्यार्थोंमें प्रकृतिबोधे हानि और बुद्धि नहीं
होती अतः एक अवस्थान पर ही कहा है । पर्यपि अण्यमसम्बन्धति बीब अनन्त्यानुबन्धी
चतुष्करी विरंबोजमा करता है, ऐसा भी उपदेश पाया जाता है । अतः इसके सक्यात
मागहाणि सम्भव है पर इसकी यहाँ विवक्षा नहीं की है । अपगतवेही बीबोंमें संक्यात
मागहाणि संक्यातगुणहाणि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी अण्यके होते हैं ।

मतिह्वानी, सुवाह्वानी अथपिह्वानी और मनः पर्यपह्वानी बीबोंमें सक्यातमागहाणि,
संक्यातगुणहाणि और अवस्थान ओपके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार सघठ, सामा-
यिकसंघठ छेयोमस्यापनासंघठ, अथविदर्सनी सम्बन्धति और श्याविकसम्पग्मृष्टि बीबोंके
कहना चाहिये ।

इसप्रकार स्वामित्वाद्युयोग्यार समाप्त हुआ ।

§ ४८८. आदेसेण पोगईएसु संखेज्जभागवद्दी-हाणी-अवट्टाणाणि कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा । एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख०-पंचि०तिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउव्विय०-इत्थि०-णवुस०-असज्जद०-पचत्ते० वत्तव्वं । पंचि०तिरि०अपज्ज० संखेज्जभागहाणि-अवट्टाणाणि कस्स ? अण्णद० । एवं मणुस-अपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-पंचकाय-तम अपज्ज०-मदि-सुदअण्णाण विहग०-परिहार०-संजदासंजद-वेदय०-मिच्छा०-

विशेषार्थ—संख्यातगुणहानि ग्यारह विभक्तिस्थानसे पांच या चार विभक्तिस्थानके प्राप्त होते समय और दो विभक्तिस्थानसे एक विभक्तिस्थानके प्राप्त होते समय ही होती है। और ये विभक्तिस्थान क्षपक अनिवृत्तिकरणमें ही होते हैं। अतः संख्यातगुणहानि क्षपक अनिवृत्तिगुणस्थानवाले जीवके होती है यह कहा है। तथा संख्यातभागहानि और संख्यात भागवृद्धि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीवोंके सम्भव है, क्योंकि छठीस या सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके पहले समयमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता देखी जाती है। अतः सम्यग्दृष्टिके सख्यात भागवृद्धि बन जाती है। इसीप्रकार चौथीस विभक्ति-स्थानवाला जो सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता देखी जाती है, अतः मिथ्यादृष्टिके भी सख्यात-भागवृद्धि बन जाती है। तथा मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके सख्यातभागहानिका कथन सरल है। अतः उसका विचार कर खुलासा लेना चाहिये। इसीप्रकार जिस वृद्धि या हानि सम्बन्धी अवस्थान हो उसका भी कथन कर लेना चाहिये। ऊपर जितनी भी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है।

§ ४८८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि नारकीके होते हैं। इसी-प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनीमती तिर्यंच, मामान्यदेव, भवनवासीसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, नपुसकवेदी, असयत और कृष्ण आदि पाच लेइयावाले जीवोंके कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें सख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है। तथा सख्यातभागवृद्धि सख्यातभागहानि और अवस्थानका खुलासा जिस प्रकार ऊपर किया है उस प्रकार कर लेना चाहिये।

पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं। इसीप्रकार लब्ध पर्याप्तक मनुष्य, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, पाचों स्थावर-

असृज्यीर्षं वचन् । ओरालियमिस्स० सखेतभागहाणी-अवहाणाणि कस्स ? अण्य०
सम्मादि० मिष्ठादिहिस्स वा । एवं वेठभियमिस्स०-कम्मइय० अणाहारीय । आहार०
आहारमिस्स० अवहाण कस्स ? अण्णद० । एवमकसाय० सुइम० अहाकसाद०
अवव० उवसम०-सासण सम्माभि० वचन् । अवगद० सखेतभागहाणीमखे०
गुणहाणीओ अवहाण च कस्स ? अण्यद० खवयस्स । आभिणि०-सुद० ओहि०
मणपज्ज० सखेज्जमा० हाणी-सखे० गुणहाणीअवहाणाणं ओपभयो । एव संज्जद०
सामाइय-खेदो० ओहिदस०-सम्मादि०-खइय० वचन् ।

एव सामिच समच ।

कत्र, अरुणसम्पवर्षांत, मल्लज्जानी सुताज्जानी, विमगज्जानी, परिहारविमुद्धिसंसयत, सवता-
सयत, वेदकसम्पगट्टि, मिष्ठागट्टि, और असही जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है
कि इन मार्गजाओंमें अट्टईस विमचित्तानसे सत्ताईस और सत्ताईससे ऊंचीस विमचि-
त्तानोंका प्राप्त होना ही सम्भव है । अतः इनमें संख्यातभागहानि और उसका अवस्थान
ये पद ही सम्भव हैं ।

औद्यारिक मिश्रण्ययोगी जीवोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थान किसके होते हैं ?
किसी भी सम्पगट्टि या मिष्ठागट्टि जीवके होते हैं । इसीप्रकार वैकिकमिज्जकाययोगी,
कार्मण्यकत्रयोगी और अमाहारक जीवोंके कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्ग-
जाओंमें २० से २७, २७ से २६ और २२ से २१ विमचित्तानोंका प्राप्त होना सम्भव
है । अतः इनमें भी संख्यातभागहानि और उसका अवस्थान ये पद ही सम्भव हैं ।

आहारककाययोगी और आहारकमिज्जकाययोगी जीवोंमें अवस्थान किसके होता है ?
किसी भी जीवके होता है । इसीप्रकार अरुपाणी सुस्ससांपरापिकसंसयत, वक्ककात
सयत अमय्य, उपसमसम्पगट्टि, सासावनसम्पगट्टि और सम्पगुमिष्ठागट्टि जीवोंके
कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गजाओंमें प्रकृतियोंकी हानि और वृद्धि नहीं
होती अतः एक अवस्थान पद ही कहा है । वद्यपि उपसमसम्पगट्टि जीव जनन्त्यानुबन्धी
वस्तुपक्षी विसंयोजना करता है, ऐसा भी उपदेख पाया जाता है । अतः इसके संख्यात
भागहानि सम्भव है पर वसन्धि यहाँ विवक्षा नहीं की है । अपगतवेरी जीवोंमें संख्यात
भागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी उपपक्ष होते हैं ।

मतिज्जानी सुतज्जानी, अवधिज्जानी और मनः पर्थपज्जानी जीवोंमें संख्यातभागहानि,
संख्यातगुणहानि और अवस्थान ओपके समान जानना चाहिये । इसीप्रकार संवत, सामा-
पिकसकत्त छेत्तोपत्तापनासकत्त अवधिदर्शनी सम्पगुद्धि और धाविकसम्पगुद्धि जीवोंके
कहना चाहिये ।

इसप्रकार स्वामित्तानुबोणहार समाप्त हुआ ।

§ ४८६. कालाणुगमेण दुविहो णिंदेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण संखेज्जभागवद्धी संखेज्जगुणहाणीओ केवचिर कालादो होति ? जहण्णुक्खसेम एगममओ । संखेज्जभागहाणी० जह० एगसमओ उक्क० वेसमया ' प्रवट्टाणं तिविहो अणादि-अपञ्जवसिदो अणादिसपञ्जवसिदो सादिसपञ्जवसिदो चेदि । तत्थ जो सो सादिसपञ्जवसिदो तस्स जह० एगसमओ, उक्क० अट्ठपोग्गलपरियट्ठं देख्णं । एवम-चक्खु० भवसि० । णवरि भवसि० अणादि-अपञ्जवसिदं णत्थि ।

§ ४८२. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका कितना काल है । इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । संख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । अवस्थान तीन प्रकारका है—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । उनमेंसे जो सादि-सान्त अवस्थान है उसका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । इसीप्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्यजीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि भव्य-जीवोंके अनादि-अनन्त अवस्थान नहीं होता है ।

विशेषार्थ—यहां एक जीवकी अपेक्षा संख्यात भाग वृद्धि आदिका काल बतलाया है । संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिके होनेके पश्चात् दूसरे समयमें पुनः संख्यात-भागवृद्धि और संख्यातगुणहानि नहीं होती । अतः इन दोनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । जो जीव नपुंसक वेदके उदयके साथ क्षपक श्रेणीपर चढ़ा है वह पहले समयमें स्त्रोवेदका और दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करके क्रमशः १२ और ११ प्रकृतिक स्थानवाला होता है । अतः संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल दो समय बन जाता है । इसका जघन्य काल एक समय पूर्ववत् जानना । तथा जो जीव सम्यक्त्व या सम्यग्-मिध्यात्वकी उद्वेगना करके एक समय तक मिध्यात्वमें रहा और दूसरे समयमें प्रथमोप-शमसम्यग्दृष्टि हो गया उसके अवस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा जिस जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके पहले समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त किया और अति-लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर जो जीव मिध्यात्वमें चला गया । पुनः वहां पत्यके असंख्यातवर्षे भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेगना करके छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला हो गया । और जब अर्धपुद्गल परिवर्तन-प्रमाण कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह गया, तब पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता वाला हो गया उसके आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त और पत्यके असं-ख्यातवर्षे भाग प्रमाण कालसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण काल तक छब्बीस विभक्ति-स्थानका अवस्थान देखा जाता है । अतः अवस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल-

१ ४६० आदेशेने बेरहएसु संखेजमागबह्दीहाणीणं कासो बहण्णुक्खस्सेव एयसमओ । अबहा० केवतिरं० ? अह० एगसमओ उक्क० तेचीससायरोवमाणि । पढमादि आव सत्तमि ति एव वेव । णवरि अबहावस्स बहण्णेष एयसमओ, उक्क० समय-सगुक्खस्सट्ठिरीओ । तिरिक्ख-पंचिदियतिरि० तिगस्स संखेजमायबह्दीहाणीणं कासयसंगो । अबहाव० अह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्खस्सट्ठिरीओ । पचि० विरि० अपक्क० संखेजमागहाणी० अहण्णुक्खस्सेव एयसमओ । अबटि० अह० एयसमओ, उक्क० अतोमु० । एव मणुस्सअपक्क० पंचिदियअपज०-तसअपज० बोराळिपमिस्स०-वेठाअियमिस्स० वत्तम्पं ।

१ ४६१ मणुस मजुसपज० संखेजमायहाणी-सखेजमायबह्दी-संखेजगुणहाणीव-परिचरैतप्रमाणं क्खं है ।

१ ४६० आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातमागबुद्धि और सख्यातमागबुद्धि अचान्य और अक्खकक एक समय है । तथा अवस्थानक कक कितना है ? अवस्थानक अचान्यकक एक समय और अक्खक कक तेचीस सागर है ।

विशेषार्थ-नरकमें अवस्थानक अक्खक कक तेचीस सागर वसीके प्राप्त होगा जो अह्दीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य जीव नरकमें जाकर या तो वैदकसम्बन्धको प्राप्त करके अह्दीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य होकर ही रहे या जो अह्दीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य जीव नरकमें जाकर निरन्तर अह्दीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाह्य होकर ही रहे । श्रेय कवन सुगम है ।

पहली पृष्ठीसे अकर सातवीं पृष्ठी तक इसीप्रकार कवन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि प्रथमादि पृष्ठीमें अवस्थानक अचान्यकक एक समय और अक्खककक अपनी अपनी अक्खक स्थितिप्रमाण है । सामान्य विषय और पंचेन्द्र आदि तीन प्रकरके तिर्यकोके सख्यातमागबुद्धि और सख्यातमागबुद्धिका अचान्य और अक्खकक नारकियोंके समान है । तथा अवस्थानक अचान्यकक एक समय और अक्खककक अपनी अपनी अक्खक स्थितिप्रमाण है । तात्पर्य यह है कि जिस मार्गमें निरन्तर रहनेका श्रितना अक्खक कक है तत्प्रमाण वहां अवस्थानक अक्खकक है श्रेय कवन सुगम है ।

पंचेन्द्र तिर्यक अह्दीसपरीतकोमें सख्यातमागबुद्धिका अचान्य और अक्खक कक एक समय है । तथा अवस्थितका अचान्यकक एक समय और अक्खककक अह्दीसह्दी है । इसीप्रकार अह्दीसपरीत मजुप्प, पंचेन्द्र अह्दीसपरीत, त्रसअह्दीसपरीत, औदारिक-मिअचयकोती और वैदिकमिअचयकोती जीवोंके क्खना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गमें जीवोंके रहनेका अक्खककक अह्दीसह्दी है । जतः इतमें अवस्थानक अक्खक कक अह्दीसह्दी क्ख है ।

१ ४६१ सामान्य मजुप्प और परीत मजुप्पोंमें सख्यातमागबुद्धि, संख्यातमाग-

मोघमंगो । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुब्बकोटिपुष्पे-
णम्भियाणि । एवं मणुस्सिणी० । णवरि० सखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ ।
देवा० णारगमगो । भवणादि जाव उररिमगेवज्ज० संखेज्जभागवट्टिहाणी० णारग-
मंगो । अवट्टाणं के० ? जह० एगममओ, उक्क० सगसगुक्कस्ताट्टिदी । अणुदिसादि
जाव सव्वट्ट० संखेज्जभागहणि० जहण्णुक्क० एगममओ, अवट्टा० जह० एगसमओ,
उक्क० सगट्टिदी ।

§ ४६२. एहंदिय-वादर०-सुहुम० तेसिं पज्जत्त-अपज्जत्त०-विगलिंदियपज्जत्तापज्जत्त-
पंचकाय-वादर-वादरपज्जत्तापज्जत्त-सुहुम-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त० संखेज्जभागहाणीए
बुद्धि और संख्यातगुणहानि इन तीनोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओषके समान है । तथा
अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन
पर्य है । इसीप्रकार स्त्रीवेदी मनुष्योंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी
मनुष्योंके संख्यातभाग हानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

विशेषार्थ—सामान्य और पर्याप्त मनुष्योंमें संख्यात भाग हानिका उत्कृष्ट काल दो
समय नपुसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके ही घटित करना चाहिये ।
किन्तु स्त्रीवेदके उदयवाले मनुष्योंको ही स्त्रीवेदी मनुष्य कहते हैं । अतः इनके संख्यात
भागहानिका उत्कृष्ट काल दो समय नहीं प्राप्त होता क्योंकि ये जीव नपुसकवेदका क्षय हो
जानेके पश्चात् अर्न्तमुहूर्त कालके द्वारा ही स्त्रीवेदका क्षय करते हैं । अतः इनके संख्यात
भागहानिका उत्कृष्ट काल एक समय ही प्राप्त होता है । तथा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंके
अवस्थानका उत्कृष्ट काल जो पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पर्य कहा है वह उनके उस
पर्यायके साथ निरन्तर रहनेके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है । शेष कथन सुगम है ।

सामान्य देवोंमें संख्यातभागबुद्धि आदिका काल नारकियोंके समान कहना चाहिये ।
भवनवासियोंसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देवोंमें संख्यातभागबुद्धि और संख्यातभाग-
हानिका काल नारकियोंके समान है । उक्त देवोंमें अवस्थानका काल कितना है ? अव-
स्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण होता है ।
अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल
एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी
स्थितिप्रमाण है ।

§ ४६२. सामान्य एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एके-
न्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, विक-
लत्रय तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, तथा इनके वादर और वादरोंके

अह० उक्त० एगसमओ । अबहा० अह० एगसमओ, उक्त० सगसगुणस्सद्विदी ।
 पंचिदिय०-पचि०-पञ्च० तस० तसपञ्च० संखेज्जभागवद्दीहाणीसंखेज्जगुणहाणी०
 ओपमंगो । अबहा० के० ? अह० एगसमओ, उक्त० समद्विदी । पंचमण०-पचपचि०
 संखेज्जभागवद्दीहाणी-संखेज्जगुणहाणि० ओपमंगो । अबहा० अह० एगसमओ,
 उक्त० अंतोमु० ।

१४६३ कायजोगि० संखेज्जभागवद्दीहाणी-संखेज्जगुणहाणी० ओपमंगो ।
 अबहा० अह० एगसमओ, उक्त० अंतकालमसंखेज्जपोग्गसपरियह । एवमोराठि० ।
 पचरि० अबहा० अह० एगसमओ, उक्त० बावीसवाससहस्साभि देससाणि । वेठभिय०
 पारमंगो । पचरि० अबहा० उक्त० अंतोमु० । आहार० अबहा० के० ? अह० एग-
 समओ, उक्त० अंतोमुहुं । एमकसाय०-मुहुम०-अहाकसाद० वचम्वं । आहारमि०

पर्वत अपर्वत, सूक्ष्म पर्वतों तथा इनके पर्वत और अपर्वत भेदोंमें संख्यात
 मागदानिका अपन्य और उक्त काल एक समय है । तथा अवस्थानका अपन्य काल
 एक समय है और उक्त काल अपनी अपनी उक्त स्थितिप्रमाण है ।

पंचिन्द्रिय, पंचिन्द्रियपर्वत, वस और प्रसपर्वत जीवोंमें सख्यातभागवृद्धि, सख्यात-
 भागहानी और संख्यातगुणहानीका काल ओपके समान है । इन जीवोंमें अवस्थानका काल
 कितना है ? अपन्य काल एक समय है और उक्त काल अपनी अपनी उक्त
 स्थितिप्रमाण है ।

पंचो मनोयोगी और पंचो वचमयोगी जीवोंके सख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानी
 और सख्यातगुणहानिका काल ओपके समान है । तथा अवस्थानका अपन्य काल एक
 समय और उक्त काल अन्तर्गृह्य है ।

१४६३ काययोगी जीवोंके सख्यातभागवृद्धि संख्यातभागहानि और संख्यात-
 गुणहानिका काल ओपके समान है । तथा अवस्थानका अपन्य काल एक समय और
 उक्त काल अन्तर्गृह्य है जिसका प्रमाण असख्यात पुत्रक परिवर्तन है । काययोगियोंके
 समान आहारिककाययोगी जीवोंके सख्यातभागवृद्धि आदिका काल कहना चाहिये ।
 इसकी विशेषता है कि आहारिक काययोगी जीवोंके अवस्थानका अपन्य काल एक समय
 और उक्त काल कुछ कम बार्स हजार वर्ष है । वैश्विककाययोगीजीवोंके सख्यातभाग-
 वृद्धि आदिका काल जिसप्रकार मारुतियोंके कहा है उसप्रकार जानना चाहिये । इसकी
 विशेषता है कि इनके अवस्थानका उक्त काल अन्तर्गृह्य है । आहारिककाययोगी जीवोंके
 अवस्थानका काल कितना है ? इनके अवस्थानका अपन्य काल एक समय और उक्त
 काल अन्तर्गृह्य है । इसीप्रकार अक्षयमी, सूक्ष्मसौपर्यधिकमयत और यथाख्यातसयत
 जीवोंके अवस्थानका काल कहना चाहिये । आहारिकमित्रकाययोगी जीवोंके अवस्थानका

अवट्टा० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवमुवसम० सम्मामि० । कम्मइय० संखेज्जभाग-
हाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टा० जह० एगममओ, उक्क० तिण्णिण समया ।

§ ४६४. इत्थि० संखेज्जभागवट्टी-हाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टा०
जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । एवं णवुंस० वत्तव्व । पुरिस० संखेज्ज-
भागवट्टीहाणि-संखेज्जगुणहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टा० जह० एगसमओ,
उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । अवगद० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी० जहण्णुक्क०
एगसमओ । अवट्टा० जह० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्त । चत्तारिकसाय०
मणजोगिभंगो ।

§ ४६५ मदि-सुदअण्णाण० संखे० भागहाणि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अवट्टा०
ओघमंगो । एवं मिच्छादिट्ठी० । विहंग० संखेज्जभागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ ।

जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-
दृष्टिजीवोंके कहना चाहिये । कार्मणकाययोगी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल
तीन समय है ।

विशेषार्थ—एक जीव एकेन्द्रिय पर्यायमे अनन्तकाल तक रह सकता है और वहां
एक काययोग ही होता है अतः काययोगमें अवस्थानका उत्कृष्ट काल अनन्त कहा है । तथा
औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है । अतः औदारिककाय-
योगमें अवस्थानका उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा है ।

§ ४६४. स्त्रीवेदी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य और
उत्कृष्टकाल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल
अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसीप्रकार नपुसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये । पुरुषवेदी
जीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट
काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अपगतवेदियोंमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य
और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट
काल अन्तर्मुहूर्त है ।

चारों कषायवाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल जिसप्रकार मनोयोगियोंके
कहा है उसप्रकार जानना चाहिये ।

§ ४६५. मत्पज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और
उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका काल ओघके समान है । इसीप्रकार मिथ्या-
दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । विभङ्गज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और

अबद्धा० ब्रह्म० एगसमओ, उक्त० तेत्तीस-सागरोबमाणि देवणाणि । आभिणि०-सुद०
 मोहि० सखेन्जमागहाभि-सखे०गुणहाभि० ओपमंगो । अबद्धा० ब्रह्म० अतोसुदुपं,
 उक्त० छावद्वि सागरोबमाणि साद्विरेयाणि । एबमोहिर्वस०-सम्माविही० । मबपम्ब०
 सखे० मागहाभि-सखे० गुणहाणि० अहण्युक्त० एगसमओ । अबद्धा० ब्रह्म० अतो
 सुदुपं, उक्त० पुम्बकोटी देवणा ।

§ ४६६ सन्नद० सखे० मागहाभि संखे गुणहाणी० ओपमंगो । अबद्धा०
 मबपलव मंगो । एब सामाहयच्छेदो० । अबरि अबद्धा० ब्रह्म० एगसमओ ।
 परिहार० सखे० मागहाभि० अहण्युक्त० एगसमओ । अबद्धा० ब्रह्म० अतोसुदुपं, उक्त०
 पुम्बकोटी देवणा । एवं संसदासन्नद । असन्नद० मदि० मगो । अबरि संखेजमाग
 ब्रह्मी० अहण्युक्त० एगसमओ । अस्तु० तसपजपमंगो ।

§ ४६७. पपसे० सखे० मागवह्मी-हापी अहण्युक्त० एगसमओ । अबद्धा०

ब्रह्मकाश एक समय है । तथा अबस्थानका अपम्यकाश एक समय और ब्रह्म काश कुछ
 कम तेतीस सागर है ।

मतिज्ञानी, सुतज्ञानी और अविज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहामि और संख्यातगुण-
 हाणिक्र काश ओपके समान है । तथा अबस्थानका अपम्य काश अन्तर्मुहूर्त और ब्रह्म
 काश साधिक छपासठ सागर है । इसीप्रकार अविज्ञानी और सम्यग्बुद्धि जीवोंके कर्मा
 चाहिये । मनःपर्यवहानी जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिक्र अपम्य और
 ब्रह्म काश एक समय है । तथा अबस्थानका अपम्य काश अन्तर्मुहूर्त और ब्रह्म काश
 कुछ कम एक पूर्वकोटि है ।

§ ४६९ संयत जीवोंके संख्यातभागहामि और संख्यातगुणहामिक्र काश ओपके
 समान है । तथा अबस्थानका काश मनःपर्यवहानिक्रोंके अबस्थानके काशके समान है ।
 इसीप्रकार सामाधिकसयत और ऐश्वर्यरक्षणसयत जीवोंके कर्मा चाहिये । इतनी विरोधता
 है कि इनके अबस्थानका अपम्यकाश एक समय है । परिहारविद्युद्धि सयत जीवोंके संख्या
 तभागहानिक्र अपम्य और ब्रह्म काश एक समय है । तथा अबस्थानका अपम्य काश
 अन्तर्मुहूर्त और ब्रह्म काश कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसीप्रकार सयतसयत जीवोंके
 कर्मा चाहिये । असयत जीवोंके संख्यातभागहामि आदिका काश त्रिसप्तकार मत्पज्ञानी
 जीवोंके कर्मा है तसप्तकार जानना चाहिये । इतनी विरोधता है कि इनके संख्यातभाग-
 हामि भी होती है, त्रिसप्त अपम्य और ब्रह्म काश एक समय है । अहुरिर्सी जीवोंके
 संख्यातभागहामि आदिका काश त्रिसप्तकार तसपयत जीवोंके कर्मा है तसप्तकार जानना
 चाहिये ।

§ ४६७ छप्य आदि पाँचों श्रेयासाह जीवोंके संख्यातभागहामि और संख्यातभाग-

जह० एगसमओ उक० सगसगुकस्सट्टिदी । सुक० संखे० भागवद्दीहाणी-संखे० गुणहाणि० ओघभंगो । अवट्टा० जहं० एगसमओ उक० तेत्तीस सागरो० सादिरेयाणि । अभव० अवट्टा० के० ? अणादिअपज्ज० । खइय० संखे० भागहाणि मंखे० गुणहाणि० ओघभंगो । अवट्टा० जह० अंतोमु० उक० तेत्तीस-साग० सादिरेयाणि । वेदग० संखे० भागहाणि० जहण्णुक० एगसमओ । अवट्टि० जह० अंतोमु०, उक० छावट्टि सागरो० देख्णाणि । सामण० अवट्टा० जह० एगसमओ, उक० छावलिया० । सण्णि० पुरिसभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणि० उक० बेसमया । असण्णि० एइंदिय-भंगो । आहारि० संखेज्जभागवद्दीहाणी-संखेज्जगुणहाणि० ओघभंगो । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक० अंगुलस्म असखे० भागो । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं कालाणुगमो समतो ।

हानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । शुक्ललेप्यावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओषके समान है । तथा इनके अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस मागर है । अभन्य जीवोंके अवस्थानका काल कितना है ? अनादि-अनन्त है ।

ध्यायिकसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओषके समान है । तथा अवस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अवस्थितका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुल कम छयासठ सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अवस्थानका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है ।

सही जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका काल जिस प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके कहा है उसप्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल दो समय है । असही जीवोंके जिसप्रकार एकेन्द्रियोंके संख्यातभागहानि आदिका काल कहा है उसप्रकार जानना चाहिये ।

आहारकजीवोंके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काल ओषके समान है । तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कर्मणकाययोगियोंके समान काल कहना चाहिये ।

इसप्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

५४६८ अंतराश्रुमेष द्विविहो निरिसे ओषेय आदेसेण य । तत्त्व ओषेण ससेज
 मागबद्धीहाणीमंतरं केव ? जह० अतोसु०, संक० अद्रपोन्माळपरियहं देखणं ।
 अबद्धि० जह० एगसमजो, सङ्क० बेसमया । ससेजगुणहाभि० अंतरं केव ? अहण्युक्क
 अतोसु० । एवमचकसु० भवसिद्धि० ।

५४६८ अंतरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेश-
 निर्देश । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा संख्यावतमागबद्धि और संख्यावतमागहातिका अन्तरका
 कितना है ? जपस्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाळ कुछ कम अर्धपुत्र-
 परिवर्तन प्रमाण है । अबक्षितका जपस्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है ।
 संख्यावतगुणहातिका अन्तरकाळ कितना है ? जपस्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त है ।
 इसीप्रकार अचक्षुर्वर्गमी और मध्य बीजके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—२६ वा २७ प्रकृतियोंकी सत्ताबाधे किसी एक बीजने उपद्रमसम्पत्त्वको
 प्राप्त किया और अनन्त्याश्रुबन्धीकी विसंयोजना करके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाध हो
 गया । पुन उपद्रमसम्पत्त्वका काळ पूरा हो जानेपर जो सिध्दात्ममें चला गया उसके
 संख्यावतमागबद्धिका जपस्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त होता है । तथा २४ प्रकृतियोंकी
 सत्ताबाध जो बीज सिध्दात्ममें जाकर २८ प्रकृतियोंकी सत्ताबाध हो गया पुनः अति उषु
 अन्तर्मुहूर्त काळके द्वारा वेदक सम्बगृह्ये होकर और अनन्त्याश्रुबन्धीकी विसंयोजना
 करके पुनः सिध्दात्ममें जाकर २८ प्रकृतियोंकी सत्ताबाध हो जाता है उसके मी संख्याव
 मागबद्धिका जपस्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । जो २८ प्रकृतियोंकी सत्ताबाध
 सम्बगृह्ये जीव अनन्त्याश्रुबन्धीकी विसंयोजना करके २४ प्रकृतियोंकी सत्ताबाध हो गया ।
 पुनः सिध्दात्ममें जाकर और सम्बगृह्ये होकर जिसने अन्तर्मुहूर्त काळके भीतर अनन्त्या
 श्रुबन्धीकी विसंयोजना की उसके संख्यावतगुणहातिका जपस्यकाळ अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।
 जिस बीजने उत्तरमें रहनेका काळ अर्धपुत्रपरिवर्तन प्रमाण छेप रहनेपर उसके पहले
 समयमें प्रथमोपसम सम्पत्त्वको ग्रहण करके अर्द्धाईस प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की । तत्पश्चात्
 पस्वके असंख्यावतवें भागप्रमाण काळके द्वारा जो सम्पत्त्व और सम्बगृमिध्दात्मकी विसं
 योजना करके छम्बीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाध हो गया । पुनः अर्धपुत्रपरिवर्तनप्रमाण
 काळमें अन्तर्मुहूर्त छेप रहनेपर जिसने पुनः प्रथमोपसम सम्पत्त्वको ग्रहण करके २८
 प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली उस बीजके संख्यावत मागबद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाळ एक
 अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुत्रपरिवर्तन काळप्रमाण होता है । तथा संख्यावतमागहातिका उत्कृष्ट
 अन्तर काळ करते समय अर्धपुत्र परिवर्तनप्रमाण काळके प्रारम्भमें पस्वके असंख्यावतवें
 भागप्रमाण काळके द्वारा सम्पत्त्व और सम्बगृमिध्दात्मकी वहेचना कटने अनन्तर सत्तारमें
 रहनेका काळ अन्तर्मुहूर्त छेप रहनेपर अनन्त्याश्रुबन्धीकी विसंयोजना कराने । इसप्रकार

§ ४६६. आदेशेण षोरईएसु संखेज्ज० भाग्वद्दी-हाणी० अंतरं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेतीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अवड्ढि० ओष । पढमादि जाव मत्तमि सि संखेज्जभागवद्दी-हाणी० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्माट्ठिदी देसूणा । अवट्ठा० ओषमंगो । तिरिक्ख० संखे० भागवद्दीहाणी० जह० अंतोमु० । उक्क० अद्दपोग-संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और पत्यका अमख्यातर्षा भागकम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है । जो संख्यातभागवृद्धि आदिका एक ममय जघन्य काल है वही अवस्थितका जघन्य अन्तर जानना चाहिये । तथा सख्यात भागहानिका जो दो समय उत्कृष्टकाल है वही अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिये । या सम्यक्त्व अपवा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला जो जीव पहले ममयमे २७ या २६ विभक्ति-स्थानवाला हुआ और दूसरे ममयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके २८ विभक्ति-स्थानवाला हो गया उसके भी अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर दो ममय पाया जाता है । तथा चार, तीन और दो विभक्तिस्थानोंका जितना काल है वह संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । जिसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है ।

§ ४६६, आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । तथा इनके अवस्थितका अन्तर ओषके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक संख्यात-भागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थानका अन्तर ओषके समान है ।

विशेषार्थ—जिस नारकी जीवने भवके आदिमे पर्याप्त होनेके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके संख्यातभागहानि की है । तथा भवके अन्तमें पुनः जिसने अनन्तानुबन्धी विसंयोजना करके संख्यातभागहानि की है । तथा मध्यके कालमें जो २४ और २८ विभक्तिस्थानवाला बना रहा है, उसके प्रारम्भ और अन्तके कालको छोड़कर शेष तेतीस सागर काल संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है । तथा २७ या २६ ऋक्तियोंकी सत्तावाले जिस नारकी जीवने पर्याप्त होनेके पश्चात् प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके संख्यातभागवृद्धि की । अनन्तर २४ विभक्ति-स्थानको प्राप्त करके भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर जिसने पुन मिथ्यात्वमें जाकर २८ विभक्तिस्थानको प्राप्त किया उसके प्रारम्भ और अन्तके कालको छोड़कर शेष तेतीस सागर काल संख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है । शेष अन्तर कालोंका कथन जिसप्रकार ओषमें कर आये हैं उसीप्रकार यथासम्भव यहा टित कर लेना चाहिये ।

तिर्थचोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । तथा अवस्थानका अन्तर

रूपरियदृशेणं । अबद्धा० ओपमगो । पंथि० तिरिक्खुवियस्स सखेज्जभामवद्दी-हाणी०
 सह० अंतोसु०, उद्ध० तिण्णि पत्तिदोवमामि पुम्बकोटि पुषसेज्जम्बहियाभि । अबद्धा०
 ओपमगो । एव मणुसतियस्स । बवरि संखेज्जगुणहाणीए ओपमगो । पंथिदिय
 तिरिक्खुअपन्ज० सखे० भागहाणी० गतिय अतर । अबद्धा० अहण्णुद्ध० एगसमओ ।
 एव मणुसअपन्ज०-अणुसिदि आब सव्वहु०-बादरुदियपन्जचापन्जच-सुहुमेईदिय
 पन्जचापन्जच सम्बदिमार्तिदिय-पंथिदियअपन्ज०-पक्कपापं बादर-सुहुम-पन्जचा-
 पन्जच-ओराळियमिस्स०-वेठधियमिस्स०-कम्मइय० वचम्ब ।

ओपक समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यंज, पंचेन्द्रिय तिपच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंज बोनि
 मयी इस तीन प्रकारके तिर्यंजके संस्वातभागवृद्धि और संस्वातभागवृद्धि अथवा अन्त-
 रकाळ अन्तर्मुहूर्त और अन्तःकाल पूर्वकोटिपृक्कत्व अधिक तीन पत्व है । तथा
 अवस्थानक अन्तरकाल ओपके समान है । इसीप्रकार सामान्य, पर्याप्त और बीबेदी
 मनुष्योंके अन्तरकाल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संस्वातगुणवृद्धि भी
 होती है जिसका अन्तरकाल ओपके समान है ।

विशेषार्थ—तिर्यंज और मनुष्योंमें तथा इनके अन्तःकाल में संस्वातभागवृद्धि और
 संस्वातभागवृद्धि अन्तरकाल न्यारकियोंके समान पटित कर लेना चाहिये पर इनमें
 जिसका अन्तःकाल अन्तःकाल है उसको प्यानमें रखकर पटित करना चाहिये । श्रेष्ठ
 कवन सुगम है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंज अथवा पर्याप्तके संस्वातभागवृद्धि अन्तरकाल मयी प्रायः प्रायः
 है । तथा अवस्थानक अथवा और अन्तःकाल एक समान होता है । इसीप्रकार
 अथवा पर्याप्त मनुष्य, अनुचितसे लेकर सर्वाधिकतम तकके देव, बादर पंचेन्द्रिय पर्याप्त,
 बादर पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म पंचेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी निष्पंचेन्द्रिय,
 पंचेन्द्रिय अथवा पर्याप्त, पांचों स्थावरकालके बादर पर्याप्त और बादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म
 पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त, औदारिकमिन्नकालयोगी, वैकिकमिन्नकालयोगी और कर्मक
 कालयोगी बीबोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंज अथवा पर्याप्त आदि उपयुक्त मार्गवृद्धिमें संस्वातभागवृद्धि
 अन्तर नहीं प्राय होता, क्योंकि एक बीबकी अपेक्षा एक मार्गवृद्धिके काल बोना है
 जिससे वहां दो बार संस्वात भागवृद्धि नहीं कयती । यद्यपि नौ अन्तःकालसे लेकर सर्वाधिक-
 तम तकके देवोंका काल बहुत अधिक है पर वहां भी दो बार संस्वात भागवृद्धि नहीं
 प्राप्त होती अतः इन मार्गवृद्धिमें संस्वात भागवृद्धि अन्तरकाल नहीं कया । तथा इस
 सभी मार्गवृद्धिमें संस्वातभागवृद्धि जो एक समान काल है वही वहां अन्तःकाल अथवा
 और अन्तःकाल जानना चाहिये ।

§ ५००. देव० संखेज्जभागवद्दी-हाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एकतीससागरो-
वमाणि देसूणाणि । अवट्टा० ओघभंगो । भवणादि जाव उवरिमगेवज्जे ति संखेज्ज-
भागवद्दीहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सहिदी देसूणा । अवट्टा० ओघ-
भंगो । एइदिय० बादर० सुहुम०-पंचकाय० बादर०सुहुम० संखेज्जभागहाणि० जह-
ण्णुक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो । कुदो ? सम्मत्तुव्वेध्ज्जाए संखेज्जभागहाणिं
करिय पुणो पलिदो० असंखे० भागकालेण सम्मामि० उव्वेलिदण संखेज्जभागहाणिं
कुणंतस्स तदुवलंभादो । अवट्टा० जहण्णुक्क० एगसमओ । पंचिदिय-पांचि० पज्ज०-

§ ५००. देवोंमें सख्यातभागवृद्धि और सख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्त-
र्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । तथा अवस्थानका अन्तरकाल
ओघके समान है । भवनवासियोंसे लेकर उपरिम प्रैवेयक तकके देवोंके सख्यातभागवृद्धि
और संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम
अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें और नौप्रैवेयक तकके उनके अवान्तर भेदोंमें अपने अपने
कालकी मुख्यतासे संख्यातभागवृद्धि और सख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्व
प्रक्रियानुसार घटित कर लेना चाहिये । यहां सामान्य देवोंमें जो इकतीस सागरकी अपेक्षा
अन्तर काल कहा है उसका कारण यह है कि यहीं तकके देवोंके गुणस्थानोंमें अदल
बदल होती है जिसकी अन्तरकालोंको घटित करते समय आवश्यकता पड़ती है । तथा
शेष अन्तरकालोंका फयन सुगम है ।

एकेन्द्रिय और उनके बादर और सूक्ष्म तथा पांचों स्थावरकाय और उनके
बादर और सूक्ष्म जीवोंके सख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्न्यके
असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

शंका—उक्त जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्न्योपमके
असंख्यातवें भाग क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यक्प्रकृतिकी उद्वेलनाके द्वारा संख्यातभागहानिको करनेके
अनन्तर पत्न्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके पश्चात् सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलनाके द्वारा
संख्यातभागहानिको करनेवाले उक्त जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्त-
रकाल पत्न्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है ।

तथा उक्त एकेन्द्रिय आदि जीवोंके अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक
समय होता है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादिके उक्त मार्गणाओंमें संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तरकाल पत्न्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है इसका खुलासा ऊपर किया ही है ।

तस-तसपन्व० सखेन्जमागवद्विहाणि० अह० अतोमुहुच, उह० सगुक्तसहिदी
 देहणा । अबद्धा० सखेन्जगुह्माहीणमोषमंगो । पचमव०-पंचवधि० ओराति०
 वेतभिय० मवद्धा० भोषमयो । सेसार्णं णरिप अतरं ।

१५०१ काययोगि० संखे०-मागवद्दी० संखे०-गुणहामी० णरिप अतर । संखे०
 मायहाभि० अहण्णुक० पस्सिदो० असंखे० मागो । अवहा० भोषमंगो । आहार०
 आहार-मिस्स० अब० णरिप अतर । एवमकसाय०-सुहुम०-अहाकखाद०-अम्मव०
 उवसम०-सम्माभि०-सासण० । ।

१५०२ वेदाजुवावण इरिब० संखेजमागवद्विहाणि० अह० अतोमु० उह०

कसका वास्तव्यं यह है कि इनमें २८ से २७ और २७ से २६ बिमच्छिस्वानकी प्राप्ति
 होना सम्भव है जिनके प्राप्त होनेमें पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काळ लगता है ।
 अब यदि किसी एक जीवने २८ से २७ बिमच्छिस्वानको प्राप्त किया तो यह पक्षी संख्यात
 मागहानि हुई । पुनः क्सी जीवने पर्यके असंख्यातवें भाग काळके जानेपर २७ से २६
 बिमच्छिस्वानको प्राप्त किया तो यह दूसरी संख्यात मागहानि हुई । इस प्रकार पक्षी
 संख्यात मागहानिसे दूसरी संख्यातभागहानिके होनेमें पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्त
 रकाळ प्राप्त हुआ । तथा संख्यातभागहानिका जो एक समय काळ है वही यहाँ अवस्थितका
 अपभ्य और उरुह अन्तरकाळ जानना चाहिये ।

वैश्विन्द्र्य वैश्विन्द्र्यपर्याप्त, इस और असपर्याप्त जीवोंके संख्यातमागहृदि और
 संख्यात मागहानिका अपभ्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त और उरुह अन्तरकाळ कुछ कम अपनी
 अपनी उरुह स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थान और संख्यात गुणहानिका अन्तरकाळ
 ओषके समान है । पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिकप्रयोगी और वैश्वि-
 दिककावयोगी जीवोंके अवस्थानका अन्तरकाळ ओषके समान है । श्रेय त्वानोंका अन्तर
 काळ नहीं पाया जाता है ।

१५०१ काययोगी जीवोंके संख्यातमागहृदि और संख्यातगुणहानिका अन्तर
 काळ नहीं पाया जाता है । संख्यातमागहानिका अपभ्य और उरुह अन्तरकाळ पर्यो-
 पके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अवस्थानका अन्तरकाळ ओषके समान है ।
 आहारकमिकप्रयोगी और आहारकमिकप्रयोगी जीवोंके अवस्थानका अन्तरकाळ नहीं है ।
 इसीप्रकार अकपाधी, सूक्ष्मसांप्रयमिकप्रपत, पक्षसंख्यातसयत अभ्य, उपसमसभ्यमृष्टि,
 सभ्यमिप्याष्टि और सासाहनसभ्यमृष्टि जीवोंके अन्तर्त्वाहिये ।

१५०२ वेदमार्ग्याके अनुवाचसे धीवैदी जीवोंके संख्यातमागहृदि और संख्यात
 मागहानिका अपभ्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त और उरुह अन्तरकाळ कुछ कम अपनी उरुह
 स्थितिप्रमाण है । तथा अवस्थितका अन्तरकाळ ओषके समान है । पुनर्वैदवाले जीवोंके

सगुक्कस्तद्विदी देखणा । अवट्टि० ओघभंगो । पुरिस० एवं चैव । णवरि संखेज-
गुणहाणी० णत्थि अंतरं । णवुस० सखे० भागवद्दीहाणि०-अवट्टा० ओघभंगो ।
अवगद० संखेजभागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अवट्टा० जहण्णुक्क० एगसमओ ।
चत्तारिकसाय० संखेजभागहाणि० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अवट्टा० ओघभंगो ।
सेसप० णत्थि अंतरं । णवरि लोभक० संखेजगुणहाणि० ओघभंगो ।

§ ५०३. मदि०-सुद०-विहंग०-संखे० भागहाणि० अवट्टा० एइंइयभंगो । एव
मिच्छा० असण्णीणं । आभिणि०-सुद०-ओहि०-संखेजभागहाणी० जह० अंतोमु०,
उक्क० छावट्टि सागरोवमाणि देखणाणि । अवट्टि० संखेजगुणहाणीणं ओघभंगो ।
एवमोहिदंस० सम्मादि०-वेदय० । णवरि वेदए संखे० गुणहाणी णत्थि । अवट्टि०
जहण्णुक्क० एगसमओ । मणंपज० संखेजभागहाणि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्व-
कोडी देखणा । अवट्टा० जहण्णुक्क० एयसमओ । संखेजगुणहाणी० ओघभंगो । एवं

स्त्रीवेदी जीवोंके समान अन्तरकाल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातगुण-
हानि भी पाई जाती है पर उसका अन्तरकाल नहीं होता है । नपुंसकवेदी जीवोंके संख्यात
भागवद्धि, संख्यातभागहानि और अवस्थितका अन्तरकाल ओघके समान है । अपगतवेदी
जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अव-
स्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है ।

श्लोधादि चारों कषायवाले जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट
अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । अवस्थानका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा शेष दो पदोंका
अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है कि लोभकषायी जीवोंके संख्यातगुणहानिका
अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ ५०३. मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि और
अवस्थानका अन्तरकाल एकेन्द्रियोंके समान है । इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी-
जीवोंके कहना चाहिये । मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके संख्यातभाग-
हानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छयासठ सागर
है । तथा अवस्थित और संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसीप्रकार
अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्तरकाल कहना चाहिये । इतनी
विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संख्यातगुणहानि नहीं होती है । तथा वेदकस-
म्यग्दृष्टि जीवोंके अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । मनःपर्ययज्ञानी
जीवोंके संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ
कम एक पूर्वकोटि है । अवस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा
संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके समान संयत

सज्जद०-नामाप्रयच्छेदो० । अवरि० अषट्ठा० ओषमंयो । परिहार० संखेजमागहाणी०
जद० अतोमुद्रुच, उक्त० पुष्पकोटी देवणा । अषट्ठा० अहण्डु० एगसमजो । एव
संजदासजद० । चक्षु० वसपज्जपभगो ।

१५०४ पचठेस्मा० संखेजमागवद्वीहाणी० अह० अतोमु०, उक्त० सगसगुक्त-
स्तद्विदी देवणा । अषट्ठा० ओषमगो । सुक्लेस्सा० संखे० मायवद्वीहाणी० अह०
अतोमु० उक्त० एक्कीसं सागरोवमाणि देवणाणि सादिरेयाभि । सेसमोषमगो । सुइय-
संखेजमागहाणि० अतरं अहण्डु० अतोमुद्रुच, संखेजगुणहाणि-अषट्ठाण ओषमगो ।
सण्णी० पुरिसमयो । अवरि संखेजगुणहाणी० ओषं । आहारि० ओषमगो । अवरि
समाद्विदी देवणा । अगाहारि० कम्मइयमगो ।

एवमंतराङ्गयो समसो ।

सामायिक सबत और छेदोपस्वापनास्यव जीवोंके कइना चाहिये । इतनी विधेयता है कि
इनके अचरत्नका अन्तरकाळ ओपके समान है । परिहारबिहृदि सबत जीवोंके संख्यात-
भाग्यात्मिका अपम्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाळ कुछ कम एक पूर्वकोटि
है । तथा अचरत्नका अपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ एक समय है । इसीप्रकार संयता-
संयत जीवोंके कइना चाहिये । चक्षुपर्यन्ती जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका अन्तरकाळ
त्रसपचात्र जीवोंके समान है ।

१५०४ कृष्ण जादि पाँच छेरपावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-
हानिका अपम्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाळ कुछ कम अपनी अपनी
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अचरत्नका अन्तरकाळ ओपके समान है । छुडलेरपावाले
जीवोंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अपम्य अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त और
संख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाळ कुछ कम इक्कीस सगर तथा संख्यातभागहानिका
उत्कृष्ट अन्तरकाळ साबिक इक्कीस सगर है । तथा छेच क्यमोंका अन्तरकाळ ओपके
समान है ।

ध्यायिकसम्परादृष्टि जीवोंके संख्यातभागहानिका अपम्य और उत्कृष्ट अन्तरकाळ
अन्तर्मुहूर्त है । तथा संख्यातगुणहानि और अचरत्नका अन्तरकाळ ओपके समान है ।
संज्ञी जीवोंके संख्यातभागवृद्धि जादि पक्षोंका अन्तरकाळ पुठपक्षके समान है । इतनी
विधेयता है कि इनके संख्यातगुणहानिका अन्तरकाळ ओपके समान है । आहारक-
जीवोंके संख्यातभागवृद्धि जादि पक्षोंका अन्तरकाळ ओपके समान है । इतनी विधेयता है
कि इनके अचरत्नका उत्कृष्ट अन्तरकाळ कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण होता है । अन्तहारक
जीवोंके अन्तरकाळ कर्मनकावयोगी जीवोंके समान होता है ।

इसप्रकार अन्तराङ्ग्य समसत हुआ ।

§ ५०५. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहेसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण अवट्ठा० णियमा अत्थि सेसपदा० भयणिज्जा । भंगा सत्तावीस २७ । एव सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव भवणादि जाव उवरिम-गेवज्ज०-पंचि०-पंचिदियपज्ज०- तस-तसपज्ज०- पंचमण०-पचवचि०-कायजोगि०-ओरा-लिय०-वेउन्विय०- तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असजद०-चक्खु०-अचक्खु०- छलेस्सा०- भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि० वत्तच्चं । णवरि जत्थ संखेज्जगुणहाणी णत्थि तत्थ णव

§ ५०५ नानाजीवोंकी अपेक्षा भगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओव-निर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा अवस्थानपदवाले जीव नियमसे हैं तथा शेष पदवाले जीव भजनीय हैं । अतः इनके सत्ताईस भग होते हैं ।

विशेषार्थ—संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि इनके एक जीव और नानाजीवोंकी अपेक्षा एक संयोगी द्विसयोगी और तीन संयोगी कुल भग छन्वीस होते हैं और इनमें अवस्थान पदकी अपेक्षा एक ध्रुव भगके मिला देने पर कुल भगोंका जोड़ सत्ताईस होता है । जितने भजनीय पद हों उतनी बार तीनको रखकर परस्पर गुणा करनेसे ये कुल भग आ जाते हैं । यहाँ भजनीय पद तीन हैं अतः तीन बार तीनको रखकर परस्पर गुणा करनेसे सत्ताईस उत्पन्न होते हैं यही कुल भगोंका प्रमाण है । पहले जो अठ्ठाईस आदि विभक्तिस्थानोंकी अपेक्षा भंग और उनके उच्चारण करनेकी विधि लिख आये हैं उसीप्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये ।

इसीप्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, स्त्रीवेदी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम त्रैवेयक तकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, ब्रह्म, ब्रह्म पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिक-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, छुहों लेख्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमेंसे जहा पर संख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है वहा पर कुल नौ ही भग होते हैं ।

विशेषार्थ—किस मार्गणास्थानमें संख्यातभागवृद्धि आदिमेंसे कितने पद पाये जाते हैं यह स्वामित्वानुयोगद्वारमे बता आये हैं । ऊपर जो मार्गणास्थान गिनाये हैं उनमे कुछ ऐसे स्थान हैं जिनमे संख्यातगुणहानिके बिना शेष तीन और कुछमें चारों पद पाये जाते हैं । जहा चारों पद पाये जाते हैं वहा २७ भंग होंगे, इसका खुलासा ऊपर ही कर आये हैं । पर जहाँ संख्यात गुणहानिके बिना शेष तीन पद पाये जाते हैं वहाँ दो भजनीय पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक और द्विसयोगी आठ भग होंगे और

वेव मगा ६ । पंचिदियतिरिक्खजपत्त० अवद्दा० पियमा अत्थि । सखेज्जमागहाणी मयणित्ता । मगा तिण्णि ३ । एवमपुदिसादि ज्ञाव सन्वद्ध०-सन्वपइदिय सन्वविमल्लिदिय-पच्चि०जपत्त०-समेद पचकाय-उम अपज०-ओरालियमिस्स ०-कम्मइय मदि सुद जण्णा० बिहंग परिहार० सन्नदासब्बद० वेदय० मिच्छादि० असण्णि०-अणाहारि चि वचम्भं ।

§ ५०६ मपुसजपत्त० अवट्ठि० सखेज्जमागहाणीबिहरीए अट्टभगा वचम्भा । व अहा, सिया अवट्ठिद्विहरीओ । सिया अवट्ठिद्विहरीया । सिया सखेज्जमागहा णिविहरीओ । सिया सखेज्जमागहाणिविहरीया । सिया अवट्ठिद्विहरीओ च सखे ज्जमागहाणिविहरीओ च । सिया अवट्ठिद्विहरीओ च सखेज्जमागहाणिविहरीओ च । सिया अवट्ठिद्विहरीओ च सखे० मायहाणिविहरीओ च । सिया अवट्ठिद्विहरीओ च संखे० मागहाणिविहरीओ च । एवमट्ट मगा ८ । एव वेठम्भियमिस्स० । आहार० इन्नें अबत्थान पक्के एक भुव मगके मिच्छ नैनेपर कुञ्ज मग नौ हौंते ।

पचेन्द्रिय विषय कम्मवपर्वात्तकोमें अवस्थान पदवाले जीव नियमसे हैं । उक्त सख्यातभाग ज्ञानि भवनीय है । अतः वहां कुछ मग तीन होते हैं । इसीप्रकार अनु- विरुसे छेकर सर्वायसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय सभी विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय कर्म्म्य पर्वात्त, सभी पांचों रक्तवकाय, प्रसकम्म्यपर्वात्त, औदारिकमिथकावयोगी, कर्मणकवयोगी, मत्पञ्चानी भ्रुताञ्चानी, विभगञ्चानी परिहारविद्युदिसंघट, सक्तासपथ, वेदकसम्बगृहट्टि, मिच्छादट्टि असङ्गी और अनाहारक जीवोंके रहना चाहिये ।

विशेषार्थ—इन कपुञ्ज मार्गणाओमें सख्यातभागज्ञानि और अवस्थान ये दो ही पद पावे जाते हैं । इनमेंसे जयस्थान पद भुव है और सख्यातभागज्ञानि अभुव पद है । अतः सख्यातभागज्ञानिके एक जीव और नाम्य जीवोंकी अपेक्षा दो मग और भुवपदकी अपेक्षा एक मग ये तीन मग उक्त मार्गवस्थानोंमें पाये जाते हैं ।

§ ५०६ सुकम्म्यपर्वात्तक मनुष्योंमें अवस्थित और सख्यातभागज्ञानि विमत्तिकी अपेक्षा आठ मग कहना चाहिये । ये इसप्रकार हैं—कराचित् अवस्थितविमत्तिस्वानवाद्य एक जीव है । कराचित् अवस्थितविमत्तिस्वानवासे अनेक जीव हैं । कराचित् सख्यात भागज्ञानि विमत्तिस्वानवाद्या एक जीव है । कराचित् सख्यातभागज्ञानि विमत्तिस्वानवासे अनेक जीव हैं । कराचित् अवस्थितविमत्तिस्वानवाद्या एक जीव और सख्यातभागज्ञानि- विमत्तिस्वानवाद्या एक जीव है । कराचित् अवस्थितविमत्तिस्वानवाद्या एक जीव और सख्यातभागज्ञानिविमत्तिस्वानवासे अनेक जीव हैं । कराचित् अवस्थितविमत्तिस्वानवासे अनेक जीव और सख्यातभागज्ञानि विमत्तिस्वानवाद्या एक जीव है । कराचित् अवस्थित विमत्तिस्वानवासे अनेक जीव और सख्यातभागज्ञानिविमत्तिस्वानवासे अनेक जीव हैं ।

आहारमिस्स-अवट्टिदस्स वे भगा २ । एवमकसाई०-सुद्धम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठीणमवट्टिदस्स एक-बहुजीवे अवलंविद्य वेभंगा वत्तव्वा ।

§ ५०७ अवगद० सन्वपदा भयणिज्जा । भंगा छब्बीस २६ । आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज० अवट्टा० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । भंगा णव ६ । एव संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०दिट्ठीणं वत्तव्व । अभव० अवट्टिद० णियमा अत्थि ।

इसप्रकार आठ भग होते हैं । इसीप्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके उक्त दो पदोंकी अपेक्षा आठ भग कहना चाहिये । आहारक काययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थितपदके दो भग होते हैं । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थितपदके एक जीव और बहुत जीवोंका आश्रय लेकर दो भग कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त लब्धपर्याप्तक आदि सान्तर मार्गणाएँ हैं । इनमें कभी जीव नहीं भी पाये जाते हैं । कभी एक और कभी अनेक जीव पाये जाते हैं । अतः लब्धपर्याप्तक मनुष्य और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी इन दो मार्गणाओंमें अवस्थित और संख्यात भागहानि ये दो पद पाये जानेके कारण एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक और द्विसंयोगी कुल आठ भंग हो जाते हैं । तथा शेष सान्तर मार्गणाओंमें एक अवस्थान पद ही पाया जाता है इसलिए वहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक भंग दो ही होते हैं ।

§ ५०७ अपगतवेदियोंमें सभी पद भजनीय हैं । यहाँ कुल भग छब्बीस होते हैं ।

विशेषार्थ—अपगतवेदियोंके सख्यातभागहानि, सख्यातगुणहानि और अवस्थित ये तीन पद पाये जाते हैं जो कि भजनीय हैं । तीन पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा प्रत्येक, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी कुल भग छब्बीस होते हैं । अतः अपगतवेदियोंके छब्बीस भग कहे । तीन पदोंके छब्बीस भंग कैसे होते हैं इसकी प्रक्रिया ऊपर लिख आये हैं ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्ययज्ञानी जीवोंमें अवस्थित पद वाले जीव नियमसे हैं । शेष सख्यातभागहानि और सख्यातगुणहानि इन दो पदवाले जीव भजनीय हैं । यहाँ भंग नौ होते हैं । इसीप्रकार सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापना सयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त मार्गणाओंमें तीन पद बतलाये हैं उनमें से अवस्थित पद ध्रुव और शेष दो भजनीय हैं । दो भजनीय पदोंके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा एक संयोगी और द्विसंयोगी कुल आठ भग होते हैं । तथा उनमें एक ध्रुव भगके मिला देने पर कुल भग नौ होते हैं । उपर्युक्त मार्गणास्थानोंमें यही नौ भग कहे हैं ।

अभव्योंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव नियमसे हैं ।

एवं आनाडीवेदि मंगविचपाणुगमो समचो ।

‡ ५०८ मागामागानुगमेण हुविहो विदेसो ओपेण आदेसेण य । तत्त्व ओपेण अबद्धिदविहसिया सम्बन्धीवाण केमद्विओ मागो ? अणतमागा । सेसपदा अचतिस मागो । एव तिरिक्ख-कायजोगि-ओराठि०-अणुस०-वचारिक०-असज्ज०-अचक्खु० विष्णिलेस्सा मवसिद्धि०-आहारि० ।

‡ ५०९ आदेसेण पेरइएसु अबद्धि० सम्बन्धीवा० के० ? असत्तेजा मागा । सेसप० असत्ते० मागो । एव सम्बपुटपी-पंथि०-तिरिक्खतिय-मणुस-देव-अणुपादि आब वपगेवज्ज०-पंथि०-(पंथि०)पज्ज०-तत्त-तसपज्ज०-पचमण०-पंचवधि०-वेठधिय०-इरिय पुरिस०-वक्खु०-तेठ०-पम्म०-सुद्ध०-सण्णि सि वचम्मं । पंथि० तिरि० अपज्ज० अबद्धि० सम्बन्धी० के० ? असत्तेज्जा मामा । सत्तेज्जमागहाणि० असत्ते० मागो । एव मणुसअपञ्चचार्यं । अणुदिसादि श्राव अवराइद सि पंथिदियतिरिक्खअपञ्चचमगा । एव सम्बविसिंदिय-पंथि०-पञ्च० (अपज्ज)-वचारिकय-ससजपञ्च०-वेठधियमिस्स०

इसप्रकार नाना बीबीकी अपेक्षा मंगविचपाणुगम समाप्त हुआ ।

‡ ५०८ मामामागानुगमकी अपेक्षा निर्देरा दो प्रकारका है—ओपनिर्देरा और आदेश-निर्देरा । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा अव्यक्त विमच्छिस्वान्वाले जीव सर्व बीबीके कितनेमें माग हैं ? असत् बहुमाग हैं । तथा श्रेय सक्रमातभागवृद्धि जावि स्वान्वाले जीव अनन्तमें माग हैं । इसीप्रकार तिर्यंच, काचभोगी, औदारिककाचभोगी, मणुसकबेरी कोपादि चारों कचापवाले, असवत, अचणुवर्तनी, कृष्णादि तीन केषवावाले, मम्म और आहारक बीबीका मागामाग करना चाहिये ।

‡ ५१२ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अव्यक्तविमच्छिस्वान्वाले जीव सर्व नारकी बीबीके कितने माग हैं ? असक्रमात बहुमाग हैं । श्रेय पदवासे असक्रमात एक माग हैं । इसीप्रकार सभी पृथिवियोंके नारकी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्वत और योनियती के तीव्र प्रकारके तिर्यंच, सामान्य मणुष्य, सामान्य देव मवन्वासिधोसे केकर नौ प्रेयेयक तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्वत, अस, अस पर्वत, पांचों मनोबोगी, पांचों वचमयोगी वेधियिककाययोगी कबेरी, पुदवनेरी, चणुदसेनी पीतकेशवावाले, पद्यकेशवावाले, कुड-केशवावाले और सभी बीबीका मागमाग करना चाहिये ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच कृष्णपर्वतकीमें अव्यक्त विमच्छिस्वान्वाले जीव सभी पंचेन्द्रिय कृष्णपर्वतकीके कितने माग हैं ? असक्रमात बहुमाग हैं । तथा सक्रमातभाग वृद्धिवाले जीव असक्रमात एक माग हैं । इसीप्रकार कृष्णपर्वतक मणुष्योंका मागामाग करना चाहिये । अणुदिससे केकर अपराजित तकके देवोंका मागमाग पंचेन्द्रिय तिर्यंच कृष्ण पर्वतकीके समाप्त है । इसीप्रकार सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कृष्णपर्वतक, पृथिवी-

विहग०-सजदासंजद०-वेदय० दिष्टीणं वत्तव्व ।

§ ५१०. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अवट्टिद० सव्वजी० के० सखेज्जा भागा । सेसप० सखे० भागो । एव मणपज्ज०-संजद०-सामाइयच्छेदो० वत्तव्वं । सव्वट्टे अवट्टि० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । संखेज्जभागहाणि० सखे० भागो । एव परिहार० ।

§ ५११. एइदिएसु अवट्टिद० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । संखेज्जभाग-हाणीए अणंतिमभागो । एव बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमे-इंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्ववणप्फदि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारीणं । आहार० आहारमिस्स० भागाभागं णत्थि । एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छाइट्ठि ति वत्तव्व । आभिणि०-सुद०-ओहि० अवट्टि० सव्वजीवा० के० ? असंखेज्जा भागा । कायिक आदि चार स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभगज्ञानी, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

§ ५१०. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव अपनी अपनी सर्व जीवराशिके कितने भाग हैं । सख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष पदवाले संख्यात एक भाग हैं । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयत जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

सर्वार्थसिद्धिमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव सभी सर्वार्थसिद्धिके देवोंके कितने भाग हैं ? सख्यात बहुभाग हैं । तथा सख्यातभागहानि वाले जीव संख्यात एक भाग हैं । इसीप्रकार परिहारविशुद्धिसंयतोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

§ ५११ एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सभी एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । तथा सख्यातभागहानिवाले जीव अनन्त एक भाग हैं । इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, औदारिक-मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असञ्जी और अनाहारक जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भागाभाग नहीं है, क्योंकि इनके एक अवस्थितपद ही पाया जाता है । इसीप्रकार अकषाथी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथा-द्वयात संयत, अभव्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव अपनी अपनी सर्व जीव राशिके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष

सेसप० असखे०भामो । एवमोद्दिदस०-सम्मादि०-ज्जइयसम्माइ० ।

एवं भागामागापुममो समचो ।

५५१२ परिभाषासंग्रहमेव दुविहो णिदेसो ओपेण आदेसेण य । तत्थ ओपेण सखेज्जमामवद्दी हाणिविहचिया केचिया ? असखेजा । संखे० गुणहाणि० सखेजा । अबद्धिया केचिया ? अर्पता । एव अयत्तोणि० बोरालि०-चचारिक०-अपकसु०-मव सिद्धि०-आहारीण वचम्ब ।

५५१३ आदेसेण पेरइपसु सखेज्जमामवद्दीहाणी-अवहाणाणि केचिया ? असखेजा । एव सम्बणिरय -पण्णिदिपतिरिक्खतिव-देव-मवनादि जाव उपरिमगेवज्ज वेठब्बिय०-इत्थिय-तेठ-यम्म० वचम्ब । तिरिक्ख० ओघमंगो । णवरि संखेज्जगुण हाणी वत्थि । एव णवुस०-असवद०-तिण्णिलेस्साण । पण्णि० तिरि० अपज्ज० संखेज्ज मागहाणि-अवट्ठि० केचि० ? असखेजा । एव मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव अबराइद सम्बणिगाल्हिय-पण्णि०-अपज्ज०-चचारिकाय० उसअपज्ज० वेठब्बियमिस्स०-स्थानवाळे बीव असक्याव एक भाग है । इसीप्रकार अवधिदत्तनी, सम्यग्दृष्टि और क्षामिक सम्यग्दृष्टि जोबोके भागभाग कहना चाहिये ।

इसप्रकार मत्तमाग्यमुग्गम समाप्त हुआ ।

५५१४ परिभाषासंग्रहमेव ओपेण निर्देश दो प्रकारका होता है—ओपनिर्देश और आवेष्टनिर्देश । इनमेंसे ओपकी ओपेष्ठा संख्यावभागद्विबिमच्छिस्थानवाळे बीव और संख्याव भागद्वानि बिमच्छिस्थानवाळे बीव प्रत्येक कितने हैं ? असक्याव हैं । तथा संख्याव गुणद्वानिबिमच्छिस्थानवाळे बीव संख्याव हैं । अवस्थित बिमच्छिस्थानवाळे बीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार कायबोगी, औदारिकअयबोगी, ओमादि चारों कथाववाळे, अणु दर्सनी, मच्च और आहारक जीबोंका द्रव्य प्रमाण कहना चाहिये ।

५५१५ आदेसकी ओपेष्ठा नारकियोमें संख्यावभागद्वि, संख्यावभागद्वानि और अवस्थित बिमच्छिस्थानवाळे बीव प्रत्येक कितने हैं ? असक्याव हैं । इसीप्रकार सभी न्यरकी, पण्णिद्वय पण्णिद्वय पणोत्त और बोनिमती वे तीन प्रकारके तिर्बच्च, सामान्य देव, मच्च-वाधियोसे छेकर अरिम मैवेवक तकके देव, वैदिकियककपयोगी, बीवेदी, पीतकेश्वावाळे और पद्यसेदवावाळे जीबोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये । तिर्बच्चोंका द्रव्यप्रमाण ओपके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यावगुणद्वानि नहीं होती है । इसीप्रकार नपुंसकवेषी, अक्षय और कृष्ण आवि तीन केश्वावाळे जीबोंका द्रव्य प्रमाण कहना चाहिये,

पण्णिद्वयतिर्बच्च अक्षयपर्याप्तकोमें संख्यावभागद्वानि और अवस्थित बिमच्छिस्थानवाळे बीव प्रत्येक कितने हैं ? असक्याव हैं । इसीप्रकार अक्षयपर्याप्त मणुज्ज, अनुदिदसे छेकर अपटावित तकके देव, सभी विकट्टेन्द्रिय, पण्णिद्वय अक्षयपर्याप्त, पृथिवीअधिक

विहग०-सजदासंजद०-वेदय० दिष्टीण वत्तव्व ।

§ ५१०. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु अवट्टिद० सव्वजी० के० संखेज्जा भागा । सेसप० सखे० भागो । एव मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो० वत्तव्वं । सव्वट्टे अवाट्टि० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । संखेज्जभागहाणि० सखे० भागो । एवं परिहार० ।

§ ५११. एइदिएसु अवट्टिद० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । संखेज्जभाग-हाणीए अणंतिमभागो । एव वादरेइंदिय-वादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमे-इंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्ववणप्फदि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-भिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारीणं । आहार० आहारमिस्स० भागाभागं णत्थि । एवमकसाय०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभव०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छाइट्टि ति वत्तव्व । आभिणि०-सुद०-ओहि० अवट्टि० सव्वजीवा० के० ? अंखेज्जा भागा ।

कायिक आदि चार स्थावरकाय, त्रस लब्धपर्याप्तक, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभगज्ञानी, संयतासयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

§ ५१०. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोगे अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव अपनी अपनी सर्व जीवराशिके कितने भाग हैं । सख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष पदवाले संख्यात एक भाग हैं । इसीप्रकार मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत और छेदोपस्थापना-सयत जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

सर्वार्थसिद्धिमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव सभी सर्वार्थसिद्धिके देवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । तथा संख्यातभागहानि वाले जीव संख्यात एक भाग हैं । इसीप्रकार परिहारविशुद्धिसयतोंका भागाभाग कहना चाहिये ।

§ ५११. एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव सभी एकेन्द्रिय जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । तथा संख्यातभागहानिवाले जीव अनन्त एक भाग हैं । इसीप्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, औदारिक-मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असज्जी और अनाहारक जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भागाभाग नहीं है, क्योंकि इनके एक अवस्थितपद ही पाया जाता है । इसीप्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसयत, यथा-ख्यात सयत, अभन्य, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भागाभाग कहना चाहिये ।

मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अधिज्ञानी जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव अपनी अपनी सर्व जीव राशिके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष

सेसप० असस्त्रे०भागो । एवमोद्दिदस०-सम्मादि०-स्वल्पसम्माह० ।

एवं मामामागाजुगमो समचो ।

५५१२ परिभाषाजुगमेण दुविहो प्तिरेसो ओषेण आदेसेण य । तस्य ओषेण सस्त्रेजमागवर्द्धी-हाभिविहचिया केचिया ? असस्त्रेजा । सस्त्रे० गुणहापि० सस्त्रेजा । अवद्विया केचिया ? अर्बता । एवं कायजोगि० मोरालि०-पचारिक०-अचकस्तु०-भव सिद्धि०-आहारीण वचस्य ।

५५१३ आदेसेण बेरइयसु सस्त्रेजमायपर्वदीहावी-अवहापापि केचिया ? असस्त्रेजा । एव सस्त्रेविरय०-पार्चिदियुतिरिक्खतिय-देव-भवपादि आव उवरिमगेवज्ज०-वेठभिय०-इत्थि०-तेठ०-पम्म० वचस्य । तिरिक्खव० ओषमंगो । प्परि संस्त्रेजगुण हाणी वत्थि । एवं प्पुस०-असब्द०-तिप्पिळेस्साय । पंथि० तिरि० अपज्ज० संस्त्रेज मागहाणि-अवादि० केचि० ? असस्त्रेजा । एव मपुसअपज्ज० अपुदिसादि आव अवराराइद मम्बविगाल्लिदिय-पंथि०-अपज्ज०-पचारिकय० तसअपज्ज० वेठभियमिस्स०-स्थामवाळे जीव असम्पाव एक भाग है । इसीप्रकार अवधिहसंनी, सम्बन्धित और क्षयिक सम्बन्धित जीवोंके भाग्यभाग कहना चाहिये ।

इसप्रकार मागाजुगम समाप्त हुआ ।

५५१२ परिभाषाजुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है—ओपनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा संख्यावत्भागवृद्धिविमच्छिन्नानवाळे जीव और संख्यावत् भागवृद्धि विमच्छिन्नानवाळे जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यावत् हैं । तथा संख्यावत्-गुणवृद्धिविमच्छिन्नानवाळे जीव संख्यावत् हैं । अवस्थित विमच्छिन्नानवाळे जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसीप्रकार कायबोगी, औद्धारिककाययोगी, ओपादि चारों कथायवाळे, अचकस्तु हसंनी, मम्ब और आहारक जीवोंका द्रव्य प्रमाण कहना चाहिये ।

५५१३ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यावत्भागवृद्धि, संख्यावत्भागवृद्धि और अवस्थित विमच्छिन्नानवाळे जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यावत् हैं । इसीप्रकार सभी नारकी, पंचेन्द्रिय, पञ्चगुण पर्याप्त और मोनिमती वे तीन प्रकारके तिर्यंच, सामान्य देव, भवन्-वासिधोसे छेकर उपरिम मेवेवक तकके देव, वैश्विककाययोगी, श्रीवैही, पीतलेशवावाळे और पद्मलेशवावाळे जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये । तिर्यंचोंका द्रव्यप्रमाण ओपके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यावत्गुणवृद्धि नहीं होती है । इसीप्रकार नृपुंसकवैही, असत्त और कृष्ण आदि तीन लेशवावाळे जीवोंका द्रव्य प्रमाण कहना चाहिये

पंचेन्द्रियतिर्यंच द्रव्यपर्याप्तकेमें संख्यावत्भागवृद्धि और अवस्थित विमच्छिन्नानवाळे जीव प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यावत् हैं । इसीप्रकार द्रव्यपर्याप्त मनुष्य, अगुदिससे छेकर अपरावृत्त तकके देव, सभी विकलेश्वर, पंचेन्द्रिय द्रव्यपर्याप्त, पृथिवीकाविक

विहंग०-संजदासंजद०-वेदय० वचच्वं ।

§ ५१४. मणुस्सेसु संखेजभागवद्द्वी-संखे०गुणहाणी० केत्ति० ? संखेजा । सेस-पदा० असंखे० । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सन्वपदा मंखेजा । मव्वट्ठे दो पदा केत्ति० ? संखेजा । एवं परिहार० । एइंदिय० अवट्ठि० केत्ति० ? अणंता । संखेजभागहाणि० के० ? असंखेजा । एवं वणप्फदि०-णिगोद०-ओरालियमिस्म०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । पांचि०-पांचि०पज्ज०-तम०-तसपज्ज०-ओघमंगो । णवरि, अवट्ठि० असंखेजा । एवं पंचमण०-पंचवचि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । आहार०-आहारमिस्स० अवाट्ठि० के० ? संखेज्जा । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खादे त्ति । अवगद० सव्वपदा० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं मणपज्ज०-संजद०-आदि चार स्थावरकाय, त्रसलव्व्यपर्याप्त, वैकथिकमिश्रकाययोगी, विभगज्ञानी, संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

§ ५१४. मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा शेष स्थानवाले जीव असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्य नियमोंमें सभी स्थानवाले जीव संख्यात हैं । सर्वार्थसिद्धिमें अवस्थित और संख्यातभाग हानिवाले जीव प्रत्येक कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार परिहार विशुद्धिसंयत जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

एकेन्द्रियोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । तथा संख्यातभागहानिवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसीप्रकार वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्स्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंका द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

पचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंका अवस्थित आदि विभक्ति-स्थानोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण ओघके समान है । इतनी विशेषता है इन मार्गणास्थानोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव असंख्यात हैं । इसीप्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचन-योगी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंका उक्त स्थानोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार अकपायी, सूक्ष्मसापरायिकसंयत और यथा-ख्यातसंयत जीवोंका अवस्थित विभक्तिस्थानकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

अपगतवेदियोंमें संभव सभी पद वाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसीप्रकार मन पर्यथज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंका संभव सभी पदोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कहना चाहिये ।

सामाह्वयेदो० इदि । आभिषि०सुद०-ओहि० पार्श्वदियमयो । णवरि बद्धी णत्वि । एवमोहिदंस० सम्मादिद्विषि । अमव अबद्धि० के० ? अर्पता । खइय० सखेज्ज-मागहाभि-सखेज्जगुणहाणि० केत्ति० ? सखेज्जा । अवाट्टि० क्वपि० ? असखेज्जा । उवसम०-सासव०-सम्मामि० अवट्टि० के० ? असखेज्जा ।

एवं परिमाणाणुगमो समथो ।

§ ५१५ सेनाणुगमेण बुद्धिहो गिरेसो ओपेण आदेसेण य । तस्य ओपेण अबद्धिबिहारीया क्वद्धि० खेपे ? सम्बलोगे । सेसपदा० के० खेच फोसिद ? लोमस असंखे० मायो । एव तिरिक्ख-कायजोगि ओरालि०-णवुम०-वचारि-(कसाय)-असवद० अचकसु०-भवसि०-तिब्बिले०-आहारि० चि वचम्ब । णवरि पदगपविसेसो पापम्भो ।

§ ५१६ आदेसेण पेरइपसु सम्बपदा० के० खेच फोसिद ? लोम० असंखे० ज्जदिमागो । एवं सम्बजिरय पश्चिदिपतिरिक्खतिप पधि०तिरि०अपज्ज०-सम्ब

मतिज्ञानी, सुदृष्टानी और अबधिज्ञानी बीबोंके समथ सभी पदोंकी अपेक्षा द्रव्य प्रमाण पश्चिदियोंके समथ है । यहाँ पश्चिदियोंसे इतनी बिरोधता है कि इनमें संख्यात-मागवृद्धि नहीं पाई जाती है । इसीप्रकार अबधिबर्तनी और सम्बन्धि बीबोंके समथ पदोंकी अपेक्षा द्रव्यप्रमाण कदाचि चाहिये ।

अमर्थ्योंमें अबस्थित पदवाले बीब कितने हैं ? अनन्त हैं । आधिकसम्बन्धितियोंमें संख्यातमागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि पदवाले बीब प्रत्येक कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अबस्थित पदवाले बीब कितने हैं असंख्यात हैं । उपसमसम्बन्धिति सासादनसम्बन्धिति और सम्बन्धिध्यावृद्धि बीबोंमें अबस्थित चिन्तित्वाभाववाले बीब प्रत्येक कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

इसप्रकार परिमाणाणुगम समथ बुद्ध्या ।

§ ५१७ सेनाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेश-निर्देश । इनमेंसे ओषकी अपेक्षा अबस्थित चिन्तित्वाभाववाले बीब कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्वक्षेत्रमें रहते हैं । शेष संख्यातमागवृद्धि आदि पदवाले बीबोंने वर्तमानमें कितने क्षेत्रका स्वयं किया है ? ओषके असंख्यातवर्षे भाग क्षेत्रका स्वयं किया है । इसीप्रकार सामान्यविर्यच, कवयोमी, औदारिककवयोमी, नपुंसकवैरी, श्लेषादि चारों कथावाले असंख, अबधिवर्तनी मध्यः कृष्णाभि तीम क्षेत्रवाले और आहारक बीबोंके कदाचि चाहिये । इतनी बिरोधता है कि भूत मार्गवास्तवोंमें सर्वत्र संख्यातमागवृद्धि आदि सभी पद समथ नहीं हैं इसलिये जहाँ जो पद हो वह आम ज्ञेय चाहिये ।

§ ५१९ आदेशसे नारकियोंमें संख्यातमागवृद्धि आदि समथ सभी पदोंके मात बुध बीबोंने वर्तमानमें कितने क्षेत्रका स्वयं किया है । ओषके असंख्यातवर्षेभाग क्षेत्रका स्वयं किया

मणुस-देव०-भवणादि जाव सन्वट्ट०-सन्वविगलिंदिय-सन्वपांचिंदिय-मन्वतस०-पंच-
मण०-पंचवाचि०-वेउन्विय० वेउन्वियमिस्स-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-विहग०-आभिणि०-
सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-सजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सजदासजद०-चक्कु०
ओहिदसण०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सण्णि ति ।

१५१७ इंदियाणुवादेण एइदिय-वादर०-वादरपज्जत्तापज्जत्त-सुहुम०-सुहुमेइंदिय-
पज्जत्तापज्जत्त० अवट्ठि० के० खेत्ते ? मन्वलोमे । संखेज्जभागहाणि० के० खेत्ते ?
लोग० अरांखे० भागे । एव चत्तारिकाय-वादरअपज्ज०-सुहुम० पज्जत्तापज्जत्त-ओरा-
लियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-मिच्छादि०-सण्णि०-अणाहारि ति
वत्तव्वं । वादरपुट्ठवि० पज्ज०-वादर-आउ० पज्ज०-वादरतेउ०पज्ज०-वादरवाउपज्ज०
पांचिंदिय अपज्जत्तभंगो । णवरि वादरवाउ० पज्ज० अवट्ठि० लोगस्स सखे०-
भागे । सन्ववणप्फदिकाइयाणमेइंदियभंगो । आहार०-आहारमिस्स० अवट्ठि० के०
है । इसीप्रकार सभी नारकी, पचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक, पचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्त, सर्व
मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय,
सभी पचेन्द्रिय, सर्व व्रत, पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी,
वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, विभज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी,
अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धि-
सयत, संयतासयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्या-
वाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सञ्ज्ञी जीवोंका क्षेत्र संभव पदोंकी
अपेक्षा लोकका असंख्यातवा भाग है ।

१५१७. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त,
वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय
अपर्याप्त अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ।
संख्यात भागहानिवाले उक्त जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भागक्षेत्रमें
रहते हैं । इसीप्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर कायिक, तथा इन चारोंके वादर-
लब्धपर्याप्त और सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्य-
ज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, सञ्ज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

वादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, वादर जलकायिक पर्याप्त, वादर अग्निकायिक पर्याप्त,
वादरवायुकायिक पर्याप्त जीवोंका अपनेमें सम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र पचेन्द्रिय लब्ध-
पर्याप्तकोके क्षेत्रके समान होता है । इतनी विशेषता है कि वादर वायुकायिक पर्याप्त
अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । समस्त वन-
स्पतिकायिक जीवोंका सभब पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र एकेन्द्रियोंके क्षेत्रके समान है ।

लेचे० । लोम० असंखे० मागे । एवमकसाय० सुहृम० अहाकलाद० उवसम० सासण०
सम्मामिन्द्रादिदि चि । अमव० अवट्टि० के० खेचे ? सम्बलोए ।

एव खेचापुगमो समचो ।

१५१८ पोसजापुगमेण दुविहो णिइसो ओपेय आदेसेय य । तस्य ओपेय
संखेजमागबह्विदिदिदिदिदि केवडिय खेच फोसिदं ? लोमस्स असंखे० मागो अट्ट
चोइसमागा वा देखणा । संखेजमागहाणि० के० खेच फोसिदं ? लोमस्स असंखे०
मागो, अट्ट चोइस० देखणा, सम्बलोगो वा । अवट्टि० के० खेचं फोसिदं ? सम्ब
लोगो । संखेजगुणहाणि० खेचमगो । एव कपपयोगि०-वचारिक०-अववस्तु०
मवसि० आहारि चि ।

१५१९ आदेसेय येरइएसु संखेजमागबह्वि० खेचमगो । संखेजमागहाणि
अवट्टिद के० खेच फोसिदं ? लोम० असंखे० मागो अ चोइसमागा वा देखणा ।

आहारककपयोगी और आहारकमिक्काययोगी अवस्थित विमत्तिस्वानवाले जीव
चित्तने क्षेत्रमें रहते हैं । जोके असंख्यातवें माग क्षेत्रमें रहते हैं । इसीप्रकार अकपायी
सूक्ष्मसांप्रदायिक संघट, पचास्यातसंघत, लशमसम्पादधि, सासदनसम्पन्नधि और
सम्पगुमिच्छादधि जीवोंके कल्पना चाहिये । अमव्य अवस्थितविमत्तिस्वानवाले जीव चित्तने
क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व जोकमें रहते हैं ।

इसप्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

१५२० स्पर्धनानुगमकी अपेक्षा निर्वेद्य हो प्रकरका है—जोनिर्वेद्य और आवेश
निर्वेद्य । उनमेंसे ओपकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि विमत्तिस्वानवाले जीवोंने चित्तने क्षेत्रका
स्पर्ध किया है ? जोके असंख्यातवें माग क्षेत्रका स्पर्ध किया है । और अतीत कालकी
अपेक्षा प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्ध किया है ।
संख्यातभागवृद्धि विमत्तिस्वानवाले जीवोंने चित्तने क्षेत्रका स्पर्ध किया है ? जोके असं-
ख्यातवें माग क्षेत्रका स्पर्ध किया है । और अतीत कालकी अपेक्षा प्रसनालीके चौदह
भागोंमेंसे कुछ कम आठ मागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्ध किया है वा सर्वजोक क्षेत्रका स्पर्ध
किया है । अवस्थितविमत्तिस्वानवाले जीवोंने चित्तने क्षेत्रका स्पर्ध किया है ? सर्वजोक
क्षेत्रका स्पर्ध किया है । संख्यातगुणवृद्धि विमत्तिस्वानवाले जीवोंका स्पर्ध क्षेत्रके समान
है । इसीप्रकार कपयोगी, ओपादि चारों कल्पनावाले, अवस्थितविमत्तिस्वानवाले और आहारक
जीवोंके कल्पना चाहिये ।

१५२१ आवेशकी अपेक्षा नाराद्विषोंमें संख्यातभाग वृद्धि विमत्तिस्वानवाले जीवोंका
स्पर्ध क्षेत्रके समान है । संख्यातभागवृद्धि और अवस्थित विमत्तिस्वानवाले जीवोंने चित्तने
क्षेत्रका स्पर्ध किया है ? जोके असंख्यातवें मागक्षेत्रका स्पर्ध किया है और अतीत

पढमाए खेत्तमंगो । विदियादि जाव सत्तमि ति संखेज्जभागवद्दही० खेत्तमंगो । संखे० भागहाणि-अवट्ठि० के० खेत्तं फोसिद ? लोग० असंखे० भागो एक-चे-तिण्णि-चत्तारि-पच्च-छ चोद्दसभागा देसूणा ।

§ ५२०. तिरिक्खेसु संखेज्जभागहाणि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । सेसप० खेत्तमंगो । ओरालि०-णवुंस०-तिण्णिले० तिरिक्खमंगो । पंचिदियतिरिक्खितियम्मि-संखेज्जभागवद्दही० खेत्तमंगो । संखेज्जभागहाणि-अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा । पंचि० तिरि० अपज्ज० संखेज्जभागहाणि अवट्ठि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, सव्वलोगो वा । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगल्लिदिय-पंचिदिय अपज्ज० - वादरपुट्ठवि०पज्ज०-बादरआउ० पज्ज०-वादरतेउ०पज्ज०-वादरवाउपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं । णवरि बादरवाउपज्ज०

कालकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें संख्यातभागवृद्धि विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा उक्त द्वितीयादि पृथिवियोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पाच और कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ ५२०. तिर्यंचोमें संख्यातभागहानि विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है । औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी और कृष्णादि तीन लेख्यावाले जीवोंका स्पर्श तिर्यंचोके स्पर्शके समान है । पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यंचोमें संख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । संख्यात-भागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तोंमें संख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार लब्धपर्याप्त मनुष्य, समी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायु कायिकपर्याप्त और त्रसलब्धपर्याप्त जीवोंके संख्यातभागहानि और अवस्थित पदकी अपेक्षा स्पर्श कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

अबट्टि० लो० संखे० मागो सम्बलोमो वा । मजुसतिप० संखेन्वमामहाणि-अबट्टि०
के० खे० फ़ो० । लो० असखे० मामो सम्बलोमो वा । सेसप० के० खे० फ़ो० ।
लो० असखे० मागो ।

१२१ देवेसु संखेन्वमागवह्दी० के० खे० फ़ो० । लो० असखे० मागो
अह चोइस० देह्या । संखेन्वमागहाणी-अबट्टि० के० खे० फ़ो० । लो० असखे०
मागो, अह णव चोइस० देह्या । एवं सोहम्मीसाबेसु । मवज०-वाण०-ओइसि०
संखेन्वमागवह्दी देवोप । अबरि अहुह-अह चोइस० । संखेन्वमागहाणि-अबट्टि०
अहुह अह णव चोइसमाग वा देह्या । सणक्कमारार्दिं माव सहस्सारे ति सम्ब-
पदा० अह चोइस० देह्या । आपदपाणदवारअच्युद० सम्बपदा० अह चोइसमाग
वा देह्या । उवरि खेचमगो ।

सामान्य, पर्वत और स्त्रीवैद्य इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें संस्नातभागहानि और
अवस्थित विमच्छिन्नावकाळे बीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंस्नातवें
भाग और पर्वत लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष विमच्छिन्नावकाळे उक्त तीन
प्रकारके मनुष्योंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंस्नातवेंभाग क्षेत्रका
स्पर्श किया है ।

१२१ देवोंमें संस्नातभागहृदिवाळे बीबोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके
असंस्नातवेंभाग और ब्रह्मनाडीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम जाठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया
है । संस्नातभागहानि और अवस्थित विमच्छिन्नावकाळे देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया
है ? लोकके असंस्नातवें भाग और ब्रह्मनाडीके चौरह भागोंमें से कुछ कम जाठ भाग
और नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसीप्रकार चौथमें और पेशान सर्गके देवोंमें उक्त
पर्वती अपेक्षा स्पर्श कइना चाहिये । मवनवासी, ब्यन्दर और ज्योतिषी देवोंमें संस्नात
भागहृदि पर्वती अपेक्षा स्पर्श सामान्य देवोंके संस्नातभागहृदिपर्वती अपेक्षा कइ गये
स्पर्शके समान है । इतनी विज्ञेयता है कि यहाँ पर ब्रह्मनाडीके चौरह भागोंमें से कुछ
कम साठे तीन भाग और जाठ भाग स्पर्श कइना चाहिये । संस्नातभागहानि और अव-
स्थितविमच्छिन्नावकाळे उक्त मवनवासी आवि देवोंने ब्रह्मनाडीके चौरह भागोंमेंसे कुछ
कम साठे तीन जाठ और नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । सक्कमारसे-खेर सहस्सर
वकळे देवोंमें यहाँ संभव सभी पर्वकाळे बीबोंने ब्रह्मनाडीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम
जाठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । ज्ञान्य प्राणव, आरज और अच्युत सर्गके देवोंमें यहाँ
संभव सभी पर्वकाळे बीबोंने ब्रह्मनाडीके चौरह भागोंमेंसे कुछ कम उह भाग क्षेत्रका स्पर्श
किया है । इसके ऊपर बीमवेयक आविमें स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ ५२२. इंदियाणुवादेण एइंदिय० संखेज्जभागहाणि-अवट्टि० तिरिक्खोघं । एवं वादर-सुहुम - पज्जत्तापज्जत्त - चत्तारिकाय - वादरअपज्ज० - सुहुमपज्जत्तापज्जत्त - सव्व-वणप्फदि० - ओरालियमिस्स० - कम्मइय० - असण्णि० - अणाहारि त्ति वत्तव्वं । [पांचिं०] पांचिदियपज्ज० - तस-तसपज्ज० संखेज्जभागहाणि-अवट्टि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट चोदस० देसुणा, सव्वलोगो वा । सेसप० ओघभंगो । एवं पंचमण० - पंचवचि० - पुरिस० - चक्खु० - सण्णि त्ति । वेउच्चिय० संखेज्जभागवट्टी० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ट चो० देसुणा । संखेज्जभागहाणि-अवट्टि० के० खेत्त फोसिदं ? लोग० असंखे० भागो, अट्ट-तेरह-चोदसभागा देसुणा । वेउच्चिय-मिस्स० - आहारमिस्स० - अकसा० - मणपज्ज० - संजद० - सामाइयत्तेदो० - परिहार० सुहुम-सांपराय० - जहाक्खाद० - अभव० खेत्तभंगो । इत्थि० पांचिदियभंगो । णवरि संखेज्ज-

§ ५२२. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यचोंमें उक्त पदोंके आश्रयसे कहे गये स्पर्शके समान है । इसीप्रकार वादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवी कायिक आदि चार स्थावरकाय, वादर पृथिवीकायिक आदि चारोंके अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदि चारोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, सभी घनस्पतिकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, कर्मणकाय-योगी, असञ्जी और अनाहारक जीवोंके स्पर्श कहना चाहिये । पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त जीवोंमें सख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । लोकके असख्यातवे भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भाग और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श ओषके समान है । इसीप्रकार पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके स्पर्श कहना चाहिये ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें संख्यातभागवृद्धिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवेभाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । सख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिस्थानवाले वैक्रियिककाययोगी जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, मन पर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहार विशुद्धिसयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथा-ख्यातसंयत और अभव्य जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

स्त्रीवेदमें स्पर्श पचेन्द्रियोंके स्पर्शके समान है । इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदी

गुणहाणी णरिष ।

१५२३ मदि-सुदअण्णाण० सस्वेज्जमागहाणि-अवट्ठि० ओषं । बिहंग० संस्वेज्ज मागहाणि-अवट्ठि० के० स्वेत्त फो० । सोग० असस्वे० मागो, अट्ट चोदसं० देसणा, सम्बसोगो वा । भाभिणि०-सुद० ओहि० सस्वेज्जादिमागहाणिअवट्ठि० के० स्वे०फो० । सोग० असस्वे० मागो, अट्ट चोदसं० देसणा । सस्वेज्जगुणहाणी बोध । एवमोहि दसव-सम्मादिद्विचि । एव वेदय० । णवरि सस्वेज्जगुणहाणी णरिष ।

१५२४ संसदासंबद० सस्वेज्जमागहाणी० खेत्तमंगो । अवट्ठि० अ चोदसं० देसणा । असंबद० संस्वेज्जमागवट्ठी-हाणि-अवट्ठि० ओषं । तेठ० सोहम्ममंगो । पम्म० सहस्सारमंगो । सुक्क० आण्यदमंगो । णवरि संस्वेज्जगुणहाणि० ओष । सुइय० अंबट्ठि०

जीवोके सफ्यात गुणहानि नही पाई जाती है ।

१५२३ मत्पज्ञानी और मृत्पज्ञानी जीवोके सफ्यातमागहानि और अवस्थित विमच्छि-
स्वानवाले जीवोका स्पर्श बोधके समान है । विमगज्ञानी जीवोके सफ्यातमागहाणि और
अवस्थित विमच्छिस्वानवाले जीवोके कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । छोक्के असंख्यातबे
माग, प्रसनालीके चौरह भागोमेंसे कुछ कम आठ भाग और चर्बेके क्षेत्रका स्पर्श किया
है । मतिज्ञानी, भ्रुवज्ञानी और अर्धभिज्ञानी जीवोके संख्यातमागहाणि और अवस्थित
विमच्छिस्वानवाले जीवोके कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है । छोक्के असंख्यातबे माग और
प्रसनालीके चौरह भागोमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । संख्यातगुण-
हानिवाले कुछ मतिज्ञानी आदि जीवोका स्पर्श बोधके समान है । इसीप्रकार अर्धभिज्ञानी
और अर्धमृत्पज्ञानी जीवोका स्पर्श होता है । इसीप्रकार वेदकसम्पत्ति जीवोका स्पर्श होता
है । इतनी विशेषता है वेदकसम्पत्ति जीवोके सफ्यातगुणहानि नही है ।

१५२४ सपतासंबत जीवोके सफ्यातमागहानिकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है ।
तथा अवस्थित विमच्छिस्वानवाले सपतासपत जीवोके प्रसनालीके चौरह भागोमेंसे कुछ कम
एक भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंख्यातबे सफ्यातमागहाणि, संख्यातमागहानि और
अवस्थितविमच्छिस्वानवाले जीवोका स्पर्श बोधके समान है ।

पीतलेइयावाडोमें बड़ा संभव पदोकी अपेक्षा स्पर्श चौबने स्वर्गमें कहे गये स्पर्शके
समान है । पद्मलेइयावाडोमें बड़ा संभव पदोकी अपेक्षा स्पर्श सहस्सार स्वर्गमें कहे गये
स्पर्शके समान है । सुश्लेइयावाडोमें बड़ा संभव पदोकी अपेक्षा स्पर्श आमत स्वर्गमें कहे
गये स्पर्शके समान है । इतनी विशेषता है कि सुश्लेइयावाडोमें संख्यातगुणहानिपदवाले
जीवोका स्पर्श बोधके समान है ।

ध्यायिकसम्पत्ति जीवोके अवस्थित विमच्छिस्वानवाले जीवोके कितने क्षेत्रका स्पर्श

के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो, अष्ट चोदस० देखणा । सेस० खेतभंगो ।
 उवसम० सम्मामि० अवट्टि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो अष्ट-चोदस०
 देखणा । सासण० अवट्टि० के० खे० फो० ? लोग० असंखे० भागो अष्ट-बारह
 चोदस० देखणा । मिच्छादिष्टी० मादिअण्णाणिभंगो ।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो ।

§ ५२५. कालाणुगमेण दुविहो णिदेसो ओषेण जादेसेण य । तत्थ ओषेण
 संखेज्जभागवद्धी-हाणी केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ, उक्क० आव-
 लियाए असंखे० भागो । संखेज्जगुणहाणी के० कालादो ? जह० एगसमओ, उक्क०
 संखेज्जा समया । अवट्टि० के० ? सव्वद्धा । एवं पांचिंदिय०-पांचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-
 पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-पुरिस०-चत्तारिक०-चक्खु०-अचक्खु०
 सुक्क०-भवसि०-सण्णि० आहारि ति ।

किया है ? लोकके असंख्यातवैभाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ
 भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । यहां शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है ।
 उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें अवस्थितविभक्तिस्थानवाले जीवोंने कितने
 क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवै भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम
 आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अवस्थित विभक्तिस्थानवाले
 जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवै भाग और त्रसनालीके चौदह
 भागोंमेंसे कुछ कम आठ और बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । मिथ्यादृष्टियोंमें स्पर्श
 मत्स्यज्ञानियोंमें कहे गये स्पर्शके समान जानना चाहिये ।

इसप्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ ५२५ कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेश-
 निर्देश । उनमेंसे ओषसे नाना जीवोंकी अपेक्षा सख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका
 काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवै भाग
 है । संख्यातगुणहानिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल
 संख्यात समय है । अवस्थित विभक्तिस्थानका काल कितना है ? सर्वकाल है । इसीप्रकार
 पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी,
 औदारिककाययोगी, पुरुषवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ल-
 लेश्यावाले, भव्य, संक्षी और आहारक जीवोंके संख्यातभागवृद्धि आदिका जघन्य और
 उत्कृष्टकाल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—जब नाना जीव एक समय तक संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिको
 करके दूसरे समयमें अवस्थान भावको प्राप्त हो जाते हैं किन्तु दूसरे समयमें अभ्य कोई

५२६ आदेशेण पेरईएसु सुखेत्तमागवद्दी-हाणि-अवहाणायमोपमंगो । एवं
 सचपुहवि तिरिकव-पंथि-तिरिक्कलिय-देव-भवणादि वाच उवरिमोवत्त-वेत्तम्बिय-
 इत्थि-यत्तुं-असब्ब-यंचोस्सिया पि वत्तम् । पंचिदियतिरिक्कव अपत्त-सखे-
 मागहाणि-के- ? अह-एगसमओ, उक्क-आवत्ति-असंखे-मागो । अवट्ठि-
 सम्बद्धा । एवमणुदिसादि वाच अवराइह पि, सम्बण्णदिय-सम्बविगल्लिदिय-पंथि-
 अपत्त-यंचकाय-उत्त अपत्त-ओरात्थियमित्त-कम्मइय मदि-सुइ अप्पाय-विहग-

बीष सख्यातभागहानि पा संख्यातभागहानिको नहीं करते हैं तब सख्यातभागहानि और
 सख्यातभागहानिके अन्त्यकाळ एक समय पाय जाता है । तथा यदि एकके बाद
 दूसरे और दूसरेके बाद तीसरे आदि नाना बीष सख्यातभागहानि और सख्यातभागहानि
 निरन्तर करते हैं तो आन्तिके असख्यातवर्षे भाग काळ तक ही सख्यातभागहानि और
 सख्यातभागहानि होती हैं इसके पश्चात् अन्तर पड़ जाता है । अतः संख्यातभागहानि और
 सख्यातभागहानिके अन्त्यकाळ आन्तिके असख्यातवर्षे भागप्रमाण कहा है । सख्यातभाग
 हानिके समान सख्यातगुणहानिके अन्त्यकाळ एक समय जानना चाहिये । किन्तु जब
 अन्त्यकाळमें नाना बीष प्रति समय प्यारह विभक्तिस्थानसे पांच विभक्तिस्थानको या दो
 विभक्तिस्थानसे एक विभक्तिस्थानको प्राप्त होते रहते हैं तब संख्यातगुणहानिका अन्त्य-
 काळ सख्यातसमय प्राप्त होता है, क्योंकि इसप्रकार संख्यातगुणहानि निरन्तर सख्यात
 समय तक ही हो सकती है । तथा अवस्थित विभक्तिस्थानका सर्वकाळ कर्त्तव्य धरण
 यह है कि ऐसे अन्त्य बीष हैं जिनके सर्वदा अवस्थित विभक्तिस्थान बना रहता है ।
 ऊपर और अिठनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी ओषके समान व्यवस्था बन जाती है ।

५२६ आदेशसे मारकिपोंमें सख्यातभागहानि, सख्यातभागहानि और अवरयात्तका
 काळ ओषके समान है । इसीप्रकार साठों वृत्तिविधोंमें और सामान्य तिर्यच पंचेन्द्रि-
 यच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यच, योमीमयी तिर्यच, सामान्यदेव, अथवासिजोंसे लेकर सप-
 रिम मेवेवत्त तकके देव, वैक्रियिककावयोगी, बीवेदी नपुसकवेदी, असंपत्त तथा कृष्णादि
 पांच क्षेत्रवाचके बीषोंके काळ कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि संख्यातभागहानि और
 सख्यातभागहानिका काळ जो ओषसे कहा है वह इन मार्गणाओंमें भी बन जाता है ।
 किन्तु इन मार्गणाओंमें संख्यातगुणहानि नहीं होती है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच अन्त्यपथात्तकोंमें सख्यातभागहानिका काळ कितना है ? अन्त्यकाळ
 एक समय और अन्त्यकाळ आन्तिके असख्यातवर्षे भाग है । तथा अवस्थित विभक्ति-
 स्थानका काळ सर्वदा है । इसीप्रकार अनुदियसे लेकर अपराजित तकके देवोंके तथा
 सभी पंचेन्द्रिय, सभी विक्रयेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अन्त्यपथात्त, पांचो स्थावर काय, प्रस
 अन्त्यपथात्त, औदारिकमिन्नकाययोगी, कामेयकाययोगी, परवहानी, मुवाक्षानी, विभग

संजदासजद-वेदय०-मिच्छाइ०-असण्णि०-अणाहारि ति ।

§ ५२७. मणुस० संखेजभागवद्दी-सखेजगुणहाणी० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेजा समया । सेस० ओघ । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु संखेजभागवद्दी-हाणि० संखे०गुणहाणि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० संखेजा समया । अवट्ठि० सन्वद्धा । मणुसअपज्ज० संखेजभागहाणी० के० ? जह० एगसमओ उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवं

ज्ञानी, संयतासंयत, वेदकसम्यगृह्णति, मिथ्याहृष्टि, असस्त्री और अनाहारक जीवोंके उक्त दोनों स्थानोंका काल कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें संख्यातभाग-हानि और अवस्थान ही होते हैं, अत इनमें संख्यातभागहानि और अवस्थानका उक्त काल बन जाता है ।

§ ५२७. मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्योंमें शेष स्थानोंका काल ओघके समान है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी जीवोंमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यात-भागहानि और संख्यातगुणहानिका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थितका सर्व काल है । लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें संख्यात-भागहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग है । तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्न्यो-पमके असंख्यातवें भाग है । इसीप्रकार वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोंके उक्त दोनों पदोंका काल जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानि पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके ही होती हैं और इनका प्रमाण संख्यात ही हैं, अतः मनुष्योंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । सामान्य मनुष्योंमें लब्ध्यपर्याप्तक भी सम्मिलित हैं अतः मनुष्योंमें संख्यात भाग हानिका काल ओघके समान बन जाता है । तथा अवस्थितका काल ओघके समान स्पष्ट ही है । मनुष्य पर्याप्त और स्त्रीवेदी मनुष्योंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय क्यों है इसका कारण ऊपर हमने बतलाया ही है । इनके संख्यातभाग हानिके जघन्य और उत्कृष्ट कालका भी यही कारण जानना चाहिये । तथा इनमें भी अवस्थितका काल ओघके समान बन जाता है । लब्ध्य-पर्याप्तक मनुष्य और वैक्रियिकमिश्र ये मार्गणा सान्तर हैं । यदि इन मार्गणाओंमें नाना जीव निरन्तर होते रहें तो तो पत्न्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण काल तक ही होते हैं । अतः इनमें अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्न्यके असंख्यातवें भाग

बेठबियमिस्स० । सञ्चट्टे सखे० मागहाणी के० । अह० एगसमजो, उक० सखेजा समय । अवट्टि० ओप । एव परिहार० बचन्व । आहार० अबट्टि० अह० एगसमजो, उक० अंतोसु० । एवमकसाय०-सुद्धुम०-जहास्ताद० बचन्व । अबगद० सखेज मागहाणी-सखे गुणहाणी के० । अह० एगसमजो, उक० सखेजा समय । अवट्टि० अह० एगसमजो, उक० अंतोसु० । आहारमिस्स० अबट्टि० अहणुक्क० अंतोसुद्धुप । प्रमाण बन जाता है । किन्तु संख्यात भागहानि निरन्तर आबडिके असम्पातबे मागप्रमाण काक तक ही होती है, अत इनमें भी संख्यात भागहानिका जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट फल आबडिके असम्पातबे मागप्रमाण कहा है । इस मार्गणाओंमें छेप हानि और बद्धि नहीं होती ।

सर्वार्थसिद्धिमें संख्यातभागहानिका काक कितना है ? जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक संख्यात समय है । तथा अबस्थितका काक ओपके समान है । इसीप्रकार परिहारबिहारी संघत जीवोंके बच होने परोंका काक कहना चाहिये । तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंका प्रमाण संख्यात है अतः इसमें संख्यातभाग हानिका तक प्रमाण काक ही पटित होता है । तथा अबस्थितका काक ओपके समान बननेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि इन मार्गणाओंमें जीव निरन्तर पाये जाते हैं ।

आहारक काययोगी जीवोंके अबस्थित पदका जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त है । इसीप्रकार जलपायी, सूक्ष्मजीवराशिकसबत और पक्षस्पष्टसंघत जीवोंके अबस्थित पदका काक कहना चाहिये । सातंश यह है कि इन मार्गणाओंका नामा जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त ही होता है और इसमें एक अबस्थित पद ही पाया जाता है अतः इनमें भरणकी अपेक्षा अबस्थितका जपन्व काक एक समय और जपने जपने काककी अपेक्षा उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

अपगतवेदी जीवोंमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका काक कितना है ? जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक संख्यात समय है । तथा अबस्थित पदका जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त है । आहारकमिलकाययोगी जीवोंके अबस्थित पदका जपन्व और उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—यदि अपगतवेदी जीव निरन्तर संख्यातभागहानि और संख्यात गुणहानि करे तो संख्यात समय तक ही करते हैं, अत इनमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुण हानिका जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक संख्यात समय कहा है । तथा मोहनीय कर्मके साथ अपगतवेदका जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है, अतः अपगतवेदमें अबस्थितका जपन्व काक एक समय और उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त कहा है । आहारकमिलकाययोगका जपन्व और उत्कृष्ट काक अन्तर्मुहूर्त है और इसमें

§ ५२८. आभिणि०-सुद०-ओहि० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी-अवट्ठि० ओघं । एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठि ति वत्तव्वं । मणपज्ज० संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी-अवट्ठि० मणुसपज्जत्तमगो । एव संजद-सामाइयछेदो० । खइए० संखेज्जभागहाणी-संखेज्ज गुणहाणी० जह० एगसमओ, उक्क०संखेज्जा समया । अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । उवसम०-सम्माभि० अवट्ठि० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । सासण० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो ।

एक अवस्थित पद ही होता है, अतः इसमें अवस्थित पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ५२८. मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थित पदका काल ओघके समान है । इसीप्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके उक्त तीन पदोंका काल कहना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और अवस्थित पदका काल पर्याप्त मनुष्योंके कहे गये उक्त तीन पदोंके कालके समान है । इसीप्रकार सयत, सामायिकसयत, और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके उक्त तीन पदोंका काल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—मतिज्ञानीसे लेकर सम्यग्दृष्टि तक ऊपर जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें संख्यातभागवृद्धिको छोड़कर शेष पदोंका काल ओघके समान इसलिये बन जाता है कि इनका प्रमाण असंख्यात है और इनमें जीव सर्वदा पाये जाते हैं । किन्तु मनःपर्ययज्ञान पर्याप्त मनुष्योंके ही होता है, अतः इसमें सम्भव सब पदोंका काल पर्याप्त मनुष्योंके समान कहा । तथा संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत ये मार्गणाएँ पर्याप्त और नीवेदी मनुष्योंके ही होती हैं, अतः इनमें सम्भव सब पदोंका काल भी, पर्याप्त मनुष्योंके समान बन जाता है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अवस्थित पदका काल कितना है ? सर्वदा है । उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अवस्थित पदका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अवस्थितपदका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भाग है । अभव्य जीवोंके अवस्थित पदका काल सर्वदा है ।

विशेषार्थ—जब बहुतसे जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं और दूसरे समयमें कोई भी जीव क्षपकश्रेणीपर नहीं चढ़ते तब क्षायिकसम्यक्त्वमें संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब अनेक समय तक निरन्तर नाना जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते रहते हैं तब संख्यातभागहानि और संख्यात-

अमन्व० अवष्टि० सम्बन्धा ।

एष क्खलाशुगमो समत्तो ।

§ ५२६ अंतराशुगमेण इविहो णिरेसो ओषण आवेसेण य । तस्य ओषेण संखेज मागवद्धी-हापी० अंतरं के० । अह० एमसमत्रो, उक्त० अंतोऽसुदुच । संखेजगुणहाभि० अंतरं के० । अह० एमसमत्रो, उक्त० ज्ञमासा । अवष्टि० अतिय अंतरं । एष पंचिं दिय-पार्थि०पञ्च० तस तसपञ्च०-पचमण०-पचवधि०-कायभोमि-ओराळि०-पुरिस०-पचारिक०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्क०-मवसिद्धि०-सण्णि-आहारिं चि वत्तम्बं । पचरिं पुरिस० संखेजगुणहाभि० वास सादियेयं ।

गुणहानिका उत्कृष्ट क्लम संख्यात समव प्राप्त होता है । क्षाधिक सम्पत्त्वर्त्तने अवस्थित पदका सर्वदा क्लम स्पष्ट ही है । तथा उपशमसम्पत्त्व आदिमें अवस्थित पदका अल्प और उत्कृष्ट क्लम अपने अपने अल्प और उत्कृष्ट क्लमकी अपेक्षा आनन्द चाक्षिये ।

इसप्रकार काशुगम समाप्त हुआ ।

§ ५२७ अन्तराशुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आवेश-निर्देश । इनमेंसे ओषसे मान्य जीवोंकी अपेक्षा संख्यात भागवृद्धि और संख्यातभाग-हानिका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । संख्यात गुणहानिका अन्तरकाळ कितना है ? अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काळ छह महीना है । तथा सामान्यसे मान्य जीवोंकी अपेक्षा अवस्थित पदका अन्तरकाळ नहीं है । इसीप्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, अथ, प्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों चक्षुसयोगी, काययोगी, औदारिक क्लमयोगी, पुढपवेरी, ओषाधि चारों कपाक्वाळे, चहु पर्सनी, अचहुपर्सनी, हुक्खलेदण्णाक्वाळे, मय्य, सही और आहारक जीवोंके करना चाक्षिये । इतनी शिष्टेपता है कि पुढपवेरी जीवके संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाळ साधिक एक वर्ष है ।

विशेषार्थ—सब जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काळ तक मोहनीय कमकी संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिको नहीं करते हैं, अतः ओषसे इनका अपम्य अन्तरकाळ एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाळ अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहा है । अथकलेणीका अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, अतः संख्यात गुणहानिका अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है, क्योंकि संख्यातगुणहानि अथकलेणीमें ही होती है । तथा अवस्थितपद सर्वदा पाया जाता है अतः अवस्थित पदका अन्तरकाळ नहीं कहा है । ऊपर और कितनी मार्ग्यार्प गिवाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है । अतः इनमें सब पदोंका अन्तरकाळ ओषके समान कहा है । किन्तु पुढपवेरी जीव अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक अथकलेणी

§ ५३०. आदेसेण णेरईएसु संखेज्जभागवद्दी-संखे० भागहाणी० अतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । भुजगारम्मि चउवीस अहोरत्तमेत्ततरं भुजगार-अप्पदराणं परूविदं । एत्थ पुण अंतोमुहुत्तमेत्तं, कधमेदं घडदे ? ण एस दोसो, अंतरस्स दुषे उवएसो-चउवीस अहोरत्तमेत्तमिदि एगो उवएसो, अवरो अंतोमुहुत्तमिदि । तत्थ चउवीमअहोरत्ततर-उवएसेण भुजगारपरूवणं काऊण संपहि अंतोमुहुत्ततर-उवएस-जाणावण्ठ वद्दीए अंतोमुहुत्ततरमिदि भणिदं । तेण एदं घडदे । एव सञ्चणिरय-तिरिक्ख-पंचि-तिरि० तिय-देव-भवणादि-जाव उवरिमगेवज्ज०-वेउच्चिय-इत्थि०-णउंस०-असंजद० पर नहीं चढ़ते हैं अतः पुरुषवेदमे सख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा है ।

§ ५३० आदेशसे नारकियोंमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अन्तर-काल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । शंका—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार और अल्पतरका अन्तरकाल चौबीस दिनरात कहा है पर यहां इन दोनोंका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र कहा है, इसलिये यह कैसे बन सकता है ?

समाधान—यह दोष ठीक नहीं है, क्योंकि अन्तरकालके विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं । भुजगार और अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है यह एक उपदेश है और अन्तर्मुहूर्त है यह दूसरा उपदेश है । उनमेंसे चौबीस दिनरात प्रमाण अन्तरकालके उपदेश द्वारा भुजगार अनुयोगद्वारका कथन करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तरकाल रूप उपदेशका ज्ञान करानेके लिये इस वृद्धि नामक अनुयोगद्वारमें संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है, यह कहा है । इसलिये यह घटित हो जाता है ।

जिसप्रकार सामान्य नारकियोंके संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंका अन्तरकाल कहा उसीप्रकार समी नारकी, तिर्यंच सामान्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, योनि-मती तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर उपरिम भ्रैवेयक तकके देव, वैक्रियिक-काययोगी, स्त्रीवेदी, नपुंसकवेदी, असंयत और कृष्णादि पांच लेश्यावाले जीवोंके संख्यात-भागवृद्धि आदि पदोंका अन्तरकाल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरके कहनेके पश्चात् भुजगारविमक्ति अनुयोगद्वारमें कहे गये भुजगार और अल्पतरविभक्तिके उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनके साथ यहा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिके बतलाये गये उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तका विरोध बतला कर उसका समाधान किया गया है सो यह कथन ओघमें मी घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है, क्योंकि सामान्य नारकियोंसे लेकर पांच लेश्यावाले जीवों तक उक्त मार्गणाओंमें

पंचलेस्सा० बचस्व । पंचितिरि० अपज० सखेज० मागहाणी-अबद्धि० ओषं । एव
मजुरिसादि आच अवराइद० सम्बेइदिय-सम्बविगर्लिय-पंचि० अपज०-पंचकाय०
तसअपज०-ओराठियमिस्स० कम्मइय०-मदि-मुद-अण्णाण-विहंग०-परिहार०-सअदा
सअद० वेदग०-मिच्छादि०-असन्नि०-अणाहारि पि । एत्थ मजुरिसादि अवराइदताणं
वासुपुषचंतरमिदि केसिं वि पाढो सं आभिय बचस्व ।

१५३१ मजुस-मजुसपजकचयाणमोपमगो । एवं मजुसिधीसु । अवरि सखेजगुणहा
णीए वासपुषचतर । मजुसअपजकचार्जं दोई पदाणमतरं अह० एगसमजो, उद्ध० पच्छिदो०
असंखे० मागो । सम्बदे संखेजमागहाणी० अह० एगसमजो, ठक पच्छिदो० (अ)
संखे० मागो । अबद्धि णत्थिय अंतरं । वेठम्भियमिस्स० संखेजमागहाणि-अबद्धिइ० अह० एग
संख्यातमागहाणि और संख्यातमागहाणिका अथम्य और उच्छ्रब्ध जो अन्तरकाळ पदकाय
हे वह ओपके समान ही है, अतः ओपमें जिसप्रकार बटित कर जाये हैं वहीप्रकार यहां
भी बटित कर लेना चाहिये । विशेष बात यह है कि इन मार्गवाजोंमें अवस्थित पदके
विषयमें कुछ भी नहीं कहा है । सो इसका बड़ी अविश्राम्य है कि यहां भी ओपके समान
अवस्थित पदका अन्तरकाळ नहीं पाया जाता है ।

पंचेन्द्रियैश्च सम्बपर्वात्तक जीवोंके संख्यातमागहाणि और अवस्थित पदका अन्त-
रकाळ ओपके समान है । इसीप्रकार अनुविशसे छेकर अपराजित तकके देव, सभी एके-
न्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय सम्बपर्वात्त पांचों अन्तरकाळ, असम्बपर्वात्त,
औद्योगिकमिन्नकाययोगी कर्मअकायोगी, यज्ञज्ञानी, भुवाज्ञानी, विभगज्ञानी, परिहार
विद्यादिसवध, समतासपध, वेदगसम्बद्धि, मिध्यादद्धि, असद्धी और अनाहारक जीवोंके
संख्यातमागहाणि और अवस्थित पदोंका अन्तरकाळ होता है । यहां पर अनुविशसे छेकर
अपराजित तकके देवोंके संख्यातमागहाणिका उच्छ्रब्ध अन्तरकाळ वर्षपूर्वकत्व है ऐसा पाठ
पाया जाता है सो बातकर कथन करना चाहिये ।

१५३१ मजुम्य और मजुम्यपर्वात्तकोंके संख्यातमागहाणि आदिका अन्तरकाळ ओपके
समान है । इसीप्रकार मजुम्यनियोंके संख्यातमागहाणि आदिका अन्तरकाळ कहना चाहिये । इतनी-
विशेषता है कि मजुम्यनियोंके संख्यातमागहाणिका अन्तरकाळ वर्षपूर्वकत्व है । सम्बपर्वात्त
मजुम्योंके संख्यातमागहाणि और अवस्थित इन दोनोंका अथम्य अन्तरकाळ एक समान है
और उच्छ्रब्ध अन्तरकाळ पदके असंख्यातवर्षे माग है ।

सर्वावस्थितिये संख्यातमागहाणिका अथम्य अन्तरकाळ एक समय और उच्छ्रब्ध अन्तर-
काळ पदके असंख्यातवर्षे भाग है । तथा अवस्थित पदका अन्तरकाळ नहीं है ।

वैश्वानरमिन्नकाययोगी जीवोंके संख्यातमागहाणि और अवस्थित पदका अथम्य
अन्तरकाळ एक समय और उच्छ्रब्ध अन्तरकाळ बारह गुरुवर्षे है । अन्तरकाळयोगी और

समओ, उक्क० वारसमुहुता । आहार०-आहारमिस्स० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । एवमकसा० जहाक्खाद० वत्तन्व । अवगद० सख्वपदा० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघ । णवरि संखेजभागवद्दी णत्थि । एवं संजद०-सामाइयछेदो०-सम्मादि०-ओहिदसण० । णवरि ओहिणाणी-ओहिदंसणीसु संखेजगुणहाणीए वासपुधत्त । एवं मणपजव० । सुहुमसापराय० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा । अभव० अवट्टि० णत्थि अंतर । खइय० संखेजभागहाणी सखे०गुणहाणी-अंतर जह० एगसमओ, उक्क० च्मासा । अवट्टि० णत्थि अंतर । उवसम० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरयाणि । सासण०-सम्मामि० अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० पालिदो० असंखे०भागो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अवस्थित पदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । आहारककाययोगियोंके अवस्थित पदके अन्तरकालके समान अकपायी और यथाक्यात संयत जीवोंके अवस्थित पदका अन्तरकाल कहना चाहिये । अपगतवेदी जीवोंके सम्भव सभी पदोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है ।

मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणावाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धि नहीं होती है । इसी-प्रकार संयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, सम्यग्दृष्टि और अवधिदर्शनी जीवोंके सभव पदोंका अन्तरकाल होता है । इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके सख्यातगुणहानिका अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । जिसप्रकार अवधिज्ञानियोंके पदोंका अन्तरकाल कहा उसी प्रकार मन.पर्ययज्ञानी जीवोंके संभव पदोंका अन्तरकाल होता है ।

सूक्ष्मसापराधिक संयतोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । अभव्य जीवोंके अवस्थित पदका अन्तरकाल नहीं है ।

स्नायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । स्नायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवस्थितपदका अन्तरकाल नहीं है । उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिनरात है । सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके अवस्थितपदका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ।

इसप्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

५५३२ भाषाजुगमेण दुबिहो गिरेसो ओपेण आदेसेय य । तस्य ओपेण सम्ब
पदानं सम्बत्वं ओदइमो मावो ।

एव भाषाजुगमो समथो ।

५५३३ अप्यावहुमाजुगमेण दुबिहो गिरेसो ओपेण आदेसेय य । तस्य ओपेण
सम्बत्थोवा सत्वेज्जगुणहाविबिहपिया । संत्वेज्जमागहावि० असत्वेज्जगुणा । सत्वेज्ज
मागवद्दी० बिसेसाहिया । अबट्ठि० अर्बंतगुणा । एवं कायबोगि०-ओरात्ति०
पचारिक०-अचक्खु०-मवसिद्धि० आहारि चि ।

५५३४ आदेसेय जेरइयसु सम्बत्थोवा सत्वेज्जमागहावी । सत्वेज्जमागवद्दी०
बिसेसाहिया । अबट्ठि० असत्वेज्जगुणा । एव सम्बत्थिरय पध्दिय विरिक्खतिय-देवा
मववादि खाव वव गेपज्ज० वेठविय०-इत्थि०-तेठ० पम्म० पत्थम् ।

५५३५ विरिक्खेसु सम्बत्थोवा सत्वेज्जमागहाणि०, वद्दी० बिसेसा०, अबट्ठि०
अवतगुणा । एवं जयुस-असंजद तिब्बि छेस्ता चि । पध्दियविरिक्खअपज्ज०

५५३६ भाषाजुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और आदेश-
निर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा सभी पदोंमें सर्वत्र औपचारिक मात्र है ।

इसप्रकार भाषाजुगम समाप्त हुआ ।

५५३७ अस्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओपनिर्देश और
आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओपकी अपेक्षा सख्यातगुणहाविबिमत्तिवाले जीव सबसे बड़े हैं ।
सख्यातमागहाविबिमत्तिवाले जीव असख्यातगुणे हैं । इनसे सख्यातमागहाविबिमत्तिवाले
जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अवस्थित विमत्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसी
प्रकार कम्बबोगी, औदारिककम्बबोगी, कोवादि चारों कम्बवत्तले अचक्षुरसंती, मम्म और
आहारक जीवोंके सख्यातमागहादि आदि पदोंकी अपेक्षा अस्पबहुत्व कहना चाहिये ।

५५३८ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सख्यातमागहाविबिमत्तिवाले जीव सबसे बड़े हैं ।
इनसे सख्यातमागहाविबिमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अवस्थितविमत्तिवाले
जीव असख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार सभी नारकी पंचेन्द्र, पंचेन्द्रपयोस और योनिमती
तिर्यक, सामान्य देव, मन्वन्वासियोंसे लेकर नौ प्रवैयक तकके देव, वैश्वियककम्बबोगी
कीवेरी, पीठदेवतावाले और पद्यदेवतावाले जीवोंके सख्यातमागहावि आदि उपर्युक्त तीन
पदोंकी अपेक्षा अस्पबहुत्व कहना चाहिये ।

५५३९ त्रियकोंमें सबसे बड़े सख्यातमागहाविबिमत्तिवाले जीव हैं । इनसे सख्या
तमागहाविबिमत्तिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे अवस्थितविमत्तिवाले जीव अनन्त
गुणे हैं । इसीप्रकार नपुंसकवेरी, असंयत और छुण्य आदि तीन देवतावाले जीवोंके उप-
र्युक्त तीन पदोंकी अपेक्षा अस्पबहुत्व कहना चाहिये ।

सन्वत्थोवा संखेज्जभागहाणि० । अवट्ठि० असंखेज्जगुणा । एवं मणुस्सअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव अवराइद०-सन्वविगालिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-चत्तारिकाय-तस-अपज्ज०-वेउन्वियमिस्स०-विहंग०-संजदासजदाणं वत्तन्वं ।

§ ५३६. मणुस्सेसु सन्वत्थोवा संखेज्जगुणाहाणि० । संखेज्जभागवट्ठी० संखेज्जगुणा । संखेज्जभागहाणि० असंखेज्जगुणा । अवट्ठि० असंखेज्जगुणा । मणुमपज्ज० मणुसिणीसु सन्वत्थोवा संखेज्जगुणाहाणी० । संखेज्जभागवट्ठी० संखेज्जगुणा । संखेज्जभागहाणि० संखे० गुणा । अवट्ठि० संखे० गुणा । सन्वट्ठे सन्वत्थोवा संखेज्जभागहाणी० । अवट्ठि० संखे० गुणा ।

§ ५३७. एहंदिय-वादरेहंदिय-बादरेहंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेहंदिय-सुहुमेहंदियपत्तापज्जत्तएसु सन्वत्थोवा संखेज्जभागहाणी० । अवट्ठि० अणतगुणा । एवं सन्ववणप्फदि०-सन्वणिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि ति । णवरि वादरवणप्फदिपत्तेयसरीरेसु असंखेज्जगुण कायन्वं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धपर्याप्तकोमे संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोडे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार लब्धपर्याप्त मनुष्य, अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्त, पृथिवी-कायिक आदि चार स्थावरकाय, त्रस लब्धपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी और संयतासंयत जीवोंके उक्त दोनों पदोंकी अपेक्षा अल्पवहुत्व कहना चाहिये ।

§ ५३६. मनुष्योंमें संख्यातगुणाहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोडे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें संख्यातगुणाहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोडे हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । सर्वार्थसिद्धिमें संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोडे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ५३७ एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रियअपर्याप्त जीवोंमें संख्यातभागहानिविभक्तिवाले जीव सबसे थोडे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसीप्रकार सभी वनस्पति, सभी निगोद, औदारिक मिश्रकाययोगी, कर्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके उक्त दो पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वादरवनस्पति प्रत्येकशरीर जीवोंमें संख्यातगुणाहानिवाले जीवोंसे अवस्थितपदवाले जीवोंको असंख्यातगुणा कहना चाहिये ।

१५३८ पाँचदिय-पाँचि०पत्र०-तस-तसपत्र०-ओषमगो । णवरि अबडि० असंखे० गुणा । एव पधमध०-पचबचि०-पुरिस०-चक्सु०-सुद्ध० सण्णि० बचम्ब आहार० आहारमिस्स० अबडि० पत्थि अप्पापहुअं । एवमकसा०-सुद्धुम-सांपराप०-जहाकसाद० भमबसिद्धि०-उबसम०-सासण०-सम्मामि० दिहीणं बचम्ब ।

१५३९ अबगद० सम्बत्थोवा संखेज्जगुणहाणी० । संखेज्जमागहाणी संखेज्जगुणा । अबडि० संखेज्जगुणा । एवं मपपज्जब०-सअद०-सामादपछेदो० बचम्ब । आभिणि० सुद० ओदि० सम्बत्थोवा संखेज्जगुणहाणी । संखेज्जमागहाणी असंखेज्जगुणा । अबडि० असंखे०-गुणा । एवमोदिदसण० सम्मादि० ति बचम्ब । परिहार० सम्बद्धमगो । सुइय० सम्बत्थोवा संखेज्जगुणहाणी । संखेज्जमागहाणी संखेज्जगुणा । अबडि० असंखेज्जगुणा ।

१५३८ पचेमिप्रप, पचेमिप्रबपर्याप्त, प्रस और प्रसपर्याप्त बीबोंमें संख्यातभागवृद्धि आदि पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व ओपके समान है । इतनी विस्तेपता है कि यहाँ पर संख्यात भागवृद्धिवाले बीबोंसे अवस्थित पदवाले बीब अनन्त गुणे न होकर असंख्यातगुणे होते हैं । इसीप्रकार पाँचों मनोबोली, पाँचों बचनबोली, पुठपवेटी, बहुरसैनी, छुक्कसेरवावाले और सही बीबोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये ।

आहारककाबयोगी और आहारकमिमकाबयोगी बीबोंमें एक अवस्थित पद ही है, इसलिये अल्पबहुत्व नहीं है । इसीप्रकार अकवायी, सूस्मसांपरायिकसप्त, पथाकमावसप्त, भमम्ब, बपन्नमसम्पगट्टि, सासादनसम्पगट्टि और सम्पमिप्याट्टि बीबोंके एक अवस्थित पद होनेके कारण अल्पबहुत्व नहीं है यह कहना चाहिये ।

१५३९ अपयतवेदियोंमें संख्यातगुणवृद्धिवाले बीब सबसे छोड़े हैं । इनसे संख्यात भागवृद्धिवाले बीब संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितपदवाले बीब संख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार मन-पर्यपहानी, सयत, सामायिकसप्त और छेधोरस्वापमासप्त बीबोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये ।

मतिहानी, भुवशान्ती और अवधिहानी बीबोंमें संख्यातगुणवृद्धिवाले बीब सबसे छोड़े हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धिवाले बीब असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितपदवाले बीब असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार अवधिहानी और सम्पगट्टि बीबोंके उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहना चाहिये ।

परिहारविद्युत्सिंपवोंके सम्भव पदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व सर्वाभिमिद्धिके देवोंके कहे गये अल्पबहुत्वके समान होता है । ध्यायिकसम्पगट्टियोंमें संख्यातगुणवृद्धिवाले बीब सबसे छोड़े हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धिवाले बीब संख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थित पदवाले बीब असंख्यातगुणे हैं । वेदकसम्पगट्टि बीबोंके संभवपदोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व

वेदय० पचिदियतिरिक्ख अपञ्जत्तमगो ।

एवमप्पाबहुअं समत्तं ।

एवं पयडिविहती समत्ता ।



पचेन्द्रियतिर्यंष लब्धपर्याप्तकोके कहे गये अल्पबहुत्वके समान हे ।

इसप्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

इसप्रकार प्रकृतिविभक्ति समाप्त हुई ।



परिशिष्ट

१ पयडिविहृत्तिगयगाहा-चुपियासुत्तायि

पंगवीए मोहगिआ विहृत्ति तह द्विबीए अणुमागे ।

उक्कस्समणुक्कस्सं झीणमझीण च द्विविय वा ॥२२॥

बु० सु०—संपहि एदिस्से गाहाए अत्यो बुबदे । तं वाहा, मोहभित्तपयडीए

विहृत्तिपरूवणा, मोहभित्तद्विबीए विहृत्तिपरूवणा, मोहभित्तअणुमागे विहृत्तिपरूवणा च
कयम्भा चि एसो गाहाए पढमदूस्स अत्यो । एदेहि तिहि वि अत्थेहि एको वेव

अत्याहियारो । 'उक्कस्समणुक्कस्स' वेदि उधे पदेसविसय-उक्कस्साणुक्कस्साण गहणं
कयम्भं; अण्णेषिमसंमवादो । पयडि-द्विदि अणुमाग-पदेसाणुक्कस्साणुक्कस्साणं महणं

किण्ण कीरदे ? ण, वेसिं गाहाए पढमत्थे (द्वे) एक्कविद्वादो । एदेण पदेसविहृत्ती
सइदा । 'झीणमझीणं' चि उधे पदेसविसय वेव झीणाझीण वेचम्भं, अण्णस्स-असम

वादो । एदेण झीणाझीण सधिदं । 'द्विदियं' चि बुधे अहणुक्कस्सद्विदियपपदेसाण
गहण्य । एदेण द्विदियतिजो सइदो । एदे तिण्णि वि अत्ये वेत्थ एको वेव अत्याहियारो;
पदेसपरूवणादुवारेण एयणुवकमादो । एसो गुण्णहरमडारएण विदिद्वत्यो ।

'विहृत्तिद्विदि अणुमागे च चि' अण्णियोगहार विहृत्ती भिक्खवियम्भा । आम
विहृत्ती इवविहृत्ती दम्भविहृत्ती खेचविहृत्ती क्कविहृत्ती मण्णविहृत्ती सठ्ठणविहृत्ती
मावविहृत्ती वेदि ।

ओआगमदो दम्भविहृत्ती बुविहा, कम्मविहृत्ती वेव ओकम्मविहृत्ती वेव । केम्म
विहृत्ती यप्पा । तुअपदेसियं दम्भ तुअपदेसियस्स अविहृत्ती । वेवाएपदेसियस्स विहृत्ती ।
तदुमवेण अवचम्भ । खेचविहृत्ती तुअपदसोगाह तुअपदेसोयान्दस्स अविहृत्ती । कम्मविहृत्ती

तुअसमय तुअसमयस्स अविहृत्ती । मण्णविहृत्तीए एको एक्कस्स अविहृत्ती ।
सठ्ठणविहृत्ती बुविहा सठ्ठणदो च, संठ्ठणवियप्पदो च । संठ्ठणदो वट्ट वट्टस्स
अविहृत्ती । वेदं उसस्स वा चउरंउसस्स वा आवएपरिमडकस्स वा विहृत्ती । वियप्पेण

वट्टसंठ्ठण्यपि असंखेआ सोया । एवं उस-चउरंउस-आवएपरिमडकम्भं । सरिसवट्टं
सरिसवट्टस्स अविहृत्ती । एव सम्भत्थ ।
ओ सा मावविहृत्ती सा बुविहा, आममदो च ओआगमदो च । आममदो उवत्तुपो

पाहुवजाणओ । ओआममदो मावविहृत्ती ओमदो ओएएयस्स अविहृत्ती । ओदंओ
उवसमियेण मावेण विहृत्ती । तदुमएण अवचम्भ । एवं सेसेसु नि । एवं सम्भत्थ । २ ।
ओ सा दम्भविहृत्तीए कम्मविहृत्ती तीए पपदं । तत्थ सुचमाहा-

पयडीए मोहणिजा विहत्ती तह द्विडीए अणुभागे ।

उक्कस्समणुक्कस्सं श्रीणमश्रीणं च द्विदियं वा ॥२२॥

पदच्छेदो । तं जहा—‘पयडीए मोहणिजा विहत्ति’ ति एमा पयडिविहत्ती १ ।
‘तह द्विदि’ चेदि एमा द्विदिविहत्ती २ । ‘अणुभागे’ ति अणुभागविहत्ती ३ ।
‘उक्कस्समणुक्कस्सं’ ति पदेसविहत्ती ४ । ‘श्रीणमश्रीणं’ ति ५ । द्विदियं वा ति ६ ।
तत्थ पयडिविहत्तिं वण्णइस्सामो ।

पयडिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिविहत्ती च उत्तरपयडिविहत्ती च । मूलपयडि-
विहत्तीए इमाणि अट्ट अणियोगदाराणि । तं जहा-मामिच्चं कालो अंतरं, णाणाजीवेहि
भंगविचओ कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुगेत्ति । एदेसुं अणियोगदारेसु परू-
विदेसु मूलपयडिविहत्ती समत्ता होदि ।

तदो उत्तरपयडिविहत्ती दुविहा, एगेग उत्तरपयडिविहत्ती चेव पयडिट्टाण
उत्तरपयडिविहत्ती चेव । तत्थ एगेग उत्तरपयडिविहत्तीए इमाणि अणियोगदाराणि ।
त जहा, एगजीवेण सामिच्च कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो परिमाणा-
णुगमो खेचाणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अतराणुगमो सणियाओ अप्पाबहुए
त्ति । एदेसु अणियोगदारेसु परूविदेसु तदो एगेगउत्तरपयडिविहत्ती समत्ता ।

पयडिट्टाणविहत्तीए इमाणि अणियोगदाराणि । तं जहा, एगजीवेण सामिच्चं
कालो अंतरं, णाणाजीवेहि भंगविचओ परिमाण खेचं पोसण कालो अंतरं अप्पाबहुअ
भुजगारो पदणिक्वेओ वडिट्ठि ति ।

पयडिट्टाणविहत्तीए पुच्च गमणिजा ट्ठाणममुक्कित्तणा । अत्थि अट्टावीसाए
सत्तावीसाए छव्वीसाए चउवीसाए तेवीसाए चायीसाए एक्खवीसाए तेरसण्हं बारसण्हं
पंचण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हं एकस्सिं च १५ । एदे ओघेण ।

एकस्सिं विहत्तिओ को होदि ? लोहसंजलणो । दोण्हं विहत्तिओ को होदि ?
लोहो माया च । तिण्हं विहत्ती लोहसंजलण-माणसंजलण-मायासंजलणाओ ।
चउण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ । पंचण्हं विहत्ती चत्तारि संजलणाओ पुरिस-
वेदो च । एक्कारसण्हं विहत्ती एदाणि चेव पच्च छण्णोरुसाया च । बारसण्हं विहत्ती
एदाणि चेव इत्थिवेदो च । तेरसण्हं विहत्ती एदाणि चेव णवुंसयवेदो च । एक्खवीसाए
विहत्ती एदे चेव अट्टकसाया च । सम्मत्तेण वावीसाए विहत्ती । सम्मामिच्छत्तेण
तेवीसाए विहत्ती । मिच्छत्तेण चदुवीसाए विहत्ती । अट्टावीसादो सम्मत्तसम्मामि-
च्छत्तेसु अवणित्तेसुं छव्वीसाए विहत्ती । तत्थ सम्मामिच्छत्ते पक्खित्ते सत्तावीसाए

(१) पृ० १७ । (२) पृ० १८ । (३) पृ० २० । (४) पृ० २२ । (५) पृ० २३ । (६) पृ० ८० ।

(७) पृ० ८२ । (८) पृ० १९९ । (९) पृ० २०१ । (१०) पृ० २०२ । (११) पृ० २०३ । (१२) पृ० २०४ ।

विहती । सप्ताओ पयडीओ अहावीसाए विहती । संपहि एसा २८ २७ २६ २४
२३ २२ २१ १३ १२ ११ ५ ४ ३ २ १ । एष गदियादिसु जेदम्बा ।

सामिच सि छ पदं तस्स विहामा पडमाहियारो ।" त अहा—एकिस्से विहतिओ
को होदि ? गियैमा मजुस्सो वा मजुस्सिणी वा स्रबओ एकिस्से विहतिए सामिओ ।
एवं दोण्ह तिण्ह षठण्ह पंचण्ह एक्करसण्ह बारसण्ह तेरसण्ह विहतिओ । एकावीसाए
विहतिओ को होदि ? खीनदसणमोहण्णिओ । बोबीसाए विहतिओ को होदि ?
मजुस्सो वा मजुस्सिणी वा मिच्छे सम्मामिच्छे च खबिदे समचे सेसे । तेबीसाए
विहतिओ को होदि ? मजुस्सो वा मजुस्सिणी वा मिच्छे खबिद सम्मत्त-सम्मामि
च्छे सेसे । षैठबीसाए विहतिओ को होदि ? अण्णत्तापुबंभिविसंजोइदे सम्मादिही
वा सम्मामिच्छादिही वा अण्णपरो । ईप्पीसाए विहतिओ को होदि ? मिच्छाइही
गियमा । सत्तावीसाए विहतिओ को होदि ? मिच्छाइही । अहावीसाए विहतिओ को
होदि ? सम्माइही सम्मामिच्छाइही मिच्छाइही वा ।

कौसो । एवं दोण्ह तिण्ह चटुण्ह विहतिपान् । पण्हं विहतिओ केवचिरं कासादो ?
अहण्णकस्सेज को आवाडियाओ समयुआओ । ऐंकारसण्ह बारसण्ह तेरसण्ह विहती केवचिरं
कासादो होदि ? अहण्णकस्सेज अतोसुहुत्त । बैंवरि बारसण्ह विहती केवचिरं कासादो ?
अहण्णेण एगसमओ । ऐंकावीसाए विहती केवचिरं कासादो ? अहण्णेण अतोसुहुत्त ।
उकस्सेण तेतीस सामरोबमाणि सादिरेयाणि । बोबीसाए तेबीसाए विहतिओ केवचिरं
कासादो ? अहण्णकस्सेजतोसुहुत्त । षैठबीसविहती केवचिरं कासादो ? अहण्णेण
अतोसुहुत्त । उकस्सेण वेसभडि सामरोबमाणि सादिरेयाणि । ईप्पीसविहती केवचिरं
कासादो ? अजादि-अपज्जबसिदो । अण्णादिमपज्जबसिदो । सादिसपज्जबसिदो ।
तैरिच ओ सादिओ सपज्जबसिदो अहण्णेण एगसमओ । उकस्सेण उवह पोम्मासपरि
यद । सत्तावीसविहती केवचिरं कासादो ? अहण्णेण एगसमओ । उकस्सेण पत्तिदो
बमस्स असंखेज्जदिमागो । अहावीसविहती केवचिरं कासादो होदि ? अहण्णेण
अतोसुहुत्त । उकस्सेण वे छावडि सामरोबमाणि सादिरेयाणि ।

अँरैराजुममेण एकिस्से विहतीण अरिच अतर । एवं दोण्ह तिण्ह षठण्ह पंचण्ह
एक्करसण्ह बारसण्ह तेरसण्ह एकावीसाए पाबीसाए तेबीसाए विहतिपानं । षठबी-
साए विहतिपयस्स केवडिपमंतरं ? अह० अंतोसुहुत्त । उकस्सेण उवहपोग्गसपरि-

- (१) ५ २५ । (२) ५ २१ । (३) ५ २११ । (४) ५ २१२ । (५) ५ २१३ ।
(६) ५ २१७ । (७) ५ २१८ । (८) ५ २२१ । (९) ५ २२३ । (१०) ५ २२७ । (११) ५ २२८ ।
(१२) ५ २४५ । (१३) ५ २४६ । (१४) ५ २४७ । (१५) ५ २४८ । (१६) ५ २४९ ।
(१७) ५ २५२ । (१८) ५ २५३ । (१९) ५ २५४ । (२०) ५ २५५ । (२१) ५ २८१ ।
(२२) ५ २८२ ।

यद्वं देखणमेद्वपोगगलपरियद्वं । छ्वीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पल्लिदो० असंखे० भागो । उक्कस्सेण वेखावट्टि सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सत्तावीसविहत्तीए केवडियमंतरं ? जहण्णेण पल्लिदो० असंखे० भागो । उक्कस्सेण उवहट्ट पोगगलपरियद्वं । अट्टावीसविहत्तियस्स जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण उवहट्टपोगगलपरियद्वं ।

णोणाजीवेहि भंगविच्चओ । जेसिं मोहणीयपयडीओ अत्थिं तेसु पयदं । सँब्बे जीवा अट्टावीस-सत्तावीस-छ्वीस-चउवीस-एक्कवीससंतकम्मविहत्तिया णियमा अत्थि । सेसविहत्तिया भजियव्वा ।

सेसाणिओगहाराणि णेदव्वाणि ।

अप्पाबहुअं ।

सँव्वत्थोवा पंचसंतकम्मविहत्तिया । एकसंतकम्मविहत्तिया संखेजगुणा ।

दोण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसा० । तिण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । एकारसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । बीरसण्हं संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । चैदुण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेजगुणा । तेरसँण्हं संतकम्मविहत्तिया संखेजगुणा । बीवीससंतकम्मविहत्तिया संखेजगुणा । तेवीसाए संतकम्मविहत्तिया विसेसाहिया । सत्तावीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेजगुणा । एक्कवीसाए संतकम्मविहत्तिया असंखेजगुणा । चउवीसाए संतकम्मिया असंखे० गुणा । अट्टवीस संतकम्मिया असंखेजगुणा । छ्वीसविहत्तिया अणंतगुणा ।

जुजगारो अप्पदरो अवट्टिदो कायव्वो ।

एत्थ एगजीवेण कालो । जुजगारसंतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण उक्कस्सेण एगसमओ । अप्पदरसंतकम्मविहत्तिओ केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वे समया । अवट्टिद संतकम्मविहत्तियाणं तिण्णि भंगा । तैत्थ जो सो सादिओ सपजवसिदो तस्स जह० एगसमओ । उक्कस्सेण उवहट्टपोगगलपरियद्वं ।

एवं सव्वाणि अणिओगहाराणि णेदव्वाणि ।

पैदणिक्खेवे वट्टीए च अणुमग्गिदाए समत्ता पयडिविहत्ती ।



(१) पृ० २८३ । (२) पृ० २८४ । (३) पृ० २८५ । (४) पृ० २८६ । (५) पृ० २९२ । (६) पृ० २९३ । (७) पृ० ३१६ । (८) पृ० ३५२ । (९) पृ० ३५९ । (१०) पृ० ३६२ । (११) पृ० ३६३ । (१२) पृ० ३६४ । (१३) पृ० ३६५ । (१४) पृ० ३६६ । (१५) पृ० ३६८ । (१६) पृ० ३६९ । (१७) पृ० ३७० । (१८) पृ० ३७२ । (१९) पृ० ३७४ । (२०) पृ० ३७५ । (२१) पृ० ३८४ । (२२) पृ० ३८७ । (२३) पृ० ३८८ । (२४) पृ० ३८९ । (२५) पृ० ३९० । (२६) पृ० ३९७ । (२७) पृ० ४२५ ।

२ अवतरण सूची

क्रमसंख्या	अवतरण	पृष्ठ	क्रमसंख्या	अवतरण	पृष्ठ	क्रमसंख्या	अवतरण	पृष्ठ
प १	एकीतर पदबुद्धी- १	९	म ४	मन्विज्यपदा तिबुया-	२९३	म १	तुषानीतिवि- लीप्येक-	३१
ख २	खेर्त बल बागाई-	७	५	संयायानपमाचो-	३८			
म ३	विरस्येती परस्वार्य-	२१७						

३ ऐतिहासिक नाम सूची

क्र	उपनाम	पृष्ठ	क्र	उपनाम	पृष्ठ	क्र	उपनाम	पृष्ठ
४	उपनामार्थ	२२, ८१२ ५, २३ २१, २१५, २१२, २५६ २८६, ३१७ ४१७, ४२५	ग	बुधवरर	१८ १९	घ	वृत्तिसुत्र	१९, २२, २३, ८१ २ २, २१५,
				वैजयन्तस्वामी	२११			२२२, २५६, ३५७ ३५८,
				ब	बलिभूषणार्थ	२ ५, २ ६,		३८४ ३९१
				ब	बन्धुव	४२		३९७ ४२५
				घ	घटिसुत्र	४ ५ १४, १६ १८,		

४ ग्रन्थनामोद्धृत

क्र	उपनाम	पृष्ठ	क्र	उपनाम	पृष्ठ	क्र	उपनाम	पृष्ठ
५	उपनाम	२ ८, २८६, ३१६, ३७५, ३९१ ३९७, ४२ ४२५,	ख	बुधार्थ	३२	ग	वीज्या	१८७ ३१६,
				ब	बुधिसुत्र	४ १६ १७, २ ८, ३१५, २१६, २५६,		३७५,
						घ	वीज्या	३६१
						म	पदाव	१९६

५ गीता-वृत्तिसूत्रगत शब्दसूची

क्र	शब्द	पृष्ठ	क्र	शब्द	पृष्ठ	क्र	शब्द	पृष्ठ
६	बुद्ध	२२, २ ३	अ	अनुकल्प	१ १७	अ	अष्टिदन्तकम्मविहृति	१८५,
	बुद्धावीर्य	२ १ २ ४, २२१ २९३		अनुमान	१ ४ १७ १८,		अनतज	७, १३
	बुद्धावीर्यविहृती (इतिव)	२५५ २८५,		अनुपावधिहृती	१८,		अविहृती	६, ७ ८, ११, १२,
	बुद्धावीर्यवृत्तकीर्म्म	३७४		अनंतपुत्र	२१८		अंतर्द्वेष	१
	बन्धुवर	२१८,		अनुपीत्यत्र परिवृ	२८२,		अंतर्द्वेषवि भाषी	२५
	अथादि अण्ज्यवधिरो	२५२,		अण्णर	३८४		अंतर्द्वेषवृत्त	३६२, ३७
	अथादि लण्ज्यवधिरो	२५२,		अण्णरउत्तकम्मविहृति	३८८			३७२, ३७४
	अभिनीयहार	४ २२, २३		अप्यावृत्त	२२, ८	आ	आत्म	१२
	८ ८८, ३१६ ३९७				१९९ ३५२,		आनरपरिपत्रक	१ ११
				अथादि	३८४	इ	इतिवेष	२ ३

(१) सर्वत्र लब्ध संख्याक बाधकत बन्धुके और मुख्य संख्याक बन्धुके पृष्ठके सूचक हैं। जिस शब्द को शब्दके टाइटिलमें दिया है उसकी व्युत्पत्ति वा परिभाषा वृत्ति पृष्ठमें आई है।

उ उवकस्य १, १७, २४७, २४९, २५३, २५४, २५५, २८२, २८६, २८६, ३९०, उत्तरपयडिविहत्ती २० ८०, उवजूत्त १२, उवट्ट २५३, उवट्टपोगलपरियट्ट २८२, २८४, २८६, ३९, उवसमिअ १३, ए एकक ८, २०१, २०२, एककवीस-एककावीस २०१, २०३, २४७, २८२, २९३, ३७०, एककसंतकम्मविहत्तिय ३५९, एककारस २०१, २०३, २१२, २४४, २८२, ३६३, एग जीव ३८७, एगसमअ २४६, २५३, २५४, २८५, ३८८, ३९०, एगेग उत्तरपयडिविहत्ती ८०, ८२, ओ ओघ २०१, ओदइअ १२, १३, अ अतर २२, ८०, १९९, २८१, २८२, २८३, अतराणुगम ८०, २८१, अतीमुहत्त २४४, २४७, २४८, २४९, २५५, २८२, क कम्मविहत्ती ५, ६, १६, कसाय २०३, काल २२, ८०, १९९, २४३, २४४, २४६, २४७, २४८, २४९, २५३, २५४, २५५, ३८७, ३८८ कालविहत्ती ४, ८, कालाणुगम ८०, ख खवअ २११, खीणदसणमोहणिज्ज २१२, खेत्त १९९ खेत्तविहन्ती ४, ७, खेत्ताणुगम ८०, ग गण्णविहत्ती ४, ८,	गदियादि २०५, च चउरम १०, ११ चउवीसविहत्ती २४९, चउ (चउ) २०१, २१२, २३७, २८२, ३६५, चउवीस २०१, २०४, २८२, २९३, ३७२, छ छण्णोकमय २०३, छवीस २०१, २०४, २९३, छवीसविहत्ती २५२, २८३, २७५, ज जहण्ण २४६, २४७, २४९, २५३, २५४, २५५, २८३, २८४, २८५, ३८८, ३९०, जहण्णुककस २४३, २४४, २४८, ३८८, जीव २९३, झ भीणमझीण १, १५, १८, ट टुवणविहत्ती ६, ट्टाणसमुक्कित्ता २०१, ट्टिदि १, ४, १७, ट्टिदिय १, १७, १८, ट्टिदिविहत्ती १७, ण्ण गवुसयवेद २०३, णामविहत्ती ४, णियम २११, २२१, २९३, णो आगम ५, १२, णोकम्मविहत्ती ५, त तट्टुभय ७, १३, तह १, १७, ति २०१, २०२, २३७, २८२, ३६२, तुल्लपदेसिय ६, तुल्लपदेसोगाढ ७, तुल्लसमय ८, तेतीस २४७, तेवीस २०१, २०४, २१७, २४८, २८२, ३६९, तेरस २०१, २०३, २१२, २४४, २८२, ३६६, १०, ११, द दव्व ६, दव्वविहत्ती ४, ५, १६, डुविहा ५, ९, १२, २०, दो २०१, २०२, २१२, २३७, २८२, ३६२, दोआवलय २४३, देषुण २८२,	प पगदि १ पट्टमाहियार २१०, पर २१०, पदच्छेद १७, पदणिकखेव १९९, ४२५, पयडि १७, २०४, पयव १३, २९३, पयडिविहत्ती १७, १८, २०, ४२५, पयडिट्टाण उत्तरपयडि विहत्ती ८०, पयडिट्टाणविहत्ती १९९, २०१, परिमाणानुगम ८०, परिमाण १९९, पलिदोवम २५५, २८३, २८४, 'चसतकम्मविहत्तिय ३५९, पच २०१, २०३, २१२, २४३, पाहूड जाणअ १२, पुरिसवेद २०३, पुव्व पोगलपरियट्ट २५३, पोसणाणुगम ८०, फ फोसण १९९, व वारस २०१, २०३, २१२, २४४, २४६, २८२, ३६४, वावीससंत कम्मविहत्तिय ३६८, भ भग ३८९, भगविचअ २२, १९९, २९२, भागाभाग २२, भाव १३, भावविहत्ती १२, भुजगार १९९, ३८४, भुजगारसतकम्मविहत्तिय ३८८, म मणुस्स २११, २१३, २१७, मणुस्सिणी २११, २१३, २१७, माणसजलण २०२, माया २०२, मायासंजलण २०२, मिच्छत्त २०४, २१३, २१७, मिच्छावट्टी २२१,
--	--	---

मुख्यपरिविहारी २० २२	विहासा ११	संश्लेषवृत्त ११५, ११६,
२३,	विमापपरोष्ठ १	११८
मोहविक्रम १ १७,	वेङ्कवर्द्धि २४९, २५५,	संयत्तव २०२, २ ३
मोहनीयपरवि २१२,	२८४	संयत्त ९
स कोष	सन्निवास ८	संयत्तवियम्प ९
कोष २ २,	सताधीश २ १ १ ४	संयत्तविहारी ४ ९
कर्मवर्धनतम २ २	२२१ २९३ ३१९,	संयत्तवियम्प १७२,
स गह १	सताधीशविहारी २५४	संयत्तवियम्प २११
सद्वर्धन १	२८४	१६२, १६३ १६४ १६५
गह ११९ ४२५,	सपञ्चवधियो २५३, ३९	११९, ११९, १७
सधीश २ १ २ ४ २१२,	समय २४३	सापठेयम २४७ २४९,
२४८, २८२,	सम्पत् २ ४ २१३	२५५, २८४
वियम्प १	२१७	सादि २५३ ३९०
वितेसादि ३१२ ३१३	सम्पामिच्छत २ ४ २१३	सादिरेव २४७ २४९
३१४	२१७	३५५ २८४
विहृति (विहारी) १ ४	सम्पामिच्छी २१८, २१९,	सादिरेव २४७ २४९
६ १ १३, १७ १ ३	२१८	३५५ २८४
२ ३ २ ४ २११	सम्पामिच्छाविहारी २१८	सादिरेव २४७ २४९
२४४ २४६ २४ २८१	२२१	२११
विहृति २ २, २१	सविष्णु ११	सामित २१ ८ १९९
२१२, २१७ २१८ २२१	सम्प २ ४ २१३, ३१७	११
२३७ २४३, २४८ २८२,	सम्पत् ११ १३	मुत्तमगह ११
२९३,		



७ जंयधवखागत विशेषशब्दसूची

अ अक्षरपठयत् १ १७	जालाहिनार २ १७ १९,	अक्षरकम २३४
अक्षरविहृति ८९	२२,	अक्षरकमकरण २३५ २३८
अक्षरदर २१९	अक्षरमयपरिवृ ३९७	अक्षर १०१
अक्षरवि २४ ८९	अक्षर २४ ८९,	अक्षरकरव २३४
अक्षरविहार ८ ८१	अक्षरविरेवपमान २५	अक्षरम १२
१ ४२५, ४३७	अक्षरदर ३८९	अक्षरविहारी ४ १२,
अक्षरविहृति ३६८	अक्षरवृत्त ४३३	अक्षरपुष्पिकम २३४
अक्षरकरविहृति ८८,	अक्षरवृत्तवृत्त ७८	अक्षरवृत्तम ३७१
अक्षरविहारी १८	१७६ ३५३ ४२२	अक्षरम ३९
अक्षरवृत्त १०८ ११८	अक्षरवृत्त ४४२	अक्षरवृत्तम २३३
२१९, ३७४ ४१७ ४३	अक्षरविहृति ३९ ३९७	अक्षरविहृति संयत्तवियम्प २३४
अक्षरवृत्तविहृति ४१७ ४२१	अक्षरविहृति ४१७	अक्षरविहृति ८८
अक्षरवृत्तविहृति ४१८	अक्षरवृत्त ७ १५	अक्षरविहृति ३ ३१
अक्षरवृत्त १७	अक्षरवृत्त ३७१	अक्षरविहृति ८
	अक्षरवृत्त ३७१	अक्षर २३४
	अक्षरविहृति ६	अक्षरवृत्त १९९,

१ यहाँ ऐसे शब्दोंका ही संग्रह किया है जिनके विषयमें धर्ममें कुछ कहा है या जो संस्कृतकी दृष्टिसे आवश्यक समझे गये। जीवह मारवचारी वा इनके अन्तर्गत वेदके नाम अनुवीच्य हाँटोंमें पुन पुन आने हैं अतः उनका यहाँ संग्रह नहीं किया है। जिन पुष्पकर विहृति अक्षरम सद्यः परिभाषा वा व्युत्पत्ति पाई जाती है वृत्त पठके अक्षरों गये टाईपमें दिया है।

उदयावलि	२३४,
उदीरणा	२३४,
उवकमण	३७१, ३७३,
उवकमणकाल	३७०,
	३७३, ३७५,
उवहुपोगलपरिपट्ट	२५४,
	३६१,
उववाद पद	५९,
उवसमसम्मादिट्टि	४१७,
उयसमसम्मत्तकाल	४१८,
उव्वल्लणकाल	२५४, ३७०,
उव्वल्लणा	४२१,
ए एगेग उत्तरपयडिबिहत्ती	८०
ओ ओदेइअ	१३
अ अतर (करण)	२३३,
	२५३, ३९०,
अतराइअ	२१,
अतराणुगम	४४, ७४,
	१२३, १७३, ३४४,
	३९७, ४१९, ४४९,
	४७५,
क कदकरणिज्ज	२१४, २१५,
	४३०,
कम्मविहत्ती	५, १६,
करण	२५३, ३९१,
कालाणिमोगट्टार	३८७,
कालाणुगम	२७, ७१, ९९,
	१७१, २३३, ३३५,
	४१४, ४४२,
कालविहत्ती	८,
किट्टीकरणद्धा	३५४, ३६३,
किट्टीवेदयकाल	३५३,
	३५९, ३६२,
ख खेत्ता	७,
खेत्तविहत्ती	७,
खेत्ताणुगम	५३, १६३,
	३२४, ४०८, ४६३
ग गाहामुरा	१६
गोद	२१,
गोदुच्छ	२५३,
घ घउवीसविहत्तिसअ	२१८,
	२१९,
घरिमफालि	२३५, २३९,
घारित्तमोहणीयक्खवण	२१३, २३३,
घारित्तमोहणीय	२१९,
ज जाणुअसरीरविहत्ती	५,
झ झीणाझीण	२, १८,
ट टुवण विहत्ती	५

ट्टाणसमकरीताणा	२०१,
ट्टिदियतिअ	२, १८,
ट्टिदिविहत्ती	१७,
टोका	१४
ण णवकवघ	२३५, २३७,
	२४३,
णाणाजीवेहि भगविचया-	
णुगम	४४, १४४, २९३,
	४०२, ४५६,
णाणावरणिज्ज	२१,
णामकम्म	२१,
णामविहत्ती	५,
णिवस्सेव	४
णिसंस्तकम्मिय	४३०
णो आगम	१२
णो आगमभाव	१२
णो आगमविहत्ती	५,
णोकम्मविहत्ती	६,
णोसव्वविहत्ति	८८,
त तालपलवमुत्त	२१४,
तिरुययर	२११,
द दव्वद्वियणय	८१,
दव्वविहत्ती	५, १६,
दसणमोहणीयक्खवण	२१३,
दसणावरणिज्ज	२१
देसघावि	२३३,
देसामासियं	८, २१४,
घ घुव	२४, ८९,
घुवपद	२९५,
घुवभंग	२९४,
प पज्जवद्वियणय	८१,
पद	१७,
पदाणिक्खेव	४२५,
पदेसविहत्ती	१८,
पद्धई	१४,
पट्टवणकाल	३६८,
पढमसम्मत्ताहिमुह	३९७,
पत्थारसलागा	३००, ३०३,
पत्थारालाव	३०१
पमाणपद	१७
पयडिबिहत्ती	१७, २०,
पयडिट्टाण उत्तरपयडि-	
विहत्ती	८०,
पयडिट्टाण	१६६,
पयडिट्टाणविहत्ति	२००,
	२०१,
परस्थानप्यावहुगाणुगम	१७९,
परमगुरुवएस	१०८,

परिमाणुणुगम	४९, १५७,
	३१९, ४०४, ४६१,
पवाइज्जमाअ	४१८,
पंजिया	१४
पाहुडगय	१७४,
पुच्छाणुत्त	२१०
फ फट्टय	२३६, २३८,
फोसणाणुगम	६०, १६५,
	३२६, ४०९,
ब बघ	२३४,
बघग	१९९,
बघट्टाण	१९९,
बघावलि	२४३,
बादरकिट्टि	२३५,
बीजपद	३०७,
भ भयणिज्जपद	२९३
भविमविहत्ती	५,
गागाभागाणुगम	४७,
	१५१, ३१६, ४०६,
	४०९,
भावविहत्ती	१०,
भावाणुगम	७७, १७५,
	४२२, ४७९,
भुजगार	३८४, ३८८,
म मज्झिमपद	१७
मणुस्स	२१२, २१
महावघ	१९९,
मदबुद्धिजण	३९७,
मारणतिय	५९,
मिच्छाइट्टी	२१८,
मूलपयडिबिहत्ती	२२,
मोहणिज्ज	२१,
मोहणीय	२०,
ल लहिदुञ्चारण	३९७
व ववखाण	४१७,
वड्ढिविहत्ती	४३७,
ववरयापद	१७
वित्तिमुत्ता	१४,
विमात्रप्रदेश	६
विसजोअअ	२१८,
विसजोयणा	२१६,
विसंजोयणापक्ख	४१८,
विहत्ति	४, २१,
विहासा	२१०,
वेदग	१९९,
वेयणीय	२१
स सणियास	१३०,
सम्मत्तुव्वल्लण	४५२,

सम्मानिकादि	२१८
	२१९
सम्पत्तीसना	२३ ८३
	३८४ ४२५
	४६१ ४६७
सम्पत्तिविषय	२३३
सम्पत्तिविधि	८८
सम्पत्तिसंख्य	२३५ २५३

संक्रमणाधिक्य	१४३
संयुक्तप	८१
संयुक्तिकृति	३५९
संयुक्त	१ १
संयुक्त	९
संयुक्तविषय	९
संयुक्तविहृती	९
संयुक्त	११९

सावित्र	२४ ८९
सावित्र	४२६ ४२९
सावित्राभुयम	२७ ९१
	३८६ ४३९
सावित्राय	३९ ३९२
सावित्राभुयमि	४१० ४१८
सावित्रिकृति	२३५



